श्रीत्रिदण्डिदेव ग्रन्थमालायाः नवमम् प्रसूनम् ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः । श्रीः । श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ॥

॥ श्रीः ॥



वार्तामाला

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्ग प्रातिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरुभगवदनन्ताादीय–

श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यस्वामिप्रणीतया

'चूडामणि' समाख्यया भाषाव्याख्यया समन्विता

श्रीपादसेवक श्रीसुदर्शनाचार्यब्रह्मचारिणः

रोहतास–मण्डलान्तर्गत डेहरी श्रीविजयराघवमन्दिरा

ध्यक्षस्य सत्प्रेरणया भोजपुरमण्डलान्तर्गत–

सुरेमनुपर–लच्छूटोला श्रीमहालक्ष्मीनारायण–

यज्ञसमित्या प्रकाशिता ।

सम्पादक

डा० सुदामा सिंह, एम. ए. पी. एच. डी.

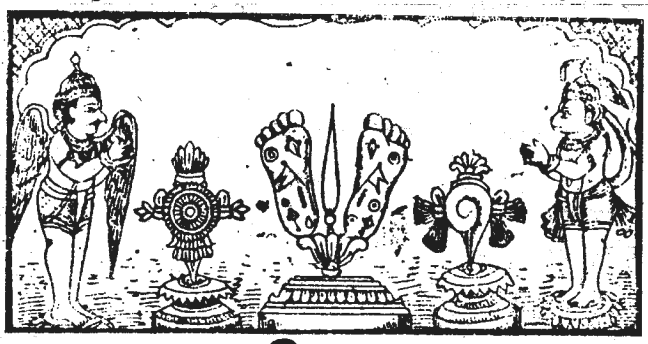
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, श्रम एवं समाजकल्याण विभाग,

म. वि. वि. - बोधगया

तृतीयावृत्ति] श्रीपंचमी - २०५५ मू० ६०/- रु०

श्रीत्रिदण्डिदेवग्रन्थमालायाः नवमम् प्रसूनम् ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः । श्रीः । श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ॥



वार्तामाला

श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य वेदान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरुभगवदनन्तापादीय–

श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्यस्वामिप्रणीतया

'चूडामणि' समाख्यया भाषाव्याख्यया समन्विता

श्रीपादसेवक श्रीसुदर्शनाचार्यब्रह्मचारिणः

रोहतास-मण्डलान्तर्गत डेहरी श्रीविजयराघवमन्दिरा-

ध्यक्षस्य सत्प्रेरणया भोजपुरमण्डलान्तर्गत-

सुरेमनपुर-लच्छूटोला श्रीमल्लक्ष्मीनारायण-

यज्ञसमित्या प्रकाशिता ।

सम्पादक :

डा॰ सुदामा सिंह, एम. ए., पी. एच. डी.

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, श्रम एवं समाजकल्याण विभाग,

म. वि. वि. - बोधगया

तृतीयावृत्ति] श्री पंचमी– २०५५ मू॰ ६०/– रु॰

पुस्तक-प्राप्ति स्थान :–

१. श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर,
चरित्रवन, बक्सर
जि॰ – बक्सर (बिहार)

२. श्रीसुदर्शनाचार्य ब्रह्मचारी स्वामीजी,
अध्यक्ष
श्रीविजयराघव मन्दिर,
बीरन-बीघा, डेहरी
जि॰ – रोहतास (बिहार)

मुद्रक :–

दिनेशचन्द्र शुक्ल
वातायन पब्लिशिंग,
एडीसन आर्केड, लिलैण्ड, कम्पाउण्ड,
फ्रेज़र रोड, पटना ८००००१
दूरभाष – २२९४४४

श्रियै नमः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः । श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः

नम्र-निवेदन

मंगलंदेशिकेन्द्राय श्रीशेषाचलजन्मने ।
श्रीशेषप्रतिरूपाय श्रीयुतानन्तसूरये ॥
मंगलं रामकृष्णार्यकृपाप्तगुणराशये ।
श्रीशाङ्घ्रब्जमधुव्रताय विष्वक्सेनार्ययोगिने ॥

अनन्तांग विमान में स्मयमान श्रीपति वैकुण्ठनाथ भगवान् के उत्फुल्ल पद-अब्भौज में दृढ़ासक्त अनन्त श्रीसमलङ्कृत परमकारुणिक परमाचार्य की कृपा से प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद अस्मदाचार्य श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा विचरित वार्तामाला ग्रन्थ की 'चूड़ामणि' टीका को भक्तों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए अकथनीय हर्ष हो रहा है; क्योंकि आद्याचार्या श्रीजी- श्रीसीता अम्बा की चूड़ामणि की भाँति यह ग्रन्थ भक्त और ज्ञानी कौन कहे, भगवान् के लिए भी प्राण-प्रिय है; क्योंकि इसमें भगवदेकधन आचार्यों एवं महाभागवतों द्वारा अभिव्यक्त रहस्यतम तत्त्वों की भास्वर मणि-प्रभा की जगमगाहट भरी हुई है। पूर्व संस्करण की भूमिका में मुद्रित अभिनन्दन में यति विशुद्धानन्दाचार्य स्वामी, वेद व्याकरण तीर्थ ने ठीक ही कहा है कि-

तेषां मणीनां नवमं कृतं ते चूडामणीनां तिलकं समीक्ष्य ।
आप्यायितान्तःकरणा स्म हृष्टः योगात्तविद्या नहि वर्णनीय ॥

वैष्णव - कुलावंतस श्रीपेरुमालजीयर स्वामीजी ने- एक सौ बयालिस महाविभूतियों (जिनमें स्वतः भगवान्, महालक्ष्मीजी- श्रीरंगानायकी प्रभृति, पूर्वाचार्यों यथा श्रीकलिवैरिदास स्वामीजी, श्रीवेदान्ती स्वामीजी, श्रीनाथमुनि स्वामीजी, श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामीजी, श्रीराममिश्र स्वामीजी, श्री यामुनाचार्य स्वामीजी, श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी, श्री अनन्ताल्वान् स्वामीजी, श्री पुल्लैप्रपन्न स्वामीजी, श्रीनडाधुर आल्वार स्वामीजी इत्यादि एवं महाभागवातों यथा- श्री धनुर्धरदासजी, त्रैलोक्यादेवीजी, श्रीरंगदासजी, श्रीवैष्णव भिल्ल एवं चेलाञ्चलाम्बा देवीजी आदि) की चारसौ तैंतीस वार्ता रूपी अमूल्य मणियों को पिरोकर 'वार्तामाला' रूपी मणिमाला के रूप में इस ग्रन्थ का निर्माण किया और पूज्यपाद श्रीस्वामीजी ने मानो इसकी 'चूड़ामणि' नामक भाषाटीका को बनाकर उसमें 'सुमेरु' डाल दी यथा-

"चूडामणिं च विमलां सुविरच्य वार्ता -
मालाविभूषणकरो सहितो महद्भिः ।"

वार्ताओं के व्याख्यान के आदि में प्रसंगानुसार भगवत्, भागवत एवं आचार्यों से सम्बन्धित स्तुत्यात्मक श्लोक भी मुद्रित हैं, और व्याख्यान की अक्षरशः प्रमाणिकता के लिए संस्कृत एवं द्रविड भाषा के बहुमूल्य सद्ग्रन्थों को उद्धृत किया गया है। तथैव भारत की ऋषि-शासित संस्कृति के लिए उपयोगी महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रसंगवश प्रकाश डाला गया है।

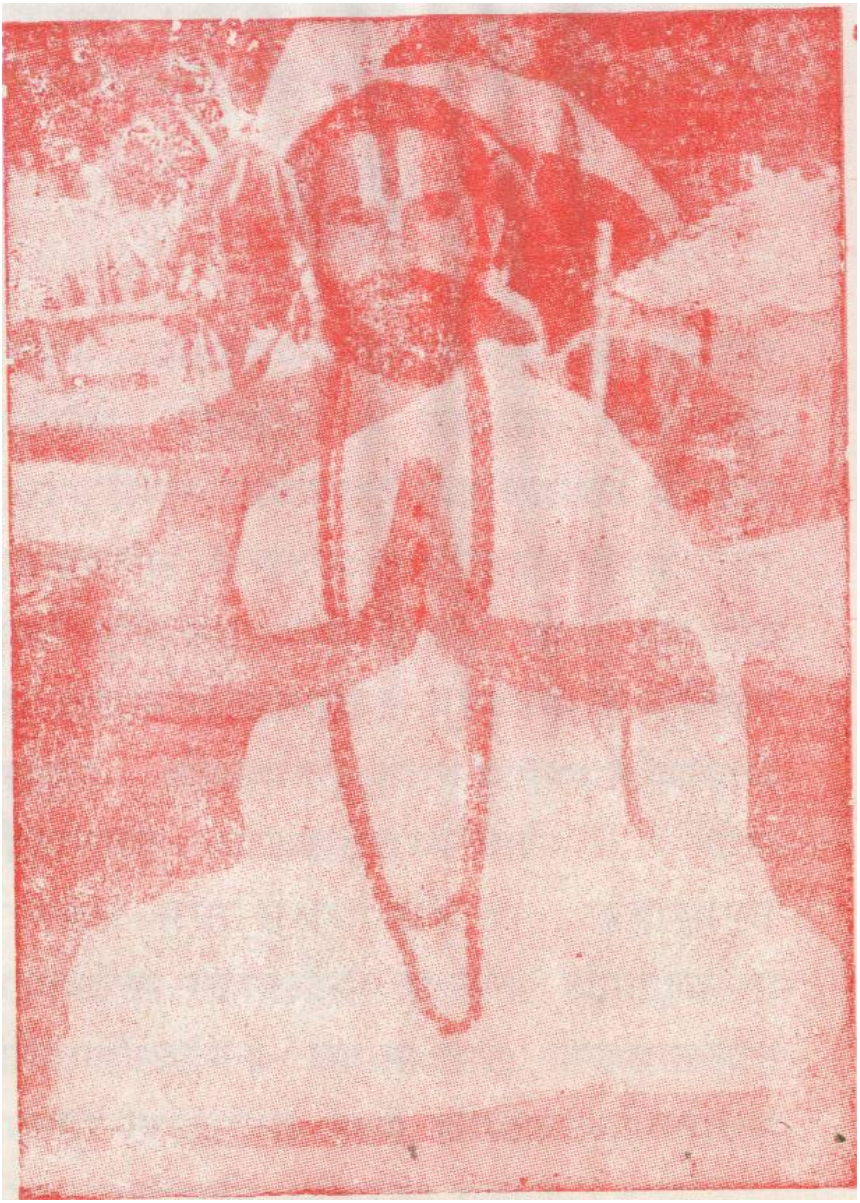
'ग्रन्थ' के आदि में श्रीमहालक्ष्मीनारायण यज्ञ- सुरेमनपुर (जि० भोजपुर) में श्रीचरणों में समर्पित विविध भाषाओं में विरचितत अभिनन्दन पत्रों का प्रकाशन हुआ है। वस्तुतः गंगा की हीरक-हारसी झलकती लहरों से सर्वथा आवृत्त श्रीविष्णुपादोदकी की गोद-सी यह भूमि यतिसार्वभौम को अपनी गोद में बैठाकर इतनी महीयसी बन गयी थी कि यज्ञारम्भ के पूर्व ही भगवान् ने भी अपने प्रियतम की कुटी में पहुँचकर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' की दिव्य वाणी से अभिनन्दन कर डाला।

युग-युगान्तर पूर्व जैसे भगवत् भागवत का वार्तालाप होता था, 'वार्तामाला की चूड़ामणि के नवसंस्करण के अलभ्यसंयोग पानेवाले सुरेमनपुर ने 'आज' के इस भौतिकवादी युग में भी आचार्य और प्रभु की वार्ता को साक्षात् कर दिया। 'चूडामणि' सुमेरु की भाँति चतुर्भुज श्रीमन्नारायण और पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराज की वार्ता पूर्व की चार सौ तैंतीस वार्ताओं में एक और वार्ता जोड़ देती है और प्रभु द्वारा प्रदत्त 'पाञ्चजन्य' ही उस रहस्य का उद्घोष करता रहेगा।

श्रीमहालक्ष्मीनारायण यज्ञ- समिति, सुरेमनपुर-लच्छूटोला (भोजपुर) ने, ग्रन्थ-प्रकाशन के मौद्रिकभार को वहन किया है, इसलिए उसके प्रति कोटिशः आभार व्यक्त करता हूँ। प्रकाशन के लिए सतत्प्रेरणादायी श्रीपादसेवक श्रीसुदर्शनाचार्य ब्रह्मचारी स्वामीजी, अध्यक्ष श्रीविजयराघव मन्दिर डेहरी के श्रीचरणों में सदा अवनत हूँ। त्रुटियों के लिए विज्ञ-जनों से क्षमा-प्रार्थी हूँ। मुद्रण कार्य के लिए वातायन, पब्लिकेशन्स पटना को साधुवाद!

अन्ततः श्रीकाञ्चीपुरम् के कण-कण से, श्रीमद् भगवदनन्तदेव के पद-पद्म-राग-रंजित पाद-पीठ से, श्रीहस्तिशैलशिखरोज्ज्वल पारिजात स्वरूप श्रीसहित वरदराज भवागन् से इस अकिञ्चन जन की प्रार्थना है कि आचार्य-प्रभु का मंगलमय विग्रह युग-युगान्तर तक सुस्वस्थ, शक्ति-सम्पन्न एवं मुदान्वित रहे, और हम वैष्णव जन उस महाकल्पतरु की छाया में श्रेयपथ पर अग्रसर रहें।

श्रीचरणाश्रित
सुदामा सिंह



श्रीपादसेवक

श्रीसुदर्शनाचार्य ब्रह्मचारी जी

अध्यक्ष, श्रीविजयराघव मन्दिर, डेहरी-ऑन-सोन

श्रियै नमः

श्रीमते रामानुजाय नमः। श्री वादिभीकरमहागुरवे

।। अथ अभिनन्दन-पत्राणि ।।



श्रीमद्वेदमार्ग - प्रतिष्ठापनाचार्योभय-वेदान्त-राद्धान्त-निर्धारण-सार्वभौम- श्रीमच्छठरिपु- परकाल- नाथ-यामुन-यतिवरवरवरमुनीन्द्रादिप्रणीतसुदिव्यनिबन्धन-निबद्ध-मानस-जननमरण-संसरण-महापथबभ्रम्यमाण-जनिमत्कदम्बविमुक्तिघन्टापथोपदेशिक- शम- दम-दया-दाक्षिण्यसौशील्यवात्सल्यादि-गुणगणविभूषिता-नन्तश्रीसमलंकृत- श्रीमज्जगद्गुरुभगवदनन्तपादीयानामी-शादिदशोपनिषद्-व्याख्यातृवर्य्याणां - योग-चरमसोपानरूप-समाधिसमधिष्ठित- ब्रह्मसाक्षा-त्कृतवर्य्याणामष्टोत्तर-सहस्त्रश्रीसमलंकृतानां श्रीमद्विष्वक्सेना-चार्य्य- श्रीत्रिदण्डीस्वामिनां- करकमलयोः भोजपुरमण्डला-न्तर्गत सुरेमनपुर-लच्छुटोला ग्रामे श्रीमहालक्ष्मीनारायण-यज्ञावसरे- सादरसमप्रितानि अभिनन्दन-पत्राणि-

सिद्धिसौन्दर्यसारश्रिया संस्कृता
बुद्धिवैशारदीवैभवाभ्यर्चिता।
चारुविच्छित्त्यवच्छिन्नवाचां प्रभा
कीर्तयत्यञ्जसा ते सुकीर्तिं वराम् ॥१॥
क्व तेऽस्त्युच्चता क्वास्ति मे वा नतिः
न कैङ्कर्ययोग्योऽस्म्यहं ते गुरो!
परं धार्ष्ट्ययोगादहं ते पदे
वसितुमीहे क्षमा क्रियतां मे प्रभो ॥२॥
दर्शनं ते प्रलब्धुं जनौघो महान्
कामनाकुं श्रतो वीक्षते ते पदम्।
वांछितार्थ-प्रलब्धि-प्रकारं वदन्
गायति प्रीतिभिस्ते यशो म ञ्जुलम् ॥३॥
मंगलानां निधे विघ्नसंहारक!
भावियोगापह प्रीतिमूल प्रभो।
यज्ञविद्यासमुद्धारबुद्धे गुरो!
दासमेनं दिशं प्रोन्नतेर्दर्शय ॥४॥
नास्ति विद्या मयि प्रीतियोगो न मे
भक्तिकमूलप्ररोहो न मे मानसे।
नास्ति वाचि प्रभा सेवितुं ते पदम्
किन्तु वांछामि तेऽनुग्रहं शक्तिदम्॥

श्रीमतां चरणाब्जरेणुरुषितः-
उपेन्द्राचार्यः (उमेश प्रसादोपाध्यायः)
कर्मकाण्डरत्नः, साहित्याचार्यः
संस्कृताध्यापाकः, उ० वि० बरिसवन
(भोजपुर)

देव्याश्रिया सह विभुर्भगवाननन्तो दृष्ट्वा च भागवतधर्मपरं यतीशम्।
तद्धर्मघोषणनिमित्तकपाञ्चजन्यं, शंखं प्रभुः स्वयमदात् तृणमण्डपेऽत्र ॥१॥
दृष्ट्वा विलक्षणसुविग्रहधारकं तं, किं तेऽत्रसाहसचयः कथमागतोऽसि।
इत्थं प्रच्छति मुनौ सुतिरोहितो यः, नारायणः स यतिना सह नित्यवर्ती ॥२॥

ग्रामे सुरेमनपुरे द्विजदेवभूमौ, गंगासुदक्षिणतटे यतिराट् त्रिदण्डी।
स्वीयाञ्जनानभिमतान् परिपातुमत्र शंखध्वनिम्प्रकुरुते तमहन्नमामि ॥३॥

नारायणी भगवती निजसोदरत्वं सम्यग्विचार्य निजसोदरभूतशंखम्।
साक्षद्रमा स्वयमदान्ननु विष्वगार्यम् तद्योगिवर्यचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥४॥

धन्या वयं यतिवराङ्घ्रिनिषेवणत्वात्,
मान्या वयं यतिवरेण्यसुवीक्षितत्वात्।
स्नेहप्रवर्षणपरस्य यतेः पदाब्जौ,
वन्दामहे परमभक्तिविरक्तिहेतू ॥५॥

सत्वप्रकर्षविभवाढ्यतया सुसिद्धाः, धर्मप्रचारणपराःपरितःप्रसिद्धाः।
सेनेशयोगिवर्यपुरतः समुपागतास्ते, सर्वे भवन्तियतिवीक्षणलाभसिद्धाः ॥६॥

श्रीमत्कपादपद्मपरागलोलुपः-
जगद्गुरुरामानुजाचार्यपदभाक् स्वामिवासुदेवाचार्यः,
'विद्याभास्करः' अध्यक्षः आयोध्यिककोसलेशसदनस्य।

सुधया तुलितं दयया वलितं,
तव तर्जनमप्यशिवस्य हरम्।
मृदुवाक्यवचो निचयैर्ललितै,
श्रुतिभावविवोधनवर्त्मपरै
र्हरसि प्रसभं तिमिरं सकलं,
प्रभया निजया तपसः शुभया।
गुरुवर्य्य ममाप्यशिवस्य वनं
हर हिंस्रनृशंसपशुप्रसृतम् ॥

पयसास्त्यशनं वसनञ्च मनाग्,
अपरिग्रह एव धनं सुमहत्।
श्रुतिवाचिरतिर्विरतिर्जगतो
ऽध्वरधूमवितानमतिर्निरतम्।
महनीयगुणाकर तिग्मरुचे
ऽभ्युदयोन्नतकन्दमहर्षिमणे।
चरितं निखिलं तव चित्रमयं,
कुरुनाथ कृपां स्वजनेऽनवने ॥

सदयं हृदयं सरसो निलयः,
प्रणतार्तजनस्य कृते विवृतः।
हिमवत्प्रतिमः सुयशोलसितः
सुकृतस्य च यो जगति प्रथितः।
वचनं सुकृतार्णववीचिनिभं
सुखसौख्यमणिप्रकरस्य गृहम् ॥
भुजचारुचतुष्टयमभ्रुविभः
स्मित-मुग्धमुखोधृतशंखकरः।

सहसालसितस्तवपर्णकुटीं,
स्वयमागमनेन हरिः कुरुते॥
महतीञ्च महत्त्वतरत्यमितां,
सुरदुर्लभभूमिमिवाप्रतिमाम्।

"उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते" ध्वनिं समुच्चरन् मुदा,
स्मितैर्लसच्चतुर्भुजः प्रकाश-पुञ्जपिञ्जरः।
कुटीरदेशमागतः प्रदाय शंखमुज्ज्वलं
तिरोऽदधात् क्षणेन ते गुरो त्विषं प्रकाशयन्॥
लक्ष्मीनारायणप्रख्ये लच्छूटोलापुरेऽध्वरे।
गुणबाणनभोनेत्रे घटनेयमजीघटत्॥

श्रीमतां विधेयतमः-
डॉ० कैलासपति त्रिपाठी,
साहित्यव्याकरणवेदान्ताचार्यः,
एम० ए०, पी० एच० डी०।
आचार्य एवं अध्यक्ष, साहित्य-विभाग,
संकायाध्यक्ष, साहित्य एवं संस्कृति संकाय,
सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय-वाराणसी।

अये स्वामिवर्य्य! त्वदीये पदाब्जे
मनोमामकीनं सदैवास्तुरक्तम् ।
विरक्तं जगज्जालतः स्तादमन्दं
निरालम्ब ईहेतमां ते कृपां ताम् ॥१॥

न कश्चिन्मदीयो जगन्मण्डलेऽस्मिन्
दया ते तरी मोहजालार्णवस्य ।
बहूनां कृतास्त्युद्धृतिस्ते पदाब्जै
रहञ्चापि यत्नेन तत्रैव गण्यः ॥२॥

उपायावली शास्त्रवृन्देनदत्ता
समुद्धारमार्गाश्च सद्भिः प्रणीताः ।
परं सर्वमेतद्विना ते कृपां तां
न सौकर्यसिद्धौ कथञ्चित् समर्थम् ॥३॥

महादिव्यदेशा अनेके प्रणीता
जनोद्धारमार्गेनितान्तं प्रसिद्धाः ।
कृपा लेशतस्ते दयालो सुकीर्तिं
प्रगायन्ति गाढां तवानन्तशक्तिम् ॥४॥

त्वया दिव्यदेशप्रकल्पो गृहीतो
जगत्ख्यातविप्रावली-मातृभूमौ ।
गुरो! कल्पनेयं क्रियावर्तिनीस्यात्
तदर्थं तवानुग्रहोऽस्त्यौषधं मे ॥५॥

श्रीतिरुवडि-चरमावधिदासः-
जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामिराजनारायणाचार्यः

सम्प्रवर्तकः
श्री त्रिदण्डिदेव लोकसेवा संस्थानम्
श्री लक्ष्मीवेंकटेश्वर देवस्थानम्
भक्तिवाटिका, कसया रोड, देवरिया
उ० प्र०

॥ ५॥

नहि साधनमस्ति जगज्जलधौ, सुतपौत्रसमन्वितदासकुले।
अतएव भवत्पदपोतमहं, यतिराज! समाश्रितवान् विमलम् ॥१॥
प्रणतास्पदमात्मजनैः प्रणुतं परिपूतपदाब्जयुगं प्रयतम्।
परमं पतितोद्धरणे प्रथितं प्रणुमो यतिराजमधोऽविरतम् ॥२॥
दशदिक्षु सदा विदितं सुधियं दिविषद्वरदारणदक्षधियम्।
दिनकृत्समदीधितिदीप्ततनुं यतिराजमहं प्रणमामि सदा ॥३॥,

मम मानसमध्यमरालविभो! मृड्माधवविश्वसृजात्मक भो!
मदमानमपास्य भवन्तमहं यतिराजगुरुं प्रणमामि सदा ॥४॥
बहुदोषयुतं तव पादनतं निजया करुणापरया सुदृशा।
सुविलोक्य हि मे सुतपौत्रजनं करुणाकर पावय राजगुरो ॥५॥

श्रीमतां पादपद्मभृंगः-

ज० गु० रा० दीनबन्धु दीनानाथाचार्यः व्या० सा० वेदान्ताचार्यः
शास्त्रार्थकेसरी, व्याख्यानवचस्पतिः, शास्त्रचूडामणिः उपाचर्यवरः
सं० सं० वि० वि० - वाराणसी।

॥६॥

आर्तत्राणपरायणे सुनिरतं ज्ञानाब्धिचन्द्रं प्रभुम्,
पाषण्डद्रुमभेदकं यतिवरं श्रीभाष्यकार-प्रियम्।
भक्ताभीष्ट-प्रदायकं ऋषिवरं वैकुण्ठदानेरतम्,
विष्वक्सेनपदारविन्दयुगलं नित्यं त्वहं संश्रये ॥१॥
सुरेमनपुरवासिनां सुखकरं यज्ञेन श्रीशार्चकम्,
श्रीमद्वैष्णवधर्मशिक्षणपरं वेदार्थसंरक्षकम्।
शेषाचार्यस्वरूपरूपममलं तत्वार्थचिन्तामणिम्,
विष्वक्सेनपदारविन्दयुगलं नित्यंत्वहं संश्रये ॥२॥

श्रुतं मयाकौतुकं त्वेकं यदागत्य नारायणस्तव कुटीरे
निशार्धकाले तव सन्निधौ हि आत्मीयशंखं प्रददात तुभ्यम् ॥३॥
त्वदीयपादाम्बुजदर्शनेन निर्धूतपापाः अतिपापग्रस्ताः
भवत्प्रसादाच्च भवन्ति क्षिप्रं श्रीवैष्णवाश्चाप्यथ मुक्तिभाजाः ॥४॥
देवापगायाः दिशि दक्षिणस्यां विराजते पर्णलताकुटीरे ।
ग्रामे सुरेमनपुरेऽत्र लक्ष्म्याः पतेश्च यज्ञेन विभान्वितो यः ॥ ५॥

श्रीस्वामिपादारविन्दपरागलिप्सुः-
ज० रा० स्वामिरामचन्द्राचार्यः
श्रीत्रिदण्डिदेवसेवाश्रम, राधाकृष्ण-मन्दिर
बेहटा-जंगल, शाहजहाँपुर

॥७॥

शेषोऽपि यद्वर्णनकर्मपारं न याति पारं सहसा तदानीम्।
महाविभूतेस्तु यतेर्हि मादृशैः जनैरवाच्यं भवति ह्यशंसयम् ॥१॥

तथापि तद्दत्तसुबुद्धियोगैः, विचार्य तेऽयं महतो महीयान् ।
अणोरणीयान् नहि चात्र संशयः, नमामि तत्पादयुगं वरेण्यम् ॥२॥

त्रिदण्डयोगेन यतीश्वरोऽयं, नारायणोऽस्तीह मनुष्यलोके ।
भक्ताय भद्रं स ददाति नित्यं नमो नमस्तेऽस्तु यतीश्वराय ॥३॥
एकाभिलाषास्ति शृणोतु तांवै, पुनः गयामेहि महाप्रभुस्त्वम् ।
इप्सन्ति ते पुण्यमयं सुदर्शं, कृपा विधेया मयि पापसिन्धौ ॥४॥

श्रीमतां चरण चंचरीकः-
अष्टदिग्गजेष्वनन्यतमः-
ज० गु० रा० स्वामी राघवाचार्यः
श्रीरामानुजाचार्य मठ, देवघाट, गया।

श्रीमदनन्तजगदार्यकृपैकपात्रम् श्रीरामकृष्णगुरुलब्धसमस्तबोधम् ।
श्रीमद्यतीन्द्रनिकरस्य च शीर्षरत्नम् सेनेशदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये ॥१॥
योऽष्टोत्तरीयशतदिव्यप्रदेशकेषु, गत्वा पदातिरिह भारतनामदेशे ।
सम्पूज्य तत्र विधिना हरिदिव्यमूर्तिम् काञ्च्या यतित्वमभजत खलु तं नमामि ॥२॥
योगप्रभावपरितप्तमनोज्ञदेहः ज्ञाता त्रिकालविषयस्य यतीन्द्रदेवः ।
श्रीवैष्णवत्वकृतसारप्रसारको वै, तं योगिराजशरणं ह्यनिशं प्रपद्ये ॥३॥
यत्पादपङ्कजविलोकनकर्मणा हि नूनं तु सौख्यमतुलं लभते पृथिव्याम् ।
भक्तस्य भद्रकरणे कुशलं यतीशं, एवं त्रिदण्डिमुकुटं सततं नमामि ॥४॥
तक्ष्मणास्यापरं देहं सेनेशाचार्यसद्गुरुम् ।
लक्ष्मणो भक्तिभावेन प्रणामामि त्रिदण्डिनम् ॥५॥

श्रीमतां दासानुदासः-
ज० गु० रा० स्वामीलक्ष्मणाचार्यः
अध्यक्ष, श्रीगजेन्द्रमोक्षदेवस्थानम्
साधुगाछी, हरिहरक्षेत्र, सोनपुर

मध्येनक्तमुपागतो यतिपतेः पर्णाश्रमं दिव्यना-
दृष्ट्वा स्वामिमहोदयो निजजनानाहूतवान् निद्रितान्।
तेष्वेकोऽपि यदा न आगत इहाश्चर्येण युक्तो यमी
दिव्यं सत्पुरुषं स्वयं यतिवरः सम्मानितः श्रद्धया ॥१॥

दिव्योऽसौ पुरुषोऽब्रवीच्छृणु यते यद्वच्म्यहं सांप्रतम्
क्लेशाधिक्यत्वदीयतीव्रतपसा जातः प्रसन्नोऽधुना।
यच्छाम्यद्य गृहाण हे गुरुपते मद्दत्तशंखोत्तमम्
इत्युक्त्वा क्व गतो महर्षिरपि तं नो दृष्टवानाश्रमे ॥२॥

प्रशंसयं शंखसुदानहेतोः समागतो दिव्यप्रकाशराशिः।
हरिर्हि साक्षान्नहि कश्चनान्यः एवं यतीशं प्रणमामि नित्यम्।
चातुर्मास्यविधेश्च मध्यसमये देवापगा श्रीयतेः
भक्त्या पादयुगं स्वनीरकरणैः प्रक्षालनायागता।
प्रस्पृश्यं त्वितरै स्वपादयुगलं बुध्येति यो नो ददौ-
ज्ञात्वा स्वेनियमे दृढं मुनिवरं हर्षान्विता साभवत् ॥४॥

गाङ्गेयोपचयं विलोक्य नियमी नौकाधिरूढोऽभवत्
हित्वा भैक्ष्यमहो हरेः पदयुगं ध्यात्वा समाधिं गतः।
पश्चात् ख्यातवरं शनैः सुरसरित् प्रत्यागता सा ततः
आश्चर्याधिकतां गता च जनता हर्षेण पूर्णाभवत् ॥

श्रीमतां चरणसरोज-भृङ्गः-
श्रीश्रीनिवासाचार्यः (पं. शिवपूजन त्रिपाठी)
शास्त्रार्थ-महारथी, शास्त्र-चूडामणिः
सम्मानितप्राध्यापकः
पटनासिटीस्थ रा० नि० दा० मुरारका
संस्कृतमहाविद्यालयस्य

काषायवस्त्रावृतदिव्यगात्रं
भालोर्ध्वपुण्ड्रं सुशिखोपवीतम्।
हस्ते त्रिदण्डं रुचिराम्बुपात्रं
योगीश्वरं तं सततं नमामः ॥१॥

अनुग्रहाद्यस्य च लप्स्यते जनो
ह्यभीप्सितं धान्यधनं च वैभवम्।
सुदर्शनं यस्य च भूरिभाग्यैः
योगीश्वरं तं सततं नमामः ॥२॥

उग्रोग्रं तपसः प्रभावमतुलं
दृष्ट्वैव सर्वे जनाः
आश्चर्याच्चकिता भवन्ति मुदिता
गायन्ति नित्यं यशः ॥३॥

स्वामिंस्ते महिमानुवर्णनविधौ
कोऽसौ समर्थो बुधः।
मन्ये भूमिरजांसि कोऽपि गणयेन्
न ते महिम्नां गतिम्ः ॥४॥

तवैव स्वामिनहमस्म्यनन्यो
नान्यः परः कश्चन मामकीनः।
प्रपन्नपालोऽसि महादयाब्धे!
ह्यङ्गीकुरु त्वं दययार्तमेतम् ॥५॥

श्रीमच्चरणचञ्चरीकः-
पं० मदन मोहन द्विवेदी,
व्याकरण-साहित्याचार्यः साहित्यरत्नश्च
बलियाजनपदीयवाजिदपुरवास्तव्यः

श्रिया भागीरथ्याः मधुमयतटे मण्डितमिदम्,
कुटीराणांस्तोमैः विततमखिलं मञ्जुलतरम् ।
श्रुतीनां श्रीवाचोध्वनिभिरमलैः संश्रितपदम्
न नम्यं केषां स्यात् युगपुरुष ते यज्ञभवनम् ॥१॥
वितानं धूमानां मनुमयमखैः रंजिततमम्,
सुराणामर्चायां प्रथितविधिना व्यापृततरम् ।
जनानामोघोऽयं क्रतुभुवनमभिक्रामति मुदा,
प्रभो ते पादानामसमहिमसौ हि विजयते ॥२॥
अतिप्रातः काले जननिवहराजिस्तवकुटीम्
समर्चासामग्रीविनिहितकरा पश्यतितमाम् ॥
तदा ते स्याद् रम्यं सुकृतलसितं दुर्लभतरम्,
सुरैरप्यभ्यर्च्यं विभवमहितं दर्शनमहो ॥३॥

गुरो ते सत्कीर्तेः प्रतननधिया दिव्यपुरुषः
द्युलोकादागत्य तव सदसि शंखं निहितवान् ।
सुराणां लोकेऽपि प्रथितसुकृताचारसुयशः,
स्थितिः संव्याप्नोति क्रतुविहितवाचां मधुरवैः ॥४॥

श्रीस्वामिचरणच्छ्रीकः-
रामसुरेश पाठकः, व्या० सा० धर्मशास्त्राचार्यः
लब्धस्वर्णपदकः छपरास्थसोहं संस्कृतविद्यालयस्य
प्रधानाचार्यः ।

तपो दीप्ते भाले सततलसितो विष्णुतिलकः,
द्विवस्त्रः काषायः धवल उपवीतः श्रुतिमुखः ।
त्रिभिर्दण्डैः कलिमलहराप्यात्रसहितः,
गुरो विष्वक्सेन जगति शतशरदो विजयताम् ॥१॥
सुधन्यो देशः सो भवति भवतां यत्र सुतपः,
व्रतं चातुर्मास्यं तदपि श्रीनारायणमखम् ।
सुयज्ञं सम्पन्नं त्रिविधसुखदं तापहरणं,
गुरो विष्वक्सेन जगति शतशरदो विजयताम् ॥२॥
श्रुतं सन्ताः स्वार्थे हिमगिरिगुहास्थाः तपरताः,
भवत्तुल्यो नैको जगजनजयार्थे तपरतः ।
कलौकीर्तनकारिन् तदनुभवपारिन् भवगुरो!
गुरो विष्वक्सेन जगति शतशरदो विजयताम् ॥३॥
त्रिभिर्दण्डैः देहे त्रिविधनरकद्वारप्रमुखम्,
रिपुं कामं क्रोधं भुवनविक्षितं लोभमपि च ।
कृतः शान्तो दान्तः जगजनकृते शंकरकृतः,
गुरो विष्वक्सेन जगति शतशरदो विजयताम् ॥४॥

गुरुवरदासानुदासः-
डा० द्विवेदी नागेशशास्त्री, व्यकरणाचार्यः
एम० ए०, पी० एचडी०, जी० ए० एम० एम०, एच०
पी० ए०, भू० पू० विहार देशीचिकित्सा निदेशक,
पटना ।

॥१३॥

दिव्यज्योतिर्विभाति कान्तितपनः ज्ञानप्रभा विन्दति,
शान्तं योगविचारनित्यनिरतं श्रीसम्प्रदाये रतम्।
विष्णोर्भक्तिपरायणं तु सततं कैवल्यमुक्तिप्रदम्।
शंखं चक्रददाति मन्त्रसहितं प्राप्तिपदं माधवम् ॥१॥

अतिस्पृहा यतिपते हृदये मदीये,
सत्यं वदामि मनसा वचसा सदाहम्।
अंघ्रौ प्रयच्छ मुनिपुङ्गव भक्तिशुद्धाम्
मायादिमोहरहितं कुरु मानसं च ॥२॥

श्रीमतां चरणाश्रितः-
पं० अम्बिका त्रिपाठी, साहित्यायुर्वेदाचार्यः।
भू० पू० प्रधानाध्यापकः, गोड़ारी (रोहतास)

॥१४॥

गीताज्ञानवितानकं मुनिवरं सम्पूर्णविद्यानिधिम्
वादीनां मतखण्डकं प्रतिदिनं विद्वद्वरैः सेवितम्।
त्रैकालज्ञमनन्तपादमधुपं शास्त्रार्थवादेरतम्
एवं श्रीयतिशेखरं प्रतिदिनं वन्दे त्रिदण्डीश्वरम् ॥१॥

चक्राब्जमण्डलविधिः रचिता प्रपत्ति-
मुक्तावलीश्च रचिता विशदार्थदात्री।
रम्या कृता सुरुचिरा किल मूर्तिपूजा
तं श्रीत्रिदण्डिनमहं शरणं प्रपद्ये ॥३॥
भागीरथी वहति चोत्तरपश्चिमे वै
वर्जासुरेमनपुरौ धनदौ हि पूर्वे।
श्रीलच्छुटोलसतरअपुरौ च दक्षे
मध्ये मखः सहज भाति महारमेशः ॥४॥

वर्षे सौम्ये पुनीते त्रिशरनभकरे भौमतः शुक्लपक्षे
आरभ्यैकादशीतः शनिदिवसमितमाश्विने पौर्णिमान्तम् ।
ख्यातं यज्ञं महान्तं सुकमलजनितेशान्वितम् पुरितं यैः
तं वन्दे देवदेवं प्रमुदितमनसा लोककल्याणहेतोः ॥५॥

विष्वक्सेनयतीन्द्रस्य त्रिदण्डीशमुनेः प्रभोः ।
सेवायां पद्यपुष्पाणि अप्रयति भुवनेश्वरः ॥

श्रीस्वामीपद-पङ्कजालिः-
भुवनेश्वर त्रिपाठी
व्याकरण-साहित्याचार्यो विशारदश्च
संस्कृताध्यापकः
राज्यसम्पो० श्रीरामनारायण संस्कृतोच्च विद्यालयः,
बरडीहाँ (रोहतास)

॥१५॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय, काषायाम्बरवासिने ।
शंखचक्रोपवीताय त्रिदण्डधारिणे नमः ॥१॥
गङ्गायाः दक्षिणेतीरे लच्छुटोलाभिधे तथा ।
भोजपुरे विहारे तु चातुर्मास्यं चकार वै ॥२॥
आजगाम महाविष्णुः शंखं स्थाप्य जगाम च
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वै योगिन् व्याजहार महाप्रभुः ॥३॥
वैष्णवानां हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।
महालक्ष्मीमखं चक्रे यतिराजो महामुनिः ॥४॥
वत्सगोत्रे समुत्पन्नः तिवारीडीहवासकः ।
अप्रयति सुरेशो वै पद्यपद्मचतुष्टयम् ॥५॥

श्रीमतां चरणाश्रितः-
सुरेश त्रिपाठी,
व्याकारण साहित्याचार्यः
ग्रामः- तिवारीडीह (रोहतास)

॥१६॥

नमः श्रियः सुपुत्राय, इन्दिराराधिने नमः ।
विष्वक्सेनं नमस्कृत्य, नमामि परमेश्वरम् ॥१॥
सुरेमनपुरे ग्रामे, गङ्गायाः दक्षिणे तटे ।
अत्रागत्य महास्वामी, रमामखं चकार वै ॥२॥
एकदा अर्धरात्रौ तु, आययौ इन्दिरापतिः ।
पा ञ्चजन्यं तु संस्थाप्य, निर्जगाम जगत्पतिः ॥३॥
त्रयोदशदिनं स्वामी, नौकायां संस्थितो यतिः ।
राजते सप्रराजो वै, पर्णकुटीरमस्तके ॥४॥
गर्ग-गोत्रे समुत्पन्नो, त्रिभुवनबुधात्मजः ।
उपेन्द्रनामको दासः, अप्रयति पद्या ञ्जलिम् ॥५॥

श्रीमच्चरण चञ्चरीकः-
उपेन्द्राचार्यः (उपेन्द्र नारायण शुक्लः)
कर्मकाण्डी, साहित्याचार्यः पौरोहित्याचार्यश्च
ग्रा० जतपुरा (गढ़वाँ)

॥१७॥

रामकृष्णार्यशिष्याय, पयोव्रतरताय च ।
पर्णकुटीनिवासाय, गीतोपदेशदायिने ॥१॥
नमः श्रीयतिराजाय, मायावादविनाशिने ।
अज्ञानतिमिरानाशाय कोटिसूर्यप्रकाशिने ॥२॥
भागीरथीदक्षिणे तीरे, निर्दुमे जनसंसदि ।
लच्छुटोला उत्तरे च, मखं चक्रे यतीश्वरः ॥३॥
आश्विने शुक्लपक्षे तु, राकापतिविराजिते ।
लक्ष्मीनारायणाख्यं वै, संपन्नं उत्तमोतमम् ॥४॥
कौशिकवंशजातोऽहं, श्रीकौशलबुधात्मजः ।
अशोकनामादासोऽयं, अप्रयति पद्याञ्जलिं ॥५॥

श्रीमच्चरणचञ्चरीकः-
अशोककुमार उपाध्यायः
साहित्याचार्यः, अयोध्या ।

॥१८॥

अभिनन्दन मैं क्या करुँ, हे अभिनय करतार।
महिमा तेरी न जान सका, यह सोता संसार॥
एकहत्तरवाँ चातुर्मास में, सुरेमनपरु मैदान।
माता गंगा स्वामी को, करत रहीं परेशान॥
स्वामी संग गंगा रहीं, अभिनय करत मास चार,
सताती रहीं स्वामी को, विपति को कीन-कीन।
धूत्योपासक श्रीस्वामी को जनाया नहीं,
माँ इन्दिरा घबड़ायी, भेजीं विष्णु को एक दिन॥
आधी रात आके विष्णु, श्री स्वामी को शंख दे,
कहा दर्शन मैं दूँगा फिर अवसर को चिह्न-चिह्न।
मेरे वत्स, अपने तू लक्ष्य से हटो न कभी,
कुटिया वह जाये बह जाने दो तृण-तृण।

॥२॥

बाजी बेर गंगा, तुझके बहुते सहायक हुई,
पानी के बनाके घृत, दी है इसने टीन-टीन।
अबरी बेर लाखों की, सम्पत्ति डुबाई है तो।
दस गुणा फिर, सम्पत्ति, पड़ेगी देनी गिन-गिन॥
सर्वदा यह पय को पिला, पाला है मातृवत्,
तो चाहती है "वसुसम" डुबाना तुम्हें चिह्न-चिह्न॥
'सिद्धेश्वर' यह अभिनय स्वामी गंगा का जाने मित्र,
कभी प्यार करती, कभी कष्ट देती बिन-बिन।
अभिनन्दन मैं क्या करुँ, हे अभिनयी सरकार।
यह अभिनय जाने तूहीं, हे श्री शेष अवतार॥

श्रीचरणाश्रितः-
सिद्धेश्वर पाठक,
साहित्याचार्य, एम० ए० बी० टी.
बिहार एवं भारत सरकार के
शिक्षा-विभाग से अवकाशप्राप्त,
ग्राम-बुधुआ, पो० जपला, पलामू

स्वामी महिमा बा राउर महान, पुरान वेद चर्चा करैं।
उर्ध्वपुण्ड्र भाल पर सोहै।
अमृतमय वाणी मन मोहैं॥
सोहै कर में त्रिदण्ड निशान, पुरान वेद चर्चा करैं॥ *स्वामी महिमा*
हे ऋषिवर यतीन्द्र संन्यासी।
दासन के उर अजिर निवासी॥
आये राउर शरन भगवान पुरान वेद चर्चा करे॥ *स्वामी महिमा-२*
आप की महिमा ईश से ऊँचा।
मानत वेद पुराण समुचा॥
शेष शारद करै शिव ध्यान पुरान वेद चर्चा करै॥ *स्वामी महिमा-३*
दशरथ राम राम कहि रामा।
रटत राम फिर गये सुरधामा॥
मुक्तिदाता हैं आप श्रीमान पुरान वेद चर्चा करैं। *स्वामी महिमा-४*
सेवरी मुनि मतंग अनुरागी।
सेवत साधु प्रेम रस पागी॥
मुक्त हो गयी, हुआ कल्यान पुरान वेद चर्चा करैं। *स्वामी महिमा-५*
गुरु की महिमा राम से भारी।
मुक्ति प्रदायक संत सुखारी॥
झुकै राउर चरन में जहान, पुरान वेद चर्चा करैं। *स्वामी महिमा-६*
अत्रि अंगिरा गर्ग परासर।
लोमस व्यास वशिष्ट राह पर॥
आप शुकदेव मुनि के समान पुरान वेद चर्चा करैं। *स्वामी महिमा-७*
आप की महिमा अगम अनंता।
शरण चरण आये भगवन्ता॥
करै मंगल सदा गुणगान पुरान वेद चर्चा करैं।
स्वामी महिमा बा राउर महान पुरान वेद चर्चा करैं॥८

प्रस्तुतिकर्ता:-
गंगा वष्णि, गदाधरश्रीवैष्णव दास
शान्तिवन, खिड़किया घाट-काशी

श्रीचरणों का उपासक
कवि मंगल यादव
चौकाघाट, काशी

॥ २०॥

शारदा शेष भी गा न सके, जिसकी महिमा बहु शब्दों में।
सद् गुण यश का कुछ गान करुँ, हे देव भला किन शब्दों में॥
सत् चमत्कार सब गाते हैं, गा निज को धन्य मनाते हैं।
दर्शन से होते धन्य-धन्य, दर्शन पा खूब अघाते हैं॥
हैं ज्ञात-भक्ति में जग-प्रसिद्ध, तपसी न आप सम दूजा है।
श्रीदेव त्रिदण्डि महाप्रभु की, करते विद्वद् जन पूजा हैं॥
बहुआरा, बिगहिया बरसिंघा, बहु गाँवों की जनता जागी।
सस्ते शब्दों की सुमनाञ्जलि, ले "सरस" समर्पित करता है।
दर्शन से होकर धन्य अहो, रिक्तता उसी से भरता है॥

श्री भगवच्चरणानुरागी:-
जनार्दन प्रसाद मिश्र
ग्रा०गड़ेरिया (बलिया)

॥ २१॥

लक्ष्मीटोला में लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम आकर दर्श दिये।
बोले उठो प्यारे यतिवर! दर्शन पाकर फिर बोल उठे।
आओ देखो लक्ष्मीप्रपन्न प्रभु दरश से जीवन सफल करो।
पर सभी योगमाया के वश में पड़े हुए बेसुध अहो।
प्रभु पाञ्चजन्य शंखाधिपति को छोड़ गये दर्शन प्रतीक
भक्तावली दर्शन करते फिर प्रभु कृपा देव की बरस रही॥
जलयात्रा में शिवदेव स्वयं अश्वारोही की चमक देख।
युगल अश्व पर नाच रहे मानो शिव सुधा कलश को रख
जिन चरणों के पावन प्रसाद से हरिहर क्षेत्र सभा में भी।
विजयी हो पाये महामहिम से पदक रजत सर्वोच्च मही।
उन पद रज में नतमस्तक को बस यही याचना है यतिवर
इस दास दयाशंकर पर भी हो कृपा दृष्टि मेरे गुरुवर॥

चरण-चञ्चरीक:-
दयाशकर राय
सहायक शिक्षक उच्च विद्यालय
सिमरी, बक्सर
(भोजपुर)

सुरेमनपुर नगर के पावन भइली भूमिया।
जहाँ स्वामी जी दिहनी पधार हो।
गेरुआ वसन से ढकली बदनिया।
उर्ध्वपुण्ड्र सोहेला लिलार हो ॥टेक
नर और नारी नयन भरी निरखेलन।
श्रीवैष्णव के सरताज हो ॥
अष्टदिग्गज जगत्गुरु सब अइलन।
संगवा में संत अपार हो ॥टेक
गंगा मईया के पुनवा छछइली। जे पईया लिहली पखार हो ॥
तेरह दिनवाँ तक नइयापर रहलीं
साँपवा कइलन रखवार हो ।टेक
शँखवा दिहनी प्रभुजी आके आधी रतिया।
देखेलन भक्त अपार हो।
लक्ष्मीप्रपन्न के रऊआ बोलवनीं।
तब नारायण गइनी लुकाय हो ॥टेक
जय-विजय दू गो बाड़न पहरूआ।
रऊए हईं विशनु अवतार हो
कृष्ण कान्त ठाढ बाड़े रउरे हुअरिया। विनती करेलन बार-बार हो
सुरेमनपुर नगर के पावन भइली भूमिया....

चरणचञ्चरीक:-
कृष्णा कान्त दूबे, शास्त्री
कृष्णप्रपन्न रामानुज श्रीवैष्णवदास
ग्राम-सिसिरीत
पो०-सिसिरीत (भाया नोखा)
जिला-रोहतास

The most ardent adherent of the Bhagwad Geeta's philosophy!

The one central idea in the Geeta is "Work incessantly, but be not attached to it." Swamijee! it is needless to emphasize that your long and glorious life is a singular and spectacular example of this theory.

The most powerful awakening exponent of the nation!

Sir, if any thing at all, the only ambition of your most pious life has been to lead us all to a horizon "where the mind is without fear and the head is held high; where knowledge is free; where the world has not been broken up into fragments by narrow domestic walls; where words come out from the depth of truth; where tireless striving stretches its arms towards perfection; where the clear stream of reason has not lost its way into the dreary desert of dead habit; where the mind is led forward into ever-widening thought and action" by your ever-lasting preachings.

Craving for your benevolent mercy,

I remain,
Sir,
Your most humble servant,
Jang Bahadur Pandey,
M. A. (English), Dip-in-Ed.
Retired Teacher, Zila School Arrah
(Bhojpur)

वन्दनीय महामानव ।

आप करुणा के सागर एवं परोपकार के आगार हैं। आप के चारु व्यक्तित्व में सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् के सदैव दर्शन होते रहते हैं। आपकी वाणी में यदि एक ओर वीणावादिनी का सतत् सुधावर्षी स्वर-प्रवाह है तो दूसरी ओर आपके नेत्रों में निर्भीकता, तेजस्विता एवं करुणा का मणिकांचन संयोग ।

सनातन धर्म-संरक्षक !

आप सनातन धर्म के संरक्षक ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति के पोषक, रक्षक एवं संवर्धक भी हैं । आपका जीवन त्याग, तपस्या एवं साधना का जीता-जागता स्वरूप है और आप हैं भक्तों पर निर्हेतुक दया करने वाले संत शिरोमणि । आज के इस युग में त्याग एवं तपस्या का मणिदीप सजाकर आपने कलियुग के लक्ष-लक्ष प्राणियों का उद्धार किया है। यह आप जैसे योगिराज की तपस्या का ही प्रतिफल है कि आज भी धर्म की ध्वजा फहरा रही है और धरा पर सत्य, न्याय, करुणा, नीति एवं मर्यादा का अस्तित्व बना हुआ है। 'संत हृदय नवनीत समाना' की उक्ति आज भी आप सचमुच चरितार्थ कर रहे हैं। आपके दर्शन मात्र से ही तापत्रय से संत्रस्त जीव समृद्धि की गोद में विश्राम लेने लगता है। आपके व्यक्तित्व में यदि नगाधिराज की विशालता है तो सागर की गहराई भी।

दीन-हीन-जन-उद्धारक यतिराज!

आज सर्वत्र ही पापाचार, व्यभिचार, अनाचार, दुराचार, अनीति, अन्याय एवं शोषण का बाजार गर्म है। पृथ्वी पर रहनेवाले समस्त प्राणी आज घुटन की स्थिति से गुजर रहे हैं। न्याय, दया, करुणा, प्रेम, नीति एवं धर्म का जनाजा निकला जा रहा है।

आप जैसे यतिराज के सान्निध्य का संस्पर्श पाते ही भौतिकता की मृग मरीचिका से दबा हुआ हमारा मन दिव्यालोक से आलोकित हो उठा है। आप आज स्वामी रामानुजाचार्य की भाँति बड़े विरोधी विचारों के प्रलयंकारी प्रभंजनों से हमारे धर्म एवं संस्कृति की रक्षा कर रहे हैं। आपकी तपस्या एक के लिए नहीं, बल्कि सर्वजनसुखाय एवं सर्वजनहिताय है।

अलौकिक योगिराज!

आप योगिराज तो हैं ही साथ ही समदर्शी भी हैं। आपकी समदर्शिता का ही हमें पूर्ण भरोसा है। "आँखियाँ हरिदर्शन की प्यासी" की तरह हम आपके दर्शन हेतु लालायित हैं। विदाई की इस कारुणिक बेला में हमारा कंठ अवरुद्ध एवं वाणी मूक हो चली है। हमारी स्थिति 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' से भिन्न नहीं। समझ में नहीं आता कि हम आपका अभिनन्दन करें तो कैसे ? पर हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास भी है कि आप हम अकिंचनों की अभ्यर्थना अवश्य ही अंगीकार करेंगे और हमें अपना कृपा पात्र बनाए रखेंगे। अन्ततः आनन्दकन्द सच्चिदानंद से हमारी यही प्रार्थना है कि आपका जीवन स्वस्थ एवं मंगलमय हो।

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक गुरु घनश्याम हित, चातक मधेश दास॥

भवदीय चरण-चंचरीक
मधेश्वर सिंह
एम० ए० पी० एच० डी०
प्रधानाचार्य
मगध विश्वविद्यालय, प्रांगण उच्च विद्यालय बोधगया।

आर्य-गण के उन्नायक महामुने!-आर्यावर्त का यह प्रांगण सम्पन्नता में अग्रणी इस अर्थ में सदा रहा है कि यहाँ भगवान् एवं उनके पार्षदों ने अवतार ले अमर संदेश दिया है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामभद्र, लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र, भक्त-भयहारी नृसिंह, दैवी सम्पदाधिरक्षक बटुवामनादि एक ओर, तो अम्बा श्रीसीता, राधा, रुक्मिणी, गोदा आदि दूसरी ओर तथैव सिंहासनावतार श्रीयामानुचार्य स्वामी, शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य स्वामी, श्री वरवरमुनीन्द्र प्रभृति आर्य-धर्म के संरक्षण के लिए आये। उस महनीय परम्परा के अनुपम रत्न-स्वरूप श्रीमान् वैकुण्ठ-सेनापति के अवतार हैं; परमाचार्य अनन्त श्रीसमलङ्कृत भगवदनन्तदेव के दुलारे सेनापति हैं। पाखण्ड-वाद पर आपके जय-निनाद ने सनातन धर्मावलम्बियों के मस्तक को गर्वोन्नत किया है। सम्पूर्ण आर्य-जाति आपका ऋणी है।

यज्ञावतार! यज्ञपुरुष! -यज्ञ सभी युगों में धर्म-मान्य, धर्म-आदृत रहा है और विविध प्रकार से सम्पन्न हो अक्षय फल देता रहा है; पर ग्राम्य जीवन में साधनाभाव के चलते यज्ञ-प्रभा उत्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी; लेकिन स्वत: जब वैकुण्ठ के सेनापति ही त्रिदण्ड लहराते हुए गंगा सरयू, शोण-कोकिला, अद्रि-पुनपुन आदि के तट पर यज्ञराधन का संकल्प ले विचरने लगे; तो फिर अमीर-गरीब, राजा-रंक सब एक होकर यहाँ तक कि हिन्दुओं के अलावे, मुस्लिम और इसाई भी द्रव्ययज्ञ में जुट गये और कभी-कभी तो मानवेतर भी अपना सहयोग दे हाथ बटाने लगे। आज साक्षात् यज्ञ-पुरुष को पाकर सुरेमनपुरलच्छूटोला एवं इर्द-गिर्द का जनसमुदाय हर्षोल्लास के विपुल तरंगों पर तरंगायित हो रहा है!

अटल व्रतधारी! -श्रीमान् की तप-साधना में गांगेय भीष्म की दृढ़ता है। काया दिनोंदिन घटती जा रही है, शारीरिक शक्ति क्षीण

होती जा रही है; पर तप-मार्ग पर बढ़ते बूढ़े पाँव में गजब की दृढ़ता बढ़ती जा रही है। एक ओर गंगा की भयावह लहरें फुफकार रही हैं, सुरेमनपुर की, गंगा से सर्वतो आक्रान्त भूमि का खण्ड गंगा का ग्रास हो रहा है, काले उमड़ते मेघों से मूसलाधार वर्षा हो रही है, हुंकार मारता पवन तूफान ला रहा है; पर 'रक्षिष्यतीतिविश्वासः' वैष्णवता की इस असली पहचान के मूर्तिमन्त रूप श्रीमान् को प्रकृति के उद्दाम उद्वेग ने क्या थोड़ा भी विचलित किया ?-कदापि नहीं। ऐसे निर्भय व्रतधारी के पद्म-तुल्य श्रीचरणों में शत-शत अभिनन्दन है!

कारुण्य-सिन्धो! सुरेमनपुरा लच्छूटोला एवं अन्य पार्श्ववर्त्ती गाँवों के हम ग्रामीण जन न संत सेवा के लिए रीति ही जानते और न समर्थ ही हैं। हम गंगा की गोद में भी रहकर भौतिकता-ग्रस्त हैं। श्रीमान् के सम्मुख हमने अगणित त्रुटियाँ की हैं। आज जब विदा की बेला नजदीक आ रही है तो हमारा पश्चाताप भी दुगुना होते जा रहा है। एक निश्छल योगी, एक कारुणिक आचार्य, एक विलक्षण त्यागी, एक अद्वितीय मार्ग-दर्शक श्री वैष्णवकुलभूषण को हम अनाड़ी न समझ सके और न क्षणभर अनुकूल मार्ग पर चल सके।

बार-बार यही स्तुति कर रहे हैं कि हे करुणा-सिन्धो! हम पतित भी तो आपही के हैं, शरणागते हैं। प्रभो हमें अपना बना लें।

समर्पक-
श्रीमहालक्ष्मीनारायण यज्ञसमिति,
सुरेमनपुर-लच्छूटोला
भोजपुर

अहो, गंग सुगंग के भाग्य महा निज अंक में ले हलरावत है।
तरणि में लसै जनु लाल कमल मलयानिल पद सहलावत है।
रवि-किरण छनी छम्-छम् लहरें शुभ मंगल गान सुनावत हैं।
चाँदी-घट से जनु चन्द्र-कला अमृत-सीकर बरसावत है॥
नयनों में नवल अनुराग भरे यति- रूप निहारन धावत हैं।
जहँ नाचत सब ऋद्धियाँ सिद्धियाँ वीणा-मुनि ताल बजावत हैं।
अंकाश्रित बेबुध बालक-सा मुख-चन्द्र-छटा-सुख पावत है।
जन नाथ अकिंचन शरणागत तव मंगल सतत् मनावत है।

काञ्चीपुराकाशप्रकाशभानोः
देवस्य तेजोभिः अनन्तनाम्नः।
सम्पुष्टकञ्चस्य प्रहर्षहेतोः
नौमिप्रभापूर्णं ह्यनन्तदेवम्॥

श्रीचरणाश्रितः-
डॉ० सुदामा सिंह
एम० ए० पी० एच० डी०
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
श्रम एवं समाज कल्याण विभाग
म० वि० वि०-बोधगया

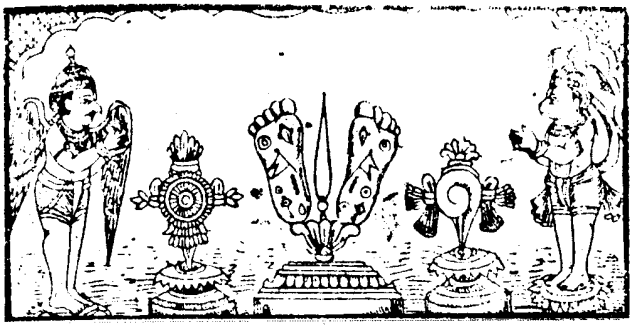
संक्षिप्त विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
श्रीवैष्णवलक्षण निरूपण	३	श्रीनारायणका प्रभुत्व०	१४३
श्रीवैष्णवों का भेद०	७	श्रीरामजीसे वरुणकी शरणागति	१५०
भगवत् शब्दार्थ	८	अतिथि लक्षण	१५४
दासान्तनम०	११	रावण का मस्तक छेदन	१७७
सूत्रका लक्षण०	१५	विभीषणका पुरुषकार०	१७८
कलाकाष्ठा लक्षण०	१९	द्वादशोर्ध्वपुण्ड्र का निरूपण	१८५
कर्मका भेद तथा फल०	२६	शिशुपाल की सायुज्यमुक्ति	१९३
राग-द्वेष अहंकार, लक्षण	३०	इक्कीस नरकों का निरूपण	१९६
आचार्यका लक्षण०	३१	मुक्तजीव का जन्ममरणाभाव०	२१३
ईश्वर, भागवतका लक्षण०	३२	जटायु का तन त्याग	२२३
बद्धजीव विभूति, निरूपण	३५	चिन्तयन्ती गोपी का तनत्याग	२२४
देवयोनि मनुष्ययोनि भेद	३९	तीर्थों का प्राचीनत्व०	२४५
साष्टाङ्ग प्रणामका फल	४४	रहस्यत्रय का विवरण-क्रम	२५१
केवलका स्वरूप	५३	चरमश्लोक का अन्तर्भाव	२५८
आचार्य, गुरु, का स्वरूप०	५५	संसाररूप सर्प-विषकी अपूर्व दवा	२६२
धर्मका स्वरूप०	६५	वेद तथा शाखा निरूपण	२६८
शरीरसे भिन्न आत्मा०	६९	परमात्मा जीवात्मा का भेद	२७१
अष्टाक्षरमन्त्र का स्वरूप०	७१	जीवक भेद निरूपण	२७५
जीवगमनमार्ग	७६	विभूति निरूपण	२८१
जीवात्मा, परमात्मा-सम्बन्ध०	७६	पापों से भक्तोंका भयाभाव०	२९२
मूलमन्त्रार्थ निरूपण	८०	दृप्त, आर्त्त, प्रपन्न लक्षण	२९९
लक्ष्मण का शेषत्व धर्म०	९५	त्रिदण्ड ग्रहणमें प्रमाण	३०६
भरतजीका पारतन्त्र्य धर्म०	९७	विश्वामित्रकी सृष्टि	३११
भागवत सेवाकी श्रेष्ठता०	१००	संन्यासी का स्वरूप	३१४
सीताजी का शेषत्व धर्म०	१०१	गुरुके पुत्रोंमें तद्भावनिरूपण	३२५
वेदमें स्त्रीशूद्रानधिकार०	११२	भूत, प्रेत, पिशाच की सत्ता०	३३२
चरमश्लोक का अपूर्व अर्थ०	१२७	विभीषण की शरणागति	३४२
द्वय मन्त्रका स्वरूप०	१३१	संन्यासीको शुक्ल वस्त्रनिषेध	३५१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
माधूकरी भिक्षा-निरूपण	३५७	वेदमें रामावतार वर्णन	५६४
यतिको जूता धारणप्रमाण	३६०	वेद में कृष्णावतार	५७७
त्रिदण्डका स्वरूपनिरूपण	३७०	समाधिका स्वरूप	५७८
शिष्यका लक्षण	३८२	निषिद्धानुष्ठान का स्वरूप	६००
सेतुबन्ध का वर्णन	३८२	शरीर, १४ भुवनका वर्णन	६२७
अठारहवीं गाथा	३८६	ईषणा, अधिकारी, का वर्णन	६२९
गुरु में नारायण भाव	३९२	विरजा नदीका स्थानवर्णन	६३४
जीवकी परतन्त्रता में प्रमाण	४१७	भक्तिका भेद-वर्णन	६४०
आदि भरतका चरित्र वर्णन	४२४	दूतका लक्षण	६४५
सीताजी की वियोग-वार्ता	४२८	शास्त्र, वेद, वर्णोंकी संख्या	६६५
सीताजी को अँगूठीप्रदान	४३३	पचीस तत्व का वर्णन	६६५
वाटिकामें त्रिजटाकी बात	४३३	माङ्गल्यसूत्रका स्वरूप	६६७
श्रीसीताजी की प्राप्ति०	४३७	वासना तथा जीवन्मुक्तका०	६७१
बद्ध तथा केवल का निरूपण	४५२	पुराणादिसे वेदका उपबृंहण०	७०३
निभीषण की वार्ता०	४५९	व्याप्ताकाशे दशकका वर्णन	९१७
शिशुपाल का अपराध०	४६४	पद्मासनका स्वरूप	७२१
यशोदासे कृष्ण-वन्धन	४६८	ब्रह्मानन्दवल्ली	७२१
भक्तों के लिये यमराजकी उक्ति	४८६	भृगुवल्ली	७२४
भागवतापचार, असह्यापचार०	४८८	पुरुष सूक्त का वर्णन	७२६
विषय और विषमें अन्तर०	५००	भागवत का शंख बजाना	७२७
अर्चिरादिमार्गका०	५०५	द्वादशनाम निरूपण	७३१
नास्तिकास्तिकनिरूपण	५२३	ग्रन्थिमत्सूक्ष्मह्ववरज्जुः	७३४
आत्मापहार का दोष	५२४	संन्यासियों के अन्तिम संस्कारकी-	
भगवत् भक्तनिरूपण	५२८	विधि	७३६
कैकेयी का अपचार,	५३५	श्रीमदनन्ताचार्य स्वामीजी की प्रपत्ति	७४९
दशरथ का मोक्षाभाव	५३६	मङ्गलाशासन	७५०
उर्ध्वपुण्ड्र करने में प्रमाण	५६१	सुप्रभातम्	७५१



श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य
श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य-सत्संप्रदायाचार्य श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ट
जगद्गुरुभगवदनन्तपादीय श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य
श्रीत्रिदंडीस्वामी जी महाराज ।



॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः

❋ अथ वार्तामाला ❋

अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता

मू०-कस्यचिदपेक्षितं स्वरूपोपायपुरुषार्थज्ञानमिदमेव श्रीवैष्णवानां संसारिणां चापेक्षितं श्रीवैष्णवानां स्वज्ञान-प्रापकज्ञानप्राप्यज्ञानैः फलं भविष्यति, संसारिणामज्ञानान्य-थाज्ञानविपरीतज्ञानैः फलमागतं संसारिणो देहाभिमानं स्वरूपं देहानुभवं फलं देहव्यापारं साधनमध्यवस्यन्ति। अत्रैतन्निष्ठाः श्रीवैष्णवा भगवच्छेषत्वं स्वरूपं भगवत्कैंकर्यं फलं तत्पुरुषार्थसिद्ध्युपायं भगवच्चरणनलिनयुगलमध्य-वस्यन्ति। अत्रैतन्निष्ठाः स्वरूपमनन्यार्हं परस्वरूपं मिथुनं विरोधिस्वरूपमहङ्कारः, उपायस्वरूपं तत्कृपा फलस्वरूपं तद-भिमतवृत्तिः, मिथुनोत्पन्नज्ञानानन्दावाकारः प्रीतिः सत्ता भोगे ऽन्वय इति श्रीकृष्णपादस्य वार्ता ॥१॥

अर्थ०— श्रीरङ्गनाथस्तुतिः—

श्रीस्तनाभरणं तेजः श्रीरङ्गेशयमाश्रये ।—
चिन्तामणिमिवोद्भान्तमुत्सङ्गेऽनन्तभोगिनः ॥ १ ॥

लक्ष्मीस्तुतिः—

नमः श्रीरङ्गनायक्यै यद्भ्रूविभ्रमभेदतः ।
ईशेशितव्यवैषम्यनिम्नोन्नतमिदं जगत् ॥ २ ॥

विष्वक्सेनस्तुतिः—

श्रीरङ्गचन्द्रमसमिन्दिरया विहर्तुं
विन्यस्य विश्वचिदचिन्नयनाधिकारम् ।
यो निर्वहत्यनिशमङ्गुलिमुद्रयैव
सेनान्यमन्यविमुखास्तमशिश्रियामः ॥ ३ ॥

रामानुजाचार्यस्तुतिः—

यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्म—
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धो
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णपादस्तुतिः—

श्रीकृष्णपादपादाब्जे नमामि शिरसा सदा ।
यत्प्रसादप्रभावेन सर्वसिद्धिरभून्मम ॥ ५ ॥

श्रीवार्तामालाकार—**प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः। प्राप्त्युपाय प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधि च॥ वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः। मुन महात्मानो वेदवेदार्थवेदिनः॥ हारीतसंहिता०॥**

प्राप्यब्रह्मका स्वरूप, तथा प्राप्तजीवका स्वरूप, और प्राप्तिके उपायस्वरूप फलस्वरूप अर्थात् पुरुषार्थ स्वरूप, और विरोधिस्वरूप, इन पाँच ग्रर्थोंको र इतिहास पुराणोंके साथ वेद और वेदार्थ जाननेवाले महात्मा मुनि सब कहते हैं हारीत संहिता के वचनानुसार सर्वप्रतिपाद्य अर्थपञ्चकज्ञानको श्रीवैष्णवों के उज के लिये श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की सूक्ति के द्वारा कहते हैं, कि—(कस्यचित्) के (अपेक्षितम्) अपेक्षित (स्वरूपोपायपुरुषार्थज्ञानम्) स्वरूपोपाय पुरुषार्थ ज्ञ और (इदम्) यह जो आगे ज्ञान कहेंगे यही (एव) निश्चय करके (श्रीवैष्णवा

श्रीवैष्णवों के (च) और (संसारिणाम्) संसारीजीवोंके (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। (श्रीवैष्णावनाम्) श्रीवैष्णवोंके (स्वज्ञानप्रापकज्ञानप्राप्यज्ञानैः) स्वस्वरूपज्ञान, तथा प्रापकस्वरूपज्ञान, और प्राप्यस्वरूपज्ञानद्वारा (फलम्) फल (भविष्यति) होगा और (संसारिणाम्) संसारी जीवोंके (अज्ञानान्यथाज्ञानविपरीतज्ञानैः) अज्ञान, तथा अन्यथाज्ञान, और विपरीतज्ञानद्वारा (फलम्) फल (आगतम्) प्राप्त हुआ है, (संसारिणः) संसारी जीवका (देहाभिमानम्) देह में अभिमान करना (स्वरूपम्) अपना स्वरूप है, तथा (देहानुभवम्) देह का अनुभव करना (फलम्) फल है, और (देह व्यापारम्) शरीरका व्यापार (साधनम्) साधन है, (अध्यवस्यन्ति) ऐसा निश्चय करते हैं। और (अत्र) यहाँ पर (एतन्निष्ठाः) इस मार्ग में (निष्ठ) तत्पर (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (भगवच्छेषत्वम्) भगवान् की शेषता (स्वरूपम्) अपना स्वरूप है, तथा (भगवत्कैंकर्यम्) भगवान् का कैंकर्य (फलम्) फल है, और (तत्पुरुषार्थसिद्धयुपायम्) चेतनके पुरुषार्थसिद्धिका उपाय (भगवच्चरणननलिनयुगलम्) भगवान् के दोनों चरणारविन्द हैं, (अध्यवस्यन्ति) ऐसा निश्चय करते हैं। (अत्र) यहाँ पर (एतन्निष्ठाः) श्रीवैष्णवनिष्ठजन (स्वरूपम्) स्वस्वरूप (अनन्यार्हम्) भगवान् से अन्यके योग्य नहीं है तथा (परस्वरूपम्) परस्वरूप (मिथुनम्) लक्ष्मी और नारायण ये दोनों हैं, क्योंकि शक्ति के बिना शक्तिमान् नहीं होता है। (विरोधिस्वरूपम्) और विरोधिस्वरूप (अहङ्कारः) अहङ्कार है, (उपायस्वरूपम्) उपायस्वरूप (तत्कृपा) उनकी निर्हेतुकदया है, (फलस्वरूपम्) तथा फलस्वरूप (तदभिमत-वृत्तिः) उनके अनुकूल रहना है, (मिथुनोत्पन्नज्ञानानन्दौ) स्वरूपोपाय, तथा पुरुषार्थ इन दोनों से उत्पन्न ज्ञान, तथा आनन्द (आकारः) आकारस्वरूप है, (प्रीतिः) भगवान् में प्रीति है, वही (सत्ता) आत्मसत्ता की सम्पादिका है। इससे (भोगे) भोग में (अन्वयः) अन्वय है। (इति) ऐसी (श्रीकृष्णपादस्य) श्रीकृष्णपादस्वामीजी की (वार्ता) वार्ता है। इस वार्ता के छठवें पदमें वैष्णव शब्द आया है इससे यह प्रश्न होता है, कि वैष्णव किसको कहते हैं। इस प्रश्न का उत्तर देखिये पद्मपुराण में लिखा है कि–

हिंसादम्भकामक्रोधैर्वर्जिताश्चैव ये नराः। लोभमोहपरित्यक्ता ज्ञेयास्ते वैष्णवा द्विज॥ पाद्मपु० ब्रह्मखं० ४, अध्या० १, श्लो० ॥२१॥ पितृभक्ता दयायुक्ताः सर्वप्राणिहितेरताः। अमत्सरा वैष्णवा ये विज्ञेयाः सत्यभाषिणः ॥२२॥ विप्रभक्तिरता ये च परस्त्रीषु नपुंसकाः। एकादशीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥२३॥ गायन्ति हरिनामानि तुलसीमाल्यधारकाः। हर्यङ्घ्रिसलिलैः सिक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः॥२४॥ श्रोत्रयोर्मस्तके येषां तुलस्याः पर्णमुत्तमम्। कर्हिचिद् दृश्यते विप्र विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः॥२५॥ पाखण्डसङ्गरहिता विप्रद्वेषविवर्जिताः। सिञ्चेयुस्तुलसीं ये च ज्ञातव्या वैष्णवा नराः ॥२६॥ पूजयन्ति हरिं ये च तुलस्या चार्चयन्ति ये।

कन्यादानरता ये च ये वै ह्यतिथिपूजकाः ॥२७॥ शृण्वन्ति विष्णुचरितं विज्ञे वैष्णवा नराः। यस्य गृहे सुप्रतिष्ठेशालग्रामशिलापि च ॥२८॥ मार्जयन्ति हरेः स्थ पितृयज्ञप्रवर्तकाः। जने दीने दयायुक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः॥२९॥ पर ब्राह्मणद्रव्यं पश्यन्ति विषवच्च ये। हरिनैवेद्यं येऽश्नन्ति विज्ञेया वैष्णवा जनाः॥३ श्रीकृष्णपुरतो ये च दीपं यच्छन्ति श्रद्धया। परनिन्दां न कुर्वन्ति विज्ञेयास्ते वैष्णवाः॥३१॥

हे द्विज! हिंसादम्भ काम क्रोध लोभ मोह से जो मनुष्य रहित हों उनको वैष जानना॥२१॥ पितृभक्त, दयायुक्त, सब जीवों के कल्याण में रत, मत्सर रहित, स बोलनेवाले, जो हों उनको वैष्णव जानना॥२२॥ और ब्राह्मण की सेवा में रत द की स्त्री में नपुंसक, और एकादशी व्रत में जो रत हों, उनको वैष्णव जानना॥२ जो हरि के नामों को गाते हैं, तथा तुलसी का माल्य धारण करते हैं, और नारा के चरणामृत से अपनी आत्मा को सींचते हैं, उनको वैष्णव जानना॥२४॥ हे ब्राह्म जिनके कान और सिर पर पवित्र उत्तम पत्र तुलसी का कभी दिखाई दे उनको वैष जानना॥२५॥ पाखण्ड सङ्ग रहित तथा ब्राह्मण के द्वेषसे रहित, और जो तुलसी प हैं, उनको वैष्णव जानना॥२६॥ जो लोग तुलसी दल से भगवान् की पूजा करते तथा कन्यादान में रत हैं, और अतिथि पूजक हैं॥२७॥ जो श्रीविष्णु के चरित सुनते हैं, और जिसके घरमें शालग्राम की शिला स्थित हो, उनको वैष्णव जानना॥२ श्रीहरि के स्थान को जो मार्जन करते हैं, तथा पितृयज्ञ प्रवर्तक हैं, और दीनजनों ऊपर जो दयायुक्त हैं, उनको वैष्णव जानना॥२९॥ जो दूसरे के धन, और ब्राह्म के द्रव्य को विष समान देखते हैं, और भगवान् को भोग लगाकर भोजन करते उनको वैष्णव जानना॥३०॥ और जो श्रीकृष्ण भगवान् के सामने दीपदान श्रद्धा करते हैं, तथा दूसरों की निन्दा नहीं करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥३१॥ और लिखा है कि—

हिंसाधर्माद्विनिर्मुक्ता यस्य विष्णौ स्थिता मतिः। शङ्खचक्रगदापद्मं नित्य धारयेत्तु यः। पाद्मपु० उत्तर खं० ६, अध्या० ६८, श्लो० ६॥ तुलसीकाष्ठजां मा कण्ठे वै धारयेद्यतः। तिलकानि द्वादशधा नित्यं वै धारयेद्बुधः॥७॥ धर्माधर्म जानाति यः स वैष्णव उच्यते। वेदशास्त्ररतो नित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकः॥८॥

हिंसात्मक धर्म से जो रहित हो, तथा जिसकी मति विष्णु में स्थित हो, जो नित्य शङ्ख चक्र गदापद्म को धारण करता हो॥६॥ और गले में तुलसी के काठ बनी हुई माला को, तथा द्वादश अङ्गोंमें द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलकको, जो ज्ञानी धा करता है॥७॥ और जो धर्म तथा अधर्म को जानता है, तथा वेद शास्त्र में नित्य

क्त है, और हमेशा जो यज्ञाचार्य है, उसको वैष्णव कहते हैं।।८।। और भी लिखा है कि–

शौचसत्यक्षान्तियुक्तो रागद्वेषविवर्जितः। वेदविद्याविचारज्ञो यः स वैष्णव उच्यते।। पाद्मपु० उत्तर खण्ड ६, अध्या० ८२, श्लो०४।। अग्निहोत्ररतो नित्यं नित्यं चातिथिपूजकः। पितृभक्तो मातृभक्तः स वै वैष्णव उच्यते।।५।। दयाधर्मेण संयुक्तस्तथा पापपराङ्मुखः। शङ्खचक्राङ्कितो यो वै स वै वैष्णव उच्यते।।६।। कण्ठे मालाधरोयस्तु मुखे रामं सदोच्चरेत्। गानं कुर्यात्सदा भक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः।।७।। पुराणेषु रता नित्यं यज्ञेषु च रताः सदा। ते नरा वैष्णवा ज्ञेयाः सर्वधर्मेषु सम्मताः।।८।।

जो शौच सत्य क्षान्ति से युक्त हो, तथा रागद्वेष से रहित हो, और वेदविद्या के विचारवाला हो, उसको वैष्णव कहते हैं।।४।। जो नित्य अग्निहोत्र करता हो, तथा नित्य अतिथि की पूजा करता हो, और माता पिता का भक्त हो, उसको निश्चय करके वैष्णव कहते हैं।।५।। दयाधर्म से संयुक्त, तथा पाप से रहित, और जो शङ्खचक्राङ्कित है, उसको निश्चय करके वैष्णव कहते हैं।।६।। जो कण्ठ में तुलसी की माला धारण करता है, तथा सर्वदा मुख से रामनाम उच्चारण करता है, और भक्ति से हमेशा गान करता है, उन लोगों को वैष्णव जानना चाहिये, सब धर्मों में वे वैष्णव सम्मत हैं।।८।। और भी लिखा है कि–

एकादशीव्रतं ये च भक्तिभावेन कुर्वते। गायन्ति मम नामानि ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः। पाद्मपु० क्रियायोगसारखं० ७, अध्या० २, श्लो०।।८८।। देवायतनकर्तारस्तुलसीमाल्यधारकाः। पद्माक्षधारिणो ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।८९।। शङ्खचक्रगदा- पद्मैरङ्कितानि ममायुधैः। ब्रह्मन् येषां शरीराणि ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९०।। धात्रीफलस्त्रजो येषां गलेषु कमलासन। मां पूजयन्ति तत्पत्रैर्ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९१।। तुलसीमूलमृद्भिश्च तिलकानि नयन्ति ये। तुलसीकाष्ठपद्मैश्च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९२।। गङ्गास्नानरता ये च गङ्गानामपरायणाः। गङ्गामाहात्म्यवक्तारो ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९३।। शालग्रामशिला येषां गृहे वसति सर्वदा।। शास्त्रं भागवतं चैव ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९४।। सम्मार्जयन्ति ये नित्यं मम स्थानानि सत्तम।। दीपं यच्छन्ति तत्रैव ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९५।। शीर्णं मन्मन्दिरं ये च कुर्वन्ति नूतनं पुनः। तत्रायतनशोभां च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९६।। अभयं ये च यच्छन्ति भीरुभ्यश्चतुरानन। विद्यादानं च विप्रेभ्यो ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ।।९७।। मत्पादसलिलै र्येषां सिक्तानि मस्तकानि च। मम नैवेद्यमश्नन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः।।९८।। क्षुत्तृट्प्रपीडितेभ्यश्च ये यच्छन्त्यन्नमम्बु च। कुर्युर्ये योगशुश्रूषां

ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥९९॥ आरामकारिणो ये च पिप्पलारोहिणोऽपि च। गोसेवां ये च कुर्वन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥१००॥ अत्यन्तभक्ता ये ब्रह्मन् पितृयज्ञं प्रकुर्वते। कुर्वन्ति दीनशुश्रूषां ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥१०१॥ तडागग्रामकर्तारः कन्यादानरताश्च ये। सेवन्ते श्वशुरौ ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥१०२॥ सेवन्ते ज्येष्ठभगिनीं ज्येष्ठभ्रातरमेव च। परनिन्दां न कुर्वन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः॥१०३॥

जो लोग अत्यन्तभक्ति से एकादशीव्रत करते हैं, और मेरे नामों को गाते हैं, उनको वैष्णव जानना॥८८॥ जो लोग देवालय करते हैं, और तुलसी तथा कमलाक्ष की माला धारण करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥८९॥ हे ब्रह्मन्! मेरे आयुध शङ्खचक्र आदि से जिन लोगों का देह अङ्कित है, उनको वैष्णव जानना॥९०॥ हे कमलासन! जिनके गलों में आँवले के फल की माला रहती है, और आँवले की पत्तियों से मेरी पूजा करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९१॥ जो लोग तुलसी के मूल की मिट्टी से और तुलसीकाटके पंक से तिलक करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९२॥ जो लोग गङ्गा में स्नान करते हैं, तथा गङ्गा के नाम को उच्चारण करते हैं, और गङ्गा माहात्म्य को कहते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९३॥ जिन लोगों के घर में हमेशा शालग्राम भगवान् की मूर्त्ति, और भागवत शास्त्र रहता है, उनको वैष्णव जानना॥९४॥ हे सत्तम! जो लोग विष्णु के मन्दिर को नित्य झाड़ू से साफ करते हैं, और मन्दिर में दीप जलाते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९५॥ जो लोग पुराने मन्दिर को फिर से नूतन करते हैं, और मन्दिर को सुशोभित करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९६॥ हे चतुरानन! जो लोग डरनेवालों के लिये अभय दान देते हैं, और ब्राह्मणों के लिये विद्यादान देते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९७॥ मेरे चरणोदकसे जिन लोगों का मस्तक सींचा गया है, और मुझको भोग लगाकर मेरा नैवेद्य जो लोग भोजन करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९८॥ जो लोग भूख और प्यास से पीड़ित जीवों के लिये अन्न तथा जल को देते हैं, और योग की शुश्रूषा करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥९९॥ जो लोग बगीचा लगाते हैं, तथा पिप्पलारोही हैं, और गौ की सेवा करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥१००॥ हे ब्रह्मन्! अत्यन्त भक्त जो लोग पितरों का तर्पण और दुःखियों की से वा करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥१०१॥ जो लोग तालाब तथा ग्राम करते हैं। और कन्यादान देते हैं, तथा सास श्वशुरकी सेवा करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥१०२॥ जो लोग जेठ भाई बहन की सेवा करते हैं, और दूसरों की निन्दा नहीं करते हैं, उनको वैष्णव जानना॥१०३॥ और भी देखिये वैष्णव का लक्षण लिखा है कि–

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः॥ ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥ पाद्मपु० उत्तर खं०

६, अध्या० २२४, श्लो० ७०॥

जिनके गले में तुलसी के काठ की, और कमल के बीज की माला लटकी रहती है, तथा जिनके बाहुमूल शङ्ख और चक्र से चिह्नित हैं, और जिनके ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र विराजमान रहता है, वे वैष्णव हैं, वे शीघ्र ही भुवन को पवित्र कर देते हैं।७०॥ इस प्रकार के वैष्णव का लक्षण निश्चिय होने पर तो यह प्रश्न होता है कि वैष्णव कितने प्रकार के होते हैं। इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि–

द्विविधं वैष्णवं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा। शङ्खचक्रादिभिर्बाह्यमान्तरं वीतरागता॥ पाद्मपु० उत्तर खं० ६, अध्या० २२४, श्लो० ७६॥

वैष्णव दो प्रकार के होते हैं। एक बाह्य वैष्णव, और दूसरा आभ्यन्तर वैष्णव, उसमें बाह्य वैष्णव शङ्ख चक्र धारण करने से होता है, और आभ्यन्तर वैष्णव राग के परित्याग करने से होता है।७६॥ इस प्रकार पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर होने पर तो कुछ लोग यह कहते हैं, कि वैष्णव शब्द वेद में नहीं पाया जाता है, इससे यह मत आधुनिक है। इसका उत्तर यह है कि वैष्णव मत अनादि काल से चला आता है और परम वैदिक है। देखिये यजुर्वेद में वैष्णव शब्द स्पष्ट आता है–

विष्णोरराटमसि विष्णोःश्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि॥ वैष्णवमसि विष्णवे स्वा॥ यजु० अध्या० ५, मं०॥२१॥ रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहन वनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां वलगह । उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्य्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवास्थ॥ यजु० अ० ५, मं०॥२५॥

इत्यादि बहुत से प्रमाण हैं, ग्रन्थविस्तार के भयसे अधिक मैं नहीं लिखता हूँ। अब इस वार्ता में जो "भगवच्छेषत्वम्" यह उन्तीसवाँ पद है, उसमें भगवत् शब्द का अर्थ कुछ लोग यह कहते हैं कि (भगं योनिर्द्वयोः) इस अमरकोश के प्रमाण से भग और योनि ये दो नाम स्त्री की योनि का है, वह जिसको हो उसका नाम भगवान् है। यह जो लोग अर्थ करते हैं, वह ठीक नहीं है। क्योंकि यहाँ पर भग नाम षट् ऐश्वर्यों का है, योनिका नाम नहीं है। शक्तिग्राहक आप्तपराशरमहर्षि का वाक्य है कि–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥विष्णु पु० अं० ६, अ० ५ श्लो० ७४ ॥

सम्पूर्ण ऐश्वर्य १, सम्पूर्णवीर्य २, सम्पूर्णयश ३, सम्पूर्ण श्री ४, सम्पूर्णज्ञान ५

और सम्पूर्णवैराग्य ६, इन छः को भग कहते हैं। उन समग्र ऐश्वर्यादिक षट् भगों से जो सदा सम्पन्न हो, उसको भगवान् कहते हैं। और पराशरमहर्षि ने साक्षात् भगवान् शब्द का अर्थ कहा है कि–

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम्॥ वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥ विष्णु पु० अं० ६, अ० ५, श्लो० ७८ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति १, प्रलय २, अगति ३, गति ४, विद्या ५, और अविद्या ६, इन छः को जो जानता है वह भगवान् है ऐसा कहना। अथवा मेदनी कोशमें यह लिखा है कि–

(भगं श्रीयोनिवीर्येच्छाज्ञानवैराग्यकीर्तिषु) मेदनीको०

श्री १, योनि २, वीर्य ३, इच्छा ४, ज्ञान ५, वैराग्य ६, कीर्ति ७, इन सातों के विषय में भग शब्द का प्रयोग होता है, उसमें श्री, शोभा, सम्पत्, और लक्ष्मी का, नाम है, और योनि नाम कारण का है, वीर्य नाम पराक्रम का है, कीर्ति नाम यश का है, और इच्छा, ज्ञान, वैराग्य, ये तीन प्रसिद्ध ही हैं। ये सब जिसमें विद्यमान हों उसको भगवान् कहते हैं। यहाँ पर जो भग माने स्त्री की मूत्रेन्द्रिय अमरकोश के अनुसार मान लिया जाय तो भी भगवान् स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग नहीं होगा, क्योंकि पाणिनिमहर्षिकृत (उगितश्च) व्या० अध्या० ४ पाद० १ सू० ६॥ इस सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर भगवती ऐसा प्रयोग सिद्ध हो जायेगा। इससे भगवान् में भग शब्द स्त्री का मूत्रेन्द्रिय-वाचक नहीं है। बल्कि षट् ऐश्वर्य वाचक ही विष्णु पुराण के द्वारा ज्ञात होता है। और आप्तवाक्य शक्तिग्राहक है। क्योंकि लिखा है कि–

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च॥ वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥ न्यायसिद्धान्तमुक्ता० शब्द खं० ४॥

व्याकरण १, उपमान २, कोष ३, आप्तवाक्य ४, व्यवहार ५, वाक्यशेष ६, विवृत्ति ७, सिद्ध पद का सान्निध्य ८, ये शक्तिग्राहक हैं, ऐसा वृद्ध सब कहते हैं।।४।। और नागेशभट्टने भी कहा है–

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥ सामर्थ्यमौचितिः देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

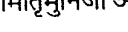
इस कथनानुसार प्रकरण भी शब्दार्थ ज्ञान में हेतु है, तो यह अर्थ पक्षक ज्ञान के अन्दर आत्मस्वरूप ज्ञान का प्रकरण है। इससे "भगवत्" शब्द में भग का अर्थ

षट् ऐश्वर्य ही है। यहाँ पर अर्थ पञ्चक के विषय में विस्तार के भय से मैं नहीं लिखता हूँ, जिसको जानना हो वह मेरी बनाई हुई अर्थ पञ्चक की "मर्मबोधिनी" टीकाको देख ले। श्रीकृष्णपाद स्वामीजीकी पहली पूर्वोक्त वार्ता में छप्पन पद हैं।

इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१॥

अब वार्तामालाकार सुन्दरजामातृमुनिजी और कलिवैरिदासजी के प्रश्नोत्तररूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदाससुन्दरजामातृमुन्युक्ता वार्ता ॥२॥



मू०- कथावसाने गोष्ठीनिःसरणानन्तरं पश्चात्सुन्दर-जामातृमुनिः कलिवैरिदासं प्रणम्यास्यात्मनः स्वरूपोपाय-पुरुषार्थानपृच्छत्। सचेच्छा स्वरूपं कृपोपायः प्रीतिरुपेय इत्यवदत्, तथा न निश्चितवान् वदस्व, इत्यवोचत्। स च तव गूढाः केचन सन्ति किं तव निश्चयः क इत्यपृच्छत्। स च भवतां यथोपदेशमेव मम निश्चयः श्रीवैष्णवशेषत्वं स्वरूपं तदभिमान उपायः तन्मुखोल्लास एव दासस्योपेय इति ममाध्यवसाय इत्यवदत्, तच्छ्रुत्वा प्रीतोऽभवत्॥

कलिवैरिदासस्तुतिः–

अर्थ०–वेदान्तवेद्यामृतवारिराशे र्वेदार्थसारामृतपूरमग्नयम।
आदाय वर्षन्तमहं प्रपद्ये कारुण्यपूर्णं कलिवैरिदासम् ॥६॥

वरवरमुनिस्वामिस्तुतिः–

श्रीशैलेशदयापात्रं धीभक्त्यादिगुणार्णवम्।
यतीन्द्रप्रवणं वन्दे रम्यजामातरं मुनिम्॥७॥

सुन्दरजामातृमुनिस्तुतिः–

यश्चकार सकलार्थसम्पदां व्यंजनीं द्रविडवेदसंगतिम्।
तं द्वितीयशठकोपमन्वहं स्तौमि सुन्दरवराह्वयंमुनिम्॥८॥

(कथावसाने) भगवद्विषय की कथा समाप्त होने पर (गोष्ठीनि:सरणानन्तरम्) गोष्ठी निकलने के बाद (पश्चात्) पीछे से (सुन्दरजामातृमुनि:) सुन्दरजामातृमुनि स्वामीजी ने (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजी को (प्रणम्य) साष्टाङ्गप्रणाम करके (अस्य) इस (आत्मन:) आत्मा के (स्वरूपोपायपुरुषार्थान्) स्वरूप के तथा भगवत्प्राप्ति के उपाय को और चेतन के पुरुषार्थ को (अपृच्छत्) पूछा। अपृच्छत् यहाँ पर तुदादिपठित "प्रच्छज्ञीप्सायाम्" धातु का लङ्लकार में; **(ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छति भृज्जतीनां ङिति च) व्या० अ० ६, पा० १, सू० १६॥** इस सूत्र से सम्प्रसारण होता है। (च) और तब (स:) उस कलिवैरि स्वामीजी ने (इच्छा) इच्छा ही (स्वरूपम्) स्वरूप है, तथा (कृपा) भगवत् की कृपा ही (उपाय:) उपाय है और (प्रीति:) प्रीति (उपेय:) उपेयपुरुषार्थ है, (इति) ऐसा तीनों प्रश्नों का उत्तर (अवदत्) कहा। परन्तु सुन्दरजामातृमुनिजी ने (तथा) वैसा (न) नहीं (निश्चितवान्) निश्चय किया और (वदस्व) आप भासमान कहिये। "वदस्व" यहाँ पर **(भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वद:) व्या० अ० १, पा० ३, सू० ४७॥** इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है। (इति) ऐसा कलिवैरि स्वामीजी से (अवोचत्) सुन्दरजामातृमुनिजी ने कहा "अवोचत्" यह प्रयोग॥ (ब्रुवोवचि:) व्या० अ० २, पा० ४, सू० ५३॥ इस सूत्र से वचादेश तथा॥ (अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्) व्या० अ० ३, पा० १, सू० ५२॥ इस सूत्र से अङ् और॥ (वचउम्) व्या० अ० ७, पा० ४, सू० २०॥ इस सूत्र से उम् होने पर सिद्ध होता है। (च) और तब (स:) उस कलिवैरिदास स्वामीजी ने (तव) तुम्हारा (गूढ़ा:) गुप्त (केचन) कोई (सन्ति) हैं (किम्) क्या और (तव) तुम्हारा (निश्चय:) निश्चय (क:) क्या है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा (च) और तब (स:) उस सुन्दरजामातृमुनिजी ने (भवताम्) पूज्य आपका (यथा) जैसा (उपदेशम्) उपदेश हुआ है (एव) वही (मम) मेरा (निश्चय:) निश्चय है (श्रीवैष्णवशेषत्वम्) तथा श्रीवैष्णव का शेषत्व (स्वरूपम्) अपना स्वरूप है और (तदभिमान:) वैष्णवाभिमान (उपाय:) उपाय है, तथा (तन्मुखोल्लास:) श्रीवैष्णव मुखोल्लास (एव) ही निश्चय करके (दासस्य) दास का (उपेय:) उपेय है, (इति) ऐसा (मम) मेरा (अध्यवसाय:) निश्चय अध्यवसाय है, (इति) ऐसा (अवदत्) कहा है। (तत्) आचार्याभिमानयुक्त उस वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (प्रीत:) कलिवैरिस्वामीजी प्रसन्न (अभवत्) हो गये। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि मनुस्मृति में लिखा है–

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्॥ वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुतम्॥ (मनु० अध्या० २, श्लो० ३२)॥

अर्थात् ब्राह्मण का शर्मान्त नाम तथा क्षत्रिय का वर्मान्त नाम और वैश्य का गुप्तान्त नाम तथा शूद्र का दासान्त नाम करना चाहिये।।३२।। तो "कलिवैरिदास" ऐसा दासान्त नाम ब्राह्मण का ठीक नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जबतक आचार्यों के द्वारा पञ्चसंस्कार नहीं हुआ है तबतक शर्मान्त आदिका नाम होना चाहिये और प्रपत्ति करनेपर सब वर्णों का दासान्त ही नाम होना चाहिये क्योंकि जीवात्मा का विनाश रहित नाम दास ही है, देखिये इस विषय में अनेक प्रमाण हैं।

नाम वैष्णवहेतुत्वं मुखंमित्येतदुच्यते। योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम्।। पराशरीयधर्मशास्त्र उत्तर खं० अ० २, श्लो० ४९।।

यह नामसंस्कार वैष्णव का मुख्यकारण कहा है इससे भगवन्नामपूर्वक दासान्तनाम सब का रखना चाहिये।।४९।। और वृद्धहारीतस्मृति में लिखा है कि–

दद्यात्तन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम्।। वृद्धहा०।।

आचार्य भगवन्नाम पूर्वक दासान्त नाम शिष्य के लिये दें। और भी लिखा है कि–

दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत्। पद्मपु० उत्तरखं० ६, अध्याय २२६ श्लोक ।।९२।।

परमात्मा के ब्रह्मादिकसमस्त संसार दास है।।९२।। दास केवल शूद्र को ही नहीं कहते हैं, सेवक को भी कहते हैं, क्योंकि अमरकोश में लिखा है कि।

(दासः सेवकशूद्रयोः) अमरको०।।

दास शब्द सेवक और शूद्र इन दोनों का वाचक है। नाम संस्कार में दासनाम से सेवक का ही ग्रहण होता है, देखिये वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि–

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः। हनूमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः। वाल्मीकीय रा० सुं० कां० ५, स० ४३, श्लो० ९,।।

शुद्धकर्म करनेवाले कोसलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी का मैं सेवक हूँ, शत्रुओं की सेना को मारनेवाला पवनसुत हनुमान हूँ।।९।। और भी लिखा है कि–

श्रीपद्मनाभ पुरुषोत्तम देहि दास्यम्। पाण्डवगी० श्लोक २५।।

हे श्रीपद्मनाभ? हे पुरुषोत्तम? मेरे लिये आप अपनी दासता को दीजिये।।२५।। और भी लिखा है कि–

श्री श्रीनिवास पुरुषोत्तम देहि दास्यम्। पाण्डवगी० श्लोक २६।।

हे श्री श्रीनिवास? हे पुरुषोत्तम? मेरे लिये आप अपनी दासता को दीजिये।।२६।। और नारद पांचरात्र में लिखा है कि–

दास्येन च गृहाण माम्। नारदपां० ॥

अपनी दासता से मुझको ग्रहण कीजिये। और भी लिखा है कि–

दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मनः परमात्मनः॥

नान्यथा लक्षणं तेषां बन्धे मोक्षे च विद्यते ॥ पराशर०॥

सब जीवात्मा निश्चय करके परमात्मा के स्वतः सिद्ध दास हैं, उन जीवात्माओं के बन्धन में या मोक्ष में अन्य लक्षण नहीं हैं। और भी लिखा है कि।

दास्यमेव परं धर्म दास्यमेव परं हितम्। दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं व्रजेत्। हारीत०॥

भगवत्की दासता सबसे श्रेष्ठ धर्म है, तथा दासता ही सबसे श्रेष्ठ हित है, और दासता ही से मुक्ति होती है, तथाा भगवत्की दासता न होनेसे जीव नरक को प्राप्त करता है । और वेदान्त शास्त्र में लिखा है कि –

दासकितवादित्वमधीयते एके॥ वेदा० अ०२, पा०३, सू० ४३॥

दास कितव आदिक जीवको एक आथर्वणिक लोग ब्रह्म सूक्त में पढ़ते हैं ।।४३।। और ब्रह्मसूक्तमें भी लिखा है कि–

ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा ब्रह्मैवेमेकितवाः । ब्रह्मसू० ॥

जीव ब्रह्म का दास है सेवक और ये कितव है । और देखिये यजुर्वेद संहिता में भी लिखा है कि–

यस्यायं विश्व आर्यो दासाः ॥ यजु०अ०३३, मं० ८२ ॥

जिस परमात्माके यह संसार, और श्रेष्ठ ब्राह्मणादिक दास हैं ।।८२।। पूर्वोक्त श्रुति स्मृति दर्शन इतिहास पुराणादिक के प्रमाणसे यह सिद्ध होता है, कि प्रपन्न ब्राह्मणों का दासान्त ही नाम स्वरूपानुरूप है । शमिति ।।

❀

मू०-चितो[१]ऽचित[२] ईश्वरस्य[३] च[४] स्वभावास्त्रयः[५] चितः[६] स्वभावा[७] अनन्यार्हशेषत्वम[८] अनन्यशरणत्वम[९] अनन्यभोग्यत्वं[१०]

१२ १३ १४ १५ १६
च-अचितः स्वभावाः-अहङ्कारममकारजनकत्वं स्वरक्षण-
१७ १८ १९ २०
प्रवृत्तिजनकत्वं विषयप्रावण्यजनकत्वं च-ईश्वरस्य स्वभावाः
२१ २२ २३ २४ २५
सर्वशेषित्वं सर्वरक्षकत्वं परमभोग्यत्वं च-अहङ्कारममकार-
२६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३
निवृत्तावयमनन्याहों भवति तथा सति स सर्वशेषी भवति
३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९
स्वरक्षणप्रवृत्तिनिवृत्तावयमनन्यशरणो भवति अस्मिन्नेवं
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५
सति स सर्वरक्षको भवति विषयप्रावण्यनिवृत्तावय-
४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२
मनन्यभोगो भवति तदा स परमभोग्यो भवति प्रकृतेः
५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९
स्वरूपं जडं स्वभावः परिणतिः-ईश्वरस्य स्वरूपं श्रियः
६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६
पतित्वं स्वभावो रक्षकत्वम् आत्मनः स्वरूपं गुणित्वं पुरुषस्य
६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३
स्वरूपं शेषत्वं स्वभावः स्वरूपानुरूपज्ञातृत्वं ज्ञानं ज्ञेयं च
७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१
स्वरूपं ज्ञाता स्वभावो ज्ञानं स्वविभूति ज्ञेया स्वरूपं ज्ञाता
८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९
स्वभावो ज्ञानं परमात्मनो जीवात्मनश्च सर्वं ज्ञेयं भवति
९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००
अहं स्वरूपं न-इदं स्वं जानातीति ज्ञेयं स्वयं जानातीति
१०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११०
ज्ञाता स्वयं प्रकाशत इति ज्ञानं स्वयं जानातीति ज्ञाता अयं
१११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७
मम स्वभाव इति स्वस्वभावज्ञानावसरे स्वभाव एव-इदं
११८ ११९ १२० १२१ १२२
परिपाकस्वरूपत्वाज्ज्ञानं ज्ञेयं च भवति॥

अर्थ-(चितः) चेतनजीवका तथा (अचितः) अचेतन माया का (च) और (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (स्वभावाः) स्वभाव (त्रयः) तीन है। उनमें (चितः) चेतन जीवका (स्वभावाः) स्वभाव (अनन्यार्हशेषत्वम्) अनन्यार्हशेषता, तथ (अनन्यशरणत्वम्) अनन्य शरणत्व (च) और (अनन्य भोग्यत्वम्) अनन्यभोग्यत है। और (अचितः) अचेतन मायाका (स्वभावाः) स्वभाव (अहंङ्कारममकार-जनकत्वम्) अहङ्कारममकारजनकता, तथा (स्वरक्षणप्रवृत्तिजनकत्वम्) अपनं रक्षाकी प्रवृत्ति जनकता (च) और (विषयप्रावण्यजनकत्वम्) विषयप्रावण्यजनकत है। और (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (स्वभावाः) स्वभाव (सर्वशेषित्वम्) सर्वशेषित

तथा (सर्वरक्षकत्वम्) सर्वरक्षकत्व (च) और (परमभोग्यत्वम्) परमभोग्यत्व है। (अहङ्कारममकारनिवृत्तौ) अहङ्कार और ममकारके निवृत्त होनेपर (अयम्) यह जीवात्मा (अनन्यार्हः) अन्नयार्ह (भवति) होता है। (तथा) वैसा (सति) होनेपर तो (सः) वह परमात्मा (सर्वशेषी) सबका शेषी (भवति) होता है। और (स्वरक्षणप्रवृत्तिनिवृत्तौ) अपनी रक्षाकी प्रवृत्तिकी निवृत्ति होनेपर (अयम्) यह (अनन्यशरणः) अनन्यशरण (भवति) होता है। (अस्मिन्) इसके (एवम्) इस प्रकार (सति) होने पर तो (सः) वह वह परमात्मा (सर्वरक्षकः) सर्वरक्षक (भवति) होता है। और (विषयप्रावण्यनिवृत्तौ) विषयप्रावण्यनिवृत्तिहोनेपर (अयम्) यह जीवात्मा (अनन्यभोगः) अनन्यभोग (भवति) होता है। (तदा) तब (सः) वह परमात्मा (परमभोग्यः) परमभोग्य (भवति) होता है। (प्रकृतेः) प्रकृतिका (स्वरूपम्) स्वरूप (जडम्) जड़ है। और (स्वभावः) स्वभाव (परिणतिः) परिणति है। तथा (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (स्वरूपम्) स्वरूप (श्रियः) लक्ष्मीका (पतित्वम्) पतित्व है, और (स्वभावः) स्वभाव (रक्षकत्वम्) रक्षक है। तथा (आत्मनः) आत्माका (स्वरूपम्) स्वरूप (गुणित्वम्) गुणित्व है। और (पुरुषस्य) पुरुषका (स्वरूपम्) स्वरूप (शेषत्वम्) शेषत्व है, और (स्वभावः) स्वभाव (स्वरूपानुरूपज्ञातृत्वम्) स्वरूपके अनुरूपज्ञातृत्व तथा (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (ज्ञेयम्) ज्ञेय है। (स्वरूपम्) स्वरूप (ज्ञाता) ज्ञाता है, तथा (स्वभावः) स्वभाव (ज्ञानम्) ज्ञान है, तथा (स्वविभूतिः) स्वविभूति (ज्ञेया) ज्ञेय है। और (स्वरूपम्) स्वरूप (ज्ञाता) ज्ञाता है। तथा (स्वभावः) स्वभाव (ज्ञानम्) ज्ञान है (परमात्मनः) परमात्माका (च) और (जीवात्मनः) जीवात्माका (सर्वम्) सब (ज्ञेयम्) ज्ञेय (भवति) होता है (अहम्) जीव (स्वरूपम्) स्वरूप है, (इदम्) यह देह (न) नहीं स्वरूप है, (स्वम्) अपनेको (जानाति) जो जानता है, (इति) वही (ज्ञेयम्) ज्ञेय है, (स्वयम्) स्वयम् (जानाति) जो जानता है, (इति) वही (ज्ञाता) ज्ञाता है। और (स्वयम्) स्वयं जो (प्रकाशते) प्रकाशित होता है (इति) वही (ज्ञानम्) ज्ञान है, (स्वयम्) स्वयं (जानाति) जानता है, (इति) वही (ज्ञाता) ज्ञाता है (अयम्) यह (मम) मेरा (स्वभावः) स्वभाव है (इति) ऐसा (स्वस्वभावज्ञानावसरे) अपने स्वभाव के ज्ञान के अवसर पर (स्वभावः) स्वभाव (एव) ही निश्चयकरके (इदम्) यह (परिपाकस्वरूपत्वात्) परिपाकस्वरूप होने से (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (ज्ञेयम्) ज्ञेय (भवति) होता है। "जानाति" यहाँपर-

(ज्ञाजनोर्जा) व्या० अ० ७, पा० ३, सू० ७९॥

इस सूत्रसे जा होता है। यदि यहाँपर यह कोई प्रश्न करे कि सूत्र किसको कहते हैं, तो इसका उत्तर श्रीब्रह्माण्ड पुराणमें लिखा है कि-

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ॥ अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥ श्रीब्रह्माण्ड पु० उतरभाग० अनुषङ्गपाद० २, अध्या० ३३, श्लो० ५८॥

अनवद्य अस्तोभ सर्वतोमुखसारवाला सन्देह रहित जो अल्पाक्षर हो उसको सूत्रज्ञ लोग सूत्र कहते हैं ॥५८॥

❁

मू०-अचितः स्वरूपं शेषत्वे सति जडत्वं स्वभावः सततपरिणामित्वमात्मनः स्वरूपं शेषत्वे सति ज्ञातृत्वं स्वभावः कैङ्कर्य्यैकरसत्वम्-ईश्वरस्य स्वरूपं ज्ञातृत्वे सति शेषित्वं स्वभावः सर्वरक्षकत्वं तत्त्वं जडमजडमिति द्विविधं जडं निर्गुणं सगुणमिति द्विविधं सगुणं त्रिगुणमेकंगुणमिति द्विविधं त्रिगुणं प्रकृतिः प्राकृतमिति द्विविधम्-अजडं प्रत्यक् परागिति द्विविधं प्रत्यगात्मेश्वर इति द्विविधं पराक् ज्ञानं देश इति द्विविधं सत्त्वरजस्तमोगुणाः प्रत्येकंत्रिविधाः, तामसतामसस्तामसराजससस्तामससात्त्विकश्च राजसतामसो राजसराजसो राजससात्त्विकश्च सात्त्विकतामससात्त्विकराजसः सात्त्विकसात्त्विकश्चेति। तत्र तामसतामसः निद्रामुत्पादयति। तामसराजसः शोकमुत्पादयति। तामससात्त्विकः परहिंसायां प्रवर्तयति। राजसतामसो विषयान्तरे प्रेरयति। राजसराजसः काम्येषु प्रवर्तयति। राजससात्त्विकः भगवत्स्तोत्रेषु प्रवर्तयति। सात्त्विकतामसो भगवन्मन्त्रे प्रेरयति। सात्विकराजसः प्रकृत्यात्मविवेके प्रवर्तयति। सात्त्विकसात्त्विको भगवत्साक्षात्कारे प्रवर्तयति॥

अर्थ- (अचितः) अचेतनमाया का (स्वरूप) स्वरूपं (शेषत्वे) ब्रह्म का

(सति) होते हुए (जडत्वम्) जड है, और (स्वभावः) अचेतनका स्वभाव (सततपरिणामित्वम्) निरन्तरपरिणाम होनेवाला है । (आत्मनः) और जीवात्मा का (स्वरूपम्) स्वरूप (शेषत्वे) ब्रह्म का शेष (सति) होते हुए (ज्ञातृत्वम्) ज्ञाता है, और (स्वभावः) जीवात्माकास्वभाव (कैङ्कर्यैकरसत्वम्) भगवत्कैङ्कर्यैकरसपरायण है। और (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (स्वरूपम्) स्वरूप (ज्ञातृत्वे) ज्ञाता (सति) होते हुए (शेषित्वम्) शेषी है, और (स्वभावः) ईश्वरका स्वभाव (सर्वरक्षकत्वम्) सर्वरक्षक है। (तत्त्वम्) तत्त्व (जडम्) जड और (अजडम्) अजड (इति) इस भेदसे (द्विविधम्) दो प्रकारका होता है। उसमें (जडम्) जड (निर्गुणम्) निर्गुण तथा (सगुणम्) सगुण (इति) इस भेद से (द्विविधम्) दो प्रकार का होता है। (सगुणम्) सगुण (त्रिगुणम्) त्रिगुण और (एकगुणम्) एकगुण (इति) इस भेदसे (द्विविधम्) दो प्रकारका होता है। और उसमें (त्रिगुणम्) त्रिगुण (प्रकृतिः) प्रकृति, और (प्राकृतम्) प्राकृत (इति) इस भेदसे (द्विविधम्) दो प्रकारका होता है। और (अजडम्) अजडतत्व (प्रत्यक्) प्रत्यक् और (पराक्) पराक् (इति) इस भेदसे (द्विविधम्) दो प्रकारका होता है। और (प्रत्यक्) प्रत्यक् (आत्मा) जीवात्मा तथा (ईश्वरः) परमात्मा (इति) इस भेदसे (द्विविधम्) दो प्रकारका होता है। और (पराक्) पराक् (ज्ञानम्) ज्ञान तथा (देशः) देश (इति) इस भेदसे (द्विविधम्) दो प्रकारका होता है। (सत्त्वरजस्तमोगुणाः) सत्त्वगुण रजोंगुण तमोगुण ये तीनों (प्रत्येकम्) एकएकके प्रति (त्रिविधाः) तीन तीन प्रकारके होते हैं। उसीको स्पष्ट दिखाते हैं कि (तामसतामसः) तामसतामस तथा (तामसराजसः) तामसराजस (च) और (तामससात्त्विकः) तामससात्त्विक इस प्रकारसे तमोगुण तीन प्रकारका होता है और (राजसतामसः) राजसतामस तथा (राजसराजसः) राजसराजस (च) और (राजससात्त्विकः) राजससात्त्विक इस प्रकार रजोगुण तीन प्रकारका होता है। और (सात्त्विकतामसः) सात्त्विकतामस तथा (सात्त्विकराजसः) सात्त्विकराजस (च) और (सात्त्विकसात्त्विकः) सात्त्विकसात्त्विक (इति) इस प्रकार से सत्त्वगुण तीन प्रकारका होता है। ये परिगणन करनेसे नव होते हैं। अब इन नवके कार्यको दिखाते हैं कि (तत्र) उसमें (तामसतामसः) तामसतामस (निद्राम्) निद्राको (उत्पादयति) उत्पन्न करता है। तथा (तामसराजसः) तामसराजस (शोकम्) शोकको (उत्पादयति) उत्पन्न करता है। और (तामससात्त्विकः) तामससात्त्विक (परहिंसाम्) दूसरेकी हिंसाको (प्रवर्तयति) कराता है । तथा (राजसतामसः) राजसतामस (विषयान्तरेषु) विषयान्तरोंमें (प्रेरयति) प्रेरणा करता है। तथा (राजसराजसः) राजसराजस (काम्येषु) काम्य कर्मोंमें (प्रवर्तयति) प्रवृत्त करता है। और (राजससात्त्विकः) राजससात्त्विक (भगवत्स्तोत्रेषु) भगवान्के स्तोत्रोंमें (प्रवर्तयति) प्रवृत्त करता है। तथा (सात्त्विकतामसः) सात्त्विक तामस

(भगवन्मन्त्रेषु) भगवान्‌के मन्त्रोंमें (प्रेरयति) प्रेरणा करता है। और (सात्त्विकराजसः) सात्त्विकराजस (प्रकृत्यात्मविवेके) प्रकृति और आत्माके विवेकमें (प्रवर्तयति) प्रवृत्त करता है। तथा (सात्त्विकसात्त्विकः) सात्त्विकसात्त्विक (भगवत्साक्षात्कारे) भगवत्साक्षात्कारमें (प्रवर्तयति) प्रवृत्त करता है ॥ शुभमिति ॥

मू०-तत्त्वत्रयस्य[१] च[२] स्वरूपं[३] स्वरूपनिरूपधर्मो[४] निरूपितस्वरूपविशेषणं[५] व्यापारश्चेति[६] चत्वारः[७] प्रकाराः[८]। तत्रेश्वरस्य[९] स्वरूपं[१०] सत्यज्ञानानन्तानन्दामलात्मकं[११] स्वरूपनिरूपकधर्माः[१२] सत्यत्वज्ञानत्वानन्तत्वानन्दत्वामलत्वानि[१३] निरूपितस्वरूपविशेषणं[१४] ज्ञानशक्त्यादिसमस्तकल्याणगुणागुणवद्विशेषणानि[१५] गुणप्रकाशका[१६] दिव्यमंगलविग्रहाः[१७], एवं निरूपितं[१८] वस्तु दंपतिरूपम्[१९], एतद्दंपत्योरुभयविभूतिस्थचेतनाचेतनानि[२०] शरीरतया[२१] शेषभूतानि[२२] व्यापाराः[२३], स्वानन्दसात्म्यार्थं[२४] क्रियमाणाः[२५] सकलजगत्सृष्टिस्थितिसंहारा[२६] मोक्षप्रदत्वं[२७] च, एवं सर्वदा[२८] स्थानातिशयवतोर्दंपत्योरन्योन्यातिशयकरत्वोक्तिः[२९] श्रियः[३०] पतित्वविष्णुपत्नीत्वहेतुका[३१], स्वामिनः[३२] स्वामिन्या[३३] अधिकव्यापारोऽधिकसंपत्पुरुषकारत्वं[३४] च स्वामिनोऽधिकव्यापारो[३५] दण्डधरत्वमुपयित्वं[३६] च चेतनस्य[३७] स्वरूपं[३८] सत्यज्ञानानन्दामलात्मकमणुश्च[३९] स्वरूपनिरूपकधर्माः[४०] सत्यत्वज्ञानत्वानन्दत्वामलत्वाणुत्वानि[४१] निरूपितस्वरूपविशेषणानि[४२] शरीरवच्छेषत्वमानन्दज्ञानादिगुणाश्च[४३] व्यापारोऽनुभवजनितप्रीतिकारितकैंकर्यम्[४४], अचितः[४५] स्वरूपं[४६] त्रिविधं[४७] प्राकृताप्राकृतकालभेदात्। अप्राकृतस्य[४८] स्वरूपं[४९] ज्ञानं[५०] स्वरूपनिरूपकधर्मो[५१] ज्ञानत्वं[५२] निरू-

पितस्वरूपविशेषणं[७८] शरीरवच्छेषत्वं[७९] व्यापार[८०] इच्छानुगुण-परिणामः[८१] प्राकृतस्य[८२] स्वरूपं[८३] जडं[८४] स्वभावो[८५] जडत्वं[८६] निरूपित-स्वरूपविशेषणं[८७] शरीरवच्छेषत्वं[८८] गुणत्रयवत्वं[८९] सततपरिणा-मित्वं[९०] च[९१] व्यापारो[९२] बद्धचेतनस्य[९३] स्वस्वरूपपरस्वरूपाच्छादनं[९४] कालस्य[९५] स्वरूपं[९६] विभुं[९७] जडं[९८] च[९९] स्वरूपनिरूपकधर्मो[१००] विभुत्व-जडत्वे[१०१] निरूपितस्वरूपविशेषणं[१०२] शरीरवच्छेषत्वं[१०३] कलाकाष्ठादि परिमाणश्च[१०४] व्यापारः[१०५] सृष्ट्याद्युपकरणता[१०६]॥[१०७][१०८][१०९]

अर्थ- (च) और (तत्त्वत्रयस्य) तत्त्वत्रयके (स्वरूपम्) स्वरूप और (स्वरूपनिरूपकधर्मः) स्वरूपके निरूपण करनेवाला धर्म तथा (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपका विशेषण (च) और व्यापार (इति) ये (चत्वारः) चार (प्रकाराः) प्रकारके भेद हैं (तत्र) उसमें (ईश्वरस्य) ब्रह्मका (स्वरूपम्) स्वरूप (सत्यज्ञानानन्तानन्दामलात्मकम्) सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द तथा अमलात्मक है। और (स्वरूपनिरूपकधर्माः) स्वरूपके निरूपण करनेवाले धर्म (सत्यत्वज्ञानत्वानन्तत्वानन्दत्वामलत्वानि) सत्यत्व, ज्ञानत्व, अनन्तत्व, आनन्दत्व और अमलत्व है। तथा (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण (ज्ञानशक्त्यादिसमस्तकल्याणगुणागुणवत्) ज्ञान, शक्ति, और आदि शब्दसे बल, तथा क्रिया, और वात्सल्यसौशील्य, सौलभ्य, आदिक दिव्य कल्याणगुण प्राकृत जरामृत्युशोक आदिक गुणोंसे रहितके समान (विशेषणानि) विशेषण है। (गुणप्रकाशकाः) वात्सल्यादिक गुणोंका प्रकाशक (दिव्यमंगलविग्रहाः) भगवान्का दिव्य मंगल विग्रह है। (एवम्) इस प्रकारके (निरूपितम्) निरूपण किया हुआ (वस्तु) वस्तु (दम्पतिरूपम्) स्त्री पुरुष रूप अर्थात् लक्ष्मीनारायण रूप (एतद्दंपत्योः)इन दोनों लक्ष्मीनारायण के (उभयविभूतिस्थचेतनाचेतनानि) लीला विभूति और त्रिपाद्विभूतिमें स्थित जड़ और चेतन (शरीरतया) शरीर होनेसे (शेषभूतानि) शेषभूत है। (व्यापाराः) व्यापार (स्वानन्दसात्म्यार्थं) आत्मानन्द प्राप्तिके लिये (क्रियमाणाः) क्रियमाणा है। वे ये हैं (सकलजगत्सृष्टिस्थितिसंहाराः) समस्त संसारके उत्पत्ति पालन संहार (च) और (मोक्षप्रदत्वम्) मोक्षप्रद हैं (एवम्) इस प्रकार (सर्वदा) हमेशा (स्थानातिशयवतोः) स्थानातिशयवाले (दंपत्योः) लक्ष्मीनारायण के (अयोन्यातिशयकरत्वोक्तिः) आपसमें अतिशयकरत्व उक्ति

(श्रियः)लक्ष्मीजीका (पतित्वविष्णुपत्नीत्वहेतुकाः) पतित्व तथा विष्णु भगवान्के पत्नीत्वमें कारण है (स्वामिनः) स्वामी नारायणका तथा (स्वामिन्याः) स्वामिनी लक्ष्मीजीका (अधिकव्यापारः) अधिकव्यापार (अधिकसम्पत्) अधिक सम्पत्ति (च) और (पुरुषकारत्वम्) पुरुषकारक है। और (स्वामिनः) नारायणका (अधिकव्यापारः) अधिक व्यापार (दण्डधरत्वम्) दण्ड धारण करना (च) और (उपायत्वम्) उपाय है। (चेतनस्य) जीवात्माका (स्वरूपम्) स्वरूप (सत्यज्ञानानन्दामलात्मकम्) सत्य, ज्ञान, आनन्द, तथा अमलात्मक है (च) और (अणुः) अणु है (स्वरूपनिरूपकधर्माः) स्वरूपके निरूपण करनेवाले धर्म (सत्यत्वज्ञानत्वानन्दत्वामलत्वाणुत्वानि) सत्यत्व, ज्ञानत्व, आनन्दत्व, अमलत्व, अणुत्व है (निरूपितस्वरूपविशेषणानि) निरूपितस्वरूपविशेषण (शरीरवत्) शरीरके तुल्य (शेषत्वम्) शेष है, (च) और (आनन्दज्ञानादिगुणाः) आनन्द और ज्ञानादिक गुण हैं (व्यापारः) व्यापार (अनुभवजनितप्रीतिकारितकैंकर्यम्) अनुभवसे उत्पन्न प्रीति से किया हुआ कैंकर्य है। और (अचितः) मायाका (स्वरूपम्) स्वरूप (त्रिविधम्) तीन प्रकारका होता है (प्राकृताप्राकृतकालभेदात्) प्राकृत १, अप्राकृत २, तथा काल ३, इस भेदसे (अप्राकृतस्य) अप्राकृतका (स्वरूपम्) स्वरूप (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (स्वरूपनिरूपकधर्मः) स्वरूपके निरूपण करनेवाला धर्म (ज्ञानत्वम्) ज्ञानत्व है। और (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपित स्वरूपविशेषण (शरीरवत्) देहके समान (शेषत्वम्) शेष है। तथा (गुणत्रयवत्वम्) गुणत्रय वाला है (च) और (सततपरिमाणत्वम्) सर्वदापरिणामी है। और (व्यापारः) व्यापार (बद्धचेतनस्य) बद्धचेतनके (स्वस्वरूपपरस्वरूपाच्छादानम्) स्वस्वरूप और परस्वरूपका आच्छादन करना है (कालस्य) कालका (स्वरूपम्) स्वरूप (विभुं) विभु (च) और (जडम्) जड है। और (स्वरूपनिरूपकधर्मः) स्वरूपका निरूपण करनेवाला धर्म (विभुत्वजडत्वे) विभुत्वऔरजडत्व है (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण (शरीरवत्) देहके समान (शेषत्वम्) शेषत्व है। और (कलाकाष्ठादिपरिमाणः) कला काष्ठा आदिक परिमाण (च) ही (व्यापारः) व्यापार है (सृष्ट्याद्युपकरणता) वही सृष्टि आदिका उपकरण है। यहाँ पर यह शंका होती है कि कला काष्ठा किसको कहते हैं। इस शङ्का का समाधान मनुस्मृति में लिखा है कि–

निमेषादशचाष्टौ च काष्ठात्रिंशत्तुताः कला। त्रिंशत्कलामुहूर्तः स्यादहोरात्रंतु तावतः॥ मनु०अ०१, श्लो० ६४॥

अपनेसे आँखोंके खुलने, मूँदनेको निमेष अर्थात् पलक कहते हैं, उन अठारह

पलकों की एक काष्ठा होती है, और तीस काष्ठाओंकी एक कला होती है, तीसकलाओंका एक मुहूर्त होता है, और तीस मुहूर्तों का एक दिन रात होता है।।६४।। यहाँ पर ग्रन्थ विस्तार भयसे अधिक मैं नहीं लिखता हूँ, जिसको देखना हो वह ''चिन्तामणि'' टीकामें देखले।। शमिति।।

मू०-आत्मनोधर्मिधर्मयोः स्वरूपं स्वरूपनिरूपकधर्मः, निरूपितस्वरूपविशेषणं व्यापारो लक्षणं द्रव्यत्वमित्येते प्रकाराः सन्ति। तत्र स्वरूपं सत्यं ज्ञानमानन्दोऽमलं स्वरूपनिरूपकधर्मः सत्यत्वं ज्ञानत्वमानन्दत्वममलत्वं च निरूपितस्वरूपविशेषणं स्वस्मै स्वयं प्रकाशत्वं स्वप्रतियोगिकस्वानुयोगिकज्ञानस्वरूपत्वं स्वस्यैव ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपता, एतादृशज्ञानमेवाहं नेदमिदंत्वे व्यतिरिक्तदर्शनं स्यात् तदा ज्ञेयत्वेन स्वं जानीयात्, तदा ज्ञेयं ज्ञानेन सिध्येत्, ज्ञेयज्ञानाभावे ज्ञातृत्वं न सिध्येत्, तदभावे ज्ञानाश्रयत्वं न सिध्येत्, तदभावे च ज्ञानाहानिः स्यात्। तस्मात्स्वस्मै स्वयं प्रकाशज्ञानमहं व्यवहारगोचरः निरूपितस्वरूपविशेषणमानन्दज्ञानादिगुणाः व्यापारोऽपरिच्छिन्नस्वरूपानन्दानुभवः, लक्षणमणुत्वं द्रव्यत्वं गुणाश्रयत्वम्।।

अर्थ- (आत्मनोः) जीवात्मा और परमात्माके (धर्मिधर्मयोः) धर्मी तथा धर्मका (स्वरूपम्) स्वरूप और (स्वरूपनिरूपकधर्मः) स्वरूपका निरूपण करनेवाला धर्म तथा (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण और (व्यापारः) व्यापार तथा (लक्षणम्) लक्षण और (द्रव्यत्वम्) द्रव्यत्व (इति) इसरूपसे (एते) येछः (प्रकाराः) प्रकार (सन्ति) हैं (तत्र) उनमें (स्वरूपम्) धर्मिस्वरूप (सत्यं ज्ञानमानन्दोऽमलम्) सत्य और ज्ञान तथा आनन्द और अमल है और (स्वरूपनिरूपकधर्मः) स्वरूपके निरूपण करनेवाला धर्म (सत्यत्वं) सत्यत्व और

(ज्ञानत्वम्) ज्ञानत्व तथा (आनन्दत्वम्) आनन्दत्व (च) और (अमलत्वम्) अमलत्व है। और (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण (स्वस्मै) अपने लिये (स्वम्) अपने ही से जो (प्रकाशत्वम्) प्रकाश करता हो (स्वप्रतियोगिकस्वानुयोगिकज्ञानस्वरूपत्वम्) स्वप्रतियोगिकस्वानुयोगिकज्ञानस्वरूप (स्वस्य) अपना (एव) ही निश्चय करके (ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपता) ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयस्वरूप है। (एतादृशज्ञानम्) ऐसा ज्ञान (एव) ही निश्चय करके (अहम्) मैं हूँ (न) नहीं (इदम्) यह शरीर मैं हूँ क्योंकि मृतक शरीर में चेतनता की उपलब्धि नहीं होती है। (इदंत्वे) इस शरीरको आत्मा मानने पर (व्यतिरिक्तदर्शनम्) उलटा ज्ञान (स्यात्) हो जायेगा (तदा) तब (ज्ञेयत्वेन) ज्ञेयरूपसे (स्वम्) अपने को (जानीयात्) जाने (तदा) तब (ज्ञेयम्) ज्ञेय (ज्ञानेन) ज्ञानसे (सिद्ध्येत्) सिद्ध होगा और (ज्ञेयज्ञानाभावे) ज्ञेयज्ञानके अभाव होने पर (ज्ञातृत्वम्) ज्ञातृत्व (न) नहीं (सिध्येत्) सिद्ध होगा (तदभावे) ज्ञातृत्वके आभाव होनेपर (ज्ञानाश्रयत्वम्) ज्ञानाश्रय (न) नहीं (सिध्येत्) सिद्ध होगा (च) और (तदभावे) ज्ञानाश्रयके सिद्ध नहीं होनेसे (ज्ञानहानिः) ज्ञानकी हानि (स्यात्) हो जायेगी। (तस्मात्) इससे (स्वस्मै) अपने लिये (स्वयम्) अपनेसे स्वयं (प्रकाशज्ञानम्) प्रकाश ज्ञान (अहम्) अहं इस (व्यवहारगोचरः) व्यवहार का गोचर होता है। और (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण (आनन्दज्ञानादिगुणाः) आनन्दज्ञान आदिक गुण है। तथा (व्यापारः) व्यापार (अपरि॥ ऋन्न स्वरूपानन्दानुभवः) अपरिच्छिन्नस्वरूपके आनन्दका अनुभव है। तथा (लक्ष॰ म्) लक्षण (अणुत्वम्) अणु है और (द्रव्यत्वम्) द्रव्यत्व (गुणाश्रयत्वम्) गुणाश्रयको कहते हैं॥

❁

मू०—धर्मस्य[१] स्वरूपं[२] सत्यं[३] ज्ञानमनन्तमानन्दोऽमलं[४] स्वरूपनिरूपकगुणः[९] सत्यत्वं[१०] ज्ञानत्वमनन्तत्वमानन्दत्वमम-[११] लत्वं[१२] च,[१३] निरूपितस्वरूपविशेषणं[१४] परस्मै[१५] स्वयं[१६] प्रकाशत्वं[१७] परस्मै[१९] परप्रकाशत्वं[२०] च,[२१] एतेन[२२] स्वात्मानं[२३] व्यतिरिक्तांश्च[२४] जानातीत्युक्तं[२५] निरूपितस्वरूपविशेषणं[२९] क्रियाविशेषा[३०] व्यापार[३१] आत्मनोऽनवच्छिन्नानन्दावहत्वं[३२] लक्षणं[३३] विभुत्वं[३४] द्रव्यत्वं[३५] गुणाश्रयत्वमेवं[३६] च[३७] स्वरूपं[३८] स्वस्मै[३९] स्वयं[४०] प्रकाशः[४१] स्वभावः[४२] [४३]

परस्मै[४४] स्वयं[४५] प्रकाशः[४६] परस्मै[४७] विषयप्रकाशश्च[४८] अप्राकृताचित्परस्मै[४९] स्वयं[५०] प्रकाशः[५१] प्राकृताचिद्विकारघटादि-[५२] रन्याधीनप्रकाशः[५३], घटादितो[५४] वैलक्षण्यं[५५] स्वस्मै[५६] स्वयंभावः[५७] स्वभावस्य[५८] स्वरूपाद्वैलक्षण्यं[५९] परस्मै[६०] भावो[६१] विषयप्रकाशत्वं[६२] च घटादेर्वैलक्षण्यं[६३] स्वयं[६४] प्रकाशता[६५], घटादेः[६६] स्वरूपाद्वैलक्षण्यं[६७] परस्मै[६८] परप्रकाशः[६९], स्वभावतो[७०] वैलक्षण्यं[७१] स्वप्रकाशत्वाभावो[७२] विषयप्रकाशत्वाभावश्च[७३] स्वरूपानुभवे[७४] स्वरूप[७५] उत्कर्षः[७६], स्व-व्यतिरिक्तानुभवे[७७] स्वभाव[७८] उत्कर्षः[७९], धर्मिधर्मयोः[८०] सम्बन्धे[८१] स्वरूपं स्वरूपविशेषणं[८२] शेषत्वलाभस्तदेकार्थः[८३] निरूपितस्व रूपविशेषणं[८४] कैङ्कर्यैकरसत्वं[८५] व्यापारस्तत्प्रीतिदर्शनजाप्रीतिः[८६] लक्षणमनन्यार्हत्वं[८७] सा[८८] च[८९] तत्प्रकारतयावस्थितिः[९०] द्रव्यत्वं कैङ्कर्यलक्षगुणाश्रयत्वम्[९१]॥

अर्थ०- (धर्मस्य) धर्मका (स्वरूपम्) स्वरूप (सत्यम्) सत्य और (ज्ञानम्) ज्ञान तथा (अनन्तम्) अनन्त और (आनन्दः) आनन्द तथा (अमलम्) मलरहित है, और (स्वरूपनिरूपकगुणाः) स्वरूपके निरूपण करनेवाला गुण (सत्यत्वम्) सत्यत्व तथा (ज्ञानत्वम्) ज्ञानत्व और (आनन्दत्वम्) आनन्दत्व और (अमलत्वम्) अमलत्व है, (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण (परस्मै) परकेलिये (स्वयम्) स्वयं (प्रकाशत्वम्) प्रकाश रहना (च) और (परस्मै) परकेलिये (परप्रकाशत्वम्) परसे प्रकाश होना है (एतेन) इस पूर्वोक्तकथनसे (स्वात्मानम्) अपनी आत्माको (च) और (व्यतिरिक्तान्) आत्मासे दूसरोंको भी (जानाति) जानता है (इति) ऐसा (उक्तम्)कहा गया, और (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण (क्रियाविशेषाः) क्रियाविशेष है। तथा (व्यापारः) व्यापार (आत्मनः) आत्माके (अनवच्छिन्नानन्दावहत्वम्) अनवच्छिन्न आनन्दको देनेवाला है। और (लक्षणम्) लक्षण (विभुत्वम्) विभुत्व है। तथा (द्रव्यत्वम्) द्रव्यत्व (गुणाश्रयत्वम्) गुणाश्रयत्व है (च) और (एवम्) इस प्रकारके (स्वरूपम्) स्वरूप (स्वस्मै) अपने लिये (स्वयम्) स्वयं (प्रकाशः) प्रकाश है (च) और (परस्मै)

दूसरे के लिये (स्वयम्) स्वयं (प्रकाशः) प्रकाश करनेवाला होता है (अप्राकृताचित्) अप्राकृत अचित् (परस्मै) परके लिये (स्वयम्) स्वयं (प्रकाशः) प्रकाश है। और (प्राकृताचित्) प्राकृतअचित् (विकारघटादिः) विकारघटादिक (अन्याधीनप्रकाशः) दूसरेके अधिन प्रकाश है, (घटादितः) घट आदिकसे (वैलक्षण्यम्) वैलक्षण्य (स्वस्मै) अपने लिये (स्वयम्) स्वयं (भावः) भाव है (स्वभावस्य) स्वभावके (स्वरूपाद्वैलक्षण्यम्) स्वरूपसे वैलक्षण्य (परस्मै) परकेलिये (भावः) भाव है (च) और (विषयप्रकाशत्वम्) विषयका प्रकाशत्व है (घट्यादेः) घट आदिक का (स्वरूपात्) स्वरूपसे (वैलक्षण्यम्) वैलक्षण्य (परस्मै) परके लिये (परप्रकाशः) पर प्रकाश है (स्वभावतः) स्वभावसे (वैलक्षण्यम्) वैलक्षण्य (स्वप्रकाशत्वाभावः) स्वप्रकाशत्वका अभाव है (च)और (विषयप्रकाशत्वाभावः) विषयके प्रकाशत्वका अभाव है। तथा (स्वरूपानुभवे) स्वस्वरूपके अनुभवमें (स्वरूपः)स्वरूप ही (उत्कर्षः) उत्कर्ष है। और (स्वव्यतिरिक्तानुभवे) स्वस्वरूपसे अन्यके अनुभवमें (स्वभावः) स्वभाव ही (उत्कर्षः) उत्कर्ष है। और (धर्मिधर्मयोः) धर्मी तथा धर्मके (सम्बन्धे) सम्बन्धमें (स्वरूपम्) स्वरूप (स्वरूपविशेषणम्) स्वरूप का विशेषण है। और (शेषत्वलाभः) शेषत्व लाभ (तदेकार्थः) उसका एक श्रेष्ठ अर्थ है (निरूपितस्वरूपविशेषणम्) निरूपितस्वरूपविशेषण (कैंकर्यैकरसत्वम्) कैंकर्यैकरसत्व है। और (व्यापारः) व्यापार (तत्प्रीतिदर्शनजा) उस प्रेमके दर्शनसे उत्पन्न (प्रीतिः) प्रीति है। तथा (लक्षणम्) र ण (अनन्यार्हत्वम्) अनन्यार्हत्व है (च) और (सा) वह (तत्प्रकारतया) उस . कारताकरके (अवस्थितिः) अवस्थिति है। और (द्रव्यत्वम्) द्रव्यत्व (कैंकर्यल क्षणगुणाश्रयत्वम्) कैंकर्यलक्षण गुणाश्रयत्व है।। कमिति ।।

❁

मू०—ज्ञानत्वस्वयंप्रकाशत्वे धर्मिधर्मसाधारणे धर्मस्य विषयत्वमधिकंधर्मिणः प्रत्यक्त्कमधिकं ज्ञानत्वं नाम कस्य-चित्प्रकाशरूपत्वं स च स्वाकारोऽपिव्यवहारानुगुण्या-पादकत्वं च स्वविषयीकरणं ज्ञानान्तरेण निरपेक्षप्रकाशत्वं स्वयं प्रकाशत्वं धर्मस्य विषयत्वं नाम, स्वव्यतिरिक्तप्रकाश-कत्वम्, धर्मिणः प्रत्यक्त्कं नाम, स्वस्मै स्वभासत्वं तच्च स्वस्य

स्वप्रकाशफलित्वं कस्यचित्फलीतिसामान्याकारः स्वप्रकाश-
स्येति विशेषितश्चेत्प्रत्यक्तं भवति धर्मस्य निर्विशेषणसामा-
न्यत्वमेतद्व्याप्तं चेतनत्वं च नास्ति धर्मधर्मिणोः स्वयं
प्रकाशत्वेऽपि नित्यत्वादिविशेषणविशिष्टत्वात् ज्ञानान्तर-
वेद्यताधर्मभूतज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यतायां प्रसरणभेदेन
ज्ञानान्तरव्यपदेशः, संसरणस्वरूपयोग्यतापरतन्त्रचेतनत्वं
सहकारिकारणमनाद्याज्ञातिलङ्घनलक्षणापराधः, प्रधान-
कारणमीश्वरस्य निरंकुशस्वातन्त्र्यं परमप्राप्यस्य कैङ्कर्यस्य
स्वरूपयोग्यता शेषत्वे सति चेतनत्वं सहकारिकारणं
भक्तिप्रपत्तिलक्षणानुकूलवृत्ती प्रधानकारणमीश्वरस्य सह-
जकारुण्यं चेतनस्यैकः सङ्कल्प ईश्वरहृदये षोढा सङ्कल्पे
सति सम्भवति। ते च कर्तृत्वं कारयितृत्वमुदासीनत्वमनु-
मन्तृत्वं सहकारित्वं फलप्रदत्वं च, तत्र कर्तृत्वं नाम तस्य
पूर्वसङ्कल्पः कारयितृत्वं तत्सङ्कल्पयितृत्वमुदासीनत्वं
तत्कर्मानुगुणं तस्य प्रेरणमनुमन्तृत्वं नाम एतत्प्रवृत्तिसमये
निवर्तनसमर्थोऽप्यनिवर्तनं सहकारित्वमीश्वरं विना चेतनस्य
प्रवृत्तिनिवृत्त्यक्षमत्वात्फलप्रदत्वमेतत्कर्मानुगुणफल-
प्रदातृत्वम्॥२॥

अर्थ- (ज्ञानत्वस्वयंप्रकाशत्वे) ज्ञानत्वके अपने आप प्रकाश होनेपर (धर्मिर्मसाधारणे) धर्मी और धर्मके साधारण रहनेपर (धर्मस्य) धर्मका (विषयत्वम्) विषयत्व (अधिकम्) अधिक है। और (धर्मिणः) धर्मीका (प्रत्यक्तम्) प्रत्यक्त (अधिकम्) अधिक है (ज्ञानत्वं) ज्ञानत्व (नाम) माने (कस्यचित्) किसी के (प्रकाशरूपत्वम्) प्रकाशस्वरूपता है (च) और (सः) वह प्रकाशस्वरूप (स्वाकारः) अपनी आत्माका आकार है (अपि) तौभी (व्यवहारानुगुण्यापादकत्वम्)

व्यवहारके अनुगुण आपादक है (च) और (स्वषियीकारणम्) स्वविषयीकारण है। तथा (ज्ञानान्तरेण) दूसरे ज्ञानके (निरपेक्षप्रकाशत्वम्) अपेक्षा न करते हुए जो प्रकाश है, उसको (स्वयम्) स्वयं (प्रकाशत्वम्) प्रकाश कहते हैं। और (धर्मस्यं) धर्मका (विषयत्वम्) विषय (नाम) माने (स्वव्यतिरिक्तप्रकाशकत्वम्) अपनेसे अन्यको प्रकाश करना है। तथा (धर्मिणः) धर्मीका (प्रत्यत्तकम्) प्रत्यत्तक (नाम) माने (स्वस्मै) अपने लिये (स्वभासत्वम्) अपना प्रकाश होना है (च) और (तत्) वह (स्वस्य) अपना (प्रकाशफलित्वम्) प्रकाश के फली है, (कस्यचित्) किसीके (फली) फलवाला है (इति) ऐसा (सामान्याकारः) सामान्य आकार है (स्वप्रकाशस्य) अपने प्रकाशके (इति) ऐसा (विशेषितः) विशेषण (चेत्) यदि किया जाता है तो (प्रत्यत्तकम्) प्रत्यत्तक (भवति) होता है। और (धर्मस्य) धर्मका (निर्विशेषसामान्यत्वम्) विशेषणरहित सामान्य है (च) और (एतत्) इससे (व्याप्तम्) व्याप्त (चेतनत्वम्) चेतनता (न) नहीं (अस्ति) है (धर्मधर्मिणोः) धर्म तथा धर्मीके (स्वयम्) अपने आप (प्रकाशत्वे) प्रकाश रहनेपर (अपि) भी (नित्यत्वादिविशेषणविशिष्टत्वात्) नित्यत्व आदिक विशेषणसे युक्त होनेसे (ज्ञानान्तरवेद्यताधर्मभूतज्ञानस्य) अन्य ज्ञानसे जानने योग्य धर्मभूतज्ञानके (ज्ञानान्तरवेद्यतायाम्) दूसरे ज्ञानसे जानने योग्य के विषयमें (प्रसरणभेदेन) प्रसरणके भेदसे (ज्ञानान्तरव्यपदेशः) ज्ञानान्तरका व्यपदेश होता है (संसरणस्वरूपयोग्यता) संसरणके स्वरूपकी योग्यता (परतन्त्रचेतनत्वम्) पराधीन चेतनता है। और (सहकारिकारणम्) सहकारिकारण (अनाद्याज्ञातिलङ्घनलक्षणापराधः) अनादिकालसे भगवत्की आज्ञाका उल्लंघन करना रूप अपराध है। और (प्रधानकारणम्) प्रधानकारण (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (निरंकुशस्वातन्त्र्यम्) अकुंशरहित स्वतन्त्रता है। तथा (परमप्राप्यस्य) परमप्राप्य (कैङ्कर्यस्य) कैङ्कर्यके (स्वरूप्योग्यता) स्वरूपकी योग्यता (शेषत्वे) शेष(सति) होते हुए (चेतनत्वम्) चेतनता है। और (सहकारिकारणम्) सहकारिकारण (भक्तिप्रपत्तिलक्षणानुकूलवृत्ती) भक्ति तथा प्रपत्तिके लक्षणके अनुकूलवर्तना है। और (प्रधानकारण्म्) प्रधान कारण (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (सहजकारुण्यम्) सहज दया है, (चेतनस्य) चेतन जीवका (एकः) एक (सङ्कल्पः) सङ्कल्प है। और (ईश्वरहृदये) परमेश्वरके हृदयमें (सङ्कल्पे) सङ्कल्प (सति) होनेपर (षोढ़ा) छः प्रकारका (सम्भवति) होता है (च) और (ते) वे छः प्रकारके ये हैं (कर्तृत्वम्) पहला कर्तृत्व (कारयितृत्वम्) दूसरा कारयितृत्व (उदासीनत्वम्) तीसरा उदासीनता (अनुमन्तृत्वम्) चौथा अनुमन्तृत्व (सहकारित्वम्) पाचवाँ सहकारिता (च) और (फलप्रदत्वम्) छठवाँ फलप्रदत्व है। (तत्र) उनमें (कर्तृत्वम्) कर्तृत्व (नाम) माने (तस्य) भगवत्का (पूर्व सङ्कल्पः) पहलेका सङ्कल्प है। और (कारयितृत्वम्) कारयितृत्वमाने (तत्सङ्कल्पयितृत्वम्) भगवत्का सङ्कल्पयितृत्व

है। तथा (उदासीनत्वम्) उदासीन माने (तत्कर्मानुगुणम्) जीवके उस कर्मके अनुसार (तस्य) उसकी (प्रेरणम्) प्रेरणा करना है। और (अनुमन्तृत्वम्) अनुमन्तृ (नाम) माने (एतत्प्रवृत्तिसमये) इसकी प्रवृत्तिके समयमें (निवर्तनसमर्थः) लौटानेमें समर्थ होते हुए (अपि) भी (अनिवर्तनम्) नहीं लौटाना है। (सहकारित्वम्) सहकारीमाने (ईश्वरम्) परमेश्वरके (विना) बिना (चेतनस्य) चेतन जीवके (प्रवृत्तिनिवृत्यक्षमत्वात्) प्रवृत्तिकी निवृत्तिको नहीं सहना है। और (फलप्रदत्वम्) फलप्रदमाने (एततृतकर्मानुगुणफलप्रदातृत्वम्) इस चेतनके कर्मके अनुसार फल देना है। अब यहाँ पर शङ्का होती है कि कर्म किसको कहते हैं। और कर्म कितने प्रकारका है। तथा कर्मके फल कितने प्रकारके हैं। इन प्रश्नों का उत्तर लिखा है कि-

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥ भगवद्गी० अ० ८, श्लो० ३॥

जो मनुष्यादि रूप सम्पादक विसर्ग है, वही कर्म पदार्थ है॥३॥

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम्। अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० २३॥

जो कर्म, शास्त्रविधिसे नियत किया हुआ, और कर्तापनके अभिमानसे रहित फलको न चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा बिना रागद्वेषसे किया हुआ है, वह कर्म सात्त्विक कहा जाता है॥२३॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः। क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० २४॥

और जो कर्म बहुत परिश्रमसे युक्त है, तथा फलको चाहनेवाले, और अहङ्कार युक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है ॥२४॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्। मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते॥ भगवद्गी० अ० १८ श्लो २५॥

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा, और सामर्थ्य न विचार कर, केवल अज्ञानसे किया जाता है, वही कर्म तामस कहा जाता है॥२५॥

इस भगवद्गीताके प्रमाण से सात्त्विक, राजस, तामस, भेद करके कर्म तीन प्रकारके होते हैं। और भविष्य पुराणमें लिखा है कि-

फलं विनाप्यनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटम्। काम्यानां स्वफलार्थं तु दोषघातार्थमेव तु॥ नैमित्तिकानां करणे त्रिविधं कर्मणां फलम्॥ क्षयं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य

प्रचक्षते॥ अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्यवायस्य मन्वते ॥ नित्यां क्रियां तथा चान्य आनुषंगिकफलं विदुः ॥ भविष्य पु०॥

बिना फलके नित्य कर्मोका अनुष्ठान निश्चय करके इच्छित है, और नैमित्तिक कर्मके करनेपर तीन प्रकारके फल होते हैं। कोई कोई प्राप्त पापका नाश कहते हैं, और अन्य लोग प्रत्यवायकी उत्पत्तिको नहीं मानते हैं, तथा अन्य सब नित्यक्रिया, और आनुषङ्गिक फल जानते हैं। और मनुस्मृति में लिखा है कि-

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्ममानसम्॥

मनु० अ० १२, श्लो० ५॥

परायेधनको अन्यायसे लेलें इस भाँति सोचना, और मनसे ब्रह्मवध आदिक निषिद्ध का चिन्तन करना, और परलोक नहीं है, देह ही आत्मा है, इस प्रकार का अशुभ फल देनवाला मानस कर्म तीन प्रकारका होता है, और इससे विपरीत शुभफल देनेवाला भी तीन प्रकार का होता है॥५॥

पारुष्यमनृतंचैव पैशुन्यं चापिसर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥

मनु० अ० १२, श्लो० ६॥

अप्रिय कहना, झूठ बोलना,पीछे पराये दूषणोंको कहना और असम्बद्ध भाषण करना, ये चार प्रकारके अशुभफल देनेवाले वाचिक कर्म होते हैं, तथा इससे विपरीत शुभफल देनेवाले भी चार प्रकार के होते हैं॥६॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवविधानतः॥ परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥ मनु० अ० १२, श्लो०७॥

नहीं दिये हुए को हरण कर लेना, और वेदादिक निषिद्ध हिंसाको करना, तथा परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करना, ये तीन प्रकारके अशुभफल देनेवाले शारीर कर्म होते हैं और इससे विपरित शुभफल देनेवाले भी चार प्रकारके होते हैं॥ ७॥

और वैदिक कर्मके विषयमें लिखा है कि-

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्मवैदिकम्॥ मनु० अ०१२, श्लो० ८८॥

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते॥ निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते॥ ८९॥

प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकार का वैदिक कर्म जानना चाहिये॥८८॥

इसलोकमें या परलोकमें जो कामनासे कर्म किया जाता है, उसको प्रवृत्त कर्म कहते हैं, और जो फलकी कामना रहित ज्ञानपूर्वक किया जाता है, उसको निवृत्त कर्म कहते हैं।।८९।।

और कर्म के फलके विषयमें लिखा है कि–

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्॥ भगवद्गी०अ० १८, श्लो० १२॥

केवल पुण्य कर्म का फल भला होता है, केवल पाप कर्म का फल बुरा होता है, और जिसमें पाप पुण्य दोनों मिले रहते हैं, उसका भला बुरा दोनों फल होता है, ये अनिष्ट इष्ट मिश्र इस भेद से तीन प्रकार का कर्म का फल होता है।।१२।।

इस द्वितीय वार्ता में छः सौ छानबे पद हैं। यदि यह कोई प्रश्न करे कि पद किसको कहते हैं तो इसका उत्तर लिखा है कि–

(सुप्तिङन्तं पदम्)॥ व्या० अ० १, पा० ४, सू० १४॥

सुबन्त और तिङन्त को पद संज्ञा होती है।।१४।।

इतिश्रीकलिवैरिदाससुन्दरजामातृमुन्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२॥

❁

॥ अथवेदान्तिनोक्तावार्ता ॥

मू०–श्रीशेषाद्रौ वेदान्तिनोक्ता वार्ता, अहङ्कार एकश्चण्डालः, ममता तच्चण्डालभार्या रागद्वेषौ तयोः प्रजे, अस्मिन्नहंकार एकस्मिन्हते सर्वाः नश्यन्ति। तथाहि पतिव्रतात्वाद्भार्याऽनुम्रियते। स्तन्यप्रदात्र्यभावात् शिशू पिपासितौ नश्यतः। अहंकारः कश्चन सर्पः, ममता तद्भोगः रागद्वेषौ पक्षौ पक्षयोः छिन्नयोर्निवर्तते। संसारिचेतनाः, अविद्यया सह वर्तन्ते, अविद्यायाहंकारममकारौ, अनया रागद्वेषौ जायेते, एताभ्यां चतुर्विधानि शरीराणि भवन्ति, शरीरेण हेतुना पंचसु विषयेषु रुचिर्भवति, तद्विषयानुभवार्थं

कुमार्गेषु[५७] प्रवर्तन्ते[५८], तेचानृतभाषणं[५९] चौर्यं[६०] परहिंसा[६१] नीचसेवा[६२], एवं[६३] भूतस्य[६४] चेतनस्य[६५] स्वामिनः[६६] सौहार्देन[६७] गुणेनानुचिन्तितं[६८] सुकृतमुत्पद्यते[६९], तत्सुकृतहेतुनास्मादप्येतदनर्थासहिष्णुः[७०] स्वामी[७१] शीतलं[७२] वीक्षते[७३], तेनैतस्मिन्नद्वेषो[७४] भवति, तेन[७५] तन्मनः[७६] प्रसन्नं[७७] भवति[७८], तत्प्रीत्यास्य[७९] सत्वोद्रेको[८०] भवति, तेन[८१] मम[८२] सुकृतं[८३] भूयादित्यपेक्षा[८४] भवति[८५], तया सात्त्विकसंगतिर्भवति[८६], तया[८७] सदाचार्यं[८८] समाश्रयते[८९], स चोपायभूतानर्थानुपदिशति[९०], ते[९१] च परिदृश्यमानशरीराद्विलक्षण[९२] आत्मा, स[९३] च न[९४] स्वतंत्रः[९५] किन्तु परतंत्रः[९६] परतंत्रश्च[९७] न देवतान्तराणां[९८] स्वामिन[९९] एव[१००] परतंत्रः[१०१], तत्पारतंत्र्यसीमा[१०२] श्रीवैष्णवपारतंत्र्यमस्य[१०३] फलं[१०४] स्वामिनश्चरणयोः[१०५] कैंकर्यं[१०६] तस्य[१०७] विरोधी[१०८] अहंकारो[१०९] ममकारः[११०] शरीरसम्बन्धश्च[१११], तन्निवृत्त्युपायस्तच्चरणावेतेषामर्थानां[११२] ज्ञापकं[११३] प्रमाणं[११४] रहस्यत्रयमिति[११५], अनन्तरमेतदर्थोपदेष्ट्याचार्ये[११६] कृतज्ञो[११७] भवति, सात्त्विकसंगतिं करोति[११८]-अनन्तरमाचार्यकैंकर्यैकपात्रो[११९] भवति-आचार्यकैंकर्यमनिष्टाकरणमिष्टकरणं[१२०] च, तयोरनिष्टनिवृत्तिरेव[१२१] प्रधानमिष्टाकरणमुपेक्षापर्यन्तमेव-अनिष्टानिवृत्तौ[१२२] निगृह्य[१२३] त्यजति, आचार्येण[१२४] त्यक्तमीश्वरो[१२५] त्यजति[१२६], पश्चात्सहायाः[१२७] प्राचीनकर्माणि[१२८] यमभटाश्च[१२९], एतदुभयं शास्त्रेणाचार्योक्त्या[१३०] ज्ञातव्यं तच्च[१३१] फलसाधनकैंकर्यं[१३२] स्वरूपं[१३३] च तत्साधनत्वेन[१३४] न प्रतिपद्येत[१३५], आचार्यप्रीत्यर्थं[१३६] भगवत्कैंकर्यं[१३७] भागवतकैंकर्यं[१३८] च कुर्यात्[१३९], एवं[१४०] भूतस्याधिकारिणः[१४१] प्राप्यं[१४२] सिध्यति॥३॥

।।वेदान्तिस्वामिस्तुतिः।।

अर्थ- नमोवेदान्तवेद्याय जगन्मङ्गलहेतवे।

यस्य वागमृतासारपूरितं भुवनत्रयम्।।९।।

(श्रीशेषाद्रौ) श्रीशेषाचलपर (वेदान्तिना) वेदान्ती स्वामीजीके द्वारा (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता यह है कि (अहंकारः) अहंकार (एकः) एक (चण्डालः) चंडाल है। (ममता) ममता (तच्चण्डालभार्या) अहंकाररूप चंडालकी स्त्री है। तथा (रागद्वेषौ) राग और द्वेष ये दोनों, राग और द्वेष का लक्षण पतञ्जलि महर्षि ने कहा है कि-

॥ सुखानुशयी रागः॥ योग० अ०१, पा०२, सू०७॥

जो जो सुख पहले प्राप्त हो चुके हैं, या जिस जिस पदार्थ में यह ज्ञान हुआ है कि इससे सुख होता है अर्थात् यह सुखका साधन है ऐसे सुख या सुख साधन पदार्थ जाने हुएको जो उस सुखके स्मरण होने पर उस सुख के होने में जो स्मरणसे तृष्णा या लोभ होता है उसको राग कहते हैं।७।।

॥ दुःखानुशयी द्वेषः॥ योग० अ०१, पा०२, सू०८॥

जो जो दुःख या जिससे दुःख पहले प्राप्त हुआ है उसके अनुस्मृति पूर्वक स्मरण होनेपर दुखःमें या उसके साधनमें जो क्रोध होता है उसको द्वेष कहते हैं।।८।। ये दोनों रागद्वेष (तयोः) उन दोनों अहंकार और ममताके (प्रजे) लड़के हैं (अस्मिन्) इस (एकस्मिन्) एक (अहंकारे) अहंकारके (हते) मारनेपर (सर्वाः) ममता आदिक सब (नश्यन्ति) नष्ट हो जाते हैं (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (पतिव्रतत्वात्) पतिव्रता होनेसे (भार्या) अहंकारकी ममता स्त्री (अनुम्रियते) अहंकारके मरनेके पीछ मर जाती है। और (स्तन्यप्रदात्र्यभावात्) स्तन के दूध देनेवाली माँ के अभावसे (पिपासितौ) दूध पीनेकी इच्छावाले (शिशू) वे दोनों रागद्वेषरूप लड़के (नश्यतः) नष्ट हो जाते हैं। (अहंकारः) अहंकार, अहंकार को कपिल महर्षिने कहा है कि-

॥ चरमोऽहङ्कारः॥ सांख्य०अ०१, सू० ७२॥

मनके पश्चात् अभिमान मानवृत्ति संयुक्त जो कार्य है वह अहंकार है।। ७२।। यह अहंकार (कश्चन) कोई (सर्पः) साँप है। और (ममता) ममता (तद्भोगः) अहंकाररूप सर्प का भोग है। तथा (रागद्वेषौ) राग और द्वेष ये दोनों (पक्षौ) अहङ्काररूप साँपके पक्ष हैं। (पक्षयोः) रागद्वेषरूप दोनों पक्षों के (छिन्नयोः) काट देनेपर (निवर्तते) अहंकाररूप सर्प निवृत हो जाता है (संसारिचेतनाः) संसारी जीव (अविद्यया) अविद्याके (सह) साथ (वर्तन्ते) रहते हैं (अविद्यया) अविद्यासे (अहंकारममकारौ) अहंकार और ममकार होते हैं। तथा (अनया) इस अविद्यासे (रागद्वेषौ) रागद्वेष (जायेते)

उत्पन्न होते हैं। और (एताभ्याम्) इन दोनों राग तथा द्वेषसे (चतुर्विधानि) अण्डज, पिण्डज, ऊष्मज, और स्थावर, ये चार प्रकारके (शरीराणि) शरीर (भवन्ति) होते हैं। और (शरीरेण) शरीरके (हेतुना) कारणसे (पंचसु) पाँच (विषयेषु) गन्ध, रस, रूप, स्पर्श .शब्द इन विषयोंमें (रुचिः) प्रीति (भवति) होती है। और (तद्विषयानुभवार्थम्) उन विषयोंके अनुभव करनेके लिये (कुमार्गेषु) बुरे मार्गोंमें (प्रवर्तन्ते) प्रवृत्त होते हैं (च)और (ते) वे बुरे मार्ग ये हैं (अनृतभाषणम्) झूठ बोलना (चौर्यम्) चोरी करना (परहिंसा) दूसरे जीवको मारना और (नीचसेवा) नीचों की सेवा करना है (एवम्) इस प्रकार (भूतस्य) भये हुये (चेतनस्य) चेतन जीवके (स्वामिनः) स्वामी श्रीमन्नारायणके (सौहार्देन) सौहार्द (गुणेन) गुणसे (अनुचिन्तितम्) अनुसन्धान किया हुआ (सुकृतम्) सुकृत (उत्पद्यते) उत्पन्न होता है। और (तत्सुकृतहेतुना) उस सुकृतके कारणसे (अस्मात्) इससे (अपि)भी (एतदनर्थासहिष्णुः) इन अनर्थोंको नहीं सहन करनेवाला (स्वामी) स्वामी (शीतलम्) शीतल (वीक्षते) देखता है (तेन) उस शीतल देखनेसे (एतस्मिन्) इस जीवात्मा में (अद्वेषः) प्रीति (भवति) होती है (तेन) उस अद्वेषसे (तन्मनः) उसका मन (प्रसन्नम्) प्रसन्न (भवति) होता है और (तत्प्रीत्या) मनके प्रसन्न होनेसे (अस्य) इस चेतन का (सत्वोद्रेकः) सत्व का उद्रेक (भवति) होता है। तथा (तेन) उस सत्वोद्रेकसे (मम) मेरा (सुकृतम्) सुकृत (भूयात्) हो (इति) ऐसी (अपेक्षा) अपेक्षा (भवति) होती है (तया) उस सात्विक संगतिसे (सदाचार्यम्) सच्चे आचार्यको (समाश्रयते) समाश्रयण करता है। आचार्य का लक्षण श्रीब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि-

॥ स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि। आचिनोति च शास्त्राणि आचार्यस्तेन चोच्यते॥ श्रीब्रह्माण्डपुराण पूर्वभा० अनुषंगपा० २, अध्याय ३२, श्लोक ३२॥

स्वयं जो आचरण करता है और आचरण करवाता है तथा शास्त्रोंको एकत्रित करता है उसको आचार्य कहते हैं।।३२।। (च) और (सः) वह सदाचार्य (उपायभूतान्) उपायभूत (अर्थान्) अर्थोंको (उपदिशति) उपदेश देते हैं। (च) और (ते) वे अर्थ ये हैं कि (परिदृश्यमानशरीरात्) परिदृश्यमान इस देहसे (विलक्षणः) विलक्षण (आत्मा)आत्मा है (च) और (परतंत्रः) परतंत्र (देवतान्तराणाम्) अन्य देवताओंके (न) नहीं है (स्वामिनः) नारायण स्वामीका (एव) ही निश्चय करके (परतंत्रः) परतंत्र है (तत्पारतंत्र्यसीमा) उस परतंत्रताकी सीमा (श्रीवैष्णवपारतंत्र्यम्) श्रीवैष्णवोंकी परतंत्रता है (अस्य) और इसका (फलम्) फल (स्वामिनः) नारायण स्वामीके (चरणयोः) दोनों श्रीचरणों का (कैंकर्यम्) कैंकर्य है। और (तस्य) उसका (विरोधी)

विरोधी (अहंकारः) अहंकार तथा (ममकारः) ममकार (च) और (शरीरसंबन्धः) शरीरका संबन्ध है (तन्निवृत्त्युपायः) विरोधी की निवृत्तिका उपाय (तच्चरणौ) भगवत्के दोनों चरणारविन्द हैं (एतेषाम्) इन (अर्थानाम्) अर्थोंके (ज्ञापकप्रमाणम्) जानानेवाला प्रमाण (रहस्यत्रयम्) रहस्यत्रय है (इति) इसके (अनन्तरम्) बाद (एतदर्थोपदेष्टरि) इस अर्थके उपदेश देनेवाले (आचार्ये) आचार्यके विषयमें (कृतज्ञः) कृतज्ञ (भवति) होता है इसके बाद (सात्त्विकसंगतिम्) सात्त्विकोंकी संगतिको (करोति) करता है (अनन्तरम्) इसके बाद (आचार्यकैंकर्यैकपात्रः) आचार्यके कैंकर्यका एकपात्र (भवति) होता है (आचार्यकैंकर्यम्) आचार्यका कैंकर्य (अनिष्टकरणम्) अनिष्टको नहीं करना (च) और (इष्टकरणम्) इष्ट को करना, इस भेद से दो प्रकार का होता है। (तयोः) अनिष्टकरण तथा इष्टकरण इन दोनोंमें (अनिष्टनिवृत्तिः) अनिष्टनिवृत्ति (एव) ही निश्चय करके (प्रधानम्) मुख्य है (इष्टाकारण्म्) इष्टको नहीं करना (उपेक्षापर्यन्तम्) उपेक्षापर्यन्त (एव) ही (अनिष्टनिवृत्तौ) अनिष्टकी निवृत्ति नहीं होनेपर (निगृह्य) निग्रह करके (त्यजति) छोड़ देता है (आचार्येण) आचार्यसे (त्यक्तम्) छोड़े हुएको (ईश्वरः) ईश्वर (त्यजति) छोड़ देता है। ईश्वरका लक्षण लिखा है कि-

॥ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥ योग० अ० १, पा०१, सू०२४॥

अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश, यह पाँच क्लेश तथा कर्म, धर्म, अधर्म, उनके फल फलानुकूल संस्कार आशय जो मनमें रहते हैं उनके संबन्धसे रहित पुरुष विशेष ईश्वर है ॥२४॥ (पश्चात्) पीछेसे (सहायाः) सहाय (प्राचीनकर्माणि) पुराना कर्म (च) और (यमभटाः) यमराजके दूत हैं (एतत्) ये (उभयम्) दोनों (शास्त्रेण) शास्त्रसे और (आचार्योक्तया) आचार्यके वचनसे (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य हैं (च) और (तत्) वह (फलसाधनम्) फलका साधन है (च) और (कैंकर्यम्) कैंकर्य (स्वरूपम्) स्वरूप है (एतत्) यह स्वरूप (साधनत्वेन) साधनसे (न) नहीं (प्रतिपद्यते) प्राप्त होगा (आचार्यप्रीत्यर्थं) आचार्य की प्रीतिके लिये (भगवत्कैंकर्यम्) भगवान्के कैंकर्य को (कुर्यात्) करे (एवम्) इस प्रकार (भूतस्य) भये हुए (अधिकारिणः) अधिकारीके (प्राप्यम्) प्राप्य (सिद्ध्यति) सिद्ध होता है। इस वार्ताके एक सौ सन्तानबवें पदमें भागवत शब्द आया है इससे यह प्रश्न होता है कि भागवत किसको कहते हैं। इस प्रश्नका उत्तर श्रीमद्भागवत महापुराणमें लिखा है कि-

सर्वभूतेषू यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः॥ भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ श्रीमद्भाग० स्कं० ११, अध्या०२, श्लो० ४५॥ ईश्वरे तदधीनेषु वालिशेषु द्विषत्सु

च॥ प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥४६॥ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते॥ न तद्भक्तेषु चान्ययेषु सभक्तः प्राकृतः स्मृतः॥४७॥ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्सवै भागवतोत्तमः॥४८॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः॥ संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्याहरेर्भागवतप्रधानः॥४९॥ नकामकर्मबीजानांयस्य चेतसि संभवः॥ वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥५०॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः॥ सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः॥५१॥ न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा॥ सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥५२॥ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्म सुरादिभिर्विमृग्यात्॥ न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः॥५३॥ विसृजतिहृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः॥ प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥५५॥

जो पुरुष सम्पूर्ण जीवोंमें अपने बराबर भगवद्भावको देखता है और सम्पूर्ण जीवोंको भगवान में देखता है वह उत्तम भागवत है॥४५॥

और जो पुरुष ईश्वरमें प्रेम और भागवतोंमें मित्रता तथा वालिशोमें कृपा और शत्रुओंमें उपेक्षा करता है वह मध्यम भागवत है॥४६॥ तथा जो पुरुष हरिकी प्रीति के लिये भगवत्की मूर्तिमें श्रद्धासे पूजा करता है और भागवतोंमें नहीं पूजा करता है वह प्राकृत भागवत है॥४७॥ और जो पुरुष इन्द्रियोंसे विषयोंको ग्रहण करके न द्वेष करता है और न तो प्रसन्न होता है इस समस्त संसारको जो श्री विष्णुकी माया जानता है, वह निश्चय करके उत्तम भागवत है॥४८॥ जो पुरुष शरीर इन्द्रिय, प्राण मन, और बुद्धिके जन्म, नाश, भूख, डर, इच्छा, कृच्छ्र, आदिक संसारके धर्मोंसे मोहित नहीं होता है, नारायणके स्मरण द्वारा वह श्रेष्ठ ब्राह्म भागवत है॥४९॥ और जिसके चित्तमें काम कर्मका बीज नहीं उत्पन्न होता है और वासुदेवके केवल भक्त जो हैं, उनको निश्चय करके उत्तम भागवत कहते हैं॥५०॥ जिसका इस देहमें जन्म और कर्मसे तथा वर्ण और आश्रमसे अहंभाव नहीं होता है वह निश्चय नारायण का प्रिय होता है॥५१॥ और जिसका धनों में या आत्मामें यह मेरा है और यह दूसरेका है ऐसा भेद भाव नहीं होता है, तथा जो सब जीवोंके विषयमें सम और शान्त रहता है वह निश्चय करके उत्तम भागवत है॥५२॥ अकुण्ठित स्मरणवाला जो पुरुष तीनों लोकके राज्यके लिये भी हरि में आत्मा है जिन लोगोंका ऐसे देवताओंसे ढूढ़ने योग्य भगवत्का चरणारविन्द से लव या निमिषार्ध नहीं चलता है वह उत्तम वैष्णव है॥५३॥ अवशमें भी कहनेसे पापके समूहको नाश करनेवाला हरिसे जिस पुरुषका हृदय नहीं चलायमान होता है और जो प्रणयरूपी जीभसे भागवतके चरण कमलको धर लिया है वह उत्तम

भागवत कहा गया है।।५५।। और भी देखिये लिखा है कि।।

चिह्नितं शंखचक्राद्यैः, श्वेतमृत्पिण्डधारिणम्।। तुलसीनलिनाक्षाणां दधानामालिकाद्वयम्। तेवै भागवताः प्रोक्ता नान्येवेदविदांवराः।। भार्गवपु०।।

जिनके बाहुमूल शंख और चक्रसे चिह्नित हैं और द्वादश सफेद मिट्टीके ऊर्ध्वपुंड्र धारण किये हैं तथा गलेमें तुलसीके काठकी और कमलके बीज की दो मालाओंको धारण किये हैं, उन्हींको भागवत कहते हैं और अन्य जो वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भी होतो भागवत नहीं है।। और भी लिखा है कि।।

अर्थपंचकतत्त्वज्ञाः पंचसंस्कारसंस्कृताः। आकारत्रयसंपन्ना महाभागवता स्मृताः।। पराशरीयधर्मशा० उत्तरखं० अध्या० १० श्लो०, ९।।

स्वस्वरूप १, परस्वरूप २, पुरुषार्थ स्वरूप ३,उपाय स्वरूप ४, विरोधि स्वरूप ५, इन पाँच अर्थोंके तत्वोंके जो जाननेवाले हों, और ताप १, पुंड्र २, नाम ३, मंत्र ४, याग ५, इन पाँच संस्कारोंसे जो संस्कृत हों तथा अनन्यार्हत्व १, अनन्य भोग्यत्व २, अनन्यशरणत्व ३, रूप तीन आकारोंसे जो संपन्न हों उनको महाभागवत कहे हैं ।।९।। इस तीसरी वार्तामें दो सौ चार पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम्।।३।।

अब वार्तामालाकार आप्तश्रीकलिवैरिदासजी की वार्ताको कहते हैं।

।। अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ।।

मू०–स्वस्वरूपसीमा[१] तदीयशेषत्वं[२] परस्वरूपसीमा[३]-र्चावतारः[४], विरोधिस्वरूपसीमाहंकारममकारौ[५], उपायस्वरूप[६]-सीमा भगवत्कृपा[७], उपेयस्वरूपसीमा[८] भगवन्मुखोल्लास[९] इति कलिवैरिदासाः[१०]।।४।।

।। कलिवैरिदासस्तुतिः।।

अर्थ--सहस्त्रगीतेर्व्याख्यानंविदधे कलिजिन्महत्।।

चतुर्विंशतिसाहस्त्रग्रन्थसंख्यायुतं तदा ।।१०।।

(स्वस्वरूपसीमा) स्वस्वरूपकी सीमा (तदीयशेषत्वम्) भागवतों की शेषता है। तथा (परस्वरूपसीमा) परस्वरूपकी सीमा (अर्चावतारः) अर्चावतार भगवान्

हैं। और (विरोधिस्वरूपसीमा) विरोधिस्वरूपकी सीमा (अहङ्कारममकारौ) अहङ्कार और ममकार हैं। तथा (उपायस्वरूपसीमा) उपाय स्वरूपकी सीमा (भगवत्कृपा) भगवत्की कृपा है। और (उपेयस्वरूपसीमा) उपेय स्वरूपकी सीमा (भगवन्मुखोल्लासः) भगवत्के मुखारविन्दकी प्रसन्नता है (इति) ऐसा (कलिवैरिदासाः) कलिवैरिदासजी ने कहा है। इस वार्तामें बारह पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।४।।

अब भरतांशसंभूतदाशरथि स्वामीजी की वार्ता कहते हैं कि-

।।अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता।।

मू०-विभूतिद्वयमपीश्वरशेषमत्रवर्तमाना बद्धा नित्याश्च, तत्र बद्धा द्विविधाः, मुमुक्षवः संसारिणश्चेति, एते च निवृत्ताहंकारममकाराः अहंकारममकारनिमग्ना इति जानन्तः अहंकारममकारनिमग्नाश्च प्रथमा नित्या मुक्ताश्च मध्यमा मुमुक्षवः चरमा नित्यसंसारिणः अत्र प्रथमानीश्वरः स्वभोगविषयान् करोति मध्यमान् स्वकृपाविषयान् करोति चरमान् स्वलीलाविषयान् करोतीति दाशरथिः।।५।।

।। दाशरथिस्वामिस्तुतिः।।

अर्थ- मेषे पुनर्वसुदिने पाञ्चजन्यांशसंभवम्।।

यतीन्द्रपादुकाभिख्यं वन्देदाशरथिं गुरुम्।।११।।

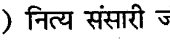
(विभूतिद्वयम्) लीलाविभूति और त्रिपादविभूति ये दोनों विभूतियाँ विभूति दो हैं यह लिखा है कि-

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।। यजु० अध्या० ३१, मं०३।।

एक पैर में सम्पूर्ण विश्व है और दिवलोकमें इसका त्रिपाद्विभूति नामका अमृत स्थान है।।३।। विभूति दोनों (अपि) भी (ईश्वरशेषम्) परमेश्वरका शेष हैं (अत्र) यहाँ पर (वर्तमानाः) वर्तमान (बद्धा) बद्धजीव (च) और (नित्याः) नित्यजीव हैं (तत्र) उसमें (बद्धाः) बद्धजीव (द्विविधाः) दो प्रकारके हैं (मुमुक्षवः) एक

मुमुक्षु जीव (च) और (संसारिणः) संसारी जीव दूसरा (इति) हैं (च) और (एते) ये जीव (निवृत्ताहंकारममकाराः) अहंकार और ममकारके निवृत होनेपर (अहंकारममकारनिमग्नाः) अहंकार और ममकारमें निमग्न हैं (इति) ऐसा (जानन्तः) जानते हुए (च) भी (अहंकारममकारनिमग्नाः) अहंकार और ममकारमें निमग्न (प्रथमाः) प्रथम (नित्याः) नित्यजीव हैं (च) और (मुक्ताः) मुक्तजीव हैं। और (मध्यमाः) मध्यम (मुमुक्षवः) मुमुक्षु जीव हैं। और (चरमाः) चरम (नित्यसंसारिणः) नित्य संसारी जीव हैं (अत्र) यहाँ पर (प्रथमान्) प्रथम नित्य और मुक्त जीवोंको (ईश्वरः) परमेश्वर (स्वभोगविषयान्) अपने भोगका विषय (करोति) करता है। और (मध्यमान्) मध्यम मुमुक्षु जीवोंको (स्वकृपाविषयान्) ईश्वर अपनी कृपाका विषय (करोति) करता है। और (चरमान्) चरम नित्य संसारी जीवोंको (स्वलीलाविषयान्) परमेश्वर अपनी लीलाका विषय (करोति) करता है (इति) ऐसा (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजी ने कहा है, इस वार्तामें चौवालिस पद हैं।

इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥५॥



अब श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्तावार्ता ॥

मू०-श्रीकृष्णपादगोष्ठ्यां श्रीवैष्णवाः संघीभूयोपायभूतां वार्तां वदस्वेति विज्ञापयामासुस्तदा तान्प्रति तस्य वार्ता वयं लीलाविषया उत् कृपाविषया इति पप्रच्छुः, मग्नाश्चेल्लीलाविषया भवामः, मग्ना इति जानीमश्चेत्कृपाविषया भवामः, इत्यवोचत् ॥६॥

॥ कृष्णपादस्तुतिः ॥

अर्थ- जगाम सहसाधीमांस्तद्विष्णोः परमं पदम्।
नीत्वा सप्तेनवेत्यब्दान् कृष्णपादो महायशाः ॥१२॥

(श्रीकृष्ण पादगोष्ठ्याम्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की सभामें (श्री वैष्णवाः) श्री वैष्णव सबों ने (संघीभूय) इकट्ठा होकर (उपायभूताम्) भगवत्प्राप्तिकी उपायभूत

(वार्ताम्) वार्ताको (वदस्व) भासमान कहिये "वदस्व" यहाँपर।। (भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमंत्रणेषु वदः) ।व्या० अ० १, पा० ३, सू० ४७।। इस सूत्रसे आत्मनेपद हुआ है (इति) ऐसा (विज्ञापयामासुः) विज्ञापन किया, (तदा) तब (तान्) उन श्रीवैष्णवोंके (प्रति) प्रति (तस्य) उस श्रीकृष्णपाद स्वामीजीकी (वार्ता) वार्ता हुई, और (वयम्) हम सब (लीलाविषयाः) लीलाके विषय हैं (उत्) या (कृपाविषयाः) भगवत्की कृपाका विषय हैं (इति) ऐसा (पप्रच्छुः) श्रीवैष्णवों ने पूछा तब (चेत्) यदि (मग्नाः) मग्न होते हैं, तो (लीलाविषयाः) भगवत्की लीलाका विषय (भवामः) हम सब जानते हैं तो (कृपाविषयाः) भगवत्की कृपाका विषय (भवामः) हम सब होते हैं (इति) ऐसा (अवोचत्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस वार्तामें इक्कतीस पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।६।।

अब दाशरथीस्वामीजी की वार्ताको कहते हैं।

।।अथ दाशरथ्युक्तावार्ता।।

मू०–स्वस्वरूपं[१] ज्ञानप्रधानम्[२], उपायो[३] व्यवसाय[४]-प्रधानः, प्राप्यम[५]पेक्षाप्रधानम्[६], विरोधी[७], अरुचिप्रधान[८] इति[९] दाशरथि[१०]:।।७।।

।। दाशरथिस्वामिस्तुतिः।।

अर्थ- पादुकेयतिराजस्य कथयन्ति यदाख्यया।

तस्यदाशरथेः पादौ शिरसा धारयाम्यहम्।।१३।।

(स्वस्वरूपम्) स्वस्वरूप (ज्ञानप्रधानम्) ज्ञान प्रधान होता हैं। और (उपायः) उपाय (व्यवसायप्रधानः) व्यवसाय प्रधान होता है। तथा (प्राप्यम्) प्राप्य (अपेक्षा-प्रधानम्) अपेक्षा प्रधान होता है। और (विरोधी) विरोधी (अरुचिप्रधानः) अरुचि प्रधान होता है (इति) ऐसा (दाशरथिः) दाशरथि स्वामी ने कहा है। इस वार्तामें दसपद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम्।।७।।

अब कलिवैरिस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं।

।। अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ।।

मू०–[१]स [२]भोक्ता, [३]अयं [४]भोग्यः, [५]व्यामोह [६]उपायः, [७]प्रति-[८]दृष्टिप्राप्तिरुपेयम्, [९]तत्कण्ठग्रहोऽन्यथा [१०]विरोधी, [११]अन्यथा-[१२]विरोधी [१३]पञ्चधा, देहे [१४]आत्मबुद्धिः, [१५]इतरदेवतासु [१६]परत्वबुद्धिः, [१७]नीचवृत्तिषूपायत्वबुद्धिः, [१८]तल्लब्धेषु [१९]विषयान्तरेषु [२०]भोग्य-[२१]ताबुद्धिः, [२२]सर्वेषु [२३]चेतनेषु [२४]विरोधिप्रतिपत्तिः, [२५]स्वस्वरूपविरोधी, [२६]उपायविरोधी, [२७]उपेयविरोधीति [२८]त्रिधा देहात्माभिमानिनोऽन्य-[२९]शेषत्वं [३०]स्वस्वातंत्र्यं [३१]च [३२]स्वरूपविरोधीं, [३३]रक्षकान्तरं [३४]साधना-[३५]न्तरं [३६]सिद्धोपायेऽविश्वासश्च, [३७]उपायविरोधी, [३८]ऐश्वर्यं [३९]कैवल्यं [४०]स्वार्थकैंकर्यं [४१]च, [४२]उपेयविरोधी, [४३]स्वस्वरूपयाथात्म्यज्ञानानु-[४४]त्पत्त्या [४५]स्वविरोधियाथात्म्यज्ञानानुत्पत्तेर्भयं [४६]नोत्पद्यते, [४७]उपाय-[४८]याथात्म्यज्ञानानुत्पत्तेर्व्यवसायो [४९]न [५०]जायते। [५१]भोगयाथात्म्य-[५२]ज्ञानानुत्पत्तेस्त्वरा [५३]न [५४]जायते॥

॥कलिवैरिदासस्तुतिः॥

अर्थ--कलिजित्सर्वशिष्येभ्यस्सकलद्राविडागमान्।
श्रीभाष्यादिमहाग्रन्थान् कृपया निस्स्पृहोऽवदत्॥१४॥

(सः) वह (भोक्ता) भोग करनेवाला है। और (अयम्) यह (भोग्यः) भोग करने योग्य है। तथा (व्यामोहः) विशेष रूपसे अच्छे प्रकार का जो मोह है वही (उपायः) उपाय है। और (प्रतिदृष्टिप्राप्तिः) प्रति दृष्टि प्राप्ति जो है वही (उपेयम्) उपेय है। (तत्कण्ठग्रहः) तथा उसके कंठको ग्रहण करना (अन्यथाविरोधी) अन्यथा विरोधी है। और (अन्यथाविरोधी) अन्याथा विरोधी (पंचधा) पाँच प्रकारका होता है। (देहे) शरीरमें (आत्मबुद्धिः) आत्मा बुद्धि करना १, और (इतरदेवतासु) नारायणसे अन्य देवताओंमें (परत्वबुद्धिः) परत्व बुद्धि करना, २, तथा (नीचवृत्तिषु) नीच वृत्तियोंमें (उपायत्वबुद्धिः) उपाय बुद्धि करना ३, और (तल्लब्धेषु) उससे प्राप्त (विषयान्तरेषु) अन्य विषयोंमें (भोग्यताबुद्धिः) भोग्यता बुद्धि करना ४, तथा (सर्वेषु) सब (चेतनेषु) चेतनोंमें (विरोधिप्रतिपत्तिः) विरोधी प्रतिप्रत्ति करना ५,

और (स्वस्वरूपविरोधी) स्वस्वरूपका विरोधी १, (उपायविरोधी) उपाय स्वरूपके विरोधी २, (उपेयविरोधी) उपेय स्वरूपका विरोधी ३, (इति) इस प्रकारसे (त्रिधा) विरोधी तीन प्रकारका होता है (देहात्माभिमानिनः) शरीरमें आत्माका अभिमान करनेवालोंको (अन्यशेषत्वम्) दूसरेका शेष मानाना (च) और (स्वस्वातंत्र्यम्) अपनेको स्वतन्त्र मानना (स्वरूपविरोधी) स्वस्वरूप विरोधी है। और (रक्षकान्तरम्) नारायणसे अन्य रक्षक मानना (साधनान्तरम्) तथा अन्य उपाय मानना (च) और (सिद्धोपाये) सिद्धोपायमें (अविश्वासः) विश्वास नहीं करना ये तीन (उपायविरोधी) उपाय स्वरूपके विरोधी हैं। और (ऐश्वर्यम्) ऐश्वर्य (कैवल्यम्) तथा कैवल्य (च) और (स्वार्थकैंकर्यम्) अपने लिये कैंकर्य करना ये तीन (उपेयविरोधी) उपेय स्वरूपके विरोधी हैं। (स्वस्वरूपयाथात्म्यज्ञानानुत्पत्त्या) स्वस्वरूपके यथार्थ ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होनेसे (स्वविरोधियाथात्म्यज्ञानानुत्पत्तेः) स्वस्वरूपके विरोधी यथार्थ ज्ञानके उत्पन्न नहीं होनेसे (भयम्) डर (न) नहीं (उत्पद्यते) उत्पन्न होता है। तथा (उपाययाथात्म्यज्ञानानुत्पत्तेः) उपाय का यथार्थ ज्ञान नहीं उत्पन्न होनेसे (व्यवसायः) व्यवसाय (न) नहीं (जायते) उत्पन्न होता है। और (भोगयाथात्म्यज्ञानानुत्पत्तेः) भोगका यथार्थ ज्ञान उत्पन्न नहीं होनेसे (त्वरा) त्वरा (न) नहीं (जायते) उत्पन्न होती है। अब इस वार्तामें "इतरदेवतासु" इस पदको देखकर कुछ लोग कहते हैं कि देवयोनि मनुष्ययोनिसे अलग नहीं है, क्योंकि लिखा है कि-

विद्वांसो हि देवाः ॥ शत॰ अ॰ ३।७।३।१०॥

विद्वानोंका नाम देवता है॥ १०॥ इस कथनका उत्तर यह है कि ॥ विद्वांसोहिदेवाः॥ इस श्रुतिका जो यह अर्थ किया गया है कि "विद्वानों का नाम देवता है" सो ठीक नहीं है क्योंकि -

देवान् दैवीर्विशःप्रागुरुशिजोवह्नितमान्। यजु॰ अ॰ ६, मं॰ ७॥

इस श्रुतिके अर्थमें दिव्य गुणयुक्त यह पशु अग्निषोमादि देवताओं के समीप गमन करें, जो देवता विद्वान् अग्निद्वारा हविष्यकी इच्छावाले हैं॥७॥ इस मंत्र पर ही शतपथकी श्रुति है कि-

विद्वांसो हि देवास्तस्मादाहोशिजो वह्नितमानिति। शतपथ॰ ३।७।३।१०।

देवता विद्वान् हैं, इससे उनको उशिज और वह्नितमान् कहा है॥ १०॥ विद्वानोंका नाम देवता है इसका यहाँ कोई प्रसंग नहीं है। देवयोनि मनुष्ययोनिसे अलग है, इस विषयमें प्रमाण देखिये लिखा है कि-

कर्मात्मनां च देवानं सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः। मनु॰ अ॰१, श्लो॰२२॥

प्राणियोंके प्रभु ने कर्मात्मा इन्द्रादि देवगणको बनाया।। २२।। और भगवद्गीतामें लिखा है कि -

यान्ति देवव्रता देवान् । भगव० अ० ९, श्लो०२५।।

अन्य देवोंके आराधना का संकल्प रखनेवाले पुरुष उन्हीं देवताओंको प्राप्त होते हैं।।२५।। और वेदमें लिखा है कि-

अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्योदेवता चन्द्रमादेवता वसवोदेवता रुद्रोदेवतादित्यादेवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवताबृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।। यजु० अ० १४, मं० २०।

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रवसु, रुद्र, आदित्य, मरुत्, विश्वेदेव, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, ये देवता हैं।।२०।। और भी लिखा है कि-

त्रयो देवा एकादशत्रयस्त्रिंशाः सुराधसः।। बृहस्पति पुरोहितो देवस्य सवितुः सर्वे देवा देवैरवन्तुमा।। यजु० अ० २०, मं० ।।११।।

तीन देवता, या ग्यारह देवता, या तैंतीस देवता, अनेक संपत्तिवाले बृहस्पति हैं पुरोहित जिनके सवितादेवकी प्रेरणासे समस्त देवोंके सहित ये देवगण हमारी रक्षाकरें।।११।। देखिये निरूक्तमें भी लिखा है कि–

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानोवायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्षस्थानः सूर्योद्युस्थानस्तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।। निरु० दैवतका० अ० ७, खं० ५।।

ये तीन देवता हैं, अग्निदेवता पृथ्वी स्थानमें, वायुदेवता, और इन्द्रदेवता, अन्तरिक्षस्थानमें, और सूर्य देवता द्युस्थानमें हैं, इन देवताओंके महाभाग्य होनेसे एक एक के बहुतसे नाम होते हैं।।५। और भी लिखा है कि-

इतीमा देवता अनुक्रान्ताः सूक्तभाजो हविर्भाज ऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः।। निरुक्त० दैवतकां० अ० ७, खं० १३।।

यह जो देवता कहे हैं, इनमें कोई सूक्तोंको सेवन करते हैं, कोई हविष्यको कोई ऋग्को कोई दोनोंको ।। १३।। और भी देखिये-

आत्मैवैषां रथोभवत्यात्माश्व आत्मायुध आत्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य।। निरुक्त० दैवतकां० अ० ७, खं० ४।।

इन देवताओं का आत्मा ही घोड़ा, हथियार, रथ, बाण, होती है और सब ही उपकरण देव देवका आत्मा ही है।।४।। और उपनिषदों में लिखा है कि–

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति॥ केनोपनि० खं ३, श्रु० १॥

ईश्वरने देवताओंको जय दी, उसके कृपाकटाक्षसे सब देवता महिमा को प्राप्त होते हुए, फिर यह जाने कि यह सब संसार हमारा ही जय किया हुआ है, और हमारी ही महिमा है॥१॥ और भी लिखा है कि-

मध्याहुतयो हवा एता देवानां यदनुशासनानि॥ शतप० अ० ११, प्र० ३, ब्रा० ८, कं० ८॥

शास्त्र देवताओंकी मध्यम आहुति हैं॥ ८॥ और देखिये-

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव॥ मुण्डकोप० मुण्ड० १, खं० १, श्रु० १॥

ब्रह्मा देवताओंमें पहले उत्पन्न हुआ॥१॥ और अथर्ववेदमें लिखा है कि-

ऋचः सामानिच्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह॥ उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥ अथर्व० कां० ११, प्रपा०, अनु० १, मं २४॥

सबके अन्तमें शेष रहनेवाले श्रीमन्नारायण भगवान्से ऋक् साम छन्द और यजुःके साथ पुराण तथा दिवलोकमें रहनेवाले दिविश्रितसमस्त देवगण उत्पन्न हुए॥२४॥ और जैमिनि महर्षि ने भी-

अर्थेनत्वपकृष्येत देवतानामचोदनार्थस्य गुणभूतत्वात्॥ मीमांसा० अ० २, पा० १, सू० १४॥

इस सूत्रमें देवता शब्द मनुष्ययोनिसे अलग ही देवयोनि मानते हैं। और वेदव्यास महर्षिने भी-

देवादिवदपि लोके॥ वेदान्त० अ० २, पा० १, सू० २५॥

इस सूत्रमें मनुष्यसे अलग देवताको मानकर "देवादिवत्" यह दृष्टान्त कहा है। और व्याकरण भी मनुष्य योनिसे भिन्न ही देवयोनि मानता है क्योंकि यह लिखा है कि-

(सूर्यद्दितायां चाप् वाच्यः) वार्तिक०॥

सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवता जातिमें उत्पन्न हुई जो सूर्यकी स्त्री है कात्यायन महर्षि कहते हैं कि वहाँ पर सूर्य शब्दसे आप् प्रत्यय होकर स्त्री प्रत्ययान्तपद सूर्या ऐसा बनेगा। और यदि सूर्यकी स्त्री मनुष्य जातिमें पैदा हुई हो तो "सूर्या" ऐसा पद नहीं बनेगा किन्तु सूर्य शब्दसे-

(पुंयोगादाख्यायाम्) व्या० अ० ४, पा० १, सू० ४८॥

इस सूत्र करके ङीष् प्रत्यय होकर-

(सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः) व्या० अ० ६, पा० ४, सू० १४९॥

इस सूत्रसे-

(सूर्यागस्त्ययोश्छेचङ्यां च)

इस वार्तिकके नियम द्वारा य लोप होनेसे "सूरी" ऐसा स्त्री प्रत्ययान्त पद बनेगा, इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट साबित होता है कि देवयोनि मनुष्ययोनिसे अलग है। शमिति॥



१ २ ३ ४
मू०-श्रीऐङ्गलाल्वान् श्रीपादयोरप्यंगियाल्वान् प्रणम्य
५ ६ ७ ८ १० ११ १२
मम दर्शनस्थितिमुपदिशेति विज्ञापयामास, स च दर्शना-
१३ १४ १५ १६ १७ १८
न्तरं निरसनीयमुतस्वदर्शनस्थापंनं कार्यमुत दर्शनस्थि-
१९ २० २१ २२ २३ २४
तिस्त्वया श्रोतव्येत्यपृच्छत्। दर्शनान्तरनिरसनस्य स्व-
२५ २६ २७ २८ २९ ३०
दर्शनस्थापनस्य च भवानलं स्वदर्शनस्थितिं मम वदस्वे-
३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८
त्यवोचत्। तं प्रति तेनोपदिष्टं सारार्थचतुष्टयं रामानुज-
३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४
चरणावेव शरणमिति निश्चिन्वानैरस्मत्पूर्वाचार्यैः स्वोपाय-
४५ ४६ ४७ ४८ ४९
त्वेनोत्तारकत्वेन भोग्यत्वेनानुसंहिताः, उपदिश्यमाना द्विच-
५० ५१ ५२ ५३ ५४
तुरर्थाः सन्ति। ते च स्वरूपज्ञानं स्वरूपयाथात्म्यज्ञानं
५५ ५६ ५७ ५८
विरोधिज्ञानं विरोधियाथात्म्यज्ञानं फलज्ञानं फलयाथा-
५९ ६० ६१ ६२ ६३
त्म्यज्ञानमुपायज्ञानमुपाययाथात्म्यज्ञानं च, तत्र स्वरूप-
६४ ६५ ६६ ६७ ६८
ज्ञानं ज्ञानानन्दावपि बाह्याकारौ भगवदनन्यार्हशेषत्वमेवा-
६९ ७० ७१ ७२ ७३
न्तरंगस्वरूपमिति निश्चयः, स्वरूपयाथात्म्यज्ञानं नाम,
७४ ७५ ७६ ७७ ७८
भगवदनन्यार्हशेषत्वापेक्षया भागवतशेषत्वमेवान्तरंगस्वरूप-
७९ ८० ८१ ८२ ८३
मिति निश्चयः, विरोधिज्ञानं प्रयत्नेन केनचिद्भागवतेन संग-

८४ ८५ ८६ ८७ ८८
म्य तस्मिन्दोषदर्शनं विरोधियाथात्म्यज्ञानं परमभागवत-
८९ ९० ९१ ९२
विश्लेषेऽपि मनोव्यासंगरहितज्ञानं फलज्ञानं कस्यचिद्भाग-
९३ ९४ ९५ ९६ ९७
वतस्य नियमनविषये मनोविकृतिं विना विषयप्रवणस्य
९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४
भोगावसरे विषयपारुष्ये यथा भोग्यता बुद्धिर्भवति, तथा
१०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११०
वा भोग्यताबुद्धिः, फलयाथात्म्यज्ञानं नाम, आर्तिप्रपत्तिकर-
१११ ११२ ११३ ११४ ११५
णेन तत्तीरप्राप्तौ सन्नाहदशायां मातापित्रोरप्यनादरणीया-
११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१
र्तिमन्तः श्रीवैष्णवा दृष्ट्राश्चेत्तद्रक्षणार्थमत्रावास्थितावध्य-
१२२
वसायः॥

अर्थ- (श्रीऐंगलाल्वान्) श्रीऐंगलाल्वान् आचार्यके (श्रीपादयोः) श्रीचरणोंमें (अपि) भी (अँगियाल्वान्) अँगियाल्वान् नामके महात्मा ने (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम कर (मम) मेरे (दर्शनस्थितिम्) दर्शनकी स्थितिको (उपदिश) उपदेश दीजिये (इति) ऐसा (विज्ञापयामास) विज्ञापन किया (च) और (सः) तब उस श्रीऐंगलाल्वान् आचार्य ने (दर्शनान्तरम्) अन्य दर्शन (निरसनीयम्) खण्डन करने योग्य है (उत) या (स्वदर्शनस्थापनम्) अपना दर्शन स्थापन (कार्यम्) करने योग्य है (उत) या (दर्शनस्थितिः) दर्शनकी स्थिति (त्वया) आप करके (श्रोतव्या) सुनने योग्य है, (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। तब अँगियाल्वान् महात्मा (दर्शनान्तरनिरसनस्य) अन्यदर्शन खण्डन करनेके लिये (च) और (स्वदर्शनस्थापनस्य) अपना दर्शन स्थापन करनेके लिये (भवान्) आप (अलम्) पर्याप्त हैं। इसलिये (स्वदर्शनस्थितिम्) अपने श्री वैष्णव दर्शनकी स्थितिको (मम) मुझसे (वदस्व) कहिये, (इति) ऐसा (अवोचत्) बोले। तब (तम्) उस अँगियाल्वान् महात्माके (प्रति) प्रति (तेन) उस श्रीऐंगलाल्वान आचार्यसे (उपदिष्टम्) उपदेश दिया हुआ (सारार्थचतुष्टयम्) सार अर्थ चार हैं। (रामानुजचरणौ) रामानुज स्वामीजीके दोनों चरण (एव) ही निश्चय करके (शरणम्) रक्षक है (इति) ऐसा (निश्चिन्वानैः) निश्चय करनेवाले (अस्मत्पूर्वाचार्यैः) हमारे पूर्वाचार्यों द्वारा (स्वोपायत्वेन) अपनी उपायता द्वारा तथा (उत्तारकत्वेन) उत्तारकता द्वारा और (भोग्यत्वेन) भोग्यता द्वारा (अनुसंहिताः) अनुसंधान किये हुये और (उपदिश्यमानाः) उपदेश दिये हुये (द्विचतुर्थाः) आठ अर्थ (सन्ति) हैं (च) और (ते) वे आठ अर्थ ये हैं (स्वरूपज्ञान) स्वरूपका ज्ञान १, और (स्वरूपयाथात्म्यज्ञानम्) स्वरूपका यथार्थ

ज्ञान २, तथा (विरोधिज्ञानम्) विरोधीका ज्ञान ३, और (विरोधियाथात्म्यज्ञानम्) विरोधीका यथार्थ ज्ञान ४ तथा (फलज्ञानम्) फलका ज्ञान ५, और (फलयाथात्म्यज्ञानम्) फलका यथार्थ ज्ञान ६, तथा (उपायज्ञानम्) उपायका ज्ञान ७, (च) और (उपाययाथात्म्यज्ञानम्) उपायका यथार्थ ज्ञान ८, (तत्र) उनमें (स्वरूपज्ञानम्) स्वरूपज्ञान माने (ज्ञानानन्दौ) ज्ञान और आनन्द ये दोनों (अपि) भी (बाह्याकारौ) बाहरके आकार हैं (भगवदनन्यार्हशेषत्वम्) भगवदनन्यार्हशेष (एव) ही (निश्चयः) निश्चय करना है। और (स्वरूपयाथात्म्यज्ञानम्) स्वरूपका यथार्थज्ञान (नाम) माने (भगवदनन्यार्हशेषत्वापेक्षया) भगवदनन्यार्हशेषकी अपेक्षासे (भागवतशेषत्वम्) भागवतका शेष (एव) ही निश्चय करके (अन्तरंगस्वरूपम्) भीतरका स्वरूप है। (इति) ऐसा (निश्चयः) निश्चय करना है। तथा (विरोधिज्ञानम्) विरोधी ज्ञान माने (प्रयत्नेन) प्रयत्न करके (केनचित्) किसी (भागवतेन) भागवतसे (संगम्य) समागम करके (तस्मिन्) उस भागवतमें (दोषदर्शनम्) दोष देखना है। और (विरोधियाथात्म्यज्ञानम्) विरोधीका यथार्थ ज्ञान माने (परमभागवतविश्लेषे) श्रेष्ठ भागवतोंके वियोग होनेपर (अपि) भी (मनोव्यासङ्गरहितज्ञानम्) मनके व्यासङ्गरहित ज्ञान होना है। तथा (फलज्ञानम्) फल ज्ञान माने (कस्यचित्) किसी भी (भागवतस्य) भागवतके (नियमनविषये) नियमनके विषयमें (मनोविकृतिम्) मनके विकारके (विना) बिना (विषयप्रवणस्य) विषयासक्तके (भोगावसरे) भोगके समयमें (विषयपारुष्ये) विषयकी परुषतामें (यथा) जैसी (भोग्यता) भोग्यता (बुद्धिः) बुद्धि (भवति) होती है (तथा) वैसी (वा) ही (भोग्यता) भोग्यता (बुद्धिः) बुद्धि होनी है। और (फलयाथात्म्यज्ञानम्) फलका यथार्थ ज्ञान (नाम) माने (आर्त्तिप्रपत्तिकरणेन) आर्त्तिप्रपत्तिके करने से (तत्तीरप्राप्तौ) उसके तट प्राप्त होनेपर (सन्नाहदशायाम्) सन्नाहावस्थामें (मातापित्रोः) माँ बापके (अपि) भी (अनादरणीयार्तिमन्तः) नहीं आदर करने योग्य आर्तिवाले (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (दृष्टाः) देखें जाय (चेत्) यदि तो (तद्रक्षणार्थम्) उन श्री वैष्णवोंकी रक्षाके लिये (अत्र) इस विषयमें (अवस्थितौ) दृढ़ स्थिति होनेके लिये (अध्यवसायः) यत्न करना है। इस वार्तामें "प्रणम्य" यह पद आया है। इससे यह शङ्का होती है कि साष्टाङ्ग प्रणाम बड़ों को नहीं करनेसे क्या हानि है, और करनेसे क्या लाभ है। इस शङ्काका समाधान मनुस्मृतिमें लिखा है कि-

ऊर्ध्वं प्राणाह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते॥ मनु० अ० २, श्लो० १२०॥

अवस्था और ज्ञान आदिसे वृद्धके आनेपर छोटोंके प्राण ऊपरको चढ़ते हैं, अर्थात् देहसे बाहर निकलना चाहते हैं, उन प्राणोंको श्रेष्ठके अभ्युत्थान देने और साष्टाङ्ग प्रणाम

करनेसे फिर स्वस्थ करता है, इससे श्रेष्ठको उठकर साष्टाङ्ग करना चाहिये।।१२०।।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।१२१।।

उठकर सदा श्रेष्ठको साष्टाङ्ग करनेवाले, और श्रेष्ठकी सेवा करनेवाले मनुष्यकी आयु, विद्या, यश, और बल, ये चारो बढ़ते हैं।।१२१।। पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर होनेपर तो यह प्रश्न होता है कि साष्टाङ्ग प्रणाम कैसे किया जाता है। इसका उत्तर देखिये लिखा है कि–

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते।।

उरसे १, सिरसे २, दृष्टिसे ३, मनसे ४, वचनसे ५, और दोनों पैरोंसे ६, दोनों हाथों से ७, तथा दोनों जङ्घों से ८, जो लाठी के समान पड़कर प्रणाम किया जाता है उसको साष्टाङ्ग प्रणाम कहते हैं।। और भी लिखा है कि–

अग्रे पृष्ठे वामभागे संमुखे गर्भमन्दिरे। जपहोम- नमस्कारान्नकुर्यात्केशवालये।।

केशव भगवान् के मन्दिर के आगे पीछे वामभाग में सामने और मन्दिर के भीतर जप, हवन, तथा साष्टाङ्ग प्रणाम नहीं करना चाहिये।। और भी लिखा है कि–

वस्त्रप्रावृतदेहस्तु यो नरः प्रणमेत्तु माम्। स स्त्रीत्वं जायते मूर्खः सप्तजन्मनि भामिनि।।

हे भामिनि! जो पुरुष वस्त्र से शरीर को ढ़ँककर मुझको साष्टाङ्ग करता है, वह मूर्ख मरने पर सात जन्म तक स्त्री होता है।। इससे वस्त्र से देह को ढ़ँककर कभी साष्टाङ्ग प्रणाम नहीं करना चाहिये। कमिति।।



मू०–उपायज्ञानं सम्बन्धज्ञानं तच्च सम्बन्धज्ञानं सम्बन्धयाथात्म्यज्ञानं सम्बन्धस्वरूपज्ञानं सम्बन्धस्वरूप-याथात्म्यज्ञानं चेति चतुर्विधम्, तत्र संबन्धज्ञानं तन्निरुपा-धिकेशेषित्वस्वनिरुपाधिकशेषत्वयोर्विशदज्ञानं संबन्धया-थात्म्यज्ञानं तन्निरुपाधिकशरीरित्वस्वनिरुपाधिकशरीरत्वयो-र्विशदज्ञानं संबन्धस्वरूपज्ञानं तन्निरुपाधिकधर्मित्वस्वनिरु-

पाधिकधर्मत्वयोर्विशदज्ञानं संबन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानं धर्मिधर्मयोरैक्ययोः सम्यक्ज्ञानं तच्च विशिष्टवेषे स एक एव नाहमित्यध्यवसायः, उपाययाथात्म्यज्ञानं शेषत्वेकर्तृत्वनिवृत्तिः, ज्ञातृत्वेकर्तृत्वनिवृत्तिः, कर्तृत्वेकर्तृत्वनिवृत्तिः भोक्तृत्वे कर्तृत्वनिवृत्तिः, शेषत्वे कर्तृत्वं नाम राजोपसत्तिं प्राप्य दुर्मन्त्रिणो जगत्पीडयन्ति यथा तथा भगवदासत्त्यालंबनेन सदाचारच्युतिः, स च शब्दादिविषयस्पर्शे भयस्य भगवद्भागवतकैंकर्यविश्लेषे, आर्त्तेश्चानुत्पादः, तन्निवृत्तिर्नाम प्रामादिकविषयस्पर्शस्य प्रामादिकभगवद्भागवतविश्लेषस्य चानुत्पादः, ज्ञातृत्वे कर्तृत्वं नाम ज्ञानाधिक्यात्खलु मां सोंगीचकरोति, स्वज्ञानमूलकगर्वः, तन्निवृत्तिर्नाम देहात्माभिमानिभ्योऽपि निकृष्टं निमग्नमचित्कल्पं मां यथा यः स्वर्णं करोति तथोषरे, आत्मज्ञानमुत्पाद्यांगीचकारेति तस्मिन्कृतज्ञता॥

अर्थ-(उपायज्ञानम्) उपाय ज्ञान माने (संबन्धज्ञानम्) संबन्धका ज्ञान होना है (च) और (तत्) वह उपायज्ञान (संबन्धज्ञानम्) संबन्ध ज्ञान १, (संबन्धयाथात्म्यज्ञानम्) और संबन्धका यथार्थ ज्ञान२, (संबन्धस्वरूपज्ञानम्) तथा संबन्धका स्वरूपज्ञान ३, (च) और (संबन्धस्वरूपयाथात्म्यज्ञानम्) संबन्धके स्वरूपकी यथार्थ ज्ञान४; (इति) इस भेदसे (चतुर्विधम्) चार प्रकारका होता है। (तत्र) उनमें (संबन्धज्ञानम्) संबन्धज्ञान माने (तन्निरुपाधिकशेषित्वस्वनिरुपाधिकशेषत्वयोः) उपाधि रहित भगवान् के शेषित्वका और उपाधि रहित अपनी आत्माके शेषत्वका (विशदज्ञानम्) स्पष्ट ज्ञान होना है (संबन्धयाथात्म्यज्ञानम्) और संबन्धका यथार्थ ज्ञान माने (तन्निरुपाधिकशरीरित्वस्वनिरुपाधिकशरीरत्वयोः) उपाधि रहित भगवान्के शरीरित्वका तथा उपाधि रहित अपनी आत्माके शरीरत्वका (विशदज्ञानम्) स्पष्ट ज्ञान होना है। (सम्बन्धस्वरूपज्ञानम्) तथा सम्बन्ध का स्वरूप ज्ञान माने (तन्निरुपाधिकधर्मित्वस्वनिरुपाधिकधर्मत्वयोः) उपाधिरहित भगवान्के धर्मित्वका, तथा उपाधि रहित

अपनी आत्माके धर्मत्वका (विशदज्ञानम्) स्पष्ट ज्ञान होना है (संबन्ध स्वरूपयाथात्म्यज्ञानम्) और संबन्धके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान माने (धर्मिधर्मयोः) धर्मी परमेश्वर, तथा धर्म जीव, इन दोनोंकी (ऐक्ययोः) एकताका (सम्यक्) अच्छे प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान होना है (च) और (तत्) वह ज्ञान (विशिष्टवेषे) चेतनाचेतन विशिष्ट वेशमें (सः) वह (एकः) एक (एव) ही है (अहम्) मैं (न) नहीं (इति) ऐसा (अध्यवसायः) निश्चय करके यत्न करना है, (उपायथाथात्म्यज्ञानम्) उपाय का यथार्थ ज्ञान माने (शेषत्वे) शेषत्वमें (कर्तृत्वनिवृत्तिः) कर्तृत्वकी निवृत्ति होना है। तथा (ज्ञातृत्वे) ज्ञातृत्वमें (कर्तृत्वनिवृत्तिः) र्तृत्वकी निवृत्ति होना है। और (कर्तृत्वे) कर्तृत्वमें (कर्तृत्वनिवृत्तिः) कर्तृत्वनिवृत्ति होना है तथा (भोक्तृत्वे) भोक्तृत्वमें (कर्तृत्वनिवृत्तिः) कर्तृत्वकी निवृत्ति होना है। (शेषत्वे) शेषत्वमें (कर्तृत्वम्) कर्तृत्व (नाम) माने (राजोपसत्तिम्) राजाके अधिकारको (प्राप्य) पाकर (यथा) जैसे (दुर्मन्त्रिणः) दुष्ट मंत्रिगण (जगत्) संसारको (पीडयन्ति) पीडित करते हैं, (तथा) ऐसे ही (भगवदासत्त्यालंबनेन) भगवान्की आसत्ति आलंबन करनेसे (सदाचारच्युतिः) सदाचारकी च्युति होती है। (च) और (सः) वह (शब्दादिविषयस्पर्शे) शब्द आदिक विषयोंके स्पर्शमें (भयस्य) भयका (च) और (भगवद्भागवतकैंकर्यविश्लेषे) भगवत् तथा भागवतके कैंकर्यमें विश्लेष होनेपर (आर्त्तेः) दुःखका (अनुत्पादः) नहीं उत्पन्न होना है (तन्निवृत्तिः) कर्तृत्वनिवृत्ति (नाम) माने (प्रामादिकविषयस्पर्शस्य) प्रमादसे हुए विषय स्पर्शका (च) और (प्रामादिकभगवद्भागवतविश्लेषस्य) प्रमादसे हुए भगवत् तथा भागवतके विश्लेषका (अनुत्पादः) नहीं उत्पन्न होना है (ज्ञातृत्वे) ज्ञातृत्वमें (कर्तृत्वम्) कर्तृत्व (नाम) माने (ज्ञानाधिक्यात्) ज्ञानकी अधिकतासे (खलु) निश्चय करके (माम्) मुझको (सः) उस परमात्मा ने (अंगीचकार) स्वीकार किया है, (इति) ऐसा (स्वज्ञानमूलकगर्वः) स्वज्ञानमूलक घमंड है (तन्निवृत्तिः) ज्ञातृत्वमें कर्तृत्वनिवृति (नाम) माने (देहात्माभिमानिभ्यः) देहको आत्मा माननेवालोंसे (अपि) भी (निकृष्टम्) नीचा (निमग्नम्) गिरा हुआ (अचित्कल्पम्) जड़के तुल्य (माम्) मुझको (यथा) जैसे (यः) जो (स्वर्णम्) सोनाको (करोति) करता है (तथा) ऐसेही (उषरे) उषरमें (आत्मज्ञानम्) आत्म ज्ञानको (उत्पाद्य) उत्पन्नकर (अंगीचकर) स्वीकार किया है (इति) ऐसा (तस्मिन्) उस ब्रह्मके विषयमें (कृतज्ञता) कृतज्ञता अनुसन्धान करना है। स्वमिति॥



मू०–[१]कर्तृत्वे [२]कर्तृत्वं [३]नाम [४]मया [५]निषिद्धान् [६]त्यक्ता

विहितानामनुष्ठित्वात्खलु मा सांगीचकारेति स्वप्रवृत्ति-
निबन्धनो गर्वः, तन्निवृत्तिर्नाम ममकोऽपि व्यापारोनास्ति,
यथा सालभंजिका नर्तयन्ति, तथा स्वयमेव निषिद्धान्
त्याजयित्वा विहितानकारयदिति निश्चयः, भोक्तृत्वे कर्तृत्वं
नाम अहं तस्य दास्यं करोमीति निश्चयः, तन्निवृत्तिर्नाम,
स्वहस्तेन स्वकेशशोधने कृते यथान्योन्योपकारस्मृतिर्न
भवति, तथावयवभूत आत्मावयविनः स्वामिनः दास्यं
करोतीति निश्चयः॥

अर्थ--(कर्तृत्वे) कर्तृत्व में (कर्तृत्वम्) कर्तृत्व (नाम) माने (मया) मुझसे (निषिद्धान्) वेदनिषिद्धकर्मोंको (त्यक्त्वा) छोड़कर (विहितानाम्) वेदविहितकर्मोंका (अनुष्ठित्वात्) अनुष्ठान करनेसे (खलु) निश्चय करके (माम्) मुझको (सः) उस परमात्मा ने (अंगीचकार) स्वीकार किया है। (इति) ऐसा (स्वप्रवृत्तिनिबन्धनः) अपनी प्रवृत्ति का निबन्धन (गर्वः) गर्व होना है (तन्निवृत्तिः) कर्तृत्वमें कर्तृत्वनिवृत्ति (नाम) माने (मम) मेरा (कः) कोई (अपि) भी (व्यापारः) व्यापार (न) नहीं (अस्ति) है, (यथा) जैसे (सालभञ्जिकाः) काठकी पुतलीको (नर्तयन्ति) नचाते हैं (तथा) वैसे (स्वयम्) अपनेसे (एव) निश्चय करके (निषिद्धान्) वेदनिषिद्धकर्मोंको (त्याजयित्वा) छुड़ाकर (विहितान्) वेदविहित कर्मोंको (अकारयत्) करवाया (इति) ऐसा (निश्चयः)निश्चय करना है (भोक्तृत्वे) भोक्तृत्वमें (कर्तृत्वम्) कर्तृत्व (नाम) माने (अहम्) मैं (तस्य) उस परमात्माकी (दास्यम्) दासताको (करोमि) करता हूँ (इति) ऐसा (निश्चयः) निश्चय करना है। (तन्निवृत्तिः) भोक्तृत्वमें कर्तृत्वनिवृत्ति (नाम) माने (स्वहस्तेन) अपने हाथसे (स्वकेशशोधने) अपने केशशोधन (कृते) करने पर (यथा) जैसे (अन्योन्योपकारस्मृतिः) परस्परमें उपकारका स्मरण (न) नहीं (भवति) होता है (तथा) वैसेही (अवयवभूतः) ब्रह्मका अवयवभूत (आत्मा) जीवात्मा (अवयविनः) अवयवी (स्वामिनः) नारायण स्वामी की (दास्यम्) दासताको (करोति) करता है (इति) ऐसा (निश्चयः) निश्चय करना है। शमिति।

मू०–परस्वरूपं किं परस्वरूपयाथात्म्यं किं स्वस्वरूपं किं स्वस्वरूपयाथात्म्यं किं स्वरूपानुरूपफलस्वरूपं किं फलस्वरूपयाथात्म्यं किं तद्विरोधिस्वरूपं किं विरोधिस्वरूपयाथात्म्यं किं तन्निवृत्तिफलसिद्ध्युपायस्वरूपं किमुपायस्वरूपयाथात्म्यं किमिति चेत्, परस्वरूपं चेतनाचेतनात्मकोभयविभूतिनियन्तृत्वम्, परस्वरूपयाथात्म्यम् अर्चावतारपर्यन्ताश्रितपारतन्त्र्यम्, अथ परस्वरूपप्रतिसंबन्धि स्वस्वरूपं प्रकृतेः परं ज्ञानानन्दलक्षणं नित्यमेकरूपं ज्ञानगुणकं स्वयं प्रकाशमीश्वरशेषमनन्यार्हं स्वरक्षणानर्हं पारतन्त्र्यम्, एतद्याथात्म्यं कृपाविषयाणां "दासदास" इत्याद्युक्तप्रकारेण तदीयशेषत्वं स्वरूपानुरूपफलस्वरूपं भगवत्स्वरूपरूपगुणानुभवजनितप्रीतिकारितकैंकर्यम्, एतद्याथात्म्यं "प्रहर्षयिष्यामी" त्युक्तप्रकारेणैतत्कैंकर्यप्रतिसंबन्धिनः शेषिणो हर्षः, तद्विरोधिस्वरूपं देहे-आत्मबुद्धिर्देहानुबन्धिषु पदार्थेषु ममताबुद्धिः, देहात्परस्मिन्नात्मनि स्वतन्त्रबुद्धिश्च, एतद्याथात्म्यं स्वरूपानुरूपकैंकर्यान्तर्गतावहंकरममकारौ, तन्निवृतेः पुरुषार्थसिद्धेश्चोपायः सिद्धस्वरूपस्य सौलभ्यादिगुणवत ईश्वरचरणौ, एतद्याथात्म्यमधिकारिविशेषणमप्यसहमानं सहकारिनैरपेक्ष्यं भोगविरोधिस्वविषयप्रावण्यं प्राप्यविरोधिममत्वं साधनविरोधिकर्तृत्वम्, त्रिविधविरोधिनिदानमहंकारः कैंकर्यविरोधिस्वातन्त्र्यम् रुचिविरोधी शब्दादिः समाश्रयणविरोधि देवतान्तरं ज्ञानविरोध्यज्ञानं शेषत्ववि- रोधि

देवतान्तर[१००] शरणागतिविरोध्युपायान्तर[१०१] स्वरूप[१०२]-विरोधी[१०३] भागवतापचारः[१०४] पुरुषार्थविरोधिविषयप्रावण्यमिति[१०५] [१०६] [१०७] कलिवैरिदासः[१०८]॥८॥

अर्थ-(परस्वरूपम्) परब्रह्मका स्वरूप (किम्) क्या है। तथा (परस्वरूपयाथात्म्यम्) परब्रह्मका यथार्थस्वरूप (किम्) क्या है। और (स्वस्वरूपम्) जीवका स्वरूप (किम्) क्या है। तथा स्वस्वरूपयाथात्म्यम्) जीवका यथार्थस्वरूप (किम्) क्या है (स्वरूपानुरूपफलस्वरूपम्) अपने स्वरूपके अनुरूप फलस्वरूप (किम्) क्या है। तथा (फलस्वरूपयाथात्म्यम्) अपने स्वरूपके अनुरूप यथार्थ फलस्वरूप (किम्) क्या है। और (तद्विरोधिस्वरूपम्) उन सबोंके विरोधीका स्वरूप (किम्) क्या है। तथा (विरोधिस्वरूपयाथात्म्यम्) उन सबोंके यथार्थ विरोधी का स्वरूप (किम्) क्या है और (तन्निवृत्तिफलसिद्ध्युपायस्वरूपम्) उस विरोधीके स्वरूपकी निवृति होनेपर फलकी सिद्धिमें जो उपाय, उस उपाय का स्वरूप (किम्) क्या है। तथा (उपायस्वरूपयाथात्म्यम्) यथार्थ उपाय स्वरूप (किम्) क्या है (इति) ऐसा (चेत्) यदि प्रश्न हो तो इसका उत्तर लिखा है कि (परस्वरूपम्) परस्वरूप माने (चेतनाचेतनात्मकोभयविभूतिनियन्तृत्वम्) जड़ तथा चेतन स्वरूपवाली जो लीला विभूति और त्रिपाद्विभूति इन दोनों विभूतियोंको नियमन करना है। तथा (परस्वरूपयाथात्म्यम्) यथार्थ परस्वरूप माने (अर्चावतारपर्यन्ताश्रितपारतंत्र्यम्) अर्चावतार पर्यन्त आश्रित भक्तजनोंके पराधीन रहना है। और (अथ) इसके बाद (परस्वरूपप्रतिसंबंधि) परके स्वरूपका प्रति सम्बन्धी (स्वरूपम्) स्वस्वरूप माने (प्रकृतेः) माया से (परम्) परे (ज्ञानानन्दलक्षणम्) ज्ञान और आनन्द लक्षण तथा (नित्यम्) नित्य (एकरूपम्) एकरूप (ज्ञानगुणकम्) ज्ञानगुणवाला (स्वयम्) अपनेसे (प्रकाशम्) प्रकाश होनेवाला (ईश्वरशेषम्) ईश्वरका शेष (अनन्यार्हम्) दूसरेके लिये अयोग्य (स्वरक्षणानर्हम्) अपनी रक्षा करनेमें अयोग्य (पारतन्त्र्यम्) ईश्वराधीन रहना है। तथा (एतद्याथात्म्यम्) यथार्थ स्वस्वरूप माने (कृपाविषयाणाम्) भगवत्की कृपाके विषयोंके (दासदासः) सेवकोंका सेवक (इत्यादि) इत्यादिक (उक्तप्रकारेण) पाण्डव गीताके बीसवें श्लोकमें कहे हुए प्रकारसे (तदीयशेषत्वम्) भागवतोंका शेष मानना है। और (स्वरूपानुरूपफलस्वरूपम्) स्वरूपके अनुरूप फलका स्वरूप माने (भागवत्स्वरूपगुणानुभवजनितप्रीतिकारितकैंकर्यम्) भगवान्के स्वरूपका जो रूप और गुण उसके अनुभवसे उत्पन्न प्रीति द्वारा किया हुआ कैंकर्य है। तथा (एतद्याथात्म्यम्) स्वरूपानुरूप यथार्थ फलस्वरूप माने (प्रहर्षयिष्यामि) संतोषको प्राप्त कराऊँगा (इति)

ऐसा (उक्तप्रकारेण) आलवन्दारस्तोत्रके ऊनचासवें श्लोकमें कहे हुए प्रकारसे (एतत्कैंकर्यप्रतिसंबन्धिनः) इस कैंकर्य का प्रतिसंबन्धी (शेषिणः) शेषी भगवान्का (हर्षः) संतोष होना है। और (तद्विरोधिस्वरूपम्) फलका विरोधी स्वरूप माने (देहे) शरीरमें (आत्मबुद्धिः) आत्माकी बुद्धि करना तथा (देहानुबंधिषु) देहानुबन्धी (पदार्थेषु) पदार्थोंमें (ममताबुद्धिः) ममता बुद्धि करना (च) और (देहात्) देहसे (परस्मिन्) अन्य (आत्मनि) अपनी आत्मा में (स्वतंत्रबुद्धिः) स्वतंत्र बुद्धि करना है। और (एतद्याथात्म्यम्) यथार्थ विरोधी स्वरूप माने (स्वरूपानुरूपकैंकर्यान्तर्गतौ) स्वरूपके अनुरूप कैंकर्यके अन्तर्गत (अहंकारममकारौ) अहंकार तथा ममकार हैं। तथा (तन्निवृतेः) उस विरोधी स्वरूपके निवृत होनेसे (सिद्धस्वरूपस्य) सिद्धस्वरूप (सौलभ्यादिगुणवतः) सौलभ्य, सौशील्य, वात्सल्य,आदिक गुणवाले (ईश्वरचरणौ) श्रीमन्नारायणके दोनों चरणारविन्द हैं (एतद्याथात्म्यम्) यथार्थ उपाय माने (अधिकारिविशेषणम्) अधिकारीके विशेषणको (अपि) भी (असहमानम्) नहीं सहता हुआ (सहकारिनैरपेक्ष्यम्) सहकारीकी अपेक्षा नहीं करना है। तथा (भोगविरोधि) भोगका विरोधी (स्वविषयप्रावण्यम्) अपने विषयमें आसक्त होना है (प्राप्यविरोधि) प्राप्यका विरोधी (ममत्वम्) ममता है। और (साधनविरोधि) उपायका विरोधी (कर्तृत्वम्) कर्तृत्व है। (त्रिविधविरोधिनिदानम्) भोग विरोधी १, प्राप्य विरोधी २, साधन विरोधी ३, इन तीन प्रकारके विरोधीका आदि कारण (अहंकारः) अहंकार है। तथा (कैंकर्यविरोधि) भगवत् कैंकर्यका विरोधी (स्वातंत्र्यम्) स्वतंत्रता है। (रुचिविरोधि), और रुचिका विरोधी (शब्दादिः) शब्द रूप, रस, गन्ध, स्पर्श हैं तथा (समाश्रयणविरोधि) सम्यक् आश्रयका विरोधी (देवतान्तरम्) देवतान्तर हैं। और (ज्ञानविरोधि) ज्ञानका विरोधी (अज्ञानम्) अज्ञान है। तथा (शेषत्वविरोधि) शेषत्वका विरोधी (देवतान्तरम्) देवतान्तर हैं। और (शरणागतिविरोधि) शरणागतिका विरोधी (उपायान्तरम्) कर्मादिक उपाय हैं। तथा (स्वरूपविरोधी) स्वरूपका विरोधी (भागवतापचारः) भागवतोंका अपचार है। और (पुरुषार्थविरोधि) पुरुषार्थ का विरोधी (विषयप्रावण्यम्) विषयकी आसक्ति है। (इति) ऐसा (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदासजी ने कहा है। इस वार्तामें "दासदासः" पाण्डवगी० (श्लो०२०) का यह प्रतीक है। और ।प्रदर्शयिष्यामि। आलवंदा० श्लो० ४९ का प्रतीक है। इससे पहले उन संपूर्ण श्लोकोंको लिख कर तब उन दोनोंका अर्थ लिखता हूँ कि।।

अहमस्मि नारायणदासदासो दासस्य दासस्य च दासदासः॥ अन्यो न ईशो जगतो नराणां तस्मादहं धन्यतरोऽस्मि लोके॥ पाण्डवगी० श्लो० २०॥

अक्रूरने कहा कि मैं नारायणके दासोंके दासोंका दास और उस दासके दासोंका

दास हूँ, संसारमें मनुष्योंका और कोई स्वामी नहीं है, इसलिये मैं लोकमें धन्य हूँ ।।२०।।

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरं प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः।। कदाहमैकान्तिकनित्य-किंकरः, प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्।। आलवन्दार० श्लो० ४९।।

हे भगवन्! हमेशा आपको निश्चय करके सेवा करता हुआ और अत्यन्त शान्त हो गये हैं संपूर्ण मनोरथ जिनके ऐसा ऐकान्तिक नित्य कैंकर्यपरायण मैं अपने स्वामी सहित जीवनको कब संतोष प्राप्त कराऊँगा अर्थात् आपके नित्य कैंकर्यको मैं कब करुँगा ।।४९।। इस आठवीं वार्तामें चारसौतिरपन पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।८।।

अब वार्तामालाकार गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी वार्ताको प्रपन्नोंके लिये कहते हैं कि-

।।अथ गोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता।।

मू०-श्रीगोष्ठीपूर्णस्य[१] श्रीभाष्यकारं[२] प्रत्युक्तिः[३] प्रपन्नेन[४] परि-हार्याणि[५] षट्[६] तानि[७] च[८], आश्रयणविरोधि[९] श्रवणविरोधी[१०] अनुभवविरोधी[११] स्वरूपविरोधी[१२] परत्वविरोधी[१३] प्राप्तिविरोधी[१४] च[१५], तत्राश्रयणविरोधी[१६], अहंकारममकारौ[१७] फलाभिसन्धिः[१८] पुरुषकारोपेक्षणमतिशयसंशयश्च[१९], श्रवणविरोधि[२०] देवतान्तरेषु[२१] अवशेनापि[२२] श्रवणदानम्[२३], अनुभवविरोधी[२४], भोगद्रव्यमादाय[२५] गत्वा[२६] स्नानद्रव्यमादाय[२७] निष्क्रमणस्य[२८] कारणं[२९] विषयानुभवेच्छा[३०], स्वरूपविरोधी[३१], पारतंत्र्यमनंगीकृत्य[३२] स्वातंत्र्येण[३३] व्यापारः[३४], परत्वविरोधी[३५], प्रथमक्षेत्रज्ञेषु[३६] ब्रह्मरुद्रादिष्वीश्वरत्वभ्रमः[३७], प्राप्तिविरोधि[३८], केवलैः[३९] सह संगतिः[४०]।।९।।

।।गोष्ठीपूर्णस्तुतिः।।

अर्थ--तत्र वैशाखरोहिण्यां पुण्डरीकांशतोऽजनि।।

गोष्ठीपूर्णो महातेजा विद्वद्गोष्ठीविशारदः।।१५।।

(श्रीगोष्ठीपूर्णस्य) श्रीगोष्ठी पूर्णस्वामीजीका (श्रीभाष्यकारम्) श्रीभाष्यकारके

(प्रति) प्रति (उक्तिः) कथन है कि (प्रपन्नेन) प्रपन्नजन द्वारा (परिहार्याणि) परित्याग करने योग्य (षट्) छः विरोधी हैं। (च) और (तानि) वे विरोधी ये हैं। (आश्रयणविरोधी) पहला आश्रयणविरोधी है। तथा दूसरा (श्रवणविरोधी) श्रवणविरोधी है। और तीसरा (अनुभवविरोधि) अनुभव विरोधी है। तथा चौथा (स्वरूपविरोधी) स्वरूप विरोधी है। तथा पाँचवाँ (परत्वविरोधि) परत्व विरोधी है। (च) और छठवाँ (प्राप्तिविरोधी) प्राप्ति विरोधी है। (तत्र) उनमें (आश्रयणविरोधी) आश्रयण विरोधीमाने (अहङ्कारममकारौ) अहङ्कार तथा ममकार और (फलाभिसन्धिः) फलकी इच्छा तथा (पुरुषकारोपेक्षणम्) पुरुषकारकी उपेक्षा (च) और (अतिशयसंशयः) अत्यन्त संदेह है। और (अवशेन) परतन्त्रतासे (अपि) भी (श्रवणदानम्) श्रवण देना है। तथा (अनुभवविरोधी) अनुभव विरोधी माने (भोगद्रव्यम्) भोगके द्रव्यको (आदाय) लेकर (गत्वा) जाकर (स्नानद्रव्यम्) स्नानके द्रव्यको (आदाय) लेकर (निष्क्रमणस्य) निकलनेका (कारणम्) कारण (विषयानुभवेच्छा) विषयोंके अनुभवकी इच्छा है। और (स्वरूपविरोधी) स्वरूपविरोधीमाने (पारतन्त्र्यम्) भगवत्की परतन्त्रताको (अनंगीकृत्य) नहीं स्वीकार करके (स्वातन्त्र्येण) स्वतन्त्रतासे (व्यापारः) व्यापार उपाय करना है। तथा (परत्वविरोधी) परत्व विरोधी माने (प्रथमक्षेत्रज्ञेषु) सृष्टिके आदिके जीव (ब्रह्मरुद्रादिषु) ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, आदिकोंमें (ईश्वरत्वभ्रमः) ईश्वरका भ्रम करना। वस्तुतः ब्रह्मादिक देवता ईश्वर नहीं हैं क्योंकि नारायणसे इन लोगोंकी उत्पत्ति सुनने में आती ।

नारायणाद् ब्रह्मा जायते। .रायणाद्रुद्रो जायते। नारायणादिन्द्रोजायते। नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते॥ नारायणोप० श्रु० १॥

नारायणसे ब्रह्मा उत्पन्न होता है। नारायण से रुद्र उत्पन्न होता है। नारायणसे इन्द्र उत्पन्न होता है। नारायणसे प्रजापति उत्पन्न होता है॥१॥ और (प्राप्तिविरोधी) प्राप्तिविरोधी माने (केवलैः) केवल जीवोंके (सह) साथ (संगतिः) संगति करना है। अब यहाँपर प्रश्न होता है कि केवल किसको कहते हैं? इस प्रश्नका उत्तर लोकाचार्य स्वामीजीने कहा है कि--

केवलो नाम एकाकी--अत्यन्तक्षुत्पिपासाभ्यां पीडितो भक्ष्याभक्ष्य-विवेककर्तुमशक्तः स्वदेहं स्वयमेव भक्षयित्वा प्रसन्नो भवति। तथा संसारदावाग्निना तप्तः सन् संसारदुःखनिवृत्यर्थशास्त्रजन्यज्ञानेन प्रकृत्यात्मविवेकं कृत्वा प्रकृतेर्दुःखाश्रयत्वं हेयपदार्थसमूहत्वं रूपाकारमात्मनः प्रकृतेः परत्वं स्वयं प्रकाशत्वं स्वतः सुखित्वनित्यत्वाप्राकृतत्वस्वरूपमाकारं चानुसंधाय पूर्वं स्वेनानुभूतदुःखाधिक्येनैतदल्परस आसक्तो ज्ञानानन्दमयपरमात्मविवेकं कर्तुमशक्तः, एतदात्मप्राप्तिसाधन-

भूतज्ञानयोगनिष्ठे योगफलमात्मानुभवमात्रमेव पुरुषार्थत्वेनानुभूय पश्चात्संसारसम्बन्ध-भगवत्प्राप्तिरहितः यावदात्मभाव्यशरीरी संचरन् कश्चित्॥ अर्थ० पञ्चक० १२॥

केवल मान अकेला अत्यन्त भूख और प्यास से पीडित भक्ष्य और अभक्ष्यके विचार करनेके लिये असमर्थ अपने देहको स्वयं खाकर प्रसन्न होता है, वैसे ही संसार दावानल से संतप्त संसारके दुःख निवृत्तिके लिये शास्त्रसे उत्पन्न ज्ञानके द्वारा प्रकृति और आत्माका विचार करके प्रकृतिके दुःखो का आश्रय और हेय पदार्थ के समूहरूप आकारको और आत्माको प्रकृतिसे परे स्वयं प्रकाश आप ही सुखानन्द नित्य अप्राकृत आकारका अनुसंधान करके पहले अपनेसे अधिक दुःखके अनुभव करनेसे इस अल्प सुखमें आसक्त होकर ज्ञान और आनन्दमय परमात्माके विचार करनेके लिये असमर्थ हो जाता है, तथा इस आत्मप्राप्तिमें साधनभूत ज्ञानयोगकी निष्ठा है, और सांख्ययोगका फल केवल आत्मानुभव है, और पुरुषार्थ द्वारा अनुभव करके पीछे संसारके सम्बन्ध तथा भगवत् प्राप्तिसे रहित सर्वदा केवल अपनी आत्माका अनुभव करता हुआ कोई जीव है॥ १२ ॥ इस वार्तामें पचास पद हैं। इति गोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥ ९ ॥

अब कुरुकाधिनाथकी वार्ताको कहते हैं कि--

॥ अथ कुरुकाधिनाथोक्त वार्ता ॥

मू०–भगवदनुभवानुवर्तनप्रतिबन्धकं शरीरमाचार्यानुवर्तनप्रतिबन्धकः पुत्रमित्रादिः श्रीवैष्णवानुवर्तनप्रतिबन्धक इतरसहवासः उपायाध्यवसायप्रतिबन्धकमर्थप्रावण्यमुपेयरुचिप्रतिबन्धकं विषयप्रावण्यमेतेषामेकस्यैकस्मिन् तात्पर्यमिति कुरुकाधिनाथस्योक्तिः॥१०॥

॥ पराङ्कुशमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ–माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम्॥ आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं श्रीमत्तदंघ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ॥१६॥

(भगवदनुभवानुवर्तनप्रतिबन्धकम्) भगवान्के अनुभवके अनुवर्तनका प्रतिबन्धक (शरीरम्) शरीर है। तथा (आचार्यानुवर्तनप्रतिबन्धकः) आचार्योंके अनुवर्तनका प्रतिबन्धक (पुत्रमित्रादिः) पुत्र, मित्र और आदि शब्दसे स्त्री, भाई, आदिक संबंधी

हैं। और (श्रीवैष्णवानुवर्तनप्रतिबन्धकः) श्री वैष्णवोंके अनुवर्तनका प्रतिवन्धक (इतरसहवासः) अन्यविषयीजीवोंका सहवास करना है। तथा (उपायाध्यवसायप्रतिवन्धकम्) कर्मादिक उपायोंके अध्यवसायका प्रतिवन्धक (अर्थप्राव्रण्यम्) अर्थमें आसक्ति करना है। और (उपेयरुचिप्रतिवन्धकम्) उपेयकी रुचिमें प्रतिवन्धक (विषयप्रावण्यम्) शब्दादिक विषयोंकी आसक्ति है। (एतेषाम्) इन सबोंके (एकस्य) एकका (एकस्मिन्) एकमें (तात्पर्यम्) तात्पर्य है (इति) ऐसा (कुरुकाधिनाथस्य) कुरुकाधिनाथ का (उक्तिः) कथन है। अब इस वार्ताके तीसरे पदमें आचार्य शबद आया है इससे प्रश्न होता है कि आचार्य किसको कहते हैं? इस प्रश्नका उत्तर देखिये लिखा है कि।।

आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः। योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः॥ गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः। एवं लक्षणसंपन्नो गुरुरित्यभिधीयते॥ गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते॥ अद्वयतारकोपनि०॥

जो वेद पढ़ा हो तथा विष्णुका भक्त हो और मत्सररहित हो, तथा योगको जाननेवाला हो और योगनिष्ठ हो, तथा सर्वदायोगात्मक हो और पवित्र हो तथा अपने गुरुका भक्त हो और पुरुषको विशेषरूपसे जाननेवाला हो, तो इन लक्षणोंसे युक्तको आचार्य कहते हैं। और गुकहते हैं अन्धकारको तथ रु कहते हैं प्रकाशको तो जो अविद्यारूप अन्धकारको ज्ञान सदुपदेशके प्रकाशसे दूर ' रता है उसको गुरु कहते हैं।। और मनुस्मृतिमें लिखा है कि।।

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥ मनु० अ० २, श्लो० १४०॥

जो ब्राह्मण, शिष्यका यज्ञोपवीत करके कल्प और रहस्य सहित वेदको पढ़ाता है उसको आचार्य कहते हैं।।१४०।। और हारीतस्मृतिमें लिखा है कि।

आचार्यं संश्रयेत्पूर्वमनवद्यं च वैष्णवम्। शुद्धसत्वगुणोपेतं नवेज्याकर्मकारकम्॥ सत्संप्रदायसंयुक्तं मंत्ररत्नार्थकोविदम्। ज्ञानवैराग्यसंपन्नं वेदवेदांगपारगम्॥ शासितारं सदाचारैः सर्वधर्मविशांवरम्। महाभागवतं विप्रं सदाचारनिषेविणम्। आलोक्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च वैष्णवः। तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः॥ हारीतस्मृ०॥

पहले अनवद्य वैष्णव शुद्ध सत्त्वगुणोंसे युक्त रोज रोज यज्ञादिक कर्म करने वाले सत्संप्रदायसे युक्त और द्वयमंत्रके अर्थको जाननेवाले ज्ञान तथा वैराग्यसे युक्त वेदवेदांग

पार किये हुए सदाचारोंसे शिक्षा देनेवाले संपूर्ण धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभागवत सदाचारसेवी ब्राह्मणको आचार्यके लिये आश्रयण करे। जो वैष्णव, संपूर्ण शास्त्र और पुराणोंको देखकर भगवत्के लिये आचरण करता है, उसको आचार्य कहते हैं।। और पाद्मोत्तरखण्ड में लिखा है कि–

आचार्यो वेदसंपन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः। मंत्रज्ञो मंत्रभक्तश्च सदा मंत्रात्मकः शुचिः॥ पाद्म० उत्तरखं० ६, अ० २२३, श्लो० ५०॥ सत्संप्रदायसंयुक्तो ब्रह्मविद्याविशारदः। अनन्यसाधनश्चैव तथानन्यप्रयोजकः॥५१॥ ब्राह्मणो वीतरागश्च क्रोधलोभविवर्जितः। सद्वृत्तोपासिता चैव मुमुक्षुः परमार्थवित्॥५२॥ एवमादिगुणोपेत आचार्यः स उदाहृतः॥ ५३॥

आचार्य, वेद पढ़ा हो, तथा विष्णु का भक्त हो, और विना मत्सरके हो तथा मंत्र जाननेवाला हो, और मंत्रों का भक्त हो, तथा सर्वदा मंत्र के अधीन रहता हो, और पवित्र हो॥५०॥ सत्संप्रदायसे युक्त हो और ब्रह्मविद्या में निपुण हो, तथा अनन्योपाय हो और अनन्यप्रयोजक हो॥५१॥ और राग रहित ब्राह्मण हो, और क्रोध तथा लोभसे रहित हो, शुद्ध आचारवाला हो, तथा मोक्षकी इच्छावाला हो, और श्रेष्ठतत्त्व का जाननेवाला हो॥५२॥ इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त को आचार्य कहते हैं॥५३॥ और भी लिखा है कि–

यस्तु मंत्रद्वयं सम्यगध्यापयति वैष्णवः। स आचार्यस्तु विज्ञेयो भवबन्धविनाशकः॥ पाद्म० उत्तरखं० ६, अध्या० २२६, श्लो० ४॥

जो वैष्णव, द्वयमंत्रको अच्छे प्रकारसे पढ़ाता है संसारके बन्धनको नाश करनेवाला हो, उसको आचार्य जानना॥४॥ इस वार्ता में १७ पद हैं। इति कुरुकाधिनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१०॥

अब कुरुकाधिनाथकी दूसरी वार्ताको कहते हैं कि

॥ अथ कुरुकाधिनाथोक्ता वार्ता॥

मू०–कुरुकाधिनाथः, स्वरूपविरोधीस्वरक्षणं स्वस्वातन्त्र्यमन्यशेषत्वं देहात्माभिमानः ममता च, तस्य रक्षकत्वात्स्वरक्षणे न प्राप्तिः, तस्य शेषित्वात्स्वातन्त्र्ये न प्राप्तिः, तस्य परात्परत्वादन्यशेषत्वे न प्राप्तिः, तस्य ज्ञानानन्दित्वात्–

२७ २८ २९ ३० ३१ ३२
देहात्माभिमाने न प्राप्तिः, ईश्वरविभूतित्वान्ममतायां न
३३ ३४ ३५ ३६ ३७
प्राप्तिः, उपायविरोधी-साधनान्तरं स्वयोग्यतार्थोऽधिकारि-
३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३
विशेषणमभिमतं च शरीरविशेषत्वात्साधनान्तरेषु न प्राप्तिः,
४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५०
बद्धात्मकत्वात्स्वयोग्यतायां न प्राप्तिः, अचेतनतयार्थस्येष्टा-
५१ ५२ ५३ ५४
निष्टज्ञानयोग्यताविरहात्साधनतायां न प्राप्तिः, अधिकारि-
५५ ५६ ५७ ५८ ५९
विशेषणस्य चैतन्यकार्यत्वात्साधनतायां न प्राप्तिः, सिद्ध-
६० ६१ ६२ ६३
साधनस्य सहायान्तरासहिष्णुतयास्याभिमतस्य साधनतायां
६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७०
योग्यता नास्ति, प्राप्यविरोधी-देहे भोग्यताबुद्धिः, देहानु-
७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६
बन्धिषु पुरुषार्थबुद्धिश्च स्वर्गैश्वर्यं न पुरुषार्थः, देहानुबन्धी-
७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२
च न पुरुषार्थः, देहानुबन्धिनामपुरुषार्थता, स्वरूपप्रयुक्त-
८३ ८४ ८५ ८६ ८७
त्वाभावात्स्वर्गैश्वर्यस्यापुरुषार्थता ''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं
८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५
विशन्ती'' त्युक्तत्वात्। ब्रह्मलोकप्राप्तिश्च न पुरुषार्थः, क्षुत्पि-
९६ ९७ ९८ ९९
पासाभ्यां तत्रस्थानामिहलोके, आगत्य स्वमांसभक्षण-
१०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५
श्रवणात् कैवल्यं च न पुरुषार्थः, विधवालंकारवत्स्वानुभव-
१०६ १०७
रूपत्वादल्पसुखत्वात्, अल्पभोग्यास्थिराप्राप्तव्यव्यावृत्ततः,
१०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३
खलु स्वरूपयुक्तपुरुषार्थः शरीरं जडम्, आत्मा ज्ञानं, दुःखा-
११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२०
त्मकमानन्दः, मलिनः, निर्मलः, नश्वरं, नित्यः, परिणामी,
१२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७
एकरूपः, विभुः, अणुः, तमः, प्रकाशः, निद्रा, प्रबोधः,
१२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५
क्रोधः, क्षमा, अशुद्धं, शुद्धः, ईश्वरो रक्षकः, शेषी कारणं
१३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१
शरीरी धारकः, व्यापकः, नियन्ता स्वतन्त्रः, शरण्यः,
१४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५०
सेव्यः, किं बहुना नायकश्च, आत्मा रक्ष्यः, शेषः, कार्यं
१५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६
शरीरं धार्यः, व्याप्यः, नियाम्यः, परतन्त्रः, शरणागतः,

१५७ १५८ १५९ १६० १६१
सेवकः, किं बहुना दासश्च ॥११॥

॥ शठकोपस्वामिस्तुतिः॥

अर्थ--वृषभे तु विशाखायां कुरुकापुरिकारिजम्॥
पाण्ड्यदेशे कलेरादौ शठारिं सैन्यपं भजे ॥१७॥

(कुरुकाधिनाथः) कुरुकाधिनाथजी ने कहा है कि (स्वरूपविरोधी) स्वस्वरूपविरोधी माने (स्वरक्षणम्) अपनी स्वयं रक्षा करना तथा (स्वस्वातन्त्र्यम्) अपने को स्वतन्त्र मानना और (अन्यशेषत्वम्) अपने को दूसरेका शेष मानना तथा (देहात्माभिमानः) देहमें आत्माका अभिमान करना (च) और (ममता) ममता करना है (तस्य) उस ब्रह्मके (रक्षकत्वात्) रक्षक होनेसे (स्वरक्षणे) अपने आप रक्षा करनेपर (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। और (तस्य) उस ब्रह्मके (शेषित्वात्) शेषी होनेसे (स्वातन्त्र्ये) अपने को स्वतन्त्र माननेपर (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। तथा (तस्य) उस ब्रह्मके (परात्) पर ब्रह्मादिक देव से (परत्वात्) परहोनेसे (अन्यशेषत्वे) अपनेकी दूसरे का शेष माननेपर (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। और (तस्य) उसके (ज्ञानानन्दित्वात्) ज्ञान और आनन्दी होनेसे (देहात्माभिमाने) देहमें आत्मा का अभिमान करनेपर (न) नहीं (प्राप्तिः)आत्मप्राप्ति होती है। और (ईश्वरविभूतित्वात्) ईश्वरकी विभूति होनेसे (ममतायाम्) ममतामें (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। (उपायविरोधी) उपायविरोधी माने (साधनान्तरम्) भगवत्से अन्यको साधन मानना और (अधिकारिविशेषणम्) अधिकारी का विशेषण मानना (च) और (अभिमतम्) अभिमत करना है। (शरीरविशेषत्वात्) देहके विशेषण होने से (साधनान्तरेषु) भगवान्से अन्य साधनोंमें (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। तथा (बद्धात्मकत्वात्) बद्धात्मक होनेसे (स्वयोग्यतायाम्) अपनी आप योग्यतामें (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। तथा (अचेतनतया) जड़ (अर्थस्य) अर्थके होनेसे (इष्टानिष्टज्ञानयोग्यताविरहात्) इष्ट और अनिष्ट ज्ञानकी योग्यताके विरहसे (साधनतायाम्) साधनतामें (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। (अधिकारिविशेषणस्य) अधिकारीके विशेषणका (चैतन्यकार्यत्वात्) चैतन्य कार्य होनेसे (साधनतायाम्) साधनतामें (न) नहीं (प्राप्तिः) आत्मप्राप्ति होती है। तथा (सिद्धसाधनस्य) सिद्धोपायके (सहायान्तरासहिष्णुतया) भगवत्से अन्य सहायको नहीं सहनेसे (अस्य) इस (अभिमतस्य) अभिमत की (साधनतायाम्) साधनतामें (योग्यता) योग्यता (न) नहीं (अस्ति) है। (प्राप्यविरोधी) प्राप्यविरोधी माने (देहे) देहमें (भोग्यताबुद्धिः) भोग्य

बुद्धि करना (च) और (देहानुबन्धिषु) देहके अनुसम्बन्धियोंमें (पुरुषार्थबुद्धिः) पुरुषार्थ बुद्धि करना है। (स्वर्गैश्वर्यम्) स्वर्गका ऐश्वर्य (न) नहीं (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ है (च) और (देहानुबन्धी) देहके अनुबन्धी (न) नहीं (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ है (देहानुबन्धिनाम्) देहानुबन्धियोंको (अपुरुषार्थता) पुरुषार्थताका आभाव है (स्वरूपप्रयुक्तत्वाभावात्) स्वरूप प्रयुक्त अभावके होने से और (स्वर्गैश्वर्यस्य) स्वर्गके ऐश्वर्यका भी (अपुरुषार्थता) पुरुषार्थका अभाव है। क्योंकि (क्षीणे) नाश (पुण्ये) पुण्यके होने पर (मर्त्यलोकम्) मृत्युलोक को (विशन्ति) प्राप्त होते हैं (इति) ऐसा (उक्तत्वात्) भगवद्गीताके नवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोकमें कथन होनेसे (च) और (ब्रह्मलोकप्राप्तिः) ब्रह्माके लोककी प्राप्ति भी (न) नहीं (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ है क्योंकि (क्षुत्पिपासाभ्याम्) भूख और प्याससे (तत्रस्थानाम्) उस ब्रह्मादिक लोकमें रहनेवाले जीवोंका (इह) इस (लोके) लोकमें (आगत्य) आकर (स्वमांसभक्षणश्रवणात्) अपने देहका मांस खाना, पाद्मपुराणके सृष्टिखण्डके छत्तीसवें अध्यायमें सुननेसे (च) और (कैवल्यम्) कैवल्य भी (न) नहीं (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ है। क्योंकि (विधवालंकारवत्) विधवा स्त्रीके भूषणके समान (स्वानुभवरूपत्वात्) अपने को केवल अनुभव करनेसे तथा (अल्पसुखत्वात्) अल्प सुख होनेसे और (अल्पभोग्यास्थिराप्राप्तव्यव्यावृत्ततः) अल्प अभोग्य अस्थिर और नहीं प्राप्त करने योग्यसे अलग होनेसे (खलु) निश्चय करके (स्वरूपयुक्तपुरुषार्थः) स्वरूपयुक्त पुरुषार्थ है। अर्थात् भगवत् का नित्य कैंकर्य प्राप्त होना ही वैदिक पुरुषार्थ है (शरीरम्) देह (जडम्) जड है। और (आत्मा) आत्मा (ज्ञानम्) ज्ञानस्वरूप है। ये दोनों देह तथा आत्मा क्रमसे (दुःखात्मकम्) दुःखस्वरूप (आनन्दः) आनन्दस्वरूप (मलिनः) मलिन (निर्मलः) निर्मल (नश्वरम्) नाश होनेवाला (नित्यः) नित्य (परिणामी) परिणामी (एकरूपः) एकरूप (विभुः) विभु (अणुः) अणु (तमः) अन्धकार (प्रकाशः) प्रकाश (निद्रा) नींद (प्रबोधः) जागरण (क्रोधः) क्रोध (क्षमा) क्षमा (अशुद्धम्) अपवित्र (शुद्धः) शुद्ध स्वरूप हैं। और (ईश्वरः) ईश्वर (रक्षकः) रक्षक (शेषी) शेषी (कारणम्) कारण (शरीरी) शरीरवाला (धारकः) धारक (व्यापकः) व्यापक (नियन्ता) नियन्ता (स्वतन्त्रः) स्वतन्त्र (शरण्यः) शरणमें आये हुए की रक्षा करनेवाला (सेव्यः) सेवा करने योग्य है (च) और (बहुना) बहुत कहनेसे (किम्) क्या (नायकः) वह ईश्वर सबका मालिक है। और (आत्मा) जीव (रक्ष्यः) भगवान्के रक्षा करने योग्य है (शेषः) भगवत्का शेष है (कार्यम्) भगवत्का कार्य है (शरीरम्) भगवत्का शरीर है (धार्यः) धारण करने योग्य है (व्याप्यः) व्याप्य है (नियाम्यः) नियाम्य है (परतन्त्रः) परतन्त्र है (शरणागतः) शरणागत है (सेवकः) सेवक है (च) और (बहुना) बहुत कहनेसे (किम्) क्या (दासः) भगवत् का दास जीव है। अब इस वार्ता में जो ॥क्षीणे

पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति॥ भगवद्गी० अ० ९ श्लो०२१॥ का प्रतीक है इससे संपूर्ण श्लोकको लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति॥ एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥ भगवद्गी० अ० ९, श्लो० २१॥

तदनन्तर अपने पुण्यके अनुसार विशाल स्वर्ग सुखको भोगकर वे पुरुष पुण्यके क्षय हो जानेसे इसी मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं, इस प्रकारसे कर्मकाण्ड में ही अनुराग रखनेवाले तथा विषय भोगकी इच्छावाले पुरुष सदा जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं॥२१॥ अब देखिये ब्रह्म लोकसे आकर अपने देहके मांस को श्वेत राजाने भोजन किया है। यह लिखा है कि-

अथापश्यं नरं तस्माद्विमानादवरोहितम्॥ शवमांसं भक्षयन्तं च स्नात्वा रघुकुलोद्वह॥ पद्मपु० सृष्टि खं० १, अ० ३६, श्लो० ७७॥

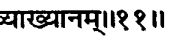
अगस्त्यजी कहते हैं कि- हे राम इसके बाद विमानसे उतरा हुआ स्नान करके अपने मरे देहके मांसको खाते हुए मनुष्यको मैंने देखा॥७७॥ और उससे पूछा कि तुम कौन हो और यह आहार तेरा निन्दनीय कैसे प्राप्त हुआ है। इसको सुनकर उसने कहा कि-**अहं श्वेत इति ख्यातः॥८६॥** मैं श्वेत नामका राजा हूँ॥८६॥ और **दशवर्ष सहस्राणि तपस्तप्त्वा महावने॥ शुभं तु भवनंप्राप्तो ब्रह्मलोकमनामयम्॥९२॥ स्वर्गस्थमपि मां ब्रह्मन्क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम॥ अबाधेतां भृशं चाहमभवं व्यथितेन्द्रियः॥९३॥**

महावनमें दसहजार वर्ष तप करके मैंने अनामय शुभभवन ब्रह्मलोकको प्राप्त किया॥९२॥ और हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! ब्रह्मलोकमें स्थित मुझको भूख और प्यास ने अत्यन्त पीडित किया॥९३॥ तब मैं ने ब्रह्मा से कहा कि हे भगवन्! यह लोक तो भूख और प्याससे रहित है, तो किस कर्मके द्वारा यहाँ पर भी मुझको भूख और प्यास पीडित करती हैं। तथा हे पितामह! मेरा आहार क्या है इसको कहिये । इसके बाद ब्रह्मा ने कहा कि तपस्या करते हुए तुमने अपने शरीरको पोषण किया और किसी जीव को कुछ नहीं दिया इससे-

सत्वं प्रपुष्टमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम्॥ भक्षयस्व च राजेन्द्र सा ते तृप्तिर्भविष्यति॥१००॥

तूने जिन आहारोंसे अपने अधम शरीरका पोषण किया है हे राजेन्द्र! उसीको भोजन करो उससे तेरी तृप्ति होवेगी॥१००॥ पूर्वोक्त ग्यारहवीं वार्तामें एकसौ ईकसठ पद हैं।

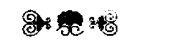
इति कुरुकाधिनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११॥



अब आत्मा का निरूपण करनेवाली कलिवैरिदासजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथ कलिवैरिदासोक्तावार्ता॥

मू०-श्रीकरणान्यात्मेति केचित्, अन्ये-इन्द्रियाणि आत्मेति, मन आत्मेति परे, प्राण आत्मेत्यपरे, इतरे-एते प्रत्येकमात्मेति वदन्ति, एतत्समुदाय आत्मेति केचन, प्रकृतिरात्मेत्यन्ये, ऐतेभ्यो विलक्षण आत्मेति स्वीकृत्यापि आत्मा जड इति वदन्ति केचित्, अपरे तु ज्ञानमात्रमात्मेति वदन्ति, केचित् आत्मा क्षणिक इति वदन्ति, आत्माविभुरिति वदन्ति, आत्माऽनित्य इति वदन्ति, एक आत्मेति वदन्ति, आत्मा परिणामीति वदन्ति, केचित्, आत्मा स्वतन्त्र इति वदन्ति, परतन्त्रमंगीकृत्यापि कर्मपरतन्त्र आत्मेति केचिद्वदन्ति, मातापित्रोः परतन्त्र इति वदन्ति, पितृणां परतन्त्र इति ग्रहाणां परतन्त्र इति वदन्ति, अग्निपरतन्त्र इति वदन्ति, इन्द्रस्य परतन्त्र इति वदन्ति, ब्रह्मणः परतन्त्र इति वदन्ति, रुद्रस्य परतन्त्र इति वदन्ति, एकायनस्य स्वामिनः परतन्त्र इति वदन्ति, एवं वहुधा विप्रतिपद्यन्ते॥१२॥



॥ कलिवैरिदासस्तुतिः ॥

अर्थ--अथ नंविल्लनामार्यः स वेदान्तिपदाश्रयः॥
श्री वैष्णवमतोद्धर्ता बभूव जगतीतले॥१८॥

(श्रीकरणानि) श्रीकर्मेन्द्रियाँ हाथ पैर आदिक (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (केचित्) कोई करणात्मवादी कहते हैं और (अन्ये) अन्य ज्ञानेन्द्रियात्मवादी (इन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्रादिकोंको (आत्मा) आत्मा (इति) ऐसा कहते हैं। तथा (मनः) मन (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (परे) पर मन आत्मवादी कहते हैं। और (प्राणः) प्राण (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (अपरे) अपर प्राणात्मवादी कहते हैं। तथा (इतरे) इतर (एते) ये प्रत्येक करणात्मवादी (प्रत्येकम्) प्रत्येक इन्द्रियको (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (वदन्ति) कहते हैं। और (एतत्समुदायः) इन सबों का समुदायरूप शरीर (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (केचन) कोई शरीरात्मवादी कहते हैं। तथा (प्रकृतिः) प्रकृति (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (अन्ये) अन्य प्रकृत्यात्मवादी कहते हैं। और (एतेभ्यः) इन पूर्वोक्त शरीरादिकों से (विलक्षणः) विलक्षण (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (स्वीकृत्य) स्वीकार करके (अपि) भी (आत्मा) आत्मा (जडः) जड़ है (इति) ऐसा (वदन्ति) कहते हैं। (केचित्) कोई जडात्मवादी तथा (अपरे) अपरज्ञानमात्रात्मवादी (तु) तो (ज्ञानमात्रम्) ज्ञानमात्र (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (वदन्ति) कहते हैं। और (केचित्) कोई क्षणिकात्मवादी (आत्मा) आत्मा (क्षणिकः) क्षणिक है (इति) ऐसा (वदन्ति) कहते हैं। तथा (आत्मा) आत्मा (विभुः) विभु है (इति) ऐसा (वदन्ति) विभ्वात्मवादी कहते हैं। और (आत्मा) आत्मा (अनित्यः) अनित्य है (इति) ऐसा (वदन्ति) अनित्यात्मत्वादी कहते हैं। तथा (एकः) एक (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (वदन्ति) एकात्मवादी कहते हैं। और (आत्मा) आत्मा (परिणामी) परिणामवाला है (इति) ऐसा (केचित्) कोई परिणाम्यात्मवादी (वदन्ति) कहते हैं। तथा (आत्मा) आत्मा (स्वतन्त्रः) स्वतन्त्र है (इति) ऐसा (वदन्ति) स्वतन्त्रात्मवादी कहते हैं। और (परतन्त्रम्) आत्माको परतन्त्र (अंगीकृत्य) मानकर (अपि) भी (कर्मपरतन्त्रः) कर्म परतन्त्र (आत्मा) आत्मा है (इति) ऐसा (केचित्) कोई कर्मपरतन्त्रात्मवादी (वदन्ति) कहते हैं। तथा (मातापित्रोः) माँ बापके (परतन्त्रः) परतन्त्र आत्मा है (इति) ऐसा पितृयाजी कहते हैं। तथा (ग्रहाणाम्) सूर्यादिग्रहोंके (परतन्त्रः) परतन्त्र आत्मा है (इति) ऐसा ग्रहयाजी (वदन्ति) कहते हैं। और (अग्निपरतन्त्रः) अग्निके परतन्त्र आत्मा है (इति) ऐसा (वदन्ति) अग्नियाजी कहते हैं। और (इन्द्रस्य) इन्द्रके (परतन्त्रः) परतन्त्र आत्मा है (इति) ऐसा (वदन्ति) इन्द्रयाजी कहते हैं। तथा (ब्रह्मणः) चतुर्मुख ब्रह्माके (परतन्त्रः) परतन्त्र आत्मा है (इति) ऐसा (वदन्ति) ब्रह्मयाजी कहते हैं। और रुद्रस्य रुद्रके (परतन्त्रः) परतन्त्र आत्मा है (इति) ऐसा (वदन्ति) रुद्रयाजी कहते हैं। तथा (एकायनस्य) एकायन (स्वामिनः) स्वामीके (परतन्त्रः) परतन्त्र आत्मा है (इति)

ऐसा (वदन्ति) कहते हैं (एवम्) इस प्रकारके (बहुधा) बहुविध (विप्रतिपद्यन्ते) विरुद्ध प्रतिपादन करते हैं। शमिति।

मू०—एवं विप्रतिपत्तिरिति कथं वस्तुस्थितिरेवं कुतो न भवतीति चेदुच्यते हस्तपादयोर्नाशेऽप्यात्मनः स्थितत्वात्करणानि नात्मा चक्षुःश्रवणयोर्नाशेऽपि स्थितत्वादिन्द्रियाणि नात्मा जडत्वान्मनो नात्मा प्राणो नात्मा वायुविशेषत्वात्, एकस्य करणस्य यदुःखं तस्य करणान्तरैरननुभवात्प्रत्येकं नात्मा, एतत्समुदायरूपं शरीरं नात्मा, तथाहि मम चरणः, मम करः, मम शरीरं विधेयमभूदित्युक्तत्वात्, मातापित्रोर्मरणानन्तरं दृश्यमानशरीरस्य किंचिद्वैवर्ण्याभावेऽपि हे तात, क्व गतोऽसि, हे मातः, क्व गतासीति प्रलप्य पूर्वेद्युरादृतं शरीरस्य-अर्द्धघटिकाकालमपि गृहे स्थितिमसहमानाः शव इति नाम कृत्वा दग्ध्वा तद्दोषनिवृत्यर्थं घृताग्नी स्पृष्ट्वा जले मज्जन्ति अज्ञा अपि शवशरीरे नात्मबुद्धिं कुर्वन्ति, अतो नात्मा शरीरम्, एतदवस्थितिसमये ज्ञानस्यानुभूयमानत्वान्नात्मा जडः पूर्वकृतकार्यप्रतिसन्धानान्न क्षणिकः, अहमेतदकरवमितिप्रतिसन्धानान्न ज्ञानमात्मा शरीरान्निष्क्रमणसमये पार्श्वस्थैरदृश्यमानत्वान्नात्मा विभुः पूर्वस्मिन् जन्मनि धर्मानुष्ठानादिह जन्मनि सुखामः, इदानीं धर्मानुष्ठाने ऽनन्तरजन्मन्यपि सुखिनो भविष्याम इति निश्चयेन धर्मानुष्ठानदर्शनात् शरीरं त्यक्त्वा गत्वा स्वर्गाद्यनुभवः कर्तव्य इति ज्योतिष्टोमादौ साधने प्रवत्तिदर्शनाच्च नात्मा

१५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१
ऽनित्यः चेतनानां सुखदुःखपीडादिवैचित्र्यान्नैक आत्मा
१६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८
तदानीं जातायां प्रजायां मृतायां च शतायुषि पुरुषे
१६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५
मृते च आत्मनोदृश्यमानत्वात् नात्मा परिणामी
१७६ १७७ १७९ १८० १८१
स्वानिष्टदुःखनिवृत्तेः स्वेष्टसुखप्राप्तेश्चाशक्तत्वाच्च स्वसं-
१८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९
कल्पितकार्यं कर्तुमशक्तत्वाच्च नात्मा स्वतन्त्रः नापि
१९० १९१ १९२ १९३ १९४
कर्मपरतन्त्रः तस्याचेतनत्वात् एतदापन्निवारणेऽसमर्थत्वात्
१९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१
मातापित्रोर्न परतन्त्रः रक्षकत्वाभावात् न पितृणां परतन्त्रः
२०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९
अत एव ग्रहाणामपि न परतन्त्रः अचेतनत्वात्स्वरक्षणे-
२१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६
प्यन्यापेक्षत्वात् आश्रयाशित्वान्नाग्नेः परतन्त्रः शापोपहत-
२१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३
त्वात् स्वराज्येऽन्यैरपहृते सति क्लेशकरणात् नेन्द्रस्य
२२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९
परतन्त्रः मधुकैटभापहृतवेदत्वात् रुद्रेण पीडितत्वाच्च न
२३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५
ब्रह्मणः परतन्त्रः स्वाभिमतिविषयं बाणासुरं महापदि त्यक्त्वा
२३६ २३७ २३८ २३९
स्वप्राणरक्षणार्थं पलायमानत्वात् ब्रह्मशिरसि स्वहस्तलग्ने
२४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६
सति तदापन्निवारणार्थं सर्वेश्वरमाश्रितत्वाच्च न रुद्रस्य
२४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३
परतन्त्रः "श्रीपते? अहमपि तव प्राचीनदास" इत्युक्त-
२५४ २५५ २५६ २५७
त्वात् नैकायनेश्वरस्य परतन्त्रः॥

अर्थ--(एवम्) इस प्रकार (विप्रतिपत्तिः) आत्मा के विषयमें अनेक दार्शनिकों का अनेक विध कथन है (इति) इस कारणसे (कथम्) कैसे (वस्तुस्थितिः) आत्मवस्तुकी स्थिति हो (एवम्) पहले कहे हुएके अनुसार (कुतः) क्यों (न) नहीं (भवति) आत्मा होती है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहिये तो इस विषयमें श्रवण कीजीये (उच्यते) मैं कहता हूँ कि (हस्तपादयोः) हाथ पैरके (नाशे) नाश होनेपर (अपि) भी (आत्मनः) आत्माके (स्थितत्वात्) स्थित रहने से (करणानि) हाथ पैर आदिक कर्मेन्द्रियाँ (न) नहीं (आत्मा) आत्मा हैं। और (चक्षुःश्रवणयोः) आँख कानके (नाशे) नाश होने पर (अपि) भी (स्थितत्वात्) आत्माके स्थित रहनेसे (इन्द्रियाणि) ज्ञानेन्द्रियाँ (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। और

(वायुविशेषत्वात्) वायुविशेष होनेसे (प्राणः) प्राण (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। तथा (एकस्य) एक (कारणस्य) इन्द्रिय का (यत्) जो (दुःखम्) दुःख है (तस्य) उस दुःखका (करणान्तरैः) अन्य इन्द्रियोंसे (अननुभवात्) अनुभव नहीं होनेसे (प्रत्येकम्) प्रत्येक इन्द्रिय (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। और (एतत्समुदायरूपम्) प्राण मन इन्द्रियके समुदाय रूप (शरीरम्) शरीर (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (मम) मेरा (चरणः) पैर है (मम) मेरा (करः) हाथ है और (मम) मेरा (शरीरम्) शरीर (विधेयम्) अधीन (अभूत्) हुआ (इति) ऐसा (उक्तत्वात्) दिव्य सूरियोंके कहनेसे (मातापित्रोः) माँ बापके (मरणानन्तरम्) मरने के बाद (दृश्यमानशरीरस्य) दृश्यमान शरीरके (किंचित्) कुछ भी (वैवर्ण्याभावे) आकारमें विकार नहीं होनेपर (अपि) भी (हेतात!) हेतात! (क्व) कहाँपर (गतः) गये (असि) हो (हे मातः) हे माँ! (क्व) कहाँ पर (गता) गयी (असि) हो (इति) ऐसा (प्रलप्य) प्रलापकर (पूर्वेद्युः) पूर्व दिनमें (आदृतम्) आदर किये हुए (शरीरस्य) शरीरका (अर्द्धघटिकाकालम्) आधी घड़ी काल तक (अपि) भी (गृहे) घरमें (स्थितिम्) स्थितिको (असहमानाः) नहीं सहते हुए (शवः) मृतक (इति) ऐसा (नाम) नाम (कृत्वा) करके (दग्ध्वा) श्मशान भूमिमें शवको जलाकर (तद्दोषनिवृत्त्यर्थम्) उस जलानेके दोषको दूर करनेके लिये (घृताग्नी) घी और आगको (स्पृष्ट्वा) छूकर (जले) जलमें (मज्जन्ति) स्नान करते हैं। इससे (अज्ञाः) अज्ञानी (अपि) भी (शवशरीरे)मृतक शरीरमें (न) नहीं (आत्मबुद्धिम्) आत्माकी बुद्धि (कुर्वन्ति) करते हैं (अतः) मृतक शरीरमें चेतनताकी अनुपलब्धि होनेसे (शरीरम्) शरीर (न) नहीं आत्मा है। तथा (एतदवस्थितिसमये) इस शरीरमें आत्माकी स्थिति रहनेके समयमें (ज्ञानस्य) ज्ञानके (अनुभूयमानत्वात्) अनुभव होनेसे (जडः) जड (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। और (पूर्वकृतकार्यप्रतिसन्धानात्) पहले किये हुए कार्योंके अनुसन्धान होनेसे (क्षणिकः) क्षणिक (न) नहीं आत्मा है और (अहम्) मैंने (एतत्) यह कार्य (अकरवम्) किया (इति) ऐसा (प्रतिसन्धानात्) प्रतिसन्धन होनेसे (ज्ञानम्) ज्ञान (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। तथा (शरीरात्) शरीरसे (निष्क्रमणसमये) निकलनेके समयमें (पार्श्वस्थैः) पार्श्वमें स्थित पुरुषों द्वारा (अदृश्यमानत्वात्) नहीं दिखाई देनेसे (न) नहीं (विभुः) विभु (आत्मा) आत्मा है। और (पूर्वस्मिन्) पूर्व (जन्मनि) जन्ममें (धर्मानुष्ठानात्) धर्मके करनेसे, धर्मका लक्षण जैमिनि महर्षिने कहा है कि **चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः॥ मीमांसा० अ० १, पा० १, सू० २॥**

प्रेरणा लक्षण अर्थ धर्म है॥२॥ और कणादमहर्षिने कहा है कि—

यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिस्सः (धर्मः)॥ वैशेषिक० अ० १, आह्निक० १, सू० २॥

जिससे अभ्युदय और निःश्रेयससिद्धि हो वह धर्म है॥२॥ उस धर्मका स्वरूप दस प्रकार का है। यह मनुस्मृति में लिखा है कि-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयंशौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकंधर्मलक्षणम्॥ मनु० अ० ६, श्लो० ९२॥

धीरता १, क्षमा २, मनरोकना ३, अन्यायसेदूसरे का धन न लेना ४, पवित्रता ५, इन्द्रियोंको रोकना ६, बुद्धि ७, आत्मज्ञान ८, सच्चा बोलना ९, और क्रोध नहीं करना १०, ये दस धर्मके लक्षण हैं॥९२॥ इन धर्मोंके करनेसे (इह) इस (जन्मनि) जन्म में (सुखाम:) हम सब सुखी हैं। और (इदानीम्) इस समय (धर्मानुष्ठाने) धर्म के आचरण करने पर (अनन्तरजन्मनि) दूसरे जन्ममें (अपि) भी (सुखिनः) सुखी (भविष्याम:) हम सब होंगे (इति) ऐसा (निश्चयेन) निश्चय करके (धर्मानुष्ठानदर्शनात्) धर्मके अनुष्ठान देखनेसे (शरीरम्) शरीरको (त्यक्त्वा) त्यागकर (गत्वा) स्वर्गलोकमें जाकर (स्वर्गाद्यनुभवः) स्वर्गादिक का अनुभव (कर्तव्यः) करनेयोग्य है (इति) इससे (ज्योतिष्टोमादौ) ज्योतिष्टम आदिक (साधने) साधनमें (प्रवृत्तिदर्शनात्) प्रवृत्ति देखनेसे (च) भी। क्योंकि श्रुति कहती है कि॥ (ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामोयजेत्) स्वर्ग चाहनेवाला ज्योतिष्टोमयज्ञ करे॥ पूर्वोक्त हेतुसे (अनित्यः) अनित्य (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है और (चेतनानाम्) चेतन जीवों के (सुखदुःखापीडादिवैचित्र्यात्) सुख दुःख पीडा और आदि शब्दसे जन्म-मरण मुक्तिकी विचित्रतासे (एकः) एक (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। तथा (तदानीम्) उसी समयमें (जातायाम्) उत्पन्न (प्रजायम्) सन्ततिके होनेपर (च) तथा (शतायुषि) सौ वर्ष आयुवाला (पुरुषे) पुरुषके (मृते) मरनेपर (आत्मनः) आत्माके (अदृश्यमानत्वात्) नहीं दिखाई देनेसे (परिणामी) परिणामवाला (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। (च) दुःखके दूर करनेमें (च) और (स्वानिष्टदुःखनिवृत्तेः) अपने अनिष्ट दुःखके दूर करने में (च) तथा (स्वेष्टसुखप्राप्तेः) अपने इष्ट सुखके प्राप्त करने में (अशक्तत्वात्) अशक्त होने (च) और (स्वसंकल्पितकार्यम्) अपने संकल्प किये हुए कार्यको (कर्तुम्) करनेके लिये (अशक्तत्वात्) असमर्थ होनेसे (स्वतन्त्रः) स्वतंत्र (न) नहीं (आत्मा) आत्मा है। तथा (कर्मपरतंत्रः) कर्मके परवश (अपि) भी (न) नहीं आत्मा (तस्य) उस कर्मके (अचेतनत्वात्) जड़ होनेसे (एतदापन्नवारणे) इस चेतनकी आपत्तिको दूर करनेमें (असमर्थत्वात्) असमर्थ होनेसे (मातापित्रोः) माँ बापका (परतन्त्रः) परतन्त्रः (न) नहीं आत्मा है। और (रक्षकत्वाभावात्) रक्षकत्व के अभाव होनेसे (पितृणाम्) आज्यपा

आदि पितरोंके (परतन्त्रः) परतन्त्र (न) नहीं आत्मा है। तथा (अतः) रक्षकत्वके आभाव होनेसे (एव) निश्चय करके (ग्रहाणाम्) सूर्यादिक ग्रहोंके (अपि) भी (परतन्त्रः) परवश (न) नहीं आत्मा है। और (अचेतनत्वात्) जड़ होनेसे तथा (स्वरक्षणे) अपनी रक्षा में (अपि) भी (अन्यापेक्षत्वात्) दूसरेकी अपेक्षा होनेसे और (आश्रयाशित्वात्) आश्रयको जलानेसे (अग्नेः) अग्निके (परतन्त्रः) परतन्त्र (न) नहीं आत्मा है। बल्कि अग्नि भी परतंत्र है क्योंकि लिखा है कि--

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ तैत्तिरी० आनन्दव० २, अनुवा० ८ ॥

इस ब्रह्म के भय से पवन चलता है, सूर्य उदय होता है, अग्नि पाक सिद्ध करती है, इन्द्र, शासन करता है, और पाँचवी, मृत्यु दौड़ती है॥ ८॥ और (शापोपहतत्वात्) इन्द्रको शापसे उपहत होनेसे। क्योंकि वाल्मीकिरामायण में लिखा है कि

मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते। अकर्तव्यमिदं यस्माद्विफलस्त्वं भविष्यसि॥ वाल्मी० बालकां० १, स० ४८, श्लो० २७॥

गौतमेनैवमुक्तस्य सुरोषेण महात्मना । पेततुर्वृषणौ भूमौ सहस्राक्षस्य तत्क्षणात् ॥२८॥

हेदुर्मते! मेरा रूप धारण करके तुमने नहीं करने योग्य पर स्त्री गमन किया, इससे बिना अण्डकोशके तुम होवोगे॥२७॥ क्रोध युक्त महात्मा गौतम ऋषिके ऐसे कहनेसे उसी समय इन्द्रके दोनों अण्डकोश भूमि पर गिर गये॥२८॥ और इन्द्रको दुर्वासाजी ने भी शाप दिया है यह लिखा है कि–

त्रैलोक्यैकश्रिया युक्तो यस्मात्त्वमवमन्यसे । तव त्रैलोक्यश्रीर्नष्टा भवत्येव न संशयः॥ पाद्म० ब्रह्मखं० ४,अ० ८, श्लो० ७॥

तीनों लोककी एकश्री से युक्त तुम मेरा अपमान करते हो इससे त्रैलोक्यश्री तेरी नष्ट हो जायेगी इसमें सन्देह नहीं है॥७॥ इस प्रकार इन्द्रको शापोपहत होनेसे तथा (स्वराज्ये) अपने राज्य (अन्यैः) अन्य रावणादिकोंसे (अपहृते) अपहरण (सति) कर लेनेपर (क्लेशकरणात्) क्लेश करनेसे (इन्द्रस्य) इन्द्रका (परतन्त्रः) परतन्त्र (न) नहीं आत्मा है। और (मधुकैटभापहृतवेदत्वाद्) मधु तथा कैटभ द्वारा ब्रह्मासे वेदका अपहरण होनेसे अर्थात् ब्रह्माका पाचवाँ शिरश्छेदन होनेसे। क्योंकि लिखा है कि-

अहोऽतितेजसावक्त्रमधिकं देवराजते। एवमुक्त्वाट्टहासन्तु मुमोच शशिशेखरः॥ पाद्म पु० सृष्टि खं० १, अ० १४, श्लो० ११०॥ वामांगुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः। चकर्त कदलीगर्भं नरः कररुहैरिव॥१११॥

हे ब्रह्मदेव! अत्यन्त तेज से आश्चर्य-जनक आपका पाँचवाँ मुख दीप्ति कर रहा है ऐसा कहकर चन्द्रशेखर रुद्र बड़े जोर से हँसे।।११०।। और जैसे मनुष्य अपने नखों से केला के गर्भ को काटे वैसे ब्रह्मा के पाँचवें सिर को शिवजी ने अपने बायें अँगूठे के नख के अग्रभाग से काट दिया।।१११।। इस प्रकार ब्रह्मा का पाँचवाँ शिर छेदन होने से (ब्रह्मणः) ब्रह्मा के (परतन्त्रः) परतन्त्र (न) नहीं आत्मा है। और (स्वाभिमतिविषयम्) अपने अभिमति के विषय (बाणासुरम्) बाणासुर को (महापदि) बड़ी आपत्ति में (त्यक्त्वा) छोड़कर (स्वप्राणरक्षणार्थम्) अपने प्राण की रक्षा के लिये (पलायमानत्वात्) पलायमान होने से। शिवजी की अभिमति का विषय बाणासुर था क्योंकि यह लिखा है कि–

बलिपुत्रेण पुराशङ्करोऽर्चितः प्रसन्नोवरं वृणीष्वेत्युवाच।। पाद्म० उत्तर खं० ६, अ० २५०, गद्य० २२।। तमीश्वरं बाणो मम पुरद्वारि रक्षार्थं सर्वदोपविश्य समागतं परसैन्यं जहीत्येवं वरमयाचत।।२३।। तं तथेत्युक्त्वा शङ्करोपि तस्य पुरद्वारि सायुधः सपुत्रः सगणः समासीनः।।२४।।

बाणासुर ने पहले शंकरजी की पूजा की, तब प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा कि वर माँगो।।२२।। तब बाणासुर ने वर माँगा कि मेरी रक्षा करने के लिये मेरे ग्राम के द्वार पर सर्वदा आप रहिये, और आई हुई शत्रु की सेना को मारिये।।२३।। तब शिवजी उसके कथनानुसार वर देकर बाणासुर के पुरद्वार पर आयुध पुत्रगणों के सहित ठहरे।।२४।। इससे सिद्ध हो गया कि शिवजी की अभिमति का विषय बाणासुर था। और वहाँ ही लिखा है कि अपने को भी रक्षा नहीं कर सके।

पपात मूर्छितो भूमौ शङ्करस्त्रिदशेश्वरः।।पा० खं० ६, अ० २५०, श्लो० ३७।।

श्रीकृष्ण भगवान् के बाण से मूर्च्छित होकर शंकरजी भूमिपर गिर गये।।३७।। उनको भागने की भी शक्ति नहीं रह गई क्योंकि वहाँ ही गौरी ने कहा है कि– **।।तस्मान्मम पतिं देव त्वं जीवयितुमर्हसि।।४९।।** मैं विधवा हो जाऊँगी इससे हे देव मेरे पति को जिला दीजिये।।४९।। इससे साबित हो गया कि बाणासुर के संग्राम में शिवजी का कुछ भी बल नहीं चला। इससे (च) और (ब्रह्मशिरसि) ब्रह्मा के मस्तक (स्वहस्तलग्ने) अपने हाथ में सट (सति) जानेपर (तदापन्निवारणार्थम्) उस आपत्ति को दूर करने के लिये (सर्वेश्वरम्) सबके स्वामी नारायण भगवान् को (आश्रितत्वात्) आश्रयण करने से। क्योंकि इस विषय में लिखा है कि–

विच्छिन्नं तु शिरः पश्चाद्धवहस्ते स्थितं तदा।।पाद्म० सृष्टिखं० १, अ० १४, श्लोक० ११२।।

कटा हुआ ब्रह्मा का शिर शिवजी के हाथ में सट गया।।११२।। तब व्याकुल होकर रुद्र।। **लक्ष्मीसहायं वरदं देवदेवं सनातनम्। अष्टांगप्रणिपातेन देवदेवस्त्रिलोचनः॥१३७॥ तुष्टावप्रणतो भूत्वा शंखचक्रगदाधरम्॥१३८॥** तीन नेत्रवाले महादेव ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके शङ्खचक्रगदापद्म धारण करनेवाले सब देवों के देव, सनातन, वर देनेवाले, लक्ष्मीनारायण भगवान् की अत्यन्त नम्रता से स्तुति की।।१३७।।१३८।। इससे सिद्ध हो गया की रुद्र ने श्रीमन्नारायण भगवान् का आश्रयण किया है। इससे (रुद्रस्य) रुद्र के (परतन्त्रः) परतन्त्र (न) नहीं आत्मा है। और (श्रीपते) हे लक्ष्मीपते! (अहम्) मैं (अपि) भी (तव) आपका (प्राचीनदासः) पुराना सेवक हूँ (इति) ऐसा (उक्तत्वात्) विष्णुचित्त स्वामीजी के कहने से (एकायनेश्वरस्य) एकायनेश्वर के (परतन्त्रः) परतन्त्र (न) नहीं आत्मा है। इस वार्ता में।। **श्रीपतेऽहमति तव प्राचीनदासः॥** ये जो पद हैं सो "**तिरुप्पल्लाण्डु**" अर्थात् "**बहुशरदः**" के ग्यारहवें पाशुरके प्रतीक हैं इससे यहाँ पर समस्त पाशुर को मैं लिखता हूँ। **अन्यायैनैकेनातिशून्याभरणगोष्ठीपुरवासिनां स्वाम्यभिमानतुङ्गः। शेल्व इव श्रीपतेऽहमपि तव प्राचीनदासः समीचीनप्रकारेण नमो नारायणायेति नामानि बहूनि प्रलप्य। नानाप्रकारैरपि पवित्र तव बहुशरदोवदामि॥ तिरुप्पल्ला० पाशु० ११॥**

पूर्वोक्त कथन से सिद्ध हो गया की शरीरादिक से भिन्न आत्मा है। और जो दर्शन शरीरादिक को आत्मा मानते हैं। उनके विषय में लिखा है कि– **शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्॥ पाद्म० त्तरखं० ६, अ० २३६, श्लो० २॥ तेषां स्मरणमात्रेण मोहः स्याज्ज्ञानिनामपि। प्रथमं हे मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्॥३॥ मच्छक्त्या वेशितैर्विप्रैः प्रोक्तानि च ततः शृणु। कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रंवैशेषिकं महत्॥४॥ गौतमेन तथा न्यायं सांख्यं तु कपिलेन वै। धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम्॥५॥ दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा। बौद्धशास्त्रमसत्प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्॥६॥ मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध उच्यते॥ मयैवकथितं देविकलौ ब्राह्मणरूपिणा॥७॥ अपार्थंश्रुतिवाक्यानां दर्शयन् लोकगर्हितम्। स्वकर्मरूपंत्याज्यत्वमत्रैव प्रतिपाद्यते॥८॥ सर्वकर्मपरिभ्रष्टैर्वैधर्मत्वं तदुच्यते। परेशजीवपारैक्यं मया तु प्रतिपाद्यते ॥९॥ ब्रह्मणोऽस्य स्वयं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया। सर्वस्य जगतोप्यत्रमोहनार्थं कलौ युगे॥१०॥ वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायया यदवैदिकम्। मयैव कल्पितं देवि जगतां नाशकारणात्॥११॥ मदाज्ञया जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थकम्। निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्॥१२॥**

हे देवि सुनो, यथाक्रमसे तामस दर्शनों को मैं कहूँगा।।२।। तामस दर्शनों के स्मरण मात्र से ज्ञानियों को भी मोह होगा। पहले मैंने ही शैवदर्शन तथा पाशुपत आदिक दर्शन

को कहा।।३।। उसके बाद मेरी शक्ति के आवेश से ब्राह्मणों ने तामस दर्शनों को कहा उनको सुनो, कणाद से कहा हुआ बड़ा वैशेषिक शास्त्र है।।४।। और गौतम से कहा हुआ न्याय शास्त्र है, तथा कपिल से कहा हुआ सांख्यशास्त्र है, और बृहस्पति से कहा हुआ अति निन्दित चार्वाक दर्शन है।।५।। और दैत्यों के नाश के लिये बुद्ध रूपधारी विष्णु भगवान् से नग्ननील पटादिक असत् कहा हुआ बौद्ध दर्शन है।।६।। और मायावाद जो झूठाशास्त्र है उसको प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं, हे देवि! पार्वति! कलि में ब्राह्मण का रूप धारण करके मैंने ही मायावाद को कहा।।७।। वेद वाक्यों का असत्य अर्थ दिखाते हुए लोकसे निन्दित अपने कर्मका परित्याग करना चाहिये ऐसा मायावाद मैंने कहा है ।।८।। सब कर्मों से परिभ्रष्ट होनेसे वह वैधर्म कहा जाता है और मायावाद में परमेश्वर तथा जीव एक ही हैं ऐसा मैंने कहा है।।९।। कलियुग में समस्त जीवों के मोहने के लिये मैं रूद्र परब्रह्म के गुण से रहित रूप कहूँगा।।१०।। वेदार्थ के तुल्य तो अवैदिक महाशास्त्र मायावाद है उसको माया द्वारा हे देवि! संसार का नाश करने के लिये मैंने ही बनाया।।११।। और मेरी आज्ञा से जैमिनिने पहले ही वेद का झूठा अर्थ करके निरीश्वरवाद द्वारा अत्यन्त बड़ा मीमांसा शास्त्र को बनाया।।१२।। ये सब अधोगति देनेवाले तामस दर्शन हैं। और जिसको तामस स्मृति तथा तामस पुराण जानना हो, वह मेरी बनाई हुई श्रीवचनभूषण की "चिन्तामणि" टीका है उसको देख ले। कमिति।।

मू०—अथ, अस्यात्मनः स्वाभाविकशेषत्वं त्वदष्टाक्षरं ज्ञात्वा त्वद्दासदास्यमहं प्राप्तवान् इत्युक्तत्वात् तदीयशेषत्वमेव तत्त्वं त्रिविधं तत्रात्मतत्त्वं त्रिविधं तत्र बद्धः, त्रिविधः, तत्र शेषत्वज्ञानवान् त्रिविधः, तत्र भगवच्छेषत्वज्ञानवान् त्रिविधः, तत्र, आत्मप्राप्तिकामस्त्रिविधः, तत्र प्रपन्नाधिकारी त्रिविधः, रक्षकत्वं नाशितवान् शेषत्वं नाशितवान् परत्वं नाशितवान् विग्रहं नाशितवान् कृपां नाशितवान् दासान् नाशितवान् विभूतिं नाशितवान् बन्धं नाशितवान् वृत्तिं नाशितवान् स्वं शरीरित्वेन निश्चित्यानर्थं प्राप्नोति स्वं

शरीरतया[५९] निश्चित्योज्जीवनं[६०] प्राप्नोतीति[६१] कलिवैरिदास-[६२]स्योक्तिः[६३]॥१२॥[६४][६५]

अर्थ–(अथ) इसके बाद (अस्य) इस (आत्मनः) आत्मा के (स्वाभाविकशेषत्वम्) स्वाभाविकशेषता (त्वदष्टाक्षरम्) आपके अष्टाक्षरमन्त्र को (ज्ञात्वा) जानकर। अष्टाक्षरमन्त्रका स्वरूप नारायणोपनिषद् में लिखा है कि–

ओमित्यग्रे व्याहरेत्। नम इति पश्चात्। नारायणायेत्युपरिष्टात्। ओमित्येकाक्षरम्। नम इति द्वे-अक्षरे। नारायणायेति पंचाक्षराणि। एतद्वैनारायणस्याष्टाक्षरं पदम्॥ नारायणोपनि० श्रु० ३॥

ॐ ऐसा पहले कहे। इसके बाद नमः ऐसा कहे। और अन्त में नारायण ऐसा कहे। ॐ यह एक अक्षर है। नमः ये दो अक्षर हैं। नारायण ये पाँच अक्षर हैं। निश्चय करके यही नारायण का अष्टाक्षरपद है॥३॥ उस अष्टाक्षर को जानकर (त्वद्दासदास्यम्) आपके दासों की दासता को (अहम्) मैं (प्राप्तवान्) प्राप्त किया हूँ (इति) ऐसा (उक्तत्वात्) परकाल स्वामीजी के कहने से (तदीयशेषत्वम्) भागवत का शेष होना (एव) ही निश्चय करके है। (तत्त्वम्) तत्त्व (त्रिविधम्) चित्तत्त्व १, अचित्तत्त्व २, ईश्वरतत्त्व ३, इस भेद से तीन प्रकार के हैं। क्योंकि लोकाचार्य स्वामीजीने कहा है कि॥ **तत्त्वत्रयं चिदचिदीश्वरश्च॥ तत्त्वत्रय०॥** (तत्र) उनमें (आत्मतत्त्वम्) आत्मतत्त्व (त्रिविधम्) बद्ध १, मुक्त २, नित्य ३, इस भेद से तीन प्रकार का है। क्योंकि लिखा है कि–**॥आत्मस्वरूपं च बद्धमुक्तनित्यभेदेन त्रिविधम्॥ तत्त्वत्रय०॥**

(तत्र) उनमें (बद्धः) बद्ध (त्रिविधः) देहात्माभिमानित्व १, अन्य शेषत्व २, स्वस्वातंत्र्य ३, इस भेद से तीन प्रकार के हैं। (तत्र) उनमें (शेषत्वज्ञानवान्) शेषत्व के ज्ञानवाला (त्रिविधः) ईश्वर शेष १, देवतान्तर शेष २, स्वशेष ३, इस भेद से तीन प्रकार के हैं। (तत्र) उनमें (भगवच्छेषत्वज्ञानवान्) भगवान् के शेषत्व ज्ञानवाला (त्रिविधः) ऐश्वर्यकामी १, कैवल्यकामी २, भगवत्प्राप्तिकामी ३, इस भेद से तीन प्रकार के हैं। (तत्र) उनमें (आत्मप्राप्तिकामः) आत्मा की प्राप्ति के काम (त्रिविधः) ज्ञान १, भक्ति २, प्रपत्ति ३, इस भेद से तीन प्रकार के हैं। (तत्र) उनमें (प्रपन्नाधिकारी) प्रपत्ति करनेवाले अधिकारी (त्रिविधः) अज्ञ १, ज्ञानाधिक २, भक्ति परवश ३, इस भेद से तीन प्रकार के हैं। क्योंकि लिखा है कि–

अत्र प्रपत्तिकर्तारोऽधिकारिणस्त्रयः॥ श्रीवच० सू० ४८॥ अज्ञाश्च ज्ञानाधिकाश्च भक्तिपरवशाश्च॥ सू० ४९॥

(रक्षकत्वम्) अपनेको रक्षक मानने से भगवान् के रक्षकत्व का (नाशितवान्) नाश किया। और अपने को स्वतंत्र मानने से (शेषत्वम्) शेषताका (नाशितवान्) नाश किया। तथा अन्य देवताको पर मानने से (परत्वम्) भगवत् के परत्व का (नाशितवान्) नाश किया। और निराकर निर्विशेष मानने से (विग्रहम्) मंगलमय विग्रह का (नाशितवान्) नाश किया। तथा स्वगतस्वीकार मानने से (कृपाम्) निर्हेतुकदया का (नाशितवान्) नाश किया। और (दासान्) दासों का (नाशितवान्) नाश किया। तथा (विभूतिम्) दिव्य विभूति का (नाशितवान्) नाश किया और (बन्धम्) भगवत् संबन्ध का (नाशितवान्) नाश किया। तथा (वृत्तिम्) वृत्ति का (नाशितवान्) नाश किया। (स्वम्) अपने को (शरीरित्वेन) शरीरित्व से (निश्चित्य) निश्चय करके (अनर्थम्) अनर्थ को (प्राप्नोति) प्राप्त करता है। और (स्वम्) अपने को (शरीरतया) ब्रह्म का शरीर (निश्चित्य) निश्चय करके (उज्जीवनम्) उज्जीवन को (प्राप्नोति) प्राप्त करता है। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि–

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरो यमात्मा न वेद यस्य-आत्मा शरीरं य आत्मनोन्तरो यमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः। शतपथ० १४६, ७, ३०॥

जिस ब्रह्म का आत्मा शरीर है जो आत्मा में रहता है और आत्मा का नियमन करता है परन्तु उसको आत्मा नहीं जानती है वही अन्तर्यामी तेरा अमृत है॥३०॥ बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है कि–

यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥ बृहदा० अ० ३, ब्रा० ७, श्रु० १५॥

जो ब्रह्म सब जीवों के भीतर नियमन करता है, जिसका सब जीव शरीर हैं, वही तेरा अन्तर्यामी अमृत है॥१५॥ (इति) ऐसी (कलिवैरिदासस्य) कलिवैरिदास की (उक्तिः) उक्ति है॥ जिसको आत्मा के विषय में अधिक जानना हो वह "सिद्धित्रयम्" की आत्मसिद्धि को देखले। ग्रन्थविस्तार के भय से अधिक मैं नहीं लिखता हूँ। इस बारहवीं वार्ता में चार सौ सैंतिस पद हैं।

॥ इतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१२॥

अब श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि।

॥अथ श्रीकृष्णपादोक्तावार्ता॥

मू०–पौरुषस्यारोपः[१] पारतन्त्र्यनाशनं[२] व्यापारारोपो[३]

व्यवसायनाशनं विषयान्तरान्वयो वृत्तिनाशनमिति श्री-कृष्णपादः॥१३॥

॥ कृष्णपादस्तुतिः ॥

अर्थ–सूक्तिस्सुधाकरसखीः कलिवैरिदासनाम्नो गुरोः समवलंब्य हि कृष्णपादः॥ यां द्राणिडोपनिषदो विवृतिं चकार षट्त्रिंशता दशशतैः प्रमिता मिता सा॥१९॥

(पौरुषस्य) पौरुष का (आरोपः) आरोप (पारतंत्र्यनाशनम्) परतंत्रता का नाश करनेवाला है। तथा (व्यापारारोपः) व्यापार का आरोप (व्यवसायनाशनम्) व्यवसाय का नाश करनेवाला है। और (विषयान्तरान्वयः) अन्यविषयों का प्रेम (वृत्तिनाशनम्) वृत्ति का नाश करनेवाला है (इति) ऐसा (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में नव पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१३॥

अब पिल्लैतिरुनरैयूररैयर् आचार्य की वार्ता को कहते हैं कि–

॥अथ पिल्लैतिरुनरैयूररैयर्आचार्योक्ता वार्ता॥

मू०-ज्ञानं ज्ञानं कथं विनियोजयतीति चेत्, अयं करणद्वारा विनियोजयति, स विग्रहद्वारा स्वीकरोति, ज्ञानं ज्ञानस्य कथं शेषमिति चेत्-यस्य वस्तुनः स्वरूपस्थिति-प्रवृत्तयो यदधीनाः, तत्तच्छेषी, एवं भूतं ज्ञानमविद्या कथ-मावृणोतीति चेत्-ज्ञानाश्रयत्वात्, अस्य न कलुषितं भवति जलं खलु कलुषितं भवति, ज्ञानद्रव्यं कदाप्यकलुषितं न तिष्ठति, अप्राप्तौ कलुषितं भवति, प्राप्तौ कलुषितं भवति, स्थूले सूक्ष्मं कथं तिष्ठतीति चेत्-ज्ञानेन्द्रियेषु व्याप्य तिष्ठति स्थूलनिवृत्तिदशायां "वायुर्गन्धानिवे" त्युक्तप्रकारेण इन्द्रियाणि गृहीत्वा गच्छति, अरुच्यविश्वासाभ्यां स्थूल-

निवृत्तिसमये[७३] सूक्ष्मं[७४] कुतो[७५] न[७६] निवर्तत[७७] इति[७८] चेत्[७९]-प्राकृत-देशेऽप्राकृतशरीराभावात्[८०], इदं[८१] यत्र[८२] निवर्तते[८३], सोऽप्राकृतो-देशः[८४], अस्य[८५] कर्मसाधनत्वात्[८६] गमनसमये[८७] मार्गस्थदेवजाती-नामेतत्सत्कारेण[८८] स्वरूपोज्जीवनमावश्यकम्[८९], सूक्ष्मनिवृत्तौ[९०] द्वादशकोटिसूर्यनिरौष्ण्यतेजःसदृशतेजोयुक्तममुं[९१] देवदेश-स्थानां[९२] सम्मुखं[९३] स्थित्वा[९४] दृष्ट्वा[९५] किंचित्कृत्यस्वरूपं[९६] प्राप्तुं[९७] सामर्थ्याभावात्[९८]॥

॥श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ—राजच्छिद्रयुतोर्ध्वपुंड्रमनिशं रामानुजाख्यं मुनिम्। काषायाम्बरमब्ज-सन्निभगलं कान्तोपवीतश्रियम्॥ भाषासंस्तुतवाग्विलासममलं बद्धाञ्जलिं भास्वरम् श्रीवत्सांकमुखाखिलार्यशरणं श्रीभाष्यकारं भजे॥२०॥

(ज्ञानम्) ज्ञान (ज्ञानम्) ज्ञान को (कथम्) कैसे (विनियोजयति) समर्पण कराता है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (अयम्) यह आत्मा (करणद्वारा) इन्द्रियों के द्वारा (विनियोजयति) संकल्प कराती है (सः) वह परमात्मा (विग्रहद्वारा) मंगलमय विग्रह के द्वारा (स्वीकरोति) लेता है। (ज्ञानम्) ज्ञान (ज्ञानस्य) ज्ञान का (कथं) कैसे (शेषम्) शेष है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (यस्य) जिस (वस्तुनः) वस्तु का (स्वरूपस्थितिप्रवृत्तयः) स्परूप तथा स्थिति और प्रवृत्तियाँ (यदधीनाः) जिसके अधीन हो (तत्) वह (तच्छेषी) उसका शेषी है। (एवम्) इस प्रकार (भूतम्) भया हुआ (ज्ञानम्) ज्ञान को (अविद्या) अविद्या (कथम्) कैसे (आवृणोति) अच्छे प्रकार से ढँक लेती है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (ज्ञानाश्रयत्वात्) ज्ञान के आश्रय होने से (अस्य) इसका (कलुषितम्) कलुषित (न) नहीं (भवति) होता है और (खलु) निश्चय करके (जलम्) जल (कलुषितम्) कलुषित (भवति) होता है (ज्ञानद्रव्यम्) ज्ञान द्रव्य (कदापि) कभी भी (अकलुषितम्) बिना कलुषित (न) नहीं (तिष्ठति) रहता है (अप्राप्तौ) नहीं प्राप्ति होने में (कलुषितम्) कलुषित (भवति) होता है। और (प्राप्तौ) प्राप्ति होने पर भी (कलुषितम्) कलुषित (भवति) होता है। (स्थूले) स्थूल शरीर में (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म (कथम्) कैसे (तिष्ठति) रहता है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (ज्ञानेन्द्रियेषु) श्रवण १, चक्षुः २, घ्राण ३, रसना

४, त्वचा ५, इन ज्ञानेन्द्रियों में (व्याप्य) व्यापक होकर (तिष्ठति) रहता है (स्थूलनिवृत्तिदशायाम्) स्थूल देह के निवृत्त होने के समय में (वायुः) पवन (गन्धान्) गन्धों को (इव) जैसे (इति) ऐसा (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों को (गृहीत्वा) ग्रहण कर (गच्छति) जाता है। यहाँ पर **॥वायुर्गन्धानिव॥ भगवद्गी० अ० १५, श्लो० ८॥** का प्रतीक है इससे संपूर्ण श्लोक लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः। गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥ भगवद्गी० अ० १५, श्लो० ८॥

हे पार्थ! यह जीवात्मा जो एक देह को छोड़कर दूसरे देह को प्राप्त होती है तो इन इन्द्रियों को और भूत मात्राओं को साथ लेकर ही जाती है जैसे गन्धाश्रय फूल आदिक से वायु गन्धों को लेकर जाती है॥८॥ (अरुच्यविश्वासाभ्याम्) अरुचि और अविश्वास से (स्थूलनिवृत्तिसमये) स्थूल देह के निवृत्त होने के समय में (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म (कुतः) क्यों (न) नहीं (निवर्तते) निवृत्त होता है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (प्राकृतदेशे) प्राकृत देश में (अप्राकृतशरीराभावात्) दिव्य शरीर के अभाव होने से (इदम्) यह सूक्ष्मदेह (यत्र) जहाँ पर (निवर्तते) निवृत होता है (सः) वह (अप्राकृतः) दिव्य (देशः) देश है (अस्य) इसके (कर्मसाधनत्वात्) कर्म साधन होने से (गमनसमये) अमृत स्थान में जाने के समय (मार्गस्थदेवजातीनाम्) मार्ग में स्थितदेवजातियों के (एतत्सत्कारेण) इस सत्कार द्वारा (स्वरूपोज्जीवनम्) अपने स्वरूप को उज्जीवन (आवश्यकम्) आवश्यक है (सूक्ष्मनिवृत्तौ) सूक्ष्म देह निवृत्त होने पर (द्वादशकोटिसूर्यनिरौष्ण्यतेजस्सदृशतेजोयुक्तम्) बारह करोड़ सूर्य का तेज जिस तेज के सामने तेज रहित हो जाता है ऐसे तेज के तुल्य तेज से युक्त (अमुम्) इस चेतन को (देवदेशस्थानाम्) नारायणदेव के दिव्य देश में रहने वालों के (सम्मुखम्) सामने (स्थित्वा) रहकर (दृष्ट्वा) देखकर (किंचित्) कुछ (कृत्यस्वरूपम्) करने योग्य स्वरूप को (प्राप्तुम्) प्राप्त करने के लिये (सामर्थ्याभवात्) सामर्थ्य के अभाव होने से। क्योंकि लिखा है कि–

अर्चिरादिना तत्प्रथितेः॥ वेदान्त० अ० ४, पा० ३, सू० ॥१॥

अर्चिरादि द्वारा जीव का गमन प्रसिद्ध होने से॥१॥ उपनिषदों में लिखा है कि–

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते सः॥ छान्दो० अ० ८, खं० ६, श्रु० ५॥

जब यह जीव इस देह से निकलता है तब वह इन सूर्य की किरणों द्वारा ऊपर को चलता है॥५॥ और भी लिखा है कि–

तेऽर्चिरभिसंभवन्ति॥ बृह० अ० ६, ब्रा० २, श्रु० १५॥

वे जीव अर्चिमार्ग को प्राप्त करते हैं॥१५॥ और देवलोकों में जीव का गमन होता है यह लिखा है कि–

स एतं देवयानं पन्थानमासाद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकम्॥ कौषीतकिब्रा० अ० १, श्रु० ३॥

वह जीव इस देवयान मार्ग को प्राप्त कर अग्निलोक वायुलोक वरुणलोक सूर्यलोक इन्द्रलोक और प्रजापतिलोक को आता है॥३॥



मू०-किं[१] च[२] राजमहिष्याः[३], अन्तःपुरगमनसमये[४] तिरस्करणीं[५] कृत्वा[६] गमनमुचितं[७] तदा[८] देवजातीनां[९] दुःखं[१०] यथा[११] निवर्तेत[१२], तथा-आगत्य[१३] कृपां[१४] कुर्वित्यादिप्रकारेण[१५] कार्य-समय[१६] उक्त्वा[१७] कार्यावसाने[१८] सम्मुखं[१९] शरप्रेरणे[२०] सन्नद्धानाम-सतीनामत्यन्तहेयानां[२१] दृष्टिं[२२] परिहार्यवैकुण्ठद्वार्यवरुह्य[२३] तिरस्करणीं[२४] परिहरति[२५], तच्च[२६] विरजावगाहनं[२७] तिरस्करणिपरि-हारे[२८] सति[२९] चन्द्रमुखीनां[३०] मुखं[३१] पश्यति[३२], "शतं[३३] मालाहस्ता[३४]" इत्युक्तप्रकारेण[३५] श्रीवैकुण्ठनाथं[३६] प्रसाधयन्त्योऽमुं[३७] प्रसाध-यन्ति[३८] चेत्[३९], तासां[४०] मुखमयं[४१] पश्यति[४२] खलु[४३] स्वरूपज्ञानं[४४] तत्प्रीतौतिष्ठति[४५], सा[४६] चैतस्य[४७] सत्तावस्थितिः[४८], शेषशेषिसंबन्धः[४९], रक्ष्यरक्षकसंबन्धः[५०] पितापुत्रसंबन्धः[५१], भर्तृभार्यासंबन्धः[५२], ज्ञातृ-ज्ञेयसंबन्धः[५३], स्वस्वामिसंबन्धः[५४], शरीरिशरीरसंबन्ध[५५], आधारा-धेयसंबन्धः[५६], भोक्तृभोग्यसंबन्धः॥

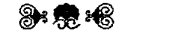
अर्थ–(च) और (किम्) क्योंकि (राजमहिष्याः) राजमहिषियों के (अन्तःपुरगमनसमये) रनिवांस में जाने के समय (तिरस्करणीम्) पर्दा को (कृत्वा) बनाकर (गमनम्) जाना (उचितम्) उचित है (तदा) तब (देवजातीनाम्)

देवजातियों के (दुःखम्) दुःख (यथा) जैसे (निवर्तेत) निवृत्त होवे (तथा) वेसे (आगत्य) आकर (कृपाम्) दया को (कुरु) किजीये (इति) ऐसा (आदिकप्रकारेण) आदिक प्रकार से (कार्यसमये) कार्यकरने के समय में (उक्त्वा) कहकर (कार्यावसाने) कार्य के समाप्ति समय में (सम्मुखम्) सामने (शरप्रेरणे) बाणछोड़ने में (सन्नद्धानाम्) सन्नद्ध (असतीनाम्) असती (अत्यन्तहेयानाम्) अत्यन्तपरित्याग करने योग्यों की (दृष्टिम्) दृष्टि को (परिहार्य) हटाकर (वैकुण्ठद्वारि) वैकुण्ठ के द्वार पर (अवरुह्य) चढ़कर (तिरस्करणीम्) पर्दा को (परिहरति) हटाता है (च) और (तत्) वह विरजावगाहनम्) विरजानदीका स्नान है उसके द्वारा (तिरस्करणिपरिहारे) पर्दारूपमाया की वासना के परिहार (सति) होने पर (चन्द्रमुखीनाम्) चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली अप्सराओं के (मुखम्) मुखको (पश्यति) देखता है (शतम्) सैकड़ों (मालाहस्ताः) मालाहाथ में ली हुई (इति) ऐसा (उक्तप्रकारेण) कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् में कहे हुए प्रकार से (श्रीवैकुण्ठनाथम्) श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान को (प्रसाधयन्त्यः) सेवा करती हुई (अमुम्) उस मुक्त जीव को (प्रसाधयन्ति) सेवा करती हैं (चेत्) तब (तासाम्) इन अप्सराओं के (मुखम्) मुखको (खलु) निश्चय करके (अयम्) यह मुक्त जीव (पश्यति) देखता है। और (स्वरूपज्ञानम्) स्वरूपका ज्ञान (तत्प्रीतौ) भगवत् की प्रीति में (तिष्ठति) रहता है (च) और (सा) वह भगवान् की प्रीति (एतस्य) इस चेतन की (सत्तावस्थितिः) आत्मधारणानुकूलव्यापाररूपसत्ता की अवस्थिति है (शेषशेषिसंबन्धः) जीव शेष है परमात्मा शेषी हैं इससे जीवात्मा और परमात्मा में शेषशेषी संबन्ध है १, तथा (रक्ष्यरक्षकसंबन्धः) जीवात्मा रक्ष्य है और परमात्मा रक्षक हैं इससे जीव तथा ईश्वर में रक्ष्यरक्षक संबन्ध है २, और (पितापुत्रसंबन्धः) परमात्मा जनक है तथा जीवात्मा जन्य है इससे परमात्मा और जीवात्मा में पितापुत्र संबन्ध है ३, तथा (भर्तृभार्या संबन्धः) परमेश्वर भर्ता है और जीव भार्या है इससे परमात्मा और जीवात्मा में भर्तृभार्यासंबन्ध है ४, और (ज्ञातृज्ञेयसंबन्धः) जीव ज्ञाता है और परमात्मा ज्ञेय है इससे जीवात्मा और परमात्मा में ज्ञातृज्ञेय संबन्ध है ५, तथा (स्वस्वामिसंबन्धः) आत्मा का परमात्मा स्वामी है और आत्मा परमात्मा का सेवक है इससे जीव और ईश में स्वस्वामिभाव संबन्ध है ६, और (शरीरिशरीरसंबन्धः) परमात्मा शरीरी है और जीवात्मा शरीर है इससे परमात्मा तथा जीवात्मा में शरीरिशरीर संबन्ध है ७, तथा (आधाराधेयसंबन्धः) परमात्मा आधार है और जीवात्मा आधेय है इससे परमात्मा और जीवात्मा में आधाराधेय संबन्ध है ८, और (भोक्तृभोग्यसंबन्धः) परमात्मा भोक्ता है तथा जीवात्मा भोग्य है इससे परमात्मा और जीवात्मा में भोक्तृभोग्य संबन्ध है ९, इन नव संबन्धों को मुमुक्षुओं को अवश्य जानना चाहिये। इस वार्ता में ।। **शतं मालाहस्ताः।। कौषीतकिब्रा० अ० १, श्रु० ४।।**

का यह प्रतीक है इससे संपूर्ण लिखकर उसका अर्थ लिखता हूँ।।

तं पंचशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति, शतं मालाहस्ताः शतसाञ्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं कणाहस्तास्तं ब्रह्मालंकारेणालंकुर्वन्ति, स ब्रह्मालंकारेणालंकृतो ब्रह्मविद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति, स आगच्छत्यारं ह्रदं तन्मनसात्येति, तमृत्वा संप्रतिविदो मज्जन्ति, स आगच्छति, मुहूर्तान्येष्टिहांस्तेऽस्मादपद्रवन्ति, स आगच्छति विरजां नदीं तां मनसैवात्येति, तत्सुकृतदुष्कृते धूनुते, तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतं, तद्यथा रथेन धावयन् रथचक्रे पर्यवेक्षत एवमहोरात्रे पर्यवेक्षत एवं सुकृत दुष्कृते सर्वाणि च द्वन्द्वानि स एष विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति॥ कौषीतकिब्रा० अ० १, श्रु० ४॥

उस आये हुए मुक्तजीव को सत्कार करने के लिये पाँच सौ अप्सरायें दौड़ती हैं, सौ हाथ में माला ली हुई तथा सौ हाथ में अञ्जन ली हुई, और सौ हाथ में चूर्ण ली हुई, तथा सौ हाथ में वस्त्र ली हुई, और सौ अप्सरा हाथ में कड़ा ली हुई, ब्रह्म के अलंकार से उस जीव को अलंकृत करती हैं, तब अलंकारयुक्त वह ब्रह्मवेत्ता जीव ब्रह्म के पास में आता है और वह आरंह्रद को मन से अतिक्रमण करके विरजा नदी को प्राप्त करता है, और वहाँ पर अपने सुकृत दुष्कत को वह परित्याग करता है, तब उसके प्रियज्ञाति सुकृत को प्राप्त करते हैं, और अप्रियज्ञाति दुष्कृत को प्राप्त करते हैं, और जैसे रथ से दौड़ते हुए रथ के दोनों चक्कों को देखता है वैसे ही वह दिन और रात को देखता है इस प्रकार से वह सुकृत और दुष्कृत को तथा संपूर्ण द्वन्द्वों को परित्याग करके बिना सुकृत दुष्कृत के वह ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को प्राप्त करता है।।४।।



मू०-प्रणवे[१] चतुर्थ्या[२] शेषत्वमुक्त्वा[३], अकारेण[४] शेषत्व-प्रतिसम्बन्धिनमुक्त्वा[५], मकारेण[६] शेषत्वाश्रयमुक्त्वा[७], अवधारणेन[८] शेषिशेषभावनिष्ठ[९] अनन्वहिताया[१०] उक्तत्वात्स्वरूपमुक्तम्[११], अकारेण[१२] रक्षकमुक्त्वा[१३], मकारेण[१४] रक्ष्यमुक्त्वा[१५], चतुर्थ्या[१६] रक्ष्य-रक्षकभावापेक्षितं[१७] संबन्धमुक्त्वा[१८], अवधारणेन[१९] रक्ष्यरक्षकयोः[२०], लक्षणस्य-उक्तत्वात्[२१], उपाययुक्तः[२२], अकारेण[२३] प्राप्यमुक्त्वा[२४], मकारेण[२५] प्राप्तारमुक्त्वा[२६], चतुर्थ्या[२७] प्राप्तिफलं[२८] कैंकर्यमुक्त्वा[२९],

अवधारणेन कैंकर्यप्रकारस्योक्तत्वात् प्राप्यमुक्तं प्रणवेन-
आत्मस्वरूपमुक्तं नारायणपदेन परमात्मस्वरूपमुक्तं चतुर्थ्या
पुरुषार्थस्वरूपमुक्तम्, म इत्यनेन विरोधिस्वरूपमुक्तम्, नम
इत्यनेन उपायस्वरूपमुक्तम्, तस्मात्सकलवेदान्तप्रतिपाद्याः
पञ्चार्थाः, आश्रयीभूतं शेषत्वं प्रथममुक्त्वा, आश्रयं ज्ञाना-
नन्दलक्षणं वस्तु पश्चात्कथं प्रतिपाद्यत इति चेत्, अहमर्थस्य
ज्ञानानन्दापेक्षया शेषत्वस्य प्रधाननिरूपकत्वं ज्ञापयितुं
दास्यरसप्रतिबन्धकमात्मानुभवमात्रमिति तत्परिहारार्थम्,
एवमग्नौ पतित्वा दह्यमानं दृष्ट्वायमेतत्कुलगोत्रनामवानिति
निरूपणमकृत्वैव प्रज्वलदग्निशमने यथा धार्मिका यतन्ते,
तथाऽदाह्यमात्मवस्त्वनादिकालमारभ्य दहतः स्वस्वातन्त्र्य-
निवृत्तौ तात्पर्यात्पुष्पस्य परिमलायत्तश्लाघ्यतावत् स्वरूप-
स्यैतत्स्वभावाधीनश्लाध्यतावत्वाच्च प्रथमतः शेषत्वमुपात्तम्,
अस्यात्मनः स्वामिना बद्धं मांगल्यसूत्रं श्रीमंत्र इति पिल्लै-
तिरुनरैयूररैयरुक्तिः॥१४॥

अर्थ– अब जिस मूल मंत्र का उपदेश भगवान् ने वदरिकाश्रम में नर को दिया है, उसका अर्थ आचार्य कहते हैं क्योंकि लिखा है कि–

॥ उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥ऋ० मं० १०, सू० ७१, मं० ४॥

जो अर्थ को नहीं जाननेवाले हैं वे देखते हुए भी नहीं देखते हैं और उस वाणी को सुनते हुए भी नहीं सुनते हैं तथा जो अर्थ को जानते हैं उनके लिये विद्या, जैसे सुन्दर वस्त्र आदिक धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपने शरीर को पति के लिये समर्पण करती है वैसेही विद्या, अर्थ जानने वाले के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है॥४॥ और भी निरुक्त में लिखा है कि–

॥ स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥ निरुक्त० १, १८॥

जो वेद को पढ़कर उसके अर्थ को नहीं जानता है, वह स्थाणु भार ढोनेवाला है, और जो पढ़ता हुआ उसके अर्थ को जानता है वह ज्ञान से पाप रहित होकर समस्त कल्याण को भोगता है तथा अन्त में स्वर्ग को प्राप्त करता है॥१८॥ और महाभाष्य में लिखा है कि–

॥ यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव पठ्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्॥महाभाष्य०॥

जो पढ़ा हो और अर्थ न मालूम होता हो तो वह केवल पाठ किया हुआ जैसे भस्म के ऊपर रखा हुआ सुखा ईन्धन नहीं लहकता है, वैसे ही पूर्णफलदायक नहीं होता है। इससे मन्त्र का अर्थज्ञान परमावश्यक है। परन्तु पहले यहाँ पर मूलमन्त्र के स्वरूप का ज्ञान तथा पद का ज्ञान होना चाहिये। इससे उसको पहले लिखता हूँ।

॥ ओमित्येकाक्षरं पूर्वं द्व्यक्षरं नम इत्यथ। ततो नारायणायेति पञ्चार्णानि यथाक्रमम्। एवमष्टाक्षरो मंत्रो ज्ञेयः सर्वार्थसाधकः॥ पाद्म० उ० खं० ६, अ० २२६, श्लो० १८॥

पहले ॐ यह एक अक्षर, उसके बाद नमः यह दो अक्षर, और उसके बाद नारायणाय यह पाँच अक्षर, इस प्रकार से अष्टाक्षर मंत्र सब अर्थ का साधक जानना॥१८॥ और भी लिखा है कि–

॥ किं कार्यं बहुभिर्मंत्रै र्मनोविभ्रमकारकैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥ ब्रह्मपु० अ० ५७, श्लो० २४॥

मन में अत्यन्त भ्रम करनेवाले बहुत मन्त्रों से क्या कार्य है। ॐ नमो नारायणाय यह जो मन्त्र है सो सब अर्थ साधन करनेवाला है॥२४॥ और भी लिखा है कि–

॥ओं नमो नारायणायेति मंत्रोपासको वैकुण्ठभुवनं गमिष्यति॥ नारायणोप० श्रु० ४॥

'ओं नमो नारायणाय' इस मन्त्र का उपासक वैकुण्ठ भुवन को प्राप्त करेगा॥४॥ और भी लिखा है कि–**॥ओं नमो नारायणाय॥ त्रिपाद्विभूतिमहाना० अ० ७॥** और तारसारोपनिषद् में लिखा है कि–**ओं नमो नारायणायेतितारकम्॥ तारसा० पाद० १॥** ओं नमो नारायणाय यह तारक है॥१॥ इन प्रमाणों से मूलमन्त्र के स्वरूपज्ञान होनेपर इसके पद के विषय में लिखा है कि **॥प्रथमं पदमोंकारः, द्वितीयं नम उच्यते। तृतीयं नारायणायेति पदत्रयमुदाहृतम्॥** पाद्म० उत्तर खं० ६, अ० २२६, श्लो० २१॥

ओं यह पहला पद है, तथा "नमः" यह दूसरा पद है, "नारायणाय" यह तीसरा पद है। इस प्रकार से श्रीमंत्रमें तीन पद हैं।।२१।। और वहाँ ही मूलमंत्र के ऋषि आदिक लिखा है कि।। **ऋषिर्नारायणस्तस्य देवता श्रीश एव च। छन्दस्तु देवी गायत्री प्रणवो बीजमुच्यते। नित्यानपायिनी देवी शक्तिः श्रीरुच्यते मनोः।।** पा० खं० ६, अ० २२६, श्लो० २०।। मूलमंत्र का ऋषि नारायण हैं, तथा देवता श्रीपति हैं, और देवी गायत्री छन्द है, तथा प्रणव बीज है, और नित्यानपायिनी श्रीदेवीशक्ति हैं, ऐसा ऋषि सब कहते हैं।।२०।। इस मूलमंत्र का जो प्रथमपद प्रणव है, उसके विषय में लिखा है कि– **सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।। कठोपनि० वल्ली० २, अ० १, श्रु० १५।। एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदेवाक्षरं परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।१६।। एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।१७।।** सब वेद जिस पद को कहते हैं और समस्त तपस्वी जिस पद को कहते हैं, तथा जिस पद की इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वह पद तेरे लिये संक्षेप से मैं कहता हूँ "ओं" यह है।।१५।। यह अक्षर वेद है, और यह अक्षर सबसे उत्कृष्ट है, "ओं" इस अक्षर को जानकर जो पुरुष जो चाहता है, वह उसको प्राप्त होता है।।१६।। यह प्रणव श्रेष्ठ आलम्बन है, तथा यह आलम्बन सबसे पर है, और इस प्रणव को जानकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है।।१७।। और प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि–

।। स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसंपद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते, स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संपन्नो महिमानमनुभवति।। प्रश्नोपनि० प्रश्न ५, श्रु० ३।। अथ यदि द्विमात्रेण मनसि संपद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते, स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते।।४।। यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत, स तेजसि सूर्ये संपन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यते, एवं हवै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते।।५।।

यदि उपासक ह्रस्व प्रणव को ध्यान करता है तो उससे संवेदित जल्दी ही संसार में प्राप्त होता है और उसको ऋग्वेद, मनुष्य लोक में प्राप्त कराता है और मृत्यु लोक में वह उपासक, तपस्या, ब्रह्मचर्य, और श्रद्धा से सम्पन्न होकर के महिमा का अनुभव करता है।।३।। और जो दीर्घ प्रणव को मन में ध्यान करता है, उसको यजुर्वेद, अन्तरिक्ष में सोमलोक को प्राप्त कराता है और वह उपासक सोमलोक में विभूति का अनुभव करके फिर से लौट आता है।।४।। और जो पुरुष प्लुतप्रणव द्वारा आत्मा का ध्यान

करता है वह सूर्य के तेज में सम्पन्न होकर जैसे साँप केंचुल से छुट जाता है वैसे ही पाप से छुट जाता है तब उस पुरुष को सामवेद, ब्रह्मलोक में पहुँचाता है और वह जीव से पर शरीर में सोनेवाले पुरुषोत्तम भगवान् को देख लेता है।।५।। और मुण्डक में लिखा है कि–**ओमित्येवं ध्यायथ स्वस्ति वः॥ मुण्डकोप० मुण्ड० २, श्रु० ६॥** ओं इससे ध्यान करो तुम सबों के लिये कल्याण होगा।।६।। और माण्डूक्योपनिषद् में लिखा है कि–

॥ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानंभूतंभवद्भविष्यदिति। सर्वमोङ्कार एव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।।मां० श्रु०॥१॥ ओं इस प्रकार का यह अक्षर यह सब है और उसी का उपव्याख्यान भूत भविष्य और वर्तमान है और सब ओंकार है तथा अन्य जो त्रिकालातीत है सो भी ओंकार ही है।।१।। और तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि– **ओमितीदंसर्वम्॥ तैत्तिरी० शिक्षाध्याय० १, वल्ली० १, अनु० ८, श्रु० १॥**

ओं यह अक्षर यह सब है।।१।। और छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि–

॥ ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति॥ तस्योपव्याख्यानम्॥ छां० प्रपाठ० १, अ० १, ख० १, श्रु० १॥

ओं यह जो अक्षर है इससे उद्गीथकी उपासना करें, और ओं ऐसा गान करें, उस ओंकार के सब उपव्याख्यान है।।१।। और श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे॥ श्वेता० अ० १, श्रु० १३॥

निश्चय करके देह में प्रणव द्वारा ब्रह्म और जीव इन दोनों को जानता है।।१३। तथा कैवल्योपनिषद् में लिखा है कि–

॥ आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवंचोत्तरारणिम्॥ कै० खं० १, श्रु० ११॥

आत्मा को अरणि और प्रणव को उत्तरारणि करके।।११।। और आरुणिकोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ ॐ हि ॐ हि ॐ हीत्येतदुपनिषदं विन्यसेत्॥ आरु० श्र० ५॥

निश्चय करके ॐॐॐ इस उपनिषद् का विन्यास करै।।५।। और अथर्व शिर उपनिषद् में लिखा है कि–

॥अथ कस्मादुच्यत ओंकारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति तस्मादुच्यते–ओंकारः। अथ कस्मादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुः सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः॥

अथर्वशिर० श्रु० ४॥

ओंकार क्यों कहा जाता है? जिसके उच्चारण करने से प्राणादिक ऊपर को जाते हैं इससे ओंकार कहा जाता है। और प्रणव क्यों कहा जाता है? जिसके उच्चारण करने से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद, ब्राह्मणों के लिये प्रणाम कराता है और नम्र कराता है इससे प्रणव कहा जाता है।।४।। तथा अथर्वशिखोपनिषद् में लिखा है कि–**ओमित्येतदक्षरमादौ प्रयुक्तम्॥ अथर्वशि० श्रु० १॥** ओं यह अक्षर सृष्टि के आदि में प्रयुक्त हुआ।।१।। सब प्राणों को परमात्मा में लाता है इससे प्रणव कहा जाता है।।१।। और मैत्रायण्युपनिषद् में लिखा है कि– **तस्मादोमित्यनेनैतदुपासीताजस्त्रमिति॥ मैत्रा० प्रपाठक० ५, श्रु० ४॥** इससे ओंकार द्वारा सर्वदा ब्रह्म की उपासना करे।।४।। तथा नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् में लिखा है कि–

॥ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति। सर्वमोंकार एव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ नृसिंह पू० उपनिष० ४, श्रु० २॥

इसका अर्थ पहले लिख चुका हूँ।। और नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद् के प्रथम खण्ड में भी यह श्रुति है। और ध्यानबिन्दूपनिषद् में लिखा है कि–

॥ ओंकारं यो न जानाति ब्रह्मणो न भवेत्तु सः॥ ध्यान० श्रु० १४॥ ओंकारप्रभवा देवा ओंकारप्रभवाः स्वराः। ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥१६॥

जो ओंकार को नहीं जानता है वह ब्रह्म का दास नहीं होता है।।१४।। ओंकार से सब देवता उत्पन्न होते हैं, तथा ओंकार से सब स्वर उत्पन्न होते हैं और ओंकार से चर अचर के साथ तीनों लोक उत्पन्न होते हैं।।१६।। तथा ब्रह्मविद्योपनिषद् में लिखा है कि–**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः॥ ब्रह्मवि० श्रु० २॥** जो ब्रह्मवादियों से कहा गया है वह ओं यह व्यापक एक अक्षर है।।२।। तथा योगतत्त्वोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ ततो रहस्युपाविष्टः प्रणवं प्लुतमात्रया। जपेत्पूर्वार्जितानां तु पापानां नाशहेतवे॥ योगत० श्रु० ६३॥ सर्वविघ्नहरो मंत्रः प्रणवः सर्वदोषहा॥६४॥

इसके बाद एकान्त में बैठकर पूर्व जन्मार्जित पाप के नाश करने के लिये प्लुत मात्रा करके ओंकार को जपे।।६३।। सब विघ्न को और सब दोष को नाश करनेवाला ओंकार मंत्र है।।६४।। और आत्मप्रबोधोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ ओं प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम्॥ आत्मप्रबो० श्रु० १॥

ओं प्रत्यक् आनन्द है तथा ब्रह्मपुरुष ओंकार स्वरूप है।।१।। तथा नारद परिव्राजकोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ भूतं भवद्भविष्यद्यत्त्रिकालोदितमव्ययम्। तदप्योंकारमेवायं विद्धि मोक्षप्रदायकम्॥ नार० उपदेश० ८, श्रु० ३॥

भूत भविष्य वर्तमान यह जो कुछ त्रिकालोदित विकार रहित वस्तु है वह भी ओंकार ही है और इस ओंकार को मोक्ष देनेवाला जानो।।३।। और योगचूडामण्युपनिषद् में लिखा है कि–

॥ प्रणवात्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः। प्रणवात्प्रभवो रुद्रः प्रणवो हि परो भवेत्॥ योगचू० श्रु० ७७॥ शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा। न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥८८॥

ओंकार से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं तथा ओंकार से हरि उत्पन्न होते हैं प्रणव से रुद्र उत्पन्न होते हैं निश्चय करके प्रणव सबसे श्रेष्ठ है।।७७।। जो पवित्र या अपवित्र सब समय में ओंकार को जपता है वह जैसे जल से कमल पत्र नहीं लिप्त होता है वैसे ही पाप से लिप्त नहीं होता है।।८८।। तथा त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् में लिखा है कि **॥ प्रणवात्मकत्वेनोक्तं ब्रह्मा॥ त्रिपा० अ० १॥** प्रणवात्मक से कहा हुआ ब्रह्म है।।१।। और रामोत्तरतापिन्युपनिषद् में लिखा है कि– **ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ रामोत्त० श्रु० १॥** इसका अर्थ पहले लिख चुका हूँ।। और योगशिखोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ त्रयः कालास्त्रयो देवास्त्रयोलोकास्त्रयः स्वराः। त्रयो वेदाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥ योग शि० अ० ६, श्रु० ५७॥

तीन काल तीन देवता तीन लोक तीन स्वर तीन वेद जहाँ पर स्थित हैं वह परज्योति ओं यह है।।५७।। तथा सूर्योपनिषद् में लिखा है कि **॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मा॥ सू० ॥** ओं यह एकाक्षर ब्रह्म है।। और अक्ष्युपनिषद् में लिखा है कि **॥ ओंकारमात्रमखिलं विश्वप्राज्ञादिलक्षणम्॥ अक्ष्यु० अ० ४३॥** विश्वप्राज्ञ आदिक लक्षण संपूर्ण ओंकार मात्र है। ।।४३।। और तारसारोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानं भूतं भव्यंभविष्यद्यच्चान्यत्तत्त्व-मंत्रवर्णदेवताछन्दोऋककलाशक्तिसृष्ट्यात्मकमिति॥ तार० पाद० २, श्रु० ५॥

ओं यह अक्षर यह सब है उसी प्रणव का उपव्याख्यान भूत भविष्य वर्तमान

है और अन्य जो तत्त्व मंत्र वर्ण देवता, छन्द, ऋचा, कला शक्ति सृष्ट्यात्मक हैं सो ओंकार ही है।५।। और गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद् में लिखा है कि– **अक्षरोऽहमोंकारोऽयम्।। गोपालोत्त० श्रु० ९।।** यह ओंकार अक्षर मैं हूँ।।९।। और शाट्यायनीयोपनिषद् में लिखा है कि–

।। ओमित्यात्मानमव्यग्रो ब्रह्मण्यग्नौ जुहोति यत्। ज्ञानयज्ञः स विज्ञेयः सर्वयज्ञोत्तमोत्तमः।। शा० श्रु० १६।।

जो सावधान होकर प्रणवमंत्र द्वारा अपनी आत्मा को ब्रह्माग्नि में हवन करता है तो सब यज्ञों से उत्तमोत्तम वह ज्ञानयज्ञ है ऐसा जानना चाहिये।।१६।। और भगवद्गीता में लिखा है कि–

।। ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्।। भगवद्गी० अ० ८, श्लो० १३।।

ओम् इत्यादिक मेरे दिव्य नामों को उच्चारण करता हुआ तथा मुझे स्मरण करता हुआ जो शरीर को छोड़ता है वह परम धाम को पहुँचता है।।१३।। और भी लिखा है कि **।। वेद्यं पवित्रमोंकारः।। भगवद्गी० अ० ९, श्लो० १७।।** वेद वेदान्त में जानने योग्य अशुद्ध को शुद्ध करनेवाला ओंकार मैं ही हूँ।।१७।। और भी लिखा है कि **।। प्रणवः सर्ववेदेषु।। भगवद्गी० अ० ७, श्लो० ८।।** समग्र वेदों का तत्त्व ओंकार मैं ही हूँ।।८।। और यजुर्वेद संहिता में लिखा है कि **।। ॐ खम्ब्रह्म।। यजु० अ० ४०, मं० १८।।** ॐ खं ब्रह्म है।।१८।। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध जो मूलमंत्र का प्रथम पद प्रणव है सो 'अ उ म्' इन तीन अक्षरों से **(आद्गुणः) व्या० अ० ६, पा० १, सू० ८७।।** इस सूत्र से गुण होकर बना है। प्रणव में जो 'अ उ म्' ये तीन अक्षर हैं इसमें अधोलिखित प्रमाणों को कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें।

।। अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च ततः परम्। वेदत्रयात्मकं प्रोक्तं प्रणवं ब्रह्मणः पदम्।। पाद्म० उत्तर खं० ६, अ० २२६, श्लो० २२।।

पहले अकार, उसके बाद उकार, और उसके बाद मकार, ये प्रणव में जो तीन अक्षर हैं सो ऋग्यजुः सामस्वरूप हैं, तथा प्रणव ब्रह्म का पद है।।२२।। और भी लिखा है कि–

।। अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः। वेदत्रयान्निरदुहत्।। मनु० अ० २, श्लो० ७६।।

प्रजापतिने अकार उकार और मकार को ऋक्यजुः साम इन वेदों से क्रम से

निकाला।।७६।। और माण्डूक्योपनिषद् में लिखा है कि–

॥ सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकार मकार इति॥ मां० श्रु० ८॥

सो यह आत्मा अध्यक्षर ओंकार है और मात्रा को आश्रय करके रहती है। इससे अधिमात्र है तथा जो पाद हैं वही मात्रा हैं। अ उ म् ये तीन ओंकार की मात्रा हैं।।८।। और नारायणोपनिषद् में लिखा है कि– **अकार उकारो मकार इति॥ नारा० श्रु० ४॥** प्रणव में अ उ म् ये तीन अक्षर हैं।।४।। और आत्मप्रबोधोपनिषद् में लिखा है कि– **अकार उकारो मकार इति त्र्यक्षरं प्रणवम्॥ आत्म० श्रु० १॥** अ उ म् ये तीन अक्षर प्रणव है।।१।। और योग-चूडामण्युपनिषद् में लिखा है कि– **अकार उकार मकारश्चेति त्रयोवर्णाः॥ योगचू० श्रु० ७४॥** अकार तथा उकार मकार ये तीन वर्ण ओंकार में है।।७४।। और वासुदेवोपनिषद् में लिखा है कि– **अकार उकारो मकार एते॥ वासु०॥** अ उ म् ये तीन अक्षर ओंकार में हैं।।

इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि प्रवण में अ उ म् ये तीन अक्षर हैं। अब अ उ म् इन तीनो अक्षरों के अर्थ को लिखता हूँ। अकार का अर्थ समस्त संसार के उत्पत्ति पालन संहारकर्ता विष्णु है। क्योंकि यह लिखा है कि–

॥ अक्षराणामकारोऽस्मि॥ भगवद्गीता० अ० १०, श्लो० ३३॥

अक्षरों में अकार मैं विष्णु हूँ।।३३।। और एकाक्षरी कोश में लिखा है कि–

अकारो वासुदेवः स्यात्॥ अकार वासुदेव वाचक है और पद्मपुराण में लिखा है कि–

॥ अकारेणोच्यते विष्णुः, कल्याणगुणसागरः॥ पाद्म० उत्तर खं० ६, अ० २२६, श्लोक ३०॥ श्रीशः सर्वात्मनां शेषी जगद्बीजं परः पुमान्। जगत्कर्ता जगद्भर्ता, ईश्वरो लोकबान्धवः॥३१॥

अकार से कल्याण गुणसागर विष्णु कहे जाते हैं।।३०।। जो लक्ष्मीपति सब जीवों के शेषी जगत् के कारण परपुरुष जगत्कर्ता भर्ता संहर्ता लोकबन्धु परमेश्वर है।।३१।। और पराशरभट्टाचार्य ने भी कहा है कि–

॥अकारार्थो विष्णुर्जगदुयरक्षाप्रलयकृत्॥ अष्टश्लो० श्लो० १॥

समस्त संसार के उत्पत्ति पालन संहारकर्ता विष्णु, अकार का अर्थ है।।१॥ और लोकाचार्य स्वामीजी ने कहा है कि–

॥ तत्राकारः सकलशब्दमूलत्वान्नारायणपदसंग्रहत्वाच्च सकलजगत्कारणं

सर्वरक्षकं नारायणमाह॥ मुमुक्षुपडि॥

उसमें अकार, सब शब्दों के कारण और नारायण के संग्रह होने के सकल जगत् कारण सर्वरक्षक नारायण भगवान् को कहता है। और अकार का अर्थ लक्ष्मी भी यहाँ पर है क्योंकि लिखा है कि–

॥ श्रीतत्त्वमपि तत्पक्षे, अकारेणैव चोच्यते॥ पाद्म० खं० ६, अ० २२६, श्लो० २९॥ भास्करस्य प्रभा यद्वत्तस्य नित्यानपायिनी॥३०॥

प्रपन्नों के मत में लक्ष्मीजी भी अकार से कही जाती हैं॥२९॥ जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से अलग नहीं रहती है, वैसे ही लक्ष्मीजी विष्णु भगवान् से अलग नहीं रहती हैं॥३०॥ और सेनापति मिश्र ने भी कहा है कि– **तद्वक्षस्थलं त्यजति चेदेतदक्षरं त्यजेत्॥** यदि लक्ष्मीदेवी नारायण के वक्षस्थल को छोड़ती होतो इस अकार को छोड़ सकती है, परन्तु वक्षस्थल को कभी नहीं छोड़ती है, इससे यह सिद्ध हो गया कि लक्ष्मी और नारायण ये दोनों अकार का अर्थ है। और अकार के ऊपर यहाँ पर **(तादर्थ्ये चतुर्थीवाच्या)** इस वार्तिक से तादर्थ्य में चतुर्थी विभक्ति आकर **॥ सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः॥ व्या० अ० ७, पा० १, सू० ३९॥**

इस सूत्र से लुप्त हो गई है। उसका अर्थ शेषत्व है, और उकार का अर्थ अवधारण है, क्योंकि–

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वा पुस्तदुचन्द्रमाः॥ यजु० अ० ३२, मंत्र १॥ इस यजुर्वेद के मंत्र में उकार अवधारण अर्थ में प्रयुक्त है। और उकार का अर्थ अवधारण है क्योंकि लिखा है कि **॥ अवधारणवाच्येवमुकारः कैश्चिदुच्यते॥ पा० खं० ६, अ० २२६, श्लो० २९॥** अवधारणवाची उकार है ऐसा प्रपन्न सब कहते हैं॥२९॥ और भट्टारकस्वामीजी ने कहा है कि **॥ उकारोऽनन्यार्हं नियमयति सम्बन्धमनयोः॥ अष्टश्लो० श्लो० १॥** उकार जीव दूसरे के योग्य नहीं है इस प्रकार के जीव और ईश्वर के सम्बन्ध को नियमन करता है॥१॥ और लोकाचार्य स्वामीजी ने कहा है कि **॥ उकारोऽवधारणार्थः॥ मुमुक्षुप०॥** उकार का यहाँ पर अवधारण अर्थ है॥ तब अकार तथा चतुर्थी और उकार इन तीनों को मिलकर यह अर्थ हुआ, कि 'सर्वजगत्कारण सर्वजगद्रक्षक लक्ष्मीसहित भगवान् का ही शेष है। और बाकी जो मकार है उसका अर्थ ज्ञान का आश्रय जीवात्मा है। क्योंकि "मनज्ञाने" इस धातु से म् बना है। और भी लिखा है कि–

मकारेणोच्यते जीवः, पंचविंशोदितः पुमान्। भूतानि च कवर्गेण चवर्गेणेन्द्रियाणि च॥ पा० खं० ६, अ० २२६, श्लो० २५॥ टवर्गेण तवर्गेण ज्ञानगन्धादयस्तथा। मनः पकारेणैवोक्तं फकारेणत्वहंकृतिः॥२६॥ बकारेण

भकारेण महान्प्रकृतिरुच्यते। आत्मा तु स मकारेण पंचविंशः प्रकीर्तितः॥२७॥

मकार से पच्चीसवाँ तत्त्व जीव कहा जाता है कवर्ग से पञ्चमहाभूत और चवर्ग से पाँच कर्मेन्द्रिय॥२५। टवर्ग से पाँच ज्ञानेन्द्रिय और तवर्ग से पञ्चतन्मात्रा पकार से मन और फकार से अहंकार कहा जाता है॥२६॥ बकार से महत् तत्व और भकार से प्रकृति कही जाती है, तथा मकार से पच्चीसवाँ तत्त्व जीवात्मा कहा जाता है॥२७॥ और भी लिखा है कि– **मकारार्थोजीवः॥ अष्टश्लो० श्लो० १॥** मकार का अर्थ जीव है॥१॥ और लोकाचार्यस्वामीजी ने कहा है कि– **मकारःपंचविंशाक्षरः, ज्ञानवाचकश्च, तस्मादात्मानमाह॥ मुमुक्षुप०॥** मकार पच्चीसवाँ अक्षर है और ज्ञान का वाचक है इससे जीवात्मा को कहता है॥ तब प्रणव का यह अर्थ सिद्ध हुआ कि– सर्वजगत्कारण सर्व-रक्षक लक्ष्मी सहित भगवान् का ही शेष निश्चय करके ज्ञानाश्रय जीवात्मा है। बाकी सात अक्षर प्रणव का विवरण हैं। उनमें अकार का विवरण नारायण है, उकार का विवरण नमः है, और मकार का विवरण चतुर्थी विभक्ति है। मूल मंत्र के प्रथम पद के अर्थ कहने के बाद दूसरा जो ''नमः'' पद है, उसका अर्थ लिखता हूँ। नमः इस दूसरे पद में 'न' यह अक्षर निषेध वाचक एक पद है। और 'मः' यह षष्ठ्यन्त जीव वाचक एक पद है, अर्थात् न और मः ये दोनों अक्षर दो पद हैं। क्योंकि लोकाचार्य स्वामीजी ने कहा है कि **॥नमः न इति मः इति पदद्वयम्॥ मुमुक्षुप०॥** नमः यहाँ पर न और मः ये दो पद हैं॥ इस प्रकार से 'मः' का अर्थ मम अर्थात् मेरा 'न' माने नहीं होता है। अब इसमें प्रणव के तीसरे अक्षर मकार को मिलाने से ''मैं मेरा नहीं'' यह अर्थ होता है। यहाँ पर स्वरूप विरोधियों में प्रधानभूत अहंकार को नमः शब्द हटाता है। और प्रणव के तीसरा नहीं मिलाकर केवल न और मः से ''मेरा नहीं'' यह अर्थ होता है। यहाँ पर स्वरूप विरोधियों में प्रधानभूत ममकार को नमः शब्द दूर करता है। पूर्वोक्त कथन से यह साबित हो गया कि नमः शब्द स्वरूप विरोधियों को दूर करता है और 'नमः' इसके दो पद न करके अखण्ड रखने से उसका अर्थ उपाय है। उसमें 'न' और 'मः' इन दोनों पदों को मिलाने से ''नमः'' यह सिद्ध होता है तो इसका अर्थ यह है कि ''उपाय मेरा नहीं है'' यहाँ पर नमः शब्द उपाय विरोधी को दूर करता है। और 'नारायणाय' इस पद में 'न' और 'मः' इन दोनों पदों को मिलाने से प्राप्य विरोधी की निवृत्ति होती है। क्योंकि 'नारायणाय' इस पद का अर्थ भगवत्कैंकर्य है। और 'न' 'मः' इसका अर्थ 'मेरे लिये नहीं' यह है। इस प्रकार दोनों को मिलाने से भगवत्कैंकर्य मेरे लिये नहीं है, यह अर्थ सिद्ध हुआ। यहाँपर नमः शब्द प्राप्य विरोधीको दूर करता है। पूर्वोक्त नमः शब्दार्थके विषयमें पराशरभट्टाचार्यजी का श्लोक प्रमाण है। वह श्लोक इस प्रकार है कि–

मंत्रब्रह्मणि मध्यमेन नमसा, पुंसः स्वरूपं गतिः। गम्यं शिक्षितमीक्षितेन पुरतः पश्चादपि स्थानतः॥ स्वातन्त्र्यं निजरक्षणं समुचिता, वृत्तिश्च नान्योचिता। तस्यैवेति हरेर्विविच्य कथितं, स्वस्यापि नार्हं ततः॥ अष्टश्लो० श्लो० २॥

मूल मंत्रके मध्यमें स्थित नमः पद सखण्ड होकर प्रथम पदके मकार में आगे अन्वित होनेसे जीवका स्वरूप शिक्षित होता है, तथा अपने स्थान नमः से अन्वित होनेसे जीवका उपाय शिक्षित होता है, और पीछे नारायण से अन्वित होनेसे जीव का प्राप्य शिक्षित होता है, और स्वतंत्रता निजरक्षण तथा समुचित वृत्ति ये दूसरेके उचित और योग्य नहीं है उस नारायणके ही योग्य है ऐसा विचार कर मैंने कहा॥२॥ इस प्रकार मूलमंत्रके द्वितीय पदके अर्थ कहनेके बाद तीसरा जो 'नारायण' यह पद है उसका अर्थ लिखता हूँ। उसमें अर्थसे पहले नारायण के विषयमें कुछ प्रमाणोंको दिखाता हूँ॥

॥ नारायणपरा लोका नारायणपराः सुराः। नारायणपरं सत्यं नारायणपरं पदम्॥ ब्रह्मपु० अ० ५७, श्लो० २६॥ नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो वह्नि र्नारायणपरं नभः॥२७॥ नारायणपरो वायु र्नारायणपरंमनः। अहंकारश्च बुद्धिश्च, उभे नारायणात्मके॥२८॥ भूतं भव्यंभविष्यं च यत्किंचिज्जीवसंज्ञकम्। स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम्॥२९॥

नारायण परलोक हैं, नारायण परदेव हैं, नारायण पर सत्य हैं, नारायण पर पद हैं॥२६॥ नारायण परा पृथ्वी हैं नारायण पर जल हैं नारायण पर अग्नि हैं और नारायण पर आकाश हैं॥२७॥ नारायण पर वायु हैं नारायण पर मन हैं और अहंकार तथा बुद्धि दोनों नारायणात्मक हैं॥२८॥ और भूत भविष्य वर्तमान जो कुछ जीव-संज्ञक हैं तथा स्थूल सूक्ष्म सब कुछ नारायणात्मक हैं॥२९॥ और भी लिखा है कि-

॥ नारायणात्प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। नारायणाद् ब्रह्मा जायते। नारायणाद्रुद्रो जायते। नारायणादिन्द्रो जायते। नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते। नारायणाद् द्वादशादित्या रुद्रा वसवः सर्वाणिच्छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते नारायणात्प्रवर्तन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते ॥ नारायणोप० १॥

नारायणसे प्राण, मन, सब इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, और विश्वको धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होते हैं। नारायणसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। नारायणसे रुद्र उत्पन्न होते हैं। नारायणसे इन्द्र उत्पन्न होते हैं। नारायणसे प्रजापति उत्पन्न होते हैं। नारायणसे बारह आदित्य ग्यारह रुद्र आठ वसु और सब छन्द उत्पन्न होते हैं तथा नारायणसे पाले जाते हैं और नारायण में लीन होते हैं॥१॥

॥अथ नित्यो नारायणः। ब्रह्मा नारायणः। शिवश्च नारायणः। शक्रश्च नारायणः। कालश्च नारायणः। दिशश्च नारायणः। विदिशश्च नारायणः। उर्ध्वं च नारायणः। अधश्च नारायणः। अन्तर्बहिश्च नारायणः। नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। निष्कलंको निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्॥ नारा०२॥

नित्य नारायण हैं। ब्रह्मा नारायण हैं। शिव नारायण हैं। इन्द्र नारायण हैं। काल नारायण हैं। दिशा नारायण हैं। विदिशा नारायण हैं। ऊपर नारायण हैं। नीचे नारायण हैं। और भीतर नारायण हैं। जो कुछ यह भूत भविष्य वर्तमान है सो सब नारायण ही हैं। कलंक रहित निरंजन निर्विकल्प निराख्यात शुद्ध देव एक नारायण हैं, दूसरा कोई नहीं है।। और भी लिखा है कि–

॥ नारायणपरो ज्योतिरात्मा नारायणः परः। नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः। नारायणपरो ध्याता ध्यानं नारायणः परः। यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा। अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥ नारा० १३॥

नारायण पर ज्योति हैं। नारायण पर आत्मा हैं। नारायण पर ब्रह्म हैं। नारायण पर तत्त्व हैं। नारायण पर ध्याता हैं। नारायण पर ध्यान हैं। और जो कुछ संसार देखा जाता है, या सुना जाता है, उसके भीतर और बाहर व्यापक होकर नारायण स्थित हैं।।१३।। और ऐसे ही त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् के दूसरे अध्याय में भी लिखा है। अब अर्थ देखिये 'नाराणामयनम्' ऐसी व्युत्पत्ति करने पर (षष्ठी) व्या० अ० २, पा० २, सू० ८।। इस सूत्र से षष्ठी तत्पुरुष समास होने के बाद (सुपो धातुप्रातिपदिकयोः) व्या० अ० २, पा० ४, सू० ७१।। इस सूत्र से सुप्के लुक् होने पर दीर्घ और णत्व होकर नारायण बनता है। अथवा 'नारा अयनं यस्य सः' ऐसी व्युत्पत्ति करने पर (अनेकमन्यपदार्थे) व्या० अ० २, पा० २, सू० २४।। इस सूत्र से बहुव्रीहि समास होने पर नारायण बनता है। 'रिङ्क्षये' इस धातु से ङ प्रत्यय और टिलोपहोने से 'र' बनता है। इससे 'र' का अर्थ नाश वाला है, न का नहीं अर्थ है, तो इस प्रकार से 'नर' शब्द का अर्थ नाश रहित अर्थात् नित्य होता है। और 'नार' शब्द का अर्थ नित्यों का समूह है। और 'इण् गतौ' इस धातु से कर्म करण अधिकरण में प्रत्यय होने से 'अयन' शब्द का उपाय उपेय और आधार अर्थ होता है। इसमें षष्ठी तत्पुरुष मानने पर नारायण शब्द का अर्थ नित्य वस्तुसमूहों का उपाय उपेय आधारभूत नारायण होता है। अर्थात् चेतनाचेतनात्मक सब पदार्थों का उपाय तथा उपेय और आधारभूत लक्ष्मीपति भगवान् हैं। इस विषय में भट्टारकस्वामीजी ने कहा है कि– **निवहा नराणां नित्यानामयनमिति**

नारायणपदम्॥ अष्ट० श्लो० ३॥ नित्यवस्तुसमूहों के अयन को नारायण कहते हैं॥३॥ और लोकाचार्य स्वामीजीने कहा है कि– **नाराणामयनमित्यर्थः। नाराणि नित्यवस्तुसमूहाः॥ मुमुक्षु०॥** नारों का अयन, यह नारायण शब्द का अर्थ है और नित्यवस्तु के समूह को नार कहते हैं॥ और बहुव्रीहिसमास नारायण शब्द में मानने पर यह अर्थ होता है कि– "नित्यवस्तु के समूह अयन है जिस लक्ष्मीपति का वह भगवान् हैं" अब नारायण शब्द के ऊपर **(नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च) व्या० अ० २, पा० ३, सू० १३॥** इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति आयी है। उसका अर्थ कैंकर्य प्रार्थना है। इस प्रकार से मूलमंत्र के तीनों पद मिलकर यह अर्थ हुआ कि॥ सर्व जगद्रक्षक सर्वान्तर्यामी लक्ष्मी विशिष्ट भगवान् का ही शेषभूत ज्ञानाश्रय मैं मेरा शेष भूत नहीं सर्व शेषी भूत नारायण के ही विषय में सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थाओं में सर्वविध कैंकर्य करूँ," इस मंत्रार्थ को मुमुक्षुओं को सर्वदा अनुसंधान करना चाहिये। अब प्रस्तुत जो विषय है उसका अक्षरार्थ यहाँ पर लिखता हूँ। (प्रणवे) ओंकार में (चतुर्थ्या) अकार के ऊपर जो लुप्त चतुर्थी विभक्ति है, उस चतुर्थी से (शेषत्वम्) शेषत्व अर्थ को (उक्त्वा) कहकर (अकारेण) अकार से (शेषत्वप्रतिसंबन्धिनम्) शेषत्व के प्रतिसम्बन्धी श्रीमन्नारायण को (उक्त्वा) कहकर (मकारेण) मकार से (शेषत्वाश्रयम्) शेषत्व के आश्रय जीव को (उक्त्वा) कहकर (अवधारणेन) उकार से (शेषिशेषभावनिष्ठानन्यार्हतायाः) शेषिशेषभावनिष्ठ अनन्यार्हता के (उक्तत्वात्) कहने से (स्वरूपम्) अपना स्वरूप (उक्तम्) कहा गया है। तथा (अकारेण) अकार से (रक्षकम्) रक्षक ब्रह्म को (उक्त्वा) कहकर (मकारेण) मकार से (रक्ष्यम्) रक्ष्यजीव को (उक्त्वा) कहकर (चतुर्थ्या) चतुर्थी विभक्ति से (रक्ष्यरक्षकभावापेक्षितम्) रक्ष्य और रक्षकभावद्वारा अपेक्षित (संबन्धम्) संबन्ध को (उक्त्वा) कहकर (अवधारणेन) उकार से (रक्ष्यरक्षकयोः) रक्ष्य और रक्षक के (लक्षणस्य) लक्षण के (उक्तत्वात्) कहने से (उपायः) उपाय (उक्तः) कहा गया है। और (अकारेण) अकार से (प्राप्यम्) प्राप्य को (उक्त्वा) कहकर (मकारेण) मकार से (प्राप्तारम्) प्राप्ता को (उक्त्वा) कहकर (चतुर्थ्या) चतुर्थी विभक्ति से (प्राप्तिफलम्) प्राप्ति के फल (कैंकर्यम्) भगवत्कैंकर्य को (उक्त्वा) कहकर (अवधारणेन) उकार से (कैंकर्यप्रकारस्य) कैंकर्य प्रकार के (उक्तत्वात्) कहने से (प्राप्यम्) प्राप्य ब्रह्म (उक्तम्) कहा गया है। (प्रणवेन) ओंकार से (आत्मस्वरूपम्) स्वस्वरूप (उक्तम्) कहा गया है १, (नारायणपदेन) नारायण शब्द से (परमात्मास्वरूपम्) परस्वरूप (उक्तम्) कहा गया है, २, (चतुर्थ्या) नारायण शब्द के ऊपर जो चतुर्थी विभक्ति है, उस चतुर्थी से (पुरुषार्थस्वरूपम्) पुरुषार्थ स्वरूप (उक्तम्) कहा गया है, ३, (मः) षष्ठ्यन्त जो मकार है (इति)

इस (अनेन) मः से (विरोधिस्वरूपम्) विरोधिस्वरूप (उक्तम्) कहा गया है, ४, (नमः) नमः (इति) ऐसा जो पद है (अनेन) इस नमः पद से (उपायस्वरूपम्) उपाय स्वरूप (उक्तम्) कहा गया है ५, (तस्मात्) इससे (सकलवेदान्तप्रतिपाद्याः) समस्त वेदान्त में कहे हुए (पञ्च) पाँच (अर्थाः) अर्थ हैं। (आश्रयीभूतम्) आश्रयीभूत (शेषत्वम्) लुप्त चतुर्थी का शेषत्व अर्थ (प्रथमम्) पहले (उक्त्वा) कहकर (आश्रयम्) आश्रय (ज्ञानानन्दलक्षणम्) ज्ञान और आनन्द लक्षण (वस्तु) वस्तु (पश्चात्) पीछे से मकारार्थ जीव (कथम्) कैसे (प्रतिपाद्यते) कहा जाता है? (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (अहम्) अहंका (अर्थस्य) अर्थ (ज्ञानानन्दापेक्षया) ज्ञान तथा आनन्द इन दोनों की अपेक्षा से (शेषत्वस्य) शेषत्व का (प्रधाननिरूपकत्वम्) प्रधाननिरूपकत्व है (ज्ञापयितुम्) इस बात को जनाने के लिये आश्रयीभूत शेषत्व को पहले कहा। और (दास्यरसप्रतिबन्धकम्) दासतारस के प्रतिबंध से (आत्मानुभवमात्रम्) आत्मा का अनुभवमात्र अहं अर्थ है (इति) इससे (तत्परिहारार्थम्) उसके परिहार के लिये आश्रयीभूत शेषत्व को पहले कहा। (एवम्) इस प्रकार के (अग्नौ) आग में (पतित्वा) गिरकर (दह्यमानम्) जलते हुए पुरुष को (दृष्ट्वा) देखकर (अयम्) यह पुरुष (एतत्कुलगोत्रनामवान्) इस कुलका इस गोत्र का इस नामवाला है (इति) ऐसा (निरूपणम्) निरूपण (अकृत्वा) बिना किये हुए (एव) ही (ज्वलदग्निशमने) धधकती हुई आग को शान्त करने में (यथा) जैसे (धार्मिकाः) धर्मात्मा जन (यतन्ते) प्रयत्न करते हैं, (तथा) वैसे ही (अदाह्यम्) अदाह्य (आत्मवस्तु) आत्म वस्तु को (अनादिकालम्) अनादि काल से (आरभ्य) प्रारंभकर (दहतः) जलने से (स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तौ) अपनी स्वतन्त्रता की निवृत्ति में (तात्पर्यात्) तात्पर्य होने से (पुष्पस्य) फूल के (परिमलायत्तश्लाघ्यतावत्) गन्ध के अधीन जैसे श्लाघ्यता है वैसे ही (स्वरूपस्य) ज्ञानानन्द स्वस्वरूप के (एतत्स्वभावाधीनश्लाघ्यतावत्वात्) इस शेषत्व स्वभाव के अधीन श्लाघ्यता होने से (च) भी (प्रथमतः) पहले (शेषत्वम्) शेषत्व को (उपात्तम्) कहा। (अस्य) इस (आत्मनः) जीवात्मा के (स्वामिना) स्वामी से (बद्धम्) बान्धा हुआ (मांगल्यसूत्रम्) मांगल्यसूत्र (श्रीमंत्रः) मूल मंत्र है (इति) ऐसी (पिल्लैतिरुनरैयूररैयरुक्तिः) पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्य की उक्ति है। इस चौदहवीं वार्ता में तीन सौ छः पद हैं। इति पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१४॥

अब कुरुकाधिनाथ की वार्ता को कहते हैं कि--

॥ अथ कुरुकाधिनाथोक्ता वार्ता ॥

मू०—संसारवर्द्धकं मांगल्यसूत्रं षोडशसूत्रं द्विगुणितं भवति, कैंकर्यवर्द्धकं मांगल्यसूत्रमष्टसूत्रं त्रिगुणितं भवति, स्वरूपज्ञानालंब्येको गुणः, स्वरक्षणाशक्तिमालंब्येको गुणः, स्वरूपज्ञानस्वरक्षणाशक्तिभ्यां फलितमीश्वरमुखोल्लास-मालंब्येको गुणः, शेषत्वज्ञानरहितानां प्रणवे नान्वयः, देहात्माभिमानिनां नमसि नान्वयः, कैंकर्यरुचिशून्यानां नारायणपदे नान्वयः, शेषत्वज्ञानिस्वभावं बालस्वाम्याचरित-वान् तथाहि स्वामिनि तिष्ठेति वदति स्वामिनीं पुरस्कृत्य स्वामिनः स्वातन्त्र्यं दूरीकृत्य स्वामिस्वामिन्योः कैंकर्यकर-णात् अरण्ये स्वामिनिवियोगं दशमासपर्यन्तं सहमानः स्वामी बालस्वामिवियोगे दिवसे भोजनमकृत्वाहं त्वामृते न भवामीति पश्चादागतं तं त्वं मामृते न भवसीत्यनु-सरणात् स्वरक्षणेऽन्वयायोग्यमत्यन्तपारतन्त्र्यं श्रीभरतः, आचरितवान् तथा हि ममपुत्रो राज्यं प्राप्नुयादिति कैकेयीरूपकालरात्र्याः पापपत्रिकां दग्ध्वा "न मन्थराया न च मातुरस्या दोषो न राज्ञो न च राघवस्य मत्पाप-मेवात्र निमित्तमासीद्वनप्रवेशे रघुनन्दनस्य" "विललाप सभामध्ये, जगर्ह च पुरोहितम्" "राज्यं चाह च रामस्य धर्म वक्तुमिहार्हसी" त्युक्त्वा धृतजटावल्कलो धूलि-धूसरितदेहोऽलसगतिः स्वरूपहानिमुत्पाद्य शवाशिन्यधिष्ठि-तदेशं त्यक्त्वा कैकेय्युदरोत्पत्तिः पश्चात्प्रेरयन्त्यां भगवत्क-पायामग्रे गमयन्त्यामतिमन्दगति र्भगवदधिष्ठितचित्रकूटं

१४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५०
प्राप्य प्राप्ते पादुके प्राप्यागत्यावद्यावहं नगरमप्रविश्य, उप-
१५१ १५२ १५३ १५४ १५५
नगरे रामागमनकांक्षया चतुर्दशसंवत्सरान् स्थित इति॥

॥ परांकुशमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ– श्रीविज्ञानदिनोत्तरेहनि कलौ वर्षे प्रमाथ्याह्वये मासे, माधवनाम्नि भार्गवदिने ऋक्षे विशाखाभिधे। लग्ने शुद्धचतुर्दशीतिथियुते श्रीमत्कुलीरेपि च, क्षित्यां प्रादुरभूत्परांकुशकवि र्भाग्योदयेऽस्मादृशाम्॥२१॥

(संसारवर्द्धकम्) संसार को बढ़ाने वाला (मांगल्यसूत्रम्) मांगल्यसूत्र अर्थात् तागपाट (षोडशसूत्रम्) सोलह सूते का (द्विगुणितम्) और दो गुणवाला (भवति) होता है। और (कैंकर्यवर्द्धकम्) भगवत्कैंकर्य को बढ़ानेवाला (मांगल्यसूत्रम्) मागल्य सूत्र जो मूलमंत्र है वह (अष्टसूत्रम्) आठ सूते का अर्थात् आठ अक्षर का (त्रिगुणितम्) और तीन गुणवाला (भवति) होता है। (स्वरूपज्ञानालंबी) स्वस्वरूप के ज्ञान को आलंबन करनेवाला (एकः) एक (गुणः) गुण प्रणव है। और (स्वरक्षणाशक्तिम्) अपनी रक्षा की अशक्ति को (आलंबी) आलंबन करनेवाला (एकः) एक (गुणः) गुण नमः है। तथा (स्वरूपज्ञानस्वरक्षणाशक्तिभ्याम्) स्वस्वरूपज्ञान और अपनी रक्षा की अशक्ति से (फलितम्) फलित (ईश्वरमुखोल्लासम्) ईश्वर के मुखोल्लास को (आलंबी) आलंबन करनेवाला (एकः) एक (गुणः) गुण नारायणाय है। (शेषत्वज्ञानरहितानाम्) शेषत्व ज्ञान से रहित जीवों का (प्रणवे) ओंकार में (न) नहीं (अन्वयः) अन्वय होता है। तथा (देहात्माभिमानिनाम्) देह में आत्माभिमान करनेवालों का (नमसि) नमः पद में (न) नहीं (अन्वयः) अन्वय होता है। और (कैंकर्यरुचिशून्यानाम्) भगवत्कैंकर्य की रुचि से रहित जीवों का (नारायणपदे) नारायण पद में (न) नहीं (अन्वयः) अन्वय होता है। (शेषत्वज्ञानिस्वभावम्) शेषत्व ज्ञानवालों के स्वभाव को (बालस्वामी) श्रीलक्ष्मणजी ने (आचरितवान्) आचरण किया है। (तथाहि) निश्चय करके उस आचरण को दिखाते हैं कि (स्वामिनि) श्रीरामभद्र के (तिष्ठ) ठहरो (इति) ऐसा (वदति) कहनेपर (स्वामिनीम्) श्रीसीता देवी को (पुरस्कृत्य) पुरुषकार करके (स्वामिनः) श्रीरामजीकी (स्वातन्त्र्यम्) स्वतन्त्रता को (दूरीकृत्य) दूर करके (स्वामिस्वामिन्योः) श्रीरामजी के और श्रीसीताजी के (कैंकर्यकरणात्) कैंकर्य करने से (अरण्ये) दण्डकारण्य में (स्वामिनिवियोगम्) श्रीसीता देवी के वियोग को (दशमासपर्यन्तम्) दस महीनातक (सहमानः) सहते हुए (स्वामी)

श्रीरामजी (बालस्वामिवियोगे) श्रीलक्ष्मणजी के वियोग में अर्थात् रावण से मारी हुई शक्ति से श्रीलक्ष्मणजी के मूर्छित होने पर (दिवसे) उस दिन (भोजनम्) भोजन को (अकृत्वा) नहीं करके (अहम्) मैं (त्वाम्) तेरे (ऋते) बिना (न) नहीं (भवामि) जियेंगे, (इति) ऐसा कहे। (पश्चात्) पीछे से (आगतम्) विशल्य करणी औषधी द्वारा भूतल से ऊठे हुए (तम्) उस श्रीलक्ष्मणजी को कहे कि (त्वम्) तुम (माम्) मेरे (ऋते) बिना (न) नहीं (भवसि) जियोगे (इति) ऐसा (अनुसरणात्) अनुसरण करने से। श्रीलक्ष्मणजी के विषय में श्रीवाल्मीकीयरामायण में लिखा है कि **॥ अहंत्वाऽनुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धरः॥ वा० रा० अयो० कां० २, स० ३१, श्लो० ३॥** धनुष को धारण करके पहले मैं हीं आपके पीछे से वन में चलूँगा॥३॥ इस प्रकार बहुत कहने पर **॥ रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो० ६॥** श्रीरामजी ने बहुत प्रकारसे निषेध किया॥६॥ तब फिर से बालस्वामीजी ने कहा कि हे भगवन्! क्यों मुझको चलने में निषेध कर रहे हैं। तो श्रीरामजीने कहा कि **॥ सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुंचर॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो० १५॥** हे लक्ष्मण! तुम कौशिल्या का पोषण करो, और कहे हुए इस अर्थ को करो अर्थात् वन में तुम मत चलो॥१५॥ इस प्रकार श्रीरामजी के बहुत निषेध करने पर फिर से श्रीलक्ष्मणजी ने कहा कि **॥ कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो० २४॥** हमको आप अपना अनुचर बनाईये, इसमें कोई अधर्म नहीं है॥२४॥ इत्यादिक श्री लक्ष्मणजी के कहने से और **॥ स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः। सीतामुवाचातिशयां राघवं च महाव्रतम्॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो० २॥**

उस लक्ष्मणजी ने, भ्राता श्रीरामजी के दोनों चरणों को जोर से पकड़कर अत्यन्त श्रेष्ठ श्रीसीताजी से और महाव्रत श्रीरामजी से कहा॥२॥ इस श्लोक में किया हुआ श्रीसीता अम्बा के पुरुषकार द्वारा श्रीरामजी ने श्रीलक्ष्मणजी को साथ लिया। और गंगा के पार जाने पर फिर से कहा कि **॥ अयोध्यामित एव त्वं काले प्रविश लक्ष्मण॥ वा० रा० अयो० २, स० ५३ श्लो०,१६॥** हे लक्ष्मण! इसी समय में तुम यहाँ से अयोध्या में चले जाओ॥१६॥ ऐसा कहने पर तो श्रीलक्ष्मणजी ने कहा है कि–

॥ न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव। मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ॥ वा० रा० अयो० २, स० ५३, श्लो०॥३१॥ नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप। द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गं चापि त्वया विना॥३२॥

हे राघव! आपको छोड़कर श्रीसीताजी और मैं दोनों जल से विछुड़ी मछलियों

की तरह क्षण भर भी नहीं जी सकते हैं।।३१।। और हे परन्तप! आज आपके बिना मैं पिता को तथा सहोदर शत्रुघ्न को और माता को तथा स्वर्गलोक को भी नहीं देखने की इच्छा करता हूँ।।३२।। इत्यादि प्रमाणों से और श्रीलक्ष्मणजी को शक्ति लगने पर श्रीरामजीने कहा कि **॥ यदि पंचत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा॥ वा० रा० युद्ध० ६, स० १०२, श्लो० ५॥** यदि श्रीलक्ष्मण मर गये तो मुझे प्राणों से और सुखसे क्या प्रयोजन है।।५।। **अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥ वा० रा० युद्ध० ६, स० १०२, श्लो० १२॥** और मैं भी वैसे ही श्रीलक्ष्मण के पीछे यमपुरी को जाऊँगा।।१२।। इत्यादि विलाप करने पर तथा विशल्य करणी द्वारा श्रीलक्ष्मणजी के ऊठने पर

॥ अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा। दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम्॥ वा० रा० यु० ६, स० १०२, श्लो० ४७॥ नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा॥४८॥

श्रीरामजी ने श्रीलक्ष्मणजी से मिलकर कहा कि हे वीर! बड़ा भाग्य है कि मरण से आए हुये तुमको फिर से मैं देखता हूँ।।४७।। तेरे बिना मुझको जीने से या सीता से या विजय से नहीं कुछ प्रयोजन है।।४८।। ऐसा कहने से और **॥ छत्रं च चामरं दिव्यं धृतवाँल्लक्ष्मणस्तदा॥ पद्म० उत्तरखं० ६, अ० २४३, श्लोक १०॥** तब अभिषेक समय में बालस्वामी ने एक हाथ से दिव्य छाते को और दूसरे हाथ से दिव्य चँवर को धारण किया।।१०।। इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि श्रीलक्ष्मणजी ने शेषत्वधर्म का पूर्ण आचरण किया है। और (स्वरक्षणे) अपनी रक्षा में (अन्वयायोग्यम्) अन्वय की अयोग्यता को (अत्यन्तपारतन्त्र्यम्) और अत्यन्त परतन्त्रता को (श्रीभरतः) श्रीभरतजी ने (आचरितवान्) आचरण किया हैं (तथाहि) निश्चय करके उसी को दिखाते हैं (मम) मेरा (पुत्रः) लड़का (राज्यम्) राज्य को (प्राप्नुयात्) प्राप्त करे (इति) ऐसा (कैकेयीरूपकालरात्र्याः) कैकेयीरूप कालरात्रि के (पापपत्रिकाम्) पापमय पत्ररूप वरदान को (दग्ध्वा) जलाकर (मन्थरायाः) मन्थरा का (दोषः) दोष (न) नहीं है (च) और (अस्याः) इस (मातुः) मेरी माँ कैकेयी का (न) दोष नहीं है तथा (राज्ञः) महाराजा दशरथजी का (न) दोष नहीं है (च) और (राघवस्य) श्रीरामजीका (न) दोष नहीं है (रघुनन्दनस्य) श्रीरामजी के (वनप्रवेशे) वन जाने में (अत्र) यहाँ पर (मत्पापम्) मेरा पाप (एव) ही निश्चय करके (निमित्तम्) कारण (आसीत्) था। तथा श्रीभरतजी ने (सभामध्ये) सभा के बीच में (विललाप) विलाप किया। (च) और (पुरोहितम्) पुरोहित को (जगर्ह) गर्हा की। और कहा कि (राज्यम्) राज्य

(च) और (अहम्) मैं (च) भी (रामस्य) श्रीरामजी का ही हूँ। इससे (इह) यहाँ पर सभा के बीच में (धर्मम्) धर्म को (वक्तुम्) कहने के लिये (अर्हसि) आप योग्य हैं। (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (धृतजटावल्कलः) जटा और वल्कलको धारण करके (धूलिधूसरितदेहः) धूलि से मलिन देहयुक्त (अलसगतिः) मन्दगतिवाला (स्वरूपहानिम्) स्वरूपहानि को (उत्पाद्य) उत्पन्न कर (शवाशिन्यधिष्ठितदेशम्) कैकेयी के अधिष्ठित देश अयोध्या को (त्यक्त्वा) छोड़कर (कैकेय्युदरोत्पत्तिः) कैकेयी के पेट से उत्पन्न श्रीभरतजी (पश्चात्) पीछे से (प्रेरयन्त्याम्) प्रेरणा करती हुई (भगवत्कृपायाम्) भगवत् की कृपा में (अग्रे) आगे (गमयन्त्याम्) प्राप्त करानेपर (अतिमन्दगतिः) अत्यन्त मन्द गमनद्वारा (भगवदधिष्ठितचित्रकूटम्) श्रीरामजी से अधिष्ठित चित्रकूट को (प्राप्य) पाकर (प्राप्ते) प्राप्त (पादुके) खराऊँ को (प्राप्य) पाकर (आगत्य) चित्रकूट से आकर (अवद्यावहम्) निन्दा प्राप्त करानेवाला (नगरम्) आयोध्यापुरी में (अप्रविश्य) नहीं रहकर (उपनगरे) अयोध्या के पास नन्दीग्राम में (रामागमनकांक्षया) श्रीरामजी के आने की इच्छासे (चतुर्दशसंवत्सरान्) चौदहवर्ष (स्थितः) ठहरे (इति) ऐसा श्रीभरतजी ने आचरण किया है। इस वार्ता में **॥ विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्॥ वा० रा० अयो० २, स० ८२, श्लोक १०॥** का प्रतीक है। और **॥ राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि॥ वा० रा० अयो० ३, स० ८२, श्लोक १२॥** का प्रतीक है। इससे समस्त इन दोनों श्लोंकों को लिखकर अर्थ को लिखता हूँ।

॥ स वाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा। विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्॥ वा० रा० अयो० २, स० ८२, श्लोक १०॥

कोकिल तथा हंस के समान स्वरवाले उस नवयुवक श्रीभरतजी ने अश्रुयुक्त वाणी से सभा के बीच में विलाप किया, और पुरोहित को गर्हा किया॥१०॥

॥ कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारकः। राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि॥ वा० रा० अयो० २, स० ८२, श्लो० १२॥

दशरथ महाराज से उत्पन्न मैं बड़े भाई के राज्य को अपहरण करनेवाला कैसे हो सकता हूँ, राज्य और मैं भी श्रीरामजी का ही हूँ, इस सभा के मध्य में धर्म को कहने के लिये आप योग्य हैं॥१२॥ और श्री भरतजी के विषय में लिखा है कि **॥ कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता॥ वा० रा० अयो० २, स० ७३, श्लो० ४॥** तुम कुल के नाश करने के लिये कालरात्रि के समान यहाँ पर आई हो॥४॥

॥ नतु कामं करिष्यामि तवाहं पाप निश्चये॥ वा० रा० अयो० २ स० ७३, श्लो० २५॥ निवर्तयिष्यामि वनाद् भ्रातरं स्वजनप्रियम्॥२६॥

हे पापनिश्चये कैकेयि! तेरे इच्छित को मैं नहीं करूँगा॥२५॥ स्वजन प्रिय भ्राता श्रीरामजी को वन से लौटा लाऊँगा॥२६॥

॥ हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्। यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्॥ वा० रा० अयो० २, स० श्लो० २२॥

यदि धर्मात्मा रामचन्द्र, मातृघातक मुझको असूया करें, नहीं तो मैं दुष्टचारिणी पापा इस कैकेयी को मार दूँ॥२२॥ **वने वत्स्याम्यहं दुर्गे रामो राजा भविष्यति॥ वा० रा० अयो० २, स० ७९, श्लो० १२॥** मैं कठिन वन में रहूँगा और श्रीरामजी राजा होंगे॥१२॥ यह कथन मात्र ही नहीं, श्रीरामजी के पास जाकर कहा कि॥ **अभिषिंचस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव॥ वा० रा० अयो० २, स० १०१, श्लो० ८॥** इन्द्र के समान आज ही आप राज्याभिषेक को ग्रहण कीजिये॥८॥ जब बहुत कहने पर भी श्रीरामजी ने राज्य स्वीकार नहीं किया तब,

॥ स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत्। चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरोह्यहम्॥ वा० रा० अयो० २, स० ११२, श्लो० २३॥ फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन। तवागमनमाकांक्षन् वसन्वै नगराद्बहिः॥२४॥ तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप। चतुर्दश हि संपूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम॥२५॥ न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्॥२६॥

उस श्री भरतजी ने दोनों खराऊं को साष्टाङ्ग करके श्री रामजी से कहा कि चौदह वर्ष जटा और चीर धारण करनेवाला मैं॥२३॥ फल मूल को भोजन करता हुआ हे वीर रघुनन्दन! आपके आगमन की इच्छा करता हुआ अयोध्यापुरी से बाहर मैं रहूँगा॥२४॥ हे परन्तप! रघूत्तम आपके खराऊंओं के राज्य भार समर्पण करके पूर्ण चौदह वर्ष होने पर॥२५॥ यदि आपको मैं नहीं देखूँगा तो आग में पैठ जाऊँगा॥२६॥ इसके बाद श्री रामजी के स्वीकार उस बात को करने पर

॥ स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरः प्रभुः। नन्दिग्रामेऽवसद्धीरः ससैन्यो भरतस्तदा॥ वा० रा० अयो० २, सर्ग० ११५, श्लो० २१॥

तब जटा और वल्कल धारी, मुनि के वेष धारण करनेवाले, धीर, प्रभु, श्री भरत, सूरि ने सेना के सहित नन्दिग्राम में निवास किया॥२१॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से यह साबित होता है, कि श्री भरतजी ने स्वरक्षण अन्वयायोग्य अत्यन्त पारतन्त्र्य धर्म को अच्छे प्रकार से आचरण किया है॥ शमिति॥

मू०–ईश्वरमुखोल्लास एव पुरुषार्थः, इत्यमुमर्थं श्रीशत्रुघ्नः स्वानुष्ठानेन दर्शितवान्। तथाहि स्वाम्यतिरिक्तमजानतो भरतादन्यमजानन् भगवन्मुखोल्लासार्थं सीमाभूमौ दास्यमकरोदिति एतदर्थत्रयमपि स्वामिन्याचरित्वा प्रादर्शयत्। तथाहि कैकेयीवरव्याजेन स्वामिनि वनं गच्छति पश्चाद्मनात्स्वामिविश्लेषदशायामवस्थिते स्तृणच्छेदनाद्य- करणेन स्वरक्षणाशक्तेः भगवत्परिकरस्य बाले प्रज्वालितमग्निं शीतोभवेति शामयित्वेश्वरमुखोल्लासकरणाच्च, एतदर्थं परमाचार्य्यः श्रीपरांकुशश्चाचरितवान्, तथाहि स्वप्रबन्धस्थदशत्रयेणेश्वरशेषोऽन्यशेषत्वनिवर्तकः, विलक्षणनिरूपकोऽहंकारनिवर्तकस्तत्सम्बन्धयुक्तः किंकरस्वभाव इति च स्वस्यानुसन्धानात्, प्रमाणप्रमेयप्रमातृणामनुसन्धानप्रकारः, आत्मनः स्वरूपमनन्यार्हशेषत्वं तत्प्रकाशकः प्रणवः–अनन्यार्हशेषत्वप्रतिसंबन्धी, स्वाम्याश्रयणीयौ चरणौ, आत्मनः स्वरूपमनन्यशरणत्वं तत्प्रकाशकं नमः, अनन्यशरणत्वप्रतिसंबन्धी अभयहस्त आत्मनः स्वरूपमनन्यभोग्यत्वं तत्प्रकाशकं नारायणपदं, तत्प्रतिसम्बन्धी स्वामिश्रीहासः, एतत्तात्पर्यं चैतन्यनिवृत्तिः व्यापारनिवृत्तिः विषयान्तरनिवृत्तिः श्रीमन्त्रेण स्वरूपमुच्यत इति कुरुकाधिनाथस्यानुसन्धानम्॥१५॥

अर्थ–(ईश्वरमुखोल्लासः) भगवत् का मुखोल्लास होना (एव) ही निश्चय करके (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ है। (इति) इससे (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थ को (श्रीशत्रुघ्नः) श्रीशत्रुघ्नजी ने (स्वानुष्ठानेन) अपने अनुष्ठान से (दर्शितवान्) दिखाया

है (तथाहि) उसी अनुष्ठन को दिखाते हैं कि (स्वाम्यतिरिक्तम्) श्रीरामजी से अन्य को (अजानतः) नहीं जाननेवाले (भरतात्) श्रीभरतजी से (अन्यम्) अन्य को (अजानन्) नहीं जानते हुए (भगवन्मुखोल्लासार्थम्) भगवत् के मुखोल्लास के लिये (सीमाभूमौ) सीमाभूमि भागवत में (दास्यम्) सेवकता को (अकरोत्) किये हैं। (इति) यह श्रीशत्रुघ्नजी का अनुष्ठन है। श्रीशत्रुघ्नजी ने भागवत श्री भरत सूरि की ही दासता भगवन्मुखोल्लासार्थ की है। क्योंकि सीमा भूमि भागवत सेवा है। इस विषय में लिखा है कि

॥ सहस्त्रवार्षिकी पूजा विष्णोर्भगवतो द्विजाः। सकृद्भागवतार्चायाः कलान्नार्हतिषोढशीम्॥ पराशरीयधर्मशा० उत्तरखं० अध्या० १०, श्लो० ४॥ मत्प्रणामाच्छतगुणं मद्भक्तस्य च वन्दनम्। मन्निवेद्याच्छतगुणं मद्भक्तस्य निवेदनम्॥६॥ यथा तुष्यति देवेशो महाभागवतार्चनात्। तथा न तुष्यति श्रीशो विधिवत्स्वार्चनादपि॥७॥ तेषां पादोदकं श्रेष्ठं तीर्थभूतं न संशयः। तिस्त्रः कोट्योर्द्धकोटि च तीर्थानिभुवनेत्रये॥२५॥ वैष्णवाङ्घ्रिजलात्पुण्यात्कोटिभागेन नो समाः। सकृत्सम्पूज्यते पुण्यो महाभागवतो गृहे॥२६॥

॥ आकल्पकोटिपितरः परितृप्ता न संशयः। षष्टिवर्षसहस्त्राणि विष्णोराराधनं फलम्॥२७॥ सकृद्वैष्णवपूजायां लभते नात्र संशयः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैष्णवानर्चयेद् बुधः॥२८॥

हे द्विजगण! भगवान् विष्णु के हजार वर्ष की पूजा एकबार की हुई भागवत पूजा की सोलहवीं कला को नहीं पा सकती है॥४॥ मुझको प्रणाम करने से सौगुना फल मेरे भक्त को प्रणाम करने से होता है, और मुझको निवेदन करने से सौगुना फल मेरे भक्त को निवेदन करने से होता है॥६॥ भगवान् जैसे महाभागवतों की पूजा करने से सन्तुष्ट होते हैं, वैसे विधिपूर्वक अपनी पूजा करने से नहीं सन्तुष्ट होते हैं॥७॥ भागवतों के चरणोदक श्रेष्ठ तीर्थभूत हैं इसमें सन्देह नहीं है कि तीनों भुवन में साढ़े तीन करोड़ जो तीर्थ हैं॥२५॥ वह वैष्णवों के पवित्र चरणोदक के करोड़वें भाग के तुल्य नहीं हो सकता है, यदि एकबार पवित्र महाभागवत घर पर पूजा जाता है॥२६॥ तो करोड़ों कल्प पितर परितृप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है जो साठ हजार वर्ष विष्णु भगवान् के आराधन का फल होता है॥२८॥ इन प्रमाणों से सर्वोच्चभागवत सेवा साबित होती है। इसी से श्रीशत्रुघ्नजी ने सर्वदा भागवत श्रीभरतजी की सेवकता को किया है। और शेषत्व ज्ञानवालेके स्वभावरूप एक अर्थ और अपनी रक्षा में अन्वय के अयोग्य अत्यन्त पारतन्त्र्यरूप दूसरा अर्थ तथा भागवत की दासतारूप तीसरा अर्थ है। (एतत्) इन (अर्थत्रयम्) तीनों अर्थों को

(अपि) भी (स्वामिनी) श्रीसीताजी ने (आचरित्वा) आचरण करके (प्रादर्शयत्) स्पष्ट दिखाया है (तथाहि) निश्चय करके उस अनुष्ठान को दिखाते हैं कि (कैकेयीवरव्याजेन) कैकेयी के वरदान के छल से (स्वामिनि) श्रीरामजी के (वनम्) वनमें (गच्छति) चलने के समय में (पश्चात्) पीछे से (गमनात्) गमन करने से तथा (स्वामिविश्लेषदशायाम्) श्रीरामजी से पञ्चवटी में प्रथम वियोग होने पर (अवस्थितेः) लंका में रहते हुए (तृणच्छेदनाद्यकरणेन) तृणच्छेदन आदिक नहीं करके (स्वरक्षणाशक्तेः) अपने से अपनी रक्षा करने में असमर्थ होने से और (भगवत्परिकरस्य) भगवान् के दूत (हनूमतः) हनुमान्जी का (बाले) पुच्छ के बालपर (प्रज्वलितम्) लहकाई हुई (अग्निम्) आग को (शीतः) शीतल (भव) हो जा (इति) ऐसा कहकर (शामयित्वा) आग को शान्त करके (ईश्वर मुखोल्लासकरणात्) भगवत् के मुखाल्लास करने से (च) भी। श्रीवाल्मीकीय रामायण में लिखा है, कि कैकेयी ने कहा है कि–

॥सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः। अभिषेकमिदं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव॥ वा० रा० अयो० २, स० १८, श्लो०।७३॥ भरतः कोसलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम्॥३८॥

इस अभिषेक को छोड़कर जटा और चीर धारण करके चौदहवर्ष दण्डकारण्य में निवास कीजिए॥३७॥ और रतजी, कोसलपति के इस पृथ्वी का शासन करें॥३८॥ इस बात को सुनकर ीरामजी ने कहा कि– **एवमस्तु॥ वा० रा० अयो० २, स० १९, श्लो० २॥** अच्छा ऐसा ही हो॥२॥ ऐसा कहकर सबसे मिलकर श्रीरामजी ने सीताजी से कहा कि– **सात्वं वसेहकल्याणि॥ वा० रा० अयो० २, स० २६, श्लो०॥३७॥ अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये॥३८॥**

हे कल्याणि! वह तुम इस अयोध्यापुरी में निवास करो॥३७॥ और हे प्रिये! मैं दण्डकारण्य को जाऊँगा॥३८॥ ऐसा कहने पर श्रीसीताजी बारंबार कहती हैं कि–

॥ अग्रतस्तेगमिष्यामि॥ वा० रा० अयो० २, स० २७, श्लो० ७॥ अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम्॥११॥ सुखं वने निवत्स्यामि॥१२॥ साहंत्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः॥१५॥ स्वर्गोऽपि हि नमे मतः॥२१॥

आपसे पहले मैं जाऊँगी॥७॥ मैं पुरुषरहित कठिन वन को जाऊँगी॥११॥ सुख से वन में रहूँगी॥१२॥ वह मैं आपके साथ आज ही वन को जाऊँगी । इसमें सन्देह नहीं है॥१५॥ आपके बिना स्वर्ग भी मुझको अभिमत नहीं है॥२१॥ ऐसा कहने पर तो फिर से श्रीरामजीने कहा कि– **सीते विमुच्यतामेषा वनवासकृता**

मतिः॥ वा० रा० अयो० २, स० २८, श्लो० ५॥ हे सीते! वन में वास करने की जो तेरी मति है इसको तुम छोड़ो॥५॥ ऐसा बहुत निषेध करने पर भी श्रीसीताजी ने कहा कि–

॥यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं चेच्छसि। विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात्॥ वा० रा० अयो० २, स० २९, श्लो० २१॥

यदि इस प्रकार दुःखी मुझको वन में लेजाने की इच्छा आप नहीं करते हैं तो विष या अग्नि या जल या पहाड़ हथियार आदि से मैं मरूँगी॥२१॥ इस प्रकार बहुत कहने पर तो श्रीरामजीने आज्ञा दी है कि– **अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव॥ वा० रा० अयो० २, स० ३०, श्लो० ४०॥** हे भीरु सीते! मेरे पीछे तुम भी चलो और मेरे साथ धर्म को करनेवाली होजा॥४०॥ ऐसी श्रीरामजीकी आज्ञा पाकर श्रीसीताजी स्वामी के साथ दण्डकारण्य में गयी हैं। इससे स्पष्ट साबित होता है, कि श्रीसीताजी ने शेषत्वधर्म को पूर्ण आचरण किया है। और श्रीरामजी से विश्लेष होनेपर रावण को भस्म करने की शक्ति रहते हुए भी अपनी रक्षा नहीं करने से श्रीसीताजी से स्वरक्षण अन्वयायोग्य अत्यन्त पारतन्त्र्य धर्म का पूर्ण आचरण किया गया है। क्योंकि इस विषय में साक्षात् श्रीसीताजी कहती हैं कि–

॥असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्। न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥ वा० रामा० सुन्द० ५, स० २२, श्लो० २०॥

हे रावण! श्रीरामजीकी आज्ञा न होने से, और पारतन्त्र्यस्वरूप तपस्या के पालन करने से, भस्म करने के योग्य अपने तेज से तुमको भस्म नहीं करती हूँ॥२०॥ इससे स्पष्ट साबित होता है कि श्रीसीताजी ने पारतंत्र्य धर्म का पूर्ण आचरण किया है। और वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि–

॥वेष्टन्ते तस्य लांगूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः॥ वा० रा० सुन्द० ५, स० ५३, श्लो० ६॥ तैलेन परिषिच्याथ तेऽग्निं तत्रोपपादयन्॥८॥

राक्षस सबों ने पुराने कपास के वस्त्रों से हनूमान्‌जी की पूँछ को वेष्टन किया॥६॥ और उस पूँछ को तेल से भिंगाकर उन्होंने उसमें आग लगा दी॥८॥ तब राक्षसियों से इस वृतान्त को सुनकर श्रीसीताजी ने कहा कि– **शीतो भव हनूमतः वा० रा० सुन्द० ५, स० ५३, श्लो० २७॥** हे अग्ने! हनुमान्‌जी की पूँछपर तुम शीतल हो जाओ॥२७॥ तो इस प्रकार कहने से अग्नि शीतल हो गयी है। इससे हनूमान्‌जी ने कहा है कि–**न मां दहति पावकः॥ वा० रा० सुन्द० ५, स० ५३, श्लो० ३३॥** मुझको अग्नि नहीं जलाती है॥३३॥ इससे स्पष्ट साबित होता है कि श्रीसीताजी

ने भगवत् के मुखोल्लासार्थ भागवत के दास्यधर्म को पूर्ण आचरण किया है। (च) और (एतत्) इस पूर्वोक्त (अर्थम्) अर्थ को (परमाचार्यः) श्रीसंप्रदाय के परमाचार्य (श्रीपरांकुशः) श्रीपरांकुश स्वामीजी ने (आचरितवान्) आचरण किया है। (तथाहि) निश्चय कर उसी आचरण को दिखाते हैं कि (स्वप्रबन्धस्थदशकत्रयेण) अपना बनाया हुआ "तिरुवाय्मोलि" अर्थात् सहस्रगीति प्रबन्ध में स्थित तीन दशकों द्वारा (ईश्वरशेषः) ईश्वर का शेष (अन्यशेषत्वनिवर्तकः) अन्य के शेषत्व का निवर्तक है। तथा (विलक्षणनिरूपकः) विलक्षण निरूपक (अहंकारनिवर्तकः) अहंकार को दूर करनेवाला है। (च) और (तत्संबन्धयुक्तः) उसके सम्बन्ध से युक्त (किंकरस्वभावः) किंकर स्वभाव है (इति) ऐसा (स्वस्य) अपनी आत्मा के अनुसन्धान करने से (प्रमाणप्रमेयप्रमातृणाम्) अब प्रमाण तथा प्रमेय और प्रमाता के (अनुसन्धानप्रकारः) अनुसन्धानप्रकार को कहते हैं, कि (आत्मनः) आत्मा का (स्वरूपम्) स्वरूप (अनन्यार्हशेषत्वम्) अनन्यार्हशेषत्व है। और (तत्प्रकाशकः) उसका प्रकाशक (प्रणवः) ओंकार है। तथा (अनन्यार्हशेषत्वप्रतिसंबन्धी) अनन्यार्हशेषत्व के प्रतिसंबन्धी (स्वामी) स्वामी नारायण और (आश्रयणीयौ) आश्रयण करने के योग्य (चरणौ) भगवत् के दोनों चरणारविंद हैं। और (आत्मनः) आत्मा का (स्वरूपम्) स्वरूप (अनन्यशरणत्वम्) अनन्यशरणत्व है। तथा (तत्प्रकाशकम्) उसका प्रकाशक (नमः) नमः है। और (अनन्यशरणत्वप्रतिसंबन्धी) अनन्यशरणत्व का प्रतिसंबन्धी (अभयहस्तः) स्वामी का अभय हाथ है। और (आत्मनः) आत्मा का (स्वरूपम्) स्वरूप (अनन्यभोग्यत्वम्) अनन्यभोग्यत्व है। तथा (तत्प्रकाशकम्) उसका प्रकाशक (नारायणपदम्) नारायण पद है। और (तत्प्रतिसंबन्धी) अनन्यभोग्यत्वप्रतिसंबन्धी (स्वामिश्रीहासः) स्वामीनारायण की शोभायुक्त मन्दमुस्कान है। तथा इसका (एतत्) यह (तात्पर्यम्) तात्पर्य है (चैतन्यनिवृत्तिः) चेतन में न होनेवाले स्वातन्त्र्य की निवृत्ति। तथा (व्यापारनिवृत्तिः) स्वरक्षणरूपव्यापार की निवृत्ति और (विषयान्तरनिवृत्तिः) विषयान्तर की निवृत्ति। (श्रीमंत्रेण) मूलमंत्र से (स्वरूपम्) स्वरूप (उच्यते) कहा जाता है (इति) ऐसा (कुरुकाधिनाथस्य) कुरुकाधिनाथ का (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान है। इस पन्द्रहवीं वार्ता में दो सौ सत्तावन पद हैं। इति कुरुकाधिनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१५।।

अब पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्य की वार्ता को कहते हैं कि।

॥ अथ पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीमंत्रेण (१) प्राप्यमुच्यत (२) इति (३) पिल्लैतिरुनरैयूर-रैयर्(४)॥१६॥ (५)

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–नमः प्रणवशोभितं नवकषायखण्डाम्बरं त्रिदण्डपरिमण्डितं त्रिविधतत्वनिर्वाहकम्। दयाञ्चितदृगंचलं दलितवादिवाग्वैभवं शमादिगुण-सागरं शरणमेधि रामानुजम्॥२२॥

(श्रीमंत्रेण) मूलमंत्र से (प्राप्यम्) प्राप्य ब्रह्म (उच्यते) कहा जाता है। (इति) ऐसा (पिल्लैतिरुनरैयूररैयर्) पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्य ने कहा हैं। इस वार्ता में पाँच पद हैं। इति पल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१६॥

॥ अथ वेदान्तिनोक्तावार्ता ॥

मू०–अस्यात्मनोऽनन्यार्हत्वमुच्यत (४) इति (५) वेदान्ती(६)॥१७॥

॥ वेदान्तिस्तुतिः ॥

अर्थ–प्रज्ञावतां निरवधिप्रथिमानभूमा भट्टारकस्य दयया निगमान्तयोगी। यामाततान शठजिन्निगमस्य टीकां स ग्रन्थतो नवसहस्रयुतासमिन्धे॥२३॥

श्रीमन्त्र से (अस्य) इस (आत्मनः) आत्मा का (अनन्यार्हत्वम्) अनन्यार्हत्व (उच्यते) कहा जाता है। (इति) ऐसा (वेदान्ती) वेदान्तीस्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में छःपद हैं। इतियत्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७॥

अब गोविन्दाचार्यस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अस्यात्मनः (२) पारतन्त्र्यमुच्यत (४) इति (५) गोविन्दा-चार्यः(६)॥१८॥

॥ गोविन्दाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–रामानुजपदच्छाया गोविन्दाह्वानपायिनी। तदायत्तस्वरूपा सा जीयान्मद्विश्रमस्थली॥२४॥

मूलमन्त्र से (अस्य) इस (आत्मनः) आत्मा का (पारतंत्र्यम्) पारतन्त्र्य

(उच्यते) कहा जाता है। (इति) ऐसा (गोविन्दाचार्यः) गोविन्दाचार्यस्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में छःपद हैं। इति गोविन्दाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१८।।

अब आचार्यों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ आचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीमन्त्रः पदत्रयेण ज्ञानवैराग्यभक्तीः प्रतिपादयतीत्याचार्याः।।१९।।

॥ अथ-आचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–एकैकपुरुषसुरक्षितवंशरीत्या गुप्ता प्रपत्तिपदवी गुरुभिः पुराणैः। रामानुजस्तु परया दयया दयालुः सीमामिमामतिययौ जगतां हिताय॥२५॥

(श्रीमन्त्रः) अष्टाक्षरमन्त्र (पदत्रयेण) तीनपदों से (ज्ञान वैराग्यभक्तीः) ज्ञान तथा वैराग्य और भक्ति को (प्रतिपादयति) कहता है (इति) ऐसा (आचार्याः) आचार्य ने कहा है। इस वार्ता में छःपद हैं। इति आचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१९।।

अब यामुनाचार्यस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यमुनाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीमन्त्रः पदत्रयेण अभिजनविद्यावृत्तानि प्रकाशयतीति यामुनाचार्यः।।२०।।

॥ यामुनाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–यत्पादाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः। वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम्॥२६॥

(श्रीमन्त्रः) मूलमन्त्र (पदत्रयेण) तीनपदों से (अभिजनविद्यावृत्तानि) अभिजन तथा विद्या और आचरण को (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (इति) ऐसा (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्यस्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में छःपद हैं। इति यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्।।२०।।

अब कलिवैरिदासजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–अर्थपंचकं प्रतिपादयतीति कलिवैरिदासः।२१।

॥ कलिवैरिदासस्तुतिः ॥

अर्थ–नंबिल्लनामाखिलतत्त्ववेदी वेदान्तिनो लब्धमहार्थसंघः। श्रीरंगपुर्यां बहुशिष्यसंघैर्यथा विरेजे यतिसार्वभौमः॥२७॥

श्रीमन्त्र (अर्थपंचकम्) स्वस्वरूप १, परस्वरूप २, पुरुषार्थस्वरूप ३, उपायस्वरूप ४, और विरोधिस्वरूप ५, इस अर्थ पंचक को (प्रतिपादयति) कहता है (इति) ऐसा (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदासस्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में चार पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२१॥

अब धनुर्दासजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ धनुर्दासोक्ता वार्त्ता ॥

मू०–पाणिग्रहणं विवाहं चतुर्थदिवससंश्लेषं च प्रतिपादयतीति धनुर्दासः॥२२॥

॥ धनुर्दासस्तुतिः ॥

अर्थ–रामस्य नित्यकैंकर्ये यथासीन्मारुतात्मजः। तथैव लक्ष्मणार्यस्य धनुर्दासो दृढव्रतः॥२८॥

मूलमन्त्र (पाणिग्रहणम्) ब्रह्म तथा जीव के पाणिग्रहणरूप (विवाहम्) भर्तृभार्यासम्बन्धरूप विवाह को (च) और (चतुर्थदिवससंश्लेषम्) चौथे दिन भर्तृभार्या के संयोग को (प्रतिपादयति) कहता है (इति) ऐसा (धनुर्दासः) धनुर्दास ने कहा है। इस वार्ता में सात पद हैं। इति धनुर्दासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२२॥

अब दाशरथिस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०––स्वरूपज्ञानं स्वरक्षणाशक्तिं स्वामिमुखोल्लासं च वदतीति दाशरथिः॥२३॥

॥ दाशरथिस्तुतिः ॥

अर्थ–भरतांशः सुतो जज्ञे पत्न्यां पुत्रो विचक्षणः। श्रीमान् दाशरथिर्नाम

विख्यातः सकलावनौ॥२९॥

श्रीमन्त्र (स्वरूपज्ञानम्) स्वरूपज्ञान को तथा (स्वरक्षणाशक्तिम्) अपने आप रक्षा के असमर्थ को (च) और (स्वामिमुखोल्लासम्) श्रीमन्नारायण भगवान् के मुखोल्लास को (वदति) कहता है (इति) ऐसा (दाशरथिः) दाशरथिस्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में सात पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२३॥

अब पराशरभट्टाचार्यजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पराशरभट्टाचार्योक्ता वार्ता ॥

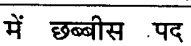
मू०–प्रकृतेः[१] परत्वं[२] प्रकृतेः[३] परस्य[४] शेषत्वं[५] शेषत्वस्यानन्यार्हत्वं[६] शेषभूतस्याहंकारममकारनिवृत्तिं[७] निवृत्ताहंकारादेः[८] स्वरूपस्य[९] पारतन्त्र्यपराकाष्ठाभूततदीयशेषत्वं[१०] परतन्त्रस्य[११], अनुरूपमुपायमुपायफलं[१२] कैंकर्यं[१३] कैंकर्यस्य[१४] प्रतिसंबन्धिनं[१५] च[१६] श्रीमन्त्रो[१७] वदति[१८] वेदान्तिनः[१९] पराशरभट्टार्यैः[२०], एकान्ते[२१] उपदिष्टम्[२२]॥२४॥

॥ पराशरभट्टाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–श्रीपराशरभट्टार्यः श्रीरङ्गेशपुरोहितः। श्रीवत्साङ्कसुतः श्रीमान्श्रेयसे मेऽस्तुभूयसे॥३०॥

(प्रकृतेः) प्रकृति से (परत्वम्) परतत्त्व को और (प्रकृतेः) प्रकृति से (परस्य) पर पुरुष के (शेषत्वम्) शेषत्वधर्म को तथा (शेषत्वस्य) शेषत्व के (अनन्यार्हत्वम्) अनन्यार्हत्व को और (शेषभूतस्य) शेषभूत के (अहंकारममकारनिवृत्तिम्) अहंकार तथा ममकार की निवृत्ति को तथा (निवृत्ताहंकारादेः) अहंकार ममकारादि से रहित (स्वरूपस्य) स्वरूप के (पारतन्त्र्यपराकाष्ठाभूततदीयशेषत्वम्) पारतन्त्र्य के पराकाष्ठा भूत भागवत के शेषत्व को और (परतन्त्रस्य) परतन्त्र के (अनुरूपम्) अनुरूप (उपायम्) उपाय को तथा (उपायफलम्) उपाय के फल (कैंकर्यम्) कैंकर्य को (च) और (कैंकर्यस्य) कैंकर्य के (प्रतिसंबन्धिनम्) प्रतिसम्बन्धी को (श्रीमन्त्रः) अष्टाक्षरमन्त्र (वदति) कहता है। ऐसा (वेदान्तिनः) वेदान्ती स्वामीजी से (पराशरभट्टार्यैः) श्रीपराशरभट्टाचार्यजी ने (एकान्ते) एकान्त में (उपदिष्टम्)

उपदेश दिया है। इस चौबीसवीं वार्ता में छब्बीस पद हैं। इति पराशरभट्टाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२४॥



अब कलिवैरिदासजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–परमरहस्यं श्रीमन्त्रार्थज्ञानोत्पत्तावपि, अत्र वर्तमानत्वात् स्वरूपाननुरूपदुरितपरम्परामुमाक्रमते चेत्–श्रीमन्त्रपदानामर्थाननुसन्धाय परिहार्याः। तथाहि बहुविरोधिबीजभूतं स्वातन्त्र्यमाक्रमते चेत्, अहं भगवत्परतन्त्रः, मम स्वातन्त्र्यमनुचितमिति, अकारार्थमनुसन्धाय निवर्तनीयम्, असेव्यसेवा आक्रमते चेत्, अहमन्यशेषः किं भगवदन्यार्हशेषः खल्विति, उकारार्थानुसन्धानेन निवर्तनीयं शरीरगतकार्श्यस्थौल्यादिकमाक्रमते चेत्, ज्ञानानन्दस्वरूपोऽहं नित्यः, एकरूपं स्वयं प्रकाश इति मकारार्थानुसन्धानेन निवर्तनीयम्, मम कश्चन पुरुषार्थसम्पादनीयस्तदर्थं साधनानुष्ठानं कर्तव्यमिति चिन्ताऽऽक्रमते चेत्, अहं स्वरक्षणे प्राप्तिरहितः भगवत्परतन्त्रः स्वतन्त्रस्य खलु रक्षणे प्राप्तिरिति नमसोऽर्थानुसन्धानेन निवर्तनीयः स्वोपकारार्थमागतस्यार्चावतारस्य न्यूनत्वे दृष्टे चेतनदुःखस्य, ईश्वरो यथा भृशं भवति दुःखितस्तथा-ईश्वरदुःखस्य दुःखितो न भवति चेत्, नारायणपदार्थसंबन्धमनुसन्धाय परव्यूहविभवादिषु सर्वत्र विद्यमानापूर्तिनिवृत्त्यर्थमागतः, खलु नात्र न्यूनता भवति-अनुभाव्यं सर्वं नार-

शब्दान्तर्गतमिति नारायणपदार्थानुसन्धानेन तदाकाराद व्यावर्तेत स्वरूपाननुरूपेतरविषयप्रीतिराक्रमते चेत् स्वरूपानुरूपवृत्तिः कैंकर्यमिति चतुर्थ्यर्थानुसन्धानेन निवर्तनीयः, एवं परिहाराकरणे परोपदेशस्य तत्र स्वस्योत्पन्नस्य ज्ञानस्य च किं प्रयोजनमित्यनुसंदधीत स्वपौरुषेण स्वकार्यनिर्वहणचिन्तामकारार्थानुसन्धानेन निवर्तयेत्, अन्यरक्षकत्वचिन्तामुकारार्थानुसन्धानेन निवर्तयेत्, साधने स्वान्वयोऽस्तीति बुद्धिं श्रीवैष्णवसमबुद्धिं च नमः शब्दार्थानुसन्धानेन निवर्तयेत्, ईश्वरविभूतिभूतेषु रागद्वेषौ नारशब्दार्थानुसन्धानेन निवर्तयेत्, औपाधिकबन्धुषु बन्धुत्वप्रतिपत्तिमयनशब्दार्थानुसन्धानेन निवर्तयेत्, पुत्रपश्वादिप्रभृतिषु स्वर्गैश्वर्यमध्यमेषु कैवल्यान्तेषु पुरुषार्थबुद्धिं चतुर्थ्यर्थानुसन्धानेन निवर्तयेत्॥

॥ कलिवैरिदासस्तुतिः ॥

अर्थ–भार्याद्वयं बभूवाथ पुत्रश्च कलिवैरिणः। आण्डालाख्याऽनघा तत्र ज्येष्ठा ज्येष्ठतरा गुणैः॥३१॥

(परमरहस्यम्) अत्यन्त छिपाने योग्य (श्रीमन्त्रार्थज्ञानोत्पत्तौ) अष्टाक्षर मन्त्र के अर्थ का ज्ञान उत्पन्न होने पर (अपि) भी (अत्र) इस मूल मंत्र में (वर्तमानत्वात्) वर्तमान होने से (स्वरूपाननुरूपदुरितपरंपरा) अपने स्वरूप से विरुद्ध पाप की परंपरा (अमुम्) इस चेतन को (आक्रमते) आक्रमण कर लेती है अर्थात् पाप परंपरा जब उदय होती है। "आक्रमते" यहाँ पर **॥ आङ उद्ग मने॥ व्या० अ० १, पा० ३, सू० ४०॥** इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है। (चेत्) तब (श्रीमंत्रपदानाम्) अष्टाक्षर मंत्र के पदों के (अर्थान्) अर्थों को (अनुसंधाय) अनुसंधान करके (परिहार्याः) दूर हटाने योग्य हैं। (तथाहि) निश्चय करके उसी को दिखाते हैं कि (वहुविरोधिबीजभूतम्) स्वस्वरूपविरोधि आदि बहुत से विरोधियों के बीजभूत (स्वातंत्र्यम्) स्वतंत्रता (चेत्)

यदि (आक्रमते) उदय हो अपने में तो (अहम्) मैं (भगवत्परतंत्रः) भगवान् के अधीन हूँ (मम) मेरा (स्वातन्त्र्यम्) स्वतन्त्रपना (अनुचितम्) अनुचित है; (इति) ऐसा (अकारार्थम्) प्रणव की प्रथम मात्रा अकार के अर्थ को (अनुसंधाय) अनुसंधान कर (निवर्तनीयम्) दूर करना चाहिये। और (असेव्यसेवा) नहीं सेवा करने योग्य की सेवा (चेत्) यदि (आक्रमते) अपने में उदय हो तो (अहम्) मैं (किम्) क्या (अन्यशेषः) दूसरे का शेष हूँ अर्थात् दूसरे का शेष नहीं हूँ (खलु) निश्चय करके (भगवदनन्यार्हशेषः) भगवदनन्यार्ह शेष मैं हूँ (इति) ऐसा (उकारार्थानुसंधानेन) प्रणव की द्वितीय मात्रा उकार के अर्थ को अनुसंधान द्वारा (निवर्तनीयम्) दूर करना चाहिये। तथा (शरीरगतकार्श्यस्थौल्यादिकम्) शरीर के दुबलापन और मोटापन आदिक (चेत्) यदि (आक्रमते) आत्मा में उदय हो तो (अहम्) मैं (ज्ञानानन्दस्वरूपः) ज्ञान और आनन्द स्वरूप तथा (नित्यः) नित्य और (एकरूपः) एकरूप तथा (स्वयम्) अपने से आप (प्रकाशः) प्रकाश स्वरूप हूँ (इति) ऐसा (मकारार्थानुसन्धानेन) प्रणव की तृतीय मात्रा मकार के अर्थ अनुसन्धान करके (निवर्तनीयम्) दूर करना चाहिये। और (मम) मेरा (कश्चन) कोई (पुरुषार्थसंपादनीयः) पुरुषार्थसंपादन करने योग्य है। तथा (तदर्थम्) संपादन करने योग्य उस पुरुषार्थ के लिये (साधनानुष्ठानम्) उपाय का अनुष्ठान (कर्तव्यम्) करने योग्य है, (इति) ऐसी (चिन्ता) चिन्ता (चेत्) यदि (आक्रमते) आत्मा में उदय हो तो (अहम्) मैं (स्वरक्षणे) अपनी रक्षा में (प्राप्तिरहितः) प्राप्ति रहित और (भगवत्परतन्त्रः) भगवत् के परतंत्र हूँ (खलु) निश्चय करके (स्वतन्त्रस्य) स्वतन्त्र ब्रह्म (रक्षणे) आत्मा की रक्षा में (प्राप्तिः) प्राप्ति है (इति) ऐसा (नमसः) श्रीमंत्रस्थ दूसरा जो नमः पद है उसके (अर्थानुसन्धानेन) अर्थ का अनुसंधान करके (निवर्तनीयः) दूर करना चाहिये। और (स्वोपकारार्थम्) इस जीवात्मा के उपकार करने के लिये (आगतस्य) आया हुआ (अर्चावतारस्य) अर्चावतार भगवान् के (न्यूनत्वे) न्यून (दृष्टे) देखने पर (चेतनदुःखस्य) जीवात्मा के दुःख से (ईश्वरः) परमात्मा (यथा) जैसे (भृशम्) अत्यन्त (दुःखितः) दुःखी (भवति) होता है (तथा) वैसे (ईश्वरदुःखस्य) ईश्वर के दुःख से (दुःखितः) दुखी (चेत्) यदि (न) नहीं (भवति) जीवात्मा होती है तो (नारायणपदार्थसम्बन्धम्) नारायण पद के अर्थ के संबन्ध को (अनुसंधाय) अनुसंधान कर (परव्यूहविभवादिषु) पर वासुदेव व्यूहसंकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध विभव रामकृष्णादिक अवतार और आदि शब्द से अन्तर्यामी भगवान् इन (सर्वत्र) सबों में (विद्यमानापूर्तिनिवृत्त्यर्थम्) विद्यमान अपूर्ति के दूर करने के लिये (आगतः) अर्चावातार भगवान् आये हैं। इससे (खलु) निश्चय करके (अत्र) इस अर्चावतार में (न) नहीं (न्यूनता) न्यूनता (भवति) होती है। (अनुभाव्यम्) अनुभव करने योग्य (सर्वम्) सब (नारशब्दान्तर्गतम्) नार शब्द के अन्तर्गत है। (इति) ऐसा

(नारायणपदार्थानुसंधानेन) नारायण पद के अर्थ के अनुसंधान करके (तदाकारात्) उसके आकार से (व्यावर्तेत) व्यावृत होना चाहिये। और (स्वरूपाननुरूपेतरविषयप्रीतिः) अपने स्वरूप से विरुद्ध अन्य विषयों की प्रीति (चेत्) यदि (आक्रमते) आत्मा में उदय हो तो (स्वरूपानुरूपवृत्तिः) अपने स्वरूप के अनुरूप वृत्ति (कैंकर्यम्) भगवत् का कैंकर्य है (इति) ऐसा (चतुर्थ्यर्थानुसंधानेन) श्रीमंत्र के तीसरे पद के अन्त में जो चतुर्थी विभक्ति है, उसके अर्थ का अनुसंधान करके (निवर्तनीयः) दूर करना चाहिये। (एवम्) इस प्रकार के (परिहाराकरणे) परिहार नहीं करने पर (परोपदेशस्य) पर के उपदेश का (च) और (स्वस्य) अपने (उत्पन्नस्य) उत्पन्न (ज्ञानस्य) ज्ञान का (तत्र) वहाँ पर (किम्) कौन (प्रयोजनम्) प्रयोजन है (इति) ऐसा (अनुसंदधीत) अनुसंधान करे। और (स्वपौरुषेण) अपने पौरुष से (स्वकार्यनिर्वहणचिन्ताम्) अपने कार्यनिर्वहण की चिन्ता को (अकारार्थानुसंधानेन) प्रणवस्थ अकार के अर्थ को अनुसंधान करके (निवर्तयेत्) दूर करे। तथा (अन्यरक्षकत्वचिन्ताम्) भगवत् से अन्य के रक्षकत्व की चिन्ता को (उकारार्थानुसंधानेन) प्रणवस्थ उकार के अर्थ को अनुसंधान करके (निवर्तयेत्) दूर करे। और (साधने) साधन में (स्वान्वयः) अपनी आत्मा का अन्वय (अस्ति) है। (इति) ऐसी (बुद्धिम्) बुद्धि को (च) और (श्रीवैष्णवसमबुद्धिम्) श्रीवैष्णवों में समबुद्धि को (नमः शब्दार्थानुसंधानेन) श्रीमंत्रस्थ नमः शब्द के अर्थ को अनुसंधान करके (निवर्तयेत्) दूर करे। तथा (ईश्वरविभूतिभूतेषु) ईश्वर की विभूति के जीवों में (रागद्वेषौ) यदि राग और द्वेष हो तो उसको (नारशब्दार्थानुसंधानेन) श्रीमंत्रस्थ नारशब्द के अर्थ को अनुसंधान करके (निवर्तयेत्) दूर करे। और (औपाधिकबन्धुषु) औपाधिक बंधुओं में (बन्धुत्वप्रतिपत्तिम्) बन्धुत्व प्रतिपत्ति को (अयनशब्दार्थानुसन्धानेन) श्रीमंत्रस्थ अयनशब्द के अर्थ को अनुसन्धान करके (निवर्तयेत्) दूर करे। और (पुत्रपश्वादिप्रभृतिषु) पुत्र पशु स्त्री घर आदिक प्रथम ऐश्वर्य में तथा (स्वर्गैश्वर्यमध्यमेषु) स्वर्गब्रह्मादिलोक मध्यम ऐश्वर्य में और (कैवल्यान्तेषु) कैवल्यअन्तिम ऐश्वर्य में (पुरुषार्थबुद्धिम्) पुरुषार्थ बुद्धि को (चतुर्थ्यर्थानुसन्धानेन) श्रीमंत्रस्थ नारायणशब्द के उपर स्थित चतुर्थी विभक्ति के अर्थ को अनुसंधान करके (निवर्तयेत्) दूर करे। मूलमंत्र के पदों के अनुसंधान के विषय में पराशरभट्टाचार्यजी ने कहा है कि–

॥ देहासक्तात्मबुद्धिर्यदि भवति पदं साधुविद्यात्तृतीयम्। स्वातन्त्र्यान्धो यदि स्यात्प्रथममितरशेषत्वधीश्चेद्द्वितीयम्। आत्मत्राणोन्मुखश्चेन्नम इति च पदं बान्धवाभासलोलः। शब्दं नारायणाख्यं विषयचपलधीश्चेच्चतुर्थीं प्रपन्नः ॥ अष्टश्लो० श्लो० ४॥

देह ही आत्मा है, ऐसी बुद्धि हो तो प्रणव के तीसरे पद मकार के अर्थ को अनुसंधान करे, तथा मैं स्वतंत्र हूँ, ऐसी बुद्धि हो तो प्रणव के पहले अक्षर अकार के अर्थ को अनुसंधान करे, और भगवत् लक्ष्मी भागवत आचार्य से अन्य का मैं शेष हूँ, ऐसी बुद्धि हो तो प्रणव के दूसरे अक्षर उकार के अर्थ को अनुसंधान करे, तथा अपनी रक्षा करने में उद्यत हो तो मूलमंत्र के दूसरे पद नमः शब्द के अर्थ को अनुसन्धान करे, और शरीरसंबन्धी माँ बाप भाई आदिकों में यदि आसक्ति हो तो मूलमंत्र के तीसरेपद में स्थित नारायण शब्द के अर्थ को अनुसंधान करे, तथा चन्दन फूल स्त्री आदिकों में भोग्यता बुद्धि से चलित हो तो प्रपन्नपुरुष नारायण शब्द के ऊपर स्थित चतुर्थी विभक्ति के अर्थ को अनुसंधान करे॥४॥



मू०–स्त्रीशूद्रादीनां श्रीमंत्रपाठे नाधिकारः, अर्थेऽधिकारोऽस्तीति स्वस्मिन्वदति-अतृप्त इव श्रीकुरुकापुरीदासोऽतिष्ठत्, तदा-अस्य पुरुषार्थसिद्धे र्निदानभूतेअर्थेऽधिकारोऽस्तीति चेत्- अप्रयोजकोपायेऽधिकाराभावे तस्य का हानिरिति कलिवैरिदासस्योक्तिः॥२५॥

अर्थ–(स्त्रीशूद्रादीनाम्) स्त्री और शूद्रादिकों का (श्रीमन्त्रपाठे) मूल मन्त्र के पढ़ने में (न) नहीं (अधिकारः) अधिकर है। और (अर्थे) मूल मन्त्र के अर्थ में (अधिकारः) स्त्री शूद्रादिकों का अधिकार (अस्ति) है। (इति) ऐसा (स्वस्मिन्) अपने ही (वदति) कहने पर (अतृप्तः) असन्तुष्ट के (इव) समान (श्री कुरुकापुरीदासः) श्रीकुरुकापुरी के सेवक (अतिष्ठत्) ठहरे (तदा) तब (अस्य) इस चेतनके (पुरुषार्थसिद्धेः) पुरुषार्थ सिद्धिके (निदानभूते) आदिकारणभूत (अर्थे) अर्थमें (अधिकारः) अधिकार (अस्ति) है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (अप्रयोजकोपाये)नहीं प्रेरणा करनेवाला जो उपाय है उसमें (अधिकाराभावे) स्त्री शूद्रादिक के अधिकारके आभाव होनेमें (का) कौन (हानिः) हानि है। (इति) ऐसा (कलिवैरिदासस्य) कलिवैरि स्वामीजीकी (उक्तिः) उक्ति है। यहाँ पर बहुतसे लोग कहते हैं कि स्त्री शूद्रादिकों का भी वेदमें अधिकार है, क्योंकि यजुर्वेदमें लिखा है कि ॥ **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वायचारणाय॥ यजु० अ० २६, मं० २ ॥**

जैसे मैं सब मनुष्योंके लिये इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुख को देनेवाली ऋग्वेदादि चारो वेदोंकी वाणीको उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो, परमेश्वर कहता है कि मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र, और अपने भृत्य अथवा स्त्री आदि और अति शूद्रादिकोंको भी वेदों का प्रकाश किया है ।।२।। इस प्रमाण से स्त्री शूद्रादिकों का वेदमें अधिकार है, यह साबित होता है। अब यहाँपर यह समझना चाहिये कि ॥ **यथेमाम्॥ यजु० अ० २६, मं० २॥** इस मन्त्रमें **॥अग्निश्च पृथिवी च सन्नते, ते मेसन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षश्च सन्नते, ते मेसन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते, तेमेसन्नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नते, तेमे सन्नमतामदः सप्तस ꣳ सदो अष्टमी भूतसाधनी सकामाँ अध्वनस्कुरु संज्ञा नमस्तुमेऽमुना ॥ यजु० अ० २६, मं० १॥**

अग्नि और पृथ्वी भी परस्पर अनुकूलतासे संगत हैं, वे दोनों मेरी इस कामना को इसी प्रकार वशवर्ती करें, और वायु तथा अन्तरिक्ष आपसमें संगत हैं, वे दोनों मेरी इस कामनाको इसी प्रकार वशवर्ती करें, और सूर्य तथा द्युलोक परस्पर संगत हैं, वे दोनों मेरी इस कामनाको इसी प्रकार वशवर्ती करें, हे देव! जिस आपके सात अधिष्ठान अग्नि १, वायु २, अन्तरिक्ष ३, आदित्य ४, द्युलोक ५ जल ६, वरुण ७, हैं आठवीं भूत साधनी प्राणियों का आधार स्वरूप अथवा उत्पादक भूमि है, इन सबके अधिष्ठान रूप तुम हमारे मार्गों को सफल करो, मेरी इस इष्ट सेवा की सबसे संगति हो।।१।। इस मन्त्र में स्थित भूत साधनी का अध्याहार होता है तब।। **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या ꣳ शूद्राय चार्याय च स्वायचारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिहभूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु॥ यजु० अ० २६, मं० २॥**

इस मन्त्र का यह अर्थ होता है कि—दान देने को जनों के अर्थ जैसे इस भूतसाधनी शोभना भोजन दो, ऐसी वाणी को सब जनों के लिये मैं सब प्रकार से कहता हूँ, वैसे तुम भी करो और कहो कि जनों के लिये ब्राह्मण क्षत्रियों के निमित्त और शूद्र के निमित्त वैश्य के निमित्त अपने नौकर के निमित्त और शूद्रादिक के निमित्त। आशय यह है, कि भोजन देने में किसी जातिका विचार नहीं है सबको देना चाहिये। ऐसा करने से देवताओं का, सबको देनेवाले परमेश्वर का प्यारा होऊँगा, मेरा धन पुत्र लाभ रूप यह कार्य समृद्धि को प्राप्त हो और परलोक सुखादिक प्राप्त हो ।।२।। इसमें "दक्षिणायै" और "दातुः" पद आने से स्पष्ट ही अन्नदान की महिमा विदित होती है। और प्रसंग देखने से लेश मात्र भी स्त्री शूद्रादिकों के वेदाध्ययन के विषय में ॥यथेमाम्॥ इत्यादि मन्त्रप्रमाण नहीं है। इससे वेद में स्त्री शूद्रादिकों का अधिकार

नहीं है इस प्रकार वेद में स्त्र शूद्रादिकों के अधिकार नहीं होने पर भी बहुत से लोग कहते हैं, कि वेद में कन्याओं का पढ़ना लिखा है।**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥ अथर्व० कां० ११, प्र० २४, अ० ३, सू० ७, मं० १८॥** कुमारी ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्णविद्या और उत्तम शिक्षाको प्राप्त युवती होकर पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवे।।१८।। अब यहाँ पर सज्जनों को यह विचार करना चाहिये कि।। **ब्रह्मचर्येण कन्या॥** इस मन्त्र में कौन सा पद है, जिसका वेदादि पढ़कर यह अर्थ होता है। यदि कहो कि "ब्रह्मचर्येण" इस पद का अर्थ वेद पढ़कर है, तो इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध।। **अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति॥** अथर्व० कां० ११, प्र० २४, अ० ३, सू० ७, मं० १८।। जो यह हैं, इसमें भी "ब्रह्मचर्येण" पद आया है तो तुल्यन्याय से यह अर्थ होगा कि—बैल और घोड़ा ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ घास खाने की इच्छा करते हैं, तो यह अर्थ प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध होने के कारण कोई भी नहीं मानेगा। इससे पूर्वार्द्ध में भी "ब्रह्मचर्येण" इस पद से वेदादि पढ़ना यह अर्थ योग्य नहीं है। इससे ।**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥ अथर्व० कां० ११, प्र० २४, अ० ३, सू० ७, मं० १८॥** इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ यह है, कि ब्रह्मचर्य से जवान हुए पति को कन्या प्राप्त होवे।।१८।। इससे वेद में स्त्री शूद्रादिकों का अधिकार नहीं है। इस विषय में अधोलिखित प्रमाणों को देखिये।। **संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च॥ वेदा० अ० १, पा० २, सू० ३६॥** प्रत्येक स्थल में वेद पढ़ने के लिये उपनयन संस्कार का प्रसंग आता है, इससे और शूद्र को उपनयन संस्कार के अभाव कथन होने से वेदाध्ययन में शूद्र का अधिकार नहीं है।।३६।। और मनुस्मृति में लिखा है कि ।। **ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः॥ मनु० अ० १०, श्लो० ४॥**

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीनोंवर्ण उपनयन संस्कार होने से द्विजाति हैं, और उपनयन संस्कार नहीं होने से शूद्र चौथावर्ण एक जाति है, और पाँचवा वर्ण नहीं है।।४।। और भी लिखा है कि ।। **न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्॥ मनु० अ० १०, श्लो० १२६॥ धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः। मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥१२७॥**

शूद्र को कोई पातक नहीं है, और न वह कोई संस्कार योग्य है, और न कोई वैदिकधर्म में इसको अधिकार है, और कहे हुए धर्म करने का निषेध नहीं है।।१२६।।

धर्म की इच्छावाले तथा धर्म को जाननेवाले शूद्र मन्त्र से रहित होकर भी सत्पुरुषों के आचरण करते हुए दोषों को नहीं प्राप्त होते, किन्तु प्रशंसा को प्राप्त होते हैं।।१२७।। और भी लिखा है कि ॥ **श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् ॥ वेदा० अ० १, पा० ३, सू० ३९॥** शूद्र को तो वेंद का श्रवण और अध्ययन तथा वेद के अर्थ का अनुष्ठान ये सब वर्जित हैं।।३९।। इससे ॥ **अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम् ॥** वेद को सुनने पर शूद्र का कान पिघले हुए सीसे और लाह से अच्छी तरह से भर दे।। और ।। **स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम् ॥** स्त्री और शूद्र वेद को न पढ़ें, यह श्रुति है।। और भी लिखा है कि।। **पद्यु ह वा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम् ॥ श्रीभाष्यअपशूद्राधिकरण०॥** चलनेवाला श्मशान शूद्र है, इससे शूद्र के समीप में वेद नहीं पढ़ना चाहिये।। **भवति च वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः॥ श्रीभा० अपशू०॥** वेदोच्चारण करने पर शूद्रकी जीभ काटले, और वेदको धारण करनेपर शरीर भेदन करे।। और भी लिखा है कि।। **न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्। नाचस्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्॥ मनु० अ० ४, श्लो० ८०॥**

शूद्रके लिये वेदार्थ ज्ञानको न दे तथा जूठा न दे, और हविष्य का शेष न दे, और वैदिकधर्म का उपदेश न करे, तथा शूद्रके लिये वैदिक व्रतका का उपदेश न दे।।८०।। इन प्रमाणोंसे स्पष्ट साबित होता है, कि वेदमें शूद्रोंका अधिकार नहीं है। और स्त्रियों का भी वेदमें अधिकार नहीं है, इस विषयमें कुछ प्रमाण मैं लिख चूका हूँ, और फिरसे भी कुछ लिखता हूँ।। **अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः। संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥ मनु० अ० २, श्लो० ६६। वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥६७॥**

यह सब स्त्रियोंका जातकर्मादि क्रिया कलाप, कहे हुए कालके क्रमसे शरीर संस्कारके लिये बिना मन्त्रोंके करना चाहिए।।६७।। और भी लिखा है कि।। **सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्यमन्त्रं बलिं हरेत्॥ मनु० अ०३, श्लो० १२१॥** सायंकाल सिद्ध किये हुए अन्नसे पत्नी बिना मन्त्रके बलि निकाले।।१२१।। यहाँपर बिना मन्त्रके बलि निकालनेकी मनुने आज्ञा दी है, इससे साबित होता है कि स्त्रियोंका वैदिकमन्त्रोंमें अधिकार नहीं है। ग्रन्थ विस्तारके भयसे अधिक प्रमाण मैं नहीं लिखता हूँ। इस पच्चीसवीं वार्तामें एकसौ नवासी पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।२५।।

अब भट्टारकस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि।

॥अथ भट्टारकोक्ता वार्ता॥

मू०-श्रीमंत्रेण रक्षकत्वप्रतिसम्बन्धिपूर्वकं रक्ष्यत्वमुक्त्वा, अन्यशेषत्वनिवृत्तिपूर्वकमनन्यार्हशेषत्वमुक्त्वा, अचेतनस्य व्यावृत्तिपूर्वकं चेतनवैलक्षण्यमुक्त्वा, अहंकारममकारनिवृत्तिपूर्वकं स्वरूपपारतन्त्र्यस्य सीमानमुक्त्वा, औपाधिकबन्धुत्वनिवृत्तिपूर्वकं निरुपाधिकबन्धुत्वमुक्त्वा, अपुरुषार्थनिवृत्तिपूर्वकं पुरुषार्थस्वरूपमुच्यते। विशेषणप्रधानमाश्रयणं विशे ष्यप्रधानमुपायः, उभयप्रधानमुपेयं रक्षकस्य शेषिणः स्थिते श्चिन्तनमीश्वरस्वरूपं रक्ष्यस्य शेषस्य स्थितेश्चिन्तनमात्मस्वरूपं रक्षकत्वव्यवस्थितमिव श्रियः पतित्वमपि व्यवस्थितं स्वव्यतिरिक्तसमस्तपदार्था भगवदभिमाने तिष्ठन्ति। बाह्या एवमुच्यमानेऽपि स्वयमभिमन्यन्ते। मातुरङ्के स्वपन्ती प्रजा स्वप्ने व्याघ्रेणाक्रान्ता यथाक्रोशति, तथा स्वस्वरूपानुसन्धानावास्था पश्चान्नेत्रे-उन्मील्य मातृमुखं दृष्ट्वा यथा निर्भरा भवति, तथा भगवत्संबन्धानुसन्धानावस्था-उपायदशायां भगवतैव भगवन्तं प्राप्तुमध्यवस्यन्ते, न तु स्वस्वकर्मभिः स्वरूपज्ञाः एतत्स्वातन्त्र्योद्रेके-अकारस्य नार्हः कस्यचिद्वृत्या जन्मना वा नैच्यानुसन्धाने मकारस्यानर्हः, अन्येस्वस्य रक्षका इत्यनुसन्धाने-उकारस्य नार्हः, स्वस्य स्वरक्षकत्वानुसन्धाने नमसो नार्हः, स्वार्थकैङ्कर्यस्य स्वयं योग्य इत्यनुसन्धाने नारायणपदस्य नार्हः, कृते कैङ्कर्ये स्वार्थताया अन्यार्थतायाश्चानुसन्धाने चतुर्थ्या नार्हः, अयमर्थो येनाधिकारिणा

१२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५
ज्ञातोऽनुष्ठितो भवति, तेन मंत्रार्थः सम्यक् ज्ञातो भवति,
१३६ १३७ १३८ १३९ १४०
अन्यथा श्रीमंत्रसम्बन्धः संदिग्ध इति भट्टारकोक्तिः ॥२६॥

॥भट्टारकस्तुतिः॥

अर्थ--तं जेतुकामोऽखिलभक्तसंघैर्वेदान्तिनं मायिमताग्रगण्यम्। भट्टारको लक्ष्मणदेशिकेन्द्रदिव्याज्ञया धीरतया प्रतस्थे॥३२॥

(श्रीमन्त्रेण) मूलमन्त्रसे (रक्षकत्वप्रतिसम्बन्धिपूर्वकम्) रक्षकत्वके प्रतिसम्बन्धि पूर्वक (रक्ष्यत्वम्) रक्ष्यत्वको (उक्त्वा) कहकर (अन्यशेषत्वनिवृत्तिपूर्वकम्) अन्यशेषत्वकी निवृत्तिपूर्वक (अनन्यार्हशेषत्वम्) अनन्यार्हशेषत्वको (उक्त्वा) कहकर (अचेतनस्य) जड़के (व्यावृत्तिपूर्वक) व्यावृत्तिपूर्वक (चेतनवैलक्षण्यम्) चेतनकी विलक्षणताको (उक्त्वा) कहकर (अहंकारममकारनिवृत्तिपूर्वकम्) अहंकार और ममकारकी निवृत्तिपूर्वक (स्वरूपपारतन्त्र्यस्य) स्वरूपकी परतन्त्रताकी (सीमानम्) सीमाको (उक्त्वा) कहकर (औपाधिकबन्धुत्वनिवृत्तिपूर्वकम्) औपाधिकबन्धुत्वनिवृत्तिपूर्वक (निरुपाधिकबन्धुत्वम्) उपाधिरहित बन्धुत्वको (उक्त्वा) कहकर (अपुरुषार्थनिवृत्तिपूर्वकम्) अपुरुषार्थनिवृत्तिपूर्वक (पुरुषार्थस्वरूपम्) पुरुषार्थ स्वरूपको (उच्यते) कहा जाता है (विशेषणप्रधानम्) विशेषण में प्रधान (आश्रयणम्) आश्रयण है। ६. ११ (विशेष्यप्रधानम्) विशेष्यमें प्रधान (उपेयम्) उपेय है। (रक्षकस्य) रक्षक (शे॰ णः) शेषीकी (स्थितेः) स्थितिका (चिन्तनम्) चिन्तन करना (ईश्वरस्वरूपम्) ईश्वरका स्वरूप है। और (रक्ष्यस्य) रक्ष्य (शेषस्य) शेषकी (स्थितेः) स्थितिका (चिन्तनम्) चिन्तन करना (आत्मस्वरूपम्) आत्मस्वरूप है (रक्षकत्वव्यवस्थितम्) रक्षकत्वव्यवस्थित (इव) के समान (श्रियः) श्रीदेवीके (पतित्वम्) पतित्व (अपि) भी नारायणमें (व्यवस्थितम्) व्यवस्थित है। (स्वव्यतिरिक्तसमस्तपदार्थाः) आत्मासे अन्य समस्त पदार्थ (भगवदभिमाने) भगवान्के अभिमान में (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं। (बाह्याः) भगवान्के अभिमानसे बाहर जो हैं, वे (एवम्) इस प्रकारके (उच्यमाने) कहनेपर (अपि) भी (स्वयम्) अपनेको (अभिमन्यन्ते) अच्छी तरहसे मानते हैं। (मातुः) माता के (अंके) गोदमें (स्वपन्ती) सोती हुई (प्रजा) सन्तति (स्वप्ने) स्वप्नमें (व्याघ्रेण) बाघसे (आक्रान्ता) आक्रमणकी हुई (यथा) जैसे (आक्रोशति) चिल्लाती है, (तथा) वैसे (स्वस्वरूपानुसंन्धानावस्था) अपने स्वरूपके अनुसन्धान करनेकी अवस्था है। और (पश्चात्) पीछेसे (नेत्रे) दोनों आँखोंको (उन्मील्य) खोलकर (मातृमुखम्) माताके मुखको (दृष्ट्वा) देखकर (यथा) जैसे (निर्भरा) माताके ऊपर

निर्भर (भवति) हो जाती है (तथा) वैसे (भगवत्संबन्धानुसन्धानावस्था) भगवान्के संबन्धको अनुसन्धान करने की अवस्था है (उपायदशायाम्) उपाय दशामें (भगवता) भगवान् द्वारा निश्चय करके (भगवन्तम्) भगवान्को (प्राप्तुम्) प्राप्त करनेके लिये (अध्यवस्यन्ते) यत्न करते हैं (तु) लेकिन (स्वरूपज्ञाः) स्वरूपको जाननेवाले (स्वस्वकर्मभिः) अपने अपने कर्मोंसे भगवान्को प्राप्त करनेके लिये (न) नहीं यत्न करते हैं (एतत्स्वातन्त्र्योद्रेके) इस की स्वतन्त्रताके उदय होनेपर (अकारस्य) प्रणवमें स्थित अकारके (अर्हः) योग्य (न) नहीं होता है। (कस्यचिद्) किसीजनके (वृत्या) आचरणसे (वा) अथवा (जन्मना) जन्मसे (नैच्यानुसन्धाने) नीचता अनुसन्धान करने पर (मकारस्य) प्रणवमें स्थित मकारके (अनर्हः) योग्य नहीं होता है। तथा (अन्ये) अन्य, (स्वस्य) आत्माके (स्वरक्षकत्वानुसन्धाने) अपनी रक्षकता अनुसन्धान करनेपर (नमसः) मूलमंत्रमें स्थित नमः पदके (अर्हः) योग्य (न) नहीं होता है। तथा (स्वार्थकैंकर्यस्य) अपने लिये कैंकर्यका (स्वयम्) अपनेही (योग्यः) योग्य हूँ (इति) ऐसा (अनुसन्धाने) अनुसन्धान करनेपर (नारायणपदस्य) मूलमंत्रके अन्तिम पदमें स्थित चतुर्थी विभक्ति के (अर्हः) योग्य (न) नहीं होता है (अयम्) यह पूर्वोक्त (अर्थः) मूलमंत्रका अर्थ (येन) जिस (अधिकारिणा) अधिकारीसे (ज्ञातः) ज्ञात होता है। तथा (अनुष्ठितः) अनुष्ठित (भवति) होता है (तेन) उसी अधिकारी द्वारा (मंत्रार्थः) मूलमंत्रका अर्थ (सम्यक्) अच्छी तरहसे (ज्ञातः) ज्ञात (भवति) होता है (अन्यथा) पूर्वोक्त अर्थको नहीं जाननेपर (श्रीमंत्रसंबन्धः) अष्टाक्षर मंत्रका सम्बन्ध (संदिग्धः) संदेहयुक्तही रहता है (इति) ऐसी (भट्टारकोक्तिः) भट्टारक स्वामाजीकी उक्ति है। इस छब्बीसवीं वार्तामें एक सौ चालीस पद हैं। इति पराशरभट्टाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२६॥

अब कृष्णपाद स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि

अथ कृष्णपादोक्तावार्ता

मू०--स्वस्वातन्त्र्यमाक्रमते चेत्, प्रणवे प्रथमाक्षरमनुसंदधीत। इतरशेषत्वप्रतिपत्तिरनुवर्तते चेत्, उकारार्थमनुसंदधीत। देहोऽहमिति स्थितश्चेत्, मकारार्थमनुसंदधीत। स्वरक्षणे प्रवृत्तश्चेन्नमः शब्दार्थमनुसंदधीत। ईश्वरविभूतीद्वेष्टि चेन्नारशब्दार्थमनुसंदधीत। अबन्धुषु बन्धुत्वप्रतिपत्ति-

रनुवर्तते चेत्, अयनशब्दार्थमनुसंदधीत। शब्दादिविषये भोग्यताबुद्धिरनुवर्तते चेत्, आयशब्दार्थमनुसंदधीत। प्रमाणं पदत्रयात्मकम्, प्रमेयं पर्वत्रयात्मकम्, अधिकारी-आकारत्रयात्मकः, प्रथमपदं मध्यमपदं तृतीयपदमिति त्रिपदं प्रमाणम्, आश्रयणीयचरणौ, मा भौरितिहस्तः, अरुणमुखमण्डलं चेति- अत्र प्रमेयं त्रिपर्व, अनन्यार्हशेष अनन्यशरण अनन्यभोग्य इति-आकारोऽधिकारी, प्रथमपदमनन्यार्हशेषत्वप्रतिपादकम् आश्रयणीयौ चरणारवनन्यार्हत्वप्रतिसम्बन्धिनौ, मध्यमपदमनन्यशरणत्वप्रकाशकम्, मा भौरितिहस्तः- अनन्यशरणत्वप्रतिसम्बन्धी, तृतीयपदमनन्यभोगप्रकाशकम्, अरुणमुखमण्डलमनन्य- भोगप्रतिसम्बन्धी, इति कृष्णपादोक्तिः ॥२७॥

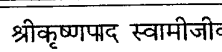
॥ कृष्णपादस्तुतिः॥

अर्थ- कृष्णपादः स्व पुत्राय, ततः कलिजिदाज्ञया।
वेदान्तद्वितयं सम्यक्, प्रबन्धांश्चादिशत्तदा॥३३॥

(स्वस्वातन्त्र्यम्) अपनी आत्मामें स्वतंत्रता (चेत्) यदि (आक्रमते) उदय होतो (प्रणवे) प्रणवमें (प्रथमाक्षरम्) जो पहला अक्षर अकार है, उसके अर्थको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे और (इतरशेषत्वप्रतिपत्तिः) भगवल्लक्ष्मी भागवत आचार्यसे व्यतिरिक्त का हम शेष हैं, ऐसी प्रतिपत्ति (चेत्) यदि (अनुवर्तते) होतो (उकारार्थम्) प्रणवमें जो दूसरा अक्षर उकार है, उसके अर्थको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे तथा (देहः) पञ्चभूतात्मकदेह (अहम्) आत्मा मैं हूँ (चेत्) यदि (इति) ऐसी (स्थितिः) बुद्धिस्थित हो तो (मकारार्थम्) प्रणवमें जो तीसरा अक्षर मकार है, उसके अर्थको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे। और (स्वरक्षणे) अपनी आत्मा की रक्षा करनेमें (चेत्) यदि (प्रवृत्तः) उद्यत होतो (नमः) मूलमंत्रमें जो दूसरा नमः पद है (शब्दार्थम्) उस नमः शब्दके अर्थको (अनुसंदधीत) अनुसंधान

करे। और (ईश्वरविभूती) ईश्वर की लीला विभूति, तथा त्रिपाद्विभूतिको (चेत्) यदि (द्वेष्टि) द्वेष करता होतो (नारशब्दार्थम्) मूल मंत्रके तीसरे पदमें स्थित जो नार शब्द है, उसके अर्थको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे। तथा (अबन्धुषु) माता पिता भ्राता आदिक अबन्धुओंमें (बन्धुत्वप्रतिपत्तिः) बन्धु हैं, ऐसी प्रतिपत्ति (चेत्) यदि (अनुवर्तते) होतो (अयनशब्दार्थम्) मूलमंत्रके तीसरे पद में स्थित जो अयन शब्द है, उसके अर्थको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे। और (शब्दादिविषये) शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श इन विषयोंमें (भोग्यताबुद्धिः) भोग्यताबुद्धि (चेत्) यदि (अनुवर्तते) हो तो (आयशब्दार्थम्) मूलमंत्रके तीसरे पदमें स्थित चतुर्थी विभक्तिके अर्थको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे। (प्रमाणम्) प्रमाण (पदत्रयात्मकम्) तीन पदवाला है। (प्रमेयम्) प्रमेय (पर्वत्रयात्मकम्) तीन पर्ववाला है। और (अधिकारी) मूल मंत्रका अधिकारी (आकारत्रयात्मकः) तीन आकारवाला है। (प्रथमपदम्) मूलमंत्रमें स्थित प्रणव पहला पद है। तथा (मध्यमपदम्) नमः, यह मध्यम पद है। और (तृतीयपदम्) नारायणाय, यह तीसरा पद है (इति) इस प्रकारसे (त्रिपदम्) तीनपदवाला (प्रमाणम्) प्रमाण मूलमंत्र है। (आश्रयणीयचरणौ) आश्रयण करने योग्य भगवत्के दोनों चरणारविन्द पहला पर्व हैं। तथा (मा) मत (भीः) डरो (इति) इस प्रकारका (हस्तः) भगवत्का अभयप्रदान करनेवाला हाथ दूसरा पर्व है। (च) और (अरुणमुखमण्डलम्) भगवत्का अरुण मुखमण्डल तीसरा पर्व है। (इति) इस प्रकारसे (अत्र) यहाँपर (प्रमेयम्) प्रमेय (त्रिपर्व) तीन पर्ववाला है। और (अनन्यार्हशेष अनन्यशरण अनन्यभोग्यः) अनन्यार्ह शेष पहला आकार है, तथा अनन्यशरण दूसरा आकार है, और अनन्यभोग्य तीसरा आकार है (इति) इस प्रकारसे (आकारः) तीन आकारवाला (अधिकारी) मूल मंत्रका अधिकारी होता है। (प्रथमपदम्) पहला पद मूल मंत्रका प्रणव (अनन्यार्हशेषत्वप्रतिपादकम्) अनन्यार्हशेषत्वरूप आकारको कहनेवाला है। और (आश्रयणीयौ) आश्रयण करने योग्य (चरणौ) भगवत्के दोनों चरणारविन्द (अनन्यार्हत्वप्रतिसंबन्धिनौ) अनन्यार्हत्व के प्रतिसंबन्धी हैं। तथा (मध्यमपदम्) मूल मंत्र का नमः यह मध्यम पद (अनन्यशरणत्वप्रकाशम्) अनन्य शरणत्व रूप आकारको प्रकाश करनेवाला है। और (मा) मत (भीः) डरो (इति) इस प्रकारका (हस्तः) अभय प्रदान करनेवाला भगवत्का हाथ (अनन्यशरणत्वप्रतिसंबन्धी) अनन्य शरणत्वका प्रतिसंबन्धी है। (तृतीयपदम्) मूल मंत्र का नारायणाय यह तीसरा पद (अनन्यभोगप्रकाशम्) अनन्य भोगरूप आकारको प्रकाश करनेवाला है और (अरुणमुखमण्डलम्) भगवत्का अरुण मुखमण्डल (अनन्यभोगप्रतिसंबन्धी) अनन्य भोग्यका प्रति संबन्धी है (इति)

इस प्रकारकी (कृष्णपादोक्तिः) श्रीकृष्णपाद स्वामीजीकी उक्ति है। इस सत्ताईसवीं वार्तामें पचासी पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२७॥



अब भट्टारक स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि

॥अथ भट्टारकोक्ता वार्ता॥

मू०-वात्सल्यादिगुणविशिष्टं वस्तु-आश्रयणीयम्, ज्ञानशक्त्यादिगुणविशिष्टं वस्तूपायः, समस्तकल्याणगुण-विशिष्टं वस्तु भोग्यम्, आश्रयणस्य शेषत्वस्य कैंकर्यस्य च प्रतिसंबन्धी मिथुनम्, अत्र प्रमाणम्; ''अनुदिनं श्रियः पत्युः समीचीनौ चरणावाश्रित्येति'' ''श्रीपतेऽहमपि तव प्राचीनदास इति'' ''दास्यं कुर्वन्ति श्रियः पत्युरेव'' इति प्रबन्धाः, सर्वरक्षकत्वं सर्वस्मात्परत्वं श्रियः पतित्वं सर्वशेषित्वं सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तित्वं समस्तकल्याणगुणत्व-मेतेऽकारार्थाः, अन्यशेषत्वनिवृत्तिरनन्यार्हशेषत्वं चोकारार्थः, ज्ञानानन्दलक्षणत्वं ज्ञानगुणकत्वमेकरूपत्वं स्वयं प्रका-शत्वमेते मकारार्थाः, स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तिः स्वरूपानुरूपोपाय उपायसीमाभूतमात्यन्तपारतन्त्र्यं तत्काष्ठाभूतं तदीय-शेषत्वमेते नमःशब्दार्थाः, चेतनाचेतनानां नित्यत्वं समू-हत्वं तदसंख्यातत्वमेते नारशब्दार्थाः, सर्वविधबन्धुत्व-मुभयविभूतिनाथत्वमाधारत्वं कारणत्वं नियन्तृत्वमेतेऽ-यनशब्दार्थाः, नित्यकैंकर्यं चतुर्थ्यर्थः, स्वरूपं स्वरूपान्तरं न सहते, साधनं साधनान्तरं न सहते, प्रयोजनं प्रयो-जनान्तरं न सहते, भट्टारकः श्रीवैष्णवैः सह वीथ्यां

९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५
गच्छन् क्रीडतो बालकान् दृष्ट्वा हेबालकाः! श्रीमंत्र उत्पन्ना-
१०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११
नामिव भवतामेतावान् गर्व इत्यवोचत्॥२८॥

॥भट्टारकस्तुतिः॥

अर्थ- श्रीरंगाच्छिष्यसंघेन भट्टार्यो रंगिशासनात्।
वेदान्तिग्रहणार्थाय प्रतस्थे यादवाचलम्॥३४॥

(वात्सल्यादिगुणविशिष्टम्) वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, आदिक गुणोंसे युक्त (वस्तु) वस्तु (आश्रयणीयम्) आश्रयण करने योग्य है। तथा (ज्ञानशक्त्यादिगुणविशिष्टम्) ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, आदिक गुणोंसे युक्त (वस्तु) वस्तु (उपायः) उपाय है और (समस्तकल्याणगुणविशिष्टम्) संपूर्ण कल्याण गुणों से युक्त (वस्तु) वस्तु (भोग्यम्) भोग्य है (आश्रयणस्य) आश्रयण के तथा (शेषत्वस्य) शेषत्वके (च) और (कैंकर्यस्य) कैंकर्यके (प्रतिसम्बन्धी) प्रतिसम्बंन्धी (मिथुनम्) लक्ष्मी और नारायण ये दोनों हैं (अत्र) इस विषय में (प्रमाणम्) प्रमाण ये अधोलिखित हैं (अनुदिनम्) नित्यप्रति (श्रियः) लक्ष्मीजीके (पत्युः) पति नारायणके (समीचीनौ) अच्छे (चरणौ) चरणोंको (आश्रित्य) आश्रयणकर (इति) यह, तथा (श्रीपते!) हे लक्ष्मीपते! (अहम्) मैं (अपि) भी (तव) आपका (प्राचीनदासः) पुराना सेवक हूँ, (इति) यह और (दास्यम्) दासताको (कुर्वन्ति) करते हैं (श्रियः) लक्ष्मीजीके (पत्युः) पति नारायण का (एव) ही निश्चय करके (इति) यह (प्रबन्धाः) दिव्य सूरियोंका प्रबन्ध है। (सर्वरक्षकत्वम्) सबका रक्षक तथा (सर्वस्मात्) सबसे (परत्वम्) पर (श्रियः) और लक्ष्मीजीका (पतित्वम्) पतिस्वामी तथा (सर्वशेषित्वम्) सबका शेषी तथा (सर्वज्ञत्वम्) सबको जाननेवाला और (सर्वशक्तित्वम्) सब शक्ति तथा (समस्तकल्याणगुणत्वम्) संपूर्णकल्याण (एते) ये सब (अकारार्थाः) प्रणवमें स्थित जो अकार है, उसका अर्थ है तथा (अन्यशेषत्वनिवृत्तिः) अन्यशेषत्व की निवृत्ति (च) और (अनन्यार्हशेषत्वम्) अनन्यार्हशेषत्व ये सब (उकारार्थः) प्रणवमें स्थित जो उकार है, उसका अर्थ है और (ज्ञानानन्दलक्षणम्) ज्ञान तथा आनन्दलक्षणवाला तथा (ज्ञानगुणकत्वम्) ज्ञान गुणक (एकरूपत्वम्) एक रूप और (स्वयम्) अपनेसे (प्रकाशत्वम्) प्रकाशवाला (एते) ये सब (मकारार्थाः) प्रणवमें स्थित जो मकार है, उसका अर्थ है। और (स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तिः) अपनी स्वतंत्रताकी निवृत्ति तथा (स्वरूपानुरूपोपायः) अपने स्वरूप के अनुरूप उपाय और (उपायसीमाभूतम्) उपायकी सीमाभूत (आत्यन्तपारतन्त्र्यम्) अत्यन्त परतंत्रता तथा (तत्काष्ठभूतम्) अत्यन्त परतंत्रताके

काष्ठाभूत (तदीयशेषत्वम्) भागवतोंका शेष (एते) ये सब (नमः शब्दार्थाः) मूल मन्त्रमें स्थित जो नमः शब्द है, उसका अर्थ है और (चेतनाचेतनानाम्) चेतन तथा जड़ोंकी (नित्यत्वम्) नित्यता तथा (समूहत्वम्) समूहता और (तदसंख्यात्वम्) जड़ तथा चेतन की असंख्यता (एते) ये सब (नारशब्दार्थाः) मूल मंत्र में स्थित जो नार शब्द है, उसका अर्थ है। और (सर्वविधबन्धुत्वम्) सब प्रकारकी बन्धुता तथा (उभयविभूतिनाथत्वम्) लीला विभूति, और त्रिपाद्विभूति, इन दोनों विभूतियोंका स्वामित्व तथा (आधारत्वम्) आधार और (कारणत्वम्) कारण तथा (नियन्तृत्वम्) नियन्ता (एते) ये सब (अयनशब्दार्थाः) मूल मंत्रमें स्थित जो अयन शब्द है, उसका अर्थ है। और (नित्यकैंकर्यम्) नित्य कैंकर्य (चतुर्थ्यर्थः) मूल मंत्रके तीसरे पदमें स्थित जो चतुर्थी विभक्ति है, उसका अर्थ है। (स्वरूपम्) स्वरूप (स्वरूपान्तरम्) स्वरूपसे अन्यको (न) नहीं (सहते) सहता है। और (प्रयोजनम्) प्रयोजन (प्रयोजनान्तरम्) प्रयोजनसे अन्यको (न) नहीं (सहते) सहता है (भट्टारकः) भट्टारक स्वामीजीने (वैष्णवैः) श्रीवैष्णवोंके (सह) साथ (वीथ्याम्) वीथीमें (गच्छन्) जाते हुए (क्रीडतः) खेलते हुए (बालकान्) लड़कोंको (दृष्ट्वा) देखकर (बालकाः) हे लड़कों! (श्रीमंत्रे) अष्टाक्षर मंत्रमें (उत्पन्नानाम्) उत्पन्न (भवताम्) आप सबोंके (इव) समान (एतवान्) इतना (गर्वः) गर्व है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। इस वार्तामें एक सौ ग्यारह पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२८॥

अब कुरुकाधिनाथजीकी वार्ता कहते हैं कि–

॥अथ कुरुकाधिनाथोक्ता वार्ता॥

मू०–कुरुकाधिनाथस्योक्तिः, प्रणवे मध्यमाक्षरमभ्यस्य राजद्वारेषु प्रविशन्ति, मध्यमपदमभ्यस्य स्वरक्षणे प्रवर्तन्ते, तृतीयपदमभ्यस्य स्वयं भोक्तारो भवन्ति ॥२९॥

॥ कुरुकाधिनाथस्तुतिः॥

अर्थ–निस्सीमनिर्मलधिया कुरुकाधिपेन लब्ध्वा प्रसादलहरीं यतिराजदत्ताम्।
गाथा सहस्रविषया विहिता हि टीका संगृह्णती सकलमात्मनि षट्सहस्री॥३५॥

(कुरुकाधिनाथस्य) कुरुकाधिनाथकी (उक्तिः) उक्ति है, कि (प्रणवे) प्रणवमें (मध्यमाक्षरम्) मध्यका अक्षर जो उकार है उसके अर्थको (अभ्यस्य) अभ्यासकर

(राजद्वारेषु) राजाओंके द्वारमें (प्रविशिन्ति) प्रवेश करते हैं। अर्थात् नहीं। तथा (मध्यमपदम्) मूलमंत्रका जो मध्यम पद "नमः" है उसके अर्थ को (अभ्यस्य) अभ्यासकर (स्वरक्षणे) अपनी रक्षा में (प्रवर्तन्ते) प्रवृत्त होते हैं। अर्थात् नहीं। और (तृतीयपदम्) मूलमंत्र का जो तीसरा पद "नारायणाय" है, उसके अर्थको (अभ्यस्य) अभ्यास कर (स्वयम्) अपने ही (भोक्तारः) भोक्ता (भवन्ति) होते हैं। अर्थात् नहीं। इति कुरुकाधिनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥२९॥

अब श्रीकृष्णपादस्वामीजीकी और किसी श्रीवैष्णवके प्रश्नोत्तररूपवार्ताको कहते हैं। कि-

॥अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता॥

मू०-श्रीकृष्णपादं[१] कश्चिच्छ्रीवैष्णवः[२][३] पारतन्त्र्यस्वरूपं[४] कीदृशमित्यपृच्छत्[५][६][७]। स[८] च स्वशक्तिनिवृत्तिपूर्वकं[९][१०] सर्वशक्ति-माश्रयत[११][१२], उपायविषये[१३] दोषनिवृत्तिपूर्वकमुपेयत्वराधिक्यं[१४][१५] पारतन्त्र्यमित्यवोचत्[१६][१८][१९] ॥३०॥

॥ कृष्णपादस्तुतिः॥

अर्थ- भूयोऽथकृष्णपादस्य तस्य सूनुरजायत।
अभिरामवराधीशः सर्वशास्त्रविशारदः॥३६॥

(श्रीकृष्णपादम्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजीसे (कश्चित्) किसी (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णवने (पारतन्त्र्यस्वरूपम्) पारतन्त्र्य स्वरूप (कीदृशम्) कैसा है? (इति) इस प्रकारसे (अपृच्छत्) पूछा, तब (सः) उस श्रीकृष्णपाद स्वामीजीने (स्वशक्तिनिवृत्तिपूर्वकम्) अपनी शक्ति की निवृत्ति पूर्वक (सर्वशक्तिमान्) परमेशको (आश्रयत) तुम सब आश्रयण करो (च) और (उपायविषये) उपायके विषयमें (दोषनिवृत्तिपूर्वकम्) दोषनिवृत्तिपूर्वक (उपेयत्वराधिक्यम्) उपेय वस्तुमें अधिकत्वरा करना (पारतन्त्र्यम्) पारतन्त्र्य स्वरूप हैं, (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। "श्रीकृष्णपादम्" यहाँ पर **॥ अकथितं च॥ व्या० अ०१, पा० ४, सू० ५१॥** इस सूत्रसे कर्म संज्ञा होकर॥ **कर्मणि द्वितीया॥ व्या० अ० २, पा० ३, सू० २॥** इस सूत्रसे द्वितीया हुई है। इस वार्तामें अठारह पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥३०॥

अब गोष्ठीपूर्ण स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथ गोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता॥

मू०-यथा स्वर्णं प्रतप्तं संकुचितमतिशयितकान्तिमद् भवति, तथा निवृत्तसंकोचो विकसितज्ञानो दिव्यमहिषीसाम्योक्त्यर्हो भवत्यात्मेति गोष्ठीपूर्णोक्तिः ॥३१॥

॥गोष्ठीपूर्णस्तुतिः॥

अर्थ- गोष्ठीपुरे यतिश्रेष्ठगोष्ठीपूर्ण इति श्रुतः।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो वर्तते वैष्णवोत्तमः॥३७॥

(यथा) जैसे (स्वर्णम्) सोना (प्रतप्तम्) आगमें अत्यन्त तपाया हुआ, और (संकुचितम्) संकुचित किया हुआ (अतिशयितकान्तिमद्) अत्यन्त कान्तिवाला (भवति) होता है, (तथा) वैसे (निवृत्तसंकोचः) संकोचसे रहित (विकसितज्ञानः) विकसित ज्ञानवाला पुरुष (दिव्यमहिषीसाम्योक्त्यर्हः) दिव्य महिषी लक्ष्मीदेवीके तुल्य कहनेके योग्य (आत्मा) आत्मावाला (भवति) होता है (इति) इस प्रकारकी गोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥३१॥

अब दाशरथिस्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि

॥अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता॥

मू०-मलिनं माणिक्यं सम्यग्घर्षितं शाणचक्रे तेजोमयं भवति, तथाऽज्ञचेतनस्तिरोधाननिवृत्तौ दास्यैकस्वरूपो भवतीति दाशरथिः ॥३२॥

॥ दाशरथिस्तुतिः॥

अर्थ- अथ दाशरथिर्धीमान् प्रणम्य यतिपुंगवम्।
ममापि चरमश्लोकं प्रदेहीति तमब्रवीत्॥३८॥

(मलिनम्) मलिन (माणिक्यम्) माणिक्य (सम्यक्) अच्छी तरहसे

(घर्षितम्) घिसा हुआ (शाणचक्रे) शान धरानेके चक्र पर जैसे मैल दूर होनेसे (तेजोमयम्) अत्यन्त प्रकाशवाला निर्मल (भवति) हो जाता है (तथा) वैसेही (अज्ञचेतनः) स्वरूपको नहीं जाननेवाला चेतन (तिरोधाननिवृत्तौ) अहंकार ममकार रूप पर्दा दूर होने पर (दास्यैकस्वरूपः) भगवत्की दासतारूप एक स्वरूप (भवति) हो जाता है (इति) इस प्रकारसे (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजीने कहा है। इस बत्तीसवीं वार्ता में चौदह पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥३२॥

अब उत्तरवीथीकृष्णदेशिक की वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथोत्तरवीथीकृष्णोक्ता वार्ता॥

मू०-अहंकारे निवृत्त आत्मनोऽविनश्यन्नाम दास इतीत्युत्तरवीथीकृष्णः ॥३३॥

॥ कृष्णदेशिकस्तुतिः॥

अर्थ- उदक्प्रतोली कृष्णश्च ततः कृष्णसमाह्वयः।
कलिजित्सर्वशिष्याणां प्रधानौ तौ बभूवतुः॥३९॥

(अहंकारे) स्वातंत्र्य रूप अहंकारकी मलिनताको (निवृत्ते) सदाचारके उपदेशादिसे वासना सहित दूर करने पर (आत्मनः) जीवात्माका (अविनश्यत्) विनाश रहित स्वतः सिद्ध (नाम) नाम (दासः) दास (इति) ऐसा है (इति) इस प्रकारसे (उत्तरवीथीकृष्णः) उत्तरवीथीमें कृष्ण देशिक ने कहा है। इस वार्तामें नौ पद हैं। इति उत्तरवीथीकृष्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥३३॥

अब कुरुकाधिनाथकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथ कुरुकाधिनाथोक्ता वार्ता॥

मू०-उत्पत्तिं स्वस्य वृत्तिं स्वस्य स्वभावमुत्पत्तिरूपं स्वामिनो मर्मस्थानं स्वस्वामिनोः संबन्धं च श्रीमंत्रः प्रतिपादयति ॥३४॥

॥ परांकुशमुनिस्तुतिः॥

अर्थ- ऋषिं जुषामहे कृष्णतृष्णातत्त्वमिवोदितम्।
सहस्त्रशाखां योऽद्राक्षीत् द्राविडीं ब्रह्मसंहिताम्॥४०॥

(उत्पत्तिम्) जीवके शेषत्वकी उत्पत्तिको तथा (स्वस्य) जीवात्माकी (वृत्तिम्) वृत्तिको और (स्वस्य) जीवात्माके (स्वभावम्) पारतंत्र्य स्वभावको तथा (उत्पत्तिरूपम्) जीवके शेषत्वकी उत्पत्तिके आकारको तथा (स्वामिनः) नारायणके (मर्मस्थानम्) मर्मस्थान तदीय को (च) और (स्वस्वमिनोः) जीव तथा ईश्वरके (संबन्धम्) सबन्धको (श्रीमंत्रः) मूलमंत्र (प्रतिपादयति) कहता है॥



मू०- कर्म[१] कर्मणि[२] दोषनिवृत्तिं[३] कृष्णं[४] कृष्णस्य[५] तात्पर्यं[६] गतिमाश्रयणप्रकारं[७] परमाश्रयं[८] तं[९] पापं[१०] तन्निवृत्तिं[११] च[१२] प्रतिपादयति[१३], चरमश्लोकः[१४]॥

अर्थ-अब जिस चरमश्लोक का उपदेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कुरुक्षेत्रमें अर्जुनको दिया है, उसका अर्थ आचार्य कहते हैं। परन्तु पहले यहाँपर चरमश्लोक के स्वरूपका ज्ञान तथा पदका ज्ञान होना चाहिए। इससे उसको पहले लिखता हूँ॥

॥ सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ भगवद्गी० अ० १८ श्लो० ६६॥

"सर्वधर्मान्" यह चार अक्षरका पहला पद है। उसके बाद "परित्यज्य" यह चार अक्षरका दूसरा पद है। उसके बाद "माम्" यह एक अक्षर का तीसरा पद है। उसके बाद "एकम्" यह दो अक्षर का चौथा पद है। उसके बाद "शरणम्" यह तीन अक्षरों का पाँचवाँ पद है। उसके बाद "व्रज" यह दो अक्षरोंका छठवाँ पद है। उसके बाद "अहम्" यह दो अक्षरों का सातवाँ पद है। उसके बाद "त्वा" यह एक अक्षर का आठवाँ पद है। उसके बाद "सर्वपापेभ्यः" यह पाँच अक्षरोंका नौवाँ पद है। उसके बाद "मोक्षयिष्यामि" यह पाँच अक्षरोंका दसवाँ पद है। उसके बाद "मा शुचः" यह तीन अक्षरों का ग्यारहवाँ पद है। इस प्रकारसे चरमश्लोकमें ग्यारह पद हैं और बत्तीस अक्षर हैं। इस विषयमें वररंगाचार्यजीने भी कहा है कि **॥ एकादशपदानि द्वात्रिंशदक्षराणि सन्ति॥ निगमनपडि॥** चरमश्लोकमें ग्यारह पद और बत्तीस अक्षर हैं। अन्तिम उपायको॥ **सर्वधर्मान्॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६६॥** इस श्लोक के द्वारा भगवान् ने कहा है, इससे इस श्लोक का नाम चरमश्लोक है। इस विषय में लोकाचार्य स्वामीजी ने कहा है, कि **॥ चरमोपायस्य**

कथनाच्चरमश्लोक इत्यस्य नाम भवति॥ ममुक्षुपडि॥ अन्तिम उपाय कहनेसे इसका चरमश्लोक नाम होता है । इस चरमश्लोक के पूर्वार्धमें जो छः पद हैं, उससे मुमुक्षुरूप अधिकारीके कृत्यका उपदेश किया गया है। और चरमश्लोक के उत्तरार्धमें जो पाँच पद हैं उससे उपायरूप भगवान् के कृत्यका उपदेश किया गया है। अब चरमश्लोक में पहला पद ''सर्वधर्मान्'' यह जो है, इसका अर्थ लिखता हूँ। समस्त धर्मोंको । यहाँपर फल साधनभूत वस्तु को धर्म कहते हैं। क्योंकि लिखा है कि **॥धर्मो नाम फलसाधनभूतः॥ मुमुक्षुप०॥** फलसाधनभूत का धर्म नाम है। यहाँपर पुत्र पशु अन्न आदिक ऐहिकफल और स्वर्ग आदिक आमुष्मिक फलोंसे अतिरिक्त मोक्षरूप फलसाधनको लेना चाहिए। क्योंकि लिखा है कि-**अत्रोक्तधर्मशब्दो दृष्टफलसाधनानि न वदति, किन्तुमोक्षफलसाधनानि वदति॥ मुमुक्षुप०॥** इस चरम श्लोक में कहा हुआ धर्मशब्द दृष्टफल साधनको नहीं कहता है, किन्तु मोक्ष फल साधन को कहता है। ''धर्मान्'' बहुवचनान्त इस धर्म शब्दसे मोक्षोपायभूत कर्म ज्ञान भक्ति अवताररहस्य पुरुषोत्तमविद्या दिव्यदेशवास भगवन्नामकीर्तन दीपारोपण पुष्पमालासमर्पण आदिको ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि लिखा है कि-

॥ ते च कर्मज्ञानभक्तियोगा अवताररहस्यज्ञानं पुरुषोत्तमविद्या देशवासः श्रीनामकीर्तनं श्रीदीपारोपणं श्रीमालाकैंकर्यमित्येतत्प्रभृतयः॥ मुमुक्षुप०॥

वे धर्म, कर्म, ज्ञान, भक्ति, अवताररहस्यज्ञान, पुरुषोत्तमविद्या, दिव्यदेशवास, श्रीनामकीर्तन, श्रीदीपारोपण, श्रीमालाकैंकर्य प्रभृति हैं। चरमश्लोक में ''धर्मान्'' इस बहुवचनान्तशब्दसे ही ''संपूर्ण धर्मोंको'' यह अर्थ हो जाता, फिर जो श्लोकमें ''सर्व'' शब्द है उससे इन मोक्षसाधनोंके अनुष्ठानके समयमें योग्यता आपादन करनेवाले नित्य और नैमित्तिक कर्मोंको ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि लिखा है कि-

॥सर्वशब्देन तत्तत्साधनविशेषानुष्ठानसमये तेषां योग्यतापादकानि नित्यकर्माण्युच्यन्ते॥ एवं श्रुतिस्मृतिविहितनित्यनैमित्तिकादिरूपकर्मयोगाद्युपायानित्यर्थः॥ मुमुक्षुप०॥

सर्व शब्दसे मोक्षके तत्तत्साधनविशेष अनुष्ठानके समय उनकर्मादिकोंकी योग्यता आपादन करने वाले नित्य कर्मोंको कहते हैं। इस प्रकारसे ''श्रुतिस्मृतिविहित नित्य नैमित्तिकादिरूप कर्मयोग आदिक उपायोंको'' यह अर्थ हुआ। अर्थात् ''सर्वधर्मान्'' इस पदसे नित्य नैमित्तिक आदिक परिकर सहित कर्मयोग आदिक मोक्षके उपायोंको लेना चाहिये। इस प्रकारका पहले पदका अर्थ लिखकर अब दूसरा पद जो ''परित्यज्य'' है, उसका अर्थ लिखता हूँ कि अच्छी तरहसे छोड़कर। यहाँपर मोक्षोपायभूत धर्म त्याग कर्म ज्ञानादिकों का स्वरूपतः त्याग नहीं है, किन्तु उन उपायोंमें उपायत्वाकार बुद्धिसे

त्याग है। क्योंकि लिखा है कि ॥ **बुद्धिविशेषेण त्यागः॥ मुमुक्षुप०॥** बुद्धिविशेषसे त्याग है। ''परित्यज्य'' इस पदमें जो 'परि' है, इसको **॥उपसर्गाः क्रियायोगे॥ व्या० अ० १ पा० ४ सू० ५९॥** इस सूत्रसे उपसर्ग संज्ञा हुई है, तो 'परि' इस उपसर्गसे रुचि तथा वासना सहित अच्छे प्रकारसे त्याग विवक्षित है। क्योंकि लिखा है कि **॥परीत्युपसर्गेण पातकादित्यागवद्रुचिवासनाभ्यां लज्जया सह पुनरन्वयं यथा न स्यात्तथा त्यागः कर्तव्य इत्युच्यते॥ मुमुक्षुप०॥** परि इस उपसर्गसे पातक आदिक त्यागके समान रुचि और वासनाके साथ लज्जासे अच्छे प्रकार से त्याग करना, जिसमें फिरसे उसका संबन्ध न हो, यह अर्थ कहा जाता है। और ''परित्यज्य'' यह प्रयोग॥ **समासेऽनञ्पूर्वेक्त्वोल्यप्॥ व्या० अ०७, पा० १, सू० ३७॥** इस सूत्रसे 'ल्यप्' होकर बना है, तो उस ''ल्यप्'' से कर्म आदिक उपायोंको छोड़ करके ही आश्रयण करना चाहिये, यह अर्थ विवक्षित हैं। क्योंकि लिखा है कि॥ ल्यपा स्नात्वा भुक्तेतिवदुपायान्तराणि त्यक्त्वैवाश्रयणं कर्तव्यमित्युच्यते॥ मुमुक्षुप०॥ 'ल्यप्' से स्नान कर भोजन करें, इसके समान उपायान्तरोंको छोड़कर निश्चय करके आश्रयण करना चाहिये, यह अर्थ कहा जाता है। अब ''सर्वधर्मान् परित्यज्य'' इस पादका यह अर्थ हुआ, कि ''सांग सपरिकर कर्म, ज्ञान, भक्ति आदिक मोक्षोपायभूत धर्मोंमें मोक्षोपायत्व बुद्धि अच्छी तरह से त्याग करके'' इस प्रकारसे चरमश्लोकके पूर्वार्धमें पहले पादका उपायन्तर परित्यागरूप उपाय स्वीकारके अङ्गको लिखकर अब दूसरे पादका अर्थ उपाय स्वीकार को लिखता हूँ। ''माम्'' सर्वरक्षक भक्तपराधीन दोष को भोग्य समझनेवाले हमको। क्योंकि लिखा है कि **॥ सर्वरक्षकं तवहस्तवशं त्वदिच्छां दृष्ट्वा त्वद्दोषान् भोग्यतया स्वीकृत्य स्थितम्॥ मुमुक्षुप०॥** सबका रक्षक तेरे अधीन तेरी इच्छा को देखकर तेरे दोषों को भोग्यतया स्वीकारकर स्थित हमको। ''एकम्'' यह चौथा पद है। इसका यहाँपर अवधारण अर्थ है। क्योंकि लिखा है कि--**॥अयमेकशब्दः स्थानप्रमाणेनावधारणार्थकः॥ मुमुक्षुप०॥** यह एक शब्द, स्थान प्रमाणसे अवधारणार्थक है॥ **मामेव ये प्रपद्यन्ते॥ भगवद्गी० अ० ७, श्लो० १४॥ तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये॥ भगवद्गी० अ० १५, श्लो० ४॥** इत्यादि स्थलोंमें अवधारणार्थक एव का प्रयोग किया गया है; इससे यहाँपर भी एव के स्थानमें ही एक शब्दका प्रयोग किया गया है, ऐसा जानना चाहिये। तो ''मामेकम्'' इसका अर्थ हुआ कि-हमको ही। यहाँपर उपाय स्वीकारमें उपायत्व परित्याग एक शब्दका प्रयोजन है। क्योंकि कर्मज्ञान भक्ति आदिकमें उपायत्व परित्याग पहले लिख चुका हूँ। ''शरणम्'' इस पाँचवें पदका अर्थ यहाँपर उपायकरके है। यद्यपि शरण शब्द का अर्थ रक्षिता और गृह यह दो भी हो सकता है। परन्तु यहाँपर उपायरूपार्थ ही पूर्व शब्दार्थसे अन्वय योग्य है। क्योंकि लिखा है कि-**यद्यप्ययं शरणशब्दो रक्षितारं गृहमुपायं च प्रदर्शयति,**

तथाप्यत्रोपायमेव प्रदर्शयति, पूर्वेणान्वयावश्यकत्वात्॥ मुमुक्षुप०॥ यद्यपि यह शरण शब्द रक्षिता तथा गृह और उपायको दिखाता है, तौ भी यहाँपर उपायको ही दिखाता है, पूर्व शब्दसे अन्वयके आवश्यक होनेसे। ''व्रज'' इस छठवें पदका अर्थ समझो, यह है। यद्यपि ''व्रजगतौ'' यह धातु गमनार्थक है तौ भी।। गत्यर्था बुद्ध्यर्थाः।। गत्यर्थक बुद्ध्यर्थक है।। इस न्यायसे यहाँपर बुद्धिरूपार्थक ही लेना उचित है। अर्थात् 'व्रज' इस पदका अध्यवसाय करो, यह अर्थ होता है। क्योंकि लिखा है कि **-अध्यवसायं कुर्वित्यर्थः॥ मुमुक्षुप०॥** अध्यवसायको करो, यह अर्थ है।। यद्यपि कायिक और वाचिक शरणागतिमें भी क्षति नहीं है तौ भी**॥ज्ञानान्मुक्तिः॥** सांख्य० अ० ३, सू० २३।। ज्ञानसे मोक्ष होता है।।२३।। ऐसा प्रतिपादन होनेसे अध्यवसायरूप मानसशरणागति ही ग्राह्य है। क्योंकि लिखा है कि **॥मानसिकानुष्ठानमुच्यते॥ मुमुक्षुप०॥** मानसिक अनुष्ठानको कहते हैं। इस प्रकारसे चरमश्लोकके पूर्वार्धका यह अर्थ हुआ कि- कर्म, ज्ञान, भक्ति आदिक सांग सपरिकर धर्मोंमें उपायत्व बुद्धिको परित्याग करके हमको ही उपाय करके अध्यवसाय करो। अब चरमश्लोक के द्वितीयार्ध में स्वीकृतोपायभूत भगवान्के कृत्यको लिखता हूँ। उसमें ''अहम्'' यह पहला पद है, इसका सर्वज्ञ सर्वशक्त सर्वस्वामी हम ,ऐसा अर्थ है। क्योंकि लिखा हैं कि**॥ सर्वज्ञस्सर्वशक्तिकः प्राप्तश्चाहम्॥ मुमुक्षुप०॥** सर्वज्ञ सर्वशक्त और प्राप्त हम। और दूसरा पद **''त्वा''** यह है। यह ''त्वा''।। **त्वामौ द्वितीयायाः॥ व्या० अ० ८, पा० १, सू० २३॥** इस सूत्रसे त्वम् के जगहपर आदेश हुआ है। इसका अज्ञ अशक्त मुझको ही उपाय समझनेवाले तुमको, ऐसा अर्थ है। क्योंकि लिखा है **अज्ञमशक्तमप्राप्तं मामेवोपायतया स्वीकृत्य स्थितं त्वाम्॥ मुमुक्षुप०॥** अज्ञ अशक्त अप्राप्त हमको ही उपायतया स्वीकार कर स्थित तुमको। अब जो तीसरा पद ''सर्वपापेभ्यः'' यह है। इसका अर्थ भगवत् प्राप्तिमें प्रतिबन्धकभूत पुण्य तथा पापोंसे ऐसा होता है। क्योंकि लोकमें इष्ट प्राप्तिविरोधी और अनिष्ट प्राप्तिहेतुभूत वस्तु पाप शब्दसे कही जाती है। मुमुक्षुपुरुषका इष्ट भगवत्प्राप्ति और अनिष्ट, तद्व्यतिरिक्त ऐहिक स्त्री पुत्र धन आदिक तथा आमुष्मिक स्वर्ग नरकादिक हैं। क्योंकि जैसे नरक दुःखद होनेसे अनिष्ट है, वैसे ही स्वर्ग भी भगवत्प्राप्तिकी अपेक्षा दुःखरूप है, और पुण्य, भगवत्प्राप्तिरूप इष्टविरोधी तथा स्वर्गादिरूप अनिष्टप्राप्तिहेतु होनेसे मुमुक्षु पुरुष को पाप ही है। इससे यहाँपर पुण्य पापरूप द्विविध पदार्थ भी पाप शब्दसे लिया जाता है। अब जो चौथा पद ''मोक्षयिष्यामि'' यह है। इसका, जैसे तुम मुक्त हो जाओगे वैसे मैं कर दूँगा, ऐसा अर्थ है। क्योंकि लिखा है कि **॥ मुक्तो यथा भवेस्तथा कुर्याम्॥ मुमुक्षुप०॥** जैसे तुम मुक्त हो जाओगे वैसे मैं करदूँगा। और ''मोक्षयिष्यामि'' यहाँपर जो णिच् प्रत्यय है, इससे यह अर्थ होता है, कि भगवच्छरणागति करनेपर पुण्य

पाप रूप द्विविध कर्म अपनेसे ही निवृत्त हो जाते हैं। क्योंकि लिखा है कि ॥ **णिचा तानि स्वयमेव विहाय गच्छेरन्नित्याह ॥ मुमुक्षप०॥** वे पुण्य पाप अपनेसे ही भगवच्छरणागतको छोड़कर निवृत्त हो जाते हैं, ऐसा णिच् प्रत्यय द्वारा कहा जाता है। अब अन्तिमपद "माशुचः" यह है "इसका शोक निमित्त नहीं रहनेसे शोक मत करो", ऐसा अर्थ है। क्योंकि लिखा है कि ॥ **तव शोकनिमित्तं नास्ति॥ मुमुक्षुप०॥** तेरा शोकनिमित्त नहीं है। अब चरम श्लोकके उत्तरार्धका संक्षिप्त अर्थ यह है कि- मैं, हमारी प्राप्तिमें विरोधिभूत अविद्या कर्म वासनारुचि प्रकृतिसंबन्ध और पूर्वोत्तराघ रूप संपूर्ण पापोंसे निवृत्त करा दूगाँ, तुम शोक मत करो। इस चरमश्लोकार्थको मुमुक्षुओंको सर्वदा अनुसंधान करना चाहिये। अब जो प्रस्तुत विषय है, उसका अक्षरार्थ यहाँपर लिखता हूँ। (कर्म) समस्त धर्मको और (कर्मणि) धर्मकर्ममें (दोषनिवृत्तिम्) दोषनिवृत्तिको तथा (कृष्णम्) कृष्ण भगवान्को और (कृष्णस्य) कृष्ण भगवान्के (तात्पर्यम्) तात्पर्यको तथा (परमाश्रयम्) श्रेष्ठ आश्रय भगवान्को और (तम्) शरणागति करनेवाले उस अधिकारीको तथा (पापम्) संपूर्ण पापोंको और (तन्निवृत्तिम्) सब पापोंसे निवृत्तिको तथा (च) चकारसे शोक न करो, इसबातको (चरमश्लोकः) चरमश्लोक, क्रमसे अपने ग्यारह पदों द्वारा (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है॥ शमिति॥

❁

मू०- श्रीमहालक्ष्मीं स्वामिनं तयोर्नित्यसंबन्धं स्वामिनो महतीं कृपां कृपानिदानौ चरणौ, उपायं चरणयोराश्रयणप्रकारमाश्रयतामनुभवं कृपावतः-शरीरमनुभवप्रकारमनुभवे दोषनिवृत्तिं च द्वयं प्रतिपादयति॥

अर्थ-अब जिस द्वय मंत्रका उपदेश भगवान्ने श्रीविष्णुलोकमें श्रीलक्ष्मीजीको किया है, उसका अर्थ आचार्य कहते हैं। परन्तु यहाँपर पहले द्वय मंत्रके स्वरूपका ज्ञान तथा पदका ज्ञान होना चाहिये। इससे उसको पहले लिखता हूँ॥ श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये, श्रीमते नारायणाय नमः॥ त्रिपाद्वि० अ० ७, मं० शरणाग०॥ यही द्वयमंत्रका स्वरूप है। क्योंकि द्वयमंत्र का ही नाम शरणागतिमंत्र है। यह लिखा है कि-

॥ मंत्ररत्नंद्वयं न्यासं प्रपत्तिः शरणागतिः। लक्ष्मीनारायणमिति मंत्रः सर्वफलप्रदः॥ पाद्म० उत्तरखं० ६, अ० २२३ श्लो० २३॥ नामानि मंत्ररत्नस्य पर्यायेण निबोधत। तस्योच्चारणमात्रेण परितुष्टोस्मि नित्यशः॥२४॥

मंत्ररत्न, द्वयमंत्र, न्यासमंत्र, प्रपत्तिमंत्र, शरणागतिमंत्र, लक्ष्मीनारायणमंत्र, सब फलको देनेवाला है।।२३।। ये पूर्वोक्त सब पर्यायसे मंत्ररत्नके नाम हैं, नित्य प्रति उस मंत्ररत्नको उच्चारण करनेसे मैं संतुष्ट रहता हूँ।।२४।। और भी लिखा है, कि ॥ **पञ्चविंशाक्षरो मंत्रः पदैः षड्भिः समन्वितः। वाक्यद्वयपरं मंत्रं ज्ञेयं रत्नमनुत्तमम्॥ हारीत०॥**

द्वयमंत्र में पच्चीस अक्षर हैं, तथा दो खण्ड हैं, और सब मंत्रोंसे श्रेष्ठ होनेसे इसका मंत्ररत्न नाम है। और भी लिखा है कि-

॥ द्वयस्य वाक्यद्वयं षट्पदानि पञ्चविंशाक्षराणि। तत्र पूर्ववाक्यस्य पञ्चदशाक्षराणि, वाक्यस्य दशाक्षराणि॥ निगमनप०॥

द्वयमंत्रके दो खण्ड हैं, तथा छः पद हैं और पच्चीस अक्षर हैं, उसमें पूर्व खण्डमें पन्द्रह अक्षर हैं, और उत्तरखण्डमें दस अक्षर हैं। और पराशरभट्टाचार्यजीने कहा है, कि।। षट्पदोऽयंद्विखण्डः।। अष्टश्लोश्लो० ५।। द्वयमंत्रमें छः पद, और दो खण्ड हैं।।५।। और पद्मपुराणमें द्वयमंत्रके ऋषि आदिक भी लिखा है कि-

॥ तस्य नारायणश्चाहमृर्षिविष्णुः सनातनः। देवता च श्रिया सार्द्धमहं वात्सल्यसागरः॥ पाद्म० उत्तर खं० ६, अ० २२३, श्लो० ३९॥ छन्दस्तु देवी गायत्री पञ्चविंशाक्षरात्मिका॥४२॥

उस द्वयमंत्रका विष्णु सनातन नारायण ऋषि हैं, और देवता श्री देवीके साथ वात्सल्यगुणसागर नारायण हीं हैं।।३९।। तथा पचीस अक्षरवाली देवी गायत्री छन्द है।।४२।। अब जिस द्वयमंत्रका अर्थ लिखने के लिये तैयार हूँ, उसके विषयमें कुछ प्रमाणोंको दिखाता हूँ-

॥ सामानाधिक्यरहितं संसारोच्छेदनं परम्। सर्वदं सर्वपापघ्नं महत्प्रियतमं विभोः॥ पराशरीयध० उत्तरखं अ० ३, श्लो० १३॥ अध्यापयेन्मंत्ररत्नं सर्षिच्छन्दाधिदैवतम्॥१४॥ विनापि न्यासमुद्रे च विना छन्दोऽधिदैवते। यस्योच्चारणमात्रेण सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥१५॥

सामानाधिक्यरहित संसारको काटनेवाला श्रेष्ठ सब कुछ देनेवाला सब पापोंको नाश करनेवाला भगवत्के अत्यन्त प्रिय।।१३।। मंत्ररत्नको ऋषि छन्द और देवताके साथ पढ़ावे।।१४।। बिना अंगन्यास के और बिना मुद्रा के तथा बिना छन्द के और बिना देवता के जिस द्वयमंत्र के केवल उच्चारण करनेसे सबसिद्धियों के फलको प्राप्त करता है।।१५।। और भी लिखा हैं कि।।

द्वयात्परतरो मंत्रो नास्ति सर्वप्रदं नृणाम्॥ यस्योच्चारणमात्रेण परां सिद्धिमवाप्नुयात्॥

पराशरी० उत्तर खं० अ० ६, श्लो० ११६॥

मनुष्योंको सब कुछ देनेवाले द्वयमंत्र से परतर मंत्र नहीं है; क्योंकि मनुष्य जिस द्वयमंत्रके उच्चारण मात्रसे परा सिद्धिको प्राप्त करता है॥११६॥ और पद्मपुराणमें लिखा है कि-

सर्वेषामेव मंत्रणां मंत्ररत्नं शुभावहम्। सकृत्स्मरणमात्रेण ददाति परमं पदम्॥ पाद्मपु० उत्तरखं० ६, अ० २२३, श्लो० २२॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः, स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः। तस्याधिकारिणः सर्वे मम भक्तास्तु ते यदि॥२७॥ द्वयात्परतरं मंत्रं नास्ति सत्यं ब्रवीमि ते। अस्मात्परतरं धर्मं नास्ति लोकेषु किंचन॥७८॥

सब मंत्रोंमें निश्चय करके मंत्ररत्न ही शुभको प्राप्त करानेवाला है, क्योंकि एकबार केवल स्मरण करनेसे, द्वयमंत्र मोक्ष को देता है॥२२॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, और अन्य अनुलोमज, प्रतिलोमज आदिक सब ही यदि भगवद्भक्त हो तो द्वयमंत्रके अधिकारी हैं॥२७॥ द्वयमंत्रसे श्रेष्ठ मंत्र नहीं है, यह तुझसे सत्य मैं कहता हूँ, और इससे श्रेष्ठधर्म लोक में नहीं है ॥७८॥ ग्रन्थके विस्तार भयसे अधिक प्रमाण मैं नहीं लिखता हूँ। अब अर्थ देखिये। द्वयमंत्रके पहले खंडमें उपाय, और दूसरे खण्डमें उपेय प्रतिपादन किया गया है। पहला खंड "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं" यहाँ तक है। इसमें "श्रीमन्नारायणचरणौ" यह नौ अक्षरों का पहला पद है। उसके बाद "शरणम्" यह तीन अक्षरों का पहला पद है। उसके बाद "प्रपद्ये" यह तीन अक्षरों का तीसरा पद है। श्री यह लक्ष्मीजीका नाम है। क्योंकि लिखा है कि ॥ **महालक्ष्म्याः श्रीनाम॥ मुमुक्षप०॥** महालक्ष्मीका श्री नाम है। **"श्रिञ् सेवायाम्"** इस धातुसे श्रीयते, अथवा श्रयते इस प्रकारकी व्युत्पत्ति करनेपर॥ **क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च॥** इस वार्तिकसे निष्पन्न "श्री" शब्द है। इसमें "श्रीयते-इति श्रीः" इस कर्मणिव्युपत्तिसे समस्तचेतनों करके आश्रिता अथवा सेविता लक्ष्मीजी का बोध होता है। और "श्रयते-इति श्रीः" इस कर्तरिव्युत्पत्तिसे भगवान्को आश्रयण करनेवाली लक्ष्मीजीका बोध होता है। लक्ष्मीजी समस्त चेतनाचेतनोंके पुरुषकार रूप हैं "श्री" शब्दके ऊपर॥ **भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। संबन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुवादयः॥** इस महाभाष्यकी कारिका द्वारा नित्ययोगमें॥ **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्॥ व्या० अ० ५, पा० २, सू० १४॥** इस सूत्रसे मतुप् प्रत्यय होता है। उसका अर्थ नित्यसंबन्ध है। चेतनों का दोष और भगवान् का स्वातंत्र्य देखकर लक्ष्मीजी, भगवान्को छोड़कर क्षणभर नहीं रहती हैं। इससे शरणमें जानेवाले पुरुषोंको काल निरीक्षण करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, जिस समय रुचिहो, उसी समय वे आश्रयण कर सकते हैं। "श्रीमत्" इस समुदायसे पुरुषकारभूत लक्ष्मीजीसे

नित्यसहित, ऐसा अर्थ लब्ध होता है। और "नारायण" शब्दका, मूलमंत्रके अर्थ करने के समयमें कहे हुए प्रकार से नित्यवस्तु समूहोंका आधारभूत, ऐसा अर्थ है। क्योंकि लिखा है कि।। **उद्बुध्यमानान्गुणानाह नारायणपदम्।। मुमुक्षुप०।।** उद्बुध्यमानगुणोंको नारायण शब्द कहता है। वे गुण भी दो प्रकारके होते हैं। एक आश्रयण सौकर्यापादक और दूसरा आश्रितकार्यापादक है। उसमें वात्सल्य १, स्वामित्व २, सौलभ्य ३, सौशील्य ४, ये चारगुण आश्रयणसौकर्यापादक हैं। और ज्ञान १, शक्ति २, पूर्त्ति ३, और प्राप्ति ४, ये चारगुण आश्रितकार्यापादक हैं। वात्सल्यगुण दोषभोग्यत्वरूप है। चेतन भगवान्के इन गुणोंके अनुसन्धान करनेसे भगवदाश्रयणके विषयमें अपने दोषोंको देखकर भय नहीं करता है। भगवान्के स्वामित्वगुणका अनुसन्धानकर, चेतन मेरी रक्षा करेंगे या नहीं, इस संशयसे मुक्त हो जाता है। सौलभ्यगुण, आँखोसे देखकर आश्रयण करनेके लिये उपयोगी होता है। सौशील्यगुण, भगवान्का स्वामित्व देखकर नहीं डरनेके लिये उपयोगी होता है। ये चारों गुण आश्रयण करने में इस प्रकार से सौकर्यापादक हैं। ज्ञानगुण, चेतनों को इष्ट और अनिष्ट समझनेके लिये है। शक्तिगुण, नित्य संसारी चेतनको नित्य सूरिसमान करनेमें उपयोगी है। पूर्तिगुण अकिंचन चेतनको अनर्घ मोक्ष देनेमें उपयोगी है। प्राप्तिगुण, अवश्य रक्षा करनेके लिये उपयोगी है। ये चारो गुण आश्रित पुरुषोंके कार्यको सम्पन्न करते हैं। यहाँपर कहे हुये सौलभ्यगुणका एकान्त स्थान अर्चावतार है, क्योंकि परव्यूहान्तर्याम्यादि समान न होकर आँखोंसे दर्शन करके आश्रयणके योग्य अर्चावतार है। "श्रीमन्नारायणचरणौ" यहाँपर "नारायण" शब्दके ऊपर जो षष्ठी विभक्ति थी, उसका **।।षष्ठी।। व्या० अ०२, पा० ३, सू० ८।।** इस सूत्रसे समास करनेपर **।।सुपो धातुप्रातिपदिकयोः।। व्या० अ० २, पा० ४, सू० ७१।।** इस सूत्रसे लुक् हो गया है। तो उसका अर्थ संबन्ध है। क्योंकि वह षष्ठी विभक्ति, **।।षष्ठी शेषे।। व्या० अ० २, पा० ३, सू० ५०।।** इस सूत्रसे संबन्धमें हुई थी। और "चरणौ" इसका पदकमल यह अर्थ है। यह भगवान्के दिव्य मंगल विग्रहके उपलक्षणमें है। और अवयवोंका नाम न लेकर केवल चरणों का ही नाम लेनेमें तात्पर्य यह है कि स्तनन्धय बालक जैसे माताके स्तनोंमें प्रवृत्त होता है, वैसे ही शरणागत पुरुष चरणारविन्दोंमें प्रवृत्त होता है। इस प्रकार "श्रीमन्नारायणचरणौ" इसका यह अर्थ हुआ कि-पुरुषकारभूत लक्ष्मीजीसे सर्वदा युक्त, आश्रयणोचित समस्त गुणयुक्त, नारायणके चरण कमलोंको। "शरणम्" यह द्वयमंत्रके पहले खण्डका दूसरा पद है। इसका अर्थ उपाय है। क्योंकि लिखा है कि - **॥उपाये गृहरक्षित्रोः शब्दश्शरणमित्ययम्। वर्तते साम्प्रतं चैष उपायार्थैकवाचकः।। नारदपांचरात्र०।।** यह शरण शब्द उपाय अर्थमें, तथा गृह अर्थमें, और रक्षिता

अर्थमें है, परन्तु यहाँपर यह शरण शब्द केवल उपाय अर्थका वाचक है। ''प्रपद्ये'' यह 'पद गतौ' इस धातुसे।। **दिवादिभ्यः श्यन्।। व्या० अ० ३, पा० १, सू०६९।।** इस सूत्रसे श्यन् प्रत्यय होकर बना है। इसका अर्थ यहाँपर आश्रयण करता हूँ, यह है। क्योंकि लिखा है कि-**आश्रयामि।। मुमुक्षुप०।।** आश्रयण करता हूँ। यद्यपि कायिक वाचिकरूप आश्रयणसे भी फलमें हानि नहीं है, तौभी ज्ञानसाध्यमोक्ष शास्त्रसिद्ध होनेसे मानसिक आश्रयण ही यहाँपर ग्राह्य है, अर्थात् भगवच्चरणारविन्दोंका ही उपाय करके मनमें निश्चय करना चाहिये। इस प्रकारसे पूर्वखण्डका यह अर्थ हुआ कि-पुरुषकारभूत लक्ष्मीजीसे सर्वदायुक्त आश्रयणोचित समस्त गुणसंपन्न नारायणके चरणारविन्दोंको उपाय करके आश्रयण करता हूँ। द्वयमंत्रके उत्तरखण्डमें तीन पद और दस अक्षर हैं। उनमें पहला पद ''श्रीमते'' है। इसका अर्थ, ''लक्ष्मीजीसे सर्वदा संयुक्त होकर रहनेवाले के लिये'' है। क्योंकि लिखा है कि।। **महालक्ष्म्या सह स्थिताय।। मुमुक्षुप०।।** महालक्ष्मीके साथ रहनेवालेके लिये। इस स्थानमें लक्ष्मीजी प्राप्यत्वाकारसे कही गई है। क्योंकि यह प्राप्यप्रकरण है। भगवान्के उपाय होने के समय लक्ष्मीजी स्वयं प्राप्य होकर कैंकर्यकी वृद्धि करती हैं। कैंकर्यरूप पुरुषार्थकी सिद्धि और रस्यता, लक्ष्मी जी तथा भगवान्के संयोग में ही है। ''नारायणाय'' यह उत्तरखण्डका दूसरा पद है। सर्वशेषी समस्तदिव्यगुणाकर दिव्यमंगलविग्रहयुक्त भगवान् इसका अर्थ है।। क्योंकि लिखा है कि।। **सर्वशेषिणे-अत्र श्रीविग्रहो गुणाश्चोच्यन्ते।। मुमुक्षुप०।।** सर्वशेषीके लिये यहाँपर श्रीविग्रह और दिव्य गुण भी कहे जाते हैं। ''नारायण'' शब्दके ऊपर।। **नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च।। व्या० अ० २, पा० ३, सू० १६।।** इस सूत्रसे चतुर्थी विभक्ति आई है। उस चतुर्थीका अर्थ यहाँपर कैंकर्य है, तो ''श्रीमते नारायणाय'' इन दोनों पदोंको मिलकर यह अर्थ हुआ कि- लक्ष्मीजीसे नित्ययुक्त समस्तकल्याणगुणाकर सर्वशेषी दिव्यमंगलविग्रह युक्त भगवान्का कैंकर्य मैं करूँ। ''नमः'' यह तीसरा पद है। यह कैंकर्यरूप पुरुषार्थके विरोधीका निरसन करता है। क्योंकि लिखा है कि।। **नमः कैंकर्यविरोधिनं निवर्तयति।। मुमुक्षुप०।।** नमः कैंकर्यविरोधीको हटाता है। कैंकर्यमें भोक्तृत्वबुद्धि, और मदीयत्व बुद्धिको कैंकर्य विरोधी कहते हैं। ''नमः'' इस पदमें 'न' यह अक्षर निषेधवाचक है, तो ''नहीं'' इसका अर्थ है। और ''मः'' यह षष्ठ्यन्तजीव वाचक है, तो इसका ''मेरा'' अर्थ है। अर्थात् मेरे संतोषके लिये यह कैंकर्य नहीं है, किन्तु भगवन्मुखोल्लासके लिये कैंकर्य है। इस प्रकार द्वयमंत्रका यह अर्थ सिद्ध हुआ, कि- पुरुषकारभूत लक्ष्मीजीसे नित्ययुक्त आश्रयणोचित समस्तकल्याणगुणपूर्ण नारायणके चरणारविन्दोंका ही मैं उपायत्वसे आश्रयण करता हूँ। लक्ष्मीजीसे नित्ययुक्त सर्वशेषी समस्तकल्याणगुणपूर्ण

भगवानके ही कैंकर्यको भगवन्मुखोल्लासके लिये करूँ, मेरे लिये नहीं। इस द्वयमन्त्रके अर्थको मुमुक्षुओं को सर्वदा अनुसन्धान करना चाहिये। अब प्रस्तुत विषयके अक्षरार्थको लिखता हूँ। (श्रीमहालक्ष्मीम्) श्रीमहालक्ष्मीजीको और (स्वामिनम्) नारायण भगवान्को तथा (तयोः) महालक्ष्मीजीके और नारायणके (नित्यसंबन्धम्) नित्यसंबन्ध को और (स्वामिनः) नारायण भगवान्की (महतीम्) बड़ी (कृपाम्) कृपाको तथा (कृपानिदानौ) कृपाके निदान रूप (चरणौ) दोनों चरणारविन्दोंको और (उपायम्) उपायको तथा (चरणयोः) दोनों चरणारविन्दोंके (आश्रयणप्रकारम्) आश्रयणके प्रकारको और (आश्रयताम्) आश्रयण करनेवालोंके (अनुभवम्) अनुभवको तथा (कृपावतः) कृपावाले भगवान्के (शरीरम्) मंगलमय विग्रहको तथा (अनुभवप्रकारम्) अनुभवके प्रकारको (च) और (अनुभवे) अनुभवमें (दोषनिवृत्तिम्) दोष निवृत्तिको (द्वयम्) द्वयमंत्र (प्रतिपादयति) क्रमसे अपने शब्दोंके द्वारा प्रतिपादन करता है।।कमिति।।

❀

मू०–श्रीमंत्रेण किरीटमनुसंदधीत, चरमश्लोकेन वक्षसि श्रीसंबन्धमनुसंदधीत, द्वयेन चरणावनुसंदधीत।।

अर्थ-(श्रीमंत्रेण) मूलमंत्रसे (कीरीटम्) भगवत्के किरीटको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे। तथा (चरमश्लोकेन) चरमश्लोकसे (वक्षसि) भगवत्के वक्षस्थलमें (श्रीसंबन्धम्) श्रीसंबन्धको (अनुसंदधीत) अनुसंन्धान करे। और (द्वयेन) द्वयमंत्रसे (चरणौ) भगवत्के दोनों चरणारविन्दोंको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे।।शमिति।।

❀

मू०–अर्थपञ्चकं रहस्यत्रयेण कथं प्रतिपाद्यत इति चेत्, श्रीमंत्रे नारायणपदेन परमात्मस्वरूपमुच्यते, प्रणवेन स्वस्वरूपम्, चतुर्थ्या पुरुषार्थस्वरूपम्, नमसोपायस्वरूपम्, नमः शब्दस्थषष्ठ्यन्तमकारेण विरोधिस्वरूपं चोच्यत इति, चरमश्लोके मामहं पदाभ्यां परमात्मस्वरूपम्, व्रजेति मध्यमेन त्वा माशुच इत्याभ्यां च स्वस्वरूपम्, पापेभ्यो मोक्षयिष्यामी-

३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४
त्यनेनानिष्टनिवृत्तिपूर्वकं पुरुषार्थस्वरूपम्, सर्वपापेभ्य इत्यने-
४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२
न विरोधिस्वरूपम्, एकं पदेनोपायस्वरूपं चोच्यते, द्वये सवि-
५३ ५४ ५५ ५६ ५७
शेषणनारायणपदेन परस्वरूपम्, प्रपद्य इत्युत्तमेनात्मस्वरूपम्
५८ ५९ ६० ६१ ६२
चतुर्थीनमोभ्यां पुरुषार्थस्वरूपम्, नमसि मकारेण विरोधि-
६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८
स्वरूपम्, चरणपदेनोपायस्वरूपं चोच्यते, स्वरूपं श्रीमंत्रो
६९ ७० ७१ ७२ ७३
वदति, स्वरूपानुरूपोपायं विदधाति चरमश्लोकः, एतदर्थद्वये
७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९
रुचिमनुसंदधानं वदति द्वयम्, शास्त्ररुचिपरिगृहीतः श्रीमंत्रः,
८० ८१ ८२
शरण्यरुचिपरिगृहीतश्चरमश्लोकः, आचार्यरुचिपरिगृहीतं
८३ ८४ ८५ ८६
द्वयम्, आत्मयाथात्म्यप्रतिपादकपरः श्रीमंत्रः, उपाययाथा-
८७ ८८
त्म्यप्रतिपादनपरश्चरमश्लोकः, उपेययाथत्म्यप्रतिपादनपरं
८९ ९० ९१ ९२ ९३
द्वयम्, प्राप्यप्रधानः श्रीमंत्रः, प्रापकप्रधानश्चरमश्लोकः,
९४ ९५ ९६ ९७ ९८
पुरुषकारप्रधानं द्वयम्, आचार्येणाङ्गीकृतस्याचार्योपदिष्टानां
९९ १०० १०१ १०२ १०३
श्रीमंत्रार्थानां पदशोऽनुसन्धानप्रकार उच्यते, ईश्वरशेषभूतो
१०४ १०५ १०६ १०७
निवृत्तान्यशेषत्वकः, विलक्षणनिरूपकः, तदीयपरतन्त्रः, तत्स-
१०८ १०९ ११० १११ ११२
म्बन्धवान् , किंकरस्वभाव इति स्वात्मानमनुसंदधीत, अनेन
११३ ११४ ११५
रक्षकत्वप्रतिसंबन्धिपूर्वकं रक्ष्यत्वमन्यशेषत्वप्रतिसंबन्धि-
११६ ११७ ११८
निवृत्तिपूर्वकमनन्यार्हशेषत्वमचेतनव्यावृत्तिपूर्वकं चेतनवैल-
११९ १२० १२१
क्षण्यम्, स्वान्तत्र्यनिवृत्तिपूर्वकं पारतन्त्र्यकाष्ठा, सोपाधिक-
१२२ १२३
संबन्धनिवृत्तिपूर्वकं निरुपाधिकसंबन्धोऽपुरुषार्थनिवृत्तिपूर्वकं
१२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९
पुरुषार्थप्रकारश्चोक्तः, निरुपाधिकदेवता परमात्मा, निरुपाधिकं
१३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६
हविरात्मा, जीवात्मनो जीवानां किं कुर्युः, निरुपाधिकमंत्रः
१३७ १३८ १३९ १४० १४१
प्रणवः, निरुपाधिकयागः- आत्मयागः, देवतामुद्दिश्य हवि-

१४२ १४३ १४४
स्त्यागो यागः, कुरुकाधिनाथः ॥३४॥

अर्थ- (अर्थपञ्चकम्) (अर्थपञ्चक (रहस्यत्रेण) रहस्य त्रयसे (कथम्) कैसे (प्रतिपाद्यते) प्रतिपादन किया जाता है, (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो, तो सुनो (श्रीमंत्रे) मूल मंत्रमें (नारायणपदेन) नारायण शब्दसे (परमात्मस्वरूपम्) परस्वरूप (उच्यते) कहा जाता है। और (प्रणवेन) ओंकार से (स्वस्वरूपम्) स्वस्वरूप कहा जाता है। तथा (चतुर्थ्या) नारायण शब्दके ऊपर जो चतुर्थी विभक्ति है, उससे (पुरुषार्थस्वरूपम्) पुरुषार्थस्वरूप कहा जाता है। और (नमसा) नमः पदसे (उपायस्वरूपम्) उपाय स्वरूप कहा जाता है। (च) और (नमःशब्दस्थषष्ठ्यन्तमकारेण) नमः शब्दमें स्थित जो "मः" यह षष्ठ्यन्तपद है, इससे (विरोधिस्वरूपम्) विरोधिस्वरूप (उच्यते) कहा जाता है। (इति) इस प्रकारसे मूलमंत्र के द्वारा अर्थपञ्चक कहा जाता है। और (चरमश्लोके) चरमश्लोक में (माम्) माम् तथा (अहम्) अहं (पदाभ्याम्) इन दोनों पदोंसे (परमात्मस्वरूपम्) परस्वरूप कहा जाता है। और (व्रज) व्रज (इति) इस (मध्यमेन) मध्यम क्रियापदसे (च) और (त्वा) त्वा, तथा (माशुचः) माशुचः (इति) इन (आभ्याम्) दोनों पदोंसे (स्वस्वरूपम्) स्वस्वरूप कहा जाता है। तथा (पापेभ्यः) पापेभ्यः और (मोक्षयिष्यामि) मोक्षयिष्यामि (इति) इन (अनेन) दोनों पदोंसे (अनिष्टनिवृत्तिपूर्वकम्) अनिष्ट निवृत्तिपूर्वक (पुरुषार्थस्वरूपम्) पुरुषार्थ स्वरूप कहा जाता है। तथा (सर्वपापेभ्यः) सर्वपापेभ्यः (इति) इस (अनेन) पदसे (विरोधिस्वरूपम्) विरोधिस्वरूप कहा जाता है। (च) और (एकम्) एकम् (पदेन) पदसे (उपायस्वरूपम्) उपायस्वरूप (उच्यते) कहा जाता है। इस प्रकारसे चरमश्लोकके द्वारा अर्थपञ्चक कहा जाता है। और (द्वये) द्वयमंत्र में (सविशेषणनारायणपदेन) विशेषणसहित नारायण शब्दसे अर्थात् श्रीमन्नारायण शब्दसे (परस्वरूपम्) परस्वरूप कहा जाता है। तथा (प्रपद्ये) प्रपद्ये (इति) इस (उत्तमेन) उत्तम पुरुषके एकवचन से (आत्मस्वरूपम्) स्वस्वरूप कहा जाता है। और (चतुर्थीनमोभ्याम्) नारायण शब्दके ऊपर जो चतुर्थी विभक्ति है, उससे तथा नमः पदसे (पुरुषार्थस्वरूपम्) पुरुषार्थ स्वरूप कहा जाता है। तथा (नमसि) नमः पद में (मकारेण) जो मकार है, उससे (विरोधिस्वरूपम्) विरोधिस्वरूप कहा जाता है। (च) और (चरणपदेन) चरण शब्दसे (उपायस्वरूपम्) उपायस्वरूप (उच्यते) कहा जाता है। इस प्रकारसे द्वयमंत्र द्वारा अर्थपञ्चक कहा जाता है। (स्वरूपम्) अपने स्वरूपको (श्रीमंत्रः) मूलमंत्र (वदति) कहता है। और (स्वरूपानुरूपोपायम्) अपने स्वरूपके अनुरूप

उपायको (चरमश्लोकः) चरमश्लोक, (विदधाति) विधान करता है, तथा (एतदर्थद्वये) स्वरूप, और स्वरूपानुरूपोपाय, इन दोनों अर्थोंमें (रुचिम्) रुचिको तथा (अनुसंदधानम्) अनुसंदधानको (द्वयम्) द्वयमंत्र (वदति) कहता है। (शास्त्ररुचिपरिगृहीतः) शास्त्रकी रुचिसे परिगृहीत (श्रीमंत्रः) मूलमंत्र है। तथा (शरण्यरुचिपरिगृहीतः) शरण्यकी रुचिसे परिगृहीत (चरमश्लोकः) चरमश्लोक है। और (आचार्यरुचिपरिगृहीतम्) आचार्यकी रुचिसे परिगृहीत (द्वयम्) द्वयमंत्र है। (आत्मयाथात्म्यप्रतिपादकपरः) आत्माका यथार्थ प्रतिपादकपरक (श्रीमंत्रः) मूलमंत्र है। तथा (उपाययाथात्म्यप्रतिपादनपरः) उपायका यथार्थप्रतिपादनपरक (चरमश्लोकः) चरमश्लोक है। और (उपेयाथात्म्यप्रतिपादनपरम्) उपेयका यथार्थप्रतिपादनपरक (द्वयम) द्वयमंत्र है। (प्राप्यप्रधानः) प्राप्यप्रधान (श्रीमंत्रः) मूलमंत्र है। तथा (प्रापकप्रधानः) प्रापकप्रधान (चरमश्लोकः) चरमश्लोक है। और (पुरुषकारप्रधानम्) पुरुषकार प्रधान (द्वयम्) द्वयमंत्र है। (आचार्येण) आचार्य से (अङ्गीकृतस्य) अंगीकृत (आचार्योपदिष्टानाम्) आचार्योंसे उपदेश दिये हुए (श्रीमंत्रार्थानाम्) मूलमंत्रके अर्थोंके (पदशः) प्रतिपदोंका (अनुसन्धानप्रकारः) अनुसंधानप्रकार (उच्यते) कहते हैं। (ईश्वरशेषभूतः) ईश्वरका शेषभूत तथा (निवृत्तान्यशेषत्वकः) अन्य शेषत्वसे निवृत्त और (विलक्षणनिरूपकः) विलक्षण पारतन्त्र्यनिरूपक तथा (तदीयपरतन्त्रः) भागवतपरतंत्र और (तत्संबन्धवान्) भागवतके संबन्धवाला तथा (किंकरस्वभावः) किंकर स्वभाव (इति) इस प्रकारसे (स्वात्मानम्) अपनी आत्माको (अनुसंदधीत) अनुसन्धान करे। (अनेन) इस मंत्रार्थसे (रक्षकत्वप्रतिसंबन्धिपूर्वकम्) रक्षकत्वप्रतिसंबन्धिपूर्वक (रक्ष्यत्वम्) रक्ष्यत्व, और (अन्यशेषत्वप्रतिसंबन्धिनिवृत्तिपूर्वक) अन्यशेषत्वप्रतिसंबन्धिनिवृत्तिपूर्वक (अनन्यार्हशेषत्वम्) अनन्यार्हशेषत्व तथा (अचेतनव्यावृत्तिपूर्वकम्) अचेतनव्यावृत्तिपूर्वक (चेतनवैलक्षण्यम्) चेतनकी विलक्षणता और (स्वातन्त्र्यनिवृत्तिपूर्वकम्) स्वतन्त्रताकी निवृत्तिपूर्वक (पारतन्त्र्यकाष्ठा) परतंत्रताकी अन्तिम सीमा तथा (सोपाधिकसंबन्धनिवृत्तिपूर्वकम्) उपाधि सहित संबन्धकी निवृत्तिपूर्वक (निरुपाधिकसम्बन्धः) उपाधि रहित संबन्ध (च) और (अपुरुषार्थनिवृत्तिपूर्वकम्) अपुरुषार्थनिवृत्तिपूर्वक (पुरुषार्थप्रकारः) पुरुषार्थ प्रकार (उक्तः) कहा गया है। (निरुपाधिकदेवता) उपाधि रहित देव (परमात्मा) है, (निरुपाधिकम्) उपाधि रहित (हविः) हविष्य (आत्मा) आत्मा है (जीवात्मनः) जीवात्मा सब (जीवानाम्) जीवोंका (किम्) क्या (कुर्य्युः) करेंगे। (निरुपाधिकमंत्रः) उपाधि रहित मंत्र (प्रणवः) ओंकार है। और (निरुपाधिकयागः) उपाधि रहित यज्ञ (आत्मयागः) आत्मयज्ञ है (देवताम्) देवताको (उद्दिश्य) उद्देश्यकर

(हविस्त्यागः) हविष्य के त्याग को (यागः) यज्ञ कहते हैं, (कुरुकाधिनाथः) ऐसी वार्ता कुरुकाधिनाथने कही है। इस चौंतीसवीं वार्तामें दो सौ चार पद हैं।

।।इति कुरुकाधिनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।३४।।

अब पट्टैल् कौट्टैयप्पिल्लै स्वामीजी की वार्ता कहते हैं कि-

❁ ❁ ❁

।।अथपट्टैल्कोट्टैयप्पिल्लैवार्ता।।

मू०-प्रथमपदे-ईश्वरस्य रक्षकत्वं सर्वशेषित्वं जगत्कारणत्वं श्रियः पतित्वं चोच्यते तत्र रक्षकत्वे प्रमाणम्, ''येन जातानि जीवन्ति'' ''कोह्येवान्यात् कः प्राण्यात्'' ''स एव पात्यत्ति च रक्षकः'' ''सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते'' इत्यादि। शेषित्वं प्रमाणम्-''पतिं विश्वस्य सर्वस्याधिपतिः'' ''स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितम्'' ''पतिं पतीनाम्'' इत्यादि। कारणत्वे प्रमाणम्- ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' ''स कारणं करणाधिपाधिपः'' ''अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः'' ''विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्'' इत्यादि। श्रियः पतित्वे प्रमाणम्-''श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'' ''विष्णुपत्नीं च धीमहि'' ''ययौ वक्षस्थलं हरेः'' ''श्रीसहायो जनार्दनः'' इत्यादि। एवमुत्तरत्रानुसंधेयम्, तादर्थ्यचतुर्थ्यशेषत्वमुक्तम्, द्वितीयपदेनात्मनः शेषत्वान्तरनिवृत्तिपूर्वकमनन्यार्हशेषत्वमीश्वरस्यान- न्यार्हशेषित्वं चोक्तम्, तृतीयपदेनात्मनो ज्ञानानन्दत्वं ज्ञानगुणकत्वं प्रकृतेः परत्वं नित्यत्वं चोक्तम्, मध्यमपदेन नमसाऽऽत्मनः साध-नान्तरनिवृत्तिः, शरीरवच्छेषत्वम् , तदीयपारतन्त्र्यम्, पारतन्त्र्यानुरूपमीश्वरोपायत्वं

चोक्तम्[११८ ११९], तादृशोपायत्वापेक्षितं[१२०] सर्वज्ञत्वं[१२१] सर्वशक्तित्व[१२२]-मवाप्तसमस्तकामत्वं[१२३] चोक्तम्[१२४ १२५], नारायणशब्दे[१२६] नारशब्देन[१२७] चेतनाचेतनसमूहा[१२८] उक्ताः[१२९], अयनपदेनेश्वरस्य[१३०] सर्वस्वा[१३१]-मित्वं[१३२] सर्वविधबन्धुत्वं[१३३] सर्वाधारत्वं[१३४] सर्वनियन्तृत्वं[१३५] चोक्तम्[१३६ १३७], अनन्तरचतुर्थ्या[१३८] सर्वदेशकालावस्थाप्रकारोचितवृत्त्यपेक्षो[१३९]-च्यते[१४०], "अकारार्थो[१४१] विष्णु[१४२] जगदुदयरक्षाप्रलयकृन्मका[१४३]-रार्थो[१४४] जीवस्तदुपकरणं[१४५ १४६] वैष्णवमिदम्[१४७]। उकारोऽनन्यार्ह[१४८] नियमयति[१४९] सम्बन्धमनयोस्त्रोयीसारस्त्र्यात्मा[१५०] प्रणव[१५१] इम[१५२]-मर्थं[१५३] समादिशत्[१५४]॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- मेषार्द्रसंभवं विष्णोर्दर्शनस्थापनोत्सुकम्।
तुण्डीरमण्डले शेषमूर्तिं रामानुजं भजे ॥४१॥

(प्रथमपदे) मूलमंत्रका जो पहला पद प्रणव है,उसमें स्थित जो प्रथम मात्रा अकार है, उसका अर्थ (ईश्वरस्य) ईश्वरका (रक्षकत्वम्) रक्षकत्व और (सर्वशेषित्वम्) सर्वशेषित्व तथा (जगत्कारणत्वम्) जगत्कारणत्व (च) और (श्रियः) लक्ष्मीजीका (पतित्वम्) पतित्व (उच्यते) कहा जाता है। (तत्र) उसमें, (रक्षकत्वे) रक्षकत्वमें (प्रमाणम्) प्रमाण ये अधोलिखित हैं (येन) जिस परमेश्वरसे (जातानि) उत्पन्न हुए जीव (जीवन्ति) पालन किये जाते हैं। (कः) कौन (हि) निश्चय करके (एव) ही (अन्यात्) सामान्य आनन्द देकर रक्षा करता है, और (कः) कौन (प्राण्यात्) विशेष आनन्द मोक्षको देकर रक्षा करता है। और (सः) वह (रक्षकः) रक्षक परमेश्वर (एव) निश्चय करके (पाति) पालन करता है (च) और (अत्ति) नाश करता है। तथा (सर्वसिद्धान्ते) सब सिद्धान्तमें (च) और (वेदान्तेषु) वेदान्तमें भी (गीयते) ईश्वर रक्षक कहा जाता है, (इति) ये (आदि) आदिक वाक्य है। (विश्वस्य) समस्त संसारके (पतिम्) रक्षकको। और (सर्वस्य) सबके (अधिपतिः) अधिपति हैं। तथा (स्वामित्वम्) स्वामित्व (ब्रह्मणि)ब्रह्ममें (स्थितम्) स्थित है। और (पतीनाम्) प्रजापतियोंके (पतिम्) रक्षकको (इति) ये (आदि) आदिक वाक्य हैं। और (कारणत्वे) ईश्वरके कारणत्वमें (प्रमाणम्) प्रमाण ये अधोलिखित हैं, (यतः) जिससे

(वा) निश्चय करके (इमानि) ये सब (भूतानि) जीव (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं। और (सः) वह (करणाधिपाधिपः) इन्द्रियोंके स्वामियोंके अधिपपरमेश्वर (कारणम्) कारण हैं। तथा (अहम्) मैं (कृत्स्नस्य) समस्त (जगतः) संसारके (प्रभवः) उत्पत्तिस्थान हूँ। और (विष्णोः) विष्णु भगवान्के (सकाशात्) साथसे (उद्भूतम्) उत्पन्न हुआ (जगत्) संसार है (इति) ये (आदि) आदिक वाक्य हैं। और (श्रियः) लक्ष्मीजीके (पतित्वे) पतित्वमें (प्रमाणम्) प्रमाण ये अधोलिखित हैं (श्रीः) श्री (च) और (लक्ष्मीः)लक्ष्मी (च) भी (ते) आपकी (पत्न्यौ) पत्नी हैं। और (विष्णुपत्नीम्) विष्णु की पत्नी को (च) भी (धीमही) हम सब ध्यान करते हैं। तथा (हरेः) नारायणके (वक्षस्थलम्) वक्षस्थलमें (ययौ) श्रीदेवी चली गयीं। और (श्रीसहायः) श्रीसहाय (जनार्दनः) जनार्दन भगवान् (इति) ये (आदि) आदिक वाक्य हैं। (एवम्) ऐसेही (उत्तरत्र) उत्तरमें भी (अनुसन्धेयम्) अनुसन्धान करने योग्य है (तादर्थ्यचतुर्थ्या) तादर्थ्य चतुर्थी विभक्तिसे अर्थात् प्रणवकी जो प्रथम मात्रा अकार है उसके ऊपर।। **तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या।।** इस वार्तिकसे तादर्थ्यमें चतुर्थी विभक्ति आकर ॥ **सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः।। व्या० अ० ७, पा० १, सू० ३९।।** इस सूत्रसे लुप्त हो गयी है। उस तादर्थ्य चतुर्थी विभक्तिसे (शेषत्वम्) शेषत्व (उक्तम्) कहा गया है। और (द्वितीयपदेन) प्रणवमें स्थित द्वितीय मात्रा उकारसे (आत्मनः) जीवात्माके (शेषत्वान्तरनिवृत्तिपूर्वकम्) अन्यके शेषत्वकी निवृत्ति पूर्वक (अनन्यार्हशेषत्वम्) अनन्यार्हशेषत्व (च) और (ईश्वरस्य) ईश्वर का (अनन्यार्हशेषित्वं) अनन्यार्हशेषित्व (उक्तम्) कहा गया है। और (ज्ञानानन्दत्वम्) ज्ञानानन्दत्व और (ज्ञानगुणकत्वम्) ज्ञानगुणकत्व तथा (प्रकृतेः) प्रकृतिसे (परत्वम्) परत्व (च) और (नित्यत्वम्) नित्यत्व (उक्तम्) कहा गया है। (मध्यमपदेन) मूलमंत्रके मध्यमपद (नमसा) नमः करके (आत्मनः) जीवात्माकी (साधनान्तरनिवृत्तिः) साधनान्तरनिवृत्ति और (शरीरवत्) देहके तुल्य (शेषत्वम्) शेषत्व तथा (तदीयपारतन्त्र्यम्) भागवंतपारतंत्र्य (च) और (पारतन्त्र्यानुरूपम्) पारतंत्र्यके अनुरूप (ईश्वरोपायत्वम्) ईश्वरोपायत्व (उक्तम्) कहा गया है (च) और (तादृशोपायत्वापेक्षितम्) तादृश ईश्वरोपायत्वसे अपेक्षित (सर्वज्ञत्वम्) सर्वज्ञत्व तथा (सर्वशक्तित्वम्) सर्वशक्तित्व और (अवाप्तसमस्तकामत्वम्) अवाप्तसमस्तकामत्व (उक्तम्) कहा गया है। और (नारायणशब्दे) मूलमंत्रमें स्थित नारायण शब्दमें (नारशब्देन) जो नारशब्द है, उस नार शब्दसे (चेतनाचेतनसमूहाः) चेतन और जड़के समूह (उक्ताः) कहे गये हैं।(च) और (अयनपदेन) अयन शब्दसे (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (सर्वस्वामित्वम्) सर्वस्वामित्व और (सर्वविधबन्धुत्वम्) सब प्रकारका बन्धुत्व तथा (सर्वाधारत्वम्) सर्वाधारत्व (सर्वनियन्तृत्वम्) और सर्वनियन्तृत्व (उक्तम्) कहा गया है और (अनन्तरचतुर्थ्या) नारायण शब्दके ऊपर ।नमः

स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च।। व्या० अ०२, पा० ३, सू० १६।। इस सूत्रसे आई हुई चतुर्थी विभक्तिसे (सर्वदेशकालावस्थाप्रकारोचितवृत्त्यपेक्षा) सब देश सब काल सब अवस्था और सब प्रकारकी उचित वृत्तिकी अपेक्षा (उच्यते) कही जाती है। (अकारार्थः) प्रणवमें स्थित जो प्रथम मात्रा अकार है, उसका अर्थ (जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्) समस्त संसारकी उत्पत्ति तथा पालन और संहार करनेवाला (विष्णुः) व्यापक विष्णु है, तथा (मकारार्थः) प्रणवमें स्थित जो तृतीय मात्रा मकार है, उसका अर्थ (जीवः) जीव है, जो कि (तदुपकरणम्) विष्णुका उपकरण है (इदम्) ये सब (वैष्णवम्) वैष्णव हैं, और जीव, इन दोनाके (अनन्यार्हम्) अनन्यार्ह (संबन्धम्) संबन्धको (नियमयति) नियमन करता है (त्रयीसारः) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदके साररूप (त्र्यात्मा) अकार तथा उकार और मकार शरीरवाला (प्रणवः) ओंकार (इमम्) इस (अर्थम्) अर्थको (समदिशत्) अच्छे प्रकारसे कहता है। इस वार्तामें बहुतसे प्रतीक हैं, इससे कुछ प्रतीकोंके समस्त श्रुति और श्लोकों को लिखकर यहाँपर अर्थ मैं लिखता हूँ।।

।। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।। तैत्तिरीय० भृगुवल्ली०३, अनुवा०१।।

जिससे ये संपूर्ण जीव उत्पन्न होते हैं, तथा जो समस्त जीवोंकी रक्षा और संहार करता है, तथा जिससे मोक्षको प्राप्त करते हैं उसको जाननेकी इच्छा करो, वही ब्रह्म है।।१।। **कोह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।। तैत्तीरी० आनन्दव० २, अनुवा० ७।।** कौन निश्चय करके सामान्य आनन्दको देता, और कौन विशेष आनन्द मोक्षको देता, यदि यह आकाश ब्रह्म आनन्दवाला नहीं होता ।।७।। **परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः। विष्णुर्हि सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेषु च गीयते।।** परमात्मा, सबके आधार सर्वस्वामी व्यापक रक्षक हैं, निश्चय करके विष्णु सब सिद्धान्तमें और वेदान्तों में कहे जाते हैं।

।।अर्चावतारः सर्वेषां बान्धवो भक्तवत्सलः। सत्त्वमात्मनि संजातं स्वामित्वं ब्रह्मणि स्थितम्।।

भक्तवत्सल अर्चावतार भगवान् सब जीवोंके बान्धव हैं, जीवपना आत्मामें है, और स्वामित्व ब्रह्ममें स्थित है।।

।। तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।। श्वेताश्वतरो० अ० ६, श्रु० ७।।

परमैश्वर्यवालोंमें उन श्रेष्ठ महान् ईश्वरको और देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ उन दैवतको

और प्रजापतियोंमें सबसे श्रेष्ठ पतिको तथा सबसे परे सबके स्तुति करने योग्य भुवनके स्वामी उन नारायणदेवको हम सब जानें।७।।

॥ न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्। स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥ श्वेताश्वत० अ० ६, श्रु० ९॥

लोकमें उन नारायणदेवका कोई अधिपति नहीं है, और उनका कोई नियन्ता नहीं है, तथा उनका कोई अनुमितिका साधन चिह्न नहीं है, और वे नारायण सबके कारण हैं, तथा इन्द्रियोंके स्वामी जो देवता उन सबोंका मालिक और उन परपुरुषको कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं है, तथा न कोई उनका स्वामी है।।९।।

॥ एतोद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय। अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ भगवद्गी० अ० ७, श्लो० ६॥

हे अर्जुन! संसारमें जो कुछ पदार्थ है, उसका ये दोनों प्रकृति ही कारण हैं, ऐसा तुम समझो, और मैं ही समस्त संसारका उत्पत्तिस्थान तथा प्रलय स्थान हूँ।।६।।

॥ विष्णोः सकाशादुद्भूतंजगत्सर्वं चराचरम्। तस्मिंश्च प्रलयं याति पुनरेव युगक्षये॥ यह समग्र चर और अचर संसार, उत्पत्ति समयमें विष्णु भगवान्‌से उत्पन्न होता है, और प्रलय समयमें फिर उसी विष्णु भगवान्‌में लीन हो जाता है।

॥श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुम्म इषाण सर्वलोकम्म इषाण॥ यजु० अ० २१, मं० २२॥

श्री और लक्ष्मी आपकी पत्नी हैं और दिन तथा रात्रि आपके पार्श्व हैं, और नक्षत्र, रूप हैं, तथा अश्विनीकुमार आपके व्यात्त है, और मेरे लिये विप्रकृष्ट वस्तुकी इच्छा करते हुए इच्छा कीजिये, तथा सब लोकको मेरे लिये इच्छा कीजिये।।२२।।

॥महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णुपत्नीं च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥ लक्ष्मीसूक्त० मं० ७॥ महालक्ष्मीको हम सब जानते हैं, और विष्णुकी पत्नीको हम सब ध्यान करते हैं, वह लक्ष्मीदेवी हम सबोंके मनको अच्छे मार्गमें लगावें। **वैकुण्ठे तु परे लोके श्रीसहायो जनार्दनः। उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः॥** परलोक वैकुण्ठमें श्रीदेवी युक्त जनार्दन भगवान्, भूमि और नीला इन दो देवियोंसे सेवित हैं। और ॥ अकारार्थो विष्णुः॥ यह श्लोक पराशरभट्टाचार्यजीकी बनाई हुई "अष्टश्लोकी" का पहला है॥ कमिति।

मू०–श्रीशब्देन लक्ष्मीः- ईश्वरतुल्या चेतनतुल्येति च वदन्तो निरसनीयाः, मतुपा मिथुनमाश्रयणीयं न भवतीति वादिनो निरस्यन्ते, नारायणपदेन निर्गुणवादिनो निरस्यन्ते, चरणपदेन निर्विग्रहवादिनो निरस्यन्ते, शरणपदेनोपायान्तरनिष्ठा व्यावर्त्यन्ते, प्रपद्ये पदेनोपायस्वीकारे, उपायत्ववादिनो निरस्यन्ते, श्रीमत्पदेन प्राप्यं मिथुनं न भवतीति वादिनो निरस्यन्ते, नारायणपदेन त्रिमूर्तिसाम्यवादिनो निरस्यन्ते, चतुर्थ्या कैंकर्यमपुरुषार्थ इति वादिनो निरस्यन्ते, नमः पदेन कैकर्ये स्वार्थत्ववादिनो निरस्यन्ते, इति पट्टैल्कौट्टैयप्पिल्लैवार्ता ॥३५॥

अर्थ- (श्रीशब्देन) द्वयमंत्रके प्रथमपद में स्थित श्रीशब्दसे (लक्ष्मीः) लक्ष्मीजी (ईश्वरतुल्या) परमेश्वरके तुल्य हैं (च) और (चेतनतुल्या) चेतनके तुल्य हैं (इति) ऐसे (वदन्तः) कहनेवाले (निरसनीयाः) निरसन करने योग्य हैं, और द्वयमंत्रके प्रथम पदमें स्थित (मतुपा) मतुप् प्रत्ययसे (मिथुनम्) लक्ष्मी और नारायण ये दोनों (आश्रयणीयम्) आश्रयण करने योग्य (न) नहीं (भवति) होते हैं (इति) ऐसा (वादिनः) कहनेवाले (निरस्यन्ते) खण्डन किये जाते हैं। तथा (नारायणपदेन) द्वयमंत्रके प्रथमपदमें स्थित नारायण शब्दसे (निर्गुणवादिनः) ब्रह्म, समस्त गुणोंसे रहित है, ऐसा कहनेवाले निर्गुणवादी (निरस्यन्ते) निरसन किये जाते हैं। और (चरणपदेन) द्वयमंत्र के प्रथमपदमें स्थित चरण शब्दसे (निर्विग्रहवादिनः) परमात्माका विग्रह नहीं है, ऐसे कहनेवाले निर्विग्रहवादी (निरस्यन्ते) खण्डन किये जाते हैं। तथा (शरणपदेन) द्वयमंत्रके द्वितीयपदमें स्थित शरणशब्दसे (उपायन्तरनिष्ठाः)भगवत्से अन्य उपायोंमें निष्ठपुरुष (व्यावर्त्यन्ते) हटाये जाते हैं। और (प्रपद्ये) द्वयमंत्रका जो तीसरा पद "प्रपद्ये" है उस (पदेन) पदसे (उपायस्वीकारे) उपाय स्वीकारमें (उपायत्ववादिनः) उपायत्वके कहनेवाले (निरस्यन्ते) खण्डन किये जाते हैं। और (श्रीमत्पदेन) द्वयमंत्रके चौथे पदमें स्थित श्रीमत् शब्दसे (प्राप्यम्) प्राप्य (मिथुनम्) लक्ष्मी और नारायण ये दोनों (न) नहीं (भवति) होते हैं (इति) ऐसे (वादिनः) कहनेवाले (निरस्यन्ते) निरसन किये जाते हैं तथा (नारायणपदेन) द्वयमंत्रके पाँचवे पदमें स्थित नारायण शब्दसे

(त्रिमूर्तिसाम्यवादिनः) ब्रह्मा तथा विष्णु और शिव ये तीनों मूर्ति बराबर हैं, ऐसे कहनेवाले (निरस्यन्ते) खण्डन किये जाते हैं। और (चतुर्थ्या) द्वयमंत्रके पाँचवे पदमें स्थित नारायण शब्दके ऊपर जो चतुर्थी विभक्ति है, उससे (कैंकर्यम्) भगवत्कैंकर्य (अपुरुषार्थः) पुरुषार्थ नहीं है (इति) ऐसे (वादिनः) कहनेवाले (निरस्यन्ते) खण्डन किये जाते हैं। और (नमः) द्वयमंत्रका जो छठवाँ पद "नमः" है उस (पदेन) पदसे (कैंकर्ये) कैंकर्यमें (स्वार्थत्ववादिनः) स्वार्थत्वके कहनेवाले (निरस्यन्ते) निरसन किये जाते हैं (इति) यह (पट्टैल्कौट्टैयप्पिल्लैवार्ता)पट्टैल्कौट्टैयप्पिल्लैस्वामीजी की वार्ता है। इस पैंतीसवीं वार्तामें दो सौ तेरह पद हैं। इति पट्टैल्कोट्टैयप्पिल्लैवार्ताव्याखानम्॥३५॥



अब कूरेशस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि।

॥ अथ कूरेशोक्तावार्ता ॥

मू०–[१]पूर्वखण्डेना[२]नन्यगति[३]त्वमु[४]च्यते उत्तरखण्डेना-[५]नन्यप्रयोजन[६]त्वमुच्यते, [७]पूर्वखण्डो भ[८]गवत्कृपावर्द्धकः, [९]उत्तर-[१०]खण्डो भगवत्कृपावर्द्धकः, [११]अनिष्टनिवृत्तिरि[१२]ष्टप्राप्तिश्चो[१३]भयो[१४]स्तु[१५]ल्येव, [१६]पूर्वखण्डोऽचिद्व्यावृत्ति[१७]रुत्तरखण्ड [१८]ईश्वरव्या[१९]वृत्तिः, [२०]अहं [२१]दास [२२]इत्य[२३]नुसंदधाना [२४]अस्मत्पूर्वाचार्याः रहस्यत्रये[२५]ऽपि [२६]स्वोपायत्वमध्यवस्यन्तो[२७]ऽप्याचार्य[२८]रुचिपरिगृहीतत्वात् [२९]द्वये-[३०]ऽत्यन्तमादरं [३१]कुर्वन्ति, [३२]अस्य [३३]दौर्लभ्यं [३४]माहात्म्यं [३५]वैलक्षण्यं [३६]च दृष्ट्वा [३७]यथा [३८]तथा [३९]न गृह्णन्ति-[४०]अस्मत्पूर्वाचार्या [४१]इत्य-[४२]धिकारिदौर्लभ्येनास्य [४३]दौर्लभ्यमुक्तं [४४]कर्मज्ञानभक्तिनिवृत्ति-[४५]पूर्वकत्वादस्य [४६]माहात्म्यमुक्तं [४७]रहस्यत्रयव्यावृत्तेर [४८]स्य वैलक्षण्य-[४९]मुक्तं [५०]द्वयार्थ [५१]उपायान्तराणि [५२]न [५३]सहते, [५४]शब्दः [५५]साधनान्त-[५६]राणि [५७]न [५८]सहते, [५९]प्रपत्तिः [६०]सकृदिति [६१]कूरेशः ॥३६॥

॥कूरेशस्तुतिः॥

अर्थ- श्रीवत्सचिह्नमिश्रेभ्यो नम उक्तिमधीमहि।

यदुक्तयस्त्रयीकण्ठे यान्ति मंगलसूत्रताम्।।४२।।

(पूर्वखण्डेन) द्वयमन्त्रके "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये" इस पूर्वार्धभागसे (अनन्यगतित्वम्) अनन्यगतित्व (उच्यते) कहा जाता है। और (उत्तरखण्डेन) द्वयमन्त्रके "श्रीमते नारायणाय नमः" इस उतरार्धभागसे (अनन्यप्रयोजनत्वम्) अनन्यप्रयोजनत्व (उच्यते) कहा जाता है। (पूर्वखण्डः) द्वयमंत्रका पूर्वार्धभाग (भगवत्कृपावर्द्धकः) भगवत् की कृपाको बढ़ानेवाला है और (उत्तरखण्डः) द्वयमंत्रका उत्तरार्धभाग (भगवत्कृपावर्द्धकः) भगवत्कीप्रीतिको बढ़ानेवाला है। (अनिष्टनिवृत्तिः) अनिष्टवस्तु की निवृत्ति (च) और (इष्टप्राप्तिः) इष्ट वस्तुकी प्राप्ति (उभयोः) कैंकर्य करने में या स्वीकार करनेमें इन दोनोंमें (तुल्या) तुल्य (इव) के समान है। (पूर्वखण्डः) द्वयमंत्रका पूर्वार्ध भाग (अचिद्व्यावृत्तिः) जड़ तत्त्वसे व्यावृत्त करता है। और (उत्तरखण्डः) द्वयमंत्रका उत्तरार्ध भाग (ईश्वरव्यावृत्तिः) ईश्वर तत्त्वसे व्यावृत्त करता है। (अहं) मैं (दासः) भगवान्का दास हूँ (इति) ऐसा (अनुसंदधानाः) अनुसंधान करनेवाले (अस्मत्पूर्वाचार्याः) हम सबोंके पूर्वाचार्य नाथ मुनिप्रभृति (रहस्यत्रये) मूलमंत्र तथा द्वयमन्त्र और चरमश्लोक इन तीन रहस्योंमें (अपि) भी (स्वोपायत्वम्) अपनी आत्माकी उपायताको (अध्यवस्यन्तः) अध्यवसाय करते हुए (अपि) भी (आचार्यरुचिपरिगृहीतत्वात्) आचार्योंकी रुचि करके परिगृहीत होनेसे (द्वये) द्वय मन्त्रमें (अत्यन्तम्) अत्यन्त (आदरम्) आदर (कुर्वन्ति) करते हैं। (अस्य) इस द्वयमन्त्रके (दौर्लभ्यम्) दौर्लभ्य (महात्म्यम्) माहात्म्यको (च) और (वैलक्षण्यम्) विलक्षणताको (दृष्ट्वा) देखकर (यथा) जैसे (तथा) वैसे (न) नहीं (गृह्णन्ति) ग्रहण करते हैं। (अस्मत्पूर्वाचार्याः) हम सबोंके पूर्वाचार्य सब (इति) इस प्रकारसे (अधिकारिदौर्लभ्येन) द्वयमन्त्रके अधिकारीके दौर्लभ्य होनेसे (अस्य) इस द्वयमन्त्रका (दौर्लभ्यम्) दौर्लभ्य (उक्तम्) कहा गया है। (कर्मज्ञानभक्तिनिवृत्तिपूर्वकत्वात्) कर्म तथा ज्ञान और भक्तिकी निवृत्ति पूर्वक होनेसे (अस्य) इस द्वयमन्त्रका (माहात्म्यम्) माहात्म्य (उक्तम्) कहा गया है। और (रहस्यत्रयव्यावृत्तेः) रहस्यत्रयमें व्यावृत्ति होनेसे (अस्य) इस द्वयमन्त्रका (वैलक्षण्यम्) वैलक्षण्य (उक्तम्) कहा गया है। (द्वयार्थः) द्वयमन्त्रका अर्थ (उपायान्तराणि) भगवत्से अन्य उपायोंको (न) नहीं (सहते) सहता है। और (शब्दः) द्वयमन्त्रका शब्द (साधानान्तराणि) मन्त्रान्तरोंको (न) नहीं (सहते) सहता है (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (सकृत्) एक बार होती है (इति) ऐसा (कूरेशः) कूरेश स्वामीजीने कहा है। इस वार्तामें ईकहत्तर पद हैं। इति कूरेशोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।३६।।

अब दाशरथिस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०-[१]सदेति [२]दाशरथिः [३]॥३७॥

॥ दाशरथिस्तुतिः ॥

अर्थ- तेनाहूतो यतीन्द्रेण धीमान् दाशरथिस्तदा।
लक्ष्मणार्यमुपागम्य विनीतः प्राञ्जलिस्थितः॥४३॥

(सदा) भगवत्की प्रपत्ति सर्वदा करनी चाहिये (इति) ऐसा (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजीने कहा है। इस वार्तामें तीन पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ता व्याख्यानम्॥३७॥

अब पराशरभट्टार्यकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥अथ पराशभट्टार्योक्ता वार्ता॥

मू०-[१]सकृदेव[२][३]इति भट्टार्यः [४]॥३८॥

॥ पराशरभट्टार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- कालक्षेपार्थसिध्यर्थं चकार ग्रन्थपञ्चकम्।
सहस्रनामभाष्यं च विष्णुपूजाक्रमं महान्॥४४॥
अष्टश्लोकीं तथा श्रीशस्तवं चानुत्तमं महान्।
महान्तं रत्नकोशाख्यं स्तवं श्रीगुणपूर्वकम्॥४५॥

(सकृत्) भगवत्की प्रपत्ति एकबार (एव) निश्चय करके करनी चाहिये, (इति) ऐसा (भट्टार्यः) पराशरभट्टाचार्यस्वामीजी ने कहा है। इस वार्तामें चार पद हैं। इति पराशरभट्टार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानाम्॥३८॥

अब वेलवेट्टिनारायणपिल्लैस्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ वेलवेट्टिनारायणपिल्लैवार्ता ॥

मू०-[१]भक्तेः [२]प्रपत्तेर्वै [३]लक्षण्यमधिकृताधिकारसर्वा-

धिकारत्वाभ्यां[५] साध्यसिद्धत्वाभ्यां[६] कर्मावसानशरीरावसान-
फलकत्वात्-[७] अन्तिमस्मृतेरपि[८] तदैकनिष्ठत्वाच्च[९]-आचार्य[१०]
पुरस्कृत्य[११] भगवच्चरणयोः[१२] कृतायां[१३] प्रपत्तौ[१४] पूर्वखण्डार्थस्य[१५]
फलान्तरसाधारणत्वात्-[१६]अयं[१७] मामुपायत्वेन[१८] स्वीकृत्य[१९] प्रयो-
जनान्तराण्यादाय[२०] गच्छति,[२१] किमिति-[२२]ईश्वरहृदयं[२३] समुद्र-
वत्[२४] क्षुभ्यति,[२५] उत्तरखण्डेन[२६] त्वामेवोपायतया[२७] स्वीकृत्य[२८] प्रयो-
जनान्तराण्यादाय[२९] न[३०] गच्छामीति-[३१]ईश्वरो[३२] "मा[३३] शुचः"[३४]
इत्युक्त्वा[३५] चेतनाश्रुजलं[३६] यथा[३७] मार्जयति,[३८] तथा[३९] चेतनोऽपि[४०]
मा[४१] शुच[४२] इति[४३] वदति,[४४] प्रकृतिर्विशेषणं[४५] विकृतिरनुभवः,[४६] एत-
द्विकृतिर्वृत्तिविशेषः,[४७] प्रकृत्यन्तरं[४८] विकृत्यन्तरं[४९] चात्मनाशः,[५०]
वरुणविषये[५१] स्वामिनो[५२] कृता[५३] प्रपत्तिर्न[५४] फलिता,[५५] शरणागते-
र्वैलक्षण्यज्ञः[५६] शरणागतो[५७] न[५८] भवतीति[५९] स्वामिनो[६०] वरुणविषये
शरणागत्यनुष्ठानसमये[६१] प्राङ्[६२] मुखत्वादि[६३] नियमयुक्तत्वात्-
शरणागतानां[६४] सर्वेषां[६५] नियमोऽपेक्षितः[६६] किमिति[६७] वेलवेट्टिना-
रायणपिल्लै[६८] कलिवैरिदासमपृच्छत्[६९] ॥३९॥[७०]

॥ यतिराजस्तुतिः ॥

अर्थ- शालिवाहशकाब्दानां तत्राष्टत्रिंशदुत्तरे।
गते नवशते श्रीमान्यतिराजोऽजनिक्षितौ॥४६॥

(भक्तेः) भक्तिके और (प्रपत्तेः) प्रपत्तिके (वैलक्षण्यम्) वैलक्षण्य (अधिकृताधिकार-सर्वाधिकारत्वाभ्याम्) अधिकृत अधिकार और सर्वाधिकार द्वारा (साध्यसिद्धित्वाभ्याम्) साध्य और सिद्धि करके (कर्मावसानशरीरावसानफलकत्वात्) कर्मावसान तथा शरीरावसानके फलक होनेसे (च) और (अन्तिमस्मृतेः) अन्तिमस्मरणके (अपि) भी, (तदा) तब (एकनिष्ठत्वात्) एकमें निष्ठा होनेसे (आचार्यम्) आचार्यको (पुरस्कृत्य) आगे कर (भगवच्चरणयोः) भगवान् के दोनों चरणारविन्दमें (प्रपत्तौ) प्रपत्ति

(कृतायाम्) करनेपर (पूर्वखण्डार्थस्य) द्वयमंत्रके पूर्वार्ध भागके अर्थको (फलान्तरसाधारणत्वात्) फलान्तर के साधारण होनेसे (अयम्) यह चेतन (माम्) मुझको (उपायत्वेन) उपायतया (स्वीकृत्य) स्वीकार कर (प्रयोजनान्तराणि) प्रयोजनान्तरोंको (आदाय) लेकर (गच्छति) जाता है (किम्) क्या (इति) इस हेतुसे (ईश्वरहृदयम्) परमात्माका हृदय (समुद्रवत्) समुद्रके समान (क्षुभ्यति) क्षोभको प्राप्त करता है। और (उत्तरखण्डेन) द्वयमंत्रके उत्तरार्धभाग द्वारा (त्वाम्) तुझको (एव) निश्चय करके (उपायतया) उपायत्वेन (स्वीकृत्य) स्वीकारकर (प्रयोजनान्तराणि) प्रयोजनान्तरोंको (आदाय) लेकर (न) नहीं (गच्छामि) जाता हूँ, (इति) इस हेतुसे (ईश्वरः) परमात्मा (मा शुचः) भगवद्गीताके अठारहवें अध्यायके छियासठवें श्लोकमें शोक मत करो (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (चेतनाश्रुजलम्) चेतनके नेत्रके जलको (यथा) जैसे (मार्जयति) मार्जन करता है। (तथा) वैसे (चेतनः) चेतन (अपि) भी (माशुचः) शोकमत करो, (इति) ऐसा (वदति) कहता है। (प्रकृतिः) शेषत्वस्वरूपप्रकृति (विशेषणम्) विशेषण है। और (विकृतिः) शेषत्वकी कैंकर्यरूपविकृति (अनुभवः) अनुभव है। तथा (एतद्विकृतिः) इस अनुभवकी विकृति (वृत्तिविशेषः) वृत्ति विशेष है, (प्रकृत्यन्तरम्) अन्यशेषत्व (च) और (विकृत्यन्तरम्) अन्यानुभव अथवा कैंकर्यान्तर (आत्मनाशः) अपने स्वरूपका नाश करनेवाला है। (वरुणविषये) वरुणदेवके विषयमें (स्वामिना) लंकामें जानेके समय समुद्रके तट पर श्रीरामजीसे (कृता) की हुई (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (न) नहीं (फलिता) फली भूत हुई है (शरणागतेः) शरणागतिकी (वैलक्षण्यज्ञः) विलक्षणता को जाननेवाला (शरणागतः) शरणगत (न) नहीं (भवति) होता है (इति) ऐसा है। (स्वामिनः) श्रीरामजीके (वरुणविषये) वरुणदेवके विषयमें (शरणागत्यनुष्ठानसमये) शरणागति करनेके समयमें (प्राङ्) पूर्व (मुखत्वादि) मुख आदि शब्दसे कुशा बिछाना तथा हाथ जोड़ना आदिक (नियम मुक्तत्वात्) नियमसे युक्त होनेसे (शरणागतानाम्) शरणमें आये हुए (सर्वेषाम्) सब जीवोंके (नियमः) पूर्वोक्तनियम (अपेक्षितः) अपेक्षित है, (किम्) क्या (इति) ऐसा (वेलवेट्टिनारायणपिल्लै) वेलवेट्टिनारायणपिल्लै स्वामीजीने (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदासस्वामीजीसे (अपृच्छत्) पूछा। ''कलिवैरिदासम्'' यहाँ पर **॥अकथितं च॥ व्या० अ० १, पा० ४, सू० ५१॥** इस सूत्रसे कर्म संज्ञा हुई। इस वार्तामें यह शङ्का होती है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीरामजी ने समुद्रके तट पर कुशों को बिछाकर पूर्वाभिमुख अञ्जलि करके वरुणदेवकी शरणागति की है। इस शंका का समाधान वाल्मीकीयरामायण में लिखा है कि॥ **॥समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति॥ वाल्मीकि रा० युद्धकां० ६, सर्ग० १९, श्लो० ३०॥** राघव राजा समुद्रस्थ वरुणदेवकी शरणगति करें॥३०॥ इस प्रकार विभीषणके कहने पर और सुग्रीवके अनमोदन करनेपर॥

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः। संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः॥ वा० यु० ६, स० १९, श्लो० ४१॥

ऐसे कहे हुए श्रीरामजी समुद्रके तीर पर कुशा बिछाकर जैसे अग्नि, यज्ञ वेदीमें स्थित हो वैसे स्थित हुए।।४१।। और भी लिखा है कि-

॥ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः। अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः॥ वा० यु० ६, स० २१, श्लो० १॥

इसके बाद श्रीरामजीने समुद्रके तट पर कुशोंको बिछाकर अञ्जलि पूरब मुख करके शयन किया।।१।। इससे साबित हो गया कि पूर्वोक्त नियमोंके साथ श्रीरामजीने शरणागति की है। और भी वहाँ ही लिखा है कि-

॥स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः। उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम्॥ वा० यु० ६, स० २१, श्लो० ११॥ न च दर्शयते रूपं मन्दो रामस्य सागरः। प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः॥१२॥

समुद्रके तट पर नीतिज्ञ धर्मवत्सल श्रीरामजीने सरित्पति समुद्रकी उपासना की, और तीन रात्रि पूर्वोक्त नियम से वहाँ पर निवास किया।।११।। अच्छे प्रकारसे श्रीरामजीने समुद्रकी पूजा की, तौभी वह मन्दसागर अपने रूपको श्रीरामजीके लिये नहीं दिखाया।।१२।। इससे साबित होता है, कि वरुणके विषयमें श्रीरामजी की की हुई शरणागति नहीं फली है। इस वार्तामें नब्बे पद हैं। इति वेलवेट्टिनारायणपिल्लैवार्ताव्याख्यानम्।।३९।।

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता कहते हैं कि-

॥अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता॥

मू०-[१]स [२]च [३]शरणागतिर्नि[४]यममपे[५]क्षत [६]इति [७]तथा [८]नानु[९]ष्ठितवान्, [१०]किन्तु-[११]इक्ष्वाकुवंश्याः [१२]किंचि[१३]दनुतिष्ठन्ति [१४]चेत्, [१५]सनियमा [१६]एवानुतिष्ठन्तीति [१७][१८]वासनया [१९]तथाऽ[२०]करो[२१]दित्यवो[२२]चत्, [२३]श्रीभरतेन [२४]भगवद्विषये [२५]कृता [२६]प्रपत्तिः [२७]कुतो [२८]न [२९]फलि[३०]तेति [३१]चेत्, [३२]फलि[३३]तेति [३४]कलिवैरिदासोऽ[३५]वोचत्, [३६]तथाहि-[३७]अयं [३८]स्वाभि-[३९]मततया [४०]भरतस्य [४१]राज्य[४२]मिति [४३]स्वरूपविरुद्धं [४४]स्वातन्त्र्यनिवृत्तिं

४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२
निश्चित्य शरणमगच्छत्, स्वाम्यपि पादुके दत्वा तत्परत-
५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९
न्त्रस्तिष्ठेत्यवदत्, तदा तादृशस्वातन्त्र्यभीतिर्निवृत्ता, तत्र
६० ६१ ६१ ६३ ६४ ६५ ६६
प्रमाणम् ''आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा'' इति
६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५
पुनरयोध्यां प्रति गन्तव्यमिति भरतस्य प्रार्थितं कुतो ना-
७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३
करोदिति चेत्, ''ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम्''
८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९
इति शरणागतानामृषीणां रक्षणार्थमेतत्प्रार्थितमकृत्वा
९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६
गतवान्, तत्र दृष्टान्तः-अतिथीनामागतानां तृप्त्यर्थं गृहे
९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५
भार्यायाः स्वस्य च पक्वमन्नादिकं दत्वा भार्यया सह क्षुधि-
१०६ १०७ १०८ १०९ ११०
तस्तिष्ठति, तस्य स्वविश्लेषापेक्षया स्वस्य भरतविश्लेषस्य
१११ ११२ ११३ ११४ ११५
दुःसहत्वेऽपि श्रीदण्डकारण्यवासिनामृषीणां तृप्त्यर्थं
११६
गतवान् ॥४०॥

॥ कलिवैरिदासस्तुतिः ॥

अर्थ- सन्तुष्टे वारणाद्रीशः परिक्रम्य प्रणम्य तम्।
लोकार्य इति नामास्मै प्रददौ कलिवैरिणे॥४७॥

(च) और (सः) उन कलिवैरिस्वामीजीने (शरणागतिः) शरणागति (नियमम्) नियमकी (अपेक्षते) अपेक्षा करती है (इति) इस कारणसे (तथा) वैसे श्रीरामजीसे समुद्रके तटपर कुशा बिछाकर पूर्वाभिमुख अञ्जलि जोड़कर (अनुष्ठितवान्) शरणागतिके अनुष्ठान (न) नहीं किये गये हैं, (किन्तु) लेकिन (इक्ष्वाकुवंश्याः) इक्ष्वाकुके वंशमें होनेवाले (किंचित्) कुछ भी (चेत्) यदि (अनुतिष्ठन्ति) अनुष्ठान करते हैं, तो आचारप्रधान होनेसे (सनियमाः) नियमके साथ (एव) निश्चय करके (अनुतिष्ठन्ति) अनुष्ठान करते हैं (इति)इस (वासनया) स्वकुलोचितवासना द्वारा (तथा) श्रीरामजी ने वैसे कुशा बिछाकर और पूर्वाभिमुख अञ्जलि जोड़कर (अकरोत्) शरणागति की है (इतिं) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इससे साबित हो गया कि, शरणागति में किसी नियम की अपेक्षा नहीं है। (श्रीभरतेन) श्रीभरतजीसे (भगवद्विषये) भगवान् श्रीरामजीके विषयमें (कृता) की हुई (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (कुतः) किस कारणसे (न) नहीं (फलिता) फली है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो, सुनो (फलिता) श्रीभरतजीकी की हुई

प्रपत्ति फली है (इति) ऐसा (कलिवैरिदास:) कलिवैरिदासस्वामीजीने (अवोचत्) कहा है (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (अयम्) यह (स्वाभिमततया) स्वाभिमत होनेसे (भरतस्य) श्रीभरतजीका (राज्यम्) राज्य हो (इति) यह (स्वरूपविरुद्धम्) स्वस्वरूपसे विरुद्ध है, इससे (स्वातन्त्र्यनिवृत्तिम्) स्वतन्त्रता की निवृत्तिको (निश्चित्य) निश्चय कर (शरणम्) श्रीरामजीकी शरणमें (अगच्छत्) श्री भरतजी गये। और (स्वामी) श्रीरामजीने (अपि) भी (पादुके) अपने दोनों खड़ाऊँको (दत्वा) देकर (तत्परतन्त्र:) खड़ाऊँके परतन्त्र (तिष्ठ) रहना (इति) ऐसा (अवदत्) कहा। (तदा) तब। (तादृशस्वातन्त्र्यभीति:) तादृश स्वतन्त्रता का भय (निवृत्ता) निवृत्त हो गया। (तत्र) उस विषयमें (प्रमाणम्) प्रमाण यह है कि (तदा) तब (हृष्ट:) संतुष्ट श्रीभरतजी (शत्रुघ्नसहित:) श्रीशत्रुघ्नजीके साथ (रथम्) रथपर (आरुरोह) चढ़ गये (इति) यह है। (पुन:) फिर (अयोध्याम्) अयोध्यापुरीके (प्रति) प्रति (गन्तव्यम्) चलना चाहिये (इति) इस प्रकारकी (भरतस्य) श्रीभरतजीकी (प्रार्थितम्) की हुई प्रार्थना (कुत:) किस कारणसे श्रीरामजीने (न) नहीं (अकरोत्) की, (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो, तो सुनो (सर्वे) सब (ऋषय:) दण्डकारण्य निवासी ऋषि (असुररक्षसाम्) असुर और राक्षसोंके (वधाय) वधके लिये (अभ्यागमन्) चारो तरफसे श्रीरामजीके पास आये (इति) यह है। (शरणागतनाम्) शरणमें आये हुये (ऋषीणाम्) ऋषियोंकी (रक्षार्थम्) रक्षाके लिये (एतत्प्रार्थितम्) श्रीभरतजीकी प्रार्थना की हुई (अकृत्वा) नहीं करके (गतवान्) श्रीरामजी वनमें चले गये। (तत्र) उस विषयमें (दृष्टान्त:) दृष्टान्त है, कि (आगतानाम्) आये हुए (अतिथीनाम्) अतिथियोंकी (तृप्त्यर्थम) तृप्तिके लिये (गृहे) घरमें (भार्याया:) स्त्री (च) तथा (स्वस्य) अपने द्वारा (पक्वम्) पकाये हुए (अन्नादिकम्) अन्न आदिकको (दत्वा) देकर (भार्यया) स्त्रीके (सह) साथ (क्षुधित:) भूखे हुए (तिष्ठति) ठहरे। (तस्य) उन श्रीरामजीके (स्वविश्लेषापेक्षया) अपने विश्लेषकी अपेक्षासे (स्वस्य) अपने (भरतविश्लेषस्य) श्रीभरतजीके विश्लेषके (दु:सहत्वे) दु:सह होनेपर (अपि) भी (श्रीदण्डकारण्यवासिनाम्) श्रीदण्डकारण्यमें निवास करनेवाले (ऋषीणाम्) ऋषियोंकी (तृप्त्यर्थम्) तृप्तिके लिये (गतवान्) श्रीरामजी वनमें चले गये। इस वार्तामे **॥ आरुरोह रथं हृष्ट: शत्रुघ्नसहितस्तदा॥ वा० रा० अयो० २, सर्ग० ११३, श्लो० १॥** यह और **॥ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम्॥ वा० रा० बाल० १, स० १, श्लो० ४४॥** ये दोनों प्रतीक हैं, इससे समस्त श्लोकोंको लिख कर यहाँ पर अर्थ लिखता हूँ॥

॥ तत: शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा। आरुरोह रथं हृष्ट: शत्रुघ्नसहितस्तदा। वा० रा० अयो० २ स० १९३ श्लो० १॥

उसके बाद तब श्रीभरतजी श्रीरामजीके दोनों खड़ाउओंको सिरपर रखकर संतुष्ट हो शत्रुघ्नजी के साथ तब रथपर चढ़े।।

ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम्। स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां तदा वने।। वा० रा० बाल० १ स० १ श्लो० ४४।।

सब ऋषि लोग असुर और राक्षसोंके बधके लिये श्रीरामजीके पास आये, और उस वनमें उन राक्षसों के चरित्रको श्रीरामजीने सुना ।।४४।। इस वार्ताके तिरानबेवें पदमें ''अतिथीनाम्'' ऐसा लिखा है, इससे प्रश्न होता है, कि अतिथि किसको कहते हैं? इस प्रश्नका उत्तर मनुस्मृति में लिखा है कि-

एकरात्रंतु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणःस्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते।। मनु० अ० ३ श्लो० १०२।।

केवल एकरात्रि पराये घरमें बसता हुआ ब्रह्मवेत्ता सदा न रहनेसे अतिथि होता है। नहीं है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है।।१०२।। अतिथिसत्कार सबको करना चाहिए, इस बातको जनानेके लिये श्रीरामजी दण्डकारण्य चले गये। क्योंकि अतिथिसत्कार नहीं करने से लिखा है कि-

शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपिजुह्वतः। सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन्।। मनु० अ० ३, श्लो० १००।।

कटेहुए खेतमें जो पड़ा हुआ बाकी रह जाता है, उसको शिल कहते हैं, उस शिलसे जीविका करनेवाले और दक्षिणाग्नि १, गार्हपत्य २, आहवनीय ३, आवसथ्य ४, और सभ्य ५, इन पाँचो अग्नियोंमें हवन करते हुए पुरुषोंके सब पुण्यको बिना पूजा हुआ अतिथि बसता हुआ ले लेता है।।१००।। और भी लिखा है कि-

आशाप्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान्। एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्प मेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे।। कठो० अ० १, वल्ली १, श्रु० ८।।

जिस अल्पमेधावाले पुरुषके घरपर बिना भोजन किया हुआ ब्रह्मवेत्ता अतिथि निवास करता है, उसके सुन्दर आशाप्रतीक्षा सत्य यज्ञ दान तीर्थ व्रत कूप आराम और स्त्री पुत्र पशु धन आदिक सभी नाशको प्राप्त होते हैं।।८।। इस चालीसवीं वार्तामें एकसौ सोलह पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।४०।।

अब मल्लैकुत्तुनारायणस्वामीजीकी और कलिवैरिदासस्वामीजीके प्रश्नोत्तररूप वार्ताको कहते हैं कि-

।।अथ कलिवैरिदासमल्लैकुत्तुनारायणोक्ता वार्ता।।

मू०–[१]मल्लैकुत्तुनारायणः [२]कलिवैरिदासं [३]दृष्टार्थ-[४]मनुष्ठिता प्रप[५]त्तिः [६]फलव्याप्ता न [७]दृ[८]श्यते, [९]तथा अ[१०]दृष्टार्था प्र[११]प[१२]त्ति[१३]रपि भ[१४]वे[१५]त् [१६]किमित्यपृच्छत्, [१७]स [१८]च पूर्वकृ[१९]तां [२०]प्रपत्ति-[२१]मनिरूप्यै[२२]वमु[२३]क्तं त्वदनु[२४]भवविरो[२५]धिनः [२६]सर्वान् निव[२७]र्तयित्वा त्वदनुभवं प्र[२८]यच्छे[२९]ति [३०]प्रपत्तिं [३१]कृत्वा [३२]तद्विरुद्धां [३३]प्र[३४]पत्तिमनु-[३५]तिष्ठति चे[३६]त्, [३७]स्वामिना [३८]तस्य हित[३९]करणात् [४०]न फलति, "[४१]अत्र [४२]वरद [४३]यदि[४४]ह [४५]वस्तु [४६]वाञ्छाम्यहम्" [४७]इत्यादि[४८]रे[४९]व [५०]प्रमाण-[५१]मित्यवो[५२]चे[५३]त्॥४१॥

॥ कलिवैरिदासस्तुतिः ॥

अर्थ– लोकार्यः स्वगृहे सम्यग्जायापत्यसमन्वितः।
सर्वैः संपूजितः सम्यक्पूर्ववत्सुखमास्थितः॥४८॥

(मल्लैकुत्तुनारायणः) मल्लैकुत्तुनारायण स्वामीजीने (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजीसे (दृष्टार्थम्) देखे हुए अर्थके लिये (अनुष्ठिता) अनुष्ठान की हुई (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (फलव्याप्ता) फलसे व्याप्त (न) नहीं (दृश्यते) देखी जाती है (तथा) वैसे (अदृष्टार्था) अदृष्ट अर्थके लिये अनुष्ठानकी हुई (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (अपि) भी (भवेत्) होगी (किम्) क्या (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा (च) और (सः) उन कलिवैरिदास स्वामीजीने (पूर्वकृताम्) पूर्वमें की हुई (प्रपत्तिम्) प्रपत्तिको (अनिरूप्य) निरूपण नहीं करके (एवम्) इस प्रकारसे (उक्तम्) कहा, कि (त्वदनुभवविरोधिनः) आपके अनुभव विरोधी (सर्वान्) सबों को (निवर्तयित्वा) दूरकर आप (त्वदनुभवम्) अपने अनुभव को (प्रयच्छ) प्रकर्षरूप से दीजिये। "प्रयच्छ" यह प्रयोग-

॥ पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छ-धौशीयसीदाः॥ व्या० अ० ७, पा० ३, सू० ७८॥

इस सूत्रसे दाण्के स्थानमें यच्छ होकर बना है। (इति) इस प्रकारकी (प्रपत्तिम्) प्रपत्तिको (कृत्वा) करके (तद्विरुद्धाम्) उस प्रपत्तिसे विरुद्ध (प्रपत्तिम्) प्रपत्तिको (चेत्) यदि (अनुतिष्ठति) अनुष्ठान करता है, तो (स्वामिना) स्वामी करके (तस्य) उस अधिकारीके (हितकरणात्) कल्याण करनेसे (न) नहीं (फलति) फलती है (अत्र) यहाँ पर (वरद) हे वरदेनेवाले भगवन्! (इह) इस लीलाविभूतिमें (अहम्)

मैं (यत्) जिस (वस्तु) वस्तुको (वाञ्छामि) चाहता हूँ (इति) ऐसा (आदिः) आदिक (एव) निश्चय करके (प्रमाणम्) प्रमाण है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है, इस वार्तामें तिरपन पद हैं। इति कलिवैरिदासमल्लैकुत्तुनारायणोक्तवार्ताव्याख्यानाम्।।४१।।

अब वेदान्तीस्वामीजीकी और कुट्टैकुरिइल्लैयालवारुस्वामीजीकी संवादरूपवार्ता कहते हैं कि-

॥अथ यतिकुट्टैकुरिइल्लैयालवारुगदिता वार्ता॥

मू०-वेदान्तिनः चरमदशायां कुट्टैकुरिइल्लैयालवारु, द्वयानुसन्धानं कुरुतेत्यवोचत्, स च तवानुसन्धानं नापेक्षितं किं ममैवेदानीमनुसन्धानमपेक्षितं किं संचरतां नापेक्षितं शयानानामेवापेक्षितमिव ज्ञायते, इत्यवोचत् ॥४२॥

॥ वेदान्तिस्तुतिः॥

अर्थ- भट्टाचार्योक्तवाक्येन तेन विच्छिन्नसंशयः।
अगमत्तस्य वेदान्ती शिष्यत्वं बुधसन्निधौ॥४९॥

(वेदान्तिनः) वेदान्ती स्वामीजीकी (चरमदशायाम्) अन्तिम अवस्थामें (कुट्टैकुरिइल्लैयालवारु) कुट्टैकुरिइल्लैयालवारुस्वामीजीने (द्वयानुसन्धानम्) द्वयमंत्रका अनुसंधान (कुरुत) कीजिये (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है (च) और तब (सः) उन वेदान्तीस्वामीजीने (तव) आपके (अनुसन्धानाम्) द्वयमन्त्रका अनुसन्धान (न) नहीं (अपेक्षितम्) अपेक्षित है (किम्) क्या। (मम) मेरे लिये (एव) निश्चय करके (इदानीम्) इस समय (अनुसन्धानाम्) द्वयमन्त्रका अनुसंधान (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। (किम्) क्या (संचरताम्) अच्छे प्रकारसे चलनेवालोंको द्वयमन्त्रका अनुसन्धान (न) नहीं (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। (शयानानाम्) शयन करनेवालोंको (एव) निश्चय करके (अपेक्षितम्) द्वयमन्त्रका अनुसन्धान अपेक्षितके (इव) समान (ज्ञायते) जाना जाता है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इस वार्तामें तीस पद हैं। इति वेदान्तिकुट्टैकुरिइल्लैयालवारुगदितवार्ताव्याख्यानम्।।४२।।

अब कलिवैरिदासस्वामीजीकी वार्ता कहते हैं कि-

॥अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता॥

मू०–[१]काकस्य [२]विषयीकारसमये "[३][४]तत[५]स्तस्या[६]क्षिकाक-स्य [७]हिनस्ति स्म [८]स [९]दक्षिणम्" [१०]इत्युक्त[११]त्वात्, [१२]शरणागते[१३]नापि [१४]प्राचीनकर्माण्य[१५]नुभाव्यानि [१६]किमित [१७]चेत्-[१८]अने[१९]न [२०]कृतस्या-[२१]पराधस्य [२२]दण्डो [२३]न [२४]कृतः, [२५]किन्तु [२६]स्वचरणयोः [२७]कृतेन [२८]महापरा-[२९]धेन सर्वलोकपरित्यक्तं [३०]काकं [३१]तूष्[३२]णीमपराधं क्षमित्वा[३३]ङ्गी-[३४]करोति [३५]चेत्, [३६]तद्विषये [३७]कृताया: [३८]कृपाया [३९]ज्ञापनं [४०][४१][४२]न भवेदिति [४३][४४]स्वक्षमाज्ञापनार्थमे[४५][४६]वमकरोत्, [४७][४८]सोऽपि [४९]स्वशरीरे [५०]ब्रह्मास्त्रस्या-[५१]वकाशमदा[५२][५३]दित्यनुसन्धाय [५४][५५]तथाऽकरो[५६]त्, एकेन [५७]नेत्रेण [५८]नेत्र-[५९]द्वयकर्तव्यकार्यकरणसमर्थजातीयत्वादा[६०]त्मसत्तानिरोधस्याल्प-[६१]दण्डत्वात् [६१]महापराधकर्तरि [६३]काके [६४]क्षमाज्ञापकापेक्षासत्वादेव-[६५][६६]मकरो[६७]दिति [६८]कलिवैरिदासो[६९]ऽवोचत्॥४३॥

॥कलिवैरिदासस्तुतिः॥

अर्थ- वैष्णव्या भार्यया सार्धं स्वस्थचित्तो मुमोद ह।
वारणाद्रीश्वरो धीमाँल्लेकार्यं कलिवैरिणम्॥५०॥

(काकस्य) जयन्त नाम काक के (विषयीकारसमये) विषयकारके समयमें (ततः) उसके बाद (तस्य) उस जयन्त (काकस्य) काककी (दक्षिणम्) (अक्षि) दाहिनी आँख (सः) उन श्रीरामजीने (हिनस्तिस्म) मार दिया अर्थात् दाहिने नेत्रको फोड़ दिया (इति) ऐसा (उक्तत्वात्) वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डके अड़तीसवें सर्गके पैंतिसवेंश्लोकमें कहनेसे (शरणागतेन) शरणागति करनेवाले अधिकारियों करके (अपि) भी (प्राचीनकर्माणि) प्राचीन कर्म (अनुभाव्यानि) अनुभव किये जाते हैं (किम्) क्या (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो, तो सुनो (अनेन) इस जयन्त काकसे (कृतस्य) किये हुए (महापराधेन) बड़े भारी अपराधसे (सर्वलोकपरित्यक्तम्) सब लोकोंसे परित्याग किया हुआ (काकम्) जयन्त काकका (तूष्णीम्) चुपचाप (अपराधम्) अपराध (क्षमित्वा) सह करके (चेत्) यदि (अङ्गीकरोति) श्रीरामजी स्वीकार करते तो, (तद्विषये) जयन्त काकके विषयमें (कृतायाः) की हुई (कृपायाः) कृपा का (ज्ञापनम्) ज्ञापन (न) नहीं (भवेत्) होता, (इति) इस कारणसे (स्वक्षम्)

सुन्दर जयन्तकी दाहिनी आंखको (आज्ञापनार्थम्) अच्छे प्रकारसे जनानेके लिये (एवम्) इस प्रकारसे (अकरोत्) श्रीरामजीने किया। अर्थात् दाहिनी आँख श्रीरामजीने फोड़ दी। (सः) उसने (अपि) भी (स्वशरीरे) अपने शरीरमें (ब्रह्मास्त्रस्य) ब्रह्मास्त्रका (अवकाशम्) अवकाश (अदात्) दिया है (इति) ऐसा (अनुसन्धाय) अनुसन्धान कर (तथा) वैसे (अकरोत्) किया। (एकेन) एक (नेत्रेण) आँखसे (नेत्रद्वयकर्तव्यकार्यकरणसमर्थजातीयत्वात्) दोनों आँखके योग्य कार्यके करनेमें समर्थ काकजातिवाला होनेसे (आत्मसत्तानिरोधस्य) आत्मसत्ताके निरोधके (अल्पदण्डत्वात्) अल्प दण्ड होनेसे (महापराधकर्तरि) बड़े भारी अपराध करनेवाले (काके) जयन्त काक के विषयमें (क्षमाज्ञापकापेक्षासत्वात्) क्षमा ज्ञापककी अपेक्षा होनेसे (एवम्) इस प्रकारका नेत्रभंग (अकरोत्) श्रीरामजीने किया, (इति) ऐसा (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजीने (अवोचत्) कहा है। जयन्त काक के विषयमें स्वयं श्रीसीताजीने हनुमान्‌जी से कहा है कि-

॥ ततो मां स समायुक्तो वायसः पर्यतुण्डयत्। तमहं लोष्टमुद्यम्य वारयामि स्म वायसम्॥ वा० रा० सुन्द० ५, स० ३८, श्लो० १५॥ दारयन् स च मां काकस्तत्रैव परिलीयते। न चाप्युपारमन्मांसाद्भक्षार्थी बलिभोजनः॥१६॥ उत्कर्षन्त्यां च रसनां क्रुद्धायां मयि पक्षिणे। स्रंसमाने च वसने ततो दृष्ट्वा त्वया ह्यहम्॥१७॥ त्वया विहसिता चाहं क्रुद्धा संलज्जिता तदा। भक्ष्यगृद्धेन काकेन दारिता त्वामुपागता॥१८॥ ततः श्रान्ताहमुत्सङ्गमासीनस्य तवाविशम्। क्रुध्यन्तीव प्रहृष्टेन त्वायाहं परिसान्त्विता॥१९॥ वाष्पपूर्णमुखी मन्दं चक्षुषी परिमार्जती। लक्षिताहं त्वया नाथ वायसेन प्रकोपिता ॥२०॥ परिश्रमाच्च सुप्ता हे राघवाङ्केऽस्म्यहं चिरम्। पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्के भरताग्रजः॥२१॥ स तत्र पुनरेवाथ वायसः समुपागमत्। ततः सुप्तप्रबुद्धां मां राघवाङ्कात्समुत्थिताम्। वायसः सहसागम्य विददार स्तनान्तरे॥२२॥ पुनः पुनरथोत्पत्य विददार स मां भृशम्। ततः समुत्थितो रामो मुक्तैः शोणितबिन्दुभिः॥२३॥ स मां दृष्ट्वा महाबाहुर्वितुन्नांस्तनयोस्तदा। आशीविष इव क्रुद्धः श्वसन्वाक्यमभाषत॥२४॥ केन ते नागनासोरु विक्षतं वै स्तनान्तरम्। कः क्रीडति सरोषेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना॥२५॥ वीक्षमाणस्ततस्तं वै वायसं समवैक्षत। नखैः सरुधिरैस्तीक्ष्णैर्मामेवाभिमुखं स्थितम्॥२६॥ पुत्रः किल स शक्रस्य वायसः पततां वरः। धरान्तरं गतः शीघ्रं पवनस्य गतौ समः॥२७॥ ततस्तस्मिन्महाबाहुः कोपसंवर्तितेक्षणः। वायसे कृतवान्क्रूरां मतिं मतिमतांवरः॥२८॥ सदर्भसंस्तरादृगृह्य ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयत्। स दीप्त इवकालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम्॥२९॥ स तं प्रदीप्तं चिक्षेप दर्भं तं वायसं प्रति। ततस्तु वायसं दर्भः सोऽम्बरेऽनुजगाम ह॥३०॥ अनुसृष्टस्तदा काको जगाम विविधां गतिम्। त्राणकाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह॥३१॥ स पित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च

परमर्षिभिः। त्रींल्लोकान्संपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः॥३२॥ स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम्। वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत्॥३३॥ परिद्यूनं विवर्णं च पतमानं तमब्रवीत्। मोघमस्त्रं न शक्यं तु ब्राह्मं कर्तुं तदुच्यताम्॥३४॥ ततस्तस्याक्षि काकस्य हिनस्ति स्म स दक्षिणम्। दत्वा तु दक्षिणं नेत्रं प्राणेभ्यः परिरक्षितः॥३५॥

उसके बाद उस जयन्तकाक ने मेरे पास आकर मुझको चारो तरफसे मारा, उस कौवेका निवारण मैंने ढ़ेला उठाकर किया॥१५॥ [illegible]को विदीर्ण करता हुआ वह कौवा वहीं लीन हो गया, परन्तु बलिको खानेवाला वह कौवा मेरे मांससे निवृत्त नहीं हुआ॥१६॥ और कौवेके ऊपर क्रोध करती हुई, जीभको ऊपर खींचती हुई, तथा वस्त्र खुली हुई, मुझको आपने देखा॥१७॥ और आप अत्यन्त हँसे, तब क्रुद्धा लजायी हुई भक्ष्यको चाहनेवाले कौवेसे विदारित मैं आपके पास आई॥१८॥ उसके बाद थकी हुई मैं बैठे हुए आपकी गोदमें बैठी, और खिसिआयी हुई मुझको आपने अत्यन्त आनन्दसे शान्त किया॥१९॥ अश्रूसे पूर्णमुखवाली धीरेसे दोनों नेत्रोंको परिमार्जन करती हुई, कौवेसे क्रोधित मुझको ऐ प्राणनाथ! आपने देखा॥२०॥ हे मारुते! परिश्रमसे बहुत देर तक मैंने राघव की गोद में शयन किया, और मेरे जागनेपर क्रम से राघव मेरी गोद में सोये॥२१॥ तब फिरसे जयन्तकाक वहाँ पर आया, और राघव की गोदीसे सोकर उठी हुई मेरे स्तनोंमें सहसा आकर जोरसे आघात किया॥२२॥ बारंबार उड़ उड़कर उस कौवेने मुझको अत्यन्त विदीर्ण किया, तब गिरे हुए रक्तके बिन्दुओं से श्रीराघवजी जागे॥२३॥ तब वह राघव मेरे स्तनोंको विदीर्ण देखकर खिसिआये साँपके समान साँस लेते हुए वाक्य बोले कि॥२४॥ हे गजके शुण्डके समान जंघेवाली! किसने तेरे स्तनोंको निश्चय करके विदीर्ण किया है, कौन रोष सहित पाँच मुखवाले सर्पसे क्रीडा करता है॥२५॥ उसके बाद देखते हुए रुधिरके साथ तीक्ष्ण नखोंसे युक्त मेरे सम्मुख स्थित जयन्त काकको श्रीराघवजीने देखा॥२६॥ वह इन्द्रका पुत्र पक्षियोंमें श्रेष्ठ जयन्तकाक, शीघ्र ही पवनकी गतिके समान पृथ्वीमें चला गया॥२७॥ उसके बाद आजानुबाहुवाले क्रोधसे चढ़े हुए नेत्रवाले मतिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीराघवजीने उस जयन्त काक के विषयमें क्रूर मति की॥२८॥ और उन राघवने अपने आसनसे कुशको लेकर ब्रह्मास्त्रसे संयोजित किया, तब उसने लहकते हुए कालाग्निके समान उस जयन्त कौवेके सम्मुख ज्वाला की॥२९॥ उस श्रीराघवजी ने लहके हुए उस कुशको जयन्त काकके ऊपर फेंका, तब तक जयन्त आकाशमें गया, और पीछेसे वह लहका हुआ कुश भी वहाँ गया॥३०॥ ब्रह्मास्त्रसे डरा हुआ वह जयन्त काक अपनी रक्षाकी इच्छासे विविध गति द्वारा इस समस्त लोकमें विचरा॥३१॥ परन्तु कहींपर शरण न मिली, तो पिता इन्द्र और महर्षियोंसे परित्याग किया हुआ वह जयन्त काक तीनों लोकों में

घूमकर श्रीराघव की ही शरण में गया ।।३२।। तब उन शरण्य काकुत्स्थ ने भूमि में गिरा हुआ शरणागत वह जयन्त काक वधकरने योग्य था तौ भी कृपासे उस काककी रक्षा की ।।३३।। और अत्यन्त दुःखी विवर्ण भूमिमें पड़े हुए जयन्त काकसे श्रीराघवजीने कहा, कि जिसमें यह ब्रह्मास्त्र निष्फल न हो ऐसा वाक्य कहो।।३४।। तब जयन्त काकने कहा कि मेरी दाहिनी आँख फोड़ दीजिये। उसके बाद श्रीराघवजीने जयन्त कौवेकी दाहिनी आँख फोड़ दी, और दाहिनी आँख देकर प्राणोंसे रक्षा की।।३५।। इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट साबित होता है, कि अमोघ ब्रह्मास्त्रको सफल करनेके लिये महापराधी जयन्त काक का नेत्र श्रीरामजीने फोड़ा है। वध करनेयोग्य महापराधका दण्ड नहीं किया है। इस तैंतालीसवीं वार्तामें उनहत्तर पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।४३।।

अब कलिवैरिदासस्वामीजीकी वार्ता कहते हैं कि-

।।अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता।।

मू०--प्रपन्नस्य प्रपत्तिवचनं सदानुवर्तनीयं किं सकृद्वचनं नालमिति पृष्टः कलिवैरिदासो वदति, प्रपत्तव्यस्य प्रपत्तु वा त्वमेवमपृच्छः प्रपत्तव्यस्यानेनैकदोच्चारणमेवालम्, प्रपत्तौ तु प्राप्यतृष्णाया तत्सिद्धिपर्यन्तं तदुच्चारणान्न निवर्तते, यथा पिपासित एकदा पानीयापेक्षया पानीये दीयमानेऽपि पिपसातिशयेन पानीयप्राप्तिपर्यन्तं पानीयापेक्षावचनमावर्तयति, तथा बहुकालमावर्तयति तदावृत्तिर्विधिप्रयुक्ता न भवति, प्राप्यतृष्णातिशयेन रागप्राप्ता ।।४४।।

अर्थ- (प्रपन्नस्य) प्रपन्नमुमुक्षुजन का (प्रपत्तिवचनम्) प्रपत्तिवाक्य (सदा) हमेशा (अनुवर्तनीयम्) अनुवर्तन करने योग्य है। (किम्) क्या (सकृत्) एकबार (वचनम्) वाक्य (न) नहीं (अलम्) पर्याप्त है (इति) ऐसा (पृष्टः) पूछने पर (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास्वामीजी (वदति) कहते हैं, कि (प्रपत्तव्यस्य) प्रपत्ति करने योग्यके द्वारा (वा) अथवा (प्रपत्तुः) प्रपत्ति करनेवालेके द्वारा (त्वम्) तुमने (एवम्) इस प्रकारसे (अपृच्छः) पूछा है (प्रपत्तव्यस्य) प्रपत्ति करने योग्यका (अनेन) इस प्रपन्न द्वारा (एकदा) एक बार (उच्चारणम्) उच्चारण करना (एव) निश्चय करके (अलम्) पर्याप्त

है। (प्रपत्तौ) प्रपत्तिमें (तु) तो (प्राप्यतृष्णया) प्राप्य श्रीमन्नारायण की तृष्णासे (तत्सिद्धिपर्यन्तम्) श्रीमन्नानारायणकी प्राप्तिपर्यन्त (तदुच्चारणात्) भगवत् की प्रपत्ति वचनके उच्चारण करनेसे (न) नहीं (निवर्तते) निवृत्त होता है। (यथा) जैसे (पिपासितः) प्यासा हुआ पुरुष (एकदा) एकबार (पानीयापेक्षया) जल मांगनेसे (पानीये) पीने योग्य जल (दीयमाने) प्राप्त कर लेता (अपि) तौभी (पिपासातिशेयन) अत्यन्त प्यास लगनेसे (पानीयप्राप्तिपर्यन्तम्) पीने योग्य जलकी प्राप्ति पर्यन्त (पानीयापेक्षावचनम्) पानी पीने योग्य जलकी अपेक्षाके वचनको (आवर्तयति) आवृत्ति करता है। अर्थात् जब तक जल नहीं मिलता है, तब तक बारंबार प्यासा पुरुष जलको माँगता है। (तथा) वैसे ही (बहुकालम्) प्रपन्नजन बहुतकाल तक (आवर्तयति) प्रपत्तिके वचनको उच्चारण करता है। (तदावृत्तिः) प्रपत्ति वचन की आवृत्ति (विधि प्रयुक्ता) शास्त्रके विधानसे प्रयुक्त (न) नहीं (भवति) होती है। किन्तु (प्राप्यतृष्णातिशयेन) प्राप्य श्रीमन्नारायणके विषयमें अत्यन्त तृष्णा होनेसे (रागप्राप्ता) प्रपत्ति वचन की आवृत्ति रागसे प्राप्त हुई है। इस वार्तामें इक्यावन पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।४४।।

अब एण्यपिरत्तुतिरुवाक्कुल्ताल्वान् स्वामीजीकी और वेदान्ती स्वामीजीके प्रश्नोत्तररूपवार्ता कहते हैं कि-

।।अथ यति-एण्यपिरत्तुतिरुवाक्कुल्ताल्वान् वार्ता।।

मू०--एण्यपिरत्तुतिरुवाक्कुल्ताल्वान् प्रपत्तिः बुद्धिपूर्वकं कृतस्यापचारस्यापि प्रायश्चित्तं भवति किमिति वेदान्तिनमपृच्छत्, स च प्रपत्तिप्रभावे दृष्टे बुद्धिपूर्वकस्यापि प्रायश्चित्तं भवति, ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं बुद्धिपूर्वकमेव न संभवति, प्रामादिकस्यानुतापो जायतेऽतो न भेत्तव्यमित्यवोचत्, आश्रयणीयान्सर्वानाश्रित्य तस्याप्याश्रयणं भक्तिः, त्याज्यान्सर्वान्त्यक्त्वा स्वस्यापि त्यागः प्रपत्तिः ।।४५।।

अर्थ- (एण्यपिरत्तुतिरुवाक्कुल्तावान्) एण्यपिरत्तुतिरुवाक्कुल्ताल्वान् स्वामीजीने (प्रपत्तिः) भगवत् की प्रपत्ति (बुद्धिपूर्वकम्) बुद्धिपूर्वक (कृतस्य) किये हुए (अपचारस्य) अपराधका (अपि) भी (प्रायश्चित्तम्) प्रायश्चित्त (भवति) होती है

(किम्) क्या (इति) ऐसा (वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजीसे (अपृच्छत्) पूछा। तब (सः) उन वेदान्ती स्वामीजीने (च) भी (प्रपत्तिप्रभावे) भगवत् की प्रपत्तिका प्रभाव (दृष्टे) देखने पर तो (बुद्धिपूर्वकस्य) बुद्धिपूर्वक किये हुए अपचारका (अपि) भी (प्रायश्चित्तम्) प्रायश्चित्त (भवति) प्रपत्ति होती है। परन्तु (ज्ञानोत्पत्त्यन्तरम्) ज्ञानके उत्पन्न होनेके बाद (बुद्धिपूर्वकम्) बुद्धिपूर्वक अपचार (एव) निश्चय करके (न) नहीं (संभवति) हो सकता है। (प्रामादिकस्य) प्रमादसे भये हुए अपराधके (अनुतापः) पीछे संताप (जायते) उत्पन्न होता है। (अतः) इससे (न) नहीं (भेतव्यम्) भय करने योग्य है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। (आश्रयणीयान्) आश्रयण करने योग्य (सर्वान्) सबोंको (आश्रित्य) आश्रयण कर (तस्य) उसका (अपि) भी (आश्रयणम्) आश्रयण करना (भक्तिः) भक्ति है। और (त्याज्यान्) त्याग करने योग्य (सर्वान्) सबोंको (त्यक्त्वा) त्यागकर (स्वस्य) अपनी आत्माका (अपि) भी (त्यागः) श्रीमन्नारायणमें त्याग करना (प्रपत्तिः) प्रपत्ति है। इस वार्तामे सैंतालिस पद हैं। इति यतिएण्यपिरत्तुतिरुवाक्कुल्ताल्वान्गदितवार्ताव्याख्यानम्।।४५।।

अब कणियनूरशिरियाल्वान् स्वामीजीकी और गोविन्दाचार्यस्वामीजीके संवादरूप वार्ता कहते हैं, कि-

॥अथ गोविन्दाचार्यकणियनूरशिरियाल्वान् वार्ता॥

मू०-- [१]कणियनूरशिरियाल्वान् [२]गोविन्दाचार्यं [३]प्रणम्य [४]हृदये-[५]उपायतया [६]निश्चितमर्थं [८]वदस्वेत्यपृच्छत्, [९][१०][११]दाशरथिः [१२]रामानुजचरणयुगलव्यतिरिक्तोपायो [१३][१४][१५]नास्तीत्यवोचत् ।।४६।।

॥ गोविन्दाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- निवृत्ततर्षो यतिसार्वभौमात्संप्राप्य संन्यासमचंचलात्मा।
यंबारनामा सुतरां विरेजे गोविन्ददेवो यतिराजवत्सः।।५१।।

(कणियनूरशिरियाल्वान्) कणियनूरशिरियाल्वान् स्वामीजीने (गोविन्दाचार्यम्) गोविन्दचार्य स्वामीजीको (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (हृदये) हृदयमें (उपायतया) उपायत्वेन (निश्चितम्) निश्चिय किये हुए (अर्थम्) अर्थको (वदस्व) भासमान कहिये। (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। तब गोविन्दाचार्य स्वामीजीने कहा कि (दाशरथिः) दाशरथिस्वामीजीने (रामानुजचरणयुगलव्यतिरिक्तोपायः) रामानुजचार्य

स्वामीजीके दोनों चरणारविन्दोंसे अन्य उपाय (न) नहीं (अस्ति)है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इस वार्तामें सोलह पद हैं। इति गोविन्दाचार्यकणियनूरशिरियाल्वान्-गदितवार्ताव्याख्यानम्।।४६।।



अब सुन्दरजामातृमुनिजीकी वार्ता कहते हैं कि-

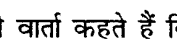
।।अथ सुन्दरजामातृमुन्युक्तावार्ता।।

मू०--[१]पश्चात्[२]सुन्दरजामातृमुनिः, [३]कांश्चन [४]श्रीवैष्णवान्[५]उद्दिश्य [६]द्वयपूर्वखण्डोत्तरखण्डयोर्वार्ता [७]वक्तव्येत्यु[८]वाच[९]।।४७।।

।।सुन्दरजामातृमुनिस्तुतिः।।

अर्थ- यश्चकार सकलार्थसम्पदां व्यञ्जनीं द्रविडवेदसंगतिम्।
तं द्वितीयशठकोपमन्वहं स्तौमि सुन्दरवराह्वयं मुनिम्।।

(पश्चात्) पीछे (सुन्दरजामातृमुनिः) सुन्दरजामातृमुनिने (कांश्चन) किन्हीं (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवोंको (उद्दिश्य) उद्देश्य करके (द्वयपूर्वखण्डोत्तरखण्डयोः) द्वयमंत्रके पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड की (वार्ता) वार्ता (वक्तव्या) कहने योग्य है (इति) ऐसा (उवाच) कहा है। ''उवाच'' यहाँ पर **।। लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्।। व्या० अ०६, पा० १, सू० १७।।** इसा सूत्रसे संप्रसारण हुआ है। इस वार्तामें दसपद हैं। इति सुन्दरजामातृमुन्युक्तवार्ताव्याख्यानम्।।४७।।



अब कलिवैरिदासस्वामीजीकी वार्ता कहते हैं कि-

।।अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता।।

मू०--[१]श्रीकलिवैरिदासः, [२]नारायणो [३]महालक्ष्मीश्चाभि[४][५]मतं [६]साधयत [७]इति [८]तिष्ठन्ति, [९]अभिमतं [१०]च [११]लक्ष्मीनारायणयो[१२]स्सहावस्थाने [१३]समस्तकैंकर्य्यकरणं, [१४]कैंकर्यविरोधिनिवृत्तिश्च[१५], [१६]इत्युक्तप्रकारेणाध्यवस्यन्ति[१७] [१८][१९]।।४८।।

अर्थ-(कलिवैरिदासः) कलिवैरिदासस्वामीजीने कहा है, कि (नारायणः) परब्रह्मनारायण (च) और (महालक्ष्मीः) महालक्ष्मीदेवीजी (अभिमतम्) अभिमतको (साधयतः) साधन करते हैं, (इति) इससे (तिष्ठन्ति) पूर्वाचार्य सब ठहरते हैं। (च) और (अभिमतम्) अभिमत यह है, कि (लक्ष्मीनारायणयोः) महालक्ष्मी और नारायणके (सह) साथ (अवस्थाने) रहने पर (समस्तकैंकर्यकरणम्) समस्त श्रीमन्नारायणका कैंकर्य करना (च) और (कैंकर्यविरोधिनिवृत्तिः) श्रीमन्नारायणकेकैंकर्यविरोधीकी निवृत्ति करना (इति) इस (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकारसे (अध्यवस्यन्ति) पूर्वाचार्य सब अध्यवसाय करते हैं। इस वार्तामें उन्नीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥४८॥

अब वेदान्तीस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथ यत्युक्ता वार्ता॥

मू०--श्रीपादविषय एते कथं प्रतिपत्तिं कुर्वन्तीति यतिना पृष्टः, एतन्महोपकारं कृतवानिति निश्चिन्वन्तीत्यवोचत्, पुनश्च यतिः-अस्माकं पुरुषकारभूतेयं न विश्लिष्यामीति व्यामुग्धा कथं पुरुषकारो भवतीति पप्रच्छ। कमलवासिनी भोगव्यामोहाश्रयापि जगन्निर्वहतीत्युच्यते खल्वित्यवोचत्॥४९॥

अर्थ-(श्रीपादविषये) श्रीचरणोंके विषयमें (एते) ये मुमुक्षुजन (कथम्) कैसे (प्रतिपत्तिम्) भगवत् की शरणागति (कुर्वन्ति) करते हैं (इति) ऐसा (यतिना) वेदान्तीस्वामीजीने (पृष्टः) अपने आचार्यसे पूछा। तब उस आचार्यने (एतन्महोपकारम्) इस चेतनके महान् उपकारको (कृतवान्) नारायणने किया है (इति) ऐसा (निश्चिन्वन्ति) निश्चय करते हैं पूर्वाचार्य सबों ने (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। (च) और (पुनः) फिरसे (यतिः) वेदान्ती स्वामीजीने (अस्माकम्) हम सबोंके (पुरुषकारभूता) पुरुषकारभूत (इयम्) यह महालक्ष्मीजी (न) नहीं (विश्लिष्यामि) मैं भगवत्के आलिङ्गनको छोड़ती हूँ (इति) इस प्रकारसे (व्यामुग्धा) भगवत्में व्यामुग्ध महालक्ष्मीजी (कथम्) कैसे (पुरुषकारः) पुरुषकार (भवति) होती है (इति) ऐसा (पप्रच्छ) आचार्यसे पूछा, तब (कमलवासिनी) कमल पर निवास करनेवाली

महालक्ष्मीदेवी (व्यामोहाश्रया) व्यामोहाश्रया हैं (अपि) तौभी (जगत्) संसारको (निर्वहति) निर्वाह करती हैं, (इति) इस प्रकारसे (उच्यते) कही जाती हैं (खलु) निश्चय करके (इति) ऐसा (अवोचत्) आचार्यने कहा है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि लक्ष्मीजी पुरुषकारभूत हैं? इस प्रश्नका उत्तर भगवच्छास्त्रमें लिखा है कि-

मत्प्राप्तिं प्रतिजन्तूनां संसारे पततामधः। लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टापरमर्षिभिः॥ ममापि च मतं ह्येतन्नान्यथा लक्षणं भवेत्॥ भगवच्छास्त्रे०॥

संसार में अधःपतित जीवोंके हमारी प्राप्तिके लिये महर्षि लोग लक्ष्मीजीको पुरुषकार कहते हैं, हमारा भी यही मत है इसका और लक्षण नहीं है। इससे साबित हो गया कि लक्ष्मीजी पुरुषकारभूत हैं। इस वार्तामें उन्तालीस पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥४९॥

अब गोवर्द्धनदासजी और कलिवैरिदासस्वामीजीके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथ गोवर्द्धनदासकलिवैरिदासोक्ता वार्ता॥

मू०-- कलिवैरिदासं गोवर्द्धनदासोऽर्जुनस्येव व योग्यता नापेक्षित। किमित्यपृच्छत्, क्षत्रियत्वादिकमपेक्षितं किमित्यवोचत्, अधिकारिणोऽपराधनामालयत्वमार्तिराकिंचन्यमनन्यगतित्वं स्वरूपज्ञानं स्वरूपप्रकाशश्चापेक्षितः पूर्वापराधान् क्षन्तुं पुरुषकारोऽपेक्षितः, कालनियत्यप्रतीक्षार्थं मतुबपेक्षितः, पुरुषकारजीवनार्थं शीलादिगुणा अपेक्षिताः, तत्कार्य्यकरत्वार्थं ज्ञानशक्त्यादिगुणा अपेक्षिताः, संसारिणां रुचिजननार्थं मुमुक्षूणां शुभाश्रयाणां मुक्तानां भोग्यतार्थं च विलक्षणविग्रहापेक्षितः, उपायसौकर्यार्थं नैरपेक्ष्यमपेक्षितं तस्य फलव्याप्त्यर्थं स्वीकारोऽपेक्षितः, पूर्वं पुरुषकारभूतेवोपरि प्राप्यभूता भूयात्, पूर्व

६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८
मुपायभूत इवोपरि प्राप्यभूतो भूयात्, शेषत्ववच्छेषवृत्ति-
६९ ७० ७१ ७२ ७३
रप्यपेक्षिता स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तिवत् स्वभोग्यत्वनिवृत्तिरप्य
७४ ७५ ७६
पेक्षिता-इत्यवोचत् ॥५०॥

अर्थ-शरणागतिके विषयमें (गोवर्द्धनदासः) गोवर्द्धनदासजीने (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजीसे (अर्जुनस्य) अर्जुनके (इव) समान (वा) अथवा द्रौपदीके समान (योग्यता) योग्यता (न) नहीं (अपेक्षिता) अपेक्षित है (किम्) क्या (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। और (क्षत्रियादिकम्) क्षत्रियादिक (अपेक्षितम्) अपेक्षित है (किम्) क्या (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। तब कलिवैरिदास स्वामीजीने (अधिकारिणः) अधिकारियोंके (अपराधानाम्) अपराधोंके (आलयत्वम्) आलयत्व और (आर्तिः) आर्ति तथा (आकिंचन्याम्) अकिंचनता और (अनन्यगतित्वम्) अनन्यगतित्व तथा (स्वरूपज्ञानम्) स्वरूपज्ञान (च) और (स्वरूपप्रकाशः) स्वरूप का प्रकाश (अपेक्षितः) अपेक्षित है। और (पूर्वापराधन्) पहले के किये हुए अपराधोंको (क्षन्तुम्) सहनेके लिये (पुरुषकारः) पुरुषकार (अपेक्षितः) अपेक्षित है। तथा (कालनियत्यप्रतीक्षार्थम्) कालके निश्चयकी अप्रतीक्षा के लिये (मतुप्) मतुप्प्रत्यय (अपेक्षितः) अपेक्षित है। और (पुरुषकारजीवनार्थम्) पुरुषकारके जीवनके लिये (शीलादिगुणाः) वात्सल्य सौशील्य सौलभ्य आदिक गुण (अपेक्षिताः) अपेक्षित हैं। तथा (तत्कार्यकरत्वार्थम्) ईश्वरके कार्यकरत्वके लिये (ज्ञानशक्त्यादिगुणाः) ज्ञान शक्ति पूर्ति आदिकगुण (अपेक्षिताः) अपेक्षित हैं। और (संसारिणाम्) संसारियोंके (रुचिजननार्थम्) रुचि उत्पन्न होनेके लिये तथा (मुमुक्षूणाम्) मुमुक्षुओंके (शुभाश्रयार्थम्) शुभ आश्रयण करनेके लिये (च) और (मुक्तानाम्) मुक्त जीवोंके (भोग्यतार्थम्) भोग्यताके लिये (विलक्षणविग्रहापेक्षितः) विलक्षण मंगलमय विग्रहकी अपेक्षा है। तथा (उपायसौकर्यार्थम्) उपायके सौकर्यके लिये (नैरपेक्ष्यम्) नैरपेक्ष्य (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। और (तस्य) उस चेतनके (फलव्याप्त्यर्थम्) फलकी व्याप्तिके लिये (स्वीकारः) स्वीकार (अपेक्षितः) अपेक्षित है। (पूर्वम्) पहले (पुरुषकारभूता) पुरुषकार भूतके (इव) समान (उपरि) और ऊपरमें (प्राप्यभूता) प्राप्यभूत (भूयात्) होवे। (पूर्वम्) पहले (उपायभूतः) उपायभूतके (इव) समान (उपरि) और ऊपरमें (प्राप्यभूतः) प्राप्यभूत (भूयात्) होवे। (शेषत्ववत्) शेषत्वके समान (शेषवृत्तिः) शेषकी वृत्ति (अपि) भी (अपेक्षिता) अपेक्षित है। और (स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तिवत्) अपनी स्वतंत्रताकी निवृत्तिके समान (स्वभोग्यत्वनिवृत्तिः) अपनी भोग्यताकी निवृत्ति (अपि) भी (अपेक्षिता) अपेक्षित है (इति) ऐसा (अवोचत्)

कहा है। इस पचासवीं वार्तामें छिहत्तर पद हैं। इति गोवर्द्धनदासकलिवैरिदासोक्तवार्ता-व्याख्यानम् ।।५०।।

अब वंगिप्युरत्तुनंविनामके महात्माके और यतिवर चूडामणिदासजीके संवादरूपवार्त्ताको कहते हैं कि-

।।अथ वंगिप्युरत्तुनंव्युक्ता वार्ता।।

मू०--वंगिप्युरत्तुनंविः यतिवरचूडामणिदासं प्रति- एकस्य सर्वशक्तेरशक्तिना प्राप्तिसमये स्वयमितरे च नोपायः, आचार्यानुग्रहपूर्वकं द्वयानुसन्धान उज्जीवनं नित्यसंसारितया नाशो वा अन्यन्नास्तीत्यवोचत् ।।५१।।

।। यतिवरस्तुतिः।।

अर्थ- अनन्तः प्रथमं रूपं द्वितीयं लक्ष्मणस्तथा।
तृतीयं बलरामश्च कलौ कश्चिद्भविष्यति।।५३।।

(वंगिप्युरत्तुनंविः) वंगिप्युरत्तुनंवि स्वामीजीने (यतिवरचूडामणिदासम्) यतिवरचूडामणिदासजीके (प्रति) प्रति (एकस्य) एक (सर्वशक्तेः) सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके (अशक्तिना) अशक्तचेतन करके (प्राप्तिसमये) प्राप्तिके समयमें (स्वयम्) अपने चेतन(च)और (इतरे) अन्य साधनान्तर भी (न) नहीं (उपायः) उपाय है। (आचार्यानुग्रहपूर्वकम्) आचार्यके अनुग्रहपूर्वक (द्वयानुसन्धाने) द्वयमन्त्रके अनुसन्धानमें (उज्जीवनम्) इस चेतनका उज्जीवन है। (वा) अथवा (नित्यसंसारितया) नित्यसंसारित्व होनेसे (नाशः) इस चेतन का नाश है। (अन्यत्) पूर्वोक्तसे अन्य (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इस वार्तामें तेईस पद हैं। इति वंगिप्युरत्तुनंव्युक्तवार्ताव्याख्यानम्।।५१।।

अब श्रीभाष्यकारके और महापूर्ण स्वामीजीके प्रश्नोत्तर रूप वार्ताको कहते है कि-

।।अथ श्रीभाष्यकारमहापूर्णोक्ता वार्ता।।

मू०--श्रीभाष्यकारः श्रीमहापूर्णं प्रणम्य प्रपत्तिः केत्यपृच्छत्, पक्वफलं वृन्तच्युतमिव भवतीत्यवोचत्, इतश्च सन्देहोऽनुवर्तत इत्यवोचत्, तर्ह्यमुमर्थं श्रीगोष्ठीपूर्णं पृच्छेत्यवदत्॥५२॥

॥ महापूर्णस्वामिस्तुतिः॥

अर्थ- कमलापतिकल्याणगुणामृतनिषेवया।
पूर्णकामाय सततं पूर्णाय महते नमः॥५४॥

(श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकाररामानुजाचार्य स्वामीजीने (श्रीमहापूर्णम्) श्रीमहापूर्ण स्वामीजीको (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (प्रपतिः) प्रपति (का) क्या है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। तब महापूर्ण स्वामीजी ने (पक्वफलम्) पका हुआ फल (वृन्तच्युतम्) अपने वृन्तसे गिरे हुएके (इव) समान (भवति) प्रपत्ति होती है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। तब फिरसे रामानुजाचार्य स्वामीजीने (इतः) इस कथनसे (च) भी (सन्देहः) सन्देह (अनुवर्तते) अभी है ही है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। (तर्हि) तब (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थको (श्रीगोष्ठीपूर्णम्) श्रीगोष्ठीपूर्णजीसे (पृच्छ) पूछलो (इति) ऐसा (अवदत्) श्रीमहापूर्ण स्वामीजीने कहा। इस वार्तामें छब्बीस पद हैं। इति श्री भाष्यकाश्रीमहापूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥५२॥

अब श्रीभाष्यकारके और गोष्ठीपूर्णास्वामीजीके सम्वाद रूपवार्ताको कहते हें कि-

॥ अथ श्रीभाताष्यकारगोष्ठीपूर्णोक्ता वार्त्ता॥

मू०--सोऽपि तमपृच्छत् सोऽपि "सकृदेवे" त्यवोचत्, इतः परमपि सन्देहोऽनुवर्तत इत्यवोचत् तर्ह्यमुमर्थं श्रीमालाकारं पृच्छेत्यवोचत् ॥५३॥

॥ गोष्ठीपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- तत्र वैशाखरोहिण्यां पुण्डरीकांशतोऽजनि ।
गोष्ठीपूर्णो महातेजा विद्वद्गोष्ठीविशारदः ॥५५॥

(सः) उन श्रीभाष्यकार रामानुजाचार्यजीने (अपि) भी (तम्) उस गोष्ठीपूर्ण स्वामीजीसे (अपृच्छत्) प्रपत्ति क्या है? ऐसा पूछा। तब (सः) उन गोष्ठीपूर्ण स्वामीजीने (अपि) भी (सकृत्) एकबार (एव) निश्चय करके (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। अर्थात्-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥ वाल्मी० रा० यु० ६, स० १८, श्लो० ३३॥

एक बार भी मैं आपका दास हूँ जो ऐसी याचना करता है उस प्रपन्नजनके लिये संपूर्ण जीवोंसे मैं अभय प्रदान करता हूँ यह मेरा व्रत है ॥३३॥ ऐसा कहा। तब फिरसे रामानुजाचार्यजीने (इतः) इस कथनसे (अपि) भी (परम्) उत्कृष्ट (सन्देहः) सन्देह (अनुवर्तते) अभी है ही है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। (तर्हि) तब (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थको (श्रीमालाकारम्) श्रीमालाकारजीसे (पृच्छ) पूछलो (इति) ऐसा (अवोचत्) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीने कहा। इस वार्तामें चौबीसपद हैं। इति श्रीभाष्यकारश्रीगोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥५३॥

❁

अब श्रीभाष्यकारकी और श्रीमालाकारजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥अथ श्रीभाष्यकारमालाकारोक्ता वार्ता॥

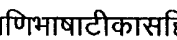
मू०--[१]अयम[२]पि [३]तम[४]पृच्छत् [५]प्रसूनं [६]सम्मर्द्दनार्हं [७]न [८]भवति-[९]एकरेखामात्रम[१०]वोच[११]त्, [१२]अथ [१३]च [१४]सन्देहोऽनुवर्तत [१५]इत्य-[१६]वोच[१७]त् [१८]तर्ह[१९]मुमर्थं [२०]वरर[२१]ङ्गार्यं [२२]पृच्छे[२३]त्यवोच[२४]त् ॥५४॥

॥ मालाकारस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीसुन्दराचले चात्र श्रीमाञ्छ्रीवामनांशतः ।
कुम्भमासे मघायां तु जज्ञे मालाधरो महान् ॥५६॥

(अयम्) यह श्रीभाष्कार (अपि) भी (तम्) उस श्रीमालाकार स्वामीजीसे (अपृच्छत्) प्रपत्ति क्या है ऐसा पूछे। तब श्रीमालाकार स्वामीजीने (प्रसूनम्) फूल (संमर्दनार्हम्) अच्छे प्रकारसे मर्दन करनेके योग्य (न) नहीं (भवति) होता है (एकरेखामात्रम्) एक रेखामात्र अर्थात् विशेषण मात्र होता है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। तब फिरसे रामानुजाचार्यजीने (अथ) अब (च) भी (संदेहः) संदेह (अनुवर्तते) है ही है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। (तर्हि) तब (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थको

(वररङ्गाचार्यम्) वररङ्गाचार्यजीसे (पृच्छ) पूछलो (इति) ऐसा (अवोचत्) श्रीमालाकार स्वामीजीने कहा है। इस वार्तामें चौबीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारश्रीमालाकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥५६॥



अब श्रीभाष्यकारके और वररङ्गाचार्यजी के संवाद रूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथ श्रीभाष्यकारवररङ्गार्य्योक्ता वार्ता॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मू०--सोऽपि तमपृच्छत् सोऽपि तदीयपर्यन्तं पश्ये-
९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६
त्यवोचत्, प्रपत्तिस्वीकार उपायबुद्धिः फले संशयश्च मोक्ष-
१७ १८ १९ २०
विरोधी सापराधासंसारिणां सर्वस्वामिनो भगवत आश्रयण-
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७
समये स्वस्यापराधपरंपरां दृष्ट्वा पश्चाद् गमनमकृत्वाश्रय-
२८ २९ ३० ३१ ३२
यितुं पुरुषकारभूतां स्वामिनीं वदति श्रीमत्पदेन, एवं
३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८
पुरुषकारभूतायाः-तेन सहावस्थानं कुत्रचिद्देशकालयोः
३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६
किमिति चेत् प्रभाप्रभावतोरिव नित्ययोगं वदति मतुपा,
४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५
पुरुषकारोऽप्यधिको यथा स्यात्तथा तस्यां छिद्रं वदन्त्या-
५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४
मपि कुर्युश्चेत्समीचीनमेव कुर्युरिति स्नेहेन रक्षणस्य
६५ ६६ ६७ ६८ ६९
हेतुभूता वात्सल्यादय उच्यन्ते, नारायणपदेन आश्रिता-
७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६
नत्यजत्सौलभ्यमुच्यते, चरणाविति पदेन-अनिष्टनिवृते-
७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४
रिष्टप्राप्तेश्चाबाधित उपाय इत्युच्यते, शरणपदेन-एतावद्गुण-
८५ ८६ ८७ ८८ ८९
पूर्त्तिसत्त्वेऽपि-एतावत्कालमेतदलाभ एतदाश्रयणाभाव-
९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५
प्रत्युक्त इत्यनुतापनिवृत्तिहेतुमाश्रयणमुच्यते प्रपद्य इति
९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३
पदेन, एवं पूर्वखण्डार्थः-अथोत्तरखण्डार्थः, अत्र तेन सहा-
१०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९
वस्थिताया अस्या अप्युद्देश्यत्वात्-अस्माभिरेकस्मिन्
११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८
किञ्चित्कारेकृतेऽपि तेन सह स्थित्वा एकं दश कृत्वा

तद्धृदयं प्रसादयतीति च हेतोस्तेन सह स्थितोच्यते श्रीमत्पदेन-अस्मान्नित्यमुक्तांश्चाविशेषेण रक्षितुः स्वामित्व-मुच्यते नारायणपदेन-एवं स्वामिनो भगवतश्चरणयोः सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितसर्वविधकैंकर्याणि च कर्त-व्यानीति प्रार्थनोच्यते चतुर्थ्या-एवं भूतकैंकर्यकरणसमये तत्प्रीतिं विना जायमानायाः स्वप्रीते र्निवृत्तिरुच्यते नमः पदेन लक्ष्म्याः भगवदपेक्षया क्वचिन्न्यूनतोच्यते क्वचि-त्साम्यमुच्यते क्वचिदाधिक्यमुच्यते चेतनप्रपत्त्युक्तिस्थले-अस्याः स्वरूपमुच्यते साम्योक्तिस्थले-ऐक्यमुच्यते-आधि-क्योक्तिस्थले सौलभ्यमुच्यत इति प्रतिपद्येत ॥५५॥

॥ वररंगार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- पुत्रद्वयंतदा यज्ञे यामुनार्यस्य विश्रुतम्।
वररंगाभिधो ज्येष्ठे शोट्टपूर्णोऽपरस्तयोः ॥५०॥

(सः) उन श्रीभाष्यकाररामानुजाचार्यजीने (अपि) भी (तम्) उन वररंगार्यजीसे (अपृच्छत्) प्रपत्ति क्या है यह पूछा। तब (सः) उन वररंगार्यजीने (अपि) भी (तदीयपर्यन्तम्) तदीयपर्यन्त (पश्य) देखलो (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। और (प्रपत्तिस्वीकारे) प्रपत्ति स्वीकारमें (उपायबुद्धिः) उपाय बुद्धि करना (च) और (फले) फलमें (संशयः) सन्देह करना ये दोनों (मोक्षविरोधी) मोक्षके विरोधी हैं। (सापराधासंसारिणाम्) अपराध सहित संसारी जीवोंके (सर्वस्वामिनः) सबके स्वामी (भगवतः) नारायण भगवान्के (आश्रयणसमये) प्रपत्ति करनेके समयमें (स्वस्य) अपनी (अपराधपरम्पराम्) अपराधकी परंपराको (दृष्ट्वा) देखकर (पश्चात्) पीछेसे (गमनम्) गमन (अकृत्वा) नहीं करके (आश्रयितुम्) आश्रयण करवानेके लिये (पुरुषकारभूताम्) चेतनकी पुरुषकारभूता (स्वामिनीम्) स्वामिनी लक्ष्मीदेवीजीको (श्रीमत्पदेन) द्वयमंत्रके प्रथम पदमें स्थित श्रीशब्दसे (वदति) कहा जाता है। और (एवम्) इस प्रकारसे (पुरुषकारभूतायाः) चेतनकी पुरुषकारभूता लक्ष्मीजीकी (तेन) उन नारायणके (सह) साथ (अवस्थानम्) स्थिति है। (कुत्रचित्) कहाँ पर

(देशकालयोः) देश और कालमें (किम्) क्या (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (प्रभाप्रभावतोः) प्रभा और प्रभावाले के (इव) समान (नित्ययोगम्) लक्ष्मी और नारायणके नित्य संयोगको (मतुपा) द्वयमंत्रके प्रथम पदमें स्थित मतुप् प्रत्ययसे (वदति) कहा जाता है। तथा (पुरुषकारः) पुरुषकार (अपि) भी (यथा) जैसे (अधिकः) अधिक (स्यात्) होवे (तथा) वैसे (तस्याम्) उसमें (छिद्रम्) छिद्रको (वदन्त्याम्) कहती हुई (अपि) भी (चेत्) यदि (कुर्युः) करेंगे (इति) इस प्रकारके (स्नेहेन) स्नेहसे (रक्षणस्य) रक्षाके (हेतुभूताः) कारण भये हुए (वात्सल्यादयः) वात्सल्य सौशील्य आदि के गुण सब (नारायणपदेन) द्वयमंत्रके प्रथम पदमें स्थित नारायण शब्दसे (उच्यन्ते) कहे जाते हैं। और (आश्रितान्) आश्रितोंको (अत्यजत्) नहीं छोड़ता हुआ (सौलभ्यम्) सौलभ्यको (चरणौ) द्वयमंत्रके प्रथम पदमें स्थित चरणौ (इति) इस (पदेन) शब्दसे (उच्यते) कहा जाता है। तथा (अनिष्टनिवृतेः) अनिष्टनिवृतिके (च) और (इष्टप्राप्तेः) इष्ट प्राप्तिके (अबाधितः) बाधारहित (उपायः) उपाय (इति) यह (शरणपदेन) द्वयमंत्रके द्वितीय पदमें स्थित शरण शब्दसे (उच्यते) कहा जाता है। और (एतावद्गुणपूर्तिसत्त्वे) इतने गुणों की पूर्ति रहनेपर (अपि) भी (एतावत्) इतना (कालम्) काल तक (एतदलाभः) इसका लाभ नहीं होना (एतदाश्रयणाभावप्रयुक्तः) इसके आश्रयणका अभाव प्रयुक्त है (इति) इस प्रकारके (अनुतापनिवृत्तिहेतुम्) अनुतापकी निवृतिके कारण (आश्रयणम्) आश्रयणको (प्रपद्ये) द्वयमंत्रके तृतीय प्रपद्ये (इति) इस (पदेन) पदसे (उच्यते) कहा जाता है। (एवम्) इस प्रकारका (पूर्वखण्डार्थः) द्वयमंत्रके पूर्व खण्डका अर्थ है। (अथ) इसके बाद अब (उत्तरखण्डार्थः) द्वयमंत्रके उत्तर खण्डका अर्थ है। (अत्र) इस द्वयमंत्रके उत्तर खण्डके प्रथम पदमें (तेन) उसके (सह) साथ (अवस्थितायाः) अवस्थित (अस्याः) इसके (अपि) भी (उद्देश्यत्वात्) उद्देश्य होनेसे (अस्माभिः) हम सबों करके (एकस्मिन्) एक के विषयमें (किंचित्कारे) कुछ भी करने योग्य (कृते) करनेपर (अपि) भी (तेन) उसके (सह) साथ (स्थित्वा) स्थित होकर (एकम्) एक को (दश) दस (कृत्वा) करके (तद्धृदयम्) उसके हृदयको (प्रसादयति) लक्ष्मीजी प्रसन्न कराती हैं। (इति) इस (हेतोः) कारणसे (अपि) भी (तेन) उस नारायणके (सह) साथ (स्थिता) नित्यस्थित लक्ष्मीजी (श्रीमत्पदेन) द्वयमंत्रके उत्तर खण्डके प्रथम पदमें स्थित श्रीमत् शब्दसे (उच्यते) कही जाती हैं। और (अस्मान्) विषयी तथा मुमुक्षु हम सबोंको तथा (नित्यमुक्तान्) नित्य और मुक्तोंको (च) तथा चकारसे कैवल्योंको (अविशेषण) अविशेषसे (रक्षितुः) रक्षा करनेवाले परमात्माके (स्वामित्वम्) स्वामित्व (नारायणपदेन) द्वयमंत्रके उत्तर खण्डके द्वितीय पदमें स्थित नारायण शब्दसे (उच्यते) कहा जाता है। (च) और (एवम्) इस प्रकार के (स्वामिनः) सबके स्वामी

(भगवतः) नारायण भगवान्के (चरणयोः) दोनों चरणारविन्दोंके (सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितसर्वविधकैंकर्याणि) सब देश और सब काल तथा सब अवस्थाके उचित सब प्रकारके कैंकर्य (कर्तव्यानि) करने योग्य हैं (इति) इस प्रकारकी (प्रार्थना) प्रार्थना (चतुर्थ्या) द्वयमंत्रके उत्तर खण्डके द्वितीय पदमें स्थित नारायण शब्दके ऊपर जो चतुर्थी विभक्ति है, उससे (उच्यते) कही जाती है। और (एवंभूतकैंकर्यकरणसमये) इस प्रकारके सब देश सब काल सब अवस्थाके उचित कैंकर्य करनेके समयमें (तत्प्रीतिम्) उस भगवत् की प्रीतिके (विना) बिना (जायमानाम्) उत्पन्न हुई (स्वप्रीतेः) अपनी प्रीति की (निवृतिः) निवृति (नमः पदेन) द्वयमंत्रके उत्तर खण्डके तृतीय नमः पदसे (उच्यते) कही जाती है। (लक्ष्म्याः) लक्ष्मीजीकी (भगवदपेक्षया) नारायण भगवान्की अपेक्षासे (क्वचित्) किसी स्थलमें (न्यूनता) न्यूनता (उच्यते) कही जाती है। और (क्वचित्) किसी स्थलमें (साम्यम्) समता (उच्यते) कही जाती है। तथा (क्वचित्) किसी स्थलमें (आधिक्यम्) अधिकता (उच्यते) कही जाती है। (चेतनप्रपत्त्युक्तिस्थले) चेतनकी प्रपत्तिके उक्ति-स्थलमें (अस्याः) इसका (स्वरूपम्) स्वरूप (उच्यते) कहा जाता है। और (साम्योक्तिस्थले) समताके उक्तिस्थलमें (ऐक्यम्) एकता (उच्यते) कही जाती है। तथा (आधिक्योक्तिस्थले) अधिकताके उक्ति-स्थलमें (सौलभ्यम्) सौलभ्यगुण (उच्यते) कहा जाता है। (इति) इस प्रकारकी (प्रतिपद्येत) प्रपत्तिकरें। "उच्यते" यह प्रयोग ।। सार्वधतुके यक् ।। व्या० अ० ३, पा० १, सू० ६७। इस सूत्रसे यक् और ।। वचिस्वपियजादीनां किति।। व्या० अ० ६, पा० १, सू० १५। इस सूत्रसे संप्रसारण होकर सिद्ध होता है। इस पचपनवीं वार्तामें एक सौ अट्ठहत्तर पद हैं। इति श्रीभाष्यकारवररंगार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।५५।।

अब वेदान्ती स्वामीजीके और कलिवैरिदास स्वामीजीके संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

।। अथ वेदान्तिकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ।।

मू०––कलिवैरिदासेन वेदान्तिसमीपे श्रीभाष्याध्ययनकाले पाकः सिद्ध इत्युक्तो वेदान्ती तं भगवदाराधनं कुर्वित्यवोचत्, स चाराधनमहं जानामि किमित्यवोचत्– वेदान्ती चाहमेव किं सम्यक्क्रमं जानामि द्वयमुच्चारयन् चरणौ प्रक्षाल्य निवेदयितुं न जानासीत्यवोचत्, अभि–

मतदेशानां[४०] बहुत्वे[४१] नैवेद्यस्यैकत्वे[४२] कथं[४३] निवेदनं[४४] कर्तव्यमिति[४५][४६] पृष्टोऽप्युल्लपिल्लै[४७][४८][४९] द्वयपूर्वोत्तरखण्डमध्ये[५०] सर्वमंगलविग्रहाये-[५१]ति[५२] विशेषणसहितं[५३] द्वयमुच्चारयन्[५४][५५] निवेदयेदित्यवोचत्[५६][५७][५८], एतदात्मनां[५९] महालक्ष्मीः[६०] प्रियं[६१] करोति[६२] स्वामी[६३] हितं[६४] करोति[६५] प्रियहितयोरुभयोः[६६] समावेशः[६७] कथमिति[६८] चेत्[६९], आश्रिताना-[७०]श्रितविषये-आश्रितविषयेऽस्यां[७१] प्रियं[७२] कुर्वन्त्यां[७३] स्वामी[७४] स्वा-[७५]श्रितदोषमपश्यन्[७६] लक्ष्मीहृदयमनुसरतीति[७७] प्रियकार्यं[७८] वात्सल्यं[७९] जीवति-अनाश्रितेऽपि[८०] स्वामिनि[८१] हितं[८२] कुर्वति[८३] प्रकृतिक्रौर्येणायमावां[८४] न[८५] प्राप्नोतीति[८६], प्रजाग्रन्थिछेत्तार[८७] इव तेन[८८] सह[८९] हितं[९०] करोतीत्यत्र[९१] तद्धितकार्यं[९२] स्वातन्त्र्यं[९३] जीवति[९४], तस्मादाश्रितविषये[९५] प्रियमनाश्रितविषये[९६] हितं[९७] चोभहृदयानुगुणमेव[९८] प्रायश्चित्तव्यावृत्तिरुपायान्तरव्यावृत्ति-[९९]रुपेयव्यावृत्तिरधिकारिव्यावृत्तिः[१००] प्राप्यान्तरव्यावृत्तिः[१०१] देवता-[१०२]न्तरव्यावृत्तिः[१०३] भोगान्तरव्यावृत्तिः[१०४] स्वभोगव्यावृत्तिः[१०५] ॥५६॥

॥ वेदान्तिस्तुतिः ॥

अर्थ– तथा माधवदासाख्यो हरिभक्तिपरायणः ।

संजातज्ञानवैराग्यो मनस्येवमचिन्तयत् ॥५८॥

(कलिवैरिदासेन) कलिवैरिदासस्वामीजी ने (वेदान्तिसमीपे) वेदान्ती स्वामीजी के समीप में (श्रीभाष्याध्ययनकाले) श्रीभाष्य के पढ़ने के समय में (पाकः) पाक (सिद्धः) सिद्ध हो गया (इति) ऐसा (उक्तः) वेदान्ती स्वामीजी से कहा। तब (वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी ने (तम्) उन कलिवैरिदास स्वामीजी से (भगवदाराधनम्) भगवान का आराधन (कुरु) करो (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। तब (सः) उन कलिवैरिदासस्वामीजी ने (च) भी (अहम्) मैं (किम्) क्या (आराधनम्) भगवत् के आराधन की विधि को (जानामि) जानता हूँ (इति) ऐसा (अवोचत्) वेदान्ती स्वामीजी से कहा। तब (वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी ने (च) भी (किम्) क्या (एव)

निश्चय करके (अहम्) मैं (सम्यक्) अच्छे प्रकार से (क्रमम्) भगवत् के आराधनक्रम को (जानामि) जानता हूँ। (चरणौ) दोनों चरणों को (प्रक्षाल्य) धोकर (द्वयम्) द्वयमंत्रको (उच्चारयन्) उच्चारण करते हुए (निवेदयितुम्) भगवत्को निवेदन करने के लिये (न) नहीं (जानासि) जानते हो (इति) ऐसा (अवोचत्) कलिवैरिदासजीसे कहा। तब कलिवैरिदास स्वामीजीने (अभिमतदेशानाम्) भगवत्के अभिमत दिव्य देशोंके (बहुत्वे) बहुत होनेसे और (नैवेद्यस्य) नैवेद्यके (एकत्वे) एक होनेसे (कथम्) कैसे (निवेदनम्) निवेदन (कर्तव्यम्) करने योग्य है (इति) ऐसा (पृष्टः) वेदान्ती स्वामीजीसे पूछा। (अपि) तब तो (उल्लप्पिल्लै) उल्लप्पिल्लै महात्माने (द्वयपूर्वोत्तरखण्डमध्ये) द्वयमंत्रके पूर्वखण्ड और उत्तरखण्डके मध्यमें (सर्वमंगलविग्रहाय) समस्त मंगल विग्रहके लिये (इति) इस (विशेषणसहितम्) विशेषणके साथ (द्वयम्) द्वयमंत्रको (उच्चारयन्) उच्चारण करता हुआ (निवेदयेत्) भगवत्को निवेदन करे (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। (एतदात्मनाम्) इन सबोंकी आत्माओंके (महालक्ष्मीः) महालक्ष्मीजी (प्रियम्) प्रियको (करोति) करती है। और (स्वामी)नारायणस्वामी (हितम्) हितको (करोति) करते हैं। (प्रियहितयोः) प्रिय और हित (उभयोः) इन दोनोंका (समावेशः) समावेश (कथम्) कैसे (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (आश्रितानाश्रितविषये) आश्रित और अनाश्रित के विषय में (आश्रितविषये) आश्रित जीव के विषय में (अस्याम्) इस महालक्ष्मीजीके (प्रियम्) प्रियको (कुर्वन्त्याम्) करने पर (स्वामी) नारायण भगवान् (स्वाश्रितदोषम्) अपने आश्रितके दोष को (अपश्यन्) नहीं देखते हुए (लक्ष्मीहृदयम्) लक्ष्मीजीके हृदयको (अनुसरति) अनुसरण करते हैं (इति) इस प्रकाके (प्रियकार्यम्) प्रियके कार्य (वात्सल्यम्) वात्सल्यगुण (जीवति) जीता है। और (अनाश्रिते) अनाश्रित जीवके विषयमें (अपि) भी (स्वामिनि) नारायण भगवान्के (हितम्) हितको (कुर्वति) करनेपर (प्रकृतिक्रौर्येण) स्वभावकी क्रूरतासे (अयम्) यह चेतन (आवाम्) हम दोनों लक्ष्मी और नारायणको (न) नहीं (प्राप्नोति) प्राप्त करता है (इति) इस प्रकारसे (प्रजाग्रन्थिछेत्तारः) सन्ततिकी गाँठको काटनेवालेके (इव) समान (तेन) उसके (सह) साथ (हितम्) हितको (करोति) करता है। (इति) इस प्रकारका (अत्र) यहाँपर (तद्धितकार्यम्) उसके हितका कार्य (स्वातन्त्र्यम्) स्वातंत्र्य (जीवति) जीता है। (तस्मात्) इस कारणसे (आश्रितविषये) आश्रित जनके विषयमें (प्रियम्) प्रिय (च) और (अनाश्रितविषये) अनाश्रित जनके विषयमें (हितम्) हित (उभयहृदयानुगुणम्) लक्ष्मी और नरायण इन दोनों के अनुगुण (एव) निश्चय करके होता है। और (प्रायश्चित्तव्यावृतिः) प्रायश्चित्तकी व्यावृत्ति तथा (उपायान्तरव्यावृत्तिः) उपायान्तरोंकी व्यावृत्ति और (उपेयव्यावृत्तिः) उपेयकी व्यावृत्ति तथा (अधिकारिव्यावृत्तिः)

अधिकारीकी व्यावृत्ति और (प्राप्यान्तरव्यावृत्तिः) प्राप्यान्तरकी व्यावृत्ति तथा (देवतान्तरव्यावृत्तिः) देवतान्तरोंकीव्यावृत्ति और (भोगान्तरव्यावृत्तिः) भोगान्तरोंकी व्यावृत्ति तथा (स्वभोगव्यावृत्तिः) अपने भोगकी व्यावृत्ति होती है। इस वार्ता में एक सौ तेईसपद हैं। इति यतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।५६।।

अब भट्टारकस्वामीजी के और वेदान्तीस्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भट्टारकवेदान्तिगदिता वार्ता ॥

मू०–– भट्टारके कस्यचिद्धितमुपदिशति, वेदान्ती लक्ष्मीं पुरस्कृत्य क्रियमाणाश्रयणस्य किं प्रयोजनमित्यपृच्छत्, स चैवमाह, एतत्सन्निधानेनात्यन्तसापराधी काको मस्तके न छिन्नस्तादृशापराधाभावेऽप्येतत्सन्निधानाभावाद्रावणो मस्तकेषु छिन्नः बालस्वामी जानकीं पुरस्कृत्य स्वामिचरणावाश्रित्य स्वगमननिषेधसंकल्पं निवर्त्य स्वामिनं प्राप, श्रीविभीषणगुहप्रभृतयो जानकीं पुरस्कृत्य स्वाभिमतं प्रापुः श्रीमत्पदेन वक्षस्थलं देव्या सहानुसंदधाति नारायणचरणौ शरणं प्रपद्य इति पदैः श्रीपादावनुसंदधाति श्रीमते नारायणेत्यनेन पार्श्वस्थां देवीं धृतां मालां धृतं किरीटमरुणश्रीमुखमण्डलं चानुसंदधाति, आयनमोभ्यां कैंकर्यमनुसंदधाति, वस्तुमान् वस्तु पुरस्करोति, वस्तु विनियोगं पुरस्करोति, विनियोगो भोगं पुरस्करोति, भोगोऽभिमतं पुरस्करोति, अभिमतमनुगुणं पुरस्करोति, अनुगुणं परस्यानुकूलं भवति, भट्टारको वेदान्तिनं प्रति द्वयार्थमुक्त्वा द्वये-उत्तरार्थानु-

सन्धानं[९५] परमपदं[९६] प्राप्तस्यैव[९७] संभवति[९८], अत्रैतदर्थमनुसंदधानो[९९१००] जीवन्मुक्त[१०१] एवेत्यवदत्[१०२] ॥५७॥[१०३][१०४][१०५]

॥ भट्टारकस्तुतिः ॥

अर्थ– **रंगेशानुग्रहाज्जातौ पुत्रौ तस्यां महौजसौ।**
कूरेशाच्छुभकृद्वर्षे वैशाखे पूर्णिमातिथौ॥
अनुराधाख्यनक्षत्रे पुरा कुशलवाविव॥५९॥

(भट्टारके) भट्टारक स्वामीजी (कस्यचित्) किसी मुमुक्षुके (हितम्) हित को (उपदिशति) उपदेश करते थे तो (वेदान्ती)। वेदान्ती स्वामीजी ने (लक्ष्मीम्) लक्ष्मीजी को (पुरस्कृत्य) पुरुषकार करके (क्रियमाणाश्रयणस्य) क्रियमाण भगवत् के आश्रयण का (किम्) क्या (प्रयोजनम्) प्रयोजन है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। तब (सः) उन भट्टारकस्वामीजी ने (च) भी (एवम्) इस प्रकार से (आह) कहा। "आह" यह प्रयोग ॥ **ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः** ॥ **व्या० अ० ३, पा० ४, सू० ८४** ॥ इस सूत्र से सिद्ध होता है। (एतत्सन्निधानेन) सीतारूपधारिणी लक्ष्मीजी के सन्निधान से (अत्यन्तसापराधी) ॥ **विददार स्तनान्तरे** ॥ **वा० रा० सुं० ५, स० ३८, श्लो० २२** ॥ इस श्लोक के अनुसार अत्यन्त अपराध से युक्त (काकः) जयन्तकाक (मस्तके) **का मस्तक** (न) नहीं (छिन्नः) श्रीरामजी से काटा गया है। क्योंकि लिखा है कि **बधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत्** ॥ **वा० रा० सुं० ३८, श्लो० ३३** ॥ और भी लिखा है कि

॥ **प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम्। पाहि पाहीति भर्तारमुवाच दयया विभुम्॥ पद्मपु० उत्तर खं० ६, अ० २४२, श्लो० २०७** ॥

प्राण के संशय प्राप्त हुए जयन्त कौवेको देखकर सीताजी दयासे विभु श्रीरामजी से कहती हैं कि हे भगवन्! इस कौवेकी रक्षा कीजिये॥२०७॥ इससे साबित होता है कि श्री अम्बा के सन्निधान से महापराधी जयन्त काक का मस्तक नहीं काटा गया है और (तादृशापराधाभावे) जयन्त के समान महापराध न था (अपि) तौभी (एतत्सन्निधानाभावात्) सीता रूपधारिणी लक्ष्मीजी के सन्निधान के अभाव होने से (रावणः) रावण के (मस्तकेषु) मस्तकों को (छिन्नः) श्रीरामजी ने काट दिया। क्योंकि लिखा है कि॥

रावणस्य शिरोऽच्छिन्त श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम्। तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा॥ वा० रा० यु० ६, स० १०९, श्लो० ५५ ॥

श्रीरामजी ने रावण के शोभायुक्त कुण्डल से प्रकाशित सिर को काट डाला, तब वह सिर भूमि में गिरा, और उस सिर को तीनों लोकों के जीवों ने देखा।।५५।। इससे साबित होता है, कि श्री अम्बा के सन्निधान के अभाव होने से रावण का मस्तक काटा गया है। (बालस्वामी) श्रीलक्ष्मणजी ने (जानकीम्) श्री सीताजी को (पुरस्कृत्य) पुरुषकार करके (स्वामिचरणौ) श्रीरामजी के चरणारविन्दों को (आश्रित्य) आश्रयण करके (स्वगमननिषेधसंकल्पम्) अपने वनमें गमन के निषेधरूप श्रीरामजी के संकल्प को (निवर्त्य) दूर करके (स्वामिनम्) श्रीरामजी को (प्राप) प्राप्त किया। क्योंकि वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि।।

सभ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः। सीतामुवाचातिशयां राघवं च महाव्रतम्।। वा० रा० अयो० २ स० ३१ श्लो० २।।

वे श्रीलक्ष्मणजी भ्राता श्रीरामचन्द्रजी के दोनों चरणारविन्दों को जोर से पकड़ कर अत्यन्त श्रेष्ठ श्रीसीताजी से और महाव्रत श्रीरामजी से बोले।।२।। और **॥ सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥ वा० रा० अरण्य० ३, स० १५, श्लो० ६॥** श्रीलक्ष्मणजी ने श्रीसीताजी के सामने श्रीरामजी से इस वचन को कहा।।६।। इन प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि श्रीलक्ष्मणजी ने श्रीअम्बा को पुरुषकार किया है। और **॥ सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर ॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो० १५॥** हे श्री लक्ष्मण! तुम कौसल्या का पोषण करो और कहे हुए इस अर्थ को करो अर्थात् वन में तुम मत चलो।।१५।। इस प्रमाण से साबित होता है कि श्रीरामजी का संकल्प था की श्रीलक्ष्मणजी वन में न चलें। परन्तु श्रीअम्बा के पुरुषकार के द्वारा श्रीलक्ष्मणजी ने श्रीरामानुवृत्ति को प्राप्त किया है क्योंकि साक्षात् श्रीरामजी ने कहा है कि **॥ सर्वमायुधमादाय क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण ॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो० ३१॥** हे श्री लक्ष्मण! सब आयुधों को लेकर शीघ्र तुम आवो।।३१।। उसके बाद श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजी के साथ वन में गये हैं। इससे आश्रयण समय में लक्ष्मीजी को अवश्य पुरुषकार करना चाहिये। और (श्रीविभीषणगुहप्रभृतयः) श्रीविभीषण तथा गुहदेव आदिक ने (जानकीम्) श्रीसीताजी को (पुरुस्कृत्य) पुरुषकार करके (स्वाभिमतम्) अपने अभिमत श्रीरामजी को (प्रापुः) प्राप्त किया है। क्यों कि श्रीविभीषण के विषय में लिखा है कि **॥ सीतां च रामाय निवेद्य देवीं वसेम राजन्निह वीतशोकाः ॥ वा० रा० यु० ६, स० १५, श्लो० १४॥** हे राजन्! श्रीसीतादेवी को श्रीरामजी के लिये निवेदन करके यहाँपर शोकरहित हम सब निवास करें।।१४।। **साधुनिर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः॥ वा० रा० यु० ६, स० १७, श्लो० १४॥** श्रीसीताजी को श्रीरामजी के लिये तुम निवेदन कर दो, ऐसा सुन्दर वाक्य मैंने बारंबार

कहा॥१४॥ इन प्रमाणों से साबित होता है कि श्रीविभीषण श्रीरामजी के चरणारविन्दों में गिरे अर्थात् श्रीरामजी को प्राप्त किये॥२॥ और गुहदेव के विषय में लिखा है कि–

सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः। गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन्॥ वा० रा० अयो० २, स० ५०॥

श्रीसीता सहित रामजी को पाकर उसके बाद गुहदेव श्रीलक्ष्मणजीसे बात करते हुए सूत के साथ वृक्ष के पास में ठहरे॥५०॥ इससे साबित होता है कि गुहदेव ने श्रीअम्बा को पुरुषकार किया है। (श्रीमत्पदेन) द्वयमंत्र के प्रथम पद में स्थित "श्रीमत्" शब्द से (वक्षस्थलम्) भगवत् के वक्षस्थल को (देव्या) लक्ष्मीदेवीजी के (सह) साथ (अनुसंदधाति) मुमुक्षुजन अनुसंधान करते हैं। और (नारायणचरणौ) द्वयमंत्र के प्रथम पद में स्थित "नारायणचरणौ" इस शब्द से तथा (शरणम्) द्वयमंत्र के दूसरे "शरणम्" और (प्रपद्ये) द्वयमंत्र के तीसरे "प्रपद्ये" (इति) इन (पदैः) पदों से (श्रीपादौ) श्रीचरणारविन्दों को (अनुसंदधाति) प्रपन्नजन अनुसन्धान करते हैं। और (श्रीमते) द्वयमंत्र के चौथे "श्रीमते" इस पद से तथा (नारायण इति) द्वयमंत्र के पाँचवें पदमें स्थित "नारायण" इस (अनेन) शब्द से (पार्श्वस्थाम्) पार्श्व में स्थित (मालाम्) माला को (धृताम्) धारण की हुई (देवीम्) श्रीदेवी को। क्योंकि लिखा है कि–

सुवर्णरजतस्रजाम्॥ श्रीसूक्त० मं० १॥ मातरं पद्ममालिनीम्॥ मं० ११॥ हेममालिनीम्॥१३॥ पिङ्गलां पद्ममालिनीम्॥१४॥

सुवर्ण और रजत की माला वाली को॥१॥ पद्म की मालावाली श्रीअम्बा को॥११॥ सुवर्ण की माला वाली को॥१३॥ पिङ्गल कमल की मालावाली श्रीदेवी को॥१४॥ (च) और (किरीटम्) किरीट (धृतम्) धारणकिये हुए (अरुणश्रीमुखमण्डलम्) अरुण श्रीमुखमंडल को (अनुसंदधाति) प्रपन्न अनुसंधान करता है। तथा (आयनमोभ्याम्) द्वयमंत्र के पांचवेंपद में स्थित नारायणशब्द के ऊपर चतुर्थी विभक्ति से और द्वयमंत्र के छठवें "नमः" इसपदसे (कैंकर्यम्) भगवान् के कैंकर्य को (अनुसंदधाति) प्रपन्न अनुसंधान करता है। (वस्तुमान्) वस्तुवाला परमेश्वर (वस्तु) चेतनवस्तु को (पुरस्करोति) पुरस्कार करता है। और (वस्तु) चेतन वस्तु (विनियोगम्) विनियोग को (पुरस्करोति) पुरस्कार करता है। तथा (विनियोगः) विनियोग (भोगम्) भोग को (पुरस्करोति) पुरस्कार करता है। और (भोगः) भोग (अभिमतम्) अभिमत को (पुरस्करोति) पुरस्कार करता है। तथा (अभिमतम्) अभिमत (अनुगुणम्) अनुगुण को (पुरस्करोति) पुरस्कार करता है। और (अनुगुणम्) अनुगुण (परस्य) पर पुरुष के (अनुकूलम्) अनुकूल (भवति) होता है 'पुरस्करोति' यहाँ पर॥ **नमस्पुरसोर्गत्योः॥**

व्या० अ० ८, पा० ३, सू० ४० ॥ इस सूत्र से सकार हुआ है। (भट्टारकः) पराशरभट्टाचार्य स्वामीजीने (वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजी के (प्रति) प्रति (द्वयार्थम्) द्वयमंत्र के अर्थ को (उक्त्वा) कहकर (द्वये) द्वयमंत्र में (उत्तरार्थानुसन्धानम्) उत्तरार्ध के अर्थ का अनुसन्धान (परमपदम्) त्रिपाद्विभूति को (प्राप्तस्य) प्राप्त किये हुए प्रपन्नों को (एव) निश्चय करके (संभवति) अच्छे प्रकार से होता है। (अत्र) यहाँ पर (एतदर्थम्) इस द्वयमंत्र के अर्थ को (अनुसंदधानः) अनुसंधान करनेवाला प्रपन्न (जीवन्मुक्तः) जीवनमुक्त (एव) निश्चय करके है (इति) ऐसा (अवदत्) कहा है। इस वार्ता में एक सौ पाँच पद हैं। इति भट्टारकवेदान्तिगदितवार्ताव्याख्यानम्॥५७॥

अब गोष्ठीपूर्णस्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ गोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०––व्याघ्रसिंहवदुपायवेषः, यूथपति र्मत्तगज इवोपेयवेष इति गोष्ठीपूर्णो वदति ॥५८॥

॥ गोष्ठीपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ– प्रणामं विधिवत्कृत्वा गोष्ठीपूर्णमुवाच सः।
मंत्रार्थमधुना मह्यं दत्वा रक्ष कृपानिधे॥६०॥

(व्याघ्रसिंहवत्) बाघ सिंह के समान (उपायवेषः) उपाय वेष है। और (यूथपतिः) यूथपति (मत्तगजः) मतवाले हाथी के (इव) समान (उपेयवेषः) उपेय का वेष है (इति) ऐसा (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्णस्वामीजी (वदति) कहते हैं। इस वार्ता में नवपद हैं। इति गोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥५८॥

अब गोविन्दाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०––व्यामोह उपायो मुखविकास उपेय इति गोविन्दाचार्यो वदति॥५९॥

॥ गोविन्दाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– वैशाखे तु विशाखायां वैनतेयांशतो महान्।

गोविन्दः पद्मनेत्रार्य्याद्युतिमत्यामजायत॥६१॥

(व्यामोहः) व्यामोह (उपायः) उपाय है। और (मुखविकासः) भगवन्मुखोल्लास (उपेयः) उपेय है (इति) ऐसा (गोविन्दाचार्यः) गोविन्दाचार्य स्वामीजी (वदति) कहते हैं। इस वार्ता में सात पद हैं। इति गोविन्दाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥५९॥

अब गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी और महाचार्यजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ महाचार्यगोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०––श्रीगोष्ठीपूर्णो महाचार्यमुपायांशे – उपायत्वेन निश्चितः क इत्यपृच्छत्, अत्र चिरकालं स्वरूपनिरूपणं कृत्वा उपायनिरूपणमस्माभिरेव कर्त्तुमारब्धमिति विषण्णोऽभवत् तर्ह्युपायो नापेक्षितः किमित्यवोचत्, अभिरूपायां योषिति सौन्दर्यं वर्द्धयन्त्यामभिरूप ऐश्वर्यवान् पुरुषोऽन्तरङ्गतया व्यामुग्धो भवति, एवमङ्गे चेतने मालिन्यं निवर्त्तयति, तस्येश्वरस्य हृदयमत्यासन्नं भवतीत्यवोचत्॥६०॥

॥ गोष्ठीपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ– ततः श्रीलक्ष्मणाचार्यो गत्वा गोष्ठीपुरं च सः।

गोष्ठीपूर्णं तदर्थाय प्रार्थयामास भक्तितः॥६२॥

(श्रीगोष्ठीपूर्णः) श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीजी ने (महाचार्यम्) महाचार्य जी से (उपायांशे) उपायांश में (उपायत्वेन) उपायतया (निश्चितः) निश्चय किया हुआ (कः) क्या है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा और (अत्र) यहाँ पर (चिरकालम्) बहुत दिनतक (स्वरूपनिरूपणम्) स्वरूप के निरूपण को (कृत्वा) करके (उपायनिरूपम्) उपाय के निरूपण को (कर्तुम्) करने के लिये (अस्माभिः) हम सबों से (एव) निश्चय करके (आरब्धम्) आरंभ हुआ है (इति) इस प्रकार के (विषण्णः) विषण्ण (अभवत्)) हो गये। (तर्हि) तब (उपायः) उपाय (न) नहीं (अपेक्षितः) अपेक्षित

है (किम्) क्या (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। और (अभिरूपायाम्) अत्यन्तसुन्दर रूपवाली (योषिति) स्त्री (सौन्दर्यम्) अपने सौन्दर्यको (वर्द्धयन्त्याम्) बढ़ावे तो (अभिरूपः) अत्यन्तरूपवाले (ऐश्वर्यवान्) ऐश्वर्यसे युक्त (पुरुषः) पुरुष (अन्तरङ्गतया) भीतरके भावोंसे (व्यामुग्धः) अत्यन्त मोहित (भवति) होता है। (एवम्) इसप्रकारसे (अज्ञे) अल्पज्ञ (चेतने) चेतन जीवके विषयमें (मालिन्यम्) मलिनताको (निवर्त्तयति) निवृत्तकराता है। तथा (तस्य) उन (ईश्वरस्य) परमात्माका (हृदयम्) हृदय (अत्यासन्नम्) अत्यन्त आसन्न (भवति) होता है (इति) ऐसा (अवोचत्) महाचार्यजीने कहा है। इस साठवीं वार्तामें उञ्चास पद हैं। इति गोष्ठीपूर्णमहाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥६०॥

अब देवकी देवीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥अथ देवकीदेव्युक्ता वार्ता॥

मू०––देवकीदेव्युक्ता वार्ता स्वरूपज्ञस्य स्वयं स्वरूपं निरुपयतस्तदनुरूपं प्रपदनानुभवविशेषेऽनुभवान्तरप्रयोजकत्वानुसन्धानमयुक्तम् उक्तार्थश्रवणे कृते स्वरूपानुरूपोपायोपेयादय उपपन्ना भवन्तीत्यवदत्॥६१॥

अर्थ–(देवकीदेव्युक्ता) देवकी देवी से कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (स्वरूपज्ञस्य) स्वरूप को जाननेवाले के (स्वयम्) अपने आप (स्वरूपम्) स्वरूप को (निरूपयतः) निरूपण करते हुए (तदनुरूपं) उस स्वरूप के अनुरूप (प्रपदनानुभवविशेषे) प्रपत्ति के अनुभव विशेष में (अनुभवान्तरप्रयोजकत्वानुसन्धानम्) दूसरे अनुभव के प्रयोजकत्व का अनुसंधान करना (अयुक्तम्) अयोग्य है। (उक्तार्थश्रवणे) आचार्य के कहे हुए अर्थ को श्रवण (कृते) करनेपर (स्वरूपानुरूपोपायोपेयादयः) अपने स्वरूप के अनुरूप उपाय और उपेय आदिक (उपपन्नाः) प्राप्त (भवन्ति) होते हैं (इति) इस प्रकार से (अवदत्) देवकी देवीजी ने कहा है। इस इकसठवीं वार्ता में सत्तरह पद हैं। इति देवकीदेव्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥६१॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता॥

मू०––प्रपन्नत्वं नाम-अनिष्टनिवृत्तिमिष्टप्राप्तिं चास्माकं

७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
स्वाम्येव कुर्यादिति द्वयानुसन्धानमुखेनैकदा विश्वस्याव-
१५ १६ १७ १८
स्थितिः प्रपत्तिनिष्ठा नाम-प्रपत्तिप्रकारप्रभावयोरनुसन्धानं
१९ २० २१ २२
प्रपत्तिप्रकारानुसन्धानं प्रपत्तुः प्रकृतौ प्राकृतानिरूपणं
२३ २४ २५ २६ २७ २८
प्रकृत्यात्मविवेकी यदि प्रपन्नप्रभावं पुरस्कृत्यादृष्ट्वा प्रकृतिं
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६
पुरस्कृत्य पश्यति तदा प्राग्वत् प्राकृत एव भवेदिति कलि-
३७ ३८
वैरिदासो वदति ॥६२॥

(प्रपन्नत्वम्) प्रपन्न (नाम) माने (अनिष्टनिवृत्तिम्) अनिष्ट की निवृत्ति को (च) और (इष्टप्राप्तिम्) इष्ट की प्राप्ति को (अस्माकम्) हम सबों के (स्वामी) स्वामी नारायण भगवान् (एव) निश्चय करके (कुर्यात्) करेंगे (इति) इस प्रकार के (द्वयानुसन्धानमुखेन) द्वयमंत्र के अनुसंधान के मुख से (एकदा) एक ही काल में (विश्वस्य) विश्वास करके (अवस्थितिः) अवस्थिति करना है। और (प्रपत्तिनिष्ठाः) प्रपत्तिनिष्ठ (नाम) माने (प्रपत्तिप्रकारप्रभावयोः) प्रपत्ति के प्रकार का और प्रभाव का (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना है। तथा (प्रपत्तिप्रकारानुसन्धानम्) प्रपत्ति के प्रकार का अनुसन्धान करना माने (प्रपत्तुः) प्रपत्ति करनेवाले की (प्रकृतौ) प्रकृति में (प्राकृतानिरूपणम्) प्राकृतत्व का नहीं निरूपण करना है। (प्रकृत्यात्मविवेकी) प्रकृति और आत्मा का विचार करनेवाला पुरुष (यदि) जब (प्रपन्नप्रभावम्) प्रपन्नजन के प्रभाव को (पुरस्कृत्य) आगे करके (पश्यति) देखता है। (तदा) तब (प्राग्वत्) पहले के समान (प्राकृतः) प्रकृति संबन्धी (एव) निश्चय करके (भवेत्) होगा (इति) ऐसा (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी (वदति) कहते हैं। इस बासठवीं वार्ता में अड़तीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥६२॥

अब भट्टारक स्वामीजी के और किसी सोमयाजी श्रीवैष्णव के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भट्टारकश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४
मू०––श्रीभट्टारकश्रीपादावाश्रितः कश्चन सोमयाजी
५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
श्रीवैष्णवः ममाराधनक्रममुपदिशेत्यपृच्छत्, स च तस्य
१४ १५ १६ १७ १८ १९
भाष्यकृदुक्तनित्याराधनक्रममुपदिदेश, स च तेन क्रमेण

चिरकालमाराधनं कुर्वन्नेकदा भट्टारककृताराधनमपश्यत्,
तत्र पूर्वं स्वस्योपदिष्टमेकमपि नापश्यत् तत्कृताराधनक्रमस्तु स्वयं स्नात्वा वस्त्रं परिधायोर्ध्वपुंड्रं धृत्वा
भोजनार्थं परिवेषणे कृते भगवन्तमानयेत्युक्त्वा स्वार्थं परिवेषितमन्नं पानीयं च निवेद्य स्वयं प्रसादं स्वीकृतवान्
एतद् दृष्ट्वा स च श्रीवैष्णवः ममैकमुपदिष्टं भवानेवमकरोत् तत्र किं कारणमित्यवसन्नोऽपृच्छत्, सकलवेदशास्त्रेष्वालोच्य दृष्टेषु तव ततोऽन्यद्वक्तुं योग्यं न दृष्टं मम
निरूपणे-एवं विनान्यो व्यापारः कर्तव्यो न दृष्ट इत्यवोचत् ॥६३॥

॥ भट्टारक-स्तुतिः ॥

अर्थ– श्रीपराशरभट्टार्यं रंगेशो भक्तवत्सलः।
पुत्रस्वीकारमकरोत्पीतहारिद्रशंवरः॥६३॥

(श्रीभट्टारकश्रीपादौ) श्रीभट्टारकस्वामीजी के श्रीचरणारविन्दों को (आश्रितः) आश्रयण करनेवाले (कश्चन) किसी (सोमयाजी) सोमयज्ञ करनेवाले (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णवने (मम) मुझे (आराधनक्रमम्) भगवदाराधन क्रम का (उपदिश) उपदेश दीजिये (इति) ऐसा (अपृच्छत्) भट्टारक स्वामीजी से पूछा। तब (सः) उस भट्टारक स्वामीजी ने (च) भी (तस्य) उस सोमयाजी श्रीवैष्णव के लिये (भाष्यकृदुक्तनित्याराधनक्रमम्) श्री भाष्यकार से कहे हुए नित्याराधन क्रम का (उपदिदेश) उपदेश किया। तब (सः) वह सोमयाजी श्रीवैष्णव (च) भी (तेन) भट्टारक स्वामीजी से उपदेश किये हुए (क्रमेण) क्रम से (चिरकालम्) बहुत दिनतक (आराधनम्) भगवदाराधन को (कुर्वन्) करता हुआ (एकदा) एक समय में (भट्टारककृताराधनम्) भट्टारक स्वामीजी से किये हुए भगवदाराधन को (अपश्यत्) देखा। (तत्र) तो वहाँपर (पूर्वम्) पहले (स्वस्य) अपने लिये (उपदिष्टम्) उपदेश किये हुए (एकम्) एक (अपि) भी भगवदाराधन क्रम को (न) नहीं (अपश्यत्) उस सोमयाजी ने देखा। (तत्कृताराधनक्रमः) भट्टारक स्वामीजी से किया हुआ आराधन क्रम (तु) तो ऐसा है कि (स्वयम्) अपने (स्नात्वा) स्नानकर (वस्त्रम्) कौपीन

धोती चादर आदिक वस्त्र को (परिधाय) धारण करके (ऊर्ध्वपुंड्रम्) ऊर्ध्वपुंड्र को (धृत्वा) बाहर स्थानों में धारण करके (भोजनार्थम्) भोजन के लिये (परिवेषणे) अच्छे प्रकार से सामग्री (कृते) तैयार करने पर (भगवन्तम्) शालग्राम भगवान् को (आनय) लाओ (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर भगवान् को मँगाकर के (स्वार्थम्) अपने लिये (परिवेषितम्) परोसे हुए (अन्नम्) अन्न को (च) और (पानीयम्) पीने योग्य जल को (निवेद्य) निवेदन करके (स्वयम्) अपने ही (प्रसादम्) भगवत् के प्रसाद को (स्वीकृतवान्) स्वीकार किया। (च) और तब (एतद्) इस भट्टारक स्वामीजी से किये हुए भगवदाराधन क्रम को (दृष्ट्वा) देखकर (सः) उस सोमयाजी (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव ने (मम) मेरे लिये (एकम्) एक अन्य ही (उपदिष्टम्) आपने उपदेश किया। और (भवान्) आपने (एवम्) इस प्रकार से भगवदाराधन को (अकरोत्) किया है। (तत्र) उसमें (किम्) क्या (कारणम्) कारण है (इति) ऐसा (अवसन्नः) अवसन्न होकर (अपृच्छत्) पूछा। तब (सकलवेदशास्त्रेषु) समस्त वेद और शास्त्रों में (आलोच्य) देखकर (दृष्टेषु) मेरे किये हुए आराधन क्रम देखने पर भी (तव) तुझको (ततः) जो आराधन क्रम का उपदेश किया हूँ उससे (अन्यत्) दूसरा (वक्तुम्) कहने के लिये (योग्यम्) योग्य (न) नहीं (दृष्टम्) देखा गया है। तथा (मम) मेरे (निरूपणे) निरूपण करने पर (एवम्) इस प्रकार के (विना) बिना (अन्यः) अन्य (व्यापारः) व्यापार (कर्तव्यः) करने योग्य (न) नहीं (दृष्टः) देखा गया है। (इति) ऐसा (अवोचत्) भट्टारक स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में ऊर्ध्व पुंड्र धारण आया है। बहुत से अनादिपाप से दूषित अन्तःकरणवाले कहते हैं कि ऊर्ध्वपुंड्रधारण करनेको कहीं पर भी नहीं लिखा है। इससे कुछ प्रमाणों को यहाँ पर लिखता हूँ, कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा शुभ्रं ललाटे यस्य दृश्यते। चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः। पद्म० ब्रह्मखं० ४, अ० २१, श्लो० १३॥ अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः। तेषां ललाटे सततं शुनः पादो न संशयः॥१४॥

जिसके ललाट पर सफेद मिट्टी का ऊर्ध्व पुंड्र देखा जाता है, वह विशुद्ध आत्मावाला चाण्डाल भी पूज्य ही है इसमें संदेह नहीं है॥१३॥ जो अधम मनुष्य बिना छिद्र के ऊर्ध्व पुंड्र करते हैं, उनके ललाटपर सर्वदा कुक्कुर का पैर रहता है, इसमें संदेह नहीं है॥१४॥ और भी लिखा है कि–

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति। ऊर्ध्वपुण्ड्रमूर्ध्वरेखं ललाटे यस्य दृश्यते॥पद्म पु० पाता० ५, अ० ७९, श्लो० २२॥ सान्तरालं प्रकर्तव्यं पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम्॥२५॥ नासादिकेशपर्यन्तमूर्ध्वपुण्ड्रं सुशोभनम्। मध्ये छिद्रसमायुक्तं

तं विद्याद्धरिमन्दिरम्॥२७॥

जिसके ललाटपर ऊर्ध्व रेखावाला ऊर्ध्व पुंड्र देखा जाता है, वह सब पापों से विशुद्ध आत्मावाला विष्णुलोक को जाता है।।२२।। विष्णु भगवान् के चरणारविन्द के आकार के समान ऊर्ध्व पुंड्र अन्तराल के सहित करना चाहिये।।२५।। नाक के आदिसे केशपर्यन्त मध्य में छिद्र से युक्त सुन्दर जो ऊर्ध्व पुंड्र है, उसको श्रीहरि का मन्दिर जानो।।२७।। और भी लिखा है कि–

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। धारयेदूर्ध्वपुंड्रं यो मृदा शुभ्रेण वैष्णवः। पद्मपु० उत्त० ६, अ० २२५, श्लो० ४॥ ऊर्ध्वपुंड्रधरो विप्रः सर्वलोकेषु पूजितः। विमानवरमारुह्य याति विष्णोः परं पदम्॥५॥ धारयेदूर्ध्वपुंड्रं तु त्रिसन्ध्यं तु द्विजोत्तमः। सर्वपापविशुद्ध्यर्थमिष्टपूर्तफलाप्तये॥६॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। नमस्कृत्वाथवाभक्त्या सर्वदानफलं लभेत्॥७॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति। आकल्पकोटिपितरस्तस्यतृप्ता न संशयः॥८॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरोयस्तु कुर्याच्छ्राद्धं शुभानने। कल्पकोटि सहस्राणि गयाश्राद्धफलं लभेत्॥९॥ यज्ञदानतपश्चर्याजपहोमादिकं च यत्। ऊर्ध्वपुण्ड्रधरः कुर्यात् तस्य पुण्यमनन्तकम्॥१०॥

जो वैष्णव सफेद मिट्टी से ऊर्ध्वपुंड्र धारण करता है वह सब तीर्थों में स्नान करता है, और सब यज्ञों में दीक्षित होता है।।४।। ऊर्ध्वपुंड्रको धारण करनेवाला ब्राह्मण सब लोकों में पूजित होता है, और श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर श्रीविष्णु के परमपद को प्राप्त करता है।।५।। द्विजोत्तम सब पाप को दूर करने के लिये और इष्टापूर्त फल प्राप्ति के लिये तीनों सन्ध्याओं में ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करें।।६।। ऊर्ध्वपुंड्र धारण करनेवाले को देखकर सब पापों से छुट जाता है और भक्ति से नमस्कार करने से सब दान देने के फल को प्राप्त करता है।।७।। ऊर्ध्वपुंड्र धारण करनेवाले ब्राह्मण को जो श्राद्ध में भोजन कराता है उसका करोड़ कल्प तक पितर तृप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं है।।८।। हे सुन्दर मुखवाली! जो ऊर्ध्वपुंड्र धारण करके श्राद्ध करता है, वह हजार करोड़ कल्प गया में श्राद्ध करने के फल को प्राप्त करता है।।९।। जो ऊर्ध्वपुंड्र धारण करके यज्ञ दान तपस्या जप होम व्रत आदि करता है, वह नहीं अन्त होनेवाले पुण्य को प्राप्त करता है।।१०।। और भी देखिये प्रमाण लिखा है कि–

॥ एकान्तिनो महाभागाः सर्वभूतहितेरताः। सान्तरालं प्रकुर्वीरन् पुंड्रं हरिपदाकृतिम्॥ पद्मपु०.उत्त० ६, अ० २२५, श्लो० २१ ॥ हरेः पादाकृतिं कुर्यादूर्ध्वपुंड्रं विधानतः। मध्यच्छिद्रेण संयुक्तं तद्धि वै मन्दिरं हरेः॥२२॥ ऊर्ध्वपुंड्रमृजुं सौम्यं सुपार्श्वं सुमनोहरम्। दण्डाकारं सुशोभाढ्यं मध्ये छिद्रं प्रकल्पयेत्॥२३॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रंस्य मध्येतु विशाले सुमनोहरे। सान्तरालं समासीनो हरिरस्ति श्रियासह॥२५॥ तस्माच्छिद्रान्वितं

पुण्ड्रं सहरिद्रं शुभान्वितम्। धारयेद् ब्राह्मणो नित्यं हरिसालोक्यसिद्धये॥२८॥

सब जीवों के कल्याण में रत महाभाग एकान्तीजन अन्तरालके सहित श्रीहरि के चरणारविन्द के आकार के समान ऊर्ध्वपुंड्र को करें॥२१॥ श्रीहरि के चरणारविन्द के आकार के तुल्य और मध्य में छिद्र से युक्त विधि के अनुसार ऊर्ध्वपुंड्र धारण करें, वह निश्चय करके श्रीहरि का मंदिर है॥२२॥ कोमल सौम्य मन को अत्यन्त हरण करनेवाला सुन्दर शोभा युक्त मध्य में छिद्रसहित दण्डाकार ऊर्ध्वपुंड्र को करें॥२३॥ ऊर्ध्वपुंड्र के विशाल अत्यन्तमनोहर अन्तराल के मध्य में श्रीदेवीके साथ नारायण रहते हैं॥२५॥ इससे ब्राह्मण हल्दी के चूर्ण से युक्त अत्यन्तसुन्दर छिद्रसहित ऊर्ध्वपुंड्र नित्यप्रति श्रीहरिकी सायुज्य-सिद्धिके लिए धारण करे ॥२८॥ और पराशरीय धर्मशास्त्रमें लिखा है कि-

आदाय वैष्णवक्षेत्रान्मृत्तिकां विमलां शुभाम्। मूलमंत्रेणाभिमंत्र्यऊर्ध्वपुण्ड्राणि धारयेत्॥ पराशरीयध० उत्तरख० अ० २, श्लो० ९॥ संध्याकाले जपे होमे स्वाध्याये पितृतर्पणे। श्राद्धे दाने च यज्ञे च धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम्॥१४॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु विप्राणाम् संध्यानुष्ठनकर्मवत्। श्राद्धकाले विशेषेण कर्त्ता भोक्ता च न त्यजेत्॥१५॥ तस्मान् ब्राह्मणो नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं तु धारयेत्। पुण्ड्रस्य धारणादेव वैकुण्ठं यात्यसंशयः॥२६॥

वैष्णवक्षेत्र से सुन्दर सफेद मिट्टी को लेकर मूल मंत्र से अभिमंत्रित करके ऊर्ध्व पुंड्रों को धारण करे॥९॥ संध्या समय में जप में हवन में स्वाध्याय में पितृतर्पण में श्राद्ध में दान में और यज्ञ में ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करे॥१४॥ संध्यावन्दन कर्म के समान ब्राह्मणों को ऊर्ध्वपुंड्र करना चाहिए, और श्राद्धकाल में विशेषरूप से कर्ता और भोक्ता ऊर्ध्वपुंड्र को नहीं छोड़े॥१५॥ ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करनेसे बिना संदेह के वैकुण्ठ को प्राप्त करता है, इससे ब्राह्मण सर्वदा ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करे॥२६॥ और वासुदेवोपनिषद् में लिखा है कि-

गृहस्थो ललाटादिद्वादशस्थलेष्वनामिकाङ्गुल्या वैष्णवगायत्र्या केशवादिनामभिर्वा धारयेत्। ब्रह्मचारी वनस्थो वा ललाटहृदयकण्ठबाहुमूलेषु वैष्णवगायत्र्या कृष्णादिनामभिर्वा धारयेत्। यतिस्तर्जन्या शिरोललाटहृदयेषु प्रणवेनैव धारयेत्। परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्॥ वासुदेवोपनि०॥

गृहस्थ ललाट आदिक बारह स्थलों में अनामिका अंगुली से वैष्णव गायत्री अथवा केशवादिकनामों करके ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करे। और ब्रह्मचारी तथा वनस्थ ललाट हृदय कण्ठ और बाहुमूल आदिक स्थानों में वैष्णव गायत्री से अथवा कृष्ण आदिक नामें से ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करे। तथा संन्यासी तर्जनी अंगुली से सिर ललाट और हृदय में प्रणवमंत्र करके ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करे। और परमहंस संन्यासी ललाट पर

प्रणव मंत्र से एक ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करे। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट ऊर्ध्वपुंड्र धारण करना साबित होता है। तब यह प्रश्न होता है कि ऊर्ध्वपुंड्र करने के लिये किस स्थान की मिट्टी लेनी चाहिये, इस प्रश्न का उत्तर पद्मपुराण में लिखा है कि–

पर्वताग्रे नदीतीरे विल्वमूले जलाशये। सिन्धुतीरे च वल्मीके हरिक्षेत्रे विशेषतः ॥ पद्मपु० उत्तर खं० ६, अ० २२५, श्लो० ३५॥ श्रीरङ्गे वेङ्कटाद्रौ च श्रीकूर्मे द्वारके शुभे। प्रयागे नारसिंहाद्रौ वाराहे तुलसीवने॥३७॥ गृहीत्वा मृत्तिकां भक्त्या विष्णुपादजलैः सहा धृत्वा पुण्ड्राणि चाङ्गेषु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्॥३८॥ यस्मिन् कस्मिन्महाभागा वैष्णवा धारयन्ति वै। तस्मिन्वै मृत्तिका ग्राह्या ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य धारणे ॥३९॥

करिशैल यादवाद्रि आदिक पर्वतके शिखर की और गंगा यमुना सरयू गोदावरी आदिक पवित्र नदियों के तीर की तथा विल्ववृक्ष के मूल की और वेङ्कटादिक दिव्य देश के जलाशयों की और समुद्र के तीर की तथा वाल्मीक की और विशेष करके हरिक्षेत्र की मिट्टी को॥३५॥ और श्रीरंगजीकी तथा वेङ्कटाद्रिकी और श्रीकूर्मक्षेत्र की तथा शुभ द्वारिका की और प्रयाग की तथा नृसिंहाद्रि की और वाराहक्षेत्र की तथा वृन्दावन की मिट्टी को॥३७॥ भक्ति से लेकर मिट्टी को गंगा के जलों से घिसकर जो अपने बारह अंगों में ऊर्ध्वपुंड्र को धारण करता है, वह विष्णु भगवान् के सायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है॥३८॥ अथवा महाभाग श्रीवैष्णव जिस स्थान की मिट्टी से ऊर्ध्वपुंड्र को निश्चय करके धारण करते हैं, उस स्थान की मिट्टी को ऊर्ध्वपुंड्र धारण करने के लिये ग्रहण करना चाहिये॥३९॥ इस प्रकार से प्रश्न का उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि कौन से तिलक अनर्थ करनेवाले हैं, इस प्रश्न का उत्तर लिखा है कि–

वर्तुलं तिर्यगछिद्रं ह्रस्वं दीर्घं ततं तनुम्। वक्रं विरूपं बद्धाग्रं छिन्नमूलं पदच्युतम्॥ पद्म उत्तर० ६, अ० २२५, श्लो० ४१॥ अशुभं रूक्षमासक्तं तथानङ्गुलिकल्पितम्। विगन्धमवसह्यं च पुण्ड्रमाहुरनर्थकम्॥४२॥

वर्तुलगोला तिलक १, तिर्यक् टेढ़ा तिलक २, बीच में छिद्र से रहित तिलक ३, छोटा तिलक ४, अत्यन्त बड़ा तिलक ५, अत्यन्त फैला तिलक ६, अति पतला तिलक ७, वक्र तिलक ८, विरूप तिलक ९, बद्धाग्र तिलक १०, सिंहासन से रहित तिलक ११, भगवान् के चरणारविन्द की आकृति से रहित तिलक १२,॥४१॥ अशुभ तिलक १३, बिना जल के सुखी हुई मिट्टी से किया हुआ तिलक १४, एक में चिपटा हुआ तिलक १५, बिना अंगुली से किया हुआ तिलक १६, बिना श्रीचूर्ण के तिलक १७, नहीं सहने योग्य संख्या से अधिक तिलक १८, ये पूर्वोक्त तिलक अनर्थ करनेवाले

हैं, ऐसा महर्षि सब कहते हैं।।४२।। इस प्रकार के दूसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो तीसरा प्रश्न होता है कि ऊर्ध्व पुंड्र के कौन कौन से स्थान और देवता हैं? इस प्रश्न का उत्तर लिखा है कि–

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे। वक्षस्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूबरे।। पद्मपु० उत्तर० ६, अ० २२५, श्लो० ४५।। विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्। त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके।।४६।। श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कन्धरे। पृष्ठे वै पद्मनाभं तु त्रिके दामोदरं न्यसेत्।।४७।। तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्द्धनि।।४८।।

ललाट पर केशव को ध्यान करे, और उदर पर नारायण को ध्यान करे, छातीपर माधव को तथा कण्ठपर गोविन्द को ध्यान करे।।४५।। दाहिनी कुक्षिपर विष्णु को और दाहिनी बाहुपर मधुसूदन को और दाहिने कंधे पर त्रिविक्रम को ध्यान करे, तथा बाँयें पार्श्वपर वामन को ध्यान करें।।४६।। श्रीधर को वाम बाहु पर तथा कंधे पर हृषीकेश को ध्यान करे, और पीठपर पद्मनाभ को तथा गर्दनपर दामोदर को ध्यान करे।।४७।। और उसके प्रक्षालन जल से मस्तकपर वासुदेव को ध्यान करे।।४८।। अर्थात् ललाट १, उदर २, छाती ३, कण्ठ ४, दाहिनी कुक्षि ५, दाहिनी बाहु ६, दाहिना कंधा ७, बाँयी कुक्षि ८, बाँयीं बाहु ९, बाँयां कंधा १०, पीठ ११, और गर्दन १२, ये बारह स्थान हैं, और तत्प्रक्षालन जल के लिये मस्तक स्थान है। और केशव १, नारायण २, माधव ३, गोविन्द ४, विष्णु ५, मधुसूदन ६, त्रिविक्रम ७, वामन ८, श्रीधर ९, हृषीकेश १०, पद्मनाभ ११, दामोदर १२, ये ऊर्ध्वपुंड्र के क्रम से देवता हैं, और तत्प्रक्षालन जलका वासु देव देवता हैं। अस प्रकार के तीसरे प्रश्न का उत्तर होनेपर तो चौथा प्रश्न होता है कि किस स्थानपर कितना लंबा ऊर्ध्वपुंड्र करना चाहिये, इस प्रश्न का उत्तर लिखा है कि–

ललाटे भुजयुग्मे तु पृष्ठ्योः कण्ठकूबरे। धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं तु चतुरंगुलमायतः।। पद्म० उत्त० ६, अ० २२५, श्लो० ४९।। कुक्षौ तत्पार्श्वयोः प्रोक्तमायतं तु दशांगुलम्। बाह्वोर्वक्षस्थले पुण्ड्रमष्टांगुलमुदाहृतम्।।५०।।

ललाट १, दाहिना कंधा २, बाँयाँ कंधा ३, पीठ ४, कण्ठ ५, गर्दन ६, इन छः स्थानों पर चार अंगुल लंबा ऊर्ध्व पुंड्र धारण करना चाहिये।।४९।। तथा उदर १, दाहिनी कुक्षि २, बाँयीं कुक्षि ३, इन तीन स्थानों पर दस दस अंगुल लंबा ऊर्ध्वपुंड्र करना चाहिये, और छाती १, दाहिनी बाहु २, बाँयाँ बाहु ३, इन तीन स्थानों पर आठ आठ अंगुल लंबा ऊर्ध्वपुंड्र करना चाहिये।।५०।। इस प्रकार के चौथे प्रश्न का उत्तर है। ग्रन्थविस्तार के भय से ऊर्ध्वपुंड्र के विषय में अधिक प्रमाण नहीं लिखता हूँ। इस

तिरसठवीं वार्ता में पंचानवे पद हैं। इति भट्टारकश्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥६३॥

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–अयं भक्तिनिष्ठश्चेत्स प्रपत्तिनिष्ठो भवति, अयं प्रपत्तिनिष्ठश्चेत्स भक्तिनिष्ठो भवतीति कृष्णपादः ॥६४॥

॥ कृष्णपादस्तुतिः ॥

अर्थ– जगाम सहसा धीमांस्तद्विष्णोः परमं पदम्।
नीत्वा सप्तनवत्यब्दान्कृष्णपादो महायशाः॥६४॥

(अयम्) यह (चेत्) यदि (भक्तिनिष्ठः) भक्ति निष्ठ होता है तो (सः) वह (प्रपत्तिनिष्ठः) प्रपत्तिनिष्ठ (भवति) होता है। और (अयम्) यह (चेत्) यदि (प्रपत्तिनिष्ठः) प्रपत्तिनिष्ठ होता है तो (सः) वह (भक्तिनिष्ठः) भक्तिनिष्ठ (भवति) होता है (इति) ऐसा (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में चौदह पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥६४॥

अब पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारुमहात्मा की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारुवार्ता ॥

मू०–पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारु धनुर्धरदासः पिल्लै महावलिवाणादण्यरु-आर्तप्रपन्ना एते स्वयमेवमनुसंदधते, धान्यगुच्छदर्शनक्षुधेति पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारु ॥६५॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– चैत्रार्द्रासंभवं विष्णोर्दर्शनस्थापनोत्सुकम्।
तोण्डीरमण्डले शेषमूर्तिं रामानुजं भजे॥६५॥

(पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारु) पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारु नाम के महात्मा तथा (धनुर्धरदासः) धनुर्धरदास नाम के भागवत और (पिल्लैमहावलिवाणादण्यरु) पिल्लै महावलि वाणादण्यरु नाम के महात्मा (एते) ये सब (आर्तप्रपन्नाः) आर्तप्रपन्न (स्वयम्)

अपने ही (एव) निश्चय करके (अनुसंदधते) अनुसंधान करते हैं। (धान्यगुच्छदर्शनक्षुधा) धान्य की गुच्छे को देखने से क्षुधा होती है। (इति) ऐसा (पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारु) पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारु महात्मा कहते हैं। इस वार्ता में ग्यारह पद हैं। इति पिल्लैकुडक्कुल्लूरुवेल्लारुगदितवार्ताव्याख्यानम्।।६५।।

अब धनुर्धरदासजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ धनुर्धरदासोक्ता वार्ता ॥

मू०––दुर्भिक्षदेशे जीवनमस्ति किमिति धनुर्धरदासः ॥६६॥

॥ धनुर्दासस्तुतिः ॥

अर्थ– निचुलानगरे कश्चिन्मल्लवर्य्यो महाबलः।
चाणूर इव दुर्धर्षो धनुर्दासो बभूव ह ॥६६॥

(दुर्भिक्षदेशे) दुर्भिक्ष देश में (जीवनम्) जीवन (अस्ति) है (किम्) क्या (इति) ऐसा (धनुर्धरदासः) धनुर्धरदासजी कहते हैं। इस वार्ता में छः पद हैं। इति धनुर्धरदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।६६।।

अब पिल्लैमहावलिवाणादण्यरु महात्मा की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पिल्लैमहावलिवाणादण्यरु वार्ता ॥

मू०–अभिषेकक्षुधेति पिल्लैमहावलिवाणादण्यरु ॥६७॥

॥ लक्ष्मणाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– लक्ष्मणाचार्यस्तदा दृष्ट्वा यादवं दीनमानसम्।
उवाच प्रहसन् वाक्यं दयार्द्रीकृतमानसः ॥६७॥

(अभिषेकक्षुधा) अभिषेक से क्षुधा होती है (इति) ऐसा (पिल्लैमहावलिवाणादण्यरु) पिल्लैमहावलिवाणादण्यरु महात्मा कहते हैं। इस वार्ता में तीन पद हैं। इति पिल्लैमहावलिवाणादण्यरुवार्ताव्याख्यानम्।।६७।।

अब श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०––अननुभाव्यविषय आर्तिरनुभाव्यविषयेऽभि-
निवेशोऽनुवृत्तिविषयेऽभिरुचिश्च जायते चेत्, कश्चिद्भवति-
इति श्रीकृष्णपादः ॥६८॥

अर्थ–(अननुभाव्यविषये) नहीं अनुभव करने योग्य विषय में (आर्तिः) आर्ति और (अनुभाव्यविषये) अनुभव करने योग्य विषय में (अभिनिवेशः) अभिनिवेश (च) और (अनुवृत्तिविषये) अनुवृत्ति के विषय में (अभिरुचिः) अभिरुचि (जायते) उत्पन्न होती है (चेत्) यदि तो (कश्चित्) कोई भी (भवति) होता है (इति) ऐसा (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपादस्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में तेरह पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥६८॥

अब मरुदूनंवि महात्मा की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ मरुदूरनंविगदिता वार्ता ॥

मू०––मरुदूरनंविना स्वस्यान्तिमदशायामुक्ता वार्ता
त्रिषु जन्मसु कृतापराधः-शिशुपालश्चरणौ प्राप-अनादि-
कालं चरणयोः कृतापराधोऽहं प्राप्नुयामित्यत्र विवादः क
इत्युक्त्वा परमपदमगमत्॥६९॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– रामानुजाय नाथाय यतीन्द्राय महात्मने।
कृपामात्रप्रसन्नाय लक्ष्मणार्याय ते नमः ॥६८॥

(मरुदूरनंविना) मरुदूरनंविनाम के महात्मा से (स्वस्य) अपने (अन्तिमदशायाम्) मरण समय में (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (त्रिषु) तीन (जन्मसु) जन्मों में अर्थात् पहला हिरण्याक्षरूपजन्म तथा दूसरा रावण रूप जन्म और तीसरा शिशुपाल रूप जन्म इन तीन जन्मों में (कृतापराधः) अपराध करनेवाले (शिशुपालः) शिशुपालने

(चरणौ) भगवत् के चरणारविन्दों के (प्राप) प्राप्त किया। अर्थात् सायुज्य मोक्ष को प्राप्त किया। क्योंकि श्रीमद्भागवत में लिखा है कि–

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत्। पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता। श्रीमद्भा० स्कं० १० अ० ७४ श्लो० ४५॥

जैसे आकाश से गिरी हुई उल्का पृथ्वी में लीन हो जाती है, वैसे ही संपूर्ण जीवों के देखते ही शिशुपाल की देह से निकली हुई ज्योति श्रीवासुदेव भगवान् में प्रवेश कर गयी॥४५॥ तो (अनादिकालम्) अनादिकाल से (चरणयोः) भगवत् के चरणारविन्दों के विषय में (कृतापराधः) अपराध करनेवाला (अहम्) मैं (प्राप्नुयाम्) भगवत् के चरणारविन्दों को प्राप्त कर लूँगा, तो (इति) इस विषय में (अत्र) यहाँपर (विवादः) विवाद (कः) क्या है (इति) ऐसा (उक्त्वा) कहकर (परमपदम्) सबसे उत्कृष्ट त्रिपाद्विभूति मोक्ष स्थान को (अगमत्) मरुदूरनंविमहात्मा ने प्राप्त किया। "अगमत्" यहाँ पर **॥ पुषादिद्युताद्यृलृदितः परस्मैपदेषु ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ५५॥** इस सूत्र से अङ् हुआ है। इस वार्ता में चौबीस पद हैं। इति मरुदूरनंविगदितवार्ताव्याख्यानम्॥६९॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०––कलिवैरिदासेन पिल्लैपिल्लै प्रति उक्ता वार्ता श्रीवैष्णवः-शरीरनिबन्धनान्यैश्वर्यादीनि भगवत्समीपेऽपेक्षते चेत्, त्रीणि दूषणान्यापद्यन्ते, तानि च-असिद्धांशस्निग्धत्वं स्वस्वरूपाप्राप्तांशप्राप्तिचिन्ता परस्वरूपसमाधानस्य समाधिभंगकरणं तत्रासिद्धांशस्निग्धत्वं नामअलभ्ये वस्तुनि आशा सर्वफलप्रदस्य भगवतः समीपे ऽलभ्यमस्ति किमिति चेदस्ति-अधिकारानुगुणमदेयानि कानिचित्सन्ति, "यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम्" इत्यादि प्रमाणसत्वात् अत्राधिकारी क इति चेत्

सदाचार्यवरणकृत्सदाचारवान्-अस्यै तदलाभहेतुः, एत-दाचार्यवरणकरणसमये कृतस्य प्रपदनस्य विरुद्धत्वात् स्वस्वरूपाप्राप्तांशप्राप्तिचिन्ता नाम राजपुत्रस्य पुलिन्दपुत्रये-यमिति क्षुद्रमण्डे-आशावत्-लब्धाप्राकृतान्वयोग्याकारस्य चेतनस्य प्राकृतान्वयाशा परस्वरूपसमाधानस्य समाधि-भंगकरणं नाम चिरकालं नष्टश्चेतन इदानीं लाभयोग्यो जात इति कृतकृत्यस्येश्वरस्य हृदये व्याकुलतापादनम्, अत्रोदाहरणं भार्या भर्तृस्निग्धेति पुरुषान्तरसंसर्गमपेक्षते चेत् तमन्विष्य न ददाति, स्वपातिव्रत्यं नश्यति, तन्मनश्च व्याकुलीभवतीति॥७०॥

अर्थ–(कलिवैरिदासेन) कलिवैरिदास स्वामीजी से (पिल्लैपिल्लै) पिल्लैपिल्लै नामवाले महात्मा के (प्रति) प्रति (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है, कि (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (शरीरनिबन्धनानि) शरीर के निबन्धन (ऐश्वर्यादीनि) ऐश्वर्य आदिक की (भगवत्समीपे) भगवान् के समीप में (चेत्) यदि (अपेक्षते) अपेक्षा करता है तो (त्रीणि) तीन (दूषणानि) दोष (आपद्यन्ते) आकर प्राप्त होते हैं। (च) और (तानि) वे दोष ये अधो लिखित हैं (असिद्धांशस्निग्धत्वम्) पहला असिद्धांशस्निग्धत्व दोष है। तथा दूसरा (स्वस्वरूपाप्राप्तांशप्राप्तिचिन्ता) स्वस्वरूप के अप्राप्त अंश की प्राप्ति की चिन्ता दोष है। और तीसरा (परस्वरूपसमाधानस्य) परस्वरूप समाधान का (समाधिभंगकरणम्) समाधिभंग करण दोष है। (तत्र) उसमें (असिद्धांशस्निग्धत्वम्) असिद्धांशस्निग्धत्व (नाम) माने (अलभ्ये) नहीं लाभ होने योग्य (वस्तुनि) वस्तुमें (आशा) आशा करना है। (सर्वफलप्रदस्य) सब फल को देनेवाले (भगवतः) भगवान् के (समीपे) समीप में (अलभ्यम्) नहीं लाभ होने योग्य (किम्) क्या (अस्ति) है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (अस्ति) भगवान् के समीप में भी अलभ्यवस्तु है। (अधिकारानुगुणम्) अधिकार के अनुसार (अप्रदेयानि) नहीं देने योग्य (कानिचित्) कुछ वस्तु (सन्ति) हैं। (यस्य) जिसके (अनुग्रहम्) अनुग्रह करने के लिये (इच्छामि) में इच्छा करता हूँ (तस्य) उसके (वित्तम्) धनको (अहम्) मैं (हरामि) हरण कर लेता हूँ (इत्यादिप्रमाणसत्वात्) इत्यादिक प्रमाण होने से (अत्र) यहाँ पर (अधिकारी)

अधिकारी (कः) कौन है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (सदाचार्यवरणकृत्) सदाचार्यको स्वीकार करनेवाला (सदाचारवान्) शुद्ध आचरणवाला अधिकारी है। (अस्य) इसके (एतदलाभहेतुः) इस वस्तु के लाभ नहीं होने में कारण (एतदाचार्यवरणकरणसमये) इसके सदाचार्य्य को स्वीकार करने के समय में (कृतस्य) की हुई (प्रपदनस्य) प्रपत्ति के (विरुद्धत्वात्) विरुद्ध होने से। (स्वस्वरूपाप्राप्तांश-प्राप्तिचिन्ता) अपने स्वरूपके अप्राप्त अंशकी प्राप्ति की चिन्ता (नाम) माने (राजपुत्रस्य) राजाके पुत्रके (पुलिन्दपुत्रयेयम्) पुलिन्दका पुत्र होता (इति) इस प्रकारसे (क्षुद्रमण्डे) क्षुद्र जातिके विषयमें (आशावत्) आशा करनेके समान (लब्धाप्राकृतान्वययोग्याकारस्य) अप्राकृत तत्त्वमें अन्वय होने योग्य आकार प्राप्त किये हुए (चेतनस्य) चेतन जीवके (प्राकृतान्वयाशा) प्राकृत वस्तुमें अन्वय होनेकी आशा करना है। और (परस्वरूपसमाधानस्य) पर स्वरूपके समाधान की (समाधिभंगकरणम्) समाधि भंग करना (नाम) माने (चिरकालम्) बहुत समय तक (नष्टः) नाश हुआ (चेतनः) जीवात्मा (इदानीम्) इस समयमें (लाभयोग्यः) मुझको प्राप्त करने योग्य (जातः) हुआ है (इति) इस प्रकारकी (कृतकृत्यस्य) कृतकृत्य (ईश्वरस्य) परमात्माके (हृदये) हृदयमें (व्याकुलतापादनाम्) व्याकुलता आपादन करना है। (अत्र) इस विषयमें (उदाहरणम्) उदाहरण यह है, कि (भर्तृस्निग्धा) अपने पतिमें प्रीति करनेवाली (भार्या) स्त्री (इति) इस प्रकारका समय पाकर (चेत्) यदि (पुरुषान्तरसंसर्गम्) दूसरे पुरुषसे भोग करनेकी (अपेक्षते) चाहना करती है तो (तम्) उस अपने पतिको (अन्विष्य) देख करके (न) दूसरे पुरुषके लिये रतिदान नहीं (ददाति) देती है, तौ भी (स्वपातिव्रत्यम्) उस स्त्रीका अपना पातिव्रत्य धर्म (नश्यति) नष्ट होता है। (इति) इस प्रकारकी वार्ता है। इस सत्तरवीं वार्तामें एकसौ दो पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।७०।।

अब शिरियाण्डानाचार्यजी की वार्ताको कहते हैं कि-

।। शिरियाण्डानाचार्योक्ता वार्ता।।

मू०- शिरियाण्डानाचार्येण स्वान्तिमदशायामुक्ता-वार्ता श्रीवेङ्कटशः स्वस्वरूपं विस्मृत्य मत्स्वरूपं स्मरति चेत्, प्राचीननरकविलक्षणो ममैको नरकः सृज्यः, मत्स्वरूपं विस्मृत्य स्वस्वरूपं स्मरति चेत्, प्राचीनं परमपदमपि नालं ममैकं परमपदं सृज्यं स्यात्।।७१।।

॥रामानुजार्यस्तुतिः॥

अर्थ- तस्मै रामानुजार्याय नमः परमयोगिने।

यः श्रुतिस्मृतिसूत्राणामन्तर्ज्वरमशीशमत्॥६९॥

(शिरियाण्डानाचार्येण) शिरियाण्डानाचार्यजी से (स्वान्तिमदशायाम्) अपने मरण समयमें (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (श्रीवेङ्कटेशः) श्रीवेंकटेशजी (स्वस्वरूपम्) अपने स्वरूपको (विस्मृत्य) विस्मरण करके (चेत्) यदि (मत्स्वरूपम्) मेरे स्वरूपको (स्मरति) स्मरण करते हैं, तो (प्राचीननरकविलक्षणः) पुराने तामिस्र आदिक इक्कीस नरकों से विलक्षण (एकः) एक (नरकः) नरक (मम) मेरे लिये (सृज्यः) बनाने योग्य है। और (मत्स्वरूपम्) मेरे स्वरूपको (विस्मृत्य) विस्मरण करके (चेत्) यदि (स्वस्वरूपम्) अपने स्वरूपको (स्मरति) स्मरण करते हैं, तो (प्राचीनम्) पुराने (परमपदम्) त्रिपाद्विभूति नामका स्थान (अपि) भी (न) नहीं (अलम्) पर्याप्त है। इससे (मम) मेरे लिये (एकम्) एक दूसरा (परमपदम्) परम पद स्थान (सृज्यम्) बनाने योग्य (स्यात्) होगा। इस वार्तामें यह शंका होती है कि इक्कीस नरक कौन-कौनसे हैं। इस शंका का समाधान मनुस्मृति में लिखा है कि-

॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ। नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥ मनु० अ० ४, श्लो० ८८ ॥ संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम्। संहातं च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥ लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम्। असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ॥ ९० ॥

तामिस्र १, अन्धतामिस्र २, महारौरव ३, रौरव ४, कालसूत्र ५, और महानरक ६, ॥ ८८ ॥ संजीवन ७, महावीचि ८, तपन ९, संप्रतापन १०, संहात ११, सकाकोल १२, कुड्मल १३, और पूतिमृत्तिक १४, ॥ ८९ ॥ लोहशंकु १५, ऋजीष १६, पन्थान १७, शाल्मली १८, नदी १९, असिपत्रवन २०, और लोहदारक २१, ॥ ९०॥ ये इक्कीस नरक हैं। इन नरकोंका स्वरूप पद्म आदिक पुराणोंमें विस्तारसे कहा गया है। यहाँपर ग्रन्थ विस्तारके भयसे मैं नहीं लिखता हूँ। इस ईकहत्तरवीं वार्तामें तीसपद हैं। इति शिरियाण्डानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ७१ ॥

अब भट्टारक स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ भट्टारकोक्ता वार्ता॥

मू०–पट्टिणियेरुमानिति कश्चित्तं यदा भाष्यकारः पश्यति, तदा पेरुमाले–इति वदति, स च भाष्यकारं जिप्या–जिप्य इति वदति, भाष्यकारश्चाहं कृतार्थो भवामीति वदति, उभावपि रात्रिविशेषेऽनुसंदधानौ तिष्ठतस्त्रिचतुर्–दिवसेषु–एकदा रात्रौ तस्कराश्चौर्यं कृत्वा गच्छन्ति, तत्रैको ऽमुं दृष्ट्वात्र पुरुषोऽस्तीत्यवदत्, अन्यः सदायमस्ति, एष वृक्षोऽस्मान् पिशुनयति चेदयमपि पिशुनयतीत्यन्या–म्प्रत्यवदत्, तच्छ्रुत्वा भाष्यकारो हन्तेत्यवोचत्, अदृष्टं दृष्ट–तया दृष्टमदृष्टतयानुसंदधान एव मुमुक्षुर्भवतीति भट्टा रकोऽवदत्॥७२॥

॥ भट्टारकस्तुतिः ॥

अर्थ– ततो रंगेश्वर स्वप्ने तस्येदं वाक्यमब्रवीत्।

म त्राय प्रदेहीति भट्टार्यायाशु कन्यकाम्॥७०॥

(पट्टिणियेरुमान्) पट्टि गेयेरुमान् (इति) ऐसा नामवाला (कश्चित्) कोई श्रीवैष्णव है (तम्) उस श्रीवैष्णव को (यदा) जब (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (पश्यति) देखते हैं। (तदा) तब (पेरुमाले) पेरुमाले (इति) ऐसा (वदति) कहते हैं। (च) और (सः) वह पट्टिणियेरुमान् (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकारको (जिप्याजिप्य) जिप्याजिप्य (इति) ऐसा (वदति) कहता है। (च) और तब (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (अहम्) मैं (कृतार्थः) कृतार्थ (भवामि) होता हूँ (इति) ऐसा (वदति) कहते हैं। और (उभौ) वे दोनों (अपि) भी (रात्रिविशेषे) रात्रि विशेषमें (अनुसंदधानौ) स्वस्वरूपानुसंधान करते हुए (तिष्ठतः) ठहरे। (त्रिचतुरदिवेसेषु) तीन चार दिन बीतनेपर (एकदा) एक समय (रात्रौ) रात्रिमें (तस्कराः) चोर सब (चौर्यम्) चोरी (कृत्वा) करके (गच्छन्ति) जाते हैं। (तत्र) वहाँपर (एकः) एक चोरने (अमुम्) श्रीभाष्यकार को (दृष्ट्वा) देखकर (अत्र) इस स्थानपर (पुरुषः) कोई पुरुष (अस्ति) है (इति) (अवदत्) अपने सार्थी चोरोंसे कहा। तब (अन्यः) दूसरे चोरने (सदा) हमेशा (अयम्) यह (अस्ति) यहाँपर रहता है। (एषः) यह (वृक्षः) पेड़ (अस्मान्) हम सब चोरोंको (पिशुनयति) डरवाता है (चेत्) यदि तो (अयम्) यह (अपि) भी (पिशुनयति) डरवाता है (इति) ऐस

(अन्यान्) दूसरे चोरोंके (प्रति) प्रति (अवदत्) कहा। तब (तत्) उस चोरके वाक्यको (श्रुत्वा) सुनकर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकारने (हन्त) खेद या अफसोस है, (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। (अदृष्टम्) अदृष्टको (दृष्टतया) दृष्टत्वेन और (दृष्टम्) दृष्टको (अदृष्टतया) अदृष्टरूपसे (अनुसंदधानः) अनुसंधान करनेवाला (एव) निश्चय करके (मुमुक्षुः) मुमुक्षु (भवति) होता है (इति) ऐसा (भट्टारकः) भट्टारक स्वामीजीने (अवदत्) कहा है। इस वार्तामें "भाष्यकारः" यह पद है इससे यह प्रश्न होता है कि भाष्य किसको कहते हैं? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि –

॥ सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः। स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥

सूत्रानुसारी वाक्यों करके जहाँपर सूत्रार्थ और अपने कहे हुये पदोंको वर्णन किया जाता है उसको भाष्य भाष्यवेत्ता सब जानते हैं ॥ **'भाष्यकारः'** यहाँपर ॥ **कर्मण्यण् ॥ व्या० अ० ३, पा०२, सू० १ ॥** इस सूत्रसे अण्प्रत्यय होता है। इस बहत्तरवीं वार्तामें अठत्तरपद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥७२॥



अब श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीके और श्रीवैष्णवोंके संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोष्ठीपूर्णश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता॥

मू०––श्रीगोष्ठीपूर्णमन्तिमदशायां मनसि किं वर्तत इति श्रीवैष्णवा अपृच्छन्, चक्रवर्त्तिकुमारस्य हृदयमेकः पक्षी व्रणयुक्तमकरोदित्यवोचत् ॥ ७३ ॥

॥ श्रीगोष्ठीपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ– गौरवं दर्शयँल्लोके मंत्रार्थस्य च देशिकः।
लक्ष्मणार्याय विमुखो गोष्ठीपूर्णोऽभवत्पुनः ॥७१॥

(श्रीगोष्ठीपूर्णम्) श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीजीसे (अन्तिमदशायाम्) मरण समयमें (मनसि) आपके मनमें (किम्) क्या (वर्तते) है (इति) ऐसा (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णवोंने (अपृच्छन्) पूछा। तब श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीजीने (चक्रवर्त्तिकुमारस्य) चक्रवर्त्ती श्रीदशरथजी महाराजके कुमार श्रीराम भद्रजीके (हृदयम्) हृदयको (एकः) एक (पक्षी) पक्षीने (व्रणयुक्तम्) व्रणसे युक्त (अकरोत्) किया है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इस वार्ता में सोलह पद हैं। इति गोष्ठीपूर्ण–श्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ७३॥

अब महापूर्णस्वामीजीके और उनकी कन्या अत्तुलायीके संवाद रूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ महापूर्णातुलायीगदिता वार्ता ॥

मू०-महापूर्णस्य तनया तमापद्दशायां वयमितः श्रीरङ्गं गच्छाम इत्यवोचत्, स चाहं तत्र गत्वा प्रकृतिं त्यजामि यदि लोके श्रीवैष्णवाः परमपदप्राप्तिसमये श्रीमहापूर्णोऽपि श्रीरंगं प्रापेति भीता भवेयुरित्यवोचत् ॥ ७४ ॥

॥ महापूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- ॥ पुत्रोबभूव पूर्णस्य पुण्डरीकाक्षनामवान् ।
अत्तुलायीति विख्याता दुहिता तस्य चानघ ॥ ७२ ॥

(महापूर्णस्य) महापूर्णस्वामीजी की (तनया) कन्या अत्तुलायी (तम्) उस महापूर्णस्वामीजीसे (आपद्दशायां) आपत्तिकालमें (वयम्) हम सब (इतः) यहां से (श्रीरंगम्) श्रीरंगक्षेत्रको (गच्छामः) चलें (इति) इस प्रकारसे (अवोचत्) बोली। (च) और तब (सः) उस महापूर्णस्वामीजी ने (अहम्) मैं (यदि) यदि (तत्र) यहाँसे श्रीरंगक्षेत्रमें (गत्वा) जाकर (प्रकृतिम्) शरीरको (त्यजामि) छोड़ता हूँ। तो (लोके) भूलोकमें (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (परमपदप्राप्तिसमये) परमपदकी प्राप्तिके समयमें (श्रीमहापूर्णः) श्रीमहापूर्णस्वामीजीने (अपि) भी (श्रीरंगम्) श्रीरंगक्षेत्रको (प्राप) प्राप्त किया है। (इति) इसप्रकारसे अनुसंधान करके (भीताः) भयभीत (भवेयुः) होजायेंगे (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इसवार्तामें तीसपद हैं। इति महापूर्णातुलायीगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥ ७४ ॥

अब आलकौण्डिवल्लिजीयर् स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ आलकौण्डिवल्लिजीयरुक्ता वार्ता ॥

मू०-स्वस्वातन्त्र्यबीजभूते संसारेऽरुचिः स्वपारतन्त्र्य-

भूत[५] उचितकैंकर्ये[६] रुचिः[७] स्वज्ञानानुष्ठानयोः[८] प्रावण्यबुद्धि-
रेतन्निदाने[९] मुमुक्षुसहवासे[१०] कर्त्तव्यता[११] मति:[१२], एतद्विपाकभूते[१३]
नित्यमुक्तपदे[१४] -उद्देश्यता[१५] बुद्धिरित्येता:[१६] प्रपन्ननिष्ठा:[१७]
स्वस्वरूपमेकमिथुनमित्यध्यवसाय:[१८] स्वरूपानुरूपपुरुषार्थो[१९]
मिथुनविषये[२०] क्रियमाणं कैंकर्यमिति[२१] निश्चय:[२२] स्वरूपविरोधी[२३]
स्वातन्त्र्यमिति[२४] निश्चयश्च[२५] परमैकान्तिनिष्ठा[२६] एतदुभयमपि[२७]-
आलकौण्डिवल्लिजीयरुक्तम्[२८] ॥ ७५ ॥

॥ यतिपुंगवस्तुतिः॥

अर्थ—बौद्धान्धकारपरिहारदिवाकराय श्रीवैष्णवाम्बुनिधिपूर्णनिशाकराय।
अद्वैतवादिकरियूथमृगाधिपाय तस्मै नमोऽस्तुसततं यतिपुंगवाय॥७३॥

(स्वस्वातन्त्र्यबीजभूते) अपनी स्वतन्त्रता का बीजभूत (संसारे) संसारमें (अरुचि:) रुचि नहीं होना। और (स्वपारतन्त्र्यभूते) अपनेपारतन्त्र्यभूत (उचितकैंकर्ये) उचितकैंकर्य में (रुचि:) रुचि होना। और (स्वज्ञानानुष्ठानयो:) आत्मज्ञान तथा अनुष्ठानमें (प्रावण्यबुद्धि:) प्रावण्यबुद्धि करना। तथा (एतन्निदाने) आत्मज्ञान और अनुष्ठानमें कारण (मुमुक्षसहवासे) मोक्ष मेरा हो ऐसी इच्छावाला मुमुक्षु और प्रपन्नोंका सहवास है। और (कर्त्तव्यता) करने योग्यका भाव (मति:) मति है। तथा (एतद्विपाकभूते) इस मतिके विपाकभूत (नित्यमुक्तपदे) नित्य जीवोंका स्थान और मुक्तजीवोंका स्थान है। और (उद्देश्यता) उद्देश्यता (बुद्धि:) बुद्धि है। (इति) इस प्रकारके (एता:) ये सब (प्रपन्ननिष्ठा:) प्रपन्नकी निष्ठा है। और (स्वस्वरूपम्) स्वस्वरूप (एकमिथुनम्) एकहीमें दोनों रहते हैं (इति) ऐसा (अध्यवसाय:) निश्चय करना है। तथा (स्वरूपानुरूपपुरुषार्थ:) स्वस्वरूपके अनुरूप पुरुषार्थ (मिथुनविषये) लक्ष्मी और नारायण इन दोनोंके विषयमें (क्रियमाणम्) क्रियमाण (कैंकर्यम्) कैंकर्य है (इति) ऐसा (निश्चय करना है। (च) और (स्वरूपविरोधी) स्वस्वरूपका विरोधी (स्वातन्त्र्यम्) स्वतन्त्रता है (इति) ऐसा (निश्चय:) निश्चय करना, ये सब (परमैकान्तिनिष्ठा:) परमैकान्तियोंकी निष्ठा हैं। (एतत्) ये उभयम् दोनों प्रपन्ननिष्ठा और परमैकान्ति निष्ठाको (अपि) भी (आल-कौण्डिवल्लिजीयरुक्तम्) आलकौण्डिवल्लिजीयर् स्वामीजीने कहा है। इस वार्तामें उन्तालीस पद हैं। इति आलकौण्डिवल्लिजीयरुक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ७५ ॥

अब पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्यजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ पिल्लैतिरुनरैयूररैयरुक्ता वार्ता ॥

मू०-प्राप्यन्तरेष्वासज्जते चेच्छास्त्रं स्पर्द्धते, साधनान्तरेषु सज्जते चेत्पारतन्त्र्यं स्पर्द्धते, सिद्धोपायस्वीकारे सज्जते चेत्स्वरूपं स्पर्द्धते, पिल्लैतिरुनरैयूररैयर् ॥ ७६ ॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- पूर्णाचार्येण गुरुणा कृतसंस्कारपञ्चकः ।
रेजे रामानुजः श्रीमाञ्छरच्चन्द्र इवामलः ॥ ७४॥

(प्राप्यान्तरेषु) यह चेतन प्राप्यान्तरोंमें (चेत्) यदि (आसज्जते) आसक्त होता है तो (शास्त्रम्) शास्त्रकी (स्पर्द्धते) स्पर्द्धा करता है। तथा (साधनान्तरेषु) साधनान्तरोंमें (चेत्) यदि (सज्जते) आसक्त होता है तो (पारतन्त्र्यम्) परतंत्रताकी (स्पर्द्धते) यह चेतन स्पर्द्धा करता है। और (सिद्धोपायस्वीकारे) सिद्ध उपायके स्वीकारमें (चेत्) यदि (सज्जते) आसक्त होता है तो (स्वरूपम्) स्वस्वरूपकी (स्पर्द्धते) यह चेतन स्पर्द्धा करता है। (पिल्लैतिरुनरैयूररैयर्) ऐसा पिल्लैतिरुनरैयूररैयर् स्वामीजीने कहा है। इस वार्तामें सोलह पद हैं। इति पिल्लैतिरुनरैयूररैयरुक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ७६॥

अब नंवितिरुवलितिवलनाडदासजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ नंवितिरुवलितिवलनाडदासोक्ता वार्ता ॥

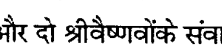
मू०-नंवितिरुवलितिवलनाडदासश्च निंबस्य दिने दिने पाकाधिक्ये कटुरसोऽधिको भवति, तथास्यात्मनो विषयान्तरेषु प्रावण्यं दिने दिने ऽधिकं भवति ॥ ७७ ॥

॥ यतीन्द्रस्तुतिः ॥

अर्थ- एवमेव स्वशिष्येभ्यो ह्युपदेशं प्रचक्रिरे ।
चतुःसप्तति शिष्याश्च यतीन्द्रस्याखिला भुवि ॥ ७५ ॥

(च) और (नंवितिरुवलितिवलनाडदासः) नंवितिरुवलितिवलनाडदासजीने कहा है कि (निंबस्य) निंबवृक्षके (दिने) रोज (दिने) रोज (पाकाधिक्ये) पाक की

अधिकता होनेपर (कटुरसः) कडुवा रस (अधिकः) अधिक (भवति) होता है। (तथा) वैसेही (अस्य) इस (आत्मनः) जीवात्माके (विषयान्तरेषु) विषयान्तरोंमें (प्रावण्यम्) प्रावण्य (दिने) रोज (दिने) रोज (अधिकम्) अधिक (भवति) होता है। इस वार्तामें अठारह पद हैं। इति नवितिरुवलितिवलनाडदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ७७॥



अब भट्टारक स्वामीजीके और दो श्रीवैष्णवोंके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ भट्टारकश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

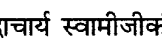
मू०-अस्य भगवत्प्राप्तिः कथमिति भट्टारकमपृच्छतां शरीरवियोगसमये वैतच्छरीरे-उपेक्षोत्पादनात् श्रीमालाकारस्येवास्यापि स्वसौन्दर्यप्रदर्शनाच्च सा संभवतीत्यवोचत्, अत्र प्रमाणं न खलु भागवता यमविषयं गच्छन्तीति ॥ ७८ ॥

॥ भट्टारकस्तुतिः ॥

अर्थ--सोऽर्भकः प्रहसन् वाक्यं तं सर्वज्ञमथाब्रवीत्।
किंवा न शक्यते वक्तुमित्येषांजलिवालुका ॥ ७६ ॥

(अस्य) इस चेतनको (भगवत्प्राप्तिः) भगवत्की प्राप्ति (कथम्) कैसे होती है (इति) ऐसा (भट्टारकम्) भट्टारकस्वामीजीसे (अपृच्छताम्) दो वैष्णवोंने पूछा। तब उस भट्टारकस्वामीजीने (शरीरवियोगसमये) शरीर छूटनेके समय में (वा) अथवा (एतच्छरीरे) इस शरीरमें (उपेक्षोत्पादनात्) उपेक्षाके उत्पादन करनेसे (च) और (श्रीमालाकारस्य) श्रीमालाकारके (इव) समान (अस्य) इस जीवात्माके (अपि) भी (स्वसौन्दर्यप्रदर्शनात्) अपने सौन्दर्यको दिखानेसे (सा) वह भगवत्प्राप्ति (संभवति) अच्छे प्रकारसे होती है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। (अत्र) इस विषयमें (प्रमाणम्) यह प्रमाण है कि- (खलु) निश्चय करके (भागवताः) भागवत सब (यमविषयम्) यमराजके विषयको (न) नहीं (गच्छन्ति) प्राप्त करते हैं (इति) ऐसी वार्ता है। यमराज के विषय को भागवत सब नहीं प्राप्त करते हैं क्योंकि साक्षात् यमराज ने अपने दूतोंसे कहा है कि--**परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम् ॥ विष्णु पु० ॥** हे दूत! तुम मधुसूदनकी प्रपत्ति करनेवाले भागवतोंको छोड़ देना क्योंकि श्रीवैष्णवोंसे अन्य मनुष्योंका मैं स्वामी हूँ॥ और श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि- **तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ६, अ० ३, श्लो० २९ ॥**

हे दूतगण ! तुम सब जो विष्णु भगवान्‌के कैंकर्य नहीं करनेवाले दुष्ट हैं उन सबोंको मेरे पासमें ले आना ॥ २९॥ इस वार्तामें अट्ठाईस पद हैं। इति भट्टारकश्रीवैष्णववोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥ ७८ ॥



अब गोविन्दाचार्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–संसारे[१] भीतिः[२] प्राप्यरुचिरा[३] किंचन्यमन[४]न्यगतित्वं[५] स्वदोषाख्यापनं[६] स्वरूपप्रकाशः[७] स्वरूपज्ञानं[८] चाधिकारिणः[९] स्वरूपं[१०] स्वरूपज्ञस्य[११] स्वरूपनिरूपणं[१२] नाम[१३] स्वतः[१४] सर्वज्ञविषये[१५] नित्यकैंकर्य्यान्वयेच्छा[१६] विशेषप्रतिपत्तिनिवृत्तिः[१७] उपासकमीश्वरो[१८] भोजयामीति[१९] निश्चिनोति[२०] प्रपन्नमीश्वरोऽद्यीति[२१] निश्चिनुते[२२], अविद्यान्तर्भूतस्य[२३] चेतनस्यानुभाव्यो[२४] भोगोऽविद्यानिवृत्तिपूर्वकानुभवेच्छावतोऽनुपादेयः[२५], अनुपादेयभोगसिद्धेः[२६] कारणं[२७] कर्म[२८] तच्च[२९] द्विविधं[३०] तत्र[३१] किंचिच्चिराद[३२]विद्यां[३३] निवर्त्तयति[३४], किंचिदविद्यां[३५] वर्द्धयति[३६], श्रीगोविन्दाचार्यस्यवार्ता[३७] ॥ ७९ ॥

॥ गोविन्दाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–– वपनं कारयित्वाशु गोविन्दस्य यतीश्वर ।

अकरोत्पञ्चसंस्कारान्पूर्णः श्रीशैलपूर्वकः ॥ ७७ ॥

(संसारभीतिः) संसारसे डरना और (प्राप्यरुचिः) प्राप्यमें रुचि करना तथा (आकिंचन्यम्) अकिंचनत्व और (अनन्यगतित्वम्) अनन्यगतित्व और (स्वदोषाख्यापनम्) अपने दोष को कहना तथा (स्वरूपप्रकाशः) स्वस्वरूपका प्रकाश होना (च) और (स्वरूपज्ञानम्) स्वरूपका ज्ञान होना ये सब (अधिकारिणः) प्रपन्न अधिकारियोंका (स्वरूपम्) स्वरूप है। (स्वरूपज्ञस्य) स्वरूपको जाननेवालेका (स्वरूपनिरूपणम्) स्वरूप निरूपण (नाम) माने (स्वतः) अपनेसे (सर्वज्ञविषये) सर्वज्ञ नारायण के विषयमें (नित्यकैंकर्य्यान्वयेच्छा) नित्य कैंकर्यके सम्बन्धकी इच्छा

करना और (विशेषप्रतिपत्तिनिवृत्तिः) कैंकर्यमें स्वार्थ प्रतिपत्तिकी निवृत्ति करना है। (उपासकम्) उपासक जनको (ईश्वरः) श्रीमन्नारायण भगवान् (भोजयामि) मैं भोजन कराऊँगा (इति) ऐसा (निश्चिनोति) निश्चय करते हैं। और (प्रपन्नम्) प्रपन्न जनको (ईश्वरः) श्रीमन्नारायण भगवान (अद्मि) मैंभोजन करूँगा (इति) ऐसा (निश्चिनुते) निश्चय करते हैं। (अविद्यान्तर्भूतस्य) अविद्याके भीतर पड़े हुए (चेतनस्य) चेतनके (अनुभाव्यः) अनुभव करने योग्य (भोगः) भोग है। और (अविद्यानिवृत्तिपूर्वकानुभवेच्छावतः) अविद्याकी निवृत्ति पूर्वक अनुभवकी इच्छावाले अधिकारियोंके (अनुपादेयः) भोग विषय उपादेय नहीं है। (अनुपादेयभोगसिद्धेः) अनुपादेय भोगसिद्धिका (कारणम्) कारण (कर्म) कर्म है। (च) और (तत्) वह कर्म (द्विविधम्) दो प्रकार का होता है (तत्र) उसमें (किंचित्) कोई कर्म (चिरात्) कुछ दिनमें (अविद्याम्) अविद्याको (निवर्त्तयति) दूर करता है। और (किंचित्) कोई कर्म (अविद्याम्) अविद्याको (वर्द्धयति) बढ़ाता है। ऐसी (श्रीगोविन्दाचार्यस्य) श्रीगोविन्दाचार्य स्वामीजीकी (वार्ता) वार्ता है। इस वार्तामें उच्चास पद हैं। इति गोविन्दाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥ ७९॥

अब वेदान्तीस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ वेदान्तिनोक्ता वार्ता॥

मू०–स्वरूपज्ञस्य स्वयं स्वरूपनिर्णयापेक्षया स्वयं स्वदोषदर्शनकरणं स्वसामर्थ्यं स्वरूपज्ञः स्वयं स्वरूपं निरूपयति चेत्स्वतः सर्वज्ञस्यापि दुष्प्रापस्वभावो भवति, पुंसः पुंस्त्वनिवृत्तिपूर्वकाप्राकृतदेशविशेषादविद्यासम्बन्धआर्तिरत्यन्तापेक्षिता स्वरूपवैशद्यदशा नाम परस्वरूपविषये स्वप्रकारप्रतिपत्तिः प्रवृत्तिनिवृत्तौ व्यवसितत्वं च स्वरूपज्ञस्य स्थूलदेहान्तरनिवृत्तिपूर्वकं स्वदेहपरिग्रहेच्छातिशयो भोग्यता च सदृशा स्वस्वरूपविषयेज्ञानपूर्तिनिष्ठानाम परस्वरूपविषयदर्शनादिप्रकारप्रतिपत्तिः प्रवृत्तिनिवृत्तिपूर्वकं परस्वरूपे विशेषप्रतिपत्तिनिवृत्ती विशेषनिष्ठा च स्वरूप–

याथात्म्यज्ञानं[४४] नाम परस्वरूपवैशद्यं[४५] स्वरक्षणनिवृत्तिपूर्वक-
परस्वरूपविषयव्यतिरिक्तविषयकैंकर्यरुचिनिवृत्त्युत्पादः[४६] स्व-
गतज्ञानं[४७] स्वरूपं[४८] परगतज्ञानमुपायः[४९]-इतरफलभोक्तृत्वप्रति-
पत्तिनिवृत्तिपूर्वकः[५०] सम्यक्[५१] फलभोक्तृत्वप्रतिपत्तिविशेषनिष्ठः[५२]
सर्वोत्कृष्टजातः[५३] सर्वविसजातीयः[५४] सर्वोपायनिवृत्तिपूर्वक-
सिद्धोपायान्तर्गतः[५५] सजातीयत्वप्रतिपत्तिः[५६] सजातीयत्व-
व्यावृत्तिविशेषनिष्ठाचास्तीति[५७] प्रतिपद्येत[५८], अनेन[५९] पञ्चार्थाः[६०]
प्रतिपादिताः[६१]-इतरविषयरागनिवृत्तिः[६२] सम्यक्[६३] फलभोक्तृत्व-
प्रतिपत्तिरितरोपायत्यागः[६४] सिद्धोपायस्वीकारो[६५] हितपरे[६६] यथा
प्रतिपत्तिश्च[६७] वेदान्तिमुनिना[६८] चरमदशायामुक्ता[६९] वार्ता[७०] स्वग-
तव्याधिशान्त्यर्थं[७१] प्रपदनं[७२] स्वरूपहानिः[७३], इदं[७४] च[७५] पारतन्त्र्यदूषणं[७६]
परगतव्याधिशान्त्यर्थं[७७] सांगप्रपदनं[७८] च[७९] स्वरूपहानिः[८०], इद-
मीश्वरगतपररक्षणोपयोगिनां[८१] सर्वज्ञत्वादीनां[८२] दूषणम्[८३] ॥ ८० ॥

॥ वेदान्तिस्तुतिः ॥

अर्थ-- तुर्याश्रमं समासाद्य गुरुणानुमतस्तदा ।
प्रणम्य बहुधा भक्त्या पार्श्वे तस्थौ कृताञ्जलिः ॥ ७८ ॥

(स्वरूपज्ञस्य) स्वरूपको जाननेवाले के (स्वयम्) अपने से (स्वरूपनिर्णया-
पेक्षया) अपने स्वरूप निर्णय करनेकी अपेक्षासे (स्वयम्) अपने से (स्वदोषदर्शन-
करणम्) अपने दोषका दर्शन करना (स्वसामर्थ्यम्) अपना सामर्थ्य है। (स्वरूपज्ञः)
स्वरूपको जाननेवाला (चेत्) यदि (स्वयम्) अपनेसे (स्वरूपम्) अपने स्वरूपको
(निरूपयति) निरूपण करता है तो (स्वतः) अपनेसे (सर्वज्ञस्य) सर्वज्ञ परमात्मा
का (अपि) भी (दुष्प्रापस्वभावः) दुःखसे प्राप्त करने योग्य स्वभाव (भवति) होता
है। (पुंसः) पुरुषके (पुंस्त्वनिवृत्तिपूर्वकाप्राकृतदेशविशेषात्) पुंस्त्वनिवृत्ति पूर्वक
दिव्यदेश विशेषसे (अविद्यासंबन्धे) अविद्याके संबन्धमें (आर्तिः) आर्ति (अत्यन्तापेक्षिता)
अत्यन्त अपेक्षित है। (स्वरूपवैशद्यदशा) स्वरूपके विशदभावकी दशा (नाम) माने
(परस्वरूपविषये) परस्वरूपके विषयमें (स्वप्रकारप्रतिपत्तिः) अपने प्रकारकी प्रतिपत्ति

करना (च) और (प्रवृत्तिनिवृत्तौ) प्रवृत्तिमार्गकी निवृत्तिमें (व्यवसितत्वम्) व्यवसाय करना तथा (स्वरूपज्ञस्य) स्वरूपको जाननेवाले के (स्थूलदेहान्तरनिवृत्तिपूर्वकम्) स्थूलदेहान्तरनिवृत्तिपूर्वक (स्वदेहपरिग्रहेच्छातिशयः) अपने शरीर ग्रहण करनेकी इच्छाका अतिशय (च) और (भोग्यता) भोग्यता (सदृशा) सदृश है। और (स्वस्वरूपविषयज्ञानपूर्त्तिनिष्ठा) स्वस्वरूपविषयक ज्ञानकी पूर्तिकी निष्ठा (नाम) माने (परस्वरूपविषयदर्शनादिप्रकारप्रतिपत्तिः) परस्वरूप विषयक दर्शन और आदि शब्दसे परादिक पर ज्ञान आदिक प्रकारकी प्रतिपत्ति करना है। तथा (प्रपत्तिनिवृत्तिपूर्वकम्) स्वरक्षकत्वरूपप्रवृत्तिकी निवृत्तिपूर्वक (परस्वरूपे) परस्वरूपमें (विशेषप्रतिपत्तिनिवृत्ती) विशेष प्रतिपत्ति तथा निवृत्ति (च) और (विशेषनिष्ठा) विशेष निष्ठा करना है। (स्वरूपयाथात्म्यज्ञानम्) स्वरूपके याथात्म्यज्ञान (नाम) माने (परस्वरूपवैशद्यम्) परस्वरूपके याथात्म्य विशद ज्ञान होना है। और (स्वरक्षणनिवृत्तिपूर्वकपरस्वरूप–विषयव्यतिरिक्तविषयकैंकर्यरुचिनिवृत्त्युत्पादः) अपनी रक्षाका निवृत्तिपूर्वकपरस्वरूप–विषयसे अन्यविषयके कैंकर्यकी रुचिनिवृत्ति उत्पन्न करना है। (स्वगतज्ञानम्) स्वगतज्ञान (स्वरूपम्) स्वरूप है। और (परगतज्ञानम्) परगतज्ञान (उपायः) उपाय है। (इतरफलभोक्तृप्रतिपत्तिनिवृत्तिपूर्वकः) भगवत्से अन्यफलभोक्तृत्व प्रतिपत्तिनिवृत्ति पूर्वक (सम्यक्) अच्छे प्रकारसे (फलभोक्तृत्वप्रतिपत्तिविशेषनिष्ठः) फलकी भोक्तृत्वप्रतिपत्ति विशेष निष्ठा है। (सर्वोत्कृष्टजातः) सबसे उत्कृष्ट उत्पन्न (सर्वविसजातीयः) सबसे विसजातीय (सर्वोपायनिवृत्तिपूर्वकसिद्धोपायान्तर्गतः) सब उपायोंसे निवृत्तिपूर्वक सिद्धोपायान्तर्गत। (सजातीयत्वप्रतिपत्तिः) सजातीयत्वप्रतिपत्ति करना (च) और (सजातीयत्वव्यावृत्तिविशेषनिष्ठा) सजातीयत्व व्यावृत्तिमें विशेषनिष्ठा (अस्ति) है (इति) ऐसा (प्रतिपद्येत) प्रतिपत्ति करें। (अनेन) इस पूर्वोक्त कथनसे (पञ्च) पाँच (अर्थाः) अर्थ (प्रतिपादिताः) प्रतिपादित किये गये हैं। वे पाँच अर्थ ये हैं कि (इतरविषयरागनिवृत्तिः) भगवान्से अन्य विषयमें रागको निवृत्त करना १, और (सम्यक्) अच्छे प्रकारसे (फलभोक्तृत्वप्रतिपत्तिः) फलके भोक्तृत्वकी प्रतिपत्ति करना २, तथा (इतरोपायत्यागः) भगवान्से अन्य उपायोंको परित्याग करना ३, तथा (सिद्धोपायस्वीकारः) सिद्धोपायको स्वीकार करना ४, (च) और (यथा) जैसे हो सके वैसे (हितपरे) परकल्याणमें (प्रतिपत्तिः) यथार्थ प्रतिपत्ति करना ५, ये पाँच अर्थ हैं। (वेदान्तिमुनिना) वेदान्ती स्वामीजीसे (चरमदशायाम्) अन्तिम दशामें (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है। (स्वगतव्याधिशान्त्यर्थम्) अपने प्राप्त रोगको दूर करनेके लिये (प्रपदनम्) भगवत्की प्रपत्ति करना (स्वरूपहानिः) अपने स्वरूपकी हानि है (च) और (इदम्) यह (पारतंत्र्यदूषणम्) परतंत्रताका दूषण है। (च) और (परगतव्याधिशान्त्यर्थम्) दूसरेके प्राप्त रोगको शान्त करनेके लिये (सांगप्रपदनम्)

अंगके सहित प्रपत्ति करना (स्वरूपहानिः) स्वरूपकी हानि है (इदम्) यह (ईश्वरगतपररक्षणोपयोगिनाम्) ईश्वरगत श्रेष्ठ रक्षाके उपयोगी (सर्वज्ञत्वादीनाम्) सर्वज्ञत्व अवाप्तसमस्तकामत्व आदिकोंका (दूषणम्) दूषण है। इस असीवीं वार्तामें तिरानबेपद हैं। इति वेदान्तिनोक्तवर्ताव्याख्यानम् ॥ ८०॥

अब अनन्तालवान् स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ अनन्तालवान्स्वामिगदिता वार्ता ॥

मू०- अनन्तालवान्वेदान्तिनं दृष्ट्वा किमेतत् यते सुकुमारो भवान् स्वेदसमये स्नात्वा क्षुधासमये भुक्त्वा श्रीभट्टार्य्यं सेवते चेत्, संन्यस्य नागतत्वमिति त्वां परमपदात्पातयन्ति किम् अथवा किं कर्त्तव्यं मन्त्रान्तराणि सर्वाणि त्यक्त्वा श्रीमन्त्रे उत्पन्नो द्वये वर्द्धमानः द्वयैकनिष्ठो भवेति मंगलमाशास्य पुनरप्यवोचत् दृष्टं सर्वं श्रीभट्टार्याय समर्पितवान् दृष्टनिर्वाहकः स्वामी अदृष्टनिर्वाहकः श्रीभट्टार्य इति तिष्ठ दृष्टादृष्टयोरुभयोरप्याचार्यो निर्वाहक इत्युक्तौ को दोष इति चेत् कर्मणा हेतुना कानिचिद्दुःखानि भवन्ति चेत्, आचार्यं प्रति कुप्येत् तदा भगवन्तमाश्रित्य दोषो न निवर्तयितुं शक्यः, भगवन्तं कुप्यति चेत् आचार्यमाश्रित्य निवर्त्यः ॥ ८१ ॥

॥ अनन्तार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– रामानुजाज्ञया धीमाननन्तार्यो वृषाचले।
वेंकटेशस्य कैंकर्यं कुर्वन्नित्यं समास्थितः ॥ ७९ ॥

(अनन्तालवान्) अनन्तालवान् स्वामीजी ने (वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजीको (दृष्ट्वा) देखकर कहा कि (यते) हे परिव्राजक! (एतत्) यह (किम्) क्या है (सुकुमारः) सुकुमार (भवान्) आप (स्वेदसमये) पसीनाके समयमें (स्नात्वा) स्नान

करके (क्षुधासमये) भूखके समयमें (भुक्त्वा) भोजन करके (चेत्) यदि (श्रीभट्टार्यम्) श्रीपराशरभट्टाचार्यको (सेवते) सेवन करते हैं तो (संन्यस्य) संन्यास लेकर (न) नहीं (आगतत्वम्) जन्ममरणमें आऊँगा (इति) इस प्रकारसे स्थित (त्वाम्) तुमको (परमपदात्) परमपदत्रिपाद्विभूतिमोक्षस्थानसे (किम्) क्या (पातयन्ति) गिरवाते हैं। (अथवा) या (किम्) क्या (कर्त्तव्यम्) करने योग्य है कि (सर्वाणि) समस्त (मंत्रान्तराणि) मूलमंत्र द्वयमंत्र चरमश्लोकसे अन्य मंत्रोंको (त्यक्त्वा) छोड़ करके (श्रीमंत्रे) मूलमंत्रमें (उत्पन्नः) उत्पन्न हुआ (द्वये) द्वयमंत्रमें (वर्द्धमानः) बढ़ा हुआ (द्वयैकनिष्ठः) सबसे श्रेष्ठ एक द्वयमंत्रमें निष्ठ (भव) तुम हो जावो (इति) इस प्रकारके (मंगलम्) मंगलको (आशास्य) आशासन करके (पुनः) फिरसे (अपि) भी (अवोचत्) अनन्तालवान् स्वामीजीने कहा कि (दृष्टम्) देखा हुआ (सर्वम्) सब (श्रीभट्टार्याय) सदाचार्य भट्टारकस्वामीजीके लिये (समर्पितवान्) समर्पण किये हैं। (दृष्टनिर्वाहकः) देखी हुई वस्तुको निर्वाह करनेवाले (स्वामी) श्रीमन्नारायण भगवान् हैं। और (अदृष्टनिर्वाहकः) नहीं देखी हुई वस्तुको निर्वाह करनेवाले (श्रीभट्टाचार्य्यः) श्रीभट्टारक स्वामीजी हैं (इति) ऐसा निश्चय करके (तिष्ठ) ठहरो। (दृष्टादृष्टयोः) देखी हुई वस्तुके और नहीं देखी हुई वस्तुके (उभयोः) इन दोनोंके (अपि) भी (आचार्यः) आचार्य ही (निर्वाहकः) निर्वाह करनेवाले हैं (इति) ऐसा (उक्तौ) कहनेमें (कः) क्या (दोषः) दोष है (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो सुनो (कर्मणा) बुरा कर्म करनेके (हेतुना) कारणसे (चेत्) यदि (कानिचित्) कोई (दुःखानि) दुःख (भवन्ति) होते हैं, तो (आचार्यम्) अपने आचार्यके (प्रति) प्रति यदि (कुप्येत्) कोप करे (तदा) तब (भगवन्तम्) नारायण भगवान्को (आश्रित्य) आश्रयण करके (दोषः) आचार्यके ऊपर कोप करनेसे उत्पन्न जो दोष है उस दोषको (निवर्तयितुम्) दूर करनेके लिये (न) नहीं (शक्यः) समर्थ हो सकता है। और (चेत्) यदि (भगवन्तम्) नारायण भगवान्के प्रति (कुप्यति) कोप करता है तो (आचार्यम्) अपने आचार्यको (आश्रित्य) आश्रयण करके (निवर्त्यः) भगवान्के ऊपर कोप करनसे उत्पन्न जो दोष है उस दोषको दूर करनेके लिये समर्थ हो सकता है। 'कुप्यति' यहाँ पर ।। दिवादिभ्यः श्यन् । व्या० अ० ३, पा० १, सू० ६९ ।। इस सूत्रसे श्यन् प्रत्यय हुआ है। इस ईकासीवीं वार्तामें चौरासी पद हैं। इत्यनन्तालवान्स्वामिगदितवार्ताव्याख्यानम् ।।८१।।

अब श्रीभाष्यकारकी वार्ताको कहते हैं कि-

।।अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता।।

मू०–श्रीभाष्यकारः स्वचरणसमाश्रितस्य कस्यचित् श्रीवैष्णवस्य पुत्रस्यैकायनसंसर्गं दृष्ट्वाऽस्मत्संम्बन्धिनो व्यभिचारेणानर्थो योग्य इति विचार्य श्रीभगवत्सन्निधौ स्थितस्तत्रागतं तं प्रति ननु तव प्रमाणैः साधनीयं किमपि नास्ति ज्ञानपौक्वल्याभावात् किंत्वयं शपथः क्रियते मया वेदान्तेषु निर्णीतोऽर्थ अस्यात्मन उपायो द्वयातिरिक्तो नास्तीत्युक्त्वा चरणयोः स्थितं श्रीशठकोपमुदाहरत् स च तदाप्रभृति द्वयनिष्ठोऽभवत् ॥ ८२ ॥

॥ अथ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ–– अधिकारानुगुण्येन त्रीन्ग्रन्थान्व्याजहार सः।
वेदन्तसारवेदान्तदीपवेदार्थसंग्रहान्॥८०॥
तेषां विवरणं चक्रे श्रीभाष्यं यतिपुंगवः।
ततो गद्यत्रयं चक्रे प्रपत्तिप्रतिपादकम्॥८१॥

(श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (स्वचरणसमाश्रितस्य) अपने चरणके समाश्रयण करनेवाले (कस्यचित्) किसी (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णवके (पुत्रस्य) पुत्रमें (एकायनसंसर्गम्) अत्यन्त आसक्तिको (दृष्ट्वा) देखकर (अस्मत्संबन्धिनः) मेरासंबन्धी (व्यभिचारेण) पुत्रासक्तिरूप निषिद्धका अनुष्ठान करनेसे (अनर्थः) अनर्थ (योग्यः) योग्य होता है (इति) ऐसा (विचार्य) विचार करके (श्रीभगवत्सन्निधौ) श्रीभगवान्की सन्निधिमें (स्थितः) ठहरे। तब (तत्र) वहाँपर श्रीभगवान्की सन्निधिमें (आगतम्) आये हुए (तम्) उस पुत्रासक्त श्रीवैष्णवके (प्रति) प्रति बोले कि (ननु) ऐ श्रीवैष्णव! (प्रमाणैः) प्रमाणों के द्वारा (तव) आपके (साधनीयम्) शिक्षा करने योग्य (किम्) कुछ (अपि) भी (न) नहीं (अस्ति) है (ज्ञानपौक्वल्याभावात्) ज्ञानके पौक्वल्यके अभाव होनेसे (किन्तु) लेकिन (अयम्) यह (शपथः) शपथ (मया) मुझसे (क्रियते) किया जाता है कि (वेदान्तेषु) उपनिषदादिक वेदान्तोंमें (निर्णीतः) निर्णय किया हुआ (अर्थः) अर्थ (अस्य) इस (आत्मनः) जीवात्माके (उपायः) भगवत्प्राप्तिका उपाय (द्वयातिरिक्तः) द्वयमंत्रसे अन्य (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा (उक्त्वा) श्रीभाष्यकार ने कह करके (चरणयोः) दोनोंचरणोंमें (स्थितम्) पड़े हुए उस

श्रीवैष्णवको (श्रीशठकोपम्) श्रीशठकोपको (उदाहरत्) उदाहरण दिया (च) और (सः) वह श्रीवैष्णव (तदाप्रभृति) उसी दिनसे (द्वयनिष्ठः) द्वयमन्त्रमें निष्ठ (अभवत्) हो गया। इस बेयासिवीं वार्तामें तिरपन पद हैं ॥ ८२ ॥

॥ इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥

अब भट्टारक स्वामीजीके और श्रीभाष्यकारके प्रश्नोत्तर रूपवार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारभट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीभट्टारको द्वयार्थमनुसंधाय शब्दान्तरेण तदर्थानुसन्धानं न संभवति किमिति श्रीभाष्यकारमपृच्छत्, स च तत्र न दोषस्तथाप्येतद्वाक्येन यावानर्थो लभ्यते तावान् शब्दान्तरे न लभ्यत इत्यवोचत्, अस्मदाचार्य्याः श्रीमंत्रे चरमश्लोके चार्थमेव गोपायन्ति द्वये तु शब्दमर्थं च गोपायन्ति श्रीमंत्रश्चरमश्लोकश्चाचार्यवाक्यं द्वयं शिष्यवाक्यं द्वये पूर्वखण्डार्थेऽनुसंहिते स्वरक्षणार्थमन्यत्र स्थितस्य तृणस्यान्यत्र प्रक्षेपणेऽपि प्राप्तिर्नास्ति, उत्तरवाक्यार्थेऽनुसंहिते मस्तककण्डूयनस्याप्यवसरो नास्ति ॥ ८३ ॥

॥ रामानुजमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ-- रामानुजमुनिर्जीयाद्यो हरेर्भक्तियंत्रितात्।
कलिकोलाहलक्रीडा मुधाग्रहमपाहरत् ॥ ८२ ॥

(श्रीभट्टारकः) श्रीभट्टारकस्वामीजीने (द्वयार्थम्) द्वयमंत्रके अर्थको (अनुसंधाय) अनुसंधान करके (शब्दान्तरेण) अन्यपर्याय वाचक शब्दोंसे (एतदर्थानुसन्धानम्) इस द्वय मंत्रके अर्थका अनुसंधान (न) नहीं (संभवति) हो सकता है (किम्) क्या (इति) ऐसा (श्रीभाष्यकारम्) श्रीभाष्यकारसे (अपृच्छत्) पूछा। तब (च) और (सः) उन श्रीभाष्यकारने (तत्र) उस द्वयमंत्रमें शब्दान्तरसे अनु- सन्धान करनेपर (दोषः) दोष (न) नहीं है (तथापि) तौभी (एतद्वाक्येन) इस द्वयमंत्रके वाक्यसे (यावान्)

जितना (अर्थः) अर्थ (लभ्यते) लाभहोता है। (तावान्) उतना अर्थ (शब्दान्तरेण) शब्दान्तरसे (न) नहीं (लभ्यते) लाभहोता है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। "लभ्यते" यहाँपर ॥ **सार्वधातुके यक्॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ६७॥** इस सूत्रसे यक् प्रत्यय हुआ है। (अस्मदाचार्याः) हमसबोंके आचार्यसब (श्रीमंत्रे) मूलमंत्रमें (च) और (चरमश्लोके) चरम श्लोकमें (अर्थम्) अर्थको (एव) निश्चयकरके (गोपायन्ति) रक्षा करते हैं। (च) और (द्वये) द्वयमंत्रमें (तु) तो (शब्दम्) शब्द और (अर्थम्) अर्थ इनदोनोंको (गोपायन्ति) रक्षाकरते हैं। "गोपायन्ति" यहाँपर ॥ **गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० २८ ॥** इस सूत्रसे आय प्रत्यय और ॥ **सनाद्यन्ताधातवः ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ३२ ॥** इस सूत्रसे धातुसंज्ञा होती है। (श्रीमंत्रः) मूलमंत्र (च) और (चरमश्लोकः) चरमश्लोक ये दोनों (आचार्यवाक्यम्) आचार्यके वाक्य हैं। और (द्वयम्) द्वयमंत्र (शिष्यवाक्यम्) शिष्यका वाक्य है। (द्वये) द्वयमंत्रमें (पूर्वखण्डार्थे) पूर्वखण्डका अर्थ (अनुसंहिते) अनुसन्धान करनेपर (स्वरक्षणार्थम्) अपनी रक्षा करने के लिये (अन्यत्र) दूसरेस्थानपर (स्थितस्य) स्थित (तृणस्य) तृणके (अन्यत्र) दूसरे स्थानपर (प्रक्षेपणे) फेंकने में (अपि) भी (प्राप्तिः) प्रकर्षरूपसे गति (न) नहीं (अस्ति) है। और (उत्तरवाक्यार्थे) द्वयमंत्रमें उत्तर खण्डका अर्थ (अनुसंहिते) अनुसंधान करनेपर (मस्तककण्डूयनस्य) मस्तक खुजलानेका (अपि) भी (अवसरः) अवसर (न) नहीं (अस्ति) है। इस वार्ता में सरसठपद हैं। इति श्रीभाष्यकारभट्टारकोक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥ ८३ ॥

अब श्रीकृष्णपादस्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०-मंडलादायनिर्गच्छति भगवच्चरणारविन्दशरणागतस्य ज्ञानिनामग्रेसरस्य विलक्षणाधिकारिणः प्रपन्नस्योपायेप्रवृत्तिः स्वरूपविरोधिनी, उपेये निवृत्ती रुचिविरोधिनी, एतदर्थयो र्निदर्शनं स्वरक्षणक्षमापि स्वरूपपारतन्त्र्यमनुसंधायाशोकवनिकायामवस्थिता श्रीजानकी स्वामिना गमने प्रतिषिद्धोऽपि स्वार्तिं पुरस्कृत्य तदुक्तिमतिक्रम्य वनं

गत्वा कैंकर्यकृत् श्रीबालस्वामी च संसारसम्बन्धनिवृत्ति-
पूर्वकं श्रीदेशविशेषप्राप्तिपर्यन्तं द्वयार्थमनुसंदधतः
प्रपन्नस्यकालयापनप्रकारः श्रीमहालक्ष्म्यनुगतस्वभावत्वा-
त्तत्पुरुषकारबलेनाश्रयतामस्माकं दोषमपश्यत आश्रि-
तानामतिसुलभस्य नारायणस्य चरणयुगलं ममात्यन्ता-
निष्ट मनादिमे तत्कालपर्यन्तमनवच्छिन्नसंबन्धं संसार
सवासनं निवर्त्य ममेष्टतमं निरतिशयानन्दावहमनन्त-
मपुनरावृत्तिलक्षणं मोक्षं प्रापयितुमव्यवहितोपायत्वे-
नाश्रितवान्, श्रीमहालक्ष्मीसहितस्य सर्वस्वामिनो
नारायणस्य चरणयोः सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचिता-
शेषशेषवृत्तीः कुर्यां तद्विरोधिनावहंकारममकारौ निवर्ते-
यातामिति ॥

अर्थ- (मडलादायनिः) मडलादायनि (गच्छति) प्राप्त करते हैं वि (भगवच्चरणारविन्दशरणागतस्य) भगवान्के चरणारविन्द की शरणमें आये हु (ज्ञानिनाम्) ज्ञानियोंमें (अग्रेसरस्य) आगे गिनानेवाला (विलक्षणाधिकारिणः विलक्षण अधिकारवाले (प्रपन्नस्य) प्रपन्नजनका (उपाये) उपायमें (प्रवृत्तिः) प्रवृ करना (स्वरूपविरोधिनी) स्वरूप विरोधी है। और (उपेये) उपेयमें (निवृत्तिः) निवृ करना (रुचिविरोधिनी) भगवत्-प्रीतिका विरोधी है। (एतदर्थयोः) उपायमें प्रवृ स्वरूपविरोधिनी है और उपेयमें निवृत्ति रुचि विरोधिनी है इन दोनों अर्थोंमें (निदर्शनम् निश्चय करके प्रमाण यह है कि (स्वरक्षणक्षमा) अपनी रक्षा करने में समर्थ हो हुई (अपि) भी (स्वरूपपारतन्त्र्यम्) स्वस्वरूप की परतंत्रता को (अनुसंधाय अनुसंधान करके (अशोकवनिकायाम्) अशोकवाटिका में (श्रीजानकी) श्रीसीत देवीजी (अवस्थिता) ठहरीं। श्रीसीताजीमें रावणादिको भस्म करनेकी शक्ति थी क्योंवि वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि-

॥ असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्। न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ वा० रा० सुं० ५, स० २२, श्लो० २०॥

हे रावण! श्रीरामजीकी आज्ञा नहीं होनेसे और पारतंत्र्य स्वरूप तपस्याके पालन करनेसे भस्म करने योग्य अपने तेजसे तुमको भस्म नहीं करती हूँ।।२०।। (स्वामिना) श्रीरामभद्र करके (गमने) वनमें जाने समयमें (प्रतिषिद्धः) निषेध करनेपर (अपि) भी (स्वार्तिम्) अपनी आर्तिको (पुरस्कृत्य) आगे करके (तदुक्तिम्) निषेधरूप उस उक्तिको (अतिक्रम्य) अतिक्रमण करके (वनम्) श्रीरामजीके साथ वनमें (गत्वा) जाकर (कैंकर्यकृत्) श्रीरामजीके सर्वदा कैंकर्य करनेवाले (श्रीबालस्वामी) श्रीलक्ष्मणजी (च) भी हैं। और (संसारसंबन्धनिवृत्तिपूर्वकम्) संसारके संबन्धके निवृत्तिपूर्वक (श्रीदेशविशेषप्राप्तिपर्यन्तम्) श्रीवैकुण्ठलोककी प्राप्ति पर्यन्त (द्वयार्थम्) द्वयमंत्रका अर्थ (अनुसंदधतः) अनुसंधान करते हुए (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जनके (कालयापनप्रकारः) कालक्षेप करनेका प्रकार है। तथा (श्रीमहालक्ष्म्यनुगतस्वभावत्वात्) श्रीमहालक्ष्मीदेवीके अनुगत स्वभाव होनेसे (तत्पुरुषकारबलेन) श्रीमहालक्ष्मीदेवीके पुरुषकारके बलसे (आश्रयताम्) आश्रयण करनेवाले (अस्माकम्) हम सबोंके (दोषम्) दोषको (अपश्यतः) नहीं देखते हुए (आश्रितानाम्) आश्रितप्रपन्नजनों के (अतिसुलभस्य) अत्यन्त सुलभ (नारायणस्य) नारायण भगवान्के (चरणयुगलम्) दोनों चरणारविन्दोंको (मम) मेरा (अत्यन्तानिष्टम्) अत्यन्त अनिष्ट (अनादिम्) अनादि (एतत्कालपर्यन्तम्) इतना समय पर्यन्त (अनवच्छिन्नसंबन्धम्) नहीं छिन्न संबन्ध है जिसका ऐसे (संसारम्) संसार को (सवासनम्) वासनाके साथ (निवर्त्य) दूर करके (मम) मेरा (इष्टतमम्) अत्यन्तइष्ट (निरतिशयानन्दावहम्) निरतिशयआनन्दको प्राप्त करानेवाले (अनन्तम्) अन्तरहित (अपुनरावृत्तिलक्षणम्) पुनरावृत्तिलक्षणरहित (मोक्षम्) मोक्षको (प्रापयितुम) प्राप्त करनेके लिये (अव्यवहितोपायत्वेन) व्यवध ानरहित उपायसे (आश्रितवान्) आश्रयण किया हूँ। और (श्रीमहालक्ष्मीसहितस्य) श्रीमहालक्ष्मीदेवीजीके सहित (सर्वस्वामिनः) सब-चर-अचर के स्वामी (नारायणस्य) नारायण भगवान्के (चरणयोः) दोनों चरणारविन्दोंमें (सर्वदेश सर्वकालसर्वावस्थोचिताशेषशेषवृत्तीः) सब देश सब काल और सब अवस्थाके उचित संपूर्ण शेषजीवकी वृत्तिको (कुर्याम्) मैं करूँगा। और (तद्विरोधिनौ) भगवत्के कैंकर्यके विरोधी (अहंकारममकारौ) अहंकार और ममकार हैं (इति) इससे (निवर्तेयाताम्) अहंकार तथा ममकार ये दोनों निवृत्त करने योग्य हैं। अब यहाँपर बहुतसे लोग यह कहते हैं कि मोक्षसे भी जीव फिरसे लौट आते हैं। इस विषयमें यह कहना है कि प्रत्येक दर्शनकारने अपनी अपनी तरहके मोक्ष मानते हुए भी मोक्षसे जीव फिरसे लौट आते हैं ऐसा कोई भी नहीं मानते हैं। जैसे कि जो नास्तिक आत्माको नहीं मानते हैं उनके यहाँ मृत्यु हो जाना ही मोक्ष हो जाना है। जैन शास्त्र आवरणक्षय को मोक्ष मानते हैं, एवं मुक्तजीवकी लोकोंसे अतीत आकाशमें स्थिति मानते हैं। और आवरणक्षय होनेसे

मुक्त स्वतः ऊपर चला जाता है ऐसा मानते हैं। बुद्धदेव भावना चतुष्टयसे शून्य रूपपर निर्वाण प्राप्त होनेको मोक्ष कहते हैं। आत्मोच्छेदको माध्यमिक मोक्ष कहता है। विज्ञानवादी निर्मल ज्ञान के उदयको ही मोक्ष कहते हैं। नित्यनिरतिशय सुखकी प्राप्तिको मोक्ष भट्ट और सर्वज्ञ मुनि मानते हैं। रसेश्वर महाराज जीवन्मुक्ति को प्रधान मोक्ष मानते हैं। प्रत्यभिज्ञा दर्शनवाले महेश्वरकी स्वातन्त्र्यप्राप्त दासता को मोक्ष कहते हैं। शैव, सारूप्यको मोक्ष मानते हैं। भरत ऋषि शरीर और इन्द्रियोंसे आत्माके छूट जानेको मोक्ष कहते हैं। अविद्यासे जीव बना है अविद्याके निवृत्त होनेपर जीवका अभाव हो जाता है, उसका वास्तविक तत्त्व ब्रह्म है वही एक रहता है। अविद्याके समूल नाशसे जीव भावका नाश होना ही निर्वाण मोक्ष है, इसे शंकराचार्यजी मानते हैं। महती देवताके साथ साम्य प्राप्त कर लेनेको ही वैयाकरण मोक्ष कहते हैं। योगशास्त्र और सांख्यशास्त्रके अनुसार संस्कार सहित मनसे नष्ट हो जानेपर कार्य कारणात्मक गुणोंका प्रधान मेल हो जानेपर पुरुषकी स्वरूप प्रतिष्ठा होती है इसको कैवल्य मोक्ष कहते हैं। दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिको वैशेषिक और नैयायिक मोक्ष कहते हैं। मीमांसक जैमिनि महर्षि कर्मसे जिस स्वर्गका कभी नाश नहीं होता है उस स्वर्ग की प्राप्तिको मोक्ष कहते हैं। ब्रह्मके साथ अखण्डानन्दके भोगको सायुज्य मोक्ष कहते हैं। ब्रह्मके समान लोकमें यानी ब्रह्मके लोकमें रहनेको सालोक्य मोक्ष कहते हैं। जिस तरह जगदीश शंख चक्र गदा पद्म-युक्त हैं, उसी तरहके रूपसे रहनेको सारूप्य मोक्ष कहते हैं। भगवान्के समीप रहनेको सामीप्य मोक्ष कहते हैं। और भगवान् रामानुजाचार्यजी श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान्को सर्वदा अनुभव करके भगवान्का नित्य कैंकर्य करनेके स्वभावविशेषसे सर्वदा स्थिति करना, इसीको मोक्ष कहते हैं अब अधोलिखित प्रमाणोंको कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें। जिससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मोक्ष होनेपर फिरसे जीव जन्म-मरण नहीं लेते हैं। **न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः॥ सांख्य० अ० ६, सू० १७॥** मुक्त जीवको फिरसे बन्धनका संयोग नहीं होता है अनावृत्ति अर्थात् नहीं लौटते हैं ऐसी श्रुति होनेसे ॥१७॥ **तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः॥ न्या० अ० १, आह्नि०१, सू० २२॥** दुःख जन्म प्रभृति दोष मिथ्या ज्ञानकी अत्यन्त जो निवृत्ति है उसको मोक्ष कहते हैं॥२२॥ **अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्॥ वेदा० अ० ४, पा० ४, सू० २२॥** मुक्त जीवका फिरसे जन्म नहीं होता है वेद प्रमाण होनेसे ॥२२॥ **धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ केनो० खं० १, श्रु०२॥** धीर ज्ञानी पुरुष इस लोकसे जाकर अमृत होते हैं, अर्थात् फिरसे नहीं मरते हैं॥२॥ **यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥ कठो० २, वल्ली० ६, मं० ८॥** जिसको जानकर जीव संसार बन्धनसे छूटता है और अमृतत्वको प्राप्त करता है॥८॥ **य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ कठ० अ० २, व० ६, मं० ९॥** जो कोई इस परमात्माको जानते हैं वे अमृत होते हैं॥९॥

एतस्मान्नपुनरावर्तन्ते॥ प्रश्नो० प्रश्न १, मं० १०॥ इस मोक्ष स्थानसे फिर नहीं लौटते हैं ॥१०॥ **तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥ मुण्ड० मु० ३, खं० २, मं० ९॥** शोक और पापको तरकर हृदयकी गाँठोंसे छूटकर अमृत होता है॥९॥ **न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखतां सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वशः॥ छा० अ० ७, प्रपा० ७, खं० २६, मं०, २॥** ज्ञानी पुरुष मृत्यु और रोग तथा दुःखको नहीं देखता है ज्ञानी पुरुष सबको देखता है और सब प्रकारसे सबको प्राप्त करता है॥२॥ **ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते॥ छां० अ० ८, प्र० ८, खं० १५, मं० १॥** मुक्तजीव ब्रह्मलोक पाता है फिर जन्म-चक्रमें नहीं लौटता है, नहीं लौटता है॥१॥ **तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः॥ बृह० अ० ६, ब्रा० २, कं० १५॥** मुक्तजीव ब्रह्म लोकमें निवास करते हैं, फिरसे उन लोगोंका जन्ममरणमें नहीं लौटना होता है॥१५॥ **ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ श्वेता० अ० १, मं० ८॥** नारायणदेवको जानकर ज्ञानी पुण्यपापरूप सब बन्धनोंसे छूट जाता है॥८॥ **यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ भगवद्गी० अ० ८, श्लो० २१॥** जिसको पाकर मनुष्य जन्म मरणमें नहीं आते हैं, वह मेरा सबसे श्रेष्ठ स्थान है॥२१॥ और यजुर्वेदमें लिखा है कि-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ यजु० अ० ३१, मं० १८॥

मैं उन महान् पुरुषको जानता हूँ जो प्रकाश स्वरूप हैं, और अन्धकारसे परे हैं उन श्रीमन्नारायण भगवान् को ही जानकर यह चेतन मृत्युको अतिक्रमण करता है, अर्थात् जन्म मरणसे छूटता है परमपद प्राप्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है॥१८॥ इन पूर्वोक्तप्रमाणोंसे स्पष्ट साबित होता है कि मोक्ष होनेपर वे जीव फिरसे नहीं लौटते हैं। ग्रन्थविस्तारके भयसे अधिक प्रमाण मैं नहीं लिखता हूँ जिसको विशेष जानना हो वह मेरी बनाई हुई श्रीवचनभूषण की चिन्तामणि टीका को देख ले॥ शमिति॥

❁

मू०-एतदर्थक्रमस्तु सापराधसंसारिचेतनस्य सर्वज्ञं सर्वेश्वरमाश्रयतोऽपराधान् तन्मनोविषयान् कर्तुं सौन्दर्येण गुणैश्च तं वशीकृत्यैनं तच्चरणयोर्घटयितुं निराबाधपुरुषकारभूतलक्ष्मीस्वरूपमुक्त्वा मतुपास्यास्तद्विश्लेषानर्हतारूपमहासंपल्लक्षणनित्ययोगमुक्त्वा नारायणपदेना-

स्याः पुरुषकारत्वस्याप्याकिंचित्करतामापादयन् तं तस्या-
श्रितविषयवात्सल्यादिगुणयोगमुक्त्वा चरणावित्यनेन
तस्मिन्-अपराधान् दृष्ट्वा त्यक्तुमुद्युक्ते सति वैषम्यमकृत्वा
स्वयं स्वीकुर्वतोश्चरणयोः साहित्यसौन्दर्यमुक्त्वा शरण-
मित्यनेन तयोरस्यानिष्टनिवृत्तीष्टप्राप्तिसाधनत्वमुक्त्वा
प्रपद्ये-इत्यनेन तस्योपायस्याधिकारी व्यावर्त्तकविशेषणं
स्वीकारमुक्त्वा श्रीमते-इत्यनेनोपेयसमये पुरुषकारभू-
तायाः स्वामिन्यास्तेन सह निरन्तरवासमुक्त्वा नारायण-
पदेन तस्य सर्वस्वामित्वमुक्त्वा चतुर्थ्यैतदुभयरूपमिथुने-
ऽस्य प्रपन्नस्य चेतनस्य स्वरूपानुरूपवृत्तिविशेषप्रार्थना-
मुक्त्वाऽध्याहार्येण स्यामितिशब्देन प्राप्तिमुक्त्वा नमसा
कैंकर्यकरणसमये तत्प्रीतिदर्शनजन्यप्रीतिव्यतिरिक्तायाः
स्वप्रीतेस्त्याग उच्यते।

अर्थ- और (एतदर्थक्रमः) इस द्वयमंत्रका अर्थक्रम (तु) तो ऐसा है कि (सापराधसंसारिचेतनस्य) अपराधसे युक्त संसारी जीवोंके (सर्वज्ञम्) सबको जाननेवाले (सर्वेश्वरम्) सबके स्वामी परमात्माको (आश्रयतः) आश्रयण करनेवाले जीवोंके (अपराधान्) अपराधोंको (तन्मनोविषयान्) भगवान्के मनका विषय (कर्तुम्) करनेके लिये (सौन्दर्येण) महालक्ष्मीजी अपनी सुन्दरतासे (च) और (गुणैः) दयालुता आदिक गुणोंसे (तम्) उस नारायण भगवान्को (वशीकृत्य) वश करके (एनम्) इस जीवात्मा को (तच्चरणयोः) भगवत्के चरणारविन्दोंमें (घटयितुम्) संयोग करानेके लिये (निराबाधपुरुषकारभूतलक्ष्मीस्वरूपम्) बाधासे रहित पुरुषकार भूत महालक्ष्मीजीके स्वरूपको (उक्त्वा) द्वयमंत्र के पूर्वार्धमें स्थित श्रीशब्दसे कहकर (मतुपा) श्रीशब्दके ऊपर आये हुए मतुप्प्रत्ययसे (अस्याः) महालक्ष्मी देवीजीके (तद्विश्लेषानर्हतारूपमहासंप-ल्लक्षणनित्ययोगम्) नारायण भगवान्के विश्लेषके अनर्हतारूपमहा संपत्ति लक्षण नित्ययोगको (उक्त्वा) कहकर (नारायणपदेन) द्वय मंत्रके पूर्वार्धमें स्थित नारायण शब्द से (अस्याः) इस महालक्ष्मी देवीजीके (पुरुषकारत्वस्य) पुरुषकारताके (अपि)

भी (अकिंचित्करताम्) कुछ भी नहीं करनेके भावको (आपादयन्) आपादान करते हुए (तम्) उस (तस्य) उस नारायणके (आश्रितविषयवात्सल्यादिगुणयोगम्) आश्रयण करनेका विषयवात्सल्य सौशील्य सौलभ्य आदिक गुणोंके योगको (उक्त्वा) कहकर (चरणौ) द्वयमंत्रमें स्थित चरणौ (इति) ऐसा (अनेन) इस शब्दसे (तस्मिन्) जीवात्मा में (अपराधान्) अपराधोंको (दृष्ट्वा) देखकर (त्यक्तुम्) छोड़नेके लिये (उद्युक्ते) तैयार (सति) रहनेपर (वैषम्यम्) विषमताको (अकृत्वा) नहीं करके (स्वयम्) अपनेसे (स्वीकुर्वतोः) स्वीकार करते हुए (च्नरणयोः) भगवत्के दोनों चरणारविन्दोंके (साहित्यसौन्दर्यम्) साहित्य सौन्दर्यको (उक्त्वा) कहकर (शरणम्) द्वयमंत्रमें स्थित (इति) ऐसा (अनेन) इस दूसरे पदसे (तयोः) दोनों चरणारविन्दोंके विषयमें (अस्य) इस चेतनकी (अनिष्टनिवृत्तीष्टप्राप्तिसाधनत्वम्) अनिष्ट निवृत्ति और इष्ट प्राप्तिके उपायत्वको (उक्त्वा) कहकर (प्रपद्ये) द्वयमंत्रमें स्थित प्रपद्ये (इति) ऐसा (अनेन) इस तीसरे पद से (तस्य) उस (उपायस्य) उपायके (अधिकारी) अधिकारी (व्यावर्त्तकविशेषणम्) इतर व्यावर्त्तक विशेषणको और (स्वीकारम्) श्रीमन्नारायणके चरणोंके स्वीकारको (उक्त्वा) कहकर (श्रीमते) द्वयमंत्रके उत्तरार्ध में स्थित श्रीमते (इति) ऐसा (अनेन) इस पदसे (उपेयसमये) उपेय समयमें (पुरुषकारभूतायाः) पुरुषकारभूता (स्वामिन्याः) स्वामिनी महालक्ष्मीदेवीजीके (तेन) उस नारायण भगवान्के (सह) साथ (निरन्तरवासनम्) निरन्तर निवासको (उक्त्वा) कहकर (नारायणपदेन) द्वयमंत्रके उत्तरार्धमें स्थित नारायण शब्दसे (तस्य) उन भगवान्के (सर्वस्वामित्वम्) सबके स्वामित्व गुणको (उक्त्वा) कहकर (चतुर्थ्या) द्वयमंत्रमें स्थित नारायण शब्दके ऊपर जो चतुर्थी विभक्ति है, उस चतुर्थी विभक्तिसे (एतदुभयरूपमिथुने) इस लक्ष्मी और नारायणके युगलरूपके विषयमें (अस्य) इस (प्रपन्नस्य) प्रपन्न (चेतनस्य) चेतनजीवकी (स्वरूपानुरूपवृत्तिविशेषप्रार्थनाम्) अपने स्वरूपके अनुरूप वृत्ति विशेषकी प्रार्थनाको (उक्त्वा) कहकर (अध्याहार्येण) अध्याहार किये हुए (स्याम्) स्याम् (इति) ऐसे (शब्देन) शब्दसे (प्राप्तिम्) प्राप्तिको (उक्त्वा) कहकर (नमसा) द्वयमंत्रके अन्तिम नमः इस पदसे (कैंकर्यकरणसमये) कैंकर्य करनेके समय में (तत्प्रीतिदर्शनजन्यप्रीतिव्यतिरिक्तायाः) श्रीमन्नारायणके प्रेमके दर्शनसे उत्पन्न प्रीति से व्यतिरिक्त (स्वप्रीतेः) अपनी प्रीति का (त्यागः) त्याग (उच्यते) कहा जाता है। कमिति।।

❁

मू०–[१]उपायं [२]प्रतिष्ठापयन्ति [३]जानकी [४]द्रौपदी [५]तिरु–[६]क्कण्णमंगैयाण्डान्– [७]उपेयं [८]प्रतिष्ठापयन्ति [९]बालस्वामी जटायु–

श्रिन्तयन्ती पिल्लैतिरुनरैयूररैयर् ''शीतो भव'' इति कथनहेतुशक्तिमती स्वस्या सहावस्थाननिवर्त्तनक्षमा स्वामिस्वरूपस्य न्यूनता स्यादिति तृणमपि नाच्छिनत्, निर्लज्जसभायां लज्जावती स्वलज्जां तदधीनमकरोत्, स्वव्या-पारं त्यक्त्वा वैकुण्ठस्य द्वार्यवसत्, अत उपायस्य सीमा-भूमिरेतै तिष्ठेत्युक्तौ ''कुरुष्व मामनुचरम्'' ''अहं सर्वं करिष्यामि'' ''क्रियतामिति मां वद'' इति कथनात् लक्ष्मणेन गतां गतिमित्युक्तप्राप्तिमत्वात् ''सहजकैंकर्यवि-धयः'' इत्युक्तस्यार्थस्य सिद्धत्वात्, जटायुषा पिल्लैतिरुनरै-यूररैयरित्यनेन प्राप्तविषयविश्लेषे स्वस्वशरीरानादरणात्, चिन्तयन्त्या प्राप्तविषयदर्शनमात्रे विरोधिनः शरीरस्य त्यक्तत्वात्-उपेयानुभवस्य सीमाभूमिरेतै-औच्चियाच्चानि-त्यस्य भगवच्छेषमनादिकालमारभ्य भगवत्संबन्धं नाशितवन्तं जन्तुं भगवच्चरणयो र्घटयित्वोज्जीवयितुं श्री रस्तोति जानीहीत्यवोचत्, त्यक्त्वाश्रित्य विश्वस्यावस्थिति-रधिकारी कृत्यं त्याजयित्वाऽऽश्रयित्वा विरोधिनिवर्तन-मुपायकृत्यमिति श्रीकृष्णपादः ॥ ८४ ॥

अर्थ- और ये सब (उपायम्) उपायको (प्रतिष्ठापयन्ति) प्रतिष्ठापन करते हैं। (जानकी) श्रीसीता देवीजी तथा (द्रौपदी) द्रौपदीजी और (तिरुक्कण्णमगैयाण्डान्) तिरुक्कण्णमगैयाण्डान् महात्मा, और ये अधोलिखित सब (उपेयम्) उपेयको (प्रतिष्ठापयन्ति) प्रतिष्ठापन करते हैं। (बालस्वामी) श्रीलक्ष्मणजी और (जटायुः) महाराज गृध्रराज जटायु तथा (चिन्तयन्ती) चिन्तयन्ती नामकी गोपी और (पिल्लैतिरुनरैयूररैयर्) पिल्लैतिरुनरैयूररैयर् आचार्य, (शीतः) ऐ अग्ने! शीतल (भव) होजा (इति) इस प्रकारके (कथनहेतुशक्तिमती) कथनमें कारण रूप शक्तिवाली

श्रीसीतादेवीजीने (स्वस्याः) अपने (सहावस्थाननिवर्त्तनक्षमा) अशोकवाटिकामें निवासको दूर करनेके लिये समर्थ होती हुई भी (स्वामिस्वरूपस्य) स्वामी श्रीरामजीके स्वरूपकी (न्यूनता) न्यूनता (स्यात्) हो जायेगी (इति) इस कारणसे (तृणम्) तृणको (अपि) भी (न) नहीं (अच्छिनत्) छेदन किया। 'अच्छिनत्' यहाँपर ॥ **रुधादिभ्यः श्नम्॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ७८॥** इस सूत्रसे श्नम् प्रत्यय हुआ है। और द्रौपदी (निर्लज्जसभायाम्) निर्लज्ज कौरवोंकी सभामें (लज्जावती) लज्जावाली होती हुई भी (स्वलज्जाम्) अपनी लज्जाको (तदधीनम्) भगवत्के अधीन (अकरोत्) कर दी। 'अकरोत्' यहाँपर **तनादिकृञ् भ्यउः॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ७९॥** इस सूत्रसे उ प्रत्यय हुआ है। दौपदीने अपनी लज्जाको छोड़ दिया है, क्योंकि इस विषय में महाभारतके सभापर्व में लिखा है कि-

सा कृष्यमाणा नमितांगयष्टिः शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि॥ एकञ्च वासो मम मन्दबुद्धे नेतुं सभान्नार्हसि मामनार्य॥ महाभा० सभाप० २, अ० ६७, श्लो० ३२॥

दुःशासनके खींचनेसे नम्र शरीरवाली द्रौपदीने धीरेसे कहा कि-मैं रजस्वला और एक वस्त्रवाली हूँ, इससे हे मन्दबुद्धे अनार्य! तुम मुझको सभामें ले जानेके योग्य नहीं हो॥३२॥ इससे साबित होता है कि लज्जावाली द्रौपदी थी-

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥ महाभा० सभाप० २, अ० ६८, श्लो० ४१॥ कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव । हे नाथ रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन। कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥४२॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन। प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥४३॥

हे गोविन्द हे द्वारिकावासिन् हे कृष्ण हे गोपीजनप्रिय ॥४१॥

हे केशव! कौरवोंसे सभामें नंगी की जानेवाली मुझाको आप नहीं जानते हैं। हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे आर्तिनाशन ! हे जनार्दन ! कौरवरूपी समुद्रमें डूबती हुई मुझको उद्धारिये॥४२॥ हे कृष्ण ! हे माधव ! हे महायोगिन् हे विश्वात्मन् ! हे गोविन्द ! कौरवोंके बीचमें नंगी की जानेवाली मुझको बहुत सा वस्त्र समर्पण करके मेरी रक्षा कीजिए॥४३॥ इससे साबित हो गया कि- द्रौपदी लज्जाका परित्याग कर दिया है, और तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् (स्वव्यापरम्) अपने व्यापार को (त्यक्त्वा) छोड़कर (वैकुण्ठस्य) भक्त जीवन नामके भगवान्के दिव्य देशको (द्वारि) द्वारपर (अवसत्) रहने लगे। 'अवसत्' यहाँपर ॥ **अनद्यतनेलङ्॥ व्या० अ० ३, पा० २, सू० १११॥** इस सूत्रसे लङ् तथा ॥ **लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० ७१॥** इस सूत्रसे अडागम और ॥ **इत श्च॥ व्या० अ० ३, पा० ४,**

सू० १००॥ इस सूत्रसे इकार का लोप हुआ है। तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् अपने व्यापारको छोड़ दिये हैं, क्योंकि इस विषयमें प्रपन्नामृत में लिखा है कि–

ततः कदाचिद् वृषलौ सश्वानौ खड्गधारिणौ। उपानद्गूढपादौ च तत्र कौचित्समागतौ॥ प्रपन्ना० अ० १०९, श्लो ० ४२॥ भक्तवत्सलदेवस्य श्रुत्वा माहात्म्यमद्भुतम्। संजातभक्तिभावौ तौ संसेवितुमपीषतुः॥४३॥ पादरक्षे विमुच्याशु तद्बहिः सत्वरं तयोः। श्वानद्वयं विनिक्षिप्य रक्षार्थं निश्चलौ तदा॥४४॥ तौ स्नातौ संप्रविश्याशु भक्तवत्सलसन्निधिम्। संसेव्यांजलिहस्तौ तौ भक्त्या श्रीभक्तवत्सलम्॥४५॥ प्रदक्षिणक्रमेणैव गत्वा श्रीसन्निधिं ततः। नत्वाभिषेकवर्ल्लीं च तत्रत्यानखिलान् सुरान् ॥४६॥ प्रदक्षिणक्रमेणैव तावुभौ बहिरागतौ। तत्रान्तरे तयोरासीत्कलहः सारमेययोः॥४७॥ अन्योपानद्ग्रहेणैव तयोरन्योन्यमद्भुतम्। स्वभाववैरिणोस्तत्र स्वामिकार्यैकवर्तिनोः॥४८॥ तद्युद्धदर्शनौत्सुक्यादाज्जनसंघो महानभूत्। तौ तदा तत्र चागत्याहवं तत्स्वामिनौ महत्॥४९॥ दृष्ट्वा शुनोस्तदा तस्मिन् क्षणमात्रं ह्यवस्थितौ। श्वानौ तुल्यबलौ तत्र द्रष्टुर्विस्मयकारिणौ॥५०॥ अयुद्धेयतां तदा वीरौ महारवसमन्वितौ। एकेन ताडितः संख्ये तत्रान्यः सारमेयकः॥५१॥ सुतरामुद्भमन् रक्तं क्षीणप्राणोऽभवत्तदा। क्षीणप्राणं विलोक्याशु तत्स्वामी श्वानमातुरम्॥५२॥ ततः स्वभक्तवात्सल्याद्धठात्खड्गं प्रगृह्य च। शिरश्चिच्छेद तस्याग्रवर्तिनस्तच्छुनो रुषा॥ ५३॥ तत्स्वामी पतितं दृष्ट्वा श्वानं खड्गहतं भुवि। रुषा खड्गं प्रगृह्याशु प्रलयाग्निरिव ज्वलन्॥५४॥ तं सारमेयहन्तारं संग्रामायाभिदुद्रुवे। अभूत्तयोश्च संग्रामोऽत्यन्तं वै रोमहर्षणः ॥५५॥ सुन्दोपसुन्दन्यायेन तावुभौनिहतौ रणे। तत्रान्तरे समादाय संपूर्णां पुष्पदामभिः॥५६॥ श्रीकृष्णलक्ष्मीनाथार्यः सभक्तया पुष्पपेटिकाम्। भक्तवत्सलदेवाय विष्णवे सम्यगर्पितुम्॥५७॥ कृतत्वरः समागच्छन् भक्तवत्सलसन्निधिम्। तत्र कोलाहलरवं शुश्राव सतमद्भुतम्॥५८॥ सम्यगेव सत दृवृत्तं ज्ञात्वा सर्वं सहेतुकम्। विस्मितश्चिन्तयामास तयोर्वात्सल्यमद्भुतम्॥५९॥ एतौ क्षुद्रसमाचारौ सेवावृत्त्युपजीविनौ। स्वभक्तश्वानवात्सल्यात् क्षणेन निहतौ रणे॥६०॥ क्षुद्रयोरेतयोर्भक्तवात्सल्यं महदद्भुतम्। तत्प्रवक्तुं कथं केन शक्यते ह्यतिमानुषम्॥६१॥ प्रत्यक्षेण मया दृष्टस्तयोरेतादृशो गुणः। धर्माधर्मविचारादिशून्ययोः क्षुद्रकर्मणोः॥६२॥ निर्व्याजबन्धोः सर्वज्ञमूर्तेः सर्वजगत्पतेः। अपारकरुणासिन्धोर्धर्माधर्म-विचारिणः॥६३॥ विष्णोर्भगवतस्तस्य जगन्मातुर्जगत्पितुः। लक्ष्मीर्भर्तुर्हि वात्सल्ये किं वक्तव्यं मयाधुना॥६४॥ रक्षिष्यति न वा भक्तमिति यन्मे विचारणा। किमर्थं भगवाञ्शीघ्रं रक्षिष्यति न संशयः ॥६५॥ इत्येवं मनसा सम्यङ् निश्चित्य भगवत्परः। श्रीकृष्णलक्ष्मीनाथार्यः श्रीपतौ भक्तवत्सले॥६६॥ श्रीमान्न्यस्तभरःशीघ्रं स्वव्यापारं विसृज्य तम्। अनुष्ठानक्रियाः सर्वा दूरतः परिहृत्य च॥६७॥ ततः

श्ववृत्तिमास्थाय चतुष्पदचरोभवत्। प्रातर्ग्रामाद्बहिर्गत्वाकृतदेहविशोधनः॥ ६८॥
स्नातस्तटाके कस्मिंश्चित्पशुवच्च दिगंबरः। जानुपाणिचरोवेगाद्भक्तवत्सलसन्निधौ ॥६९॥
मूले बकुलवृक्षस्य धृतमौनः समास्थितः । भक्तवत्सलदेवस्य कृपया यत्समागतम्॥७०॥
भुक्त्वान्नं निश्चलः सम्यग् दृढमौनो व्यतिष्ठत॥७१॥

उसके बाद किसी समयमें श्रीकृष्ण मंगल क्षेत्रमें जूता पहने हुए और तलवार लिये हुए दो शूद्र अपने कुत्तोंके साथ आये॥४२॥ और भक्तवत्सल देवके आश्चर्ययुक्त माहात्म्यको सुनकर उत्पन्न भक्तिभाववाले उन दोनों शूद्रों ने भगवान्के दर्शन करनेकी इच्छा की॥४३॥ तब वे दोनों बाहर शीघ्र जूतोंको निकालकर अपने अपने जूतोंकी रक्षाके लिये अपने अपने कुत्तेको सौंप करके॥४४॥ वे दोनों वृषल स्नान करके मंदिरमें पैठकर भक्तिसे भक्तवत्सल भगवान्का दर्शन करके और हाथ जोड़ कर॥४५॥ प्रदक्षिणाके क्रमसे श्रीसन्निधिको पाकर उसके बाद अभिषेकवल्लीको और वहाँ पर स्थित समस्त देवताओंको साष्टाङ्ग प्रणाम करके ॥४६॥ प्रदक्षिणाके क्रमसे वे दोनों शूद्र बाहर आये और उसी समयमें उन दोनों कुत्तोंमें कलह हुआ॥४७॥ स्वभावसे बैर करनेवाले और अपने स्वामीके कार्यमें लगे हुए उन दोनों कुत्तोंका एक दूसरेके जूताग्रहण करनेसे आपसमें अद्भुत संग्राम हुआ॥४८॥ और उन कुत्तोंके युद्ध को देखनेके लिये बहुत जनोंका समूह इकट्ठा हुआ, तथा वहाँपर उन दोनों शूद्रों ने आकर महान् आहव किया ॥४९॥ और दोनों कुत्तों को देखते हुए वहाँ पर वे दोनों शूद्र क्षणमात्र ठहरे। देखनेवालोंके विस्मय करानेवाले तुल्य बलवाले वे दोनों कुत्ते॥५०॥ बड़ा शब्द करते हुए आपसमें युद्ध किये और एकने संग्राममें दूसरे कुत्तेको मारा॥५१॥ तब खून फेकता हुआ वह कुत्ता क्षीणप्राण हो गया तब उस कुत्ते का मालिक आतुर क्षीण प्राण उस कुत्तेको देखकर॥५२॥ इसके बाद अपने कुत्तेके वात्सल्यसे हठपूर्वक तलवार लेकर क्रोधसे आगे ठहरे हुए उस कुत्तेका सिर काट दिया॥५३॥ इसके बाद उस कुत्तेका स्वामी तलवारसे हत पृथ्वीमें गिरे हुए उस कुत्तेको देखकर क्रोधसे प्रलयकालकी अग्निके समान जलता हुआ तलवारको लेकर॥५४॥ उस कुत्तेको मारनेवालेको मारनेके संग्राम करनेके लिए दौड़ा, और उन दोनों शूद्रोंमें अत्यन्त रोमहर्षण संग्राम हुआ॥५५॥ और सुन्दोपसुन्द न्यायसे उस रणमें वे दोनों शूद्र मरे कि- उसी समयमें पुष्पकी मालाओंसे भरी हुई पेटीको लेकर॥५६॥ श्रीकृष्णलक्ष्मीनाथार्य अर्थात् तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् स्वामीजी विष्णुभक्त वत्सल देवके लिये सम्यक् अर्पण करनेके लिये भक्तिसे फूलकी पेटीको ग्रहण किये हुए॥५७॥ जल्दीसे भक्तवत्सल भगवान्की सन्निधिमें गये और वहाँपर उस अद्भुत कोलाहल शब्दको सुने॥५८॥ और उस तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् ने कारण सहित उस समस्त वृतान्तको अच्छी तरह से जानकर विस्मित हो उन दोनों शूद्रोंके अद्भुत वात्सल्यको चिन्तन किया॥५९॥ नौकरीसे जीनेवाले क्षुद्र समाचार वे

दोनों शूद्र अपने भक्त कुत्तोंके वात्सल्यसे क्षणमात्र करके रणमें मरे।।६०।। इन दोनों शूद्रोंके अति मानुष अद्भुत उस भक्त वात्सल्यको कैसे कौन पुरुष कहनेके लिये समर्थ हो सकता है।।६१।। धर्म और अधर्मके विचार आदिसे शून्य क्षुद्र कर्मवाले इन दोनों शूद्रोंका ऐसा वात्सल्य गुण मैंने प्रत्यक्ष देखा।।६२।। तो बिना व्याजका बन्धु सर्वज्ञमूर्ति सब संसारके रक्षक अपार करुणाके समुद्र धर्म और अधर्मके विचार करनेवाले।।६३।। उस समस्त संसारके माता और पिता लक्ष्मीपति विष्णुभगवान्के वात्सल्य गुणके विषयमें अब मुझे क्या कहने योग्य है।।६४।। भगवान् भक्तकी रक्षा करेंगे, या नहीं ऐसी जो विचारणा है, सो किस लिये भगवान् शीघ्र ही रक्षा करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।।६५।। भक्तवत्सल श्रीपति के विषयमें तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् स्वामीजी मनसे इस प्रकारके सम्यक् निश्चय करके।।६६।। समस्त भारको भगवत्में समर्पण करके शीघ्र ही अपने व्यापारको छोड़कर और समस्त अनुष्ठानकी क्रियाओंको दूरसे वासना और रुचि सहित छोड़कर।।६७।। इसके बाद कुत्तेकी वृत्तिको ग्रहण करके चार पैरसे चलनेवाले हुए, और प्रातःकाल गाँवसे बाहर जाकर अपने देहका विशोधन करके।।६८।। किसी तालाबमें स्नान करके पशुके समान दिगम्बर वेगसे भगवान् भक्तवत्सलकी सन्निधिमें जानु और पाणिसे चलते हुए।।६९।। मौलेसरीके पेड़के मूलमें मौन धारण करके ठहरे। और भक्तवत्सल देवकी कृपासे जो कुछ प्राप्त होता था।।७०।। उस अन्नको अच्छे प्रकारसे भोजन करके निश्चल दृढ़ मौन हो करके ठहरे।।७१।। इससे साबित हो गया कि तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् ने अपने व्यापारको छोड़कर भक्तवत्सलदेवके द्वारपर निवास किया है। (अतः) इस कारणसे (उपायस्य) उपायकी (सीमाभूमिः) अन्तिम सीमाकी भूमि (एते) ये जानकी तथा द्रौपदी और तिरुक्कण्णमंगैयाण्डान् हैं। (तिष्ठ) ऐ लक्ष्मण! तुम अयोध्या में रहो (इति) ऐसा (उक्तौ) श्रीरामजीके कहनेपर (कुरुष्व) कीजिए आप (माम्) मुझे (अनुचरम्) अपना अनुचर (अहम्) मैं (सर्वं) सब प्रकारके कैंकर्यको (करिष्यामि) करूँगा (क्रियताम्) आश्रमको बनावो (इति) इस प्रकारके (माम्) मुझको (वद) आज्ञा दीजिये (इति) ऐसा (कथनात्) श्रीलक्ष्मणजीके कहनेसे (लक्ष्मणेन) श्रीलक्ष्मणजी करके (गताम्) प्राप्त करनेवालोंकी (गतिम्) गतिको (इति) ऐसा (उक्तप्राप्तिमत्वात्) उक्त प्राप्तिमत्व होनेसे (सहजकैंकर्यविधयः) साथ उत्पन्न कैंकर्यकी विधियाँ (इति) इस प्रकारके (उक्तस्य) कहे हुए (अर्थस्य) अर्थके (सिद्धत्वात्) सिद्ध होनेसे और (जटायुषा) महाराज जटायु तथा (पिल्लैतिरुनरैयूरैयर्) पिल्लैतिरुनरैयूरैयर् (इति) ऐसा नामवाले (अनेन) इस आचार्य द्वारा (प्राप्तविषयविश्लेषे) प्राप्त भगवद्विषयके वियोग होनेपर (स्वस्वशरीरानादरणात्) अपने अपने शरीरके अनादर करनेसे अर्थात् परित्याग करनेसे। क्योंकि जटायुके विषयमें वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि- जब अचानक आकर रावणने श्रीसीताजीको हरण किया तब श्रीसीताजीने

जटायुको वृक्षके ऊपर देखकर कहा कि- हे जटायु तुम देखो यह पापी मुझको चुराकर ले जा रहा है। ऐसे सोये हुए जटायु ने आर्त शब्द सुनकर रावणसे हरी हुई श्रीसीताको देखकर रावणको अनेक प्रकारका धर्मोपदेश दिया तौ भी जब क्रूर रावण नहीं माना तब श्रीगृध्रराजने कहा कि -**न हि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभमिमाम्॥ वा० रा० अरण्य० ३, स० ५०, श्लो० २६॥** हमारे जीते हुए इस श्रीसीताजीको तुम नहीं ले सकते हो॥२६॥ खड़ा रहो मुझसे संग्राम करो ऐसा कहकर रावणके साथ घोर संग्राम किया और अन्तमें-

सच्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा। निपपात महा गृध्रो धरण्यामल्पजीवितः॥ वा० रा० अर० ३, स० ५१, श्लो० ४३।

रौद्रकर्मवाले रावण राक्षस ने जब गृध्रराजके पंख काट दिया तब सहसा अल्प जीवनवाले गृध्रराज पृथ्वीमें गिर गये॥४३॥ इसके बाद॥ **त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य प्राणा जग्मुर्विहायसम्। वा० रा० अर० ३, स० ६८, श्लो० १७॥** जटायु महाराजके प्राण सब शरीरको छोड़कर स्वर्ग लोकको चले गये॥१७॥ इससे साबित हो गया कि -महाराज जटायु अपने शरीरको अनादर कर दिये हैं। पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्यके विषयमें लिखा है कि-

पिल्लैतिरुनरैयूररैयर् सकुटुंबं श्रीनारायणपुरे वेदनारायणस्वामिनं सेवितुं गत्वा स्थितिसमयेपरसमयिषुतस्मिनन्मन्दिरे अग्निं प्रक्षिपत्सु अन्तः स्थितेषु सर्वेषु ततो निर्गत्य पलायमानेषु तस्य भगवतो दिव्यमंगलविग्रहस्यागतावद्यं दृष्ट्वाऽसहमान प्रेमातिशयेन स्वयमपि शरीरं त्यक्तुमध्यवस्य स्थितत्वात् तत्पुत्राणामप्यमुं विहाय न गच्छाम इति स्थितत्वात् तैः सह तत्र स्थित्वा शरीरं तत्याजेति प्रसिद्धम्॥ श्रीवचन भू० सू०८९, की व्याख्या।

पिल्लैतिरुनरैयूररैयर् सकुटुम्ब श्रीनारायण पुरमें वेदनारायण भगवान्का दर्शन करनेके लिये मन्दिरमें पैठे थे कि- उसी समयमें नास्तिकोंने उस मन्दिरमें आग लगा दी तब भीतरके सब लोग बाहर भाग गये परन्तु पिल्लैतिरुनरैयूरयैयर् आचार्यने वेदनारायण भगवान्के दिव्य मंगल विग्रहको जलते हुए देखकर असह्य हो अधिक प्रेमसे आप भी मरनेकी तैयारीकी और इनके पुत्रोंने भी इनका साथ नहीं छोड़ा बस वे सब उस मन्दिरके भीतर जलकर भस्म हो गये यह बात प्रसिद्ध है॥ इससे साबित हो गया-कि पिल्लैतिरुनरैयूररैयराचार्य अपने शरीरको अनादर कर दिये हैं। और (चिन्तयन्त्या) चिन्तयन्ती गोपी करके (प्राप्तविषयदर्शनमात्रे) प्राप्त भगवद्विषयके दर्शन मात्रमें (विरोधिनः) विरोधी (शरीरस्य) अपने शरीरके (त्यक्तत्वात्) त्याग करदेनेसे। क्योंकि चिन्तयन्ती गोपीके विषय में लिखा है कि-

काचिदावसथस्यान्ते स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम्। तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना॥ तच्चित्तविमलाह्लादक्षीणपुण्यचया तदा। तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका॥ चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरूपिणम्। निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका ॥

कोई गोपी घरके भीतर रहनेवाली बाहर श्वसुर आदिक गुरुजनोंको देखकर श्रीकृष्ण भगवान्के पासमें जा नहीं सकी, तब आँख मूँदकर तन्मय हो गोविन्दका उसने ध्यान किया। श्रीकृष्णमें चित्त लगानेसे महानन्दकी प्राप्ति द्वारा पुण्य के समूहों से रहित हुई ध्यान से निवृत्त होने पर श्री कृष्णकी अप्राप्ति जानकर जो महादुःख उसने पाया उससे पापरहित हुई। संसारको बनानेवाले परब्रह्मस्वरूपी श्रीकृष्ण भगवान्का चिन्तन करती हुई चिन्तयन्ती गोपीनेश्वास बन्द की और वह गोपकन्या संसारसे मुक्त हो गई। इससे साबित हो गया कि चिन्तयन्ती गोपी ने अपने शरीरको परित्याग कर दिया है। (उपेयानुभवस्य) उपेयके अनुभवकी (सीमाभूमिः) अन्तिम सीमाभूमि (एते) ये बाल स्वामी गृध्रराज पिल्लैतिरुनरैयूरैयर् और चिन्तयन्ती हैं। (च) और (आच्चियात्) आच्चियात् (अनित्यस्य) अनित्यके (भगवच्छेषम्) भगवच्छेषको (अनादिकालम्) अनादि कालसे (आरभ्य) आरम्भकर (भगवत्सम्बन्धम्) भगवान्के सम्बन्धको (नाशितवन्तम्) नाशनेवाले (जन्तुम्) जीवको (भगवच्चरणयोः) भगवान्के चरणारविन्दोंमें (घटयित्वा) संयोग कराकर (उज्जीवयितुम्) उज्जीवन करानेके लिये पुरुषकारभूत (श्रीः) महालक्ष्मीजी (अस्ति)हैं (इति) इस प्रकारके (जानीहि) तुम जानो (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। (त्यक्त्वा) विषयोंको छोड़कर (आश्रित्य) भगवान्को आश्रयण करके (विश्वस्य) संसारकी (अवस्थितिः) अवस्थिति (अधिकारी) अधिकारीका कृत्य है। और (त्याजयित्वा) विषयोंको छुड़वा करके (आश्रयित्वा) भगवान्को आश्रयण कराकर (विरोधिनिवर्तनम्) विरोधियों को दूर करना (उपायकृत्यम्) उपायका कृत्य है (इति) ऐसा (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस चौरासवींवार्त्तामें पाँचठो प्रतीक हैं इनमें क्रमसे यहाँपर उन प्रतीकोंके समस्त श्लोकों को लिखता हूँ।

यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतोभव हनूमतः। ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः॥ वा० रा० सुन्द० ५, स० ५३, श्लो० २७॥ एवं ३१॥

यदि एक पत्नीत्व धर्म होतो हनूमान्जीकी पूँछपर ऐ अग्ने, तुम शीतल हो जा ऐसा श्रीसीताजीके कहनेके बाद तीक्ष्णज्वालावाली अग्नि प्रदिक्षण शिखासे युक्त पूँछपर शान्त हो गयी॥२७॥, ३१॥

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते। कृतार्थोऽहं भविष्यामि तवचार्थः

प्रकल्पते॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो०२४॥

हमको आप अपना अनुचर बनाइये, इसमें कोई अधर्म नहीं है, मै कृतार्थ होऊँगा और आपका भी प्रयोजन सिद्ध होगा॥२४॥

भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते। अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते॥ वा० रा० अयो० २, स० ३१, श्लो० २७॥

और आप श्रीसीताजीके साथ पहाड़ोंकी चोटियोंपर जब क्रीड़ करेंगे, तब मैं सोते हुए या जागते हुए आपके सब प्रकारके कैंकर्यको को करूँगा॥२७॥

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशते स्थिते। स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥ वा० रा० अर० ३ स० १५ श्लो० ७॥

हे श्रीराम भगवन्! आप जबतक रहेंगे तबतक मै परतन्त्र हूँ इसलिये आपही अपने इच्छित देशमें आश्रम बनानेको मुझे आज्ञा दीजिये॥७॥

अकारर्थायैव स्वमहमथ मह्यं न निवहा नराणां नित्यानामयनमिति नारायणपदम्। यमाहास्मैकालं सकलमपि सर्वत्र सकलास्वस्थास्वा विःस्युर्मम सहजकैंकर्यविधयः॥ अष्टश्लो० श्लो० ३॥

यह जीवात्मा निश्चय करके अकारका अर्थ जो विष्णु है, उस विष्णु के लिये केवल है, मैं अपने लिये नहीं हूँ और नर माने नित्य वस्तुओंके समूहको नार कहते हैं और नारोंके अयनको नारायण कहते हैं उस नारायण भगवान्के लिये सब काल तथा स्थान और सब अवस्थाओं में मेरे साथ उत्पन्न होनेवाले कैंकर्यकी विधियाँ सब उत्पन्न होवें॥३॥ इस श्लोकका विशेष अर्थ जिसको जानना हो वह "सौम्योपयंत्री" व्याख्याको देख ले। इस चौरासवीं वार्ता में दो सौ अठासी पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥८४॥

अब गोवर्द्धनदासजीके और श्रीकूरेशस्वामीजीके संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीकूरेशगोवर्द्धनदासोक्ता वार्ता॥

मू०-उपाये१ऽध्यवसाय२ः शङ्कात्रय३निवृत्तिपूर्वको४ऽध्यवसाय५ः,शङ्कात्रय६श्च७ स्वकृतदोषदर्शनम्-उद्देश्यदुर्लभत्व-मुपाय८फल्गुत्वमित्येतत्त्रयशङ्का९ सर्वज्ञत्वं१० सर्वशक्तित्वं११ परमकारुणिकत्वं१२ परमौदार्यत्वमनालोचिताविशेषाशेषलोक-१३ १४ १५ १६

१७ १८ १९
शरण्यत्वमाश्रितवात्सल्यमशरणशरण्यत्वं निरुपाधिक-
२० २१ २२ २३ २४ २५
सर्वस्वामित्वं श्रियः पतित्वं नारायणत्वमित्येतेषां दशानां
२६ २७ २८ २९ ३०
गुणानामनुसन्धाने निवर्तते, तथाहि-आश्रितवात्सल्यानु-
३१ ३२ ३३
सन्धानेन स्वकृतदोषदर्शनजन्यशङ्का निवर्तते सर्वज्ञत्व
३४
सर्वशक्तित्वपरमकारुणिकत्वपरमौदार्यत्वानामनुसन्धानेउद्दे-
३५ ३६ ३७
श्यदुर्लभत्वप्रयुक्तशङ्का निवर्तते, अशरणशरण्यत्वाना-
३८ ३९
लोचित- विशेषलोकशरण्यत्वयोरनुसन्धान उपायफ-
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५
ल्गुत्वप्रयुक्तशंङ्का निवर्तते, अन्यो त्रयो गुणास्त्रयाणामपि
४६ ४७ ४८ ४९ ५०
साधारणाः, तथाहि श्रियः पतित्वानुसन्धाने दोषदर्शनजा
५१ ५२ ५३ ५४
भीति र्न भवति निरुपाधिकसर्वस्वामित्वानुसन्धाने-
५५ ५६ ५७ ५८ ५९
उद्देश्यदुर्लभत्वज्ञानप्रयुक्ता निवृत्ति र्न भवति नारायणत्वा-
६० ६१ ६२ ६३
नुसन्धाने-उपायफल्गुत्वज्ञानजा भीतिर्निवर्तते, एते
६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१
गुणाः''माम्'' इति पदेऽनुसन्धेयाः, तथाहि त्वत्तोऽपि
७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७
त्वत्कार्याभिज्ञं त्वत्तोऽपि त्वत्कार्यकरणक्षमं त्वत्तोऽपि
७८ ७९ ८० ८१ ८२
त्वत्कार्ये व्यसनिनं त्वत्कार्यकरणसमये मत्कार्यमिति
८३ ८४ ८५ ८६ ८७
कुर्वन्तं त्वद्दोषादर्शिनं त्वद्दोषभोग्यं तवाश्रयाभावाश्रयभूतं
८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३
त्वत्स्वभावापेक्षं त्वत्तोऽपि त्वत्कार्यकरणे प्राप्तिमन्तं तव
९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९
मम च धारकभूतायाः सर्वेश्वर्याः प्रसक्त्यर्थं त्वत्कार्यकरण-
१०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६
उद्युक्तं तस्यां छिद्रं वदन्त्यामपित्यक्तुमयोग्योदरसम्बन्ध-
१०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२
वन्तं मामित्यर्थः, त्यागविशिष्टः स्वीकारः, स्वीकार-
११३ ११४ ११५ ११६
विशिष्टोधिकारः, गुणविशिष्ट उपायः, लक्ष्मीविशिष्ट-
११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२
उपेयः, श्रीगोवर्द्धनदासोऽर्जुने प्रश्नं कुर्वति सर्वज्ञः

१२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३०
सर्वशक्तिः फलवत्कुतो नावोचदिति श्रीकूरेशमपृच्छत्,
१३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७
द्रौपदीकेशस्पर्शानन्तरं फलवन्मम मुखान्न निःसरतीति
१३८ १३९ १४०
तात्पर्यमित्यवोचत् ॥८५॥

॥कूरेशस्तुतिः॥

अर्थ– मकरे हस्तनक्षत्रे सर्पनेत्रांशसम्भवम्।
श्रीमत्कूरकुलाधीशं श्रीवत्साङ्कमहं भजे॥८३॥

(उपाये) उपायमें (अध्यवसायः) अध्यवासय माने (शङ्कात्रयनिवृत्तिपूर्वकः) तीन शङ्काओंकी निवृत्तिपूर्वक (अध्यवसायः) अध्यवसाय होना है। (च) और (शङ्कात्रयम्) तीन शङ्कायें ये अधोलिखित हैं। (स्वकृतदोषदर्शनम्) अपने किये हुए दोषको देखना १, तथा (उद्देश्यदुर्लभत्वम्) उद्देश्यका दुर्लभत्वानुसन्धान करना २, और (उपायफल्गुत्वम्) उपायमें लघुत्वानुसन्धान करना ३, (इति) इस प्रकारके (एतत्) ये (त्रयशङ्का) तीनशङ्काएँ हैं। (सर्वज्ञत्वम्) श्रीमन्नारायणभगवान्के सर्वज्ञत्वगुण १, तथा (सर्वशक्तित्वं) सर्वशक्तित्वगुण २, और (परमकारुणिकत्वम्) परमकारुणिकत्व गुण ३, तथा (परमौदार्यत्वम्) परमौदार्यत्वगुण ४, और (अनालोचितविशेषलोकशरणत्वम्) अनालोचितविशेष समस्त लोकके शरणत्वगुण ५, तथा (आश्रितवात्सल्यम्) आश्रित जनोंके लिये वात्सल्यगुण ६, और (अशरणशरणयत्वम्) अशरणके लिये शरण्यत्वगुण ७, तथा (निरुपाधिकसर्वस्वामित्वम्) उपाधिरहित सर्वस्वामित्वगुण ८, और (श्रियः) श्रीदेवीजीके (पतित्वम्) पतित्वगुण ९, तथा (नारायणत्वम्) नारायणत्वगुण १०, (इति) ये दसगुण हैं। (एतेषाम्) इन पूर्वोक्त (दशानाम्) दस (गुणानाम्) गुणोंके (अनुसन्धाने) अनुसन्धान करनेपर (निवर्तते) तीन शङ्काएँ निवृत्त हो जाती हैं। (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (आश्रितवात्सल्यानुसन्धानेन) आश्रित वात्सल्यगुण का अनुसन्धान करने से (स्वकृतदोषदर्शनजन्यशङ्का) अपने किये हुए दोष देखनेसे उत्पन्न शङ्का (निवर्तते) निवृत्त हो जाती है। और (सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वपरमकारुणिकत्वपरमौदार्यत्वानाम्) सर्वज्ञत्वगुण, सर्वशक्तित्वगुण, परम कारुणिकत्वगुण, तथा परमौदार्यत्वगुण, इन चार गुणों के (अनुसन्धाने) अनुसन्धान करने पर (उद्देश्यदुर्लभत्वप्रयुक्तशङ्का) उद्देश्य दुर्लभत्वप्रयुक्त शङ्का (निवर्तते) निवृत्त हो जाती है। तथा (अशरणशरण्यत्वानालोचितविशेषाशेषलोकशरण्यत्वयोः) अशरणशरण्यत्वगुण, और अनालोचितविशेषसमस्तलोकशरण्यत्वगुण, इन दोनों गुणोंके (अनुसन्धाने) अनुसन्धान करनेपर (उपायफल्गुत्वप्रयुक्तशङ्का) उपायलघुत्वप्रयुक्त शङ्का (निवर्तते) निवृत्त हो जाती है। और (अन्ये) अन्य जो श्रियः पतित्व १, तथा निरुपाधिकसर्वस्वामित्व २, और

नारायणत्व ३, ये (त्रयः) तीन (गुणाः) भगवत्के गुण (त्रयाणाम्) तीनोंके (अपि) भी (साधारणाः) साधारण हैं। (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि- (श्रियः) श्रीदेवीजीके (पतित्वानुसन्धाने) पतित्वगुणके अनुसन्धान करने पर (दोषदर्शनजा) दोष देखनेसे उत्पन्न (भीतिः) भय (न) नहीं (भवति) होता है। तथा (निरुपाधिकसर्वस्वामित्वानुसन्धाने) उपाधि रहित सर्वस्वामित्वगुणके अनुसन्धान करने पर (उद्देश्यदुर्लभत्वज्ञानप्रयुक्ता) उद्देश्यदुर्लभत्व ज्ञानसे प्रयुक्त (निवृत्तिः) निवृत्ति (न) नहीं (भवति) होती है। और (नारायणत्वानुसन्धाने) नारायणत्व गुणके अनुसन्धान करनेपर (उपायफल्गुत्वज्ञानजा) उपाय लघुत्व ज्ञानसे उत्पन्न (भीतिः) भय (निवर्तते) निवृत्त हो जाता है। (एते) ये पूर्वोक्त (गुणाः) दसगुण (माम्) श्रीमद्भगवद्गीताके अठारहवें अध्यायके छियासठवें श्लोकमें जो तीसरा "माम्" यह पद है (इति) इस (पदे) माम् पदमें (अनुसन्धेयाः) अनुसन्धान करने योग्य हैं। (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (त्वत्तः) तेरेसे (अपि) भी (त्वत्कार्याभिज्ञम्) तेरे कार्य को अच्छे प्रकार से जाननेवाले तथा (त्वत्तः) तेरे से (अपि) भी (त्वकार्यकरणक्षमम्) तेरे कार्यके करने में समर्थ और (त्वत्तः) तेरेसे (अपि) भी (त्वत्कार्ये) तेरे कार्यमें (व्यसनिनम्) व्यसन करनेवाले और (त्वत्कार्यकरणसमये) तेरे कार्यके करनेके समय में (मत्कार्यम्) मेरा कार्य है (इति) ऐसा समझकर (कुर्वन्तम्) करनेवाले तथा (त्वद्दोषादर्शिनम्) तेरे दोषको नहीं देखनेवाले और (त्वद्दोषभोग्यम्) तेरे दोषका भोग करने योग्य समझनेवाले तथा (तव) तेरे (आश्रयाभावाश्रयभूतम्) आश्रयके आभावका आश्रय भया हुआ और (त्वत्स्वभावापेक्षम्) तेरे स्वभावकी अपेक्षा करने वाले तथा (त्वत्तः) तेरेसे (अपि) भी (त्वत्कार्यकरणे) तेरे कार्यके करने में (प्राप्तिमन्तम्) प्राप्तिवाले तथा (तव) तेरा (च) और (मम) मेरा (धारकभूतायाः) धारकभूता (सर्वेश्वर्याः) सबकी मलिकनी महालक्ष्मी देवीजी (प्रसक्त्यर्थम्) प्रसक्तिके लिये (त्वकार्यकरणे) तेरे कार्यके करनेमें (उद्युक्तम्) तत्पर भयें हुए (तस्याम्) उसके (छिद्रम्) छिद्र (वदन्त्याम्) कहने पर (अपि) भी (त्युक्तम्) छोड़नेके लिये (अयोग्योदरसम्बन्धवन्तम्) अयोग्योदर सम्बन्धवाले (माम्) मुझको (इति) ऐसा (अर्थः) अर्थ है। और (त्यागविशिष्टः) त्यागविशिष्ट (स्वीकारः) स्वीकार है। तथा (स्वीकारविशिष्टः) स्वीकारविशिष्ट (अधिकारः) अधिकार है। और (गुणविशिष्टः) गुणविशिष्ट (उपायः) उपाय है। तथा (लक्ष्मीविशिष्टः) लक्ष्मीविशिष्ट (उपेयः) उपेय है। (श्रीगोवर्द्धनदासः) श्रीगोवर्द्धन दासजी (अर्जुने) अर्जुनके (प्रश्नम्) प्रश्न (कुर्वति) करनेपर (सर्वज्ञः) सब कुछ जाननेवाले (सर्वशक्तिः) सर्वशक्तिसे युक्त श्रीकृष्ण भगवान् (फलवत्) फलवाले वाक्य (कुतः) किस कारणसे (न) नहीं (अवोचत्) बोले हैं (इति) इस प्रकारसे (श्रीकूरेशम्) श्रीकूरेश स्वामीजीसे (अपृच्छत्) पूछे। तब श्रीकूरेश स्वामीजी (द्रौपदीकेशस्पर्शानन्तरम्) द्रौपदीके केश

स्पर्शके बाद (फलवत्) फलवाले वाक्य (मम) मेरे (मुखात्) मुखसे (न) नहीं (निःसरति) निकलते हैं (इति) ऐसा (तात्पर्यम्) तात्पर्य है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहे हैं। इस पचासिवीं वार्तामें एकसौ चालीस पद हैं। इति कूरेशोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥८५॥

अब धनुर्दासजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ धनुर्दासोक्ता वार्ता ॥

मू०–धनुर्दासस्योक्तिः नारायणस्य निरन्तरस्वभावः स्वविषये फलार्थं नम इत्यवादिनोऽपि नित्यसूरिदेशमपि त्वं पश्येति वक्तुं निदानमौदार्य्यविशेषः नारवस्तूनां निरन्तरस्वभावः नारायण एवास्माकमेव फलं दद्यादिति फलविषये नैर्भयं तत्प्रतिबन्धकपापविषय आर्तिश्च ॥ ८६ ॥

॥ धनुर्दासस्तुतिः ॥

अर्थ– धनुर्दासो यतीन्द्रस्य शिष्यो भूत्वा महामतिः ।
नि ःकैंकर्यनिरतः सन्तस्थौ गुरुसन्निधौ ॥ ८४ ॥

(धनुर्दासस्य) धनुर्दासजीकी (उक्तिः) उक्ति है कि (नारायणस्य) नारायण भगवान्के (निरन्तरस्वभावः) निरन्तरस्वभाव (स्वविषये) अपने विषयमें (फलार्थम्) फलके लिये (नमः) नमः (इति) ऐसे शब्दको (अपि) भी (अवादिनः) नहीं कहनेवाले (नित्यसूरिदेशम्) नित्य सूरिके दिव्य देशको (अपि) भी (त्वम्) तुम (पश्य) देखो (इति) इस प्रकारके (वक्तुम्) कहनेके लिये (निदानम्) आदि कारण (औदार्यविशेषः) उदारता विशेष है। और (नारवस्तूनाम्) नित्य वस्तुओंके समूहोंका (निरन्तरस्वभावः) निरन्तर स्वभाव है (नारायणः) नारायण भगवान् (एव) निश्चय करके (अस्माकम्) प्रपन्न हम सबोंके (फलम्) फलको (दद्यात्) देंगे (इति) इस प्रकारके (फलविषये) फलके विषय में (एव) निश्चय करके (नैर्भयम्) निर्भयताको प्राप्त करना (च) और (तत्प्रतिबन्धकपापविषये) फलप्रतिबन्धक पापके विषयमें (आर्तिः) क्लेश पाना है। इस छियासिवीं वार्तामें बत्तीस पद हैं। इति धनुर्दासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥८६॥

अब गोविन्दाचार्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ गोविन्दाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीगोविन्दाचार्यवार्ता स्वस्वरूपवैशद्यदशा नाम परस्वरूपविषये स्वीकारत्यागप्रकारप्रतिपत्तिः प्रवृत्तिनिवृत्तिषु व्यवस्थितत्वं चेति ॥ ८७ ॥

॥ गोविन्दाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- **वैशाखे तु विशाखायां वैनतेयांशतो महान्।**
गोविन्दः पद्मनेत्रार्य्यांद्द्युतिमत्यामजायत ॥ ८५ ॥

(श्रीगोविन्दाचार्यवार्ता) श्रीगोविन्दचार्य स्वामीजी की वार्ता है कि (स्वस्वरूपवैशद्यदशा) अपने स्वरूपकी वैशद्यदशा (नाम) माने (परस्वरूपविषये) परस्वरूपके विषयमें (स्वीकारत्यागप्रकारप्रतिपत्तिः) स्वीकारके त्याग प्रकारकी प्रतिपत्ति करना (च) और (प्रवृत्तिनिवृत्तिषु) प्रवृत्तिनिवृत्तिमें (व्यवस्थित्वम्) व्यवस्थिति करना (इति) ऐसा है। इस सतासिवीं वार्तामें नव पद हैं। इति गोविन्दार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥८७॥

अब कूरेशस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कूरेशोक्ता वार्ता ॥

मू०-त्यक्त्वा आश्रयेति कूरेशः ॥ ८८ ॥

॥ कूरेशस्तुतिः ॥

अर्थ- **मकरे हस्तनक्षत्रे ततो रामांशतोऽजनि।**
श्रीमाननन्तभट्टार्यान्महादेव्यां महायशाः।
कूरेशोऽस्मत्पिता सर्वविबुधाग्रेसरोऽनघ॥८६॥

(त्यक्त्वा) स्त्री, पुत्र, धन आदिकको छोड़कर तब (आश्रय) भगवत्का आश्रयण करो (इति) ऐसा (कूरेशः) कूरेश स्वामीजी ने कहा है। क्योंकि श्रीविभीषणजीने कहा है कि-**त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः॥** वा० रा० युद्ध० ६, स० १७, श्लो० ६॥ मैं पुत्रोंको तथा स्त्रियोंको और चकारसे धन आदिकको छोड़कर श्रीरामजीके शरणमें आया हूँ॥६॥ और भगवद्वाक्य भी है कि-**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज!** भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६६॥ इसका अर्थ पहले लिख चुका हूँ। इस

वार्तामें चार पद हैं। इति कूरेशोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥८८॥

अब दाशरथिस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०-आश्रित्य त्यजेति दाशरथिः ॥ ८९ ॥

॥ दाशरथिस्तुतिः॥

अर्थ- माघमासे पुनर्वस्वां दशम्यां भरतांशतः ॥
लक्ष्मीजनन्यां संजज्ञे बाधूलानन्तदीक्षितात् ॥ ८७ ॥
धीमान्दाशरथिर्नाम श्रीबाधूलकुलाग्रणीः ।
कन्दाडनाथनामाथ तस्य दाशरथेरभूत् ॥ ८८ ॥

(आश्रित्य) श्रीमन्नरायणको आश्रयण करके (त्यज) शोकको छोड़ो (इति) ऐसा (दाशरथिः) दशरथी स्वामीजी ने कहा है। और भगवान् भी कहते हैं कि- **माशुचः॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६६॥** इस वार्तामें चारपद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥८९॥

अब कुरुकाधिनाथ स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कुरुकाधिनाथोक्ता वार्ता॥

मू०-उन्मादनिवृत्तौ नेत्रोन्मीलनमिति कुरुकाधिनाथः ॥ ९० ॥

अर्थ-(उन्मादनिवृत्तौ) अहंकार ममकाररूप उन्मादके दूर होनेपर (नेत्रोन्मीलनम्) दिव्य नेत्र खुल जाते हैं (इति) ऐसा (कुरुकाधिनाथः) कुरुकाधिनाथ स्वामीजी ने कहा है। इस नब्बेकी वार्तामें चार पद हैं। इति कुरुकाधिनाथोक्ता वार्ता॥९०॥

अब श्रीगोविन्दाचार्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

मू०-श्रीगोविन्दाचार्यवार्ता स्वीकृतोपायभूतत्वं नामस्वीकारः, स च स्वगतस्वीकारे उपायबुद्धिं त्यक्त्वा पर-

१० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७
गतस्य विषयीभवनं तच्च स्वार्थप्रवृत्तिं स्वप्रपत्तिं च त्यक्त्वा
१८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५
परार्थप्रवृत्तावन्वयः, तवेति त्वत्प्रवृत्तिनिवृत्तेर्ममेति प्रवर्तितु-
२६ २७ २८ २९ ३० ३१
महमन्तरं न प्रविशामीतीश्वरवाक्यम् ॥ ९९ ॥

अर्थ-(श्रीगोविन्दाचार्यवार्ता) श्रीगोविन्दाचार्य स्वामीजीकी वार्ता है कि-(स्वीकृतोपायभूतत्वम्) स्वीकार किया हुआ उपायभूत (नाम) माने (स्वीकारः) स्वीकार करना है। (च) और (सः) वह स्वीकार (स्वगततस्वीकारे) स्वगत स्वीकारमें (उपायबुद्धिम्) उपायबुद्धिको (त्यक्त्वा) छोड़कर (परगतस्य) परगत स्वीकारके (विषयीभवनम्) विषय होना (च) और (तत्) वह विषयी भवन (स्वार्थप्रवृत्तिम्) स्वार्थ प्रवृत्तिको (च) और (स्वप्रपत्तिम्) अपनी प्रपत्तिको (त्यक्त्वा) छोड़कर (परार्थप्रवृत्तौ) परके लिये प्रवृत्तिमें (अन्वयः) अन्वय है। और (तव) तेरा (इति) यह अर्थात् (त्वत्प्रवृत्तेः) तेरी प्रवृत्तिकी निवृत्तिके तथा (मम) मेरा (इति) इस प्रकारके (प्रवर्तितुम्) प्रवृत्त करनेके लिये (अहम्) मैं (अन्तरम्) भीतर (न) नहीं (प्रविशामि) प्रवेश करूँगा (इति) ऐसा क्या (ईश्वरवाक्यम्) परमेश्वरका वाक्य है। इस इक्यानबेकी वार्तामें ईकतीस पद हैं। इति गोविन्दाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥९१॥

अब नजडादूरम्माल्पिल्लै स्वामीजी के और गेयलाच्छब्दारु स्वामीजी के संवाद रूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ नजडादूरम्माल्पिल्लैगेयलाच्छब्दारुगदिता वार्ता ॥

१ २
मू०-नजडादूरम्माल्पिल्लैगेयलाच्छब्दारुसमीपे चर-
३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मश्लोकार्थं शृण्वन् पिल्लै सर्वधर्मान्परित्यज्येति वदति-
१० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
इदमेकमीश्वरस्वातन्त्र्यमित्यवोचत्, स च त्वं किमेवं वदसि
२१ २२ २३ २४ २५ २६
अधिकारिणः कर्तव्यतयोक्तानां त्यागोऽभिहित एवं
२७ २८ २९ ३० ३१ ३२
वक्तव्यमधिकारिणो विरुद्धानां हि त्याग उच्यते,
३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८
तस्मादीश्वरस्वातन्त्र्यं न भवतीदमधिकारिस्वरूपविरुद्ध-
३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५
त्वादेव स्वयं त्यक्त्वेत्यवोचदित्यवोचत् ॥ ९२ ॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः॥

अर्थ– रामानुजाय महते निगमान्तशास्त्रपारङ्गताय परमार्थविशारदाय।
विख्यातलोकगुरवे यतिपुंगवाय भूयो नमोभुवनमंगलविग्रहाय॥८९॥

(नजडादूरम्माल्पिल्लै) नजडादूरम्माल्पिल्लै नामवाले महात्मा (गेयलाच्छब्दारुसमीपे) गेयलाच्छब्दारु नामवाले महात्माके समीपमें (चरमश्लोकार्थम्) चरमश्लोकके अर्थको (शृण्वन्) सुनते हुए (पिल्लै) नजडादूरम्माल्पिल्लैजी (सर्वधर्मान्) समस्तधर्मोंको (परित्यज्य) अच्छे प्रकारसे छोड़कर (इति) ऐसा (वदति) गेयलाच्छब्दारुस्वामीजीके कहनेपर (इदम्) यह चरम श्लोकका कथन (एकम्) एक प्रधान (ईश्वरस्वातन्त्र्यम्) परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णजीकी स्वतन्त्रता है (इति) ऐसा (अवोचत्) बोले। (च) और तब (सः) उस गेयलाच्छब्दारुस्वामीजी ने कहा कि (त्वम्) तुम (किम्) क्या (एवम्) इस प्रकारके (वदसि) कहते हो। (अधिकारिणः) अधिकारियोंके (कर्तव्यतया) करने योग्य (उक्तानाम्) भगवत्प्राप्तिके लिये उपायत्वेन भगवत्से कहे हुए समस्तधर्मोंका (त्यागः) परित्याग (अभिहितः) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा है। (एवम्) इस प्रकारके वाक्य (वक्तव्यम्) कहने योग्य है। (हि) निश्चयकरके (अधिकारिणः) प्रपन्न अधिकारियोंके (विरुद्धानाम्) भगवत्प्राप्तिमें बाधक स्वस्वरूपसे विरुद्ध धर्मोंका (त्यागः) परित्याग (उच्यते) चरम श्लोकमें कहा जाता है। (तस्मात्) इसकारणसे इस विषयमें (ईश्वरस्वातन्त्र्यम्) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्वतंत्रता (न) नहीं (भवति) होसकती है। (अधिकारिस्वरूपविरुद्धत्वात्) भगवत्प्राप्तिके लिये उपायतया श्रीकृष्ण भगवान्से पहले कहे हुए समस्तधर्म प्रपत्तिनिष्ठ अधिकारीके स्वरूपके विरुद्ध होनेसे (एव) निश्चय करके (स्वयम्) निर्हेतुक दया करनेवाले श्रीकृष्णभगवान् ने अपनेसे (त्यक्त्वा) समस्त धर्मोंको छोड़कर (इति) इसप्रकारके आशयवाले (इदम्) इस चरमवाक्यको (अवोचत्) कहा है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्तामें तैंतालीस पद हैं। इति नजडादूरम्माल्पिल्लैगेयलाच्छब्दारुगदितवार्ताव्याख्यानम्॥९२॥

अब आच्चांपिल्लै स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥अथ आच्चांपिल्लै गदिता वार्ता॥

मू०–एकः श्रीवैष्णवः त्याग उपाय उत स्वीकार उपाय इत्यपृच्छत्, त्यागो नोपायः स्वीकारश्च नोपायस्तदुभयकारयितैवोपाय इति आच्चांपिल्लै॥९३॥

॥ यतीश्वरस्तुतिः॥

अर्थ– ततो यतीश्वरः श्रीमान्सुमुहूर्ते महायशाः।

संपत्सूनुं समादाय प्रतस्थे यादवाचलम् ॥ ९० ॥

(एकः) एक (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव ने भगवत्प्राप्तिके लिये (त्यागः) त्याग (उपायः) उपाय है (उत) या (स्वीकारः) स्वीकार (उपायः) उपाय है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) आच्चांपिल्लैमहात्मासे पूछा। तब (त्यागः) भगवत्प्राप्तिके लिये त्याग (न) नहीं (उपायः) उपाय है (च) और (स्वीकारः) स्वीकार भी (न) नहीं (उपायः) उपाय है (तदुभयकारयिता) त्याग और स्वीकार इन दोनोंको करानेवाला (एव) निश्चयकरके (उपायः) उपाय है (इति) ऐसा (आचांपिल्लै) आच्चांपिल्लैस्वामीजी ने कहा है। इस तिरानबे की वार्तामें इक्कीस पद हैं। इति आच्चांपिल्लैगदितवार्ताव्याख्यानम्॥९३॥

अब तिरुनगरीपिल्लैस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ तिरुनगरीपिल्लैगदिता वार्ता ॥

मू०–एकः श्रीवैष्णवः स्वरूपानुरूपं प्राप्यं प्राप्यानुरूपं स्वरूपं वेत्यपृच्छत्, स च मुमुक्षुदशायां स्वरूपानुरूपं प्राप्यं मुक्तदशायां प्राप्यानुरूपं स्वरूपमित्यवोचदिति तिरुनगरीपिल्लै–अवोचत् ॥ ९४ ॥

॥ लक्ष्मणार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– हरिणा ज्ञापितोऽनन्तो लोकसंरक्षणाय सः।

अवतीर्णोऽभवद्भूम्यां सर्वलोकैकदेशिकः॥९१॥

(एकः) एक (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव ने (स्वरूपानुरूपम्) स्वरूपके अनुरूप (प्राप्यम्) प्राप्य है। (वा) अथवा (प्राप्यानुरूपम्) प्राप्यके अनुरूप (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) तिरुनगरीपिल्लै स्वामीजीसे पूछा। (च) और तब (सः) उस तिरुनगरीपिल्लैस्वामीजी ने (मुमुक्षुदशायाम्) मुमुक्षुअवस्थामें (स्वरूपानुरूपम्) स्वरूपके अनुरूप (प्राप्यम्) प्राप्य है। और (मुक्तदशायाम्) मुक्तावस्थामें (प्राप्यानुरूपम्) प्राप्यके अनुरूप (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है (इति) ऐसा (तिरुनगरीपिल्लै) तिरुनगरीपिल्लै स्वामीजी ने (अवोचत्) कहा है। इस चौरानबेकी वार्तामें बाईसपद हैं। इति

तिरुनगरीपिल्लैगदितवार्ताव्याख्यानम्॥९४॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कश्चित् श्रीवैष्णवः संसारक्रौर्य्यं मंत्राणां मार्द्दवं च दृष्ट्वा कलिवैरिदासं प्रत्यवोचत्, स चात एव स्वयमुपायो भवेदित्यवोचत् ॥ ९५ ॥

अर्थ-(कश्चित्) किसी (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णवने (संसारक्रौर्यम्) संसारकी क्रूरताकी (च) और (मंत्राणाम्) श्रीमंत्र प्रभृतिमंत्रोंकी (मार्द्दवम्) मृदुता को (दृष्ट्वा) देखकर (कलिवैरिदासम्) श्रीकलिवैरिदासजीके (प्रति) प्रति (अवोचत्) कहा। (च) और (सः) उस कलिवैरिदांस स्वामीजी ने (अतः) इस कारणसे (एव) निश्चय करके (स्वयम्) अपनेही भगवान् (उपायः) उपाय (भवेत्) हो जाते हैं (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इस वार्तामें उन्नीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥९५॥

अब भट्टारकस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभट्टार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अपिल्लैपिल्लै प्रति श्रीभट्टार्यः श्रीरंगनाथस्य शयनप्रकारं जानासीत्यवोचत्, वैष्णवे कर्मणामाधिक्यं दृष्ट्वा भीते सति कुंचितहस्तस्यांगुलयस्त्वद्रक्षणार्थं धृतः किरीटः खल्विति किरीटं प्रदर्शयन्ति, चरणयोर्न्यस्तो हस्तः प्रजाया जिह्वायां स्तनचूचुकं विमर्द्य ददन्ती जननी-वाश्रयणस्थानं चरणाविति प्रदर्शयतीत्यवोचत् ॥ ९६ ॥

अर्थ- (अपिल्लैपिल्लै) अपिल्लैपिल्लै महात्माके (प्रति) प्रति (श्रीभट्टार्यः) श्रीपराशभट्टाचार्य स्वामीजीने (श्रीरंगनाथस्य) श्रीरंगनाथ भगवान्के (शयनप्रकारम्) शयनके प्रकारको (जानसि) तुम जानते हो (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। (वैष्णवे) श्रीवैष्णवोंके विषयमें (कर्मणाम्) कर्मोंकी (आधिक्यम्) अधिकताको (दृष्ट्वा) देखकर

(भीते) भय (सति) होनेपर (कुंचितहस्तस्य) बटोरे हुए हाथकी (अंगुल्यः) अँगुलियाँ (त्वद्रक्षणार्थम्) तेरी रक्षा करनेके लिये हैं और (धृतः) धारण किया हुआ (किरीटः) किरीट (खलु) निश्चय करके (इति) इस प्रकारके (किरीटम्) किरीटको (प्रदर्शयन्ति) प्रकर्षरूपसे दिखाती हैं। और (चरणयोः) श्रीचरणारविन्दोंमें (न्यस्तः) समर्पित (हस्तः) हाथ (प्रजायाः) सन्ततिकी (जिह्वायाम्) जीभमें (स्तनचूचुकम्) स्तनके अग्रभागको (विमर्द्य) विशेष रूपसे मर्दन करके (ददन्ती) देती हुई (जननी) माताके (इव) समान (आश्रयणस्थानम्) प्रपन्नोंके आश्रयणका स्थान (चरणौ) भगवत्के दोनों चरणारविन्द हैं (इति) इस प्रकारके (प्रदर्शयति) प्रकर्षरूपसे दिखाता है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इस छानबेकी वार्तामें उन्तालीस पद हैं। इति श्रीभट्टार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥९६॥

अब आच्चांपिल्लै स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि

॥ अथ आच्चांपिल्लैगदिता-वार्ता॥

मू०–स्वामी, उपायत्वावस्थायां विषयसापेक्षो व्यापारनिरपेक्षश्च भवतीति आच्चांपिल्लै–अवोचत्॥९७॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– नमो रामानुजार्याय कल्याणगुणसिन्धवे।

कृपामात्रप्रसन्नाय दीननिर्व्याजबन्धवे ॥ ९२ ॥

(स्वामी) श्रीमन्नारायण भगवान् (उपायत्वावस्थायाम्) उपायत्व की अवस्थामें (विषयसापेक्षः) विषयकी अपेक्षा सहित (च) और (व्यापारनिपेक्षः) व्यापारकी अपेक्षा रहित (भवति) होते हैं (इति) ऐसा (आच्चांपिल्लै) आच्चांपिल्लै स्वामीजी ने (अवोचत्) कहा है। इस सन्तानबेकी वार्तामें नव पद हैं। इति आच्चांपिल्लैगदितवार्ताव्याख्यानम्॥९७॥

अब धनुर्दासजीके और अरुलालप्येरुमालें वोरुमानारुस्वामीजीके संवाद रूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ धनुर्दास–अरुलालप्येरुमालेंवोरुमानारु-वार्ता ॥

मू०–विक्रमचोलश्रीवीथ्यां श्रीमति रंगे गच्छति श्रीधनुर्दासः प्रतिदिनमायुधं निष्कोशं विभ्रन्नेव सेवमान

अरुलालप्येरुमालेंवोरुमानारु भो तवायुधस्य कदा विनियोग इति पृष्टः, तव जलपवित्रस्य यदा विनियोगस्तदा मम आयुधस्य विनियोगो भवेदित्यवोचत् ॥ ९८ ॥

॥धनुर्दासस्तुतिः॥

अर्थ– धनुर्दासस्य पाणिं तु समालम्ब्य यतीश्वरः।
तत्र गत्वा ततः स्नात्वा पुनर[illegible]ाने तदा ॥ ९३ ॥

(विक्रमचोलश्रीवीथ्याम्) विक्रम चोलकी श्रीवीथीमें (श्रीमति) महालक्ष्मी देवी विशिष्ट (रंगे) श्रीरंगनाथ भगवान्के (गच्छति) जानेपर (श्रीधनुर्दासः) श्रीधनुर्दासजी (प्रतिदिनम्) नित्यप्रति (आयुधम्) हथियारोंके (निष्कोशम्) समूहोंको (बिभ्रन्) धारण करते हुए (एव) निश्चय करके (सेवमानः) सेवा करते थे। तब (अरुलालप्येरुमालेंवोरुमानारु) अरुलालप्येरुमालेंवोरुमानारु नामवाले महात्मा ने (भो) हेधनुर्दास! (तव) आपके (आयुधस्य) हथियारका (कदा) कब (विनियोगः) विनियोग होगा (इति) ऐसा (पृष्टः) पूछा। तो (तव) आपके (जलपवित्रस्य) जल पवित्रका (यदा) जब (विनियोगः) विनियोग होगा (तदा) तब (मम) मेरे (आयुधस्य) हथियारका (विनियोगः) विनियोग (भवेत्) होगा (इति) ऐसा (अवोचत्) धनुर्दासजी ने कहा है। इस वार्तामें तीस पद है। इति धनुर्दास-अरुलालप्येरुमालेंवोरुमानारुगदित-वार्ताव्याख्यानम् ॥ ९८ ॥

अब शोमाशियाण्डान् स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ शोमाशियाण्डान् गदिता वार्ता॥

मू०–प्रपन्नाधिकारिणः कार्यमेकमपि मिलितमवस्थात्रयं कार्यं भवति, तच्च–आश्रयणाधिकारः फलाधिकारः भोगाधिकारः, तत्स्वरूपं तु–आकिञ्चन्यमनन्यगतित्वमध्यवसायश्च परभक्तिपरज्ञानपरमभक्तिश्च, एतद्विषयः शीलादिगुणाविशिष्टो ज्ञानशक्त्यादिगुणविशिष्ट आनन्दादिगुणविशिष्टश्च श्रियः पतिः–अयं स्वस्याकिञ्चन्यं पुरस्कृत्याश्रयण

३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४०
मपेक्षते, स च स्वशीलादिगुणान्पुरस्कृत्याश्रयणीयो भवति,
४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७
अयमनन्यगतित्वं पुरस्कृत्य फलमपेक्षते, स च ज्ञानादि-
४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४
गुणान्पुरस्कृत्य फलप्रदो भवति, अयं स्वाध्यवसायं पुरस्कृत्य
५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३
भोगमपेक्षते, स चानन्दादिगुणान्पुरस्कृत्य भोक्ता भवतीति
६४
शोमाशियाण्डान्वार्ता ॥ ९९ ॥

॥ यतिराजगुरुस्तुतिः ॥

अर्थ- प्रकटीकृतमाधवभक्तिपथं कलिपातकमोचनपुण्यकथम्।
परिभूतनिरीश्वरवादिमतं यतिराजगुरुं प्रणमामि सदा ॥ ९४ ॥

(प्रपन्नाधिकारिणः) प्रपन्नअधिकारियोंके (कार्यम्) कार्य (एकम्) एक (अपि) भी (मिलितम्) मिला हुआ (अवस्थात्रयम्) तीन अवस्थाका (कार्यम्) कार्य (भवति) होता है। (च) और (तत्) वे तीन कार्य ये अधोलिखित हैं (आश्रयणाधिकारः) आश्रयणका अधिकार १, तथा (फलाधिकारः) फलका अधिकार २, और (भोगाधिकारः) भोगका अधिकार ३, ये तीन हैं। (तु) और (तत्स्वरूपम्) इन तीनोंके स्वरूप ये अधोलिखित हैं। (आकिञ्चन्यम्) अर्थात् आश्रयणधिकारका अकिंचनतास्वरूप है। तथा (अनन्यगतित्वम्) फलाधिकारका अनन्यगतित्वस्वरूप है। (च) और (अध्यवसायः) भोगाधिकारका अध्यवसायस्वरूप है। (च) और (परभक्तिज्ञानपरमभक्तिः) परभक्ति तथा परज्ञान और उत्कृष्ट भक्ति है। और (एतद्विषयः) आश्रयणाधिकार तथा फलाधिकार और भोगाधिकार इन तीनोंके विषय ये अधोलिखित हैं। (शीलादिगुणविशिष्टः) शील आदिक गुण विशिष्ट आश्रयणाधिकारका विषय है। तथा (ज्ञानशक्त्यादिगुणविशिष्टः) ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य आदिक गुणविशिष्ट फलाधिकारका विषय है। (च) और (आनन्दादिगुणविशिष्टः) आनन्द आदिक गुण विशिष्ट (श्रियः) महालक्ष्मी देवीजीके (पतिः) नारायण भगवान् भोगाधिकारके विषय हैं। (अयम्) यह प्रपन्न (स्वस्य) अपनी (आकिञ्चन्यम्) अकिञ्चनताको (पुरस्कृत्य) आगे करके (आश्रयणम्) भगवत्के आश्रयणकी (अपेक्षते) अपेक्षा करता है। (च) और (सः) वे नारायण भगवान् (स्वशीलादिगुणान्) अपने शील आदिक गुणोंको (पुरस्कृत्य) आगे करके (आश्रयणीयः) आश्रयण करने योग्य (भवति) होते हैं। तथा (अयम्) यह दूसरा अधिकारवाला प्रपन्नजन (अनन्यगतित्वम्) अनन्य गतित्वको (पुरस्कृत्य) आगे करके (फलम्) फलकी (अपेक्षते) अपेक्षा करता है। (च) और (सः) वे नारायण भगवान् (ज्ञानादिगुणान्)ज्ञान आदिक गुणोंको (पुरस्कृत्य) आगे करके (फलप्रदः) फलको

देनेवाले (भवति) होते हैं। और (अयम्) यह तीसरा अधिकारवाला प्रपन्नजन (स्वाध्यवसायम्) अपने अध्यवसायको (पुरस्कृत्य) आगे करके (भोगम्) भोगकी (अपेक्षते) अपेक्षा करता है। (च) और (सः) वे नारायण भगवान् (आनन्दादिगुणान्) आनन्द आदिक गुणोंको (पुरस्कृत्य) आगे करके (भोक्ता) भोक्ता (भवति) होते हैं। (इति) इस प्रकार से (शोमाशियाण्डान्वार्ता) शोमाशियाण्डानाचार्य जी की वार्ता है। इस निन्याबे की वार्ता में चौंसठ पद हैं। इति शोमाशियाण्डानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्।।९९।।

अब शिरियाच्चानाचार्यजी की वार्ताको कहत ै कि

॥ अथ शिरियाच्चानाचार्योक्त वार्ता ॥

मू०–भगवत्प्रवृत्तिविरोधिस्वप्रवृत्तिनिवृत्तिः प्रपत्तिः भक्तिश्च नोपायः प्रपत्तिश्च नोपायः प्रपत्तव्य एवोपायः शिरियाच्चान् ॥ १०० ॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- सर्वमंगलमांगल्यं सर्वोपद्रवनाशनम्।
वन्दे रामानुजार्यस्य नित्यं पादाम्बुजद्वयम्॥९५॥

(भगवत्प्रवृत्तिविरोधिस्वप्रवृत्तिनिवृत्तिः) भगवत्की प्रवृत्तिमें विरोध करनेवाली अपनी प्रवृत्तिकी निवृत्तिही (प्रपत्तिः) प्रपत्ति है। (च) और (भक्तिः) भगवत्प्राप्तिमें भक्ति (न) नहीं (उपायः) उपाय है। (च) और (प्रपत्तिः) प्रपत्तिभी (न) नहीं (उपायः) उपाय है (प्रपत्तव्यः) प्रपत्ति करने योग्य श्रीमन्नारायण भगवान् (एव) निश्चयकरके (उपायः) उपाय हैं (शिरियाच्चान्) ऐसा शिरियाच्चानार्यजी ने कहा है। इस सौवींवार्तामें चौदह पद हैं। इति शिरियाच्चानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१००।।

अब वेदान्तीस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ वेदान्तिनोक्तवा वार्ता ॥

मू०–सत्यामपि क्षोभयोग्यतायां वैशिष्ट्यवान्भवति, दासस्तु योग्यताभावात् वैशद्यवान् भवामीति यत्युक्तिः ॥ १०१ ॥

॥ वेदान्तिस्तुतिः॥

अर्थ– लब्धसर्वार्थतत्त्वज्ञः श्रीमन्माधवदासकः।

श्रीवैष्णववरो रेजे शरच्चन्द्र इवामलः ॥ ९६ ॥

(क्षोभयोग्ताम्) क्षोभकी योग्यता (सत्याम्) होनेपर (अपि) भी (दासः) भगवत्के सेवकजन (तु) तो (वैशिष्ट्यवान्) वैशिष्ट्यवाले (भवति) होते हैं। (भवामि) मैं होता हूँ (इति) ऐसी (यत्युक्तिः) वेदान्तीस्वामीजीकी उक्ति है। इस वार्तामें बारह पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ १०१ ॥



अब अमुदनारु और शिरियाच्चानाचार्यजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ अमुदनारुशिरियाच्चानाचार्योक्ता वार्ता॥

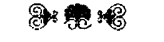
मू०–अमुदनारु[१] शिरियाच्चानाचार्यं[२] त्वदीयानुष्ठान[३]-जननार्थमस्माभिः[४] किं[५] कर्तव्यमित्यपृच्छत्[६], ममानुष्ठानेन[७] युष्माकमनुष्ठानेन[८] किं[९] प्रयोजनम्[१०], एतद्वृत्तं[११] ममेत्युक्त[१२]-प्रकारेण[१३] भवति[१४]–इत्यवोचत्[१५] ॥ १०२ ॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः॥

अर्थ– संसारतापसन्दग्धश्शीतहेतुविवर्जितः ।

रामानुजपदाम्भोजच्छायाविश्राममाश्रये ॥ ९७ ॥

(अमुदानुरु) अमुदनारुमहात्मा ने (शिरियाच्चानाचार्यम्) शिरियाच्चानाचार्यजीसे (त्वदीयानुष्ठानजननार्थम्) त्वदीय अनुष्ठानके उत्पन्न होनेके लिये (अस्माभिः) हम सबोंसे (किम्) क्या (कर्तव्यम्) करने योग्य है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। तब शिरियाच्चानाचार्यजी ने (मम) मेरे (अनुष्ठानेन) अनुष्ठानसे और (युष्माकम्) आप सबोंके (अनष्ठानेन) अनुष्ठानसे (किम्) क्या (प्रयोजनम्) प्रयोजन है (एतत्) यह (वृत्तम्) वृत्त (मम) मेरा है (इति) ऐसे (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकारसे (भवति) होता है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा है। इस एकसौ दो की वार्तामें बाईस पद हैं। इति-अमुदनारु शिरियाच्चानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१०२॥



अब वेदान्तीस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ यत्युक्ता वार्ता॥

१ २ ३ ४ ५
मू०–प्रपन्नस्य बुद्धिपूर्वकापचारस्यावकाशो नास्ति
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
प्रमादेन भवति चेत्, ज्ञानमनुतापश्च भवति, अनुतापा–
१४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
नुत्पत्तौ ज्ञानमपिनोत्पन्नमितिवेदान्ती वदति ॥ १०३ ॥

॥ वेदान्तिस्तुतिः॥

अर्थ– विद्वान्माधवदासाख्यो भट्टार्यगुरुपुङ्गवम् ।
भूयःप्रणम्य बहुधा चक्रे विज्ञापनं तदा ॥ ९८ ॥

(प्रपन्नस्य) प्रपन्नजनके (बुद्धिपूर्वकापचारस्य) बुद्धिपूर्वकअपचारका (अवकाशः) अवकाश (न) नहीं (अस्ति) है। (प्रमादेन) प्रमादसे (चेत्) यदि (भवति) अपचार होता है तो उस अपचारके नाशके लिये (ज्ञानम्) ज्ञान (च) और (अनुतापः) पीछेसे ताप (भवति) होता है। और (अनुतापानुत्पत्तौ) पीछेसे ताप नहीं उत्पन्न होनेपर (ज्ञानम्) ज्ञान (अपि) भी (न) नहीं (उत्पन्नम्) उत्पन्न हुआ है (इति) ऐसा (वेदान्ती) वेदान्तीस्वामीजी (वदति) कहते हैं। इस एकसौ तीसरी वार्तामें बीसपद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ १३ ॥



अब कलिवैरिदासस्वामीजीके और वेदान्तीस्वामीजीके प्रश्नोत्तररूप वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ यतिकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४
मू०–कलिवैरिदासो वेदान्तिनं प्रति–इतरोपायानां
५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
प्रमाणानि बहूनि–अनुष्ठातारश्च बहवो वर्तन्ते, अस्य प्रमाण–
१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१
मत्यल्पं भवति, अत्रको हेतुरित्यपृच्छत्, मदध्यवसायोपरि
२२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०
तवापेक्षितं किमस्ति, द्वावेकस्यां नद्यामवगाह्य गच्छत–
३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९
श्चेत्पुरोपायिनो हस्तमनुगतः गृह्णाति चेत्तत्र प्रमाणापेक्षा
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९
किमिति तथापेक्षास्ति चेत्प्रमाणन्यूनतापि नास्ति, प्रमा–
५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८
णानि द्रष्टव्यानीति मम नास्ति विचारः, अत्र विद्यमानाः

५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४
सर्वे संसारिणः पञ्चषाः पुरुषा उत्तमाधिकारिणो भवन्ति
६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४
चेत्, तेषामुत्कर्ष एतेषामपकर्षश्चास्ति किं स्वरूपप्राप्तिरेव
७५ ७६ ७७ ७८ ७९
''स्वर्गकामो यजेत'' इत्युक्तप्रकारेण स्वर्गादिफलानुभव-
८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६
हेतुतया शास्त्रैर्यागे प्रतिपाद्यमानेऽपि-एकस्मिन् ग्रामे-एक
८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६
एव-इयाजेति प्रसिद्धिर्वर्तते, एवं च सति-अस्याधिकारी
९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५
तव सुलभो भवेत् किमित्यवोचत्, स च कृतार्थोऽभ-
१०६
वत् ॥ १०४ ॥

अर्थ- (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (वेदान्तिनम्) वेदान्तीस्वामाजीके (प्रति) प्रति (इतरोपायानाम्) कर्मज्ञान आदिक इतरोपायमें (प्रमाणानि) प्रमाण (बहूनि) बहुतसे हैं (च) और (अनुष्ठातारः) उस कर्मादिकके अनुष्ठान करनेवाले भी (बहवः) बहुतसे (वर्तन्ते) वर्तमान हैं, और (अस्य) इस सिद्धोपायके विषयमें (प्रमाणम्) प्रमाण (अति) अत्यन्त (अल्पम्) थोड़ा (भवति) है। तो (अत्र) इसमें (कः) क्या (हेतुः) कारण है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। तब (मदध्यवसायोपरि) मेरे अध्यवसायके ऊपरमें (तव) तेरा (अपेक्षितम्) अपेक्षित (किम्) क्या (अस्ति) है। (द्वौ) दो पुरुष (एकस्याम्) एक (नद्याम्) नदीमें (अवगाह्य) स्नान करके (गच्छतः) चले जाते हैं (चेत्) यदि तो (पुरः) आगेमें (अपायिनः) अनित्य विनाशीके (हस्तम्) हाथको (अनुगतः) पीछेसे चलनेवाला पुरुष (चेत्) यदि (गृह्णाति) ग्रहण कर लेता है तो (तत्र) उस विषयमें (प्रमाणापेक्षा) प्रमाणकी अपेक्षा (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके हैं। (चेत्) यदि (तथा) इस प्रकारके (अपेक्षा) प्रमाणकी अपेक्षा (अस्ति) है तो (प्रमाणन्यूनता) सिद्धोपायके विषयमें प्रमाणकी कमी (अपि) भी (न) नहीं (अस्ति) है। परन्तु (प्रमाणानि) सिद्धोपायके विषयमें प्रमाण (द्रष्टव्यानि) दिखानेयोग्य हैं (इति) ऐसा (मम) मेरा (विचारः) विचार (न) नहीं (अस्ति) है। और (अत्र) यहाँपर (विद्यमानः) विद्यमान (सर्वे) सब (संसारिणः) संसारी जीव (पञ्चषाः) पाँचमें सम्यक् भक्ति करनेवाले (पुरुषाः) पुरुष (चेत्) यदि (उत्तमाधिकारिणः) उत्तम अधिकारी (भवन्ति) होते हैं तो (तेषाम्) उन सबोंका (उत्कर्षः) उत्कर्ष (च) और (एतेषाम्) इन सबोंका (अपकर्षः) अपकर्ष (अस्ति) है। या (किम्) क्या (स्वरूपप्राप्तिः) स्वरूपकी प्राप्ति (एव) निश्चय करके है। (स्वर्गकामः) स्वर्गकी कामनावाला पुरुष (यजेत) यजन करे (इति) इस प्रकारके (उक्तप्रकारेण) श्रुतिमें कहे हुए प्रकारसे (स्वर्गादिफलानुभवहेतुतया) स्वर्ग आदिक

फलके अनुभवकी कारणतासे (शास्त्रैः) शासनकरनेवाले ग्रन्थों करके (यागे) यज्ञ (प्रतिपाद्यमाने) प्रतिपाद्यमान होनेपर (अपि) भी (एकस्मिन्) एक (ग्रामे) ग्राममें (एकः) एक प्रधान पुरुष (एव) निश्चय करके (इयाज) यज्ञको किया (इति) इस प्रकारके (सति) रहनेपर (अस्य) इस सिद्धोपायके (अधिकारी) प्रपन्न अधिकारी (तव) तेरेको (सुलभः) सुलभ (भवेत्) होवेंगे (किम्) क्या (इति) ऐसा (अवोचत्) वेदान्ती स्वामीजी ने कहा है। (च) और इस सदुपदेशको सुनकर (सः) वे कलिवैरिदासस्वामीजी (कृतार्थः) कृतार्थ (अभवत्) हो गये हैं। इस एकसौ चारकी वार्तामें एकसौ छः पद हैं। इति यतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ १०४ ॥

अब भट्टारकस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ भट्टारकोक्ता वार्ता॥

मू०-भट्टारकः श्रीसेतुस्नानार्थं गच्छन् मार्गे कस्मिंश्चित् ग्रामे कालातिक्रमणे सति कस्यचिद् व्याधस्य गृहं प्रविवेश, स च स्वासनं च दूरीकृत्य मञ्चकमेकं ददौ, तत्र स्थितः सन्-अयमस्मद्वैभवं ज्ञात्वा नैवमकरोत् ख्यातिपरोऽपि नाकरोत्, अस्माभिरुपकृतोऽपि नाकरोत्, गृहेआगत इत्यभिमानेन खल्वेवं कृतवान् ईश्वरः स्वाभिमानान्तर्गविषये किमध्यवस्यतीति-अनुसन्धाय तं प्रति नन्वत्र को वा विशेष इत्यपृच्छत्, स च-अहं मृगयार्थं वनं गतवान्, तत्रैकं शशशावकं गृहीत्वा गृहाभिमुखप्रस्थितः-तन्माता पश्चादागत्य वनाद्बहिः पुरतः प्रणम्य स्थिताः, तां दृष्ट्वा दुःखितोऽहं शिशुमत्यजमित्यवोचत्, एतच्छ्रुत्वा-इदं चेतनस्याविद्यमानं परमचेतनस्य विद्यमानमेकं न भवति "मामेकं शरणं व्रज" इति शशस्यास्य कश्चन नोपदिदेश, अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः

११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८
कृतात्मनेति व्याधस्य नोपदिदेश, अव्यवधानेन शरणा-
११९ १२० १२१ १२२
गतेः फलसम्बन्धः प्रमाणसिद्ध इत्यवोचत् ॥ १०५ ॥

॥ पराशरभट्टाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- यतीन्द्रानन्तरं धीमान् रंगिपुत्रेण धीमता।
श्रीपराशरभट्टेन कंचित्कालं महात्मना।
रामानुजार्यसिद्धान्तं वर्तयामास भूतले॥९९॥

(भट्टारकः) पराशरभट्टाचार्यस्वामीजी (श्रीसेतुस्नानार्थम्) श्रीसेतुतीर्थमें स्नान करनेके लिये (गच्छन्) जाते हुए (मार्गे) रास्तेमें (कस्मिंश्चित्) किसी (ग्रामे) ग्राममें (कालातिक्रमणे) राह चलनेका समय बीत जाने (सति) पर (कस्यचित्) किसी (व्याधस्य) बहेलियेके (गृहम्) घरमें (प्रविवेश) पैठ गये। (च) और (सः) वह बहेलिया (च) भी (स्वासनम्) अपने आसनको (दूरीकृत्य) दूर हटाकर भट्टारकस्वामीजीके लिये (एकम्) एक (मञ्चम्) मंचको (ददौ) दिया। तब (तत्र) उस मञ्चपर (स्थितः) स्थित (सन्)भये हुए श्रीस्वामीजी सोचने लगे कि (अयम्) इस बहेलिये ने (अस्मद्वैभवम्) मेरे वैभवको (ज्ञात्वा) जानकर (न) नहीं (एवम्) इस प्रकारके सत्कारको (अकरोत्) किया है। और (ख्यातिपरः) अपने नामके लिये (अपि) भी (न) नहीं (अकरोत्) इस प्रकारके सत्कारको किया है। तथा (अस्माभिः) हम सबोंकरके (उपकृतः) उपकार करनेके कारणसे (अपि) भी (न) नहीं (अकरोत्) इस प्रकारके सत्कारको किया है। (स्वगृहे) अपने घर में (आगतः) मुझको आया हुआ देखकर ये आये हैं (इति) इस प्रकारके (अभिमानेन) अभिमानसे (खलु) निश्चय करके (एवम्) इस प्रकारके सत्कारको (कृतवान्) किया है। और (ईश्वरः) परमेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् (स्वाभिमानान्तर्गतविषये) अपने अभिमानके भीतर प्राप्त पुरुषके विषयमें (किम्) क्या (अध्यवस्यति) अध्यवसाय करते हैं (इति) ऐसा (अनुसन्धाय) अनुसन्धान करके श्रीभट्टारकस्वामीजी ने (तम्) उस बहेलियेके (प्रति) प्रति (ननु) निश्चय करके ऐ व्याध! (अत्र) यहाँपर (कः) क्या (विशेषः) विशेष कुछ समाचार है (वा) अथवा विशेष नहीं है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। (च) और तब (सः) उस बहेलियेने कहा कि (अहम्) मैं (मृगयार्थम्) अहेर करनेके लिये (वनम्) जंगलमें (गतवान्) गया। और (तत्र) उस जंगलमें (एकम्) एक (शशशावकम्) खरहेके बच्चेको (गृहीत्वा) पकड़कर (गृहाभिमुखप्रस्थितः) अपने घरके तरफ मैं चला कि (पश्चात्) पीछेसे (तन्माता) उस खरहेके बच्चेकी माँ (वनात्) जंगलसे (बहिः) बाहरमें (आगत्य) आकरके (पुरतः) मेरे सामने (प्रणम्य) प्रणाम करके (स्थिता)

स्थित हो गई। और (ताम्) पुत्र विरहानलसे अत्यन्त पीड़ित उसको (दृष्ट्वा) देखकर (दुःखितः) दुःखी (अहम्) मैं (शिशुम्) खरहेके बच्चेको (अत्यजम्) छोड़ दिया (इति) इस प्रकारसे (अवोचत्) उस बहेलियेने कहा। तब (एतत्) उस बहेलियेके पूर्वोक्त वचनको (श्रुत्वा) सुनकर (इदम्) यह आश्रित रक्षण (चेतनस्य) चेतनजीवका (अविद्यमानम्) अविद्यामान है। (परमचेतनस्य) परमचेतन श्रीमन्नारायणके (विद्यमानम्) विद्यमान (एकम्) एक आश्रित रक्षण (न) नहीं (भवति) होता है। (माम्) मुझको (एकम्) केवल (शरणम्) उपाय (व्रज) समझो (इति) इस उपदेशको (कश्चन) किसीने भी (अस्य) इस (शशस्य) खरहेके (न) नहीं (उपदिदेश) उच्चारण किया है। (कृतात्मना) कृतात्मापुरुषों करके (प्राणान्) प्राणादिकोंको (परित्यज्य) परित्याग करके (अरिः) शत्रु (रक्षितव्यः) रक्षाकरने योग्य है (इति) ऐसा (व्याधस्य) बहेलियेको किसीने भी (न) नहीं (उपदिदेश) उपदेश किया है। (अव्यवधानेन) बिनाव्यवधान करके (शरणागतेः) शरणागतिके (फलसंबन्धः) फलका संबन्ध (प्रमाणसिद्धः) प्रमाणसे सिद्ध है (इति) ऐसा (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्तामें **॥मामेकं शरणंव्रज॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६६॥** का प्रतीक है, इससे समस्त श्लोक को यहाँ पर लिखता हूँ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६६ ॥

इसका अर्थ बहुत पहले लिख चुका हूँ। इस वार्तामें सेतुतीर्थ में स्नान करनेके लिये, ऐसा पद है। इससे यहाँपर कुछ अधम लोग कहते हैं कि तीर्थ एक हजार वर्षसे इधर ही बने हैं। इस विषयमें यह कहना है कि जब कि महाभारतके वन पर्वमें तीर्थ यात्रा पर्वाध्याय लिखित है जिसको रचे पाँच हजारवर्षसे अधिक हो गये तो प्रमत्तके सिवाय कोई भी विचारशील नहीं कह सकता है कि तीर्थ एक हजार वर्षसे इधर बने हैं। तीर्थ वेदोंमें विद्यमान हैं इससे अनादिकालसे हैं। इस विषयमें अधोलिखित प्रमाणों को कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें।

॥इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचतापरुष्ण्या। असिकन्या-मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शणुह्यासुषोमया॥ ऋग्वे० मण्ड० १०, अ० ३, सू० ७५, मं० ५ ॥

हे गंगे! हे यमुने ! हे सरस्वति! हे शुतुद्रि! आप सब सम्मुख होकर मेरे यज्ञका सेवन करो । हे मरुद्वृधे ! आर्जीकीये! परुष्णी असिक्नी वितस्ता सुषोमाके साथ मेरे यज्ञका सेवन करो, मेरी स्तुतियोंको सब प्रकारसे सुनो ॥ इस मंत्रका जैसे अर्थ मैं लिखा हूँ ऐसा ही अर्थ निरुक्त० ५, उत्तर ख० अ० ३। २६ में भी लिखा है । और

भी लिखा है कि-

॥ सरस्वती सरयुः सिन्धुरुर्मिभिर्महोमहीरवसायं तु वक्षणः । देवीरापो मातरः सूदयित्वो घृतवत्पयोमधुमन्नो अर्चत ॥ ऋ० मं० १०, अ० ५, सू० ६४, मं० ९ ॥

महान्से भी महान् लहरोंसे युक्त सरस्वती सरयू सिन्धुनामा नदी देवियाँ रक्षा करनेके लिये हमारे यज्ञमें आओ, माताके समान प्रेरक जल देवियाँ घृत मधु युक्त दुग्धको हमें दो॥९॥ और यजुर्वेदमें लिखा है कि-

॥ नमः पार्य्याय चावार्य्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ यजु० अ० १६, मं० ४२ ॥

हे भगवन्! आप सब प्रकारसे सबमें श्रेष्ठ सब संसारके तारने एवं पार उतारनेवाले हो क्योंकि आपतीर्थ रूप हो अथवा आपतीर्थोंमें पर्यटन करते हो उस आपके लिये नमस्कार है तीर्थोंकें घाट किनारे रूप आपके लिये नमस्कार है और आप ही गऊ रूपी तथा गाजरूपी हो, उस आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ४२ ॥ और अथर्ववेदमें भी लिखा है कि-

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिती यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति । अत्रादधु– र्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ अथर्व० २८ । ४ । ७ ॥

तीर्थोंद्वारा मनुष्योंकी महती जातियाँ इस प्रकार अनायास संसार सागरसे तर जाती हैं, यज्ञोंके करनेवाले पुण्योंके करनेवाले जिस मार्गसे जाते हैं वे इस पुण्यलोक प्राप्ति साधनके मार्गमें तीर्थयात्री भी प्राप्त होते हैं ऐसे तीर्थयात्री यजमानके निमित्त पुण्यार्जित लोकको विधान करते हैं कारण कि तीर्थोंमें स्थित तीर्थवासी अपने यजमानके लिये आशीर्वाद देकर समर्थ बनाते हैं और स्वर्ग जानेमें जिन दिशाओंमें तीर्थ हैं वे दिशाएँ समर्थ बनाती हैं ॥ ७ ॥ और देखिये-

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः। तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्गमः॥ मनु० अ० ८, श्लो० ९२॥

जो यह सूर्यके पुत्र यमराजदेव तुम्हारे हृदयमें विराजमान हैं यदि तुम्हारा विवाद यमराजके साथ न हो तो गंगा और कुरुक्षेत्र में मतजाओ ॥ ९२ ॥ और लिखा है कि-**तिस्रः कोट्योर्द्धकोटीच तीर्थानिभुवनत्रये। पराशरीयध० उत्तर खं० अ० १०, श्लो० २५** तीनो भुवनमें साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ हैं ॥२५॥ और वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि-

आचम्य च यथा शास्त्रं नदीं तां सह सीतया । प्रणमत्प्रतिसंतुष्टो लक्ष्मणश्च महारथः ॥ वा० रा० अयो० २, स० ५२, श्लो० ७९॥

श्रीसीताजीके साथ श्रीरामजी और महारथी श्रीलक्ष्मणजी ने शास्त्रके अनुसार आचमन करके उस गंगा नदीको प्रणामकिया ।। ७९।। और भी लिखा है कि-

मध्यं तु समनुप्राप्य भागीरथ्यास्त्वनिन्दिता। वैदेही प्राञ्जलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ॥ वा० रा० अयो० २, स० ५२, श्लो० ८९ ॥ पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः। निदेशं पालयत्वेनं गंगे त्वदभिरक्षितः ॥ ८३ ॥ चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने। भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ॥ ८४ ॥ ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता। यक्ष्ये प्रमुदिता गंगे सर्वकाम-समृद्धिनि ॥ ८५ ॥ त्वं हि त्रिपथगे देवि ब्रह्मलोकं समीक्षसे। भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन्सम्प्रदृश्यसे ॥ ८६ ॥ सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने। प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागते ॥ ८७ ॥ गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम्। ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥ ८८ ॥

भागीरथी गङ्गाके बीचमें नौकाके पहुँचनेपर श्रीसीताजी ने अञ्जलि जोड़कर उस गङ्गाजीसे इस प्रकारसे कहा।।८२।। कि हे गङ्गेदेवि! बुद्धिमान् महाराज श्रीदशरथजीके ये पुत्र बनवास करेंगे, तुम इनकी रक्षा करो।।८३।। चौदहवर्ष वनमें अपने भाई श्रीलक्ष्मण और मेरे सहित वास करके फिर वहाँसे घरमें पधारेंगे।।८४।। ऐ समस्त मनोरथ सिद्ध करनेवाली गङ्गेदेवि! जङ्गलसे आनन्द मङ्गल पूर्वक लौटी हुई मैं प्रसन्न होकर तेरी पूजा करूँगी।।८५।। हे गङ्गेदेवि तुम त्रिलोक के कार्य साधन करती हो, तथा ब्रह्मलोक का वास देनेवाली हो और समुद्रकी भार्या इस मृत्युलोक में देखी जाती हो।।८६।। हे गङ्गेदेवि! मैं साष्टाङ्ग करती हूँ, और तुम्हारी प्रार्थना करती हूँ कि फिरसे रघुनाथजी कल्याण पूर्वक वनवाससे निवृत्त होकर अपने राज्यको यदि लेंगे।।८७।। तो सौ हजार गौ तथा वस्त्र और सुन्दर अन्न आपके प्रिय करनेकी इच्छासे दूँगी।।८८।। और देखिये श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि-

स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम्। द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाऽद्रिंवेङ्कटं प्रभुः ॥ श्रीमद्भा० स्क० १०, उत्तरा० अ० ७९, श्लो० १३ ॥ कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम्। श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा। सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥

प्रभु श्रीबलरामजी अत्यन्त पवित्रवेंकटाचलको देखकर तथा स्कन्दको अवलोकन करके द्रविड़देशमें गिरिशालय श्रीशैलको चले गये।।१३।। और इसके बाद मनोरथ पूर्ण करनेवाली काञ्चीपुरीको गये उसके बाद सरिताओंमें श्रेष्ठ कावेरी नदीको और महापुण्य श्रीरङ्गक्षेत्रको गये, जहाँपर सर्वदा श्रीमन्नारायण भगवान् सन्निहित रहते हैं।।१४।। उसके बाद बलदेवजी श्रीहरिके क्षेत्र ऋषभाद्रिको और दक्षिणमथुराको गये और उसके

बाद महापातकको नाश करनेवाले सामुद्र सेतुतीर्थको गये।।१५।। और पाणिनी महर्षि ने भी तीर्थको मान करके ही।। **समान तीर्थेवासी।। व्या० अ० ४, सू० १०७।।** इस सूत्रका निर्माण किया है। इन पूर्वोक्त श्रुति स्मृति इतिहास पुराण आदिके प्रमाणोंसे स्पष्ट साबित होता है कि तीर्थ जबसे सृष्टि है तभीसे हैं। इससे मुमुक्षुओंको दिव्यदेशोंमें अवश्य जाना चाहिये। इस एक सौ पाँचवीं वार्तामें एक सौ बाइस पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।१०५।।

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

।। अथ भाष्यकारोक्ता वार्ता।।

मू०–श्रीभाष्यकारे कृमिकण्ठसमये श्वेतं परिधाय पश्चिमदेशं गच्छति तत्र प्रसादमादायागतस्य–अम्मंगि अस्मालाचार्यस्यैकवारं द्वयमुपदिदेश, पार्श्वस्थाः स्वामि–न्निदं किमित्यपृच्छन् स च एतावद्दूरं प्रसादमादाया–गतस्य द्वयं विना प्रत्युपकारो नास्तीत्यवोचत् ।। १०६ ।।

।। भाष्यकारस्तुतिः ।।

अर्थ– –कृमिकण्ठनरेशनिषूदकरं भवरोगविनाशनवैद्यवरम्।

शरणागतवत्सलवारिनिधिं प्रणमामि सदायतिभूमिपतिम्।१००।।

(श्रीभाष्यकारे) श्रीभाष्यकार रामानुजचार्य स्वामीजीके (कृमिकण्ठसमये) चोलदेशके राजा यमराजके मित्र कृमिकण्ठके समयमें (श्वेतम्) आपत्तिकालमें सफेद वस्त्रको (परिधाय) धारण करके (पश्चिमदेशम्) श्रीरंङ्गक्षेत्रसे पश्चिम देशको (गच्छति) चले जानेपर (तत्र) उस पश्चिम देशमें (प्रसादम्) भगवान्के प्रसादको (आदाय) लेकरके (आगतस्य) आये हुए (अम्मंगिअस्मालाचार्यस्य) अम्मंगिअस्मालचार्यके प्रति (एकवारम्) एक बार (द्वयम्) द्वय मन्त्रको (उपदिदेश) श्रीभाष्यकार ने उपदेश किया। तब (पार्श्वस्थाः) बगलमें स्थित श्रीवैष्णव सबों ने (स्वामिन्) हे यतिराजस्वामिन्! (इदम्) यह (किम्) क्या (इति) ऐसा (अपृच्छन्) पूछा। (च) और तब (सः) उस श्रीभाष्यकार ने (एतावद्) इतना (दूरम्) दूर (प्रसादम्) भगवान्के प्रसादको (आदाय) लेकरके (आगतस्य) आये हुए अम्मंगिअस्मालाचार्यके (द्वयम्) द्वयमन्त्रके (विना) सिवाय अन्य (प्रत्युपकारः) प्रत्युपकार (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा

अवोचत्) कहा है। इस एक सौ छठवीं वार्तामें चौंतीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१०६॥

अब नाथमुनिस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ नाथमुन्युक्ता वार्ता ॥

मू०-[१]इतरोपायेभ्यः [२]प्रपत्ते[३]र्वैलक्षण्यमेत[४]त्, इतरे[५]षा-[६]मधिकृताधिकारः [७]विधिपरतन्त्रानुष्ठेयता, प्रारब्ध[८]कर्मावसाने [९]फलसंबन्धः, [१०]अन्तिमस्मृत्यपेक्षा-[११]अचेतनत्वं [१२]साध्यता-[१३]अनेक-सहायापेक्षा [१४]फलप्राप्तावीश्व[१५]रापेक्षा [१६]स्वरूपविरोधः [१७]प्राप्य [१८]वै [१९]सादृश्यम्, [२०]अत्र सर्वाधिकारः-[२१]आचार्य्यरुचिपरिगृहीतत्वं देहावसा[२२]ने [२३]फलसंबन्धः [२४]अन्तिमस्मृतिनैरपेक्ष्यं [२५]परमचेतनत्वं सिद्धत्वं [२६]सहायान्तरनिरपेक्षत्वम्, [२७]एकत्वं [२८]स्वरूपानुरूपत्वं [२९]प्राप्य [३०]सौसादृश्यं [३१]कर्मकैंकर्यपरं [३२]ज्ञानं [३३]स्वरूपपरं [३४]भक्तिर्भोगपरा [३५]प्रपत्तिर्धारकभूता-[३६]उक्तिः [३७]कालक्षेपपरा-[३८]उपायस्यानुष्ठानं [३९]सकृत् [४०]अत्राध्यवसायो [४१]यावच्छरीरमनुवर्तते, [४२]उपेय [४३]रुचि [४४]र्यावदात्मभाविनी, [४५]एकैकस्मिन्ननुक्तानामवश्यं [४६]ज्ञातव्याना-[४७]मर्थविशेषाणां [४८]विवरणत्वाद्रहस्यत्रयमप्येकस्य [४९]ज्ञातव्यं [५०]भवति ॥

॥ नाथमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ- नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्टज्ञानवैराग्यराशये।
नाथाय मुनयेऽगाधभगवद्भक्तिसिन्धवे ॥ १०१ ॥

(इतरोपायेभ्यः) अन्य कर्मज्ञान आदिक उपायोंसे (प्रपत्तेः) भगवान्की प्रपत्तिकी (वैलक्षण्यम्) विलक्षणता (एतत्) यह है। (इतरेषाम्) अन्य कर्मज्ञान आदिकोंके (अधिकृताधिकारः) अधिकृतअधिकार (विधिपरतन्त्रानुष्ठेयता) विधिके परतन्त्रसे अनुष्ठान करने योग्य है। और (प्रारब्धकर्मावसाने) प्रारब्ध कर्मके समाप्त होने पर

(फलसंबन्धः) फलका संबन्ध होता है। (अन्तिमस्मृत्यपेक्षा) अन्तिम स्मृतिकी अपेक्षा (अचेतनत्वम्) अचेतनता है। तथा (साध्यता) साध्यता (अनेकसहायापेक्षा) अनेक सहायकी अपेक्षा करती है। और (फलप्राप्तौ) फलकीप्राप्तिमें (ईश्वरापेक्षा) ईश्वर श्रीमन्नारायणकी अपेक्षा (स्वरूपविरोधः) स्वरूपविरोध (वै) निश्चय करके (सादृश्यम्) सदृशताको (प्राप्य) पा करके (अत्र) यहाँपर (सर्वाधिकारः) सबका अधिकार है। और (आचार्यरुचिपरिगृहीत्वम्) आचार्योंकी रुचिसे परिगृहीतत्व (देहावसाने) इस प्राकृत देहके नाश होनेपर (फलसंबन्धः) फलका संबन्ध होता है। तथा (अन्तिमस्मृतिनैरपेक्ष्यम्) अन्तिम स्मृतिकी निरपेक्षता (परमचेतनत्वम्) परम चेतनता है। और (सिद्धत्वम्) सिद्धता (सहायान्तरनिरपेक्षत्वम्) अन्य सहायोंकी अपेक्षा नहीं करना है। तथा (एकत्वम्) एकत्व (स्वरूपानुरूपत्वम्) स्वरूपके अनुरूप है। और (सौसादृश्यम्) सुन्दर सदृशताको (प्राप्य) पा करके (कर्म) कर्म (कैंकर्यपरम्) भगवत्कैंकर्य परक होता है। तथा (ज्ञानम्) ज्ञान (स्वरूपपरम्) स्वरूपपरक होता है। और (भक्तिः) भक्ति (भोगपरा) भोगपरक होती है। तथा (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (धारकभूता) धारकभूत होती है। और (उक्तिः) उक्ति (कालक्षेपपरा) कालक्षेपपरक होती है। तथा (उपायस्य) उपायके (अनुष्ठानम्) अनुष्ठान (सकृत्) एकबार होता है। और (अत्र) इस विषयमें (अध्यवसायः) यत्न (यावत्) जबतक (शरीरम्) शरीर (अनुवर्तते) रहता है, तबतक करना चाहिए। तथा (उपेये) उपेयमें (रुचिः) प्रीति (यावत्) जबतक (आत्मभाविनी) आत्माकी सत्ता रहती है, तबतक करनी चाहिये। और (एकैकस्मिन्) एक एकमें (अनुक्तानाम्) नहीं कहे हुए (अवश्यम्) जरूर (ज्ञातव्यानाम्) जानने योग्य (अर्थविशेषाणाम्) अर्थ विशेषोंके (विवरणत्वात्) विवरण होनेसे (रहस्यत्रयम्) मूलमंत्र द्वयमंत्र चरमश्लोक ये तीन रहस्य (अपि) भी (एकस्य) एकके (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य (भवति) होते हैं ॥ शमिति ॥



मू०-विवरणक्रमस्त्वित्थं सविभक्तिकमकारमन-न्तराक्षरद्वयं विवृणोति, तदक्षरद्वयं मन्त्रशेषो विवृणोति, तत्पदद्वयं वाक्यद्वयं विवृणोति, तद्वाक्यद्वयं चरमश्लोकस्या-र्द्धद्वयं विवृणोति, अनन्तराक्षरमनन्तरपदं विवृणोति, अत्र प्रथमपदं प्रथमवाक्यं विवृणोति, अनन्तरपदमनन्तरवाक्यं विवृणोति, अत्र पूर्ववाक्यं पूर्वार्द्धो विवृणोति, उत्तरवाक्य-

मुत्तरार्द्धो विवृणोति, अत्र शेषत्वप्रतिसंबन्धिवाचकस्याकार-
स्यानन्यार्हशेषत्ववाचकोकारो विवरणं भवति, अकार-
वाच्यस्य शेषित्वमाश्रयान्तरसाधारणमुतानन्यसाधारण-
मिति विषये तदनन्यार्हत्वप्रकाशकत्वात्-उकारोक्तस्य
चेतनस्यानन्यार्हशेषत्वस्य सिद्धिः, तत्प्रतिसंबन्धिशेषित्व-
स्यैकमात्रवृत्तित्व एव, अन्यथनेकेषां शेषित्वाच्चेतनस्या-
नन्यार्हशेषत्वं न सिध्यति, अन्यशेषिणां सत्वे चान्यशेषत्व-
मेव सिध्यति नत्वनन्यार्हत्वमपि, तस्मादकारवाच्यस्य
समाभ्यधिकदारिद्र्यमुक्तं चतुर्थ्युक्तशेषत्वस्याश्रयविशेष-
प्रतिपादकत्वान्मकारोविवरणं निराश्रयस्य धर्मस्य सत्वा-
सम्भवात् भगवद्व्यतिरिक्तत्वेन स्वमन्यांश्चानुगम्य
तदनर्होऽयं चेतन इति प्रतिपादयत्युकारः, अत्र देवतान्तर-
मात्रव्यावृत्त्यान्यशब्दार्थपूर्त्यभावात् अन्यशब्दार्थान्वितं
स्वमपि व्यावर्त्यानन्यार्हता पूरणमुखेनोकारं विवृणोति
नमः शब्द-अहमपि न मम इत्युक्तं स्वरक्षणाप्राप्तिरूप-
मत्यन्तपारतन्त्र्यं नम शब्द एव प्रतिपादयति, तस्मादु-
कारविवरणं नमः शब्दः शेषत्वस्याश्रयविशेषप्रतिपादकस्य
मकारवाच्यभूतस्य शेषत्वपूर्तिप्रकाशकोऽकिञ्चित्करस्य
शेषत्वानुपपत्तिरिति प्रमाणात् किंञ्चित्कार इति तादृशकि-
ञ्चित्कारप्रतिपादकं नारायणपदं मकारविवरणम् ॥

अर्थ- (विवरणक्रमः) रहस्य त्रयके विवरणका क्रम (तु) तो (इत्थम्) इस प्रकारसे है कि (सविभक्तिकम्) मूलमंत्रके प्रथम पदमें स्थित तादर्थ्यचतुर्थी विभक्तिके सहित (अकारम्) प्रणवके पहली मात्रा अकारको (अनन्ताक्षरद्वयम्) पासके जो दो

अक्षर उकार और मकार हैं सो (विवृणोति) विवरण करते हैं। अर्थात् प्रणवकी प्रथम मात्रा अकारको प्रणवकी दूसरी मात्रा उकार विवरण करता है। और प्रणवकी प्रथम मात्रा अकारके ऊपर तादर्थ्यमें आयी हुई चतुर्थी विभक्तिको प्रणवकी तीसरी मात्रा मकार विवरण करता है। तथा (तत्) वे उकार और मकार (अक्षरद्वयम्) इन दोनों अक्षरोंको (मंत्रशेषः) प्रणवसे अतिरिक्त शेष मूल मंत्र (विवृणोति) विवरण करता है। अर्थात् प्रणवकी द्वितीय मात्रा उकारको मूलमंत्रमें स्थित 'नमः' पद विवरण करता है। और प्रणवकी तृतीय मात्रा मकार को मूलमंत्रमें स्थित 'नारायण' पद विवरण करता है। तथा (तत्) उन 'नमः' और 'नारायणाय' इन (पदद्वयम्) दोनों पदोंको (वाक्यद्वयम्) द्वयमंत्रके दोनों वाक्य (विवृणोति) विवरण करते हैं। अर्थात् मूलमंत्रके दूसरे 'नमः' पदको द्वयमंत्रमें स्थित 'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये' यह वाक्य विवरण करता है। और मूलमंत्र के तीसरे 'नारायणाय' पद को द्वयमंत्र में स्थित 'श्रीमते नारायणाय नमः' यह खण्ड विवरण करता है। और (तत्) उस 'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये और 'श्रीमते नारायणाय नमः' इस (वाक्यद्वयम्) द्वयमंत्रके दोनों वाक्योंको (चरमश्लोकस्य) चरमश्लोकके (अर्द्धद्वयम्) दोनों अर्द्ध (विवृणोति) विवरण करते हैं। अर्थात् द्वयमंत्र के पहले 'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये' इस खण्डको चरमश्लोकका 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' यह पूर्वार्द्ध विवरण करता है। और द्वयमंत्रके दूसरे 'श्रीमतेनारायणाय नमः' इस खण्डको चरमश्लोका 'अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः' यह उत्तरार्द्धविवरण करता है। पूर्वोक्तको स्पष्ट दिखाते हैं कि (अनन्तराक्षरम्) प्रणव के तीसरे अक्षर मकारको (अनन्तरपदम्) मूलमंत्रका तीसरा 'नारायणाय' यह पद (विवृणोति) विवरण करता है (अत्र) यहाँ पर (प्रथमपदम्) प्रणवसे अतिरिक्त मूलमंत्रका पहले प्राप्ति करने योग्य 'नमः' पदको (प्रथमवाक्यम्) द्वयमंत्रका 'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये' यह पहला वाक्य (विवृणोति) विवरण करता है। और (अनन्तरपदम्) मूलमंत्रमें स्थित 'नारायणाय' इस पद को (अनन्तर वाक्यम्) द्वयमंत्र का 'श्रीमतेनारायणाय नमः' यह अनन्तरवाक्य (विवृणोति) विवरण करता है। (अत्र) यहाँपर (पूर्ववाक्यम्) द्वयमंत्रके पहले वाक्यको (पूर्वार्द्धः) चरमश्लोकका पूर्वार्ध (विवृणोति) विवरण करता है। और (उत्तरवाक्यम्) द्वयमंत्रके उत्तरवाक्यको (उत्तरार्द्धः) चरमश्लोकका उत्तरार्द्ध (विवृणोति) विवरण करता है। (अत्र) इस प्रणवमें (शेषत्वप्रतिसंबन्धिवाचकस्य) शेषत्वकेप्रतिसंबन्धिवाचक (अकारस्य) अकारके (अनन्यार्हशेषत्ववाचकोकारः) अनन्यार्हशेषत्व का वाचक उकार (विवरणम्) विवरण (भवति) होता है। (अकारवाच्यस्य) अकारवाच्यके (शेषित्वम्) शेषित्व (आश्रयान्तरसाधारणम्) अन्य आश्रयोंके साधरण है (उत) या (अनन्यसाधारणम्) अनन्य साधारण है (इति) इस (विषये) विषयमें (तदनन्यार्हत्वप्रकाशकत्वात्) उसके

अनन्यार्हत्वप्रकाशक होनेसे (उकारोक्तस्य) उकारसे कहे हुए (चेतनस्य) चेतनके (अनन्यार्हशेषत्वस्य) अनन्यार्हशेषत्वकी (सिद्धिः) सिद्धि होती है। (तत्प्रतिसंबन्धि शेषित्वस्य) उसके प्रतिसंबन्धिशेषित्वके (एकमात्र वृत्तित्वः) एकमात्र वृत्तित्व (एव) निश्चय करके है। (अन्यथा) पूर्वोक्त कथनानुसार यदि न मानिये तो (अनेकेषाम्) अनेकोंके (शेषित्वात्) शेषित्व होनेसे (चेतनस्य) चेतनजीवके (अनन्यार्हशेषत्वम्) अनन्यार्हशेषत्व (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता है। (च) और (अन्यशेषिणाम्) अन्यशेषियोंके (सत्वे) रहनेपर (अन्यशेषत्वम्) अन्यशेषत्व (एव) निश्चय करके (सिध्यति) सिद्ध होता है (अनन्यार्हत्वम्) अनन्यार्हत्व (अपि) भी (तु) तो (न) नहीं सिद्ध होता है। (तस्मात्) इस कारणसे (अकारवाच्यस्य) अकार वाच्यके (समाभ्यधिकदारिद्र्यम्) तुल्यता तथा अधिकताकी दरिद्रता (उक्तम्) कही गयी है। (चतुर्थ्युक्तशेषत्वस्य) प्रणवके पहले अक्षरके ऊपर आयी हुई तादर्थ्यचतुर्थी विभक्तिसे कहे हुए शेषत्वके (आश्रयविशेषप्रतिपादकत्वात्) आश्रयविशेषके प्रतिपादन होनेसे (मकारः) मकार (विवरणम्) विवरण है। (निराश्रयस्य) बिना अश्रयके (धर्मस्य) धर्मके (सत्त्वासंभवात्) सत्त्वके असंभव होनेसे (भगवद्व्यतिरिक्तत्वेन) भगवानसे अन्यकरके (स्वम्) अपनेको (च) और (अन्यान्) अन्योंको (अनुगम्य) पीछेसे पाकर (तदनर्हः) उसके अयोग्य (अयम्) यह (चेतनः) चेतनजीव है (इति) ऐसा (उकारः) प्रणवकी द्वितीय मात्रा उकार (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। और (अत्र) यहाँपर (देवतान्तरमात्रव्यावृत्त्या) देवतान्तर मात्रकी व्यावृत्तिसे '(अन्यशब्दार्थपूर्त्यभावात्) अन्यशब्दके अर्थ की पूर्ति के अभाव होने से (अन्यशब्दार्थान्वितम्) अन्यशब्द का अर्थसे युक्त (स्वम्) अपनेको (अपि) भी (व्यावर्त्य) व्यावृत्त करके (अनन्यार्हतापूरणमुखेन) अनन्यार्हताके पूरणमुखसे (नमः) मूलमंत्रमें स्थित नमः (शब्दः) शब्द (उकारम्) प्रणवमें स्थित द्वितीय मात्रा उकारको (विवृणोति) विवरण करता है। 'विवृणोति' यहाँपर ।**स्वादिभ्यः श्नुः॥ व्या० अ० ३,पा० १,सू० ७३॥** इस सूत्रसे श्नुप्रत्यय हुआ है। (अहम्) मैं (अपि) भी (न) नहीं (मम) मेरा (इति) इस प्रकारके (उक्तम्) मूलमंत्रका द्वितीय पद जो 'नमः) यह है. सो 'न' यह निषेध वाचक एक पद है। और 'मः' यह षष्ठ्यन्त अस्मद्वाचक एक पद है। यह अर्थ कहा हुआ (स्वरक्षणाप्राप्तिरूपम्) अपनी रक्षाकी अप्राप्ति (अत्यन्तपारतन्र्यम्) अत्यन्त परतंत्रताको (नमः) मूलमंत्रमें स्थित 'नमः' (शब्दः) शब्द (एव) निश्चय करके (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। (तस्मात्) इससे (उकारविवरणम्) प्रणवकी द्वितीय मात्रा उकारका विवरण (नमः) मूलमंत्रमें स्थित 'नमः' (शब्दः) शब्द है। और (शेषत्वस्य) शेषत्वके (आश्रयविशेषप्रतिपादकम्) आश्रयविशेषके प्रतिपादन करनेवाले (अकारवाच्यभूतस्य) अकारके वाच्यभूतके (शेषत्वपूर्त्तिप्रकाशकः)

शेषत्वकी पूर्तिका प्रकाशक है। तथा (अकिञ्चित्करस्य) कुछ भी नहीं करनेवालेके (शेषत्वानुपपत्तिः) शेषत्वकी अनुपपत्ति है (इति) इस प्रकारके (प्रमाणात्) प्रमाण होनेसे (किञ्चित्कारः) कुछ भी करनेवाला है (इति) इस प्रकारके (तादृशकिञ्चित्कारप्रतिपादकम्) उस प्रकारके कुछ भी करनेवालेको प्रतिपादन करनेवाला (नारायणपदम्) मूलमंत्रमें स्थित 'नारायणाय' यह तीसरा पद (मकार विवरणम्) प्रणवमें स्थित तृतीय मात्रा जो मकार है उस मकार का विवरण रूप है। कमिति।।

मू०—अत्यन्तपारतन्त्र्याधिकारोपायविशेषस्य स्वरूपं तदधिकारिण एकान्तावलम्बनं तदुपायविषये कर्तव्यमंशं च प्रतिपादयत् द्वयपूर्ववाक्यं नमःपदविवरणं कैंकर्य्य-प्रतिसम्बन्धिनो मिथुनत्वं तद्विरोधिनिवृत्तिं च प्रकाशय-दुत्तरवाक्यं नारायणपदविवरणं तादृशोपायस्वीकारस्य साधनान्तरनिवृत्तिपूर्वकत्वात्तत्प्रतिपादकश्चरमश्लोकपूर्वार्द्धो-द्वयपूर्ववाक्यविवरणम्, उत्तरवाक्योक्ताप्राप्यसिद्धे र्विरोधिनिवृत्तिपूर्वकत्वात्तत्प्रतिपादक उत्तरार्द्ध उत्तर-वाक्यविवरणं सर्वाधिकारकेऽधिकृताधिकारे चाचार्य्यरुचि-परिगृहीते वाक्यद्वये प्रापकपरमपि पूर्ववाक्यं प्राप्यपरमप्यु-त्तरवाक्यं पदत्रयात्मकत्वादर्थत्रयात्मकं भवति, तत्र श्री मन्निति प्रदेशः पुरुषकारः शरणं प्रपद्ये, इति तु—अधि कारिकृत्यं मध्यमं नारायणचरणाविति पदमुपायः—उपायः पुरुषकारसापेक्षोऽधिकारिसापेक्षश्च भवति, फलावस्थाया मन्यनिरपेक्षः—उत्तरवाक्यमपि पदत्रयात्मकं तत्रायेति कैंकर्य प्रकाशयति-अधः कैंकर्यप्रतिसम्बन्धिनमुपरि

कैंकर्यविरोधिनिवृत्तिं[७६] वदति[७७], अस्मदाचार्याः[७८] श्रीमंत्रं चरम-श्लोकञ्च[७९] द्वयेऽन्तर्भाव्यानुसंदधते[८०], इदं[८१] चोपायोपेयोभयप्रति-पादकत्वात्[८२] द्वयमित्युच्यते[८३] ॥

अर्थ-(अत्यन्तपारतन्त्र्याधिकारोपायविशेषस्य) अत्यन्त परतंत्रताके अधिकारके उपाय विशेषके (स्वरूपम्) स्वरूपको तथा (तदधिकारिणः) द्वयमंत्रके अधिकारी प्रपन्नजनके (एकान्तावलम्बनम्) एकान्त अवलंबनको (च) और (तदुपायविषये) भगवत्प्राप्तिके उपायके विषयमें (कर्तव्यम्) करनेयोग्य (अंशम्) अंशको (प्रतिपादयत्) प्रतिपादन करते हुए (द्वयपूर्ववाक्यम्) द्वयमंत्रका "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये" यह पूर्ववाक्य (नमः पद विवरणम्) मूलमंत्रमें स्थित "नमः" पदका विवरण है। और (कैंकर्यप्रतिसंबन्धिनः) कैंकर्यके प्रतिसंबन्धीकी (मिथुनत्वम्) मिथुनताको (च) और (तद्विरोधिनिवृत्तिम्) उसके विरोधी की निवृत्तिको (प्रकाशयत्) प्रकाश करता हुआ (उत्तरवाक्यम्) द्वयमंत्रका "श्रीमतेनारायणाय नमः" यह उत्तरवाक्य (नारायणपदविवरणम्) मूलमंत्रमें स्थित "नारायणाय" पद का विवरण है। तथा (तादृशोपायस्वीकारस्य) तादृशउपायके स्वीकारके (साधानान्तरनिवृत्तिपूर्वकत्वात्) साधनान्तरके निवृत्ति पूर्वक (तत्प्रतिपादकः) उसको प्रतिपादन करनेवाला (चरमश्लोकपूर्वार्द्धः) चरमश्लोकका "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" यह पूर्वार्द्ध (द्वयपूर्ववाक्यविवरणम्) द्वयमंत्रके पूर्ववाक्यका विवरण है। और (उत्तरवाक्योक्तप्राप्यसिद्धः) उत्तरवाक्यसे कही हुई प्राप्यसिद्धिके (विरोधिनिवृत्तिपूर्वकत्वात्) विरोधी निवृत्तिपूर्वक (तत्प्रतिपादकः) उसको प्रतिपादन करनेवाला (उतरार्द्धः) चरमश्लोकका "अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः)" यह उत्तरार्द्ध (उत्तरवाक्यविवरणम्) द्वयमंत्रके उत्तरवाक्यका विवरण है। तथा (सर्वाधिकारके) सब वर्ण आश्रमके अधिकारक (अधिकृताधिकारे) अधिकृत अधिकारमें (च) और (आचार्यरुचिपरिगृहीते) आचार्यकी रुचिसे परिगृहीत (वाक्यद्वये) द्वयमंत्रके दोनों वाक्योंमें (प्रापकपरम्) प्रापकपरक (अपि) भी (पूर्ववाक्यम्) द्वय मंत्रका पूर्ववाक्य और (प्राप्यपरम्) प्राप्यपरक (अपि) भी (उत्तरवाक्यम्) द्वयमंत्रका उत्तर वाक्य (पदत्रयात्मकत्वात्) तीन पदवाले होनेसे (अर्थत्रयात्मकम्) तीन अर्थवाले (भवति) होते हैं। (तत्र) उस द्वयमंत्रके पहले खण्डमें (श्रीमन्) "श्रीमन्" (इति) इसप्रकारके पहले पदका (प्रदेशः) प्रदेश (पुरुषकारः) पुरुषकारार्थक होता है। और (शरणम्) द्वयमंत्रके पहले खण्डमें "शरणम्" यह दूसरा पद तथा (प्रपद्ये) "प्रपद्ये" (इति) यह (तु) तो तीसरापद (अधिकारिकृत्यम्) अधिकारीके कृत्यार्थक होता है। और (मध्यमम्) "श्रीमन्" तथा "शरणम्" इन दोनोंके बीचमें (नारायणचरणौ)

''नारायणचरणौ'' (इति) इस प्रकारके (पदम्) प्राप्त करने योग्य शब्द (उपायः) उपायार्थक होता है। तथा (उपायपुरुषकारसापेक्षः) उपाय और पुरुषकारकी अपेक्षा सहित (च) और (अधिकारिसापेक्षः) अधिकारीके सापेक्ष (भवति) होता है। तथा (फलावस्थायाम्) फलकी अवस्थामें (अन्यनिरपेक्षः) दूसरोंकी अपेक्षारहित होता है। और (उत्तरवाक्यम्) द्वयमंत्रका उत्तर वाक्य (अपि) भी (पदत्रयात्मकम्) तीनपदवाले हैं। इससे तीन अर्थको प्रतिपादन करते हैं। उसीको दिखाते हैं कि- (तत्र) उस द्वयमंत्र के दूसरे खण्ड में (आय) ''नारायणाय'' इस दूसरे पदमें स्थित चतुर्थी (इति) यह विभक्ति (कैंकर्यम्) भगवत्कैंकर्यको (प्रकाशयति) प्रकाशित करती है। तथा (अधः) द्वयमंत्रके दूसरे खण्डका पहला नीचेका ''श्रीमते'' यह पद (कैंकर्यप्रतिसंबन्धिनम्) कैंकर्यके प्रतिसंबन्धीको (वदति) कहता है। और (उपरि) द्वयमंत्रके अन्तमें स्थित ''नमः'' यह पद (कैंकर्यविरोधिनिवृत्तिम्) भगवत्कैंकर्यके विरोधीकी निवृत्तिको (वदति) कहता है। (अस्मदाचार्याः) हम सबोंके आचार्य श्रीपरांकुशमुनिस्वामीजी वगैरह (श्रीमंत्रम्) मूलमंत्रको (च) और (चरमश्लोकम्) चरमश्लोकको (द्वये) द्वयमंत्रमें (अन्तर्भाव्य) अन्तर्भावकरके (अनुसंदधते) अनुसंधान करते हैं। (च) और (इदम्) यह ''श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय नमः'' मंत्र (उपायोपेयोभयप्रतिपादकत्वात्) उपाय और उपेय इन दोनोंके प्रतिपादक होनेसे (द्वयम्) द्वय (इति) ऐसा (उच्यते) कहा जाता है। ''उच्यते'' यहाँपर।। **सार्वधातुके यक्।। व्या० अ० ३, पा० १, सू० ६७।।** इस सूत्रसे यक् प्रत्यय होता है।। शमिति।।



मू०-श्रीमंत्र उपेयप्राधान्येनोक्तोऽर्थोऽत्रोत्तरवाक्येनोच्यते। तथाहि-अकारे स्वरूपानुसंबन्धित्वव्यङ्ग्यं लक्ष्मीसंबन्धं नारायणपदेन लक्ष्म्या अपि नारपदान्तर्भावादुच्यमानं लक्ष्मीसंबन्धं चोत्तरवाक्ये श्रीमत इति पदेन प्रतिपादयति, अकारोक्तसर्वरक्षकत्वं तद्विवरणनारायणपदार्थं चोत्तरवाक्यस्थनारायणपदं प्रतिपादयति, अकारोक्तं तादर्थ्यं मकारोक्तं जीवस्वरूपमवधारणोक्तमन्यशेषत्वनिवृत्तिं तद्विवरणनमःशब्दोक्तमत्यन्तपारतन्त्र्यं तत्प्रवृत्तिप्रार्थनापरचतुर्थ्यर्थं चोत्तरवाक्यस्थचतुर्थी वदति,

श्रीमंत्रे[४१] नमः[४२]शब्दार्थाहंकारममकारनिवृत्तिमुत्तरवाक्य[४३]-स्थनमः[४४] शब्दः[४५] प्रतिपादयति[४६], एवं[४७] च श्रीमंत्रो[४८] द्वयोत्तर[४९]-वाक्येऽन्तर्भवति[५०][५१] ॥

अर्थ-(श्रीमंत्रे) मूलमंत्रमें (उपेयप्राधान्येन) उपेयप्राधान्यकरके (उक्तः) कहा हुआ (अर्थः) अर्थ (अत्र) इस द्वयमंत्रमें (उत्तरवाक्येन) उत्तर वाक्य "श्रीमते नारायणाय नमः" इसके द्वारा (उच्यते) कहा जाता है। (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (अकारे) मूलमंत्रमें स्थित प्रणवकी प्रथम मात्रा अकारमें (स्वरूपानुसंबन्धित्वव्यङ्ग्यम्) स्वरूपके अनुसंबन्धित्व करकेव्यङ्ग्य (लक्ष्मीसंबन्धम्) लक्ष्मी देवीके संबन्धको (च) और (नारायणपदेन) मूलमंत्रमें स्थित नारायण शब्दसे (लक्ष्म्याः) लक्ष्मीजीका (अपि) भी (नारपदान्तर्भावात्) नारशब्दमें अन्तर्भाव होनेसे (उच्यमानम्) कहे हुए (लक्ष्मीसंबन्धम्) लक्ष्मीजीके संबन्धको (उत्तरवाक्ये) उत्तरवाक्यमें स्थित (श्रीमते) "श्रीमते" (इति) इस (पदेन) पदसे (प्रतिपादयति) द्वयमंत्र प्रतिपादन करता है। तथा (अकारोक्तसर्वरक्षकत्वम्) मूलमंत्रमें स्थित प्रणवकी प्रथम मात्रा अकारसे कहा हुआ सबके रक्षकत्वको (च) और (तद्विवरणनारायणपदार्थम्) उसके विवरणरूप नारायण शब्दके अर्थको (उत्तरवाक्यस्थनारायणपदम्) द्वयमंत्रके उत्तरवाक्यके दूसरेपदमें स्थित नारायण शब्द (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। तथा (अकारोक्तम्) मूलमंत्रमें स्थित प्रणवके प्रथम अकारसे कहा हुआ (तादर्थ्यम्) तादर्थ्यको और (मकारोक्तम्) मूलमंत्रमें स्थित प्रणवकी तृतीय मात्रा मकारसे कहे हुए (जीवस्वरूपम्) जीवके स्वरूपको तथा (अवधारणोक्तम्) मूलमंत्र में स्थित प्रणवकी द्वितीय मात्रा उकारसे कही हुई (अन्यशेषत्वनिवृत्तिम्) अन्यशेषत्वकी निवृत्तिको तथा (तद्विवरणनमःशब्दोक्तम्) उसके विवरणरूप मूलमंत्रके दूसरे पदमें स्थित नमः शब्दसे कही हुई (अत्यन्तपारतन्त्र्यम्) अत्यन्त परतंत्रताको (च) और (तत्प्रवृत्तिप्रार्थनापरचतुर्थ्यर्थम्) अत्यन्त परतंत्रताकी प्रवृत्तिके प्रार्थनापरक मूलमंत्रके तीसरे पदमें स्थित चतुर्थी विभक्तिके अर्थको (उत्तरवाक्यस्थचतुर्थी) द्वयमंत्रके उत्तर वाक्यके दूसरे पदमें स्थित चतुर्थी विभक्ति (वदति) कहती है। और (श्रीमंत्रे) मूलमंत्रमें (नमःशब्दार्थाहंकारममकारनिवृत्तिम्) स्थित नमः शब्दका अर्थ अहंकार तथा ममकारकी निवृत्तिको (उत्तरवाक्यस्थनमः) द्वयमंत्रके उत्तर वाक्यमें स्थित नमः यह (शब्दः) शब्द (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। (च) और (एवम्) इस प्रकारके (श्रीमंत्रः) समस्त मूलमंत्र (द्वयोत्तरवाक्ये) द्वयमंत्रके उत्तर वाक्यमें (अन्तर्भवति) अन्तर्भूत होता है ॥ शमिति ॥

मू०–चरमश्लोकः पूर्ववाक्येऽन्तर्भवति। तथाहि मामिति पदेऽहमिति पदे च स्वरूपानुबन्धित्वाभिव्यङ्ग्यो लक्ष्मीसंबन्धः द्वयपूर्ववाक्ये श्रीमत्पदेनोच्यते मां पदोक्त-सौलभ्यमहं पदोक्तस्वामित्वं च नारायणपदेनोच्यते, मां पदोक्त सेनाधूलिधूसरितं समभ्रीरमवष्टब्धकशादण्डं धृतप्रग्रहं प्रसारितचरणं विग्रहं चरणाविति पद प्रतिपादयति, एकशब्दोक्तमवधारणार्थं शरणशब्दार्थं मोक्षयिष्यामि माशुच इति पदद्वयार्थं विरोधिनिवृत्तिं च शरणशब्दः प्रतिपादयति, व्रज पदार्थं सर्वधर्मान्परित्यज्येति वाक्यार्थं त्वा पदोक्तमधिकारिणं च प्रपद्ये–इति क्रियापद प्रतिपादयति, यद्यपि धर्मत्यागस्तत्र नोक्तस्तथापि उपायस्वीकारस्योपायान्तरनिवृत्तिपूर्वकत्वात्स्वीकारप्रतिपाद-कमेव तत्प्रतिपादकमर्थात् एवं च चरमश्लोकस्य द्वयपूर्ववाक्यान्तर्भावसिद्धः, एतावता श्रीमंत्रचरम-श्लोकाभ्यां प्रतिपाद्यस्यार्थस्य द्वयवाक्यद्वयेऽन्तर्भाव-प्रकार उक्तः ॥

अर्थ-(चरम श्लोकः) **"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो०, ६६॥**

यह चरमश्लोक (पूर्ववाक्ये) द्वय मन्त्रके "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये" इस पूर्व वाक्यमें (अन्तर्भवति) अन्तर्भाव होता है। (तथाहि) उसी अन्तर्भावके प्रकारको दिखाते हैं कि (माम्) चरमश्लोक के "माम्" (इति) इस (पदे) तीसरे पदमें (च) और (अहम्) "अहम्" (इति) इस (पदे) सातवें पदमें (स्वरूपानुबन्धित्वाभिव्यङ्ग्यः) स्वरूपके अनुबन्धित्वके अभिव्यङ्ग्य (लक्ष्मीसम्बन्धः) लक्ष्मी देवीजी का सम्बन्ध (द्वयपूर्ववाक्ये) द्वयमंत्रके पूर्ववाक्यके पहले पदमें स्थित (श्रीमत्पदेन) "श्रीमत्" इस शब्दसे (उच्यते) कहा जाता है। तथा चरम श्लोक के (माम्) "माम्" इस

(पदोक्तस्वामित्वम्) सातवें पदसे कहा हुआ स्वामित्वगुण (नारायणपदेन) द्वयमंत्रके पूर्व वाक्यके पहले पदमें स्थित "नारायण" इस शब्दसे (उच्यते) कहा जाता है तथा (माम्) चरम श्लोकके "माम्" इस (पदोक्तम्) तीसरे पदसे कहे हुए (सेनाधूलिधूसरितम्) कुरुक्षेत्रमें एकत्रित हुई सेनाकी धूलिसे धूसरित (समश्रीरम्) श्रीरके साथ (अवष्टब्धकशादण्डम्) कोड़ेके दण्डको उठाये हुए तथा (धृतप्रग्रहम्) लगामको पकड़े हुए और (प्रसारितचरणम्) अपने चरण फैलाये हुए (विग्रहम्) श्यामसुन्दर मङ्गलमय विग्रहको (चरणौ) द्वयमन्त्रके पूर्ववाक्यके पहले पदमें स्थित "चरणौ" (इति) यह (पदम्) प्राप्त करने योग्य शब्द (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। (एकशब्दोक्तम्) चरमश्लोक के चौथे पदमें स्थित एक शब्दसे कहे हुए (अवधारणार्थम्) अवधारण अर्थको तथा (शरणशब्दार्थम्) चरमश्लोक के पाँचवे पदमें स्थित शरण शब्दके अर्थको (च) और (मोक्षयिष्यामि) चरमश्लोक का दसवाँ "मोक्षयिष्यामि" यह पद तथा (माशुचः) चरमश्लोकका ग्यारहवाँ "माशुचः" यह पद (इति) इन (पदद्वयार्थम्) दोनोंपदोंके अर्थको और (विरोधिनिवृत्तिम्) विरोधीकी निवृत्तिको (शरणशब्दः) द्वयमंत्रके पूर्ववाक्यके दूसरे पदमें स्थित शरणशब्द (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। तथा (व्रज) चरमश्लोकके छठवें "व्रज" इस (पदार्थम्) पदके अर्थको और (सर्वधर्मान्) चरमश्लोकके पहले "सर्वधर्मान्' इस पदके अर्थको तथा (परित्यज्य) चरमश्लोक के दूसरे पदमें स्थित "परित्यज्य" (इति) इस (वाक्यार्थम्) वाक्यके अर्थको (च) और (त्वा) चरमश्लोक के आठवें "त्वा" इस (पदोक्तम्) पदसे कहे हुए (अधिकारिणम्) अधिकारीको (प्रपद्ये) द्वयमन्त्रके पूर्ववाक्यके तीसरे पदमें स्थित "प्रपद्ये" (इति) यह (क्रियापदम्) क्रियापद (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है (यद्यपि) यद्यपि (धर्मत्यागः) धर्मका परित्याग (तत्र) उस चरमश्लोक में (न) नहीं (उक्तः) कहा गया है (तथापि) तौ भी (उपायस्वीकारस्य) उपायस्वीकारके (उपायान्तरनिवृत्तिपूर्वकत्वात्) उपायान्तर की निवृत्ति पूर्वक होनेसे (स्वीकारप्रतिपादकम्) स्वीकारका प्रतिपादक (एव) निश्चय करके (तत्प्रतिपादकम्) उसका प्रतिपादन करनेवाला (अर्थात्) अर्थ होनेसे (च) और (एवम्) इस पूर्वोक्त प्रकार करके (चरमश्लोकस्य) चरमश्लोक का अर्थ (द्वयपूर्ववाक्यान्तर्भावसिद्धः) द्वय मन्त्रके पूर्ववाक्यके भीतर समस्त भाव सिद्ध होता है। (एतावता) इतना ग्रन्थ करके (श्रीमन्त्रचरमश्लोकाभ्याम्) मूलमन्त्र और चरमश्लोक के द्वारा (प्रतिपाद्यस्य) प्रतिपादन करनेयोग्य (अर्थस्य) अर्थके (द्वयवाक्येद्वये) द्वयमन्त्रके दोनों वाक्योंमें (अन्तर्भावप्रकारः) अन्तर्भाव होनेका प्रकार (उक्तः) कहा गया है। और मूलमन्त्रका अर्थ द्वयमन्त्रके उत्तर वाक्यमें अन्तर्भाव होनेका प्रकार कहा गया है ।। कमिति ।।

मू०–चरमश्लोकश्रीमंत्रयोर्द्वयपूर्वोत्तरवाक्यविवरण–
त्वप्रकारोऽभिधीयते, मामहं पदोक्तश्रीसबन्धं द्वयपूर्व–
वाक्यस्थश्रीमत्पदं प्रतिपादयति, मामहं पदोक्तसौशील्य–
सार्वज्ञादिकं नारायणपदं प्रतिपादयति, मां पदोक्तं विग्रह –
मेकपदेनार्थादुक्तमवधारणार्थं चरणाविति पदं प्रति–
पादयति, त्वा पदोक्तमधिकारिणं व्रज पदोक्तं स्वीकारं
च प्रपद्ये पदं प्रतिपादयति, चरमश्लोकस्थशरणशब्दार्थं
द्वयस्थशरणपदं प्रतिपादयति, अकारेणार्थादुक्तं स्वरूपानु–
बन्धि लक्ष्मीसम्बन्धं नारायणपदे शाब्दं लक्ष्मीसंबन्धं
चोत्तरवाक्यस्थश्रीमते–इति पदं प्रतिपादयति, अकारार्थ–
नारायणपदार्थं द्वयस्थनारायणपदमभिधत्ते, अकारोक्त–
चतुर्थ्यर्थमुत्तरचतुर्थ्यर्थं प्रणवस्थमकारार्थं चोत्तरवाक्य–
चतुर्थीं प्रतिपादयति, प्रणवमध्यमाक्षरार्थं नमः शब्दार्थं
च नमः शब्दः प्रतिपादयति, मत्स्यस्यसर्वोऽप्याकारो
यथा जलमयो भवति, तथा श्रीमतः सर्वोऽप्याकारः
श्रीमयो भवतीति नाथमुनिः ॥ १०७ ॥

अर्थ-(चरमश्लोकश्रीमंत्रयोः) चरमश्लोक और मूलमंत्रके (द्वयपूर्वोत्तर वाक्यविवरणत्वप्रकारः) द्वयमंत्रके पूर्व वाक्यसे तथा उत्तर वाक्य से क्रमसे अर्थात् चरमश्लोकके द्वयमंत्रके पूर्वखण्डसे और मूलमंत्रके द्वयमंत्रके उत्तरखण्डसे विवरणके प्रकारको (अभिधीयते) कहते हैं कि (माम्) चरमश्लोक का "माम्" यह तीसरा और (अहम्) "अहम्" यह सातवाँ (पदोक्तश्रीसंबन्धम्) पदसे कहे हुए श्रीदेवीजीके संबन्धको (द्वयपूर्ववाक्यस्थश्रीमत्पदम्) द्वयमंत्रके पूर्ववाक्यके पहले पदमें स्थित प्राप्त करने योग्य "श्रीमत्" यह शब्द (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। तथा (माम्) चरमश्लोक के "माम्" इस तीसरे (पदोक्तम्) पदसे कहे हुए (विग्रहम्) भगवान्के श्याम सुन्दर मंगलमय विग्रहको (च) और (एकपदेन) चरमश्लोक के "एकम्" इस

चौथे पदके (अर्थात्) अर्थसे (उक्तम्) कहे हुए (अवधारणार्थम्) अवधारण अर्थको (चरणौ) द्वयमंत्रके पूर्ववाक्यके पहले पदमें स्थित "चरणौ" (इति) यह (पदम्) प्राप्त करनेयोग्य शब्द (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। तथा (त्वा) चरमश्लोक के "त्वा" इस आठवें (पदोक्तम्) पदसे कहे हुए (अधिकारिणम्) अधिकारीको (च) और (व्रज) चरमश्लोक के "व्रज" इस छठवें (पदोक्तम्) पदसे कहे हुए (स्वीकारम्) स्वीकारको (प्रपद्ये) द्वयमंत्रके पूर्ववाक्यका तीसरा "प्रपद्ये" यह (पदम्) पद (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। और (चरमश्लोकस्थशरणशब्दार्थम्) चरमश्लोक के पाँचवे पदमें स्थित दूसरा "शरणम्" यह पद (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। तथा (अकारेण) मूलमंत्रके पहले पदकी प्रथम मात्रा अकारके (अर्थात्) अर्थसे (उक्तम्) कहे हुए (स्वरूपानुबन्धि) स्वरूपके अनुबन्धी (लक्ष्मीसंबन्धम्) लक्ष्मीजीके संबन्ध को (च) और (नारायणपदे) मूलमंत्रके तीसरे पदमें स्थित नारायण शब्दमें (शब्दम्) शब्द (लक्ष्मीसंबन्धम्) लक्ष्मीजीके संबन्धको (उत्तरवाक्यस्थश्रीमते) द्वयमंत्रके उत्तर वाक्यके आदिमें स्थित "श्रीमते" (इति) यह (पदम्) पहला पद (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। तथा (अकारार्थनारायणपदार्थम्) मूलमंत्रके पहले पदकी प्रथम मात्रा अकारका अर्थ जो मूलमंत्रके तीसरे पदमें स्थित नारायण शब्द का है उस नारायण शब्द के अर्थ को (द्वयस्थनारायणपदम्) द्वय मंत्र के उत्तर वाक्य के दूसरे पदमें स्थित नारायण शब्द (अभिधत्ते) कहता है। और (अकारोत्तरचतुर्थ्यर्थम्) मूलमंत्रके पहले पदमें स्थित अकारके ऊपर आयी हुई तादर्थ्य चतुर्थी विभक्ति के अर्थको तथा (उत्तरचतुर्थ्यर्थम्) मूलमंत्रके तीसरे पदमें स्थित नारायण शब्द के ऊपर आयी हुई चतुर्थी विभक्ति के अर्थ को (च) और (प्रणवस्थमकारार्थम्) मूलमंत्रके पहले पदमें स्थित मकारके अर्थको (उत्तरवाक्यचतुर्थी) द्वयमंत्रके उत्तर वाक्यके दूसरे पदमें स्थित चतुर्थी विभक्ति (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करती है। तथा (प्रणवमध्यमाक्षरार्थम्) मूलमंत्रके पहले पदमें स्थित प्रणवके बीच वाले उकार अक्षरके अर्थको (च) और (नमः शब्दार्थम्) मूलमंत्रके दूसरे पदमें स्थित नमः शब्दके अर्थको (नमः) द्वयमंत्रके उत्तर वाक्यके तीसरे पदमें स्थित "नमः" यह (शब्दः) शब्द (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करता है। (मत्स्यस्य) मछलीके (सर्वः) सब (अपि) भी (आकारः) आकार (यथा) जैसे (जलमयः) जलमय (भवति) होता है। (तथा) वैसेही (श्रीमतः) श्रीवालेपुरुषके (सर्वः) सब (अपि) भी (आकारः) आकार (श्रीमयः) श्रीमय (भवति) होता है (इति) ऐसा (नाथमुनिः) नाथमुनि स्वामीजी ने कहा है। इस एकसौ सातवीं वार्तामें पाँचसौ बीस पद हैं। इति नाथमुन्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१०७॥

अब पुण्डरीकाक्षस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

मू०–आचार्यः प्रमाताऽर्चावतारः प्रमेयं द्वयं प्रमाणमिति श्रीपुण्डरीकाक्षः ॥ १०८ ॥

॥ श्रीपुण्डरीकाक्षस्तुतिः ॥

अर्थ– नमः पङ्कजनेत्राय नाथश्रीपादपङ्कजे ।
न्यस्तसर्वभरायास्मत्कुलनाथाय धीमते ॥ १०२ ॥

(आचार्यः) आचार्य (प्रमाता) प्रमाता हैं। और (अर्चावतारः) अर्चावतार भगवान् (प्रमेयम्) प्रमेय हैं। तथा (द्वयम्) द्वयमन्त्र (प्रमाणम्) प्रमाण है। (इति) ऐसा (श्रीपुण्डरीकाक्षः) श्रीपुण्डरीकाक्ष स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ आठवीं वार्तामें आठपद हैं। इति श्रीपुण्डरीकाक्षोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१०८॥

अब श्रीराममिश्र स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथराममिश्रोक्ता वार्ता ॥

मू०–संसारविषदंष्टस्य रसायनमिति श्रीराममिश्रः ॥ १०९ ॥

॥ राममिश्रस्तुतिः॥

अर्थ– अयत्नतो यामुनमात्मदासमलर्कपत्रार्पणनिष्क्रयेण।
यः क्रीतवानास्थितयौवराज्यं नमामि तं राममेयसत्त्वम्॥१०३॥

(संसारविषदंष्टस्य) संसाररूप सर्पके विषसे डँसे हुए चेतनका (रसायनम्) रसायन द्वयमंत्र है (इति) ऐसा (श्रीराममिश्रः) श्रीराममिश्र स्वामीजी ने कहा है। इस एकसौ नौवीं वार्ता में चार पद हैं। इति राममिश्रोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ १०९ ॥

अब यामुनाचार्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथयामुनाचार्योक्ता वार्ता॥

मू०–निर्धनस्य महानिधिवदितियामुनाचार्यः ॥ ११० ॥

॥ यामुनार्यस्तुतिः॥

अर्थ- स्तोत्ररत्नं चतुःश्लोकीं वेदप्रामाण्यमेव च ।
सिद्धित्रयं च वेदान्तिञ् श्रीगीतासंग्रहं महान्
यामुनो लोकरक्षार्थमकारोद् ग्रन्थपञ्चकम् ॥१०४॥

(निर्धनस्य) दरिद्र पुरुषके (महानिधिवत्) बड़ेभारी खजानेके समान द्वयमन्त्र है (इति) ऐसा (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ दसवीं वार्तामें चारपद हैं। इति यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ११०॥

अब श्रीमालाकार स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथमालाकारोक्ता वार्ता॥

मू०-क्षुधार्तस्यामृतपानवदिति श्रीमालाकारः ॥ १११ ॥

अर्थ-(क्षुधा) भूखसे (आर्तस्य) पीड़ित पुरुषके (अमृतपानवत्) अमृत पानके समान द्वयमन्त्र है (इति) ऐसा (श्रीमालाकारः) श्रीमालाकार स्वामीजी ने कहा है। इस एकसौ ग्यारहवीं वार्तामें पाँच पद हैं। इति मालाकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१११॥

अब श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ गोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता॥

मू०-स्तनंधयप्रजायाः स्तन्यपानवदिति श्रीगोष्ठीपूर्णः ॥ ११२ ॥

अर्थ-(स्तनंधयप्रजायाः) स्तनको पीनेवाली सन्ततिके (स्तन्यपानवत्) माँ के स्तनके दूध पीनेके समान द्वयमन्त्र है (इति) ऐसा (श्रीगोष्ठीपूर्णः) श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीजी ने कहा है। इस एकसौ बारहवीं वार्तामें चार पद हैं। इति श्रीगोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११२॥

अब महापूर्ण स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ महापूर्णोक्ता वार्ता॥

मू०-पतिव्रताया मंगलसूत्रवदिति महापूर्णः ॥ ११३ ॥

अर्थ–(पतिव्रतायाः) पतिव्रतास्त्रीके (मङ्गलसूत्रवत्) पचीस तागेके बने हुए मंगलसूत्र तागपाटके समान पचीस अक्षरका द्वयमन्त्र है (इति) ऐसा (महापूर्णः) महापूर्ण स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ तेरहवीं वार्तामें चार पद हैं। इति महापूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११३॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता॥

मू०–राजकुलस्य मुकुटमालेव प्रपन्नस्य द्वयोच्चारणमिति श्रीभाष्यकारः॥११४॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ– श्रुतिसम्मतसुप्रमाणतत्त्वं कृपयालोच्य सुधासमानबुद्ध्या।
अकृथाविततैकभाष्यरत्नं जय रामानुजरङ्गधाम्नि नित्यम्॥१०५॥

(राजकुलस्य) राजाके कुलमें उत्पन्न पुरुषके (मुकुटमालेव) मुकुटकी मालाके समान (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जनका (द्वयोच्चारणम्) द्वयमन्त्रका उच्चारण है (इति) ऐसा (श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ चौदहवीं वार्तामें छः पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११४॥

अब गोविन्दाचार्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्योक्ता वार्ता॥

मू०–संसारेऽयमुपायविशेषो निगलं भङ्क्त्वा मस्तके किरीटधारणवदिति गोविन्दाचार्यः॥११५॥

अर्थ–(संसारे) संसारमें (अयम्) यह द्वयमन्त्र (उपायविशेषः) उपाय विशेष (निगलम्) बन्धनको (भङ्क्त्वा) आमर्दन करके (मस्तके) मस्तकपर (किरीटधारणवत्) किरीट धारण करनेके समान है (इति) ऐसा (गोविन्दाचार्यः) गोविन्दाचार्य स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ पन्द्रहवीं वार्तामें नौ पद हैं। इति गोविन्दाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११५॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–राजकुमारस्य कर्पूरनिकरवत्प्रपन्नस्य प्रपत्तिर्यदा नास्ति तदा जिह्वा शुष्यतीति कलिवैरिदासः ॥ ११६ ॥

अर्थ-(राजकुमारस्य) राजकुमारके (कर्पूरनिकरवत्) कर्पूरके समूहके समान (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जनकी (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (यदा) जब (न) नहीं (अस्ति) होती है। (तदा) तब (जिह्वा) जीभ (शुष्यति) सूख जाती है (इति) ऐसा (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ सोलहवीं वार्तामें तेरह पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११६॥

अब कुरुकाधिनाथ स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कुरुकाधिनाथोक्ता वार्ता ॥

मू०–फलविशेषं दत्वा यथा राज्यं प्राप्नुवन्ति तथेति कुरुकाधिनाथः ॥ ११७ ॥

अर्थ-(फलविशेषम्) फलविशेषको (दत्वा) देकर (यथा) जैसे (राज्यम्) राज्यको (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त करते हैं (तथा) वैसे ही है। (इति) ऐसा (कुरुकाधिनाथः) कुरुकाधिनाथ स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ सत्तरहवीं वार्तामें आठ पद हैं। इति कुरुकाधिनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११७॥

अब दाशरथिस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–गुरुपरम्परां विना प्रपत्तिः साधनान्तरसदृशेति दाशरथिः ॥ ११८ ॥

अर्थ-(गुरुपरम्पराम्) गुरुपरम्पराके (विना) बिना (प्रपत्तिः) भगवान्की प्रपत्ति (साधनान्तरसदृशा) कर्म ज्ञान आदि अन्य उपायोंके समान होती है (इति) ऐसा (दाशरथिः) दाशरथीस्वामीजी ने कहा है। इस एकसौ अठारहवीं वार्तामें छः पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११८॥

अब धनुर्दासजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ धनुर्दासोक्ता वार्ता॥

मू०-अन्धस्य हस्ते चिन्तामणिप्राप्तिवदिति धनुर्दासः ॥११९॥

अर्थ-(अन्धस्य) अन्धेपुरुषके (हस्ते) हाथमें (चिन्तामणिप्राप्तिवत्) चिन्तामणि प्राप्तिके समान द्वयमंत्र है (इति) ऐसा (धनुर्दासः) धनुर्दासजी ने कहा है। इस एकसौ उन्नीसवीं वार्तामें पाँच पद हैं। इति धनुर्दासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥११९॥

अब श्रीकृष्णपादस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता॥

मू०-प्रथमपदे पाणिग्रहणं मध्यमपदे सहोपवेशः तृतीयपदे चतुर्थीशय्या क्षेत्रकृत्यसीमां व्यवस्थापयति प्रथमपदं विरोधितृणादीनुन्मूलयति मध्यमपदं फलेन स्वामिभोगं वदति तृतीयपदं श्रीमंत्रद्वयचरमश्लोकानां तात्पर्यार्थवाक्यार्थप्रधानार्थानुसन्धानार्था उच्यन्ते तात्पर्यार्थः सकलवेदशास्त्ररुचिपरिगृहीतो वाक्यार्थः प्राप्यस्वरूपनिरूपणं प्रधानार्थ आत्मास्वरूपनिरूपणम् अनुसन्धानार्थसंबन्धानुसन्धानं द्वयस्य तात्पर्यार्थ आचार्यरुचिपरिगृहीतो वाक्यार्थ उपायस्वरूपनिरूपणं प्रधानार्थो मिथुनकैंकर्य्यम् अनुसन्धानार्थः स्वदोषानुसन्धानं चरमश्लोकस्य तात्पर्यार्थः शरण्यरुचिपरिगृहीतः वाक्यार्थः प्रापकस्वरूपनिरूपणं प्रधानार्थ ईश्वरस्वरूपनिरूपणम् अनुसन्धानार्थः सौलभ्यम् ॥१२०॥

॥ श्रीकृष्णपादस्तुतिः ॥

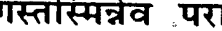
अर्थ– श्रीकृष्णपादपादाब्जे नमामि शिरसा सदा।
यत्प्रसादप्रभावेण सर्वसिद्धिरभून्मम॥१०६॥

(प्रथमपदे) मूल मंत्रके पहले पद प्रणवमें (पाणिग्रहणम्) ब्रह्म और जीवका पाणिग्रहण विवाह कहा जाता है। तथा (मध्यमपदे) मूलमंत्रके दूसरे "नमः" इस पदमें (सह) ब्रह्म और जीवका साथ (उपवेशः) उपवेश कहा जाता है। और (तृतीयपदे) मूलमंत्रके तीसरे "नारायणाय" इस पदमें (चतुर्थीशय्या) ब्रह्म और जीवके चतुर्थी कर्मके रोज एक पलंग पर मिलकर शयन करना कहा जाता है। और (प्रथमपदम्) मूलमंत्रका पहला पद (क्षेत्रकृत्यसीमाम्) इस शरीररूप क्षेत्रके कृत्यकी सीमाको (व्यवस्थापयति) व्यवस्थापित करता है। व्यवस्थापयति यहाँ पर॥ **अर्तिह्वीव्लीरीन्क्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ॥ व्या० अ० ७, पा० ३, सू० ३६॥** इस सूत्रसे पुक् हुआ है। और (मध्यमपदम्) मूलमंत्रके मध्यम "नमः" पद (विरोधितृणादीन्) शरीररूप क्षेत्रमें उत्पन्न हुए विरोधिरूप तृणादिकोंको (उन्मूलयति) उन्मूलन करता है। तथा (तृतीयपदम्) मूलमंत्रका तीसरा "नारायणाय" यह पद (फलेन) फलकरके (स्वामिभोगम्) श्रीमन्नारायण भगवान्के भोगको (वदति) कहता है। अब (श्रीमंत्रद्वय चरमश्लोकानाम्) मूलमंत्र तथा द्वयमंत्र और चरम श्लोक के (तात्पर्यार्थवाक्यार्थप्रधानार्थानुसन्धानार्थाः) तात्पर्यार्थ तथा वाक्यार्थ और प्रधानार्थ तथा अनुसन्धानार्थ (उच्यन्ते) कहे जाते हैं कि। उनमें मूलमंत्रका (तात्पर्यार्थः) तात्पर्यार्थ (सकलवेदशास्त्ररुचिपरिगृहीतः) समस्त ऋग् यजुः साम अथर्व और ऐतरेय शतपथ ताण्ड्य गोपथ रूपमंत्र ब्राह्मणात्मक वेद और समस्त शासन करनेवाले स्मृति इतिहास पुराण नारद पाञ्चरात्र आदि ग्रंथोंकी रुचिसे परिगृहीत है और (वाक्यार्थः) मूलमंत्रका वाक्यार्थ (प्राप्यस्वरूपनिरूपणम्) प्राप्त करने योग्य ब्रह्मके स्वरूपका निरूपण करना है। तथा (प्रधानार्थः) मूलमंत्रका प्रधानार्थ (आत्मस्वरूपनिरूपणम्) आत्म स्वरूपका निरूपण करना है। और (अनुसन्धानार्थः) मूलमंत्रका अनुसन्धानार्थ (संबन्धानुसन्धानम्) संबन्धका अनुसन्धान करना है। और (द्वयस्य) द्वयमंत्रका (तात्पर्यार्थः) तात्पर्यार्थ (आचार्यरुचिपरिगृहीतः) आचार्योंकी रुचिसे परिगृहीत है। (वाक्यार्थः) द्वयमंत्रका वाक्यार्थ (उपायस्वरूपनिरूपणम्) उपायके स्वरूपको निरूपण करना है। और (प्रधानार्थः) द्वयमंत्रका प्रधानार्थ (मिथुनकैंकर्यम्) लक्ष्मी तथा नारायण इन दोनोंका कैंकर्य करना है। तथा (अनुसन्धानार्थः) अनुसन्धानार्थ (स्वदोषानुसन्धानम्) अपने दोषको अनुसन्धान करना है। और (चरमश्लोकस्य) चरमश्लोकका (तात्पर्यार्थः) तात्पर्यार्थ (शरण्यरुचिपरिगृहीतः) शरण्य रुचि परिगृहीत है। तथा (वाक्यार्थः) चरम श्लोक का वाक्यार्थ

(प्रापकस्वरूपनिरूपणम्) प्रापक के स्वरूपको निरूपण करना है। और (प्रधानार्थः) चरमश्लोक का प्रधानार्थ (ईश्वरस्वरूपनिरूपणम्) परमेश्वरके स्वरूपको निरूपण करना है। तथा (अनुसन्धानार्थः) अनुसन्धानार्थ (सौलभ्यम्) सौलभ्य गुण है। अब यहांपर यह शंका होती है कि वेद किसको कहते हैं। इसका उत्तर यह है कि।। **मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।।** मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंका नाम वेद है, ऐसा महर्षिकात्यायन और आपस्तम्भ मानते हैं। और महर्षि बोधायन ने कहा है कि- ।। **मंत्रब्राह्मणमित्याहुः।।** मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंका नाम वेद है।। और महर्षिजैमिनिने भी कहा है कि ।। **ताच्छोदकेषु मंत्राख्या।। मीमांसा० अ० २, पा० १, सू० ३२।। शेषे ब्राह्मणशब्दः।। मी० अ० २, पा० १, सू० ३३।।** प्रेरणालक्षणश्रुतिका ही नाम मंत्र है।।३२।। इस प्रकारके पूर्वोक्त शंकाके समाधान होने पर तो दूसरी यह शंका होती है कि वेदोंकी कितनी शाखायें हैं। इसका समाधान महाभाष्यमें लिखा हुआ है कि-

सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारोवेदाः साङ्गाः सरहस्याः बहुधाभिन्नाः एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधाबह्वृच्यः नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणंवैद्यकमित्येतावान्छब्दस्यप्रयोगविषय इति।। महा भा० अ० १, पा० १, आह्नि० १।।

सात द्वीपवाली पृथ्वी तीनों लोक शिक्षा कल्प निरुक्त आदि अंगोके सहित चारोवेद उपनिषदादि रहस्योंके साथ बहुत प्रकारके हैं। एक सौ एक शाखा यजुर्वेदकी हजार शाखा सामवेदकी इक्कीस शाखा ऋग्वेदकी नवशाखा अथर्ववेदकी वाकोवाक्यतर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक ये शब्दके विषय हैं।।१।। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक हजार एकसौ इक्कतीस ११३३१ शाखायें हैं ।। शमिति ।।



मू०-आश्रयणमाश्रयिता आश्रयणीयवेषोऽपृथक्स्थितिद्योतकनित्ययोगस्तस्मिन्नेव परातिशयः प्रभाप्रभावतोरिव शेषशेषिभावः सदापूर्तिः-एवं लक्ष्मीविशिष्टस्य प्रपत्तव्यता चिदचित्स्वरूपमुभयोः परं प्रति शरीरद्वारा शेषत्वं देहवद् देहिनां नानात्वं देहिनां ज्ञानैकाकारतया साम्यं स्वभावैक्यं स्वरूपैक्याभावः पञ्चस्ववस्थासु संनिकृष्टावस्थावस्थितविषयप्रपत्तिः आत्मनोऽप्राप्तिः गुणगुणि-

भेदः कल्याणगुणैकतानता हेयगुणनिषेधः षड्विंशकत्वं पुरुषकारनैरपेक्ष्यनिदानानि वात्सल्यादिगुणाः नित्यत्वं तदप्राकृतद्रव्याश्रयत्वं परपूर्तिः स्वस्य सन्निधिः सौन्दर्यं सर्वस-मानाधिकरणत्वं सौलभ्यं स्वस्य प्रपत्तव्यता अनेनास्मै अस्मात्-अस्य-अस्मिन्निति शब्दार्थः प्राप्यं गत्यर्थद्वारा बुद्ध्यर्थः मानसप्रपत्ते र्मुख्यता सप्रकारकशरणागतेरुपा-यता प्रकारतया लक्ष्मीसहचरस्य वस्तुन उपायत्वं परविशे-षणां प्राप्यत्वं विशेष्यप्रतिपत्तितो विशेषणप्रतिपत्तेः प्रीति-जनकत्वं सप्रकारनारायणस्यैव-अहमर्थभूतोऽहं सर्व देशसर्वकालसर्वावस्थोचित सर्वविधकैंकर्य्यं कुर्यामिति प्रत्यगात्मनः फलं प्रपत्तावुपायबुद्धेरुपकारासिद्धत्वं परस्यैव परमोपायत्वं प्रपत्तेरनुपायत्वम् अस्या उपाय उपायत्वे परापेक्षा तस्यैव निरपेक्षोपायत्वमत एव उपायानवद्यता-एकस्यैवो-पायोपेयभावसंभवः दयाक्षान्त्यादिगुणविशिष्टस्य सन्निहि-तस्योपायत्वं देशविशेषनिलयस्योपेयत्वं विभूतिद्वयस्यापि तदीयत्वे-एकविभूतेरपराविभूतिप्रतिगमनस्य कथं मोक्षत्व मित्याशंक्य तस्या महानसस्थानस्थितभर्तृभार्यासंयोगन्याय-सिद्धत्वं तस्यैवप्रापकत्वे उपायविधूननद्वारा तत्प्राप्तिः कथ-मित्याशंक्य यथा महानसे भोजनावसरे प्राग्वेषस्यैव भोग्यता भोग्यस्थाने भोगावसरे संवीतवस्त्रविधूननद्वारा-भोगस्तथेति-अयमर्थः रत्नस्वीकारसमये मंजूषिकाया गृहीत्वा मंजूषिकान्तरे स्थापनीयमिति ॥

अर्थ-(आश्रयणम्) आश्रयण तथा (आश्रयिता) आश्रयिता और (आश्रयणीयवेषः) आश्रयण करने योग्य वेष (अपृथक्स्थितिद्योतकनित्ययोगः) पृथक नहीं रहनेवाली स्थितिके द्योतक नित्य मतुप् प्रत्यय का योग और (तस्मिन्) उसीमें (एव) निश्चय करके (परातिशयः) परातिशय है। और (प्रभाप्रभावतोः) प्रभा तथा प्रभावाले के (इव) समान (शेषशेषिभावः) जीव तथा ब्रह्मका शेष शेषी भाव है अर्थात् जीव शेष है और ब्रह्म शेषी है। तथा (सदा) हमेशा (पूर्तिः) पूर्ति है (एवम्) इस प्रकारके (लक्ष्मीविशिष्टस्य) लक्ष्मी विशिष्ट नारायण भगवान्की (प्रपत्तव्यता) प्रपत्तव्यता है। (चिदचित्स्वरूपम्) जीव और मायाका स्वरूप (उभयोः) जीव और माया इन दोनोंके (परम्) परब्रह्मके (प्रति) प्रति (शरीरद्वारा) शरीरके द्वारा (शेषत्वम्) शेषत्व है। (देहवत्) देहके समान (देहिनाम्) जीवात्माओंका (नानात्वम्) अनेकत्व है। (देहिनाम्) जीवात्माओं की (ज्ञानैकाकारतया) ज्ञानैकाकारता से (साम्यम्) ब्रह्मकी समता है। और (स्वभावैक्याम्) ब्रह्म तथा जीवके स्वभावकी एकता है। तथा (स्वरूपैक्याभावः) ब्रह्म और जीवके स्वरूपकी एकताका अभाव है। और (पञ्चसु) पाँच (अवस्थासु) अवस्थाओंमें (सन्निकृष्टवस्था) सन्निकृष्टवस्था (अवस्थितविषयप्रपत्तिः) अवस्थित विषयमें प्रपत्ति है। और (आत्मनः) आत्माकी (अप्राप्तिः) प्रपत्ति विषयकी अप्राप्ति। तथा (गुणगुणिभेदः) वात्सल्यादि गुण और परमेश्वर गुणी इन दोनोंका भेद। और (कल्याणगुणैकतानता) कल्याण गुणोंकी एकतानता। तथा (हेयगुणनिषेधः) त्याग करने योग्य प्राकृत गुणोंका निषेध होता है। और (षड्विंशकत्वम्) छब्बीस तत्त्व अर्थात् पृथ्वी १, जल २, अग्नि ३, वायु ४, आकाश ५, वाणी ६, हाथ ७, पैर ८, लिंग ९, गुदा मार्ग १०, कान ११, आँख १२, नाक १३, जीभ १४, त्वचा १५, शब्द १६, रूप १७, रस १८, गन्ध १९, स्पर्श २०, मन २१, अहंकार २२, महत्तत्व २३, प्रकृति २४, जीव २५, ब्रह्म २६, ये छब्बीस । और (पुरुषकारनैरपेक्ष्यनिदानानि) पुरुषकारके नैरपेक्ष्यका कारण (वात्सल्यादिगुणाः) वात्सल्य सौशील्य सौलभ्य आदिक गुण हैं। (नित्यत्वम्) ईश्वरका नित्यत्व (तदप्राकृतद्रव्याश्रयत्वम्) उस अप्राकृत द्रव्यका आश्रयत्व है। (सौन्दर्यम्) सौन्दर्य (सर्वसमानाधिकरणत्वम्) सबका समानाधिकरणत्व है। और (सौलभ्यम्) सौलभ्य गुण (स्वस्य) परमेश्वरकी (प्रपत्तव्यता) प्रपत्तव्यता है। (अनेन) इसकेद्वारा (अस्मै) इसलिये (अस्मात्) इससे (अस्य) इसका (अस्मिन्) इसमें (इति) यह (शब्दार्थः) अयन शब्दका अर्थ है। (प्राप्यम्) प्राप्य (गत्यर्थद्वारा) गति अर्थके द्वारा (बुद्ध्यर्थः) बुद्ध्यर्थक है। और (मानसप्रपत्तेः) मानस प्रपत्तिकी (मुख्यता) मुख्यता है। तथा (सप्रकारकशरणागतेः) सप्रकारक शरणगतिकी (उपायता) उपायता है। (प्रकारतया) प्रकारता करके (लक्ष्मीसहचरस्य) लक्ष्मीके सहचर (वस्तुनः) वस्तुकी (उपायत्वम्) उपायता है। और (परविशेषणाम्) परके

विशेषणोंका (प्राप्यत्वम्) प्राप्यत्व (विशेष्यप्रतिपत्तितः) विशेष्य नारायणकी प्रतिपत्तिसे और (विशेषणप्रतिपत्तेः) विशेषण लक्ष्मीजी की प्रतिपत्तिसे (प्रीतिजनकत्वम्) प्रीतिकी जनकता है। (सप्रकारकनारायणस्य) लक्ष्मीगुणगुणविशिष्ट नारायण भगवान्का (एव) निश्चय करके (अहम्) मैं (अर्थभूतः) अर्थभूत हूँ। (अहम्) मैं (सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितसर्वविधकैंकर्यम्) सबदेश सबकाल सब अवस्थाके उचित सब प्रकारके कैंकर्यको (कुर्याम्) करूँगा। (इति) ऐसा (प्रत्यगात्मनः) प्रत्यगात्माके (फलम्) फल हैं। (प्रपत्तौ) प्रपत्तिमें (उपायबुद्धेः) उपायबुद्धिसे (उपकारसिद्धत्वम्) उपकारकी सिद्धता है। और (परस्य) परब्रह्मकी (एव) निश्चयकरके (परमोपायत्वम्) परमोपायता है। (प्रपत्तेः) प्रपत्ति की (अनुपायत्वम्) अनुपायता है। (अस्याः) इस प्रपत्तिके (उपायत्वे) उपाय मानने पर (परापेक्षा) परब्रह्म की अपेक्षा होती है। और (तस्य) उस परब्रह्म की (एव) निश्चयकरके (निरपेक्षोपायत्वम्) अपेक्षा रहित उपायता है। (अतः) इस कारणसे (एव) निश्चय करके (उपायानवद्यता) उपायकी अनवद्यता है (एकस्य) एक नारायण भगवान्के (उपायोपेयभावसम्भवः) उपाय तथा उपेयभाव का सम्भव है। (दयाक्षान्त्यादिगुणविशिष्टस्य) दया क्षान्ति आदिक गुणोंसे युक्त (सन्निहितस्य) सन्निहितकी (उपायत्वम्) उपायता है। और (देशविशेषनिलयस्य) देशविशेषनिलयके (उपेयत्वम्) उपेयता है (विभूतिद्वयस्य) लीलाविभूति तथा त्रिपाद्विभूति इन दोनों विभूतियोंके (अपि) भी (तदीयत्वे) तदीय भगवत्सम्बन्धी होनेपर (एकविभूतेः) एक लीला विभूतिसे (अपरविभूतिम्) त्रिपाद्विभूतिके (प्रति) प्रति (गमनस्य) गमनकी (कथम्) कैसे (मोक्षत्वम्) मोक्षता है (इति) इस प्रकार (आशङ्क्य) आशङ्का करके (तस्याः) उसलीला विभूतिके (महानसस्थानस्थितभर्तृभार्यासंयोगन्यायसिद्धत्वम्) रसोईके घरमें स्थित स्त्री पुरुषके संयोगन्यायसे सिद्ध है। और (तस्य) उसीके (एव) निश्चय करके (प्रापकत्वे) प्रापक होनेपर (उपायविधूननद्वारा) उपायके विधूननद्वारा (तत्प्राप्तिः) मोक्षप्राप्ति (कथम्) कैसे होती है (इति) इस प्रकार (आशङ्क्य) आशङ्का करके (यथा) जैसे (महानसे) रसोईके घरमें (भोजनावसरे) भोजनके समयमें (प्राग्वेषस्य) पहलेवेष की (एव) निश्चय करके (भेग्यता) भोग्यता है। (भोग्यस्थाने) भोग्यके स्थानमें (भोगावसरे) भोगके अवसर पर (संवीतवस्त्रविधूननद्वारा) यज्ञोपवीत और वस्त्रके विधूननके द्वारा (भोगः) भोग होता है (तथा) वैसे ही (इति) यह मोक्ष है। (अयम्) यह (अर्थः) अर्थ (रत्नस्वीकारसमये) रत्नके स्वीकारके समयमें (मञ्जूषिकायाः) पेटीसे (गृहीत्वा) ग्रहण करके (मञ्जूषिकान्तरे) दूसरी पेटीमें (स्थापनीयम्) स्थापन करने योग्य है (इति) इस प्रकारके कहे हैं। इस वार्तामें "स्वरूपैक्याभाव" ऐसा पद आया है इससे साबित होता है कि जीवोंकी अपेक्षा परमात्मा भिन्न हैं। यहाँ पर मायावादियोंका कथन है कि॥ **तत्त्वमसि॥ छन्दो० प्र० ६, अ० ६,**

खं० १४, श्रु० ३॥ इस श्रुतिसे जीव और ब्रह्मके ऐक्यको प्रतिपादन किया जाता हैं इससे जीव ब्रह्मसे अभिन्न है। सो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि "तत्त्वमसि" इस श्रुतिमें जैसे तत् शब्द निरस्तनिखिलदोषसमस्तकल्याणगुणगणैकतान परमात्मावाचक है। वैसेही त्वं शब्द भी जीवान्तर्यामी परमात्माका ही वाचक है। सो परमात्मा तो एक ही है। सो यह श्रुति जीवब्रह्माभेदको नहीं प्रतिपादन करती है। किन्तु ब्रह्मभेद को प्रतिपादन करती है। अर्थात् जो पर वासुदेव है वही अन्तर्यामी है। इसी बातको श्रुति कहती है ॥ **ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो॥ छां० प्र० ६, अ०, खं० १४, श्रु० ३॥** अर्थात् यह जितना प्रपञ्च है सब ब्रह्मात्मक है। यानी इस समग्र प्रपञ्च की आत्मा अन्तर्यामी ब्रह्म है वह सत्य है। ऐ श्वेतकेतो! वही तुम्हारा अन्तर्यामी है। और बहुतसे प्रमाण हैं जिससे ब्रह्म और जीवोंका पारमार्थिक भेद प्रतिपादन किया जाता है। उनमें कुछ प्रमाणोंको मैं यहाँ पर लिखता हूँ, कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें। ॥ **छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति॥ कठोप० अ० १ वल्ली०३, श्रु० १॥** ब्रह्मवेत्ता लोग एकको छाया और दूसरे को आतप कहते हैं॥१॥ **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया॥ मुण्डको० मुण्ड० ३, खं० १, श्रु० १॥** दो चेतन जीवात्मा और परमात्मा एक साथ मिलकर मित्रतापूर्वक रहते हैं॥१॥ **ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशौ॥ श्वेता० अ० १, श्रु० ९॥** दो चेतन अनादि हैं, एक सर्वज्ञ और ईश है तथा दूसरा अल्पज्ञ और अनीश है॥९॥ **पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा॥ श्वेता० अ० १, श्रु० ६॥** जीवात्मा को और परमात्माको पृथक् मानकर ॥६॥ **उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः॥ भगवद्गी० अ० १५, श्लो० १७॥** उत्तम पुरुष तो जीवसे अन्य है, जिसको परमात्मा कहते हैं॥१७॥ और ब्रह्मसूत्रमें भी ब्रह्मसे अलग जीव बताया गया है॥ **भेदव्यपदेशात्र ॥ वेदा० अ० १, पा० १, सू० १७॥** ब्रह्म और जीवके भेदव्यपदेश होनेसे॥१७॥

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति॥ वेदा० अ० १ पा० १, सू० २०॥ भेदव्यपदेशाच्चान्यः॥ वे० अ० १, पा० १, सू० २१॥

इस जीवमें ब्रह्मका संयोग उपनिषद् शासन करती है ॥१९॥ जीवके भीतर ब्रह्मके धर्म उपदेश होनेसे ॥२०॥ और भेदव्यपदेश होनेसे जीव ब्रह्मसे न्यारा है॥२१॥ **गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्॥ वे० अ० १, पा० २, सू० ११॥** निश्चय करके दोनों जीवात्मा और परमात्मा शरीरकी गुहामें प्रवेश किये हैं क्योंकि दोनोंका दर्शन होता है ॥११॥ और गौतम महर्षि ने कहा है कि॥ **इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानानि (आत्मनोलिङ्गम्)** इति॥ **न्या० अध्या० १, आह्नि० १, सू० १०॥** इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, ये जीवात्माके चिह्न हैं॥१०॥ तथा कणाद महर्षि ने कहा है कि॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकारास्सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्च (आत्मनोलिङ्गानि)॥ वैशे० अ० ३, आह्नि० २, सू० ४॥

प्राणवायु तथा अपानवायु और आँख मूँदना खोलना जीना मनकी गति और इन्द्रियान्तर विकार तथा सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न ये सब जीवात्माके चिह्न हैं।।४।। और कपिल महर्षि ने भी कहा है कि।। **पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः॥ सां० आ० ६, सू० ४५॥** जीव बहुत हैं व्यवस्था होनेसे ।।४५।। **नाद्वैतमात्मनोलिङ्गात्तद्भेदप्रतीतेः॥ सां० अ० ५, सू० ६१॥** अद्वैत मत ठीक नहीं है आत्माके चिह्न होनेसे और प्रत्यक्ष भेद प्रतीत होनेसे।।६१।। **वामदेवादिर्मुक्तोनाद्वैतम्॥ सां० अ० १, सू० १५८॥** वामदेव आदिक मुक्त होगये हैं इससे भी अद्वैत मत ठीक नहीं हैं ।।१५८।। **जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्॥ सां० अ० १, सू० १५०॥** जन्म मरण आदिक व्यवस्था होनेसे पुरुष बहुत सिद्ध होता है।।१५०।। इन पूर्वोक्त श्रुति स्मृति सूत्र आदिकोंसे यह सिद्ध हो गया कि जीव ब्रह्मसे अलग है। केवल एकब्रह्म तत्त्व अनादि माननेसे जन्म मरण सुखी दुःखी धनी दरिद्र बन्धन मोक्ष गुरु शिष्य इत्यादिक व्यवस्था नहीं हो सकती है। इससे अनादि अनन्त भगवदंश अणु कर्ता भोक्ता जीवको मानना परमवैदिक मत है ।। कमिति ।।

मू०–त्रिविधप्रपन्नस्य देहपातसमनन्तरं मोक्षः, अन्येषां विलम्बफलं राजसत्कृताभरणानां स्वकीयत्वेन यथेच्छं धारणं सम्भवतीति–एतदिच्छाप्रवर्तकत्वं तदभावे–ईश्वरत्वहानिः, एतस्मिन्नाकिञ्चन्यस्य तत्कटाक्षहेतुत्वम्, एतत्कृपाया एतस्मिन् विश्वासहेतुत्वं तत्कृपोद्बोधः शुण्डा–मज्जनसमये कर्मानुभवस्य तच्छिक्षात्वं शिक्षानन्तरं पितृ–प्रसादवत् धातुप्रसादात्फलप्राप्तिश्चोक्ता प्रपत्तिवाक्येन–अस्मदाचार्याःश्रीमन्त्रं विशदतयानुसन्दधति द्वयेन –अस्य द्वयमिति नाम भवति, उपायोपेयवाक्यद्वयवत्वात्, अत्र पूर्ववाक्यमुपायपरं तच्चपदत्रयमुत्तरवाक्यं च तथा "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय

५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७
नमः'' तत्र श्रीरिति नाम श्रिञ् सेवायामिति धातोः
६८ ६९ ७० ७१ ७२
श्रीयते श्रयत इति व्युत्पत्तिद्वयसिद्धत्वात्सेवाकर्तृकर्मणी
७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१
वदति, एतदर्थस्य सापेक्षत्वात् कं केनेत्याकाङ्क्षा जायते ते
८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७
च अस्याः स्वरूपानुरूपे सर्वभूतानामीश्वरीत्वात् त्रिविध-
८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३
चेतनैः सेव्यते विष्णुपत्नीत्वात् स्वयं सेवते तस्मात्स्व-
९४ ९५
व्यतिरिक्तसकला त्मनां स्वस्वरूपस्थित्यादयस्तत्कटाक्षाधीना-
९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२
अतः स्वव्यतिरिक्तानां सर्वेषां स्वयं स्वामिनी तस्य परतन्त्रा-
१०३ १०४१०५ १०६ १०७१०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३
एतदेवास्याः स्वरूपमित्युच्यते इदं, च व्युत्पत्तिसिद्धमेव न
११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२०
भवति किन्तु प्रमाणसिद्धमपि एवं व्युत्पत्तिद्वयेनोभय-
१२१
सम्बन्ध उच्यते॥

अर्थ-(त्रिविधप्रपन्नस्य) तीन प्रकारके प्रपन्न जनके (देहपातसमनन्तरम्) शरीर पात होनेके बाद (मोक्षः) मोक्ष होता है। और (अन्येषाम्) प्रपन्नसे अन्यजनोंके (विलम्बफलम्) विलम्बसे फल होता है। (राजसत्कृताभरणानाम्) राजासे सत्कारकिये हुए आभरणोंकी (स्वकीयत्वेन) स्वकीयता करके (यथेच्छम्) अपनी इच्छाके अनुसार (धारणम्) धारण (सम्भवति) अच्छी तरह से होता है (इति) इस प्रकारसे (एतत्) यह (इच्छाप्रवर्तकत्वम्) इच्छाका प्रवर्तक है। (तदभावे) इच्छा प्रवर्तकत्वके अभाव होनेपर (ईश्वरत्वहानिः) ईश्वरत्वकी हानि है। (एतस्मिन्) इस विषयमें (आकिञ्चन्यस्य) आकिञ्चन्यके (तत्कटाक्षहेतुत्वम्) उस कटाक्षका हेतु (एतत्कृपायाः) इस कृपाके (तत्कृपोद्बोधः) उसकी कृपासे उद्बोध होना है। (शुण्डामज्जनसमये) शुण्डके आमज्जन समयम में (कर्मानुभवस्य) कर्मके अनुभवका (तत्) वह (शिक्षात्वम्) शिक्षात्व है। (शिक्षानन्तरम्) शिक्षाके बाद (पितृप्रसादवत्) पिताकी प्रसन्नताके समान (धातुप्रसादात्) धातुके प्रसादसे (फलप्राप्तिः) फलकी प्राप्ति (च) भी (प्रपत्तिवाक्येन) प्रपत्ति मन्त्रके वाक्यसे (उक्ता) कही गयी है। और (अस्मदाचार्याः) हम सबोंके पराङ्कुश मुनिप्रभृति आचार्य (श्रीमन्त्रम्) मूल मन्त्रको (विशदतया) विशदरूपसे (द्वयेन) द्वयमन्त्र करके (अनुसन्दधति) अनुसन्धान करते हैं। (अस्य) इस ''श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते नारायणाय नमः'' मन्त्रका (द्वयम्) द्वयमन्त्र (इति) ऐसा (नाम) नाम (भवति) होता है (उपायोपेयवाक्यद्वयवत्वात्) उपाय और उपेयके कहनेवाले दो वाक्य होनेसे।

(अत्र) इस द्वयमन्त्रमें (पूर्ववाक्यम्) "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये" यह पूर्ववाक्य (उपायपरम्) उपायपरक है (च) और (तत्) वह उपायपरक पूर्वखण्डमें (पदत्रयम्) तीन पद हैं। (च) और (तथा) वैसे ही (उत्तरवाक्यम्) द्वय मन्त्रमें "श्रीमते नारायणाय नमः" यह उत्तर वाक्य उपेय परक है और उस उपेयपरक उत्तरखण्डमें भी तीन पद हैं। (श्रीमन्नारायणचरणौ) पुरुषकार भूत लक्ष्मीजीसे सर्वदायुक्त आश्रयणोचित समस्त गुण सम्पन्न नारायणके चरणारविन्दोंको (शरणम्) उपाय करके (प्रपद्ये) आश्रयण करता हूँ (श्रीमते) लक्ष्मीजीसे सर्वदा संयुक्त होकर रहने वाले (नारायणाय) सर्वशेषी समस्तदिव्य गुणाकर दिव्यमंगल विग्रहयुक्त भगवान् का कैंकर्य मैं करूँ (नमः) मेरे सन्तोषके लिये यह कैंकर्य नहीं है। (तत्र) उस द्वयमन्त्रमें (श्रीः) श्री (इति) यह (नाम) लक्ष्मीजीका नाम है। यह श्री शब्द भ्वादिमें पठित (श्रिञ्सेवायाम्) सेवा अर्थमें श्रिञ् (इति) इस (धातोः) धातुसे (श्रीयते) 'श्रीयते' और (श्रयते) 'श्रयते' (इति) इस प्रकारकी (व्युत्पत्तिद्वयसिद्धत्वात्) दो व्युत्पत्तियों से सिद्ध होनेसे (सेवाकर्तृकर्मणी) सेवाके कर्ता और कर्मको (वदति) श्री शब्द कहता है। (एतदर्थस्य) इस अर्थके (सापेक्षत्वात्) सापेक्ष होनेसे (कम्) किसको और (केन) किससे (इति) इस प्रकारकी (आकाँक्षा) आकाँक्षा (जायते) उत्पन्न होती है। (च) और (ते) वे दोनों कर्मत्व और कर्तृत्व (अस्याः) इस लक्ष्मीदेवीजीके (स्वारूपानुरूपे) स्वरूपके अनुरूप हैं। (सर्वभूतानाम्) सब जीवोंके (ईश्वरीत्वात्) स्वामिनी होनेसे। लक्ष्मीजी सब जीवोंकी स्वामिनी हैं यह लिखा है कि।। **ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।। श्रीसू० मं० ९।।** सब जीवोंकी स्वामिनी उस लक्ष्मीदेवीजीको मैं बुलाता हूँ।।९।। (त्रिविध चेतनैः) तीन प्रकारके नित्य १, बद्ध २, मुक्त ३, जीवों करके (सेव्यते) लक्ष्मीदेवीजीकी सेवा की जाती है। जीव तीन प्रकार के होते हैं क्योंकि लिखा है कि-

बद्धो मुक्तो नित्य इति स जीवस्त्रिविधो मतः।। वेदान्तकारि० जीवस्वरूपनिरू० श्लो० ५१।।

बद्ध १, मुक्त २, नित्य ३, इस भेदसे वह जीव तीन प्रकार का है।।५१।। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि "अर्थपञ्चकमें लिखा है कि-**नित्यमुक्तबद्धकेवलमुमुक्षुभेदात्पञ्चविधम्।। अर्थपं० ४।।** नित्य १, मुक्त २, बद्ध ३, केवल ४, मुमुक्षु ५, इन भेदोंसे जीव पाँच प्रकारके हैं ।।४।। तो इससे विरोध पड़ता है इससे तीन प्रकारके जीव मानना ठीक नहीं है। इस विषयमें यह कहना है कि तीन हीं प्रकारके जीव होते हैं। यह "अर्थ पञ्चकम्" के बनाने वाले लोकाचार्य स्वामीजी का अभिप्रेत है। अन्यथा "तत्त्वत्रयम्" में वे तीन प्रकारके जीव कैसे कहते। "अर्थ पञ्चकम्" में पाँच प्रकारके जीव कहे हैं सो मन्द प्रयोजनार्थ या प्रपञ्चार्थ कहे हैं। इससे

तीन प्रकारके ही जीव मानना उचित है। (विष्णुपत्नीत्वात्) विष्णु भगवान्की पत्नी होनेसे (स्वयम्) अपने से (सेवते) विष्णु भगवान् की सेवा करती हैं। (तस्मात्) जिस कारणसे (स्वव्यतिरिक्तसकलात्मनाम्) अपनेसे अतिरिक्त समस्त जीवात्माओंके (स्वस्वरूपस्थित्यादयः) स्वस्वरूपकी उत्पत्ति पालन संहार आदिक (तत्कटाक्षाधीनाः) लक्ष्मी देवीजीके कटाक्षके अधीन है। (अतः) इस कारणसे (स्वव्यतिरिक्तानाम्) स्वव्यतिरिक्त (सर्वेषाम्) सब जीवोंके (स्वयम्) अपने ही लक्ष्मीदेवीजी (स्वामिनी) स्वामिनी हैं। और (तस्य) उस नारायण भगवान्की (परतन्त्रा) पर तंत्रा लक्ष्मी हैं (एतत्) यह पूर्वोक्त (एव) निश्चय करके (अस्याः) इस लक्ष्मी देवीजी का (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) ऐसा (उच्यते) कहा जाता है। (च) और (इदम्) यह स्वरूप (व्युत्पत्तिसिद्धम) व्युत्पत्तिसे केवल सिद्ध (एव) निश्चय करके (न) नहीं (भवति) होता है। (किन्तु) लेकिन (प्रमाणसिद्धम्) प्रमाणसे सिद्ध(अपि) भी है। (एवम्) इस प्रकारकी (व्युत्पत्तिद्वयेन) "श्रीयते" और "श्रयते" इन दो व्युत्पत्तियों से (उभयसंबन्धः) सब जीवोंके स्वामिनीत्व और विष्णु-पत्नीत्व ये दोनों संबन्ध (उच्यते) कहे जाते हैं। अब इस वार्तामें "तत्कटाक्षाधीनाः" यह पद आया है इससे यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि लक्ष्मी देवीजी के कटाक्षके अधीन समस्त संसारकी उत्पत्ति आदिक होता है। इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि।। **जगत्समग्रं यदपाङ्गसंश्रयम् ॥ आलवन्दा० श्लो ४॥** जिस लक्ष्मीजीके कटाक्षके इसारे होनेसे संपूर्ण संसारको आप करते हैं।।४०।। और भी लिखा है कि-

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणाद्रक्ष्यते नष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं संप्रत्यनन्तोदयम्॥ वरदवल्ल० श्लो ३॥

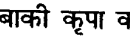
ऐ वरदवल्लभे! आपके करुणा युक्त निरीक्षणामृतके सिंचनके अभाव होनेसे यह त्रिभुवन नष्ट हो गया था सो इस समयमें आपके थोड़ासा कृपाकटाक्षामृतके सिंचनसे यह त्रिभुवन अनन्त उदयसे युक्त हुआ है।।३।। और भी लिखा है कि।।

यस्याः कटाक्षमृदुवीक्षणवीक्षणेन सद्यः समुल्लसितपल्लवमुल्लासः॥ श्रीस्त० श्लो० १०

जिस देवीजीके मृदु करुणायुक्त कटाक्षके निरीक्षणसे इस विश्व-वृक्ष ने सद्यः ही नव पल्लवसे युक्त सम्यक् उल्लासको प्राप्त किया है।।१०।। और भी देखिये लिखा है कि।।

उल्लसपल्लवितपालितसप्तलोकी निर्वाहकोरकितनेमकटाक्षलीलाम्। श्रीरङ्गहर्म्यतलमंगलदीपरेखां श्रीरङ्गराजमहिषीं श्रियमाश्रयामः॥ श्रीगुणरत्नको० श्लो० २॥

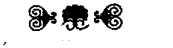
इस श्लोकमें स्पष्ट श्रीअम्बाकी कृपा कटाक्षसे सातोलोकोंके जन्म आदिक का वर्णन है। इससे साबित हो गया कि लक्ष्मीजीके कटाक्षके अधीन समस्त संसार का जन्म आदिक होता है।। स्वमिति।।



मू०–इदं च पुरुषकारे पर्य्यवस्यति पुरुषकारतायाम्–एतस्मिन् संबन्धस्य तस्याः फलव्याप्तेरपेक्षितस्य तत्संबन्धस्य चोक्तत्वात् वरणीयममुमंगीकुरुष्वेति वदतीयं कथमस्याङ्गीकार इति पृच्छति स आभिमुख्यमकरोदयं तर्ह्यपराधस्य का गतिः, इतः परमपराधः कथमस्य कोऽभिप्रायः शृणु–अभिप्रायम् अनन्तगरुडादिवत् त्वदनुभवैकप्रयोजनसतस्तद्विमुखश्शब्दादिविषयप्रवणः स्वकार्यजन्मादिषु प्रविश्य–अनादिकालं क्लेशितः–इदानीं त्वद्भाग्येन एतावत्पर्यन्तमसिद्धमाभिमुख्यं कथंचित्प्राप्तः, एवं सति एतदपराधान् त्वत्कृपागोचरान् कृत्वा त्वच्छीलादिगुणान् प्राप्तिनिदानं कुर्विति योग्यतोच्यते भगवति योग्यतयैव हि-उपायवरणं क्रियते, एवं वरणीयविषये पुरुषकारतानुष्ठानमस्ति किमित चेदस्ति शृणोतीति श्रावयतीति च श्रीरिति व्युत्पत्तिभ्यामनुष्ठानमुच्यते शृणोतीति श्रवणमुच्यते कस्य श्रवणमिति चेत् आश्रयणोन्मुखोऽधिकारी स्वापराधान् भगवत्स्वातन्त्र्यं चानुसंधाय तत्प्राप्ति र्ममातिदुर्लभेति पश्चाद् च्छति चेत् त्वं किमिति पश्चाद् च्छसि तवाभिमुख्यमेवापेक्षितम् अपराधान् क्षमापयितुमहमतिष्ठं त्वं माभैषीरिति वदति।।

अर्थ-(च) और (इदम्) यह (पुरुषकारे) पुरुषकारमें (पर्यवस्यति) पर्यवसान होता है। तथा (पुरुषकारतायाम्) पुरुषकारतामें और (एतस्मिन्) इस उपाय स्वरूपमें (संबन्धस्य) संबन्धके (च) और (तस्याः) उस (फलव्याप्तेः) फलव्याप्तिके (अपेक्षितस्य) अपेक्षित (तत्संबन्धस्य) उस संबन्धके (उक्तत्वात्) कहनेसे (वरणीयम्) स्वीकार करने योग्य (अमुम्) इस चेतनको (अङ्गीकुरुष्व) आप अंगीकार कीजिये (इति) इस प्रकारसे (इयम्) यह लक्ष्मीजी (वदति) कहती हैं। तब (कथम्) कैसे (अस्य) इस चेतनका (अङ्गीकारः) अंगीकार हो सकता है (इति) इस प्रकारसे (सः) वह (पृच्छति) पूछते हैं। तब वह फिरसे बालीं कि (अयम्) इस चेतनने (अभिमुख्यम्) आपकी अभिमुखताको (अकरोत्) किया है। तब वह फिरसे कहते हैं कि (तर्हि) तो (अपराधस्य) अपराधकी (का) कौनसी (गतिः) गति होगी। तब फिरसे कहती हैं कि (इतः) इस आपकी अभिमुखता होनेपर इस आभिमुख्यके (परम्) बाद (अपराधः) अपराध (कथम्) कैसा। अर्थात् आपके अभिमुख होते ही समस्त अपराध दूर हो जाते हैं। तब फिरसे कहते हैं कि (अस्य) इस कथन का (कः) क्या (अभिप्रायः) अभिप्राय है। तब कहती हैं कि (अभिप्रायम्) अभिप्रायको (शृणु) सुनिये। 'शृणु'' यहाँ पर ।। **श्रुवः शृच॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ७४॥** इस सूत्रसे शृ आदेश और श्नु प्रत्यय होता है। (अनन्तगरुडादिवत्) अनन्तजी तथा गरुड़जी और आदि शब्दसे विष्वक्सेनजी के समान (त्वदनुभवैकप्रयोजनसतः) आपके अनुभवैकप्रयोजन होनेसे और (तद्विमुखः) आपके अनुभवैकप्रयोजनसे विमुख (शब्दादिविषयप्रवणः) शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श इन विषयोंमें आसक्त (स्वकार्यजन्मादिषु) अपने किये हुए कर्मके द्वारा जन्म मरण आदिकोंमें (प्रविश्य) प्रवेश करके (अनादिकालम्) अनादिकालसे (क्लेशितः) क्लेशको प्राप्त किया है। (इदानीम्) इस समयमें (त्वद्भाग्येन) आपके भाग्यसे (एतावत्) इतने दिन (पर्यन्तम्) पर्यन्त (असिद्धम्) असिद्ध यह चेतन (आभिमुख्यम्) भगवत्की अभिमुखताको (कथञ्चित्) किसी प्रकारसे (प्राप्तः) प्राप्त किया है। (एवम्) इस प्रकारके (सति) रहने पर (एतदपराधान्) इस चेतनके अपराधोंको (त्वत्कृपागोचरान्) आपकी कृपाका विषय (कृत्वा) करके (त्वच्छीलादिगुणान्) आपके सौशील्य आदि गुणोंको (प्राप्तिनिदानम्) अपनी प्राप्तिमें कारण (कुरु) कीजिए (इति) इस प्रकारकी (योग्यता) योग्यता (उच्यते) कही जाती है। (भगवति) षडैश्वर्यसंपन्न भगवान्में (योग्तया) योग्यतासे (एव) ही (उपायवरणम्) उपायका स्वीकार (क्रियते) किया जाता है। (एवम्) इस प्रकारके (वरणीयविषये) स्वीकार करने योग्य विषयमें (पुरुषकारतानुष्ठानम्) पुरुषकारताका अनुष्ठान (अस्ति) है (किम्) क्या (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहो तो (अस्ति) है (शृणोति) 'शृणोति'' (इति) इस प्रकारकी (च)

और (श्रावयति) "श्रावयति" (इति) इस प्रकारकी व्युत्पत्ति करनेसे भ्वादिमें पठित "श्रु श्रवणे" इस धातुसे (श्रीः) श्रीः (इति) यह प्रयोग॥ **उणादयो बहुलम्॥ व्या० अ० ३ पा० ३, सू० १॥** इस सूत्रसे सिद्ध होता है। (व्युत्पत्तिभ्याम्) "शृणोति" और "श्रावयति" इन दो व्युत्पत्तियोंसे (अनुष्ठानम्) अनुष्ठान (उच्यते) कहा जाता है। (शृणोति) "शृणोति" (इति) ऐसी व्युत्पत्तिसे (श्रवणम्) श्रवण (उच्यते) कहा जात है। (कस्य) किसका (श्रवणम्) श्रवण (इति) ऐसा (चेत्) यदि कहते हो तो सुनो (आश्रयणोन्मुखः) भगवत्के आश्रयण करनेके उन्मुख (अधिकारी) अधिकारी (स्वापराधान्) अपने अपराधोंको (च) और (भगवत्स्वातन्त्र्यम्) भगवत्की स्वतंत्रताको (अनुसंधाय) अनुसंधान करके (तत्प्राप्तिः) भगवत्की प्राप्ति (मम) मुझको (अतिदुर्लभा) अत्यन्त दुर्लभ है (इति) ऐसा सोचकर (चेत्) यदि (पश्चात्) पीछेसे (गच्छति) चलता है तो (त्वम्) तुम (किम्) क्यों (इति) इस प्रकारके (पश्चात्) पीछेसे (गच्छसि) चलते हो। (तव) तेरा (आभिमुख्यम्) आभिमुख्य (एव) निश्चय करके (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। (अपराधान्) तेरे अपराधोंको (क्षमापयितुम्) क्षमा करानेके लिये (अहम्) मैं (अतिष्ठम्) ठहरी हूँ। (त्वम्) तुम (माभैषीः) मत भय करो (इति) इस प्रकारसे (वदति) लक्ष्मीजी कहती हैं॥



मू०—श्रावयतीत्यनेन—एतदपराधान् परिगणय्य दूरीकरोषि चेत्, अस्य को वा-आश्रयः, अस्य तव च संबन्धविशेषो घटप्रहारेणापि न निवर्तते, स्वस्य-अस्य च प्राप्तिः स्वामिनस्तव फलमिति निवेदनमुच्यते, विषयात्मा विषयी—ईश्वरः विषयसिद्धिकर्ता—आचार्य्यः विषयानुवर्द्धिका लक्ष्मीः विषयानुभवसहायाः श्रीवैष्णवाः—अधिकारिकृत्यमाचार्यकृत्यं पुरुषकारकृत्यमुपायकृत्यमिति चतुर्विधं तत्राधिकारिकृत्यमाचार्यशुश्रूषा कृतज्ञता—उपायाध्यवसायश्च—आचार्यकृत्यमज्ञातज्ञापनं रुचिप्रवर्तकत्वं च पुरुषकारकृत्यमपराधक्षमापनं कैंकर्यवर्द्धनं च—उपायकृत्यं विरोधिनिवृत्तिः प्राप्यसिद्धिश्च भगवतो जगत्सृष्टेः प्रयो—

जनं चेतनानां मोक्षेच्छाया उत्पत्तिः, अवताराणां प्रयोजनं मोक्षप्रदानं मोक्षप्रदानं ज्ञानप्रदानद्वारा ज्ञानप्रदानमाचार्योपदेशद्वारा—आचार्य उभयोरप्युपकारकः, तथाहि चेतनस्य शेषिणमुपकरोति—ईश्वरस्य चेतनमुपकरोति, एवं भूतस्याचार्य्यस्य प्रत्युपकारः विभूतिचतुष्टयस्य ईश्वरद्वयस्य च सत्वे कर्तुं शक्यः, आचार्यो नामअर्थकामेषु रुचिं निवर्त्य भगवद्भागवतविषयेष्वतीवरुचिमुत्पादयति यः ॥

अर्थ-(श्रावयति) "श्रावयति" (इति) इस प्रकारकी (अनेन) इस व्युत्पत्तिसे (एतदपराधान्) इस चेतनके अपराधोंको (परिगणय्य) परिगणन करके (चेत्) यदि (त्वम्) तुम (एनम्) इस चेतनको (दूरीकरोषि) दूर करते हो तो (अस्य) इस चेतनका (कः) कौन (तव) आपका (सम्बन्धविशेषः) सम्बन्ध विशेष (घटप्रहारेण) घड़ेके प्रहारसे (अपि) भी (न) नहीं (निवर्तते) निवृत्त होता है। (स्वस्य) अपना (च) और (अस्य) इस चेतनकी (प्राप्तिः) प्राप्ति (स्वामिनः) स्वामीके (तव) तेरा (फलम्) फल है (इति) इस प्रकारका (निवेदनम्) निवेदन (उच्यते) कहा जाता है। (विषयः) विषय (आत्मा) आत्मा है। और (विषयी) विषयी (ईश्वरः) परमेश्वर है। तथा (विषयसिद्धिकर्ता) विषयकी सिद्धि करनेवाले (आचार्यः) आचार्य हैं। और (विषयानुवर्द्धिका) विषयको पीछेसे बढ़ानेवाली (लक्ष्मीः) लक्ष्मी देवीजी हैं। तथा (विषयानुभवसहायाः) आत्मानुभवके सहाय (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव हैं। (अधिकारिकृत्यम्) अधिकारीका कृत्य १, तथा (आचार्यकृत्यम्) आचार्यका कृत्य २, और (पुरुषकारकृत्यम्) पुरुषकारकार का कृत्य ३, तथा (उपायकृत्यम्) उपायका कृत्य ४, (इति) इस प्रकारके भेदसे (चतुर्विधम्) कृत्य चार प्रकारके होते हैं। (तत्र) उनमें (अधिकारिकृत्यम्) अधिकारीका कृत्य (आचार्यशुश्रूषा) आचार्यों की शुश्रूषा १, तथा (कृतज्ञता) कृतज्ञता २, (च) और (उपायाध्यवसायः) उपायमें अध्यवसाय ३, करना है। और (आचार्यकृत्यम्) आचार्यका कृत्य (अज्ञातज्ञापनम्) अज्ञात वस्तुको जनाना १, (च) और (रुचिप्रर्वतकत्वम्) प्रीतिको बढ़ाना है २, तथा (पुरुषकारकृत्यम्) पुरुषकार का कृत्य (अपराधक्षमापनम्) अपराधको क्षमा कराना १, (च) और (कैंकर्यवर्द्धनम्) कैंकर्यको बढ़ाना है २, तथा (उपायकृत्यम्) उपायका कृत्य (विरोधि निवृत्तिः) विरोधियोंकी निवृत्ति १, (च) और (प्राप्यसिद्धिः) प्राप्यसिद्धि २, है। (भगवतः) षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान्के (जगत्सृष्टेः) संसारकी सृष्टिके (प्रयोजनम्)

प्रयोजन (मोक्षप्रदानम्) चेतनोंको मोक्ष प्रदान करना है। (मोक्षप्रदानम्) मोक्ष प्रदान (ज्ञानप्रदानद्वारा) ज्ञान प्रदानके द्वारा होता है। और (ज्ञानप्रदानम्) ज्ञान प्रदान (आचार्योपदेशद्वारा) आचार्यों के उपदेश द्वारा होता है। (आचार्यः) आचार्य (उभयोः) ब्रह्म और, जीव इन दोनोंके (अपि) भी (उपकारकः) उपकार करने वाले हैं (तथाहि)उसीको दिखाते हैं कि (चेतनस्य) चेतन जीवके (शेषिणम्) शेषी ब्रह्मको (उपकरोति) आचार्य उपकार करते हैं। (ईश्वरस्य) और ईश्वरके (चेतनम्) चेतन जीवको (उपकरोति) आचार्य उपकार करते हैं। (एवम्) इस प्रकारके (भूतस्य) भये हुए (आचार्यस्य) आचार्यके (प्रत्युपकारः) प्रत्युपकार (विभूतिचतुष्टयस्य) चार विभूति के (च) और (ईश्वरद्वयस्य) दो ईश्वरके (सत्वे) रहने पर (कर्त्तुम्) करनेके लिये (शक्यः) समर्थ हो सकता है। परन्तु चार विभूति और दो ईश्वर हैं ही नहीं। क्योंकि लिखा है कि-**पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु० अ० ३१, मं० ३॥** यह जो कुछ संसार जीवोंके सहित है, वह इस परमात्माकी एक पादलीला विभूति है, और दिवलोकमें मोक्षरूप अमृत त्रिपाद्विभूति है।।३।। इससे साबित हो गया कि दो विभूतियाँ हैं। और ईश्वरके विषयमें लिखा है कि- **एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा॥ श्वेताश्व० अ० ६ श्रु० ११॥** एक देव परमात्मा सब जीवोंमें छिपा हुआ है, वह सर्वव्यापी है, और सब जीवोंकी अन्तरात्मा है।।११।। **एको वशी निष्क्रियाणां बहूनाम्॥१२॥** निष्क्रिय बहुतोंको वशमें करनेवाला परमात्मा एक है।।१२।। **एकः सुपर्णः सः समुद्रमाविवेश स इदं भुवनं विचष्टे॥ ऋग्वे० मं० सू० मं० ४॥** एक सुपर्ण परमात्मा है, उसने समुद्रमें प्रवेश किया है, और वही परमात्मा इस सम्पूर्ण लोकको प्रकाशित करता है।।४।। **आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्॥ ऐतरेयो० अ० १ खं० १ मं० १॥** पहले परमात्मा एक था।।११। **एकमेवाद्वितीयम् छान्दो० अ० ६, खं० श्रु० १॥** परमात्मा एक ही था ।।१।। **आत्मैवेदमग्र आसीत्॥ बृह० अ० १ ब्रा० ४ श्रु० १॥** पहले एक परमात्मा था।।१।। **शुद्धो देव एक नारायणो न द्वितीयोऽस्तिकश्चित्॥ नारायणोप० श्रु० २॥** शुद्धदेव एक नारायण हैं दूसरा कोई ईश्वर नहीं है।।२।। इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे यह साबित होता है, कि परमात्मा एक है। और (आचार्यः) आचार्य (नाम) माने (यः) जो (अर्थकामेषु) अर्थ तथा काममें (रुचिम्) रुचिको (निवर्त्य) दूर करके (भगवद्भागवतविषयेषु) भगवत् और भागवतके विषयमें (अति) अत्यन्तके (इव) समान (रुचिम्) रुचिको (उत्पादयति) उत्पन्न कराता है।।शमिति।।

❁

१ २ ३ ४

मू०-श्रीकृष्णपादस्य मातृष्वसा स्वज्येष्ठपुत्रे कृष्ण-

५ ६ ७ ८ ९ १० ११
पादे च कालक्षेपं कुर्वतोः शोकार्ता बभूव, तां श्रीकृष्णपाद
१२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
स्त्वं किमिर्थं शोचसीत्यपृच्छत्, सा च–अनादिपापवासनया–
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९
इतः परमीश्वरो मां पातयिष्यति किमिति विभेमीत्य–
३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७
वोचत्, तच्छ्रुत्वा श्रीकृष्णपादस्त्वदर्थं सृष्टिः कर्तव्या किं
३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५
वा ऽवतारः कर्तव्यः ''संभवामि युगे युगेः'' इति–एकं
४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१
स्वीकर्तुं जगन्निरुन्धानोऽखिलजगत्स्वामी खल्वस्मत्स्वा–
५२ ५३
मीत्यवोचत् ॥ १२० ॥

अर्थ–(श्रीकृष्णपादस्य) श्रीकृष्णपाद स्वामीजीकी (मातृष्वसा) माताकी बहन (स्वज्येष्ठपुत्रे) अपने जेठ लड़केके (च) और (कृष्णपादे) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी के (कालक्षेपम्) कालक्षेप (कुर्वतोः) करते हुए (शोकार्ता) शोक से पीड़ित (बभूव) हुई। तब (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी ने (ताम्) उस अपनी मौसी से (त्वम्) तुम (किम्) किस (अर्थम्) लिये (शोचसि) सोच करती हो (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। (च) और तब (सा) वह श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की मौसी (अनादिपापवासनया) अनादि पाप वासना से (इतः) इससे (परम्) परे (ईश्वरः) परमेश्वर (माम्) मुझको ही (पातयिष्यति) गिरावेंगे (किम्) क्या (इति) इससे (विभेमि) डरती हूँ (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) बोलीं हैं। तब (तत्) उस अपनी मौसी के वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी (त्वदर्थम्) तेरे लिये (सृष्टिः) सृष्टि (कर्तव्या) करने योग्य है। (वा) अथवा (किम्) क्या (अवतारः) अवतार (कर्तव्यः) करने योग्य है। (संभवामि) अवतार धारण करता हूँ (युगे) युग (युगे) युगमें। (इति) इस प्रकारके (एकम्) एकको (स्वीकर्तुम्) स्वीकार करनेके लिये (जगत्) संसारको (निरुन्धानः) नहीं रोकते हुए (अखिलजगत्स्वामी) समस्त संसार के स्वामी (खलु) निश्चय करके (अस्मत्स्वामी) हम सबोंके स्वामी हैं। (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले हैं। इस वार्तामें। **संभवामि युगे युगे ॥ भगवद्गी० अ० ४, श्लो० ८॥** यह प्रमाण है, इससे सम्पूर्ण श्लोकको लिखकर यहाँ पर अर्थ लिखता हूँ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ भगवद्गी० अ० ४, श्लो० ८॥

साधुओंकी अच्छी तरह से रक्षा करनेके लिये तथा पापियोंके विनाश करनेके लिये और वैदिक धर्मकी स्थापन करनेके लिये युग युग में अवतार धारण करता हूँ॥८॥

इस एकसौ बीसवीं वार्ता में छः सौ सात पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१२०॥

अब फिरसे श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता॥

मू०-ज्ञानप्रदः-आचार्य्यः,' ज्ञानवर्द्धकाः श्रीवैष्णवाः ज्ञानविषयो भगवान्, ज्ञानफलं भगवत्कैंकर्यम् तत्सीमा भागवतकैंकर्यं शिष्यस्याचार्यस्य सुप्रसादोऽप्रसादः प्रसादश्च सुप्रसादो भवेत्, आचार्यविषये कृतज्ञता विश्वासः प्रेमविश्लेषभीरुता संश्लेषविषये मंगलानुशासनं गतिचिन्तनमनुभवेच्छा, एतत् सर्वं यस्य वर्तते स आत्मा ज्ञानवान् भवति, अर्थप्रवणस्य बन्धुर्नास्ति, गुरुर्नास्ति, विषयप्रवणस्य लज्जा नास्ति, भयं नास्ति, क्षुत्पीडितस्य विवेको नास्ति, नियति र्नास्ति, ज्ञानिनो निद्रा नास्ति, सुखन्नास्ति ॥ १२१ ॥

अर्थ-(ज्ञानप्रदः) ज्ञानको प्रकर्ष रूपसे देनेवाले (आचार्यः) आचार्य हैं तथा (ज्ञानवर्द्धकाः) ज्ञानको बढ़ाने वाले (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव हैं। और (ज्ञानविषयः) ज्ञानका विषय (भगवान्) नारायण भगवान् हैं। तथा (ज्ञानफलम्) ज्ञानका फल (भगवत्कैंकर्यम्) भगवत्कैंकर्य है। और (तत्सीमा) भगवत्कैंकर्य की सीमा (भागवतकैंकर्यम्) भागवतकैंकर्य है। (शिष्यस्य) शिष्यके और (आचार्यस्य) आचार्यका (सुप्रसादः) सुन्दर प्रसन्नता (अप्रसादः) अप्रसन्नता है। (च) और (प्रसादः) प्रसन्नता (सुप्रसादः) सुन्दर प्रसन्नता (भवेत्) होवेगी। (आचार्यविषये) आचार्यके विषयमें (कृतज्ञता) कृतज्ञता तथा (विश्वासः) विश्वास और (प्रेमविश्लेषभीरुता) प्रेमके वियोगमें भीरुता होनी चाहिये। और (संश्लेषविषये) संश्लेषके विषयमें (मंगलानुशासनम्) मंगलानुशासन तथा (गतिचिन्तम्) गतिचिन्तन करना। और (अनुभवेच्छा) अनुभवकी इच्छा करनी चाहिये। (एतत्) ये (सर्वम्) सब (यस्य) जिस पुरुषके (वर्तते) रहते हैं (सः) वह (आत्मा) आत्मा (ज्ञानवान्) ज्ञानवाली (भवति) होती है। और (अर्थप्रवणस्य) अर्थमें प्रवण पुरुषका (बन्धुः) बन्धु (न) नहीं (अस्ति) है। तथा

(गुरुः) गुरु (न) नहीं (अस्ति) है। (विषयप्रवणस्य) विषय प्रवणके (लज्जा) लज्जा (न) नहीं (अस्ति) है। और (भयम्) भय (न) नहीं (अस्ति) है। तथा (क्षुत्पीडितस्य) भूखसे पीड़ित पुरुषको (विवेकः) विवेक (न) नहीं (अस्ति) है। और (नियतिः) नियति (न) नहीं (अस्ति) है। तथा (ज्ञानिनः) ज्ञानी पुरुषको (निद्रा) निद्रा (न) नहीं (अस्ति) है। और (सुखम्) विषयका सुख (न) नहीं (अस्ति) है। इस एकसौ इक्कीसवीं वार्तामें बासठ पद हैं। इति श्रीकृष्णापादोक्तवार्त्ताव्याख्यानम्॥१२१॥

अब श्रीकाँचीपूर्ण स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ काञ्चीपूर्णोक्ता वार्त्ता ॥

मू०-श्रीकाञ्चीपूर्णस्य श्रीपादौ कश्चन श्रीवैष्णव-आश्रित्य मामङ्गीकुरुष्वेति प्रार्थितवान्, स च भगवतो विज्ञापयामास, भगवानपि मामस्योपदिशेत्यवोचत्, पूर्णश्च भगवत्प्रपत्तिमुपदिदेश, श्रीवैष्णवश्च कृतार्थो भूत्वा काञ्चीपूर्णं निरन्तरं सेवमानोऽतिष्ठत्, तस्य प्रकृतिबन्धव-एतदसहमाना अमुं विश्लेष्य प्रायश्चित्तं कर्तव्यमित्य-वदन्, स च-अनन्तसरसि स्नात्वा-आगच्छामीति गत्वा काञ्चीपूर्णचरणौ प्रणम्यातिष्ठत्, स च त्वं किमिति न गतस्ते दुर्वाक्यं वदन्तीत्यवोचत्, श्रीवैष्णवश्च ममैताव देव किमिति शोकार्तः परमपदमगमत् ॥ १२२ ॥

॥ काञ्चीपूर्णस्तुतिः॥

अर्थ- **माघमासे तत्र पुर्यां नक्षत्रे मृगशीर्षके।**
चतुर्थवर्णे संयज्ञे शबर्य्यंशेन वैष्णवः ॥ १०७ ॥
काञ्चीपूर्ण इति ख्यात कमलापतिनन्दनः।
कश्चिन्महान्महाभाग महाभागवतोत्तमः ॥ ❁ ॥

(श्रीकाञ्चीपूर्णस्य) श्रीकाँचीपूर्ण स्वामीजीके (श्रीपादौ) श्रीचरणोंको (कश्चन) किसी (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णवने (आश्रित्य) आश्रयण करके (माम्) मुझको

(अङ्गीकुरुष्व) अंगीकार कीजिए (इति) इस प्रकारकी (प्रार्थितवान्) प्रार्थना की। (च) और तब (सः) उस काँची पूर्ण स्वामीजी ने (भगवतः) उस श्रीवैष्णवके वृतान्तको नारायण भगवानसे (विज्ञापयामास) विज्ञापन किया। तब (भगवान्) नारायण भगवान् ने (अपि) भी (माम्) मुझको (अस्य) इस श्रीवैष्णवको (उपदिश) उपदेश दीजिये (इति) इस इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है। (च) और इसके बाद (पूर्णः) काँचीपूर्ण स्वामीजी ने (भगवत्प्रपत्तिम्) भगवत्की प्रपत्तिको (उपदिदेश) उपदेश किया। (च) और (श्रीवैष्णवः) वह श्रीवैष्णव (कृतार्थः) कृतार्थ (भूत्वा) हो करके (काञ्चीपूर्णम्) काँचीपूर्ण स्वामीजीकी (निरन्तरम्) हमेशा (सेवमानः) सेवा करता हुआ (अतिष्ठत्) ठहरा। (तस्य) तब उस श्रीवैष्णवके (प्रकृतिबन्धवः) प्राकृत बन्धु सब (एतत्) इस भगवत् की प्रपत्ति को (असहमानाः) नहीं सहते हुए (अमुम्) इसको (विश्लेष्य) विश्लेष करके (प्रायश्चित्तम्) प्रायश्चित्त (कर्तव्यम्) करने योग्य है (इति) ऐसा (अवदन्) कहे हैं। (च) और तब (सः) वह श्रीवैष्णव (अनन्तसरसि) अनन्त सर में (स्नात्वा) स्नान करके (आगच्छामि) आता हूँ (इति) इस प्रकारसे कहकर (गत्वा) जाकरके (काञ्चीपूर्णचरणौ) काञ्चीपूर्ण स्वामीजीके चरणारविन्दोंको (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (अतिष्ठत्) ठहर गये। (च) और तब (सः) उस काञ्चीपूर्ण स्वामीजी ने कहा कि (त्वम्) तुम (किम्) क्या (इति) इस प्रकारसे यहाँसे (न) नहीं (गतः) गये हो। तब वह श्रीवैष्णव (ते) वे प्राकृतबन्धु सब (दुर्वाक्यम्) दुर्वाक्यको (वदन्ति) कहते हैं, (इति) ऐसा (अवोचत्) कहे हैं। (च) और (श्रीवैष्णवः) उस श्रीवैष्णव ने (मम) मेरा (एतावत्) इतना (एव) ही (किम्) क्या है (इति) इस प्रकारसे (शोकार्तः) शोकसे पीडित हो (परमपदम्) परम पदको (अगमत्) प्राप्त किया। इस एक सौ बाईसवीं वार्तामें चौहत्तर पद हैं। इति काञ्चीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१२२॥

अब अनन्तसूरिजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ अनन्तसूर्युक्ता वार्ता॥

मू०-अनन्तसूरिभिर्येच्चानिति वैष्णवं प्रत्युक्ता वार्ता जीवात्मनं कन्याम् आचार्यः पिता भगवतं वराय गुरुपरम्परां पुरस्कृत्य द्वयं मन्त्रमुच्चरन् उदकपूर्वमदादिति ॥१२३॥

॥ अनन्तसूरिस्तुतिः ॥

अर्थ- ततः कदाचिन्मतिमाननन्तार्योगुरुप्रियः
रामानुजाभिधानस्य तटाकस्य सभार्यकः॥११९॥
सेतुनिर्माणकरणे मृदमादाय सत्वरम्।
सेतुंविवर्द्धयंस्तस्थौ तटाकञ्च विवर्द्धयन्॥१२०॥

(अनन्तसूरिभिः) अनन्तसूरिसे (येन्नान्) येन्नान् (इति) इस (वैष्णवम्) श्रीवैष्णवके (प्रति) प्रति (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (जीवात्मनं) जीवात्मा (कन्याम्) कन्याको (आचार्यः) आचार्य (पिता) पिता (भगवते) षडैश्वर्य सम्पन्न नारायण भगवान् (वराय) वरके लिये (गुरुपरम्पराम्) गुरुपरम्पराको (पुरस्कृत्य) पुरुषकार करके (द्वयम्) द्वय (मन्त्रको) उच्चरन्) उच्चारण करते हुए (उदकपूर्वम्) जलपूर्वक (अदात्) दिये हैं (इति) इस प्रकारकी वार्ताको कहे हैं। इस वार्तामें इक्कीस पद हैं। इति अनन्तसूरिगदितवार्ताव्याख्यानम्॥१२३॥

अब एक श्रीवैष्णव और कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथा कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०-कृष्णपादम्[१]-एकः[२] श्रीवैष्णवो[३] ममाहङ्कारादयो[४]-न[५] निवर्तन्ते[६], मम[७] तत्तीरप्राप्तिमार्गोऽस्ति[८] किमित्यपृच्छत्[९], तं[१०] प्रति[११] तदुक्तवार्ता[१२] भोक्ता[१३] भोग्यपदार्थं[१४] मलिनं[१५] स्वीकृत्य[१६] भोगकाले[१७] मलं[१८] निवर्त्य[१९] यथा[२०] मणिंभुङ्क्ते[२१] तथा-आचार्यं[२२] व्रतवतश्शरणागतस्याधिकारिणोऽहङ्काराद्यनुवृत्तावपि[२३] तं-[२४]मपरित्यजन्[२५] प्राप्तिसमयेऽस्याहङ्कारादिमलं[२६] दूरीकृत्य[२७] भोग्यभूतं[२८] वस्तु[२९] भोक्ता[३०] भगवान्[३१] स्वयमेव[३२] भुङ्क्ते[३३], इति[३४] निश्चिन्वन्ति[३५] ॥ १२४ ॥

अर्थ-(कृष्णपादम्) श्रीकृष्णपादस्वामीजी को (एकः) एक (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (मम) मेरा (अहङ्कारादयः) अहङ्कार ममकार आदिक (न) नहीं (निवर्तन्ते) निवृत्त होते हैं। (मम) मेरा (तत्तीरप्राप्तिमार्गः) उसके तट प्राप्तिकरने का मार्ग (अस्ति) है (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछे। (तम्) उस श्रीवैष्णवके (प्रति)

प्रति (तदुक्तवार्ता) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी की कही हुई वार्ता है कि (भोक्ता) भोग करने वाला पुरुष (भोग्यपदार्थम्) भोग्यपदार्थ (मलिनम्) मलिन (स्वीकृत्य) स्वीकार करके (भोगकाले) भोगके समयमें (मलं) मैलापन को (निवर्त्य) दूर करके (यथा) जैसे (मणिम्) मणिको (भुङ्क्ते) भोग करता है। (तथा) वैसे ही (आचार्यम्) आचार्यके (व्रतवतः) व्रतवाले (शरणागतस्य) शरणमें आये हुए (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुषके (अहङ्कारद्यनुवृत्तौ) अहङ्कार ममकार आदिककी अनुवृत्ति होनेपर (अपि) भी (तम्) उसको (अपरित्यजन्) नहीं छोड़ता हुआ (प्राप्तिसमये) प्राप्तिके समयमें (अस्य) इस अधिकारी पुरुषके (अहङ्कारादिमलम्) अहङ्कार आदिक मलको (दूरीकृत्य) दूर करके (भोग्यभूतम्) भोग्यभूत (वस्तु) वस्तुको (भोक्ता) भोक्ता (भगवान्) षडैश्वर्य सम्पन्न नारायण भगवान् (स्वयम्) अपने ही (एव) निश्चय करके (भुङ्क्ते) भोग करते हैं (इति) इस प्रकारके (निश्चिन्वन्ति) निश्चय करते हैं। इस एकसौ चौबीसवीं वार्तामें अड़तालीस पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१२४॥

अब यङ्गलाल्वान् स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ यङ्गलाल्वान्गदिता वार्ता॥

मू०-यङ्गलाल्वान् स एवाचार्य्यो भवति योऽहङ्कारं त्यक्त्वा विषयान्तरं त्यक्त्वा गर्वं त्यक्त्वा-अकारार्थायान्तर्यामिने-एव सन् अर्चावतारमाश्रित्यानन्दी भवति, तस्य-एकस्य पारतन्त्र्येण लोकगुरुत्वे प्राप्ते सर्वलोकपरतन्त्रो भवति, नारायणाश्रयणेन लोकप्राप्तौ सम्भवन्त्यां नारायणान्याश्रित्य नरकेषु वसन्ति, स्वामिन आश्रयणे न सद्गतौ सम्भवन्त्यां स्वल्पानाश्रित्य दुर्गतिं प्राप्नुवन्ति, श्रीवैष्णवाश्रयणेन श्रियां सम्भवन्त्यां दुःशीलानाश्रित्य निःश्रीका भवन्ति, आचार्याश्रयणेनामृतपाने सम्भवन्ति, अज्ञानाश्रित्यानर्थमाप्नुवन्तीति ॥१२५॥

॥ यतीश्वरस्तुतिः ॥

अर्थ- स्वपदाम्बुजसंश्रितपापहरं सकलश्रुतिसारयथार्थकरम् ।
जयनादिविनाशनदण्डधरं प्रणमामि यतीश्वरमादिगुरुम् ॥१२१॥

(यङ्गलाल्वान्) यङ्गलाल्वान् स्वामीजी ने कहा है कि (सः) वही (एव) निश्चय करके (आचार्यः) आचार्य (भवति) होता है (यः) जो (अहंकारं) (अहङ्कारको (त्यक्त्वा) छोड़कर तथा (विषयान्तरम्) विषयान्तरों को (त्यक्त्वा) छोड़कर और (गर्वम्) अभिमान को (त्यक्त्वा) छोड़कर (अकारार्थाय) अकार का अर्थ विष्णु भगवान् (अन्तर्यामिने) अन्तर्यामी स्वरूप के लिए (एव) निश्चय करके (सन्) रहते हुए (अर्चावतारम्) अर्चावतार भगवान् को (आश्रित्य) आश्रयण करके (आनन्दी) आनन्दवाला यह चेतन (भवति) होता है। और (तस्य) उस (एकस्य) एककी (पारतन्त्र्येण) परतन्त्रता से (लोकगुरुत्वे) समस्त संसार के गुरुत्व (प्राप्ते) प्राप्त होने पर (सर्वलोकपरतन्त्रः) सम्पूर्ण लोक में परतन्त्र (भवति) होता है। और (नारायणाश्रयणेन) नारायण भगवान् को आश्रयण करने से (लोकप्राप्तौ) परमपदलोक की प्राप्ति (सम्भवन्त्याम्) सम्भव होने पर (नारायणान्याश्रित्य) नारायणान्य के आश्रयण करके (नरकेषु) नरकों में (वसति) वसते हैं। तथा (स्वामिनः) स्वामी नारायण भगवान् के (आश्रयणेन) आश्रयण करने से (सद्गतौ) सद्गति के (सम्भवन्त्याम्) सम्भव होने पर (स्वल्पान्) छोटे-छोटे देवों को (आश्रित्य) आश्रयण करके (दुर्गतिम्) दुर्गति को अर्थात् बारम्बार जन्ममरण को (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त करते हैं। तथा (श्रीवैष्णवाश्रयणेन) श्रीवैष्णवों को आश्रयण करने से (श्रियाम्) श्री के (सम्भवन्त्याम्) सम्भव होने पर (दुःशीलान्) दुष्टशील वालों को (आश्रित्य) आश्रयण करके (निःश्रीकाः) बिनाश्री के मनुष्य (भवन्ति) होते हैं। और (आचार्याश्रयणेन) सदाचार्य को आश्रयण करने से (अमृतपाने) अमृत पान करने में (सम्भवन्ति) ये चेतन समर्थ होते हैं। और (अज्ञानाश्रित्य) अज्ञान को आश्रयण करके (अनर्थम्) अनर्थ को (आप्नुवन्ति) प्राप्त करते हैं (इति) इस प्रकार की यह वार्ता है। "आप्नुवन्ति" यहाँ पर ॥ **स्वादिभ्यः श्नुः ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ७३ ॥** इस सूत्र से श्नु प्रत्यय हुआ है। इस एक सौ पच्चीसवीं वार्ता में छप्पनपद हैं। इति यङ्गलाल्वान्गदितवार्ताव्याख्यानम् ॥१२५॥

अब आन्ध्रपूर्ण स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं–

॥ अथ आन्ध्रपूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०–आन्ध्रपूर्णः[१]-मन्त्रसमाश्रयणेन[२] महादोषनिवृत्तौ[३]

सम्भवन्त्यां ममतामाश्रित्य म्रियन्ते, नियन्तुराचार्यस्य सन्निधौ नियमवतो वा शिष्यस्य सन्निधौ वास एवोचितः- नान्यथा नियतिः सम्भवतीति स्वस्य वैष्णवत्वाध्यवसाये स्वाचार्यादपकृष्टःकोपि शिष्यो न भवति, उद्देश्यप्रति- पत्तितौल्यात्, तथाहि ममाज्ञानमशक्तिमननुष्ठानं चापश्यन् मां विषयीकृत्य तदैकार्थमकरोदयमिति शिष्य आचार्यविषये-उद्देश्यप्रतिपत्तिं करोति, आचार्यश्च मम ज्ञानमशक्तिमननुष्ठानं चापश्यन् विषयप्रवणो यथा शालभञ्जिकामप्यालिङ्गति तथा ममापि परतन्त्रो भवति, अस्य भगवद्विषये कीदृश आदरातिशय इति-उद्देश्यप्रतिपत्तिं करोतीति ॥१२६॥

॥ आन्ध्रपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- आन्ध्रपूर्णोह्यसौधीमान् ज्ञात्वैवं गुरुदैवतम् ।
तस्थावन्यमजानानस्तत्कैंकर्यपरोनिशम् ॥१२२॥

(आन्ध्रपूर्णः) आन्ध्रपूर्ण स्वामीजी ने कहा है कि (मंत्रसमाश्रयणेन) मूल मंत्र के अच्छी तरह से आश्रयण करने से (महादोषनिवृत्तौ) बड़े दोष की निवृत्ति (संभवन्त्याम्) संभव होने पर (ममताम्) ममता को (आश्रित्य) आश्रय करके (म्रियन्ते) मनुष्य सब मरते हैं। (नियन्तुः) नियमन करनेवाले (आचार्यस्य) सदाचार्य की (सन्निधौ) सन्निधि में (वा) अथवा (नियमवतः) नियमवाले (शिष्यस्य) शिष्य की (सन्निधौ) सन्निधि में (वासः) निवास करना (एव) निश्चय करके (उचितः) उचित है। (अन्यथा) ऐसा नहीं मानने से (नियतिः) निश्चय (न) नहीं (संभवति) होता है (इति) इस प्रकार के (स्वस्य) अपने को (वैष्णवत्वाध्यवसाये) श्रीवैष्णवत्व अध्यवसाय करने पर (स्वाचार्यात्) अपने आचार्य से (अपकृष्टः) अपकृष्ट (कः) कोई (अपि) भी (शिष्यः) शिष्य (न) नहीं (भवति) होता है। (उद्देश्यप्रतिप्रत्तितौल्यात्) उद्देश्य की प्रतिपत्ति के तुल्य होने से (तथाहि) उसी को दिखाते हैं कि (मम) मेरे (अज्ञानम्) अज्ञान को तथा (अशक्तिम्) अशक्ति को (च) और (अननुष्ठानम्)

अननुष्ठान को (अपश्यन्) नहीं देखते हुए (माम्) मुझको (विषयीकृत्य) विषयी करके (तदा) तब (अयम्) यह (एकार्थम्) एक अर्थ को (अकरोत्) किये हैं। (इति) इस प्रकार (शिष्यः) शिष्य (आचार्य्यविषये) आचार्य के विषय में (उद्देश्यप्रतिपत्तिम्) उद्देश्य की प्रतिपत्ति को (करोति) करता है। (च) और (आचार्यः) आचार्य (मम) मेरे (अज्ञानम्) अज्ञान को तथा (अशक्तिम्) अशक्ति को (च) और (अननुष्ठानम्) अननुष्ठान को (अपश्यन्) नहीं देखता हुआ (विषयप्रवणः) विषय प्रवण पुरुष (यथा) जैसे (शालभञ्जिकाम्) शालभंजिका को (अपि) भी (आलिङ्गति) आलिङ्गन करता है (तथा) तैसे ही (मम) मेरा (अपि) भी (परतन्त्रः) परतंत्र (भवति) होता है। (अस्य) इस चेतन के (भगवद्विषये) श्रीमन्नारायण के विषय में (कीदृशः) कैसा (आदरातिशयः) आदर का अतिशय है, (इति) इस प्रकार के (उद्देश्यप्रतिपत्तिम्) उद्देश्य की प्रतिपत्ति को (करोति) करता है (इति) इस प्रकार की यह वार्ता है। इस एकसौ छब्बीसवीं वार्ता में छिहत्तर पद हैं। इति आन्ध्रपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१२६॥

अब दाशरथि स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–आचार्योक्तां वार्त्तामाप्ततया–आद्रियमाणानामन्तः करणं विधेयं भवति, अन्तःकरणे विधेये सति–अन्तर्यामी प्रसन्नो भवति, अन्तर्यामिनि प्रसन्ने सति–अन्तःप्रकाशो–ऽन्तःसुखं च भवेत्, अनयोः सत्योरन्तर्दोषोऽन्तर्दुःखं च निवर्तते, अनयोर्निवृत्तयोरनन्तानन्दो जायते, शत्रुभ्यो भयं न कार्यं स्वामिनः श्रियःपतेस्तस्य स्वभूतत्वात् आचार्यो हेतुत्रयेणोद्देश्यः, ज्ञानप्रदत्वेनानुष्ठानप्रदत्वेनोपाय– प्रदत्वेन च श्रीवैष्णवा हेतुत्रयेणोद्देश्याः, उपायस्य पूर्व– भावित्वेनोपेयस्य सीमाभूतत्वेनात्र स्थितिसमये वाक्सहाय– त्वेन च लक्ष्मीरपि हेतुत्रयेणोद्देश्या, पुरुषकारभूतत्वेन कैंकर्यवर्द्धकत्वेन नित्यप्राप्यत्वेन च-ईश्वरोऽपि हेतुत्रयेणो– द्देश्यः,

रुचिजनकत्वेन मोक्षप्रदत्वेनोपायभूतत्वेन च स्वभा-
वान्यथाज्ञानं स्वरूपान्यथाज्ञानमेतद् द्वयं विपरीतज्ञानम्,
एतत्कृत आत्मप्रदानमिव तत्कृतज्ञानप्रदानम्, ईश्वरकर्षक-
श्चेतने शेषत्वज्ञानोत्पत्तिक्षेत्रे प्रविश्य तदीयापराधविपरीत-
ज्ञानरूपकृमयो यथा न भक्षयन्ति, तथा रक्षन् कैंकर्या-
नुवर्तनरूपजलमार्गेणाचार्य्यकृपारूपजलं पूरयित्वा-अह-
ङ्कारममकारतृणानि भगवद्विषयखनित्रेणोन्मूल्य विपरी-
ताङ्गीकाररूपै गोभिश्शब्दादिरूपरुजा च-आक्रमो यथा
न स्यात्तथा प्रपन्नत्वरूपवृत्तिं परिकल्प्य श्रीवैष्णवरूप-
वर्षाण्युत्पाद्य पल्लवकोरककुसुमैः फालयति, तस्य कुसुमै-
र्ग्रन्थिता माला परमैकान्ती परमचेतनः क्षुधित आचार्य-
मुखेन चेतनं पक्वव्रीहिं चित्वा वेदान्तोलूखले-उपदेशेन
मुसलेन श्रवणरूपं प्राथमिकमवहननं कृत्वा शरीररूपं
तुषं निवृत्य मननरूपं विवेकं कृत्वा निदिध्यासनचालिन्या
विवेकरूपेतरविभागं कृत्वा-अहङ्कारममकाररूपस्थूलविभागं
कृत्वा, अन्यशेषत्वस्वस्वातन्त्र्यरूपसूक्ष्मकणविभागं कृत्वा
रुचिवासनारूपमालिन्यनिवर्तकेन विचाररूपेण पुनरवघा-
तेन शेषत्वरूपधावल्यमुत्पाद्य-अध्यवसाये स्थाल्यां प्रपत्तिं
जलं पूरयित्वा साधनान्तररूपं मालिन्यं प्रक्षाल्य प्रयो-
जनान्तररूपसूक्ष्मशर्करां दूरीकृत्य परभक्तिरूपे पात्रे पर-
ज्ञानरूपं जलं पूरयित्वा-अनुभवरूपचूल्यां विश्लेषरूपमग्निं
प्रवेश्य-उभयकर्मरूपं काष्ठं योजयित्वा त्वरारूपा फूत्कारं

कृत्वा–अवसादरूपाग्निजलव्यापारेण परमभक्तिरूपं पाकं कृत्वा सूक्ष्मशरीररूपपाकपात्रेण सुषुम्णारूपद्वारान्निष्क्रम्य–अर्चिरादिरूपसोपानेन वैकुण्ठसौधमारुह्य–अप्राकृतरूप–स्वर्णपात्रेऽहमन्नमित्युक्तमोदनं परिवेश्य अहमन्नादमिति भुक्ते एतद्द्वयमपि दाशरथिवाक्यम् ॥१२७॥

अर्थ–(आचार्योक्ताम्) आचार्यों से कही हुई (वार्ताम्) वार्ता को (आप्ततया) आप्तत्वेन (आद्रियमाणानाम्) आदर करने वालों के (अन्तःकरणम्) अन्तःकरण के (विधेये) विधेय (सति) होने पर अन्तर्यामी परमात्मा (प्रसन्नः) प्रसन्न (भवति) होते हैं। तथा (अन्तर्यामिनि) अन्तर्यामी परमात्मा के (प्रसन्ने) प्रसन्न (सति) होने पर (अन्तःप्रकाशः) भीतर में प्रकाश (च) और (अन्तःसुखम्) भीतर में सुख (भवेत्) होता है। और (अनयोः) अन्तः प्रकाश और अन्तः सुख इन दोनों के (सत्योः) होने पर (अन्तर्दोषः) भीतर का दोष (च) और (अन्तर्दुःखम्) भीतर का दुःख (निवर्तते) निवृत्त हो जाते हैं। (अनयोः) अन्तर्दोष और अन्तर्दुःख इन दोनों के (निवृत्तयोः) निवृत्त होने पर (अनन्तानन्दः) नहीं अन्त होनेवाला आनन्द (जायते) उत्पन्न होता है। (शत्रुभ्यः) शत्रुओं से (भयम्) भय (न) नहीं (कार्यम्) करने योग्य है (स्वामिनः) स्वामी (श्रियः) श्रीदेवीजी के (पतेः) पति (तस्य) उस नारायण भगवान् के (स्वभूतत्वात्) आत्मीयदास होने से। पापरिपुओं से भगवद्भक्तों को भय नहीं करना चाहिये। इस विषय में कुलशेखरस्वामीजी ने कहा है कि–

माभैर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधायामीश्चिरं यातना नामी नःप्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः। आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः ॥ मुकुन्द मा० श्लो० ११ ॥

ऐ मन्दमन ! चिरकालतक यमसंबन्धिनी यातना को बहुत प्रकार से चिन्तन करके भय मत करो। ये पाप शत्रु हम सबों को कुछ नहीं कर सकते हैं, क्योंकि हम सबों के स्वामी श्रीधर भगवान् हैं। आलस्य को छोड़कर भक्ति करके सुलभ नारायण को ध्यान करो। लोक के क्लेश को दूर करनेवाले वे क्या दास के क्लेश को दूर करने में समर्थ नहीं हैं ॥११॥ (आचार्यः) आचार्य (हेतुत्रयेण) तीन हेतुओं से (उद्देश्यः) उद्देश्य हैं (ज्ञानप्रदत्वेन) ज्ञानप्रद होने से १, तथा (अनुष्ठानप्रदत्वेन) अनुष्ठानप्रद होने से २, (च) और (उपायप्रदत्वेन) उपायप्रद होने से ३, तथा (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव

(हेतुत्रयेण) तीन हेतुओं से (उद्देश्याः) उद्देश्य हैं, (उपायस्य) उपाय के (पूर्वभावित्वेन) पूर्व भावी होने से १, तथा (उपेयस्य) उपेय के (सीमाभूतत्वेन) सीमाभूत होने से २, (च) और (अत्र) यहाँ पर (स्थितिसमये) स्थिति के समय में (वाक्सहायत्वेन) वाणी की सहायता से ३, और (लक्ष्मीः) लक्ष्मीजी (अपि) भी (हेतुत्रयेण) तीन हेतुओं से (उद्देश्या) उद्देश्य हैं (पुरुषकारभूतत्वेन) पुरुषकार होने से १, तथा (कैंकर्यवर्द्धकत्वेन) भगवत् के कैंकर्य को बढ़ाने से २, (च) और (नित्यप्राप्यत्वेन) नित्यप्राप्य होने से ३, तथा (ईश्वरः) परमेश्वर (अपि) भी (हेतुत्रयेण) तीन हेतुओं से (उद्देश्यः) उद्देश्य हैं (रुचिजनकत्वेन) प्रीति के जनक होने से १, तथा (मोक्षप्रदत्वेन) मोक्षप्रद होने से २, (च) और (उपायभूतत्वेन) उपायभूत होने से ३, (स्वभावान्यथाज्ञानम्) स्वभाव के अन्यथाज्ञान और (स्वरूपान्यथाज्ञानम्) स्वरूप के अन्यथाज्ञान (एतद्) ये (द्वयम्) दोनों (विपरीतज्ञानम्) विपरीतज्ञान हैं। (एतत्कृत-आत्मप्रदानम्) इससे किये हुए आत्मप्रदान के (इव) समान (तत्कृतज्ञानप्रदानम्) उससे किया हुआ ज्ञान प्रदान है। (ईश्वरकर्षकः) परमेश्वररूप कर्षक (शेषत्वज्ञानोत्पत्तिक्षेत्रे) शेषत्वज्ञान उत्पन्न होने के क्षेत्र (चेतने) चेतनजीवात्मा में (प्रविश्य) पैठकर (तदीयापराधविपरीतज्ञानरूपकृमयः) तदीय अपराध और विपरीत ज्ञानरूपकृमी (यथा) जिस प्रकार से (न) नहीं (भक्षयन्ति) भक्षण करते हैं। (तथा) उस प्रकार से (रक्षन्) रक्षा करते हुए (कैंकर्यानुवर्तनरूपजलमार्गेण) कैंकर्य के अनुवर्तनरूप जल के मार्ग द्वारा से (आचार्यकृपारूपजलम्) आचार्य की कृपारूप जल को (पूरयित्वा) भरकर (अहङ्कारममकारतृणानि) अहंकार और ममकाररूपघासों को (भगवद्विषयखनित्रेण) भगवद्विषयरूप खनित्र से (उन्मूल्य) उन्मूलन करके (विपरीताङ्गीकाररूपैः) विपरीत अंगीकाररूप (गोभिः) गौओं से (च) और (शब्दादिरूपरुजा) शब्दरूप रस गन्ध आदि रूप रोग से (आक्रमः) आक्रमण (यथा) जैसे (न) नहीं (स्यात्) होवे (तथा) तैसे (प्रपन्नत्वरूपवृत्तिम्) प्रपन्नत्वरूप वृत्ति को (परिकल्प्य) अच्छी तरह से कल्पना करके (श्रीवैष्णवरूपवर्षाणि) श्रीवैष्णवरूप वर्षा को (उत्पाद्य) उत्पन्न करके (पल्लवकोरककुसुमैः) पल्लवकोरक फूलों करके (फालयति) फलवाला कराता है। (तस्य) उस पल्लवकोरक रूप (कुसुमैः) फूलों से (ग्रन्थिता) गूथी हूई (माला) माला है। और (परमैकान्ती) परम एकान्ती (परमचेतनः) सबसे उत्कृष्ट चेतन (क्षुधितः) भूखे हुए (आचार्यमुखेन) आचार्य के मुख से (चेतनम्) चेतनरूप (पक्वव्रीहिम्) पके हुए धान को (चित्वा) इकट्ठा करके (वेदान्तोलूखले) वेदान्तरूप ओखल में (उपदेशेन) उपदेशरूप (मुसलेन) मुसल से (श्रवणरूपम्) श्रवणरूप (प्राथमिकम्) प्राथमिक (अवहननम्) अवहनन (कृत्वा) करके (शरीररूपम्) प्राकृतदेहरूप (तुषम्) भूसे को (निवृत्य) निवृत्त करके

(मननरूपम्) मननरूप (विवेकम्) विवेक को (कृत्वा) करके (निदिध्यासनचालिन्या) निदिध्यासन रूप चालिनी से (विवेकरूपेतरविभागम्) विवेक रूप से अन्य शरीर रूप भूसे के विभाग को (कृत्वा) करके तथा (अहङ्कारममकाररूपस्थूलविभागम्) अहंकार और ममकार रूप स्थूल विभाग को (कृत्वा) करके तथा (अन्यशेषत्वस्वस्वातन्त्र्यरूपसूक्ष्मकणविभागम्) और अन्य शेषत्व स्वस्वातन्त्र्यरूप सूक्ष्म कण के विभाग को (कृत्वा) करके (रुचिवासनारूपे) रुचि तथा वासनारूप (मालिन्यनिवर्तकेन) मलिनताको दूर करनेवाले (विचाररूपेण) विचाररूप करके (पुनः) फिर से (अवघातेन) अवहनन करने से (शेषत्वरूपधावल्यम्) शेषत्वरूप घवलताको (उत्पाद्य) उत्पन्न करके (अध्यवसाये) अध्यवसाय रूप (स्थाल्याम्) स्थाली में (प्रपत्तिम्) प्रपत्तिरूप (जलम्) जल को (पूरयित्वा) भर कर (साधनान्तररूपम्) साधनान्तर रूप (मालिन्यम्) मलिनता को (प्रक्षाल्य) प्रक्षालन करके (प्रयोजनान्तररूपसूक्ष्मशर्कराम्) प्रयोजनान्तररूप सूक्ष्म कंकण को (दूरीकृत्य) दूर करके (परभक्तिरूपे) परभक्तिरूप (पात्रे) पात्र में (परज्ञानरूपम्) परब्रह्म के ज्ञानरूप (जलम्) जल को (पूरयित्वा) भर कर (अनुभवरूपचूल्याम्) अनुभवरूप चूल्ही में (विश्लेषरूपम्) विश्लेष रूप (अग्निम्) आग को (प्रवेश्य) प्रवेश कराकर (उभयकर्मरूपम्) निष्काम और सकाम उभय कर्म रूप (काष्ठम्) काष्ठ को (योजयित्वा) जोड़ कर (त्वरारूपा) त्वरा रूप (फूत्कारम्) फूत्कार को (कृत्वा) करके (अवसादरूपाग्निजलव्यापारेण) अवसादरूप अग्नि और जल के व्यापार से (परमभक्तिरूपम्) परम भक्ति रूप (पाकम्) रसोई को (कृत्वा) करके (सूक्ष्मशरीररूपपाकमात्रेण) सूक्ष्म शरीर रूप पाक मात्र से (सुषुम्णारूपद्वारात्) सुषुम्णानाडीरूपद्वार से (निष्क्रम्य) निकल करके (अर्चिरादिरूपसोपानेन) अर्चिरादिरूप सोपान से (वैकुण्ठसौधम्) वैकुण्ठरूप कोठे पर (आरुह्य) चढ़कर (अप्राकृतरूपस्वर्णपात्रे) अप्राकृत रूप सोने के पात्र में (अहम्) मैं (अन्नम्) अन्न हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्तम्) कहे हुए (ओदनम्) भात को (परिवेश्य) अच्छे प्रकार से परोस करके (अहम्) मैं (अन्नादम्) अन्न को भक्षण करने वाला हूँ (इति) इस प्रकार के (भुङ्क्ते) भोजन करता है "भुङ्क्ते" यहाँ पर ॥ **भुजोऽनवने ॥ व्या० अ० १, पा० ३, सू० ६६** ॥ इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है। (एतद्) ये (द्वयम्) दोनों (अपि) भी (दाशरथिवाक्यम्) दाशरथि स्वामीजी के वाक्य हैं। इस एक सौ सत्ताईसवीं वार्ता में एक सौ निन्यानबे पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१२७॥



अब दाशरथि स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–क्षुभ्यते क्षोभयति क्षुब्ध एवावतिष्ठते, प्रसाद्यते प्रसादयति प्रसन्न एवावतिष्ठते, क्षुभ्यते चेतनः, क्षोभयत्यचेतनः क्षुब्ध एवावतिष्ठते, संसारी प्रसाद्यते चेतनः प्रसादयत्याचार्यः प्रसन्न एवावतिष्ठते-ईश्वरः, तस्मात् क्षुभ्यन्तं स्वं क्षोभयन्तमचितं प्रसादयन्तमाचार्य्यं च जानीयात् ॥१२८॥

अर्थ–(क्षुभ्यते) क्षुब्ध होता है। तथा (क्षोभयति) क्षोभको प्राप्त कराता है। और (क्षुब्धः) क्षुब्ध (एव) निश्चय करके (अवतिष्ठते) ठहरता है। "अवतिष्ठते" यहाँ पर ॥ **समवप्रविभ्यः स्थः** ॥ **व्या० अ० १, पा० ३, सू० २२** ॥ इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है। (प्रसाद्यते) प्रसादित होता है। तथा (प्रसादयति)। प्रसन्न करता है। और (प्रसन्नः) प्रसन्न (एव) निश्चय करके (अवतिष्ठते) ठहरता है। (चेतनः) चेतन (क्षुभ्यते) क्षुब्ध होता है। तथा (अचेतनः) अचेतन (क्षोभयति) क्षोभ को प्राप्त करता है। और (संसारी) संसारीजीव (क्षुब्धः) क्षुब्ध (एव) निश्चय करके (अवतिष्ठते) ठहरता है। और (चेतनः) चेतन जीवात्मा (प्रसाद्यते) प्रसादित होता है। तथा (आचार्य्यः) आचार्य (प्रसादयति) प्रसन्न कराते हैं। और (ईश्वरः) परमेश्वर (प्रसन्नः) प्रसन्न (एव) निश्चय करके (अवतिष्ठते) ठहरते हैं। (तस्मात्) उस कारण से (क्षुभ्यन्तम्) क्षुब्ध (त्वम्) अपने को तथा (क्षोभयन्तम्) क्षोभ कराते हुए (अचितम्) अचित को (च) और (प्रसादयन्तम्) प्रसन्न करते हुए (आचार्यम्) आचार्य को (जानीयात्) जाने। "जानीयात्" यहाँ पर ॥ **क्र्यादिभ्यः श्ना** ॥ **व्या० अ० ३, पा० १, सू० ८१** ॥ इस सूत्र से श्ना प्रत्यय हुआ है। इस एकसौ अठ्ठाईसवीं वार्ता में पैंतीस पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१२८॥

अब वेदान्ती स्वामीजी और तिरुक्वाल्लार भट्टजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यतितिरुक्वाल्लारभट्टोक्ता वार्ता ॥

मू०–वेदान्तिनश्चरमदशायां तिरुक्वाल्लारभट्टो गत्वा

मनसि[५] किं[६] वर्तत[७] इत्यपृच्छत्[८], स[९] च[१०] श्रीरङ्गनाथः[११] सर्वस्वदानं[१२] कृत्वा[१३]-अनुभावयेदात्मानमिति[१४] मनसि[१५] मम[१६] वर्तत[१७] इत्यवोचत्[१८] ॥१२९॥

अर्थ–(वेदान्तिनः) वेदान्ती स्वामीजी के (चरमदशायाम्) अन्ति समय में (तिरुक्वाल्लारभट्टः) तिरुक्वाल्लारभट्टजी ने (गत्वा) पास में जाकर (मनसि) आपके मन में (किम्) क्या (वर्तते) वर्तमान है (इति) ऐसा (अपृच्छत्) पूछा। (च) और तब (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरंग नाथ भगवान्जी (सर्वस्वदानम्) सर्वस्वदान दे करके (आत्मानम्) मेरी आत्मा को (अनुभावयेत्) अनुभावना करें (इति) ऐसा (मम) मेरे (मनसि) मन में (वर्तते) है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। इस वार्ता में बाईस पद हैं। इति यतितिरुक्वाल्लारभट्टोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१२९॥

अब तिरुक्वाल्लारभट्टजी के और मल्लैत्वंदरुलुंपेरुमाल् स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ तिरुक्वाल्लारभट्टमल्लैत्वंदरुलुंपेरुमालार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–स[१] च[२] मल्लैत्वंदरुलुंपेरुमाल्[३] प्रत्यवोचत्[४], स[५] च[६] श्रीरङ्गनाथसमीपे[७] विज्ञापनम्[८] अकरोत्[९] ॥१३०॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- नमामि रामानुजपादपङ्कजं वदामि रामानुजनामनिर्मलम् ।
स्मरामि रामानुजदिव्यविग्रहं करोमि रामानुजदासदासताम् ॥१३३॥

(च) और (सः) उस तिरुक्वाल्लारभट्टजी ने (मल्लैत्वंदरुलुंपेरुमाल्) मल्लैत्वंदरुलुं पेरुमाल् स्वामीजी के (प्रति) प्रति (अवोचत्) कहा है, कि वेदान्ती स्वामीजी के मन में यह है कि श्रीरंगनाथ भगवान्जी सर्वस्व दान देकर मेरी आत्मा को अनुभावित करें। (च) और तब (सः) उस मल्लैत्वंदरुलुं पेरुमाल् स्वामीजी ने (श्रीरङ्गनाथसमीपे) श्रीरंगनाथ भगवान् के समीप में (विज्ञापनम्) वेदान्ती स्वामीजी के मनोरथ को विज्ञापन (अकरोत्) किया। इस एक सौ तीसवीं वार्ता में दस पद

हैं। इति तिरुक्वाल्लारभट्टमल्लैत्वंदरुलुंपेरुमालार्योक्त- वार्ताव्याख्यानम् ॥१३॥

अब श्रीरंगनाथ भगवान् की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रङ्गनाथवार्ता ॥

मू०–श्रीरङ्गनाथश्च[१] निर्गम्य[२] वस्त्रमवतार्य[३] सर्वस्वदानमकरोत्[४] ॥१३१॥

॥ श्रीरङ्गनाथस्तुतिः ॥

अर्थ- तपस्ये मासि रोहिण्यां तटे सह्यभुवः स्थितम्।
श्रीरङ्गशायिनं वन्दे सेवितं सर्वदेशिकैः ॥१२४॥

(च) और वेदान्ती स्वामीजी के मनोरथ को विज्ञापन करने पर (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरंगनाथ भगवान् ने (निर्गम्य) अपनी सन्निधि से निकलकर वेदान्ती स्वामीजी के पास में जाकर (वस्त्रम्) वस्त्र को (अवतार्य) अवतरण करके वेदान्ती स्वामीजी के निमित्त (सर्वस्वदानम्) सर्वस्व दान को (अकरोत्) किया। इस वार्ता में सात पद हैं। इति श्रीरङ्गनाथवार्ताव्याख्यानम् ॥१३१॥

अब वेदान्ती स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यत्युक्ता वार्त्ता ॥

मू०–यतिश्चानुभूय[१] श्रीकलिवैरिदासप्रभृतीनाचार्यान्प्रति[२] स्वामी[३] मम[४] सर्वस्वदानमकरोदहमपि[५] सर्वस्वदानं[६] कर्तुमुद्युक्तः[७], यस्य[८] यस्य[९] यदपेक्षितं[१०] तत्[११] तेन[१२] गृह्यतामित्यवोचत्[१३] ॥१३२॥

अर्थ–(च) और (यतिः) सन्यासी वेदान्ती स्वामीजी (अनुभूय) श्रीरंगनाथ भगवान् के सर्वस्वदान को अनुभव करके (श्रीकलिवैरिदासप्रभृतीन्) श्रीकलिवैरिदास स्वामीजी प्रभृति (आचार्यान्) हम सबों के आचार्यों के (प्रति) प्रति (मम) मेरे (स्वामी) स्वामी श्रीरङ्गनाथजी ने (सर्वस्वदानम्) मेरे लिये सर्वस्वदान (अकरोत्)

किया है। और (अहम्) मैं (अपि) भी (सर्वस्वदानम्) आप सबों के लिये सर्वस्वदान (कर्तुम्) करने के लिये (उद्युक्तः) उद्यत हूँ। (यस्य) जिस (यस्य) जिस चेतन को (यत्) जो वस्तु (अपेक्षितम्) अपेक्षित हो (तत्) उस वस्तु को (तेन) वह चेतन (गृह्यताम्) ग्रहण करे, (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। इस एक सौ बत्तीसवीं वार्ता में चौबीस पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१३२॥

अब वेदान्ती स्वामीजी के और कलिवैरिदास स्वामीजी के संवाद रूप वार्ता को कहते हैं कि।

॥ अथ यतिकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कलिवैरिदासश्च ममोपायभूतामेकां वार्तां ब्रूहीत्यपृच्छत्, स चेदानीमुपायतया वक्तव्या वार्तास्ति किमित्युक्त्वा पुनरवोचत्, आत्मविनियोग ईश्वर इति न जानीहि, ईश्वरविनियोग आत्मेति जानीहि, स च प्रसन्नचित्तस्तूष्णीमभवत्, स च तव मनसि वर्तमानं वदस्वेत्यवोचत्, स च कस्मिंश्चिच्छ्रीवैष्णवे परमपदे गच्छति-अन्ये श्रीवैष्णवाः कथं तिष्ठेयुरित्यपृच्छत्, स चाधिकारानुगुणं तिष्ठेयुः, दृप्तश्चेदार्तस्तिष्ठेति, आर्तश्चेद्-दृप्तस्तिष्ठतीत्यवोचत्, कलिवैरिदासश्चामुमर्थमनुष्ठान-पर्यन्तमपश्यत् ॥१३३॥

अर्थ–(च) और (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदासस्वामीजी ने (मम) मेरा (उपायभूताम्) उपायभूत (एकाम्) एक (वार्ताम्) वार्ता को (ब्रूहि) कहिये (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) वेदान्ती स्वामीजी से पूछा। (च) और तब (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने (इदानीम्) इस समय में (उपायतया) उपायत्वेन (वक्तव्या) कहने योग्य (वार्ता) वार्ता (अस्ति) है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (पुनः) फिर से (अवोचत्) कहा है कि (आत्मविनियोगः) जीवात्मा का विनियोग (ईश्वरः) परमात्मा हैं (इति) प्रकार के तुम (न) मत (जानीहि) जानो

(ईश्वरविनियोगः) परमात्मा का विनियोग (आत्मा) जीवात्मा है (इति) इस प्रकार के (जानीहि) तुम जानो। (च) और इस वाक्य को सुनकर (सः) वे कलिवैरिदास स्वामीजी (प्रसन्नचित्तः) प्रसन्न चित्त होकर के (तूष्णीम्) चुप (अभवत्) हो गये। (च) और तब (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने (तव) तेरे (मनसि) मन में (वर्तमानम्) जो वर्तमान हो (वदस्व) उसको स्पष्ट कहो (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। (च) और तब (सः) उस कलिवैरिदास स्वामीजी ने (कस्मिंश्चित्) किसी (श्रीवैष्णवे) श्रीवैष्णव के (परमपदे) परम पद (गच्छति) जाने पर (अन्ये) अन्य (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (कथम्) कैसे (तिष्ठेयुः) ठहरेंगे (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा । (च) और तब (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने कहा कि (अधिकारानुगुणम्) अधिकार के अनुगुण (तिष्ठेयुः) श्रीवैष्णव ठहरेंगे। (चेत्) यदि (दृप्तः) दृप्त प्रपन्न परम पद प्राप्त करेगा तो (आर्तः) आर्त प्रपन्न (तिष्ठति) ठहरता है। और (आर्तः) आर्त प्रपन्न (चेत्) यदि परम पद को प्राप्त करता है तो (दृप्तः) दृप्त प्रपन्न (तिष्ठति) ठहरता है। (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। (च) और (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (अमुम्) इस पूर्वोक्त (अर्थम्) अर्थ को (अनुष्ठानपर्यन्तम्) अनुष्ठान पर्यन्त (अपश्यत्) देखा है। अब इस वार्ता में यह प्रश्न होता है कि दृप्त किसको कहते हैं और आर्त किसको कहते हैं। इन दोनों प्रश्नों का उत्तर लिखा है कि–

॥शरीरस्थितिपर्यन्तमाद्योऽत्रैव यथोचितम्। प्राप्तदुःखादिभुञ्जानः शरीरान्तेऽवसीय च। महाबोधोऽतिविश्वासो मोक्षसिद्धिमवस्थितः।

यहाँ पर जो दृप्त प्रपन्न है, सो अपने शरीरकी स्थिति पर्यन्त यथा उचित अपने प्रारब्ध कर्म करके प्राप्त हुए दुःख आदिकों भोगता हुआ रहता है,और जब उसके शरीरका नाश होता है, तब मोक्षकी स्थितिका निश्चय करके महाज्ञानी और महाविश्वासी होकर स्थिति को प्राप्त करता है उसको दृप्त कहते हैं।। और

॥अथान्त्योऽसहमानस्तत्क्षणमेव तु संसृतिम्। तथैव भगवत्प्राप्तौ सत्वरस्वान्त उच्यते॥

इसके बाद दूसरा जो आर्त प्रपन्न है, सो जन्म मरणको और जन्म-मरणके दुःखोंको क्षण मात्र भी सहन नहीं करता है, और तैसे ही भगवत् की प्राप्तिके विषयमें जिसका चित्त बहुत वेग वाला है उसको आर्त कहते हैं।। इस एकसौ तैंतिसवीं वार्तामें पचहत्तर पद हैं। इति यतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१३३।।

अब कलिवैरिदास स्वामीजीके और श्रीवैष्णवोंके संवाद रूप वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता॥

मू०–अम्मंगियम्माल्परमगमनसमये तद्गृहं कलि-
वैरिदासोऽगमत्, तत्र तत्पत्नीं प्रसन्नां दृष्ट्वा तत्रागताः
श्रीवैष्णवा अस्य निदानं किमिति तमपृच्छत्, स च
अम्मंगियम्मालयं प्राक् पत्नीविषये प्रातिकूल्यमकरो
च्चेदियमपि तत्फलायाभ्यासूयेदित्यवोचत्॥१३४॥

अर्थ-(अम्मंगियम्माल्परमपदगमनसमये) अम्मंगियम्माल् स्वामीजीके परम पद गमनके समयमें (तद्गृहम्) उस अम्मंगियम्माल् स्वामीजीके घरपर (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदासस्वामीजी (अगमत्) गये। और (तत्र) वहाँपर (तत्पत्नीम्) अम्मंगियम्माल् स्वामीजीकी पत्नीको (प्रसन्नाम्) प्रसन्न (दृष्ट्वा) देखकर (तत्र) वहाँपर (आगताः) आये हुए (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (अस्य) इस प्रसन्न होनेका (निदानम्) कारण (किम्) क्या है (इति) इस प्रकारसे (तम्) उस कलिवैरिदास स्वामीजीसे (अपृच्छन्) पूछे। (च) और तब (सः) उस कलिवैरिदास स्वामीजी ने (अयम्) इस (अम्मंगियम्माल्) अम्मंगियम्माल् महात्मा ने (प्राक्) पहले नीरोग समय में (चेत्) यदि (पत्नीविषये) अपनी पत्नी के विषयमें (प्रातिकूल्यम्) प्रातिकूल्य (अकरोत्) किया है। तो (इयम्) यह अम्मंगियम्माल्की पत्नी (अपि) भी (तत्फलाय) उसके फलके लिये (अभ्यसूयेत्) अभ्यसूया करेगी (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है। इस एक सौ चौंतिसवीं वार्तामें बत्तीस पद हैं। इति कलिवैरिदास श्रीवैष्णवोक्तवार्ता-व्याख्यानम्॥१३४॥

❁

अब कलिवैरिदास स्वामीजीके और श्रीवैष्णवोंके सम्वाद रूप वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता॥

मू०–अनन्तरं स्वशिष्ये कस्मिंश्चिच्छ्रीवैष्णवे परम-

पदं[६] गच्छति[७] तत्पुत्राश्चरणयोः[८] पतित्वा[९] अरुदन्[१०] समीपस्थाः[११] श्रीवैष्णवा[१२] एतन्निदानं[१३] किमित्यपृच्छन्[१४], स[१५] च[१६] प्राप्तव्यदेश-समुच्छ्राये[१७] दृष्टे[१८] त्यक्तव्यस्य[१९] देशस्यायं[२०] विषादो[२१] भवत्येवे-त्यवोचत्[२२]॥१३५॥

अर्थ-(अनन्तरम्) इसके बाद (कस्मिंश्चित्) किसी (स्वशिष्ये) अपने शिष्य (श्रीवैष्णवे) श्रीवैष्णवके (परमपदम्) परमपद (गच्छति) जाने पर (तत्पुत्राः) उस श्रीवैष्णवके पुत्र सब (चरणयोः) अपने पिताके दोनों चरणोंमें (पतित्वा) गिरकर (अरुदन्) रोदन किये। तब (समीपस्थाः) समीपमें स्थित (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (एतन्निदानम्) इसका कारण (किम्) क्या है (इति) ऐसा (अपृच्छन्) पूछा। (च) और तब (सः) उस कलिवैरिदास स्वामीजी ने (प्राप्तव्यदेशसमुच्छ्राये) प्राप्त करने योग्य देशके समुच्छ्राय (दृष्टे) देखने पर (त्यक्तव्यस्य) त्याग करने योग्य (देशस्य) देशका (अयम्) यह (विषादः) विषाद (भवति) होता है (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है। इस वार्तामें अट्ठाईस पद हैं। इति कलिवैरिदासश्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१३५॥

अब पराशर भट्टाचार्यजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ पराशरभट्टाचार्योक्ता वार्ता॥

मू०-भट्टार्य्यः[१] स्वशिष्यं[२] कञ्चन[३] श्रीवैष्णवं[४] प्रसादव-स्त्रमानयेत्यवोचत्[५], स[६] च[७] गत्वा[८] प्रसादवस्त्रसमीपस्थं[९] द्रव्य-वस्त्रं[१०] दृष्ट्वा[११]-इदन्नेयमिदं[१२] वा[१३] नेयमिति[१४] संदिहानोऽतिष्ठत्[१५] स[१६] च[१७] विलम्बं[१८] दृष्ट्वा[१९] गत्वा[२०] तत्स्थितिं[२१] दृष्ट्वा[२२]-अवकाशे[२३] प्राप्ते[२४] द्वयमपि[२५] त्वामबाधत[२६] आगच्छेत्यवोचत्[२७]॥१३६॥

अर्थ-(भट्टार्यः) भट्टारक स्वामीजी ने (स्वशिष्यम्) अपने शिष्य (कञ्चन) किसी (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णवको (प्रसादवस्त्रम्) प्रसादवस्त्रको (आनय) लाओ (इति) ऐसा (अवोचत्) कहा। (च) और तब (सः) वह श्रीवैष्णव (गत्वा) प्रसादवस्त्रके पास

जा करके (प्रसादवस्त्रसमीपस्थम्) प्रसाद वस्त्रके पासमें स्थित (द्रव्यस्त्रम्) द्रव्य वस्त्रको (दृष्ट्वा) देखकर (इदम्) यह (नेयम्) प्राप्त करने योग्य है (वा) अथवा (इदम्) यह वस्त्र (नेयम्) प्राप्त करने योग्य है (इति) इस प्रकारके (संदिहानः) संदेह करते हुए (अतिष्ठत्) ठहरे। (च) और इसके बाद (सः) उस भट्टारक स्वामीजी ने (विलम्बम्) अपने शिष्यके आनेमें विलंब (दृष्ट्वा) देखकर (गत्वा) प्रसाद वस्त्र के पास में जाकर के (तत्स्थितिम्) अपने उस शिष्य की स्थिति को (दृष्ट्वा) देखकर के (अवकाशे) अवकाश (प्राप्ते) पाने पर (द्वयम्) प्रसाद वस्तु और द्रव्य वस्त्र ये दोनों (अपि) भी (त्वाम्) तुमको (अबाधत्) बाधा किये हैं (आगच्छ) अब तुम चले आओ (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है। इस एकसौ छत्तीसवीं वार्तामें अड़तीस पद हैं। इति भट्टाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१३६॥

अब श्रीकृष्णपादस्वामीजीके और श्रीवैष्णवों के संवादरूप वार्त्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीकृष्णपादश्रीवैष्णवोक्ता वार्त्ता ॥

मू०–श्रीकृष्णपादशिष्ययोः परस्परं रागद्वेषं कुर्वतोरेकः परिभूत इत्युपविवेश, तच्छ्रुत्वा स्वयमेव परिभूतः स्वयमेव-उपवासमप्यकरोदित्यवोचत्, उभयोः श्रीवैष्णवयोः परस्परं रागद्वेषं कुर्वतोरिमावेकीकुर्विति श्रीकृष्णपादं श्रीवैष्णवा अकथयन्, स च जगति-ईश्वरौ द्वौ स्तः किमित्यवोचत्, पुनस्त एकीकुर्वित्यवोचन्, स च स्वशरीरं नियन्तुमशक्तः कथमन्यशरीरं नियमयामीत्यवोचत्, तथाप्येव न वक्तव्यमिति ते अवोचन्, स च-अदृष्टफलभीत्या हृदयं न संकोचयामः, दृष्टफलभीत्या-वाचं न संकोचयामः, वयं तु किमिति वदाम इत्यवोचत्, तावुभावपि भीतौ स्वयमेकीभूतौ ॥१३७॥

अर्थ-(श्रीकृष्णपादशिष्ययोः) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी के दो शिष्य (परस्परम्) आपस में (रागद्वेषम्) राग और द्वेष (कुर्वतोः) करते हुए (एकः) उन दोनों शिष्यों में से एक शिष्य (परिभूतः) अनादृत हो करके (इति) इस प्रकार से (उपविवेश) पास में बैठ गया (तत्) इस वृत्तान्त को (श्रुत्वा) सुनकर (स्वयम्) अपने से (एव) निश्चय करके (परिभूतः) परिभूत (स्वयं) अपने से (एव) निश्चय करके (उपवासम्) उपवास को (अपि) भी (अकरोत्) किये हैं (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। (उभयोः) दोनों (श्रीवैष्णवयोः) श्रीवैष्णवों के (परस्परम्) आपस में (रागद्वेषम्) राग और द्वेष को (कुर्वतोः) करते हुए (इमौ) इन दोनों श्रीवैष्णों को (एकीकुरु) एक कीजिये (इति) इस प्रकार के (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (श्रीकृष्णपादम्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी से (अकथन्) कह। (च) और तब (सः) वह श्रीकृष्णपादस्वामीजी (जगति) संसार में (ईश्वरौ) परमेश्वर (द्वौ) दो (स्तः) हैं। (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। और (पुनः) फिर से (ते) उन श्रीवैष्णवों ने (एकीकुरु) एक कीजिये (इति) इस प्रकार के (अवोचन्) श्रीकृष्णपादस्वामीजी से कहा। (च) और तब (सः) उस श्रीकृष्णपादस्वामीजी ने (स्वशरीरम्) अपने शरीर को (नियन्तुम्) नियमन करने के लिये (अशक्तः) असमर्थ मैं (कथम्) कैसे (अन्यशरीरम्) दूसरे के शरीर को (नियमयामि) नियमन कर सकता हूँ (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। (तथापि) तौ भी (एवम्) इस प्रकार के (न) नहीं (वक्तव्यम्) कहने योग्य है (इति) इस प्रकार के (ते) वे श्रीवैष्णव (अवोचन्) बोले। (च) और (सः) तब वह श्रीकृष्णपादस्वामीजी (अदृष्टफलभीत्या) अदृष्टफल के भय से (हृदयम्) हृदय को (न) नहीं (संकोचयामः) हम सब संकोच करेंगे। और (दृष्टफलभीत्या) दृष्ट फल के भय से (वाचम्) वाणी को (न) नहीं (संकोचयामः) हम सब संकोच करेंगे (तु) लेकिन (वयम्) हम सब (किम्) क्या (इति) इस विषय में (वदामः) कहें (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। और इसके बाद (तौ) वे (उभौ) दोनों (अपि) भी श्रीकृष्णपाद स्वामीजी के शिष्य (भीतौ) डरे हुए (स्वयम्) अपने ही से (एकीभूतौ) रागद्वेष को छोड़कर एक हो गये। इस एक सौ सैंतीसवीं वार्ता में पचासी पद हैं। इति श्रीकृष्णपादश्रीवैष्णवोक्त-वार्ताव्याख्यानम् ॥१३७॥

अब धनुर्धरदासजी के और दाशरथिस्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दाशरथिधनुर्धरदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–धनुर्धरदासः दाशरथिचरणौ प्रणम्य शिष्यलक्षणं किमित्यपृच्छत्, तदा तदुक्तवार्ता-आचार्यविषये शिष्यः भार्यावच्छरीरवद्धर्मवत्तिष्ठेत्, तच्चोक्तानुष्ठानं चिन्तितानुष्ठानं चिन्तनरूपत्वञ्चेति ॥१३८॥

॥ धनुर्धरदासस्तुतिः ॥

अर्थ- धनुर्दासो यतीन्द्रस्य शिष्यो भूत्वा महामतिः ।
नित्यकैंकर्यनिरतः सन्तस्थौ गुरुसन्निधौ ॥१२५॥

(धनुर्धरदासः) धनुर्धरदासजी ने (दाशरथिचरणौ) दाशरथि स्वामीजी के चरणारविन्दों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (शिष्यलक्षणम्) शिष्य का लक्षण (किम्) क्या है (इति) इस प्रकार (अपृच्छत्) पूछा। (तदा) तब (तदुक्तवार्ता) दाशरथि स्वामीजी की कही हुई वार्ता है कि (आचार्यविषये) आचार्य के विषय में (शिष्यः) शिष्य (भार्यावत्) व्याह की हुई स्त्री के समान अथवा (शरीरवत्) अपने शरीर के समान या (धर्मवत्) स्ववर्णाश्रमोचित धर्म के समान (तिष्ठेत्) ठहरे। (च) और (तत्) वह (उक्तानुष्ठानम्) कहा हुआ अनुष्ठान तथा (चिन्तितानुष्ठानम्) चिन्तवन किया हुआ अनुष्ठान (च) और (चिन्तनरूपत्वम्) चिन्तनरूपत्व है (इति) इस प्रकार की यह वार्ता है। इस एक सौ अड़तीसवीं वार्ता में बाईस पद हैं। इति दाशरथिधनुर्धरदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१३८॥

अब अनन्ताल्वान् स्वामीजी के और कूरेशस्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथकूरेशानन्तार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अनन्ताल्वान् कूरेशचरणौ प्रणम्य-आचार्यलक्षणं किमित्यपृच्छत्, तदा तदुक्तवार्ता शिष्यविषये-आचार्यः भर्तृवच्छरीरिवद्धर्मिवत्तिष्ठेत्, तच्च नियम्य स्वीकारः, अवस्थापनं च, अचेतनवत् यथाभिमतविनियोजनमिति

यावत्[२६] तदाधारत्वं[२७] चेति[२८]-आचार्य्यः[२९] शिष्यस्य[३०] हितं[३१] काम-[३२]यते[३३] शिष्यः[३४] सर्वप्रकारेणापि[३५] आचार्यार्थं[३६] स्वात्मानमव-[३७]स्थापयति[३८] ॥१३९॥[३९]

॥ कूरेशस्तुतिः ॥

अर्थ- अथ कूरेश्वरः श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ।
आचार्यार्चैकनिरतः पञ्चकालपरायणः ॥१२६॥

(अनन्ताल्वान्) अनन्ताल्वान् स्वामीजी ने (कूरेशचरणौ) कूरेश स्वामीजी के चरणारविन्दों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (आचार्यलक्षणम्) आचार्य का लक्षण (किम्) क्या है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। (तदा) तब (तदुक्तवार्ता) उस कूरेश स्वामीजी की कही हुई वार्ता है कि (शिष्यविषये) शिष्य के विषय में (आचार्यः) आचार्य (भर्तृवत्) पति के समान (शरीरिवत्) आत्मा के समान और (धर्मिवत्) धर्मी के समान (तिष्ठेत्) ठहरे। (च) और (तत्) उसको (नियम्य) नियमन करके (स्वीकारः) स्वीकार करना (च) और (अवस्थापनम्) अवस्थापन करना (अचेतनवत्) जड़ तत्त्व के समान (यथा) यथार्थ (अभिमतविनियोजनम्) अभिमत वस्तु को विषय रूप से नियोजन करना (इति) इस प्रकार के (यावत्) जबतक (च) और (तदाधारत्वम्) उस शिष्य के आधारत्व (इति) इस प्रकार के (आचार्यः) आचार्य (शिष्यस्य) शिष्य के (हितम्) हित को (कामयते) कामना करें। "कामयते" यहाँ पर ॥ **कर्मेणिङ् ॥ व्या० आ० ३, पा० १, सू० ३०** ॥ इस सूत्र से णिङ् प्रत्यय हुआ है। (शिष्यः) शिष्य (सर्वप्रकारेण) सब प्रकार से (अपि) भी (आचार्यार्थम्) आचार्य के लिये (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (अवस्थापयति) अवस्थापन करता है। इस एक सौ उन्तालिसवीं वार्ता में उन्तालीस पद हैं। इति कूरेशानन्तार्योक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥१३९॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०-भाष्यकृत्[१]संन्यासावस्थायां[२] शरीरसम्बन्धस्त्यक्त-[३]व्यः[४] किमिति[५] पृष्टः[६] दाशरथिव्यतिरिक्तं[७] संन्यस्तवानह-[८]

मित्यवोचत्[११], समीपस्थैरेवं[१२] कथं[१३] क्रियत[१४] इति[१५] पृष्टः[१६] हस्तगत-त्रिदण्डस्त्याज्यश्चेद्[१७]दाशरथिस्त्याज्य[१८] इत्यवोचत्[१९] ॥१४०॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ- दिगन्तकीर्तिर्यतिसार्वभौमो ह्यासेतुशीताचलभूमिभागे ।
जितारिवर्गः सुतरां विरेजे महेन्द्रवत्सर्वबुधैः सुसेव्यः ॥१२७॥

(भाष्यकृत्) श्रीभाष्य कार से (संन्यासावस्थायाम्) संन्यास की अवस्था में (शरीरसम्बन्धः) शरीर का सम्बन्ध (त्यक्तव्यः) त्याग करने योग्य है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (पृष्टः) समीप में स्थित पुरुषों ने पूछा। तब (दाशरथिव्यतिरिक्तम्) दाशरथि को छोड़कर और सब कुछ (अहम्) मैंने (संन्यस्तवान्) संन्यास करदिया (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) रामानुज स्वामीजी ने कहा है। तब (समीपस्थैः) समीप में स्थित श्रीवैष्णवों ने (एवम्) इस प्रकार के (कथम्) कैसे (क्रियते) आप करते हैं (इति) इस प्रकार के (पृष्टः) पूछा। (चेत्) यदि (हस्तगतः) हाथ में प्राप्त (त्रिदण्डः) त्रिदण्ड (त्याज्यः) त्याग करने योग्य हो तो (दाशरथिः) दाशरथि (त्याज्यः) त्याग करने योग्य हो सकते हैं, (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने कहा है। यहाँ पर कुछ प्रच्छन्न बौद्ध मत वाले कहते हैं कि त्रिदण्ड ग्रहण करने को कहीं पर भी श्रुति स्मृति में नहीं लिखा है। इस विषय में यह कहना है कि झूठा जो कहना हो सो कहो परन्तु जो लोग श्रुति स्मृति को अध्ययन किये हैं वे लोग जानते हैं कि जहाँ जहाँ पर संन्यास का वर्णन आया है वहाँ वहाँ पर श्रुति स्मृति आदिक में त्रिदण्डग्रहण करने को लिखा है। उन्हीं मे से कुछ प्रमाणों को यहाँ पर मैं लिखता हूँ कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें।।

सर्वभूतहितश्शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः। एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं ग्राममाविशेत्॥ नारदपरिव्राजकोप० उपदे० ३, श्रु० ५५ ॥

सब जीवों का हित करे, शान्त रहे, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करे, एकाराम हो सबको त्यागकर भिक्षा के लिये गाँव में प्रवेश करे ॥५५॥ और मैत्रायणी श्रुति में लिखा है कि **॥ त्रीन्वैणवान्दण्डान्दक्षिणे पाणौ धारयेत् ॥ मैत्रा० श्रु०॥** तीन वेणु के दण्ड को दाहिने हाथ में धारण करे॥ और शाट्यायनीयोपनिषद् में लिखा है कि–

त्रिदण्डमुपवीतं च वासः कौपीनवेष्टनम्। शिक्यं पवित्रमित्येतद्बिभृयाद्यावदायुषम् ॥ शा० श्रु० ७॥

संन्यासी जबतक जिये तबतक त्रिदण्ड १, और यज्ञोपवीत २, तथा कौपीन वेष्टन

वस्त्र ३, और शिक्य ४, तथा पवित्रा ५, इन सबों को धारण करे ।।७।।

त्रिदण्डं वैष्णवं लिङ्गं विप्राणां मुक्तिसाधनम्। निर्वाणं सर्वधर्माणामितिवेदानुशासनम् ॥ शा० श्रु० १०॥

सब धर्मों के निर्वाण और ब्राह्मणों के मोक्ष का साधन वैष्णव चिह्न त्रिदण्ड है, इस प्रकार के वेद का अनुशासन है।।१०।। और भी लिखा है कि–

अथ खलु सौम्य कुटीचको बहूदको हंसः परमहंस इत्येते परिव्राजकाश्चतुर्विधा भवन्ति, सर्व एते विष्णुलिङ्गिनः शिखिनोपवीतिनः ॥११॥

हे सौम्य ! निश्चय करके कुटीचक १, बहूदक २, हंस ३, परमहंस ४, इस भेद से संन्यासी चार प्रकार के होते हैं वे सब त्रिदण्डी और शिखी तथा उपवीती हैं।।११।। और अत्रि महर्षि का वाक्य है कि **॥ चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः ॥ अत्रेर्वाक्यम् ॥** चार प्रकार के जो संन्यासी हैं सो सबही त्रिदण्डी हैं।।

त्रिदण्डमुपवीतं च शिखाकाषायमम्बरम्। कमण्डलुश्च भिन्नं हि यतीनां तु विधीयते ॥ पराशरीयधर्म शा० उत्तरखं० अ० ५, श्लो० १३॥

त्रिदण्ड तथा यज्ञोपवीत और शिखा तथा काषायवस्त्र और कमण्डलु ये सब संन्यासियों के लिये सर्वदा विधान किये गये हैं।।१३।।

त्रिदण्डं कुण्डिकां चैव भिक्षाधारं तथैव च। सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव बहूदकः ॥ विष्णुस्मृ० अ० ४, श्लो० १७॥

त्रिदण्ड कमण्डलु भिक्षा पात्र और यज्ञोपवीत को बहूदक संन्यासी सर्वदा ग्रहण करे ।।१७।।

यज्ञोपवीतं दण्डं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम्। अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥ विस्मृ० अ० ४ श्लो० २१॥

यज्ञोपवीत त्रिदण्ड मक्खी आदिक जीव को निवारण का वस्त्र, वेद-ज्ञाता हंस संन्यासी का यही परिग्रह है, अन्य नहीं।।२१।।

सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः। एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत्॥ याज्ञवल्क्यस्मृ० अ० ३, श्लो० ५८॥

सब जीवों का हित करे, शान्त रहे, त्रिदण्ड और कमण्डलु को धारण करे, एकारामहो सबको त्याग कर भिक्षा के लिये गाँव में जाय।।५८।। और वौधायन स्मृति में लिखा है कि **॥ त्रीन्दण्डानङ्गुलिस्थूलान्वैणवान्मूर्धसम्मितान् ॥ बौधायनस्मृ०** अङ्गुलि के समान मोटा मस्तक पर्यन्त तीन बाँस के दण्ड संन्यासी रखे।। और हारीतस्मृति

में लिखा है कि।।

त्रिदण्डं वैष्णवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम्। वेष्टितं कृष्णगोपालरज्जुमच्चतुरङ्गुलम् ॥ हारीतस्मृ० अ० ६, श्लो० ६॥

चार अङ्गुल के काली गौ के बालों की रस्सी लिपटी हो और जिसकी गाँठ सम हो ऐसा बाँस का त्रिदण्ड ग्रहण करे।।६।। और लिखित स्मृति में लिखा है कि **॥ त्रिदण्डग्रहणादेवप्रेतत्वन्नैव जायते। लिखितस्मृ० श्लो० २२ ॥** त्रिदण्ड के ग्रहण करने से ही प्रेत नहीं होता है।।२२।। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि श्रुति और स्मृति में त्रिदण्ड ग्रहण करने को लिखा है। इस विषय में जिसको अधिक जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "यतीन्द्रधर्ममार्तण्ड" नामके ग्रन्थ को देखले। इस एक सौ चालिसवीं वार्ता में पच्चीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकरोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१४०।।



अब कोलिरीआल्वान्स्वामीजी के प्रश्नरूप वार्ता को कहते हैं कि–

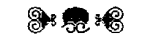
॥ अथ कोलिरीआल्वानाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–(१)कोलिरीआल्वान् (२)इति (३)कश्चिन्मम (४)हितं (५)वक्तव्यमित्यपृच्छत् (६)(७)(८) ॥१४१॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–श्रीमाधवाङ्घ्रिजलजद्वयनित्यसेवाप्रेमाविलाशयपराङ्कुशपादभक्तम्।
कामादिदोषहरमात्मपदाश्रितानां रामानुजं यतिपतिं प्रणमामि मूर्ध्ना ॥१२८॥

(कोलिरीआल्वान्) कोलिरीआल्वान् नाम के महात्मा ने (कश्चित्) कोई (इति) यह (मम) मेरा (हितम्) कल्याण (वक्तव्यम्) कहने योग्य है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा है। इस वार्ता में आठ पद हैं। इति कोलिरीआल्वानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।१४१।।



अब पराशरभट्टाचार्य जी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पराशरभट्टाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–(१)भट्टार्यः (२)भगवन्तं (३)तं (४)च (५)दृष्ट्वा (६)त्यक्तेषु (७)तस्य

विश्वासोऽनुत्पत्त्या "वृथैव भवतो याता भूयसी जन्म-सन्ततिः, तस्यामन्यतमं जन्म सञ्चिन्त्य शरणं व्रज" इति श्लोकं पपाठ, सुकृतदुष्कृतानां प्रधानावात्मसमर्पण-मात्मापहारश्च, एताभ्यामप्यधिके सुकृतदुष्कृते, आत्मा-पहारदोषं निवर्त्यात्मसमर्पणं कारयितुराचार्यस्य विषये कृतज्ञता कृतघ्नता च ॥१४२॥

अर्थ–(भट्टार्य्यः) भट्टारकस्वामी जी (भगवन्तम्) षडैश्वर्य सम्पन्न (श्रीमन्नारायणजीको) च और (तम्) उस भागवत को (दृष्ट्वा) देख कर (त्यक्तेषु) त्याग किये हुए विषयों में (तस्य) उसका (विश्वासः) विश्वास (अनुत्पत्त्या) नहीं उत्पन्न होने से (वृथा) व्यर्थ (एव) विश्चय करके (भवतः) आपकी (भूयसी) बहुत सी (जन्मसन्ततिः) जन्म की सन्तति (याता) हो चुकी है (तस्याम्) उस जन्म की सन्तति में (अन्यतमम्) अन्यतम (जन्म) जन्म को (सञ्चिन्त्य) अच्छी तरह से चिन्तवन करके (शरणम्) शरण को (व्रज) प्राप्त करो (इति) इस (श्लोकम्) श्लोक को (पपाठ) पढ़े। (सुकृतदुष्कृतानम्) सुकृत और दुष्कृत में (प्रधानौ) प्रधान (आत्मसमर्पणम्) आत्मसमर्पण (च) और (आत्मापहारः) आत्मापहार है। और (एताभ्याम्) इन दोनों से (अपि) भी (अधिके) अधिक (सुकृतदुष्कृते) सुकृत और दुष्कृत (आत्मापहारदोषम्) आत्मापहारदोष को (निवर्त्य) दूर करके (आत्मसर्मपणम्) आत्म-समर्पण को (कारयितुः) कराने वाले (आचार्यस्य) आचार्य के (विषये) विषय में (कृतज्ञता) कृतज्ञता (च) और (कृतघ्नता) कृतघ्नता है। इस एक सौ बेयालिसवीं वार्ता में बयालिस पद हैं। इति पराशरभट्टाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१४२॥

अब गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीगोष्ठीपूर्णः श्रीरङ्गं गत्वा श्रीमालाकारेण सह भाष्यकृतो मठं गत्वा प्रणम्य स्थितं तं प्रति त्वं श्रीमालाकारसमीपे सहस्रगीत्यर्थं शृणुयाति भाष्यकारं

१९ २० २१ २२ २३ २४ २५
मालाकारहस्ते दत्वा पुनरागतवान्, गोष्ठीपूर्णः पुनश्च
२६ २७ २८ २९ ३० ३१
रङ्गं गत्वा श्रीमालाकारगृहम् गत्वा तं सहस्रगीतिव्याख्या
३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९
कुतो न प्रवृत्यते-इत्यपृच्छत्, स च यामुनाचार्यसमीपे
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६
मया येऽर्थाः श्रुतास्ततो भिन्नं विश्वामित्रसृष्टिव-
४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४
त्स्वकल्पितमर्थं वदतीति-अहं व्याख्यानाद्व्यावृत्त इत्य
५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४
वदत्, गोष्ठीपूर्णः तदुक्तमर्थं वदस्वेत्यपृच्छत्, स च भाष्य-
६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१
कृदर्थं कञ्चन अवदत्, तच्छ्रुत्वा गोष्ठीपूर्णः-अमुमर्थं
७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७
यामुनाचार्यसमीपे अहमश्रृणवमित्युक्त्वा सान्दीपिनि-
७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३
समीपे श्रीकृष्ण इव त्वत्समीपे भाष्यकृदर्थं शृणोति-
८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९
यामुनाचार्यानभिमतोऽर्थः, अस्य न प्रकाशित इति
९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७
जानीहि, भवान् अस्याज्ञातज्ञापनं करोमीति न जानातु-
९८ ९९
इत्यवदत् ॥१४३॥

॥ गोष्ठीपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- **ततः कदाचिच्छ्रीरंगे गोष्ठीपूर्णः समागतः ।**
मालाधरं समादाय यतीन्द्रमठमाविशत् ॥१२९॥

(श्रीगोष्ठीपूर्णः) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजी (श्रीमालाकारेण) श्रीमालाकार स्वामीजी के (सह) साथ (श्रीरंगम्) श्रीरङ्गम् क्षेत्र को (गत्वा) जा करके (भाष्यकृतः) श्रीभाष्यकार के (मठम्) मठ में (गत्वा) जा करके (प्रणम्य) प्रणाम करके (स्थितम्) ठहरे हुए (तम्) उस श्रीभाष्यकार के (प्रति) प्रति (त्वम्) तुम (श्रीमालाकारसमीपे) श्रीमालाकारजी के समीप में (सहस्रगीत्यर्थम्) सहस्रगीति के अर्थ को (शृणु) सुनो (इति) इस प्रकार के कहकर (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार को (मालाकारहस्ते) मालाकार स्वामीजी के हाथ में (दत्वा) देकर (पुनः) फिर से (आगतवान्) गोष्ठीपुर में आ गये। (च) और (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठी पूर्ण स्वामीजी (पुनः) फिर से (रंगम्) श्रीरंगम् में (गत्वा) जा करके (श्रीमालाकारगृहम्) श्रीमालाकार स्वामीजी के घर पर (गत्वा) जा करके (तम्) उस श्रीमालाकार स्वामीजी से (सहस्रगीतिव्याख्या)

सहस्रगीति की व्याख्या (कुतः) किसकारण से (न) नहीं (प्रवृत्यते) प्रवृत्त होती है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे। (च) और तब (सः) वह श्रीमालाकार स्वामीजी (यामुनाचार्यसमीपे) यामुनाचार्य स्वामीजी के समीप में (मया) मैंने (ये) जो (अर्थाः) अर्थ (श्रुताः) सुना हूँ (ततः) इस अर्थ से (भिन्नम्) भिन्न (विश्वामित्रसृष्टिवत्) विश्वामित्र महर्षि की सृष्टि के समान (स्वकल्पितम्) अपने से कल्पित (अर्थम्) अर्थ को (वदति) रामानुज कहते हैं (इति) इसी कारण से (अहम्) मैं (व्याख्यानात्) सहस्रगीति के व्याख्यान से (व्यावृत्तः) व्यावृत्त हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) श्रीमालाकार स्वामीजी ने कहा। तब (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने (तदुक्तम्) उस रामानुजजी के कहे हुए (अर्थम्) अर्थ को (वदस्व) स्पष्ट कहिये (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) श्रीमालाकार जी से पूछा (च) और तब (सः) उस श्रीमालाकार स्वामीजी ने (क्वचन) किसी (भाष्यकृदर्थम्) श्रीभाष्यकार के किये हुए अर्थ को (अवदत्) कहा। (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने (तत्) श्रीमालाकार स्वामीजी से उस श्रीभाष्यकार के कहे हुए अर्थ को (श्रुत्वा) सुनकर (अहम्) मैं (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थ को (यामुनाचार्यसमीपे) यामुनाचार्य स्वामीजी के समीप में (अशृणवम्) सुना हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (सान्दीपिनिसमीपे) सान्दीपिनिजी के समीप में (श्रीकृष्णः) श्रीकृष्ण भगवान् के (इव) समान (त्वत्समीपे) आपके समीप में (भाष्यकृत्) श्रीभाष्यकार (अर्थम्) अर्थ को (शृणोति) सुनते हैं (यामुनाचार्यानभिमतः) यामुनाचार्य स्वामीजी के अनभिमत (अर्थः) अर्थ (अस्य) इस श्रीभाष्यकार को (न) नहीं (प्रकाशितः) प्रकाशित है (इति) इस प्रकार के (जानाहि) जानिये। (अस्य) इस श्रीभाष्यकार को (अज्ञातज्ञापनम्) अज्ञात वस्तु को ज्ञापन (करोमि) मैं करता हूँ (इति) इस प्रकार के (भवान्) आप (न) नहीं (जानातु) जानिये (इति) इस प्रकार के (अवदत्) श्रीमालाकार स्वामीजी से गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने कहा है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि विश्वामित्र ने सृष्टि की है। इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड में लिखा है कि–

सृजन्दक्षिणमार्गस्थान्सप्तर्षीनपरान्पुनः। नक्षत्रवंशपरमम्ससृजत्क्रोधमूर्च्छितः ॥ वाल्मी० रा० बाल० १, सर्ग० ६०, श्लो० २१॥ दक्षिणां दिशमास्थाय ऋषिमध्ये महायशाः। सृष्ट्वा नक्षत्रवंशं च क्रोधेन कलुषीकृतः ॥२२॥ अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोको वा स्यादनिन्द्रकः। दैवतान्यपि स क्रोधात्स्रष्टुं समुपचक्रमे ॥२३॥

फिर से दक्षिण मार्ग में स्थित अन्य सप्तर्षियों को बनाते हुए क्रोध मूर्च्छित विश्वामित्र ने परम नक्षत्र वंश को बनाया॥२१॥ क्रोध से कलुषीकृत महायशस्वी विश्वामित्र दक्षिण

दिशा को अवलम्बन करके और नक्षत्र वंश को बनाकर।।२२।। मैं अन्य इन्द्र को करूँगा, अथवा यह लोक बिना इन्द्रही का हो जाय, ऐसा कहकर क्रोध से उस विश्वामित्र ने देवताओं को बनाने के लिये प्रारंभ किया।।२३।। इससे साबित हो गया कि विश्वामित्र ने सृष्टि को किया है। इस प्रकार के पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि सान्दीपिनि ब्राह्मण के समीप में श्रीकृष्ण भगवान् ने अध्ययन किया है। इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत में लिखा है कि–

अथो गुरुकुलेवासमिच्छन्तावुपजग्मतुः। काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्ती-पुरवासिनम्॥ श्रीमद्भा० स्कं० १०, अध्या० ४५, श्लो० ३१॥ यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम्। ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ॥३२॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः। प्रोवाच वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदो गुरुः॥३३॥

इसके बाद गुरुकुल में वास करने की इच्छाँ करते हुए बलदेवजी और श्रीकृष्ण जी अवन्तीपुर में रहनेवाले काश्यसान्दीपनि नाम के आचार्य के पास गये।।३१।। वे दान्त दोनों सान्दीपनिको पा करके गुरु के विषय में अनिन्दितावृत्तिको प्राप्त किये हुए, भक्ति से देवता के समान आदर को प्राप्त किये।।३२।। और उन दोनों राम और कृष्ण के शुद्ध भाव की अनुवृत्तियों से संतुष्ट ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सान्दीपनि नाम के गुरु ने समस्त अंग और उपनिषदों के साथ वेदों को पढ़ाया।।३३।। इन प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ने सान्दीपनि ब्राह्मण के समीप में अध्ययन किया है। इस एक सौ तैंतालीसवीं वार्ता में निन्यानबे पद हैं। इति गोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१४३।।

अब सुन्दरजामातृमुनिजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ सुन्दरजामातृमुन्युक्ता वार्ता ॥

मू०–पश्चात्सुन्दरजामातृयतिरेकदा शरीरास्वास्थ्य-दशायां शयानः स्वस्यान्तरङ्गान् श्रीवैष्णवानाहूय यथा वा अहमिदानीं परमपदं न प्राप्नुयां किंचित् कालमत्रैव वसेयं तथा भगवच्चरणयोर्विज्ञाप्य प्रपत्तिं कुरुतेत्य-वोचत्॥१४४॥

॥ वरवरमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीशैलेशदयापात्रं धीभक्त्यादिगुणार्णवम्।
यतीन्द्रप्रवणं वन्दे रम्यजामातरं मुनिम् ॥१३०॥

(पश्चात्) पीछे से (सुन्दरजामातृयतिः) सुन्दर जामातृयतिजी (एकदा) एक समय में (शरीरास्वास्थ्यदशायाम्) शरीर के अस्वास्थ्य की दशा में (शयानः) सोते हुए (स्वस्य) अपने (अन्तरङ्गान्) अन्तरङ्ग (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (आहूय) बुलाकर (यथा) जिस प्रकार से (वा) अथवा (अहम्) मैं (इदानीम्) इस समय में (परमपदम्) परमपद को (न) नहीं (प्राप्नुयाम्) प्राप्त करूँ (किंचित्कालम्) कुछकाल तक (अत्र) यहाँ पर (एव) निश्चय करके (वसेयम्) वास करूँ (तथा) उस प्रकार से (भगवच्चरणयोः) भगवान् के चरणारविन्दों में (विज्ञाप्य) विज्ञापन करके (प्रपत्तिम्) प्रपत्ति को (कुरुत) तुम सब करो (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस वार्ता में अट्ठाइस पद हैं। इति सुन्दरजामातृयत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१४४॥

अब श्रीवैष्णवों की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

मू०-ते[१] च[२] तथाऽकुर्वन्[३] यतिश्च[४] स्वस्थशरीरोऽभवत्[५], एतच्छ्रुत्वा[६] श्रीवैष्णवाः[७]-एतदाचार्यस्य[८] कलिवैरिदासस्य[९] श्रीपादौ[१०] प्रणम्य[११] ज्ञानवृद्धो[१२] वयोवृद्धस्संन्यासी[१३] चायमेवमकरोत्[१४], इदमस्य[१५] स्वरूपविरुद्धमिति[१६] विज्ञापयामासुः[१७] ॥१४५॥

अर्थ-(च) और (ते) वे सुन्दर जामातृ यति के अन्तरङ्ग श्रीवैष्णव (तथा) उस प्रकार के (अकुर्वम्) प्रपत्ति को किए। (च) और (यतिः) सुन्दर जामातृयति (स्वस्थशरीरः) स्वस्थ शरीर (अभवत्) हो गये। (एतत्) इस वृत्तान्त को (श्रुत्वा) सुनकर (श्रीवैष्णवाः) और श्रीवैष्णव सब (एतदाचार्यस्य) इस आचार्य (कलिवैरिदासस्य) कलिवैरिदास स्वामीजी के (श्रीपादौ) श्रीचरणों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (ज्ञानवृद्धः) ज्ञानवृद्ध (च) और (वयोवृद्धः) वयोवृद्ध (अयम्) यह (संन्यासी) संन्यासी सुन्दर जामातृ योगीन्द्रजी (एवम्) इस प्रकार के (अकरोत्) किये हैं। (इदम्) यह वृत्तान्त (अस्य) इस सुन्दर जामातृ यति के (स्वरूपविरुद्धम्) स्वरूप के विरुद्ध है (इति) इस प्रकार के (विज्ञापयामासुः) विज्ञापन किए। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि संन्यासी किसको कहते हैं। इस प्रश्न का उत्तर भगवद्गीता

में लिखा है कि–

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः॥ भगवद्गी० अ० ६, श्लो० १॥

कर्मफल को नहीं चाहता हुआ जो करने योग्य कर्म को करता है वह संन्यासी और योगी है, केवल अग्नि को परित्याग करने से संन्यासी और क्रिया के परित्याग करने से योगी नहीं हो सकता है ॥१॥ इस एकसौ पैंतालिसवीं वार्ता में सत्ताईस पद हैं। इति श्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१४५॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कलिवैरिदासश्च तदभिप्रायं न जानीमः, सकलान्यपि शास्त्राणि सम्यक् जानाति, पुल्लैयङ्गलारवान् तं पृच्छेति-अवदत् ॥१४६॥

अर्थ–(च) और (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी (तदभिप्रायम्) उस सुन्दर जामातृ मुनिजी के अभिप्राय को (न) नहीं (जानीमः) हम सब जानते हैं (सकलानि) समस्त (शास्त्राणि) शास्त्रों को (अपि) भी (सम्यक्) अच्छे प्रकार से (पुल्लैयंगलारवान्) पुल्लैयंगलारवानाचार्यजी (जानाति) जानते हैं। इससे (तम्) उस पुल्लैयंगलारवानाचार्यजी से (पृच्छ) पूछ लो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। इस वार्ता में पन्द्रह पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१४६॥

अब श्रीवैष्णवों के और पुल्लैयङ्गलारवानाचार्यजी के सम्वाद रूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीवैष्णव पुल्लैयङ्गलारवानाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–ते च तमपृच्छन्, स च श्रीरङ्गश्रीसङ्ग-इत्यवोचत् ॥१४७॥

अर्थ–(च) और (ते) वे वैष्णव सब (तम्) उस पुल्लैयंगलारवानाचार्य जी से

(तैः पृष्टः) पूर्वोक्त सुन्दर जामातृ मुनि के वृत्तान्त को पूछे। (च) और तब (सः) वह पुल्लैयंगलारवानाचार्यजी (श्रीरङ्गश्रीसङ्गः) श्रीदेवी के और रंगनाथ भगवान् के श्रीसंग है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। अर्थात् श्रीदेवी और रंगनाथ भगवान् के श्रीसंग के लिये सुन्दर जामातृमुनिजी ने श्रीवैष्णवों से प्रपत्ति करायी है। यह स्वरूपानुरूप है। इस एक सौ सैंतालीसवीं वार्ता में नव पद हैं। इति श्रीवैष्णवपुल्लैयंगलारवानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१४७॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कलिवैरिदासस्तच्छ्रुत्वा सम्यगिदं श्रीनारायण-पुरा-अरैयराचार्यं पृच्छतेत्यवदत् ॥१४८॥

अर्थ–(कलिवैरिदासः) कलिवैरिदासस्वामीजी (तत्) पुल्लैयंगलारवानाचार्यजी के उस वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (इदम्) यह पुल्लैयंगलारवानाचार्यजी का कथन है सो (सम्यक्) अच्छा है। तौभी (श्रीनारायणपुरा) श्रीनारायणपुर में (अरैयराचार्यम्) अरैयरा चार्यजी से (पृच्छत) तुम सब पूछ लो (इति) इस प्रकार के (अवदत) कहे हैं। इस एक सौ अड़तालीसवीं वार्ता में दस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१४८॥

अब अरैयराचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ अरैयराचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–तैः पृष्टः स च प्रारब्धकैंकर्याणामसमाप्तात्वादित्यवोचत् ॥१४९॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ–रामानुजाय महते निगमान्तशास्त्रपारङ्गताय परमार्थविशारदाय। विख्यातलोकगुरवे यतिपुङ्गवाय भूयो नमो भुवनमंगलविग्रहाय ॥१३१॥

(तैः) उन श्रीवैष्णवों से (पृष्टः) पूछे हुए (सः) उस अरैयराचार्यजी ने (च) भी (प्रारब्धकैंकर्याणाम्) प्रारब्ध कैंकर्यों के (असमाप्तत्वात्) समाप्त नहीं होने से

सुन्दर जामातृ मुनिजी वैसे कहे हैं (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। इस एक सौ उन्चासवीं वार्ता में आठ पद हैं। इति अरैयराचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१४९॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०-तच्छ्रुत्वा-अस्तु अम्मंगिआल्वारं पृच्छतेत्यवोचत ॥१५०॥

अर्थ- (तत्) अरैयराचार्यजीके उस वाक्यको (श्रुत्वा) सुनकर (अस्तु) अच्छा ऐसा कहकर (अम्मंगिआल्वारम्) अम्मंगि आल्वारसे (पृच्छत) तुम सब पूछ लो (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। इस एकसौ पचासवीं वार्ता में सात पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१५०॥

अब अम्मंगिआल्वार स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ अम्मंगिआल्वारोक्ता वार्ता ॥

मू०-तैः पृष्टः स च कलिवैरिदासैः गोष्ठ्यामुपन्यस्यमानभगवद्विषयार्थं शृण्वतां देशविशेषो रोचते किमित्यवोचत् ॥१५१॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः॥

अर्थ- हरिणा ज्ञापितोऽनन्तो लोकसंरक्षणाय सः।
अवतीर्णोभवद्भूम्यां सर्वलोकैकदेशिकः॥१३२॥

(तैः) उन वैष्णवोंसे (पृष्टः) पूछे हुए (सः) उस अम्मंगि आल्वार स्वामीजी ने (च) भी (कलिवैरिदासैः) कलिवैरिदास स्वामीजीसे (गोष्ठ्याम्) श्रीवैष्णवों की सभा में (उपन्यस्यमानभगवद्विषयार्थम्) उपन्यास किये हुए भगवद्विषय के अर्थ को (शृण्वताम्) सुनने वालों को (देशविशेषः) परम पद का देश विशेष (रोचते) रुचता है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। इस एक सौ इक्यावनवीं वार्ता में तेरह पद हैं। इति अम्मंगिआल्वारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५१॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–तदपि श्रुत्वा कलिवैरिदासः परमाचार्य्यं पृच्छतेत्यवोचत् ॥१५२॥

अर्थ–(तत्) उस अम्मंगि आल्वार स्वामीजी के पूर्वोक्त वाक्य को (अपि) भी (श्रुत्वा) सुनकर (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (परमाचार्यम्) मेरे परमाचार्य भट्टारकस्वामीजी से (पृच्छत) तुम सब पूछ लो (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा है। इस वार्ता में आठ पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५२॥

अब पराशरभट्टाचार्यजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०–तैः पृष्टः स च श्रीरङ्गनाथस्य श्रीरत्नमुखमण्डलं कस्तूरीतिलकं च परमपदे न पश्यामि चेत् पुनरत्रैवागमिष्यामि-इति भट्टार्योऽवदत् ॥१५३॥

अर्थ–(च) और (तैः) उन श्रीवैष्णवों से (पृष्टः) पूछे हुए (सः) वे कलिवैरिदासस्वामीजी के परमाचार्य (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथभगवान् के (श्रीरत्नमुखमण्डलम्) श्रीरत्नमुख मण्डल को (च) और (कस्तूरीतिलकम्) कस्तूरी के तिलक को (परमपदे) परमपद त्रिपाद्विभूति में (न) नहीं (पश्यामि) देखूँगा (चेत्) यदि तो (पुनः) फिर से (अत्र) यहाँ पर मृत्युलोक में (एव) निश्चय करके (आगमिष्यामि) मैं आऊँगा (इति) इस प्रकार के (भट्टार्यः) पराशर भट्टाचार्यजी ने (अवदत्) कहा है। इस एक सौ तिरपनवीं वार्ता में उन्नीस पद हैं। इति भट्टार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५३॥

अब श्रीवैष्णवों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

मू०–तथायमपि श्रीरङ्गनाथस्य मुखमण्डलं कस्तूरी-तिलकं च त्यक्त्वा गन्तुं नेच्छति-इत्यवदन् ॥१५४॥

॥ श्रीवैष्णवस्तुतिः ॥

अर्थ- आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः ।
वैष्णवोऽस्मत्कुलेजातः स नः संतारयिष्यति ॥१३३॥

जैसा भट्टारक स्वामीजी ने कहा है (तथा) वैसे ही (अयम्) यह सुन्दर जामातृ मुनिजी (अपि) भी (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (मुखमण्डलम्) मुखमण्डल को (च) और (कस्तूरीतिलकम्) श्रीरङ्गनाथ के कस्तूरी के तिलक को (त्यक्त्वा) त्यागकर (गन्तुम्) त्रिपाद्विभूति में जाने के लिये (न) नहीं (इच्छति) इच्छा करते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदत्) श्रीवैष्णवों ने कलिवैरिदासस्वामीजी से कहा है। इस एक सौ चौवनवीं वार्ता में तेरह पद हैं। इति श्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५४॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कलिवैरिदास एतत्सर्वं श्रुत्वा यतिमुखं दृष्ट्वा हसन् एतत्त्वद्धृदि वर्तते किमित्यपृच्छत् ॥१५५॥

अर्थ–(कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (एतत्) इस पूर्वोक्त (सर्वं) सब बात को (श्रुत्वा) सुन करके (यतिमुखम्) सुन्दर जामातृयति के मुखारविन्द को (दृष्ट्वा) देखकर (हसन्) हँसते हुए (एतत्) यह पूर्वोक्त बात (त्वद्धृदि) आपके हृदय में (वर्तते) वर्तमान है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा है। इस एक सौ पचपनवीं वार्ता में चौदह पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५५॥

अब सुन्दरजामातृ मुनिजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ सुन्दरजामातृमुन्युक्ता वार्ता ॥

मू०–स च-एतेषु मम कोपि हेतुर्नाभिप्रेत इत्यवदत् ॥१५६॥

अर्थ–(च) और (सः) उस सुन्दर जामातृ मुनिजी ने (एतेषु) इन कहे हुए में (मम) मेरा (कः) कोई (अपि) भी (हेतुः) हेतु (न) नहीं (अभिप्रेतः) अभिप्रेत है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। इस वार्ता में ग्यारह पद हैं। इति सुन्दरजामातृमुन्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५६॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–तर्हि स्वाभिप्रायं वदस्वेति-अपृच्छत् ॥१५७॥

अर्थ–(तर्हि) तब तो (स्वाभिप्रायम्) अपने अभिप्राय को (वदस्व) स्पष्ट कहिये (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) कलिवैरिदास स्वामीजी ने सुन्दर जामातृ मुनिजी से पूछा। इस एक सौ सन्तावनवीं वार्ता में पाँच पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५७॥

अब सुन्दरजामातृ यतिकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ सुन्दरजामातृयत्युक्ता वार्ता ॥

मू०–स च सर्वज्ञस्य तवाज्ञातं नास्ति तथापि मया-प्रकाशनमभिप्रेतं चेद्विज्ञापयामि, भवति स्नानशालां गत्वा स्नात्वा च धौतवस्त्रं परिधाय-इतस्ततः संचरति प्रस्विन्न-मुखमण्डलदर्शनं तदानीं क्रियमाणव्यजनकैङ्कर्यं च त्यक्त्वा परमपदगमनेच्छा मम न जायत इति विज्ञापयामास, एतच्छ्रुत्वा सर्वे श्रीवैष्णवा अस्यां विभूतौ-एतच्छरीरे एकस्य-एतदैश्वर्यं संपन्नमित्यतीवप्रसन्ना बभूवुः, अने-नोक्तम् आचार्यस्यात्मगुणा देहगुणाश्च शिष्यस्योपादेया-इति ॥१५८॥

अर्थ–(च) और (सः) उस सुन्दर जामातृमुनिजी ने कलिवैरिदास स्वामीजी से कहा कि (सर्वज्ञस्य) सब कुछ जाननेवाले (तव) आपके (अज्ञातम्) अज्ञात कुछ (न) नहीं (अस्ति) है (तथापि) तौभी (मया) मेरे द्वारा (प्रकाशनम्) प्रकाश करना (अभिप्रेतम्) आपका अभिप्रेत (चेत्) यदि है तो (विज्ञापयामि) मैं विज्ञापन करता हूँ। (भवति) आपके (स्नानशालाम्) स्नानशाला में (गत्वा) जाकर के (च) और (स्नात्वा) स्नान करके (धौतवस्त्रम्) धौतवस्त्र को (परिधाय) धारण करके (इतः) इधर (ततः) उधर (संचरति) संचार करने पर (प्रस्विन्नमुखमण्डलदर्शनम्) पसीनायुक्त मुखमण्डल का दर्शन होता है (तदानीम्) उस समय में (क्रियमाणव्यजनकैङ्कर्यम्) क्रियमाणव्यजन कैंकर्य को (च) और चकार से श्रीचरण के संवाहनादि कैंकर्य को (त्यक्त्वा) छोड़कर (परमपदगमनेच्छा) परमपद में जाने की इच्छा (मम) मेरी (न) नहीं (जायते) उत्पन्न होती है (इति) इस प्रकार के (विज्ञापयामास) सुन्दर जामातृ मुनिजी ने विज्ञापन किया। (एतत्) इस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (सर्वे) सब (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (अस्याम्) इस (विभूतौ) विश्वविभूति में (एतच्छरीरे) इस प्राकृतदेह में (एकस्य) एक सुन्दर जामातृ मुनि के (एतत्) यह (ऐश्वर्यम्) परमैश्वर्य (संपन्नम्) संपन्न हुआ है (इति) इस कारण से (अति) अत्यन्त के (इव) समान (प्रसन्नाः) प्रसन्न (बभूवुः) हो गये। "बभूवुः" यहाँ पर **॥ भुवोबुग्लुङ्लिटोः ॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० ८८ ॥** इस सूत्र से बुगागम हुआ है। (अनेन) इस पूर्वोक्त कथन से (उक्तम्) यह कहा गया कि (आचार्यस्य) आचार्य के (आत्मगुणाः) आत्मगुण (च) और (देहगुणाः) शरीर के गुण (शिष्यस्य) शिष्य के (उपादेयाः) ग्रहण करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार की यह वार्ता है। इस एकसौ अट्ठावनवीं वार्ता में उनसठ पद हैं। इति सुन्दरजामातृमुन्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१५८॥

अब भट्टारकस्वामीजी के और वेदान्ती स्वामीजी के सम्वाद रूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यतिभट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०–वेदान्ती भट्टारकचरणसमाश्रयणानन्तरं स्वस्य काँश्चिदर्थान् भट्टारकचरणयोः समर्प्य प्राणमत्, भट्टार्य्यः–तद्द्रव्यं हस्तेनादाय तं दृष्ट्वा मद्दत्तद्रव्ये सापेक्षेण–अने–नोपदिष्टं ज्ञानं ममोत्तारकं कथं भवेदिति तव हृदि

वर्तते किमिति पृष्ट्वा पुनरिदमवदत्, सर्पदष्टस्य मृतस्य राजकुमारस्य संस्कारसमये मंत्रौषधिशक्तिमान् कश्चन-आगत्य त्वत्पुत्रं जीवयामि-एतद्राज्यं मह्यं ददासि चेदिति पृष्टस्तादृशराज्यमपि दद्यात्, तथाविधपुत्रवात्सल्युक्तस्य राज्ञः समीपे-एके ग्रासमादाय भुक्त्वा मृतं राजपुत्रं जीवयति चेत् प्रकृतिमद्भिः सर्वैरपि भुज्यमाने-ऽन्नेऽस्य-इच्छाऽजायतेति तद्विषयहरणशक्तौ न्यूनता न जायते तथा सर्वैरपि स्पृह्यमाणयोरर्थकामयोरस्माकं स्पृहायां जातायामपि-अस्मदुपदिष्टार्थस्य संसारनिवर्तकत्वपुरुषार्थप्रदत्वशक्तौ न्यूनता नास्तीति-अनेन-आचार्यस्यान्यस्य वा कस्यचिच्छ्रीवैष्णवस्य संसारिवत् हेतुसत्ताप्रयुक्तम्, अर्थकामप्रावण्यमस्तीति-एतौ प्रकृतिमत्समौ न पश्येत्, तथाहि "कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः" इत्यर्थकामौ पुरुषार्थाविति निश्चिन्वन्त्यज्ञाः, ज्ञानवतां शरीरावसानपर्यन्तम् "सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि" इत्यादि प्रक्रियावासनाप्रयुक्तौ भवत इत्युक्तम् ॥१५९॥

॥ भट्टारकस्तुतिः ॥

अर्थ- ततो वेदान्तिनः सम्यक् कृत्वा संस्कारपञ्चकम्।
चिदचिद्विग्रहं ब्रह्म जगतः कारणं परम् ॥१३४॥
सर्ववेदान्तशास्त्रेषु तदेव प्रतिपादितम्।
स एव भगवान्विष्णु र्हरिर्नारायणोऽव्ययः ॥१३५॥

(वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी ने (भट्टार्यचरणसमाश्रयणानन्तरम्) भट्टारक

स्वामीजी के चरणारविन्दों को समाश्रयण करने के बाद (स्वस्य) अपने (काँश्चित्) कुछ (अर्थान्) अर्थों को (भट्टारकचरणयोः) भट्टारक स्वामीजी के चरणारविन्दों में (समर्प्य) समर्पण करके (प्राणमत्) साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इसके बाद (भट्टार्यः) भट्टारक स्वामीजी (तद्द्रव्यम्) उस वेदान्ती स्वामीजी के द्रव्य को (हस्तेन) हाथ से (आदाय) ले करके (तम्) उस वेदान्ती स्वामीजी को (दृष्ट्वा) देखकर (मद्दत्तद्रव्ये) मुझसे दिये हुए द्रव्य के विषय में (सापेक्षेण) अपेक्षा सहित (अनेन) इस सदाचार्य से (उपदिष्टम्) उपदेश किया हुआ (ज्ञानम्) ज्ञान (मम) मेरा (उत्तारकम्) उत्तारक (कथम्) कैसे (भवेत्) होगा (इति) इस प्रकार के संदेह (तव) आपके (हृदि) हृदय में (वर्तते) वर्तमान है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (पृष्ट्वा) वेदान्ती स्वामीजी से पूछ कर (पुनः) फिर से (इदम्) इस वक्ष्यमाण वाक्य को (अवदत्) भट्टारकस्वामीजी ने कहा है। (सर्पदष्टस्य) साँप से डँसे हुए तथा (मृतस्य) मरे हुए (राजकुमारस्य) राजकुमार के (संस्कारसमये) अन्तिमसंस्कार के समय में (मंत्रौषधिशक्तिमान्) गारुड़ीमंत्र और विषको हरण करनेवाली औषधि की शक्तिवाला (कश्चन) कोई पुरुष (आगत्य) आकरके (त्वत्पुत्रम्) आपके पुत्र को (जीवयामि) जीवित मैं करता हूँ (एतत्) इस (राज्यम्) राज्य को (मह्यम्) मेरे लिये (ददासि) तुम देते हो (चेत्) यदि तब (इति) इस प्रकार के (पृष्टः) पूछा तो (तादृशराज्यम्) वैसे राज्य को (अपि) भी दद्यात्) दे देगा। (तथाविधपुत्रवात्सल्युक्तस्य) उस प्रकार के पुत्र के वात्सल्य से युक्त (राज्ञः) राजा के (समीपे) समीप में (एकम्) एक (ग्रासम्) ग्रास को (आदाय) ले करके (भुक्त्वा) भोजन कर (मृतम्) मरे हुए (राजपुत्रम्) राजा के पुत्र को (जीवयति) जीवित करता है (चेत्) यदि तो (प्रकृतिमद्भिः) प्रकृतिवाले (सर्वैः) सब पुरुषों से (अपि) भी (अन्ने) अन्न के (भुज्यमाने) भोजन करने पर (अस्य) इसकी (इच्छा) इच्छा (अजायत) उत्पन्न होती है (इति) इस प्रकार के (तद्विषयहरणशक्तौ) उस विषय के हरण की शक्ति में (न्यूनता) न्यूनता (न) नहीं (जायते) उत्पन्न होती है। (तथा) तैसे ही (सर्वैः) सब जीवों से (अपि) भी (स्पृह्यमाणयोः) स्पृह्यमाण (अर्थकामयोः) अर्थ और काम के विषय में (अस्माकम्) हम सबों की (स्पृहायाम्) स्पृहा (जातायाम्) उत्पन्न होने पर (अपि) भी (अस्मदुपदिष्टार्थस्य) हमसबों के लिये उपदेश दिये हुए अर्थके (संसारनिवर्तकत्वपुरुषार्थप्रदत्वशक्तौ) संसारनिवर्तकत्व और पुरुषार्थप्रदत्वकी शक्तिमें (न्यूनता) न्यूनता (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (अनेन) इस वाक्य करके (आचार्यस्य) आचार्यके (वा) अथवा (अन्यस्य) अन्य (कस्यचित्) किसी (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णवके (संसारिवत्) संसारी जीवके समान (हेतुसत्ताप्रयुक्तम्) हेतुकी सत्तासे प्रयुक्त (अर्थकामप्रावण्यम्) अर्थ और कामका प्रावण्य (अस्ति) है

(इति) इस प्रकारके (एतौ) इन दोनों अर्थ और कामको (प्रकृतिमत्समौ) प्रकृतिवालोंके समान (न) नहीं (पश्येत्) देखे। (तथाहि) निश्चय करके उसीको दिखाते हैं कि (कामोपभोगपरमाः) काम और उपभोगको सबसे श्रेष्ठ माननेवाले (एतावत्) अर्थ और काम इतनाही (इति) इस प्रकारके (अर्थकामौ) अर्थ और कामको (अज्ञाः) अज्ञानी सब (पुरुषार्थौ) पुरुषार्थ (इति) ऐसा (निश्चिन्वन्ति) निश्चय करते हैं। और (ज्ञानवताम्) ज्ञानवालोंके (शरीरावसानपर्यन्तम्) देहावसान समय तक (ज्ञानवान्) ज्ञानी पुरुष (अपि) भी (स्वस्याः) अपनी (प्रकृतेः) प्रकृतिके (सदृशम्) तुल्यही (चेष्टते) करचरणानुकूल व्यापार करते हैं (इति) इस प्रकारके (आदि) अनेकविध (प्रक्रियावासनाप्रयुक्तौ) प्रक्रिया की वासनासे प्रयुक्त अर्थ और काम (भवतः) होते हैं (इति) इस प्रकारसे (उक्तम्) इस वार्तामें कहा गया है। इस वार्तामें ॥ **कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥ भगवद्गी० अ० १६, श्लो० ११॥** यह और ॥ **सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृते र्ज्ञानवानपि॥ भगवद्गी० अ० ३, श्लो० ३३॥** ये दोनों प्रतीक हैं इससे समस्त श्लोकको क्रमसे लिखकर अर्थको लिखता हूँ।।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः। कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥ भगवद्गी० अ० १६, श्लो० ११॥

प्रलयान्त अपरिमेय चिन्ताको आश्रयण करनेवाले काम और उपभोगको श्रेष्ठ माननेवाले इतनाही यह है ऐसा निश्चय किये हैं॥११॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृते र्ज्ञानवानपि। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ भगवद्गी० अ० ३, श्लो० ३३॥

ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृतिके सदृश चेष्टा करता है, समस्त जीव अपनी प्रकृति को प्राप्त करते हैं, निग्रह क्या करेगा॥३३॥ इस वार्तामें एक सौ तीस पद हैं। इति यतिभट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१५९॥

अब भट्टारक स्वामीजीके और वेदान्ती स्वामीजीके संवादरूपवार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ यतिभट्टारकोक्ता वार्ता॥

मू०-वेदान्तिमठं गत्वा भट्टार्यस्य ज्येष्ठपुत्री-औषध-विशेषमत्रास्ति किमित्यपृच्छत्, स च तदानीमन्तः

१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४
कानिचित् पात्राणि दृष्ट्वा तदलाभात् नास्तीत्यवदत्, पुनश्च-
२५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१
अन्तः सर्वाणि पात्राणि सम्यक् अन्वैच्छत्, कुत्रचित् पात्रे-
३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२
तल्लब्धं तत्स्वयमेवादाय तद्गृहमगमत्, तं दृष्ट्वा भट्टार्यः-
४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१
एतदन्यहस्ते दत्वा कुतो न प्रेषितवान्, स्वयमेवादाय
५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२
किमित्यागतवान्, स च तदानीं नास्तीति वदता महा-
६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९
पापिष्ठेन-अन्यद्वारापि प्रेषणं, कार्य्यं किमित्यवोचत्,
७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५
अनेनाचार्यपुत्रपौत्रादयोऽपि आचार्य्यवदनुवर्तनीया इत्यु-
७६
क्तम् ॥१६०॥

अर्थ-(भट्टार्यस्य) भट्टारकस्वामीजीकी (ज्येष्ठपुत्री) ज्येष्ठ लड़की ने (वेदान्तिमठम्) वेदान्ती स्वामीजीके मठमें (गत्वा) जा करके (औषधविशेषम्) औषध विशेष (अत्र) इस मठमें (अस्ति) है (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने (तदानीम्) तब (अन्तः) मठके भीतर (कानिचित्) कुछ (पात्राणि) पात्रों को (दृष्ट्वा) देखकर (तदलाभात्) उस औषध विशेषके लाभ नहीं होनेसे (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा। (च) और (पुनः) फिरसे (अन्तः) मठके भीतर (सर्वाणि) सम्पूर्ण (पात्राणि) पात्रोंको (सम्यक्) अच्छी तरह से (अन्वैच्छत्) वेदान्ती स्वामी ने ढूँढ़ा। और (कुत्रचित्) किसी (पात्रे) पात्र में (तत्) वह औषध (लब्धम्) प्राप्त हुआ। और (तत्) उस औषधको (स्वयम्) वेदान्ती स्वामीजी स्वयं (एव) निश्चय करके (आदाय) लेकरके (तद्गृहम्) उस वेदान्ती स्वामीजीकी ज्येष्ठ पुत्रीके गृहमें (अगमत्) गये। तब (तम्) उस वेदान्ती स्वामीजीको (दृष्ट्वा) देखकरके (भट्टार्यः) भट्टारक स्वामीजी ने कहा कि (एतत्) इस औषधको (अन्यहस्ते) दूसरेके हाथमें (दत्वा) देकर (कुतः) किस कारणसे (न) नहीं (प्रेषितवान्) आप ने भिजवाया है। (स्वयम्) अपने ही (एव) निश्चय करके (आदाय) औषधको लेकर (किम्) क्यों (इति) इस प्रकारसे (आगतवान्) आप आये हैं। (च) और (सः) वह वेदान्ती स्वामीजी (तदानीम्) उस समयमें (न) औषध नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (वदता) कहने वाले (महापापिष्ठेन) महापापी मुझसे (अन्यद्वारा) दूसरे के द्वारा (अपि) भी (किम्) क्या (प्रेषणम्) औषध प्रेषण (कार्य्यम्) करने योग्य है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले। (अनेन) इस संवाद से (आचार्यपुत्रपौत्रादयः) आचार्य के पुत्र और पौत्र तथा

आदि शब्द से स्त्री और सपिण्ड आदिक (अपि) भी (आचार्यवत्) आचार्य के समान (अनुवर्तनीयाः) अनुवर्तन करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार से (उक्तम्) इस वार्ता में कहा गया है। आचार्य के समान आचार्य के पुत्रादिकों में भी अनुवर्तन करना चाहिये। इस विषय में मनुस्मृति में लिखा है कि–

॥ श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्। गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ मनु० अ० २, श्लो० २०७ ॥ बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि। अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥२०८॥

विद्या और तपस्या से समृद्धि में और आर्य गुरु पुत्र में तथा गुरु के अपने बन्धुओं में हमेशा ही गुरु के समान निश्चय करके आचरण करना चाहिये ॥२०७॥ बालक हो या बराबर आयुवाला हो अथवा शिष्य हो परन्तु अध्यापन कराता हुआ गुरु पुत्र गुरु के समान यज्ञ कर्म में पूजा करने योग्य होता है ॥२०८॥ और गुरु पत्नी के विषय में लिखा है कि **॥ गुरुवत्प्रतिपूज्याःस्युः सवर्णागुरुयोषितः ॥ मनु० अ० २, श्लो० २१० ॥** समानवर्णवाली गुरु की स्त्रियाँ गुरु के समान ही पूजा करने योग्य होती हैं ॥२१०॥ इन प्रमाणों से स्पष्ट साबित हो गया कि गरु के तल्य ही गरु के पत्रादिकों में आचरण करना चाहिये। इस एक सौ साठवीं वार्ता में छिहत्तर पद हैं। इति यतिभट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१६०॥

अब वेदान्ती स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यत्युक्ता वार्ता॥

मू०-भट्टार्य्यः सकुटुम्बः कूरुकुलोत्तमे यदावसत्तदा-आरामे-अल्पोपहतिर्जातेति-आरामकृत एकाङ्गिनः काश्चन न्यूनवार्ता अवदन्, वेदान्ती तच्छ्रुत्वा तानाहूय-अहं श्री-रङ्गनाथकेशा दुर्गन्धा इति, आराममकरवम् भट्टार्यकुटुम्बस्य इष्टविनियोगार्हं भवेदिति खलु, आराममारब्धवानित्य-वोचत् ॥१६१॥

॥ वेदान्तिस्तुतिः ॥

अर्थ- विद्वान्माधवदासाख्यो भट्टार्य्यं गुरुपुङ्गवम्।

भूयः प्रणम्य बहुधा चक्रे विज्ञापनं तदा ॥१३६॥

(सकुटुम्बः) आपने कुटुम्ब के साथ (भट्टार्यः) भट्टारकस्वामीजी (यदा) जब (कुरुकुलोत्तमे) कूरुकुलोत्तम में (अवसत्) निवास करते थे (तदा) तब (आरामे) वेदान्ती स्वामीजी की बाग में (अल्पा) थोड़ी सी (उपहतिः) नुकसानी (जाता) उत्पन्न हुई (इति) इस कारण से (आरामकृतः) बाग की रक्षा करनेवाले (एकाङ्गिनः) एकाङ्गी सब (काश्चन) कुछ (न्यूनवार्ताः) छोटी सी बात (अवदन्) बोले। (वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी (तत्) उस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (तान्) उन एकाङ्गियों को (आहूय) बुलाकर (अहम्) मैं (श्रीरङ्गनाथकेशाः) श्रीरंगनाथ के केश (दुर्गन्धाः) दुर्गन्ध हैं (इति) इस कारण से (आरामम्) बाग को (अकरवम्) किया हूँ अर्थात् लगाया हूँ जिसमें कि (भट्टार्यकुटुम्बस्य) भट्टारक स्वामीजी के कुटुम्बके (इष्टविनियोगार्हम्) इष्ट विनियोग के योग्य (भवेत्) होवे (इति) इस कारण से (खलु) निश्चय करके (आरामम्) बाग को (आरब्धवान्) लगाया हूँ (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। इस एक सौ इकसठवीं वार्ता में छत्तीस पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१६१॥

अब तिरुप्पैराच्चानाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि—

॥ अथ तिरुप्पैराच्चानाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०—तुवियंवुल्लोऽवततारेति कलिवैरिदासं केषुचिद्वदत्सु तदा समीपस्थं तिरुप्पैराच्चानित्येतं दृष्ट्वा मम इदानीमेकज्येष्ठभ्राता-अवततारेत्यवोचत् ॥१६२॥

॥ लक्ष्मणार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीमान् लक्ष्मणयोगीन्द्रः श्रीरङ्गे शिष्यसंवृतः ।
व्यरोचत महातेजा द्वितीय इव रङ्गराट् ॥१३७॥

(तुवियंवुल्लः) तुवियंवुल्लाचार्यजी (अवततार) अवतार लिये हैं (इति) इस प्रकार के (केषुचित्) कुछ पुरुषों के (वदत्सु) कहने पर (तदा) तब (समीपस्थम्) समीप में स्थित (एतम्) इस (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदासस्वामीजी को (इति) इस प्रकार के (दृष्ट्वा) देख करके (तिरुप्पैराच्चान्) तिरुप्पैराच्चानाचार्यजी (मम) मेरा (इदानीम्) इस समय में (एकज्येष्ठभ्राता) एक बड़ा भाई (अवततार) अवतार लिया है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस एक सौ बासठवीं वार्ता में अट्ठारह पद हैं।

इति तिरुप्पैराच्चानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१६२॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–नंवितिरिवडिनारदासस्य[१] श्रीपरमपदगमन[२]-समये[३] सेवमाने[४] श्रीवैष्णवे[५] रुदति[६]-अहं[७] खलु[८] मरिष्यामि[९] श्रीपराशरभट्टं[१०] सेवितुं[११] स्थितः[१२] त्वं[१३] किमिति[१४] रोदिषीत्यवद[१५]-दिति[१६] कलिवैरिदासोऽवदत्[१७] ॥१६३॥

अर्थ–(नंवितिरिवडिनारदासस्य) नंवितिरिवडिनारदास स्वामीजी के (श्रीपरमपदगमनसमये) श्रीपरमपद जाने के समय में (सेवमाने) सेवाकरने वाले (श्रीवैष्णवे) श्रीवैष्णव के (रुदति) रोनेपर (खलु) निश्चय करके (अहम्) मैं (मरिष्यामि) मरुँगा "मरिष्यामि" यहाँ पर **॥ म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च ॥ व्या० अ० १, पा० ३, सू० ६१ ॥** इस सूत्र के नियम से परस्मैपद हुआ है। (श्रीपराशरभट्टम्) श्रीपराशरभट्टाचार्यजी को (सेवितुम्) सेवा करने के लिये (स्थितः) स्थित (त्वम्) तुम (किम्) क्यों (इति) इस प्रकार के (रोदिषि) राते हो "रोदिषि" यहाँ पर **॥ रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ व्या० अ० १, पा० २, सू० ७६ ॥** इस सूत्र से इट् हुआ है। (इति) ऐसा (अवदत्) कहे हैं (इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। इस एकसौ तिरसठवीं वार्ता में बीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१६३॥

अब सेनापति यति की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ सेनापतियत्युक्ता वार्ता ॥

मू०–काञ्च्यां[१] कस्मिंश्चित्[२] भागवतकुले[३] जातः[४] कश्चन[५] मूकः[६] पञ्चमान्[७] वर्षान्[८] मूकस्थितः[९], अनन्तरं[१०] द्वित्रिवर्षपर्यन्तं[११] कैश्चिदप्यदृष्टः[१२] पश्चाद्वाचं[१३] वदन्नागतः[१४], एतदाश्चर्यं[१५] द्रष्टुं[१६] सर्वेऽप्येकीभूय[१७] मूकं! क्व[१८] गत[१९] इत्यपृच्छन्[२०], स[२१] चाह[२२] क्षीराब्धि[२३]

३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४
गत इत्यवदत्, ते तत्र को विशेष इत्यपृच्छन्, स च
४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१
विष्वक्सेनो रामानुजरूपेणावतरेत्युक्त्वा-अन्तर्दधे-इति
५३
सेनापतियतिरवोचत् ॥१६४॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- जगत्संरक्षणार्थाय विष्वक्सेनो जगत्पतिः ।
जातो रामानुजो भूम्यां भूतपुर्यां बभूव सः ॥१३८॥

(काञ्च्याम्) श्रीकाञ्ची पुरी में (कस्मिंश्चित्) किसी (भागवतकुले) भागवत के कुल में (कश्चन) कोई (मूकः) गूँगा (जातः) उत्पन्न हुआ, वह मूक (पञ्चमान्) पाँच (वर्षान्) वर्षपर्यन्त (मूकस्थितः) गूँगा रहा। (अनन्तरम्) इसके बाद (द्वित्रिवर्षपर्यन्तम्) दो तीन वर्ष पर्यंत (कैश्चित्) किसी से (अपि) भी (अदृष्टः) वह मूक नहीं देखा गया। (पश्चात्) इसके बाद (वाचम्) वाणी को (वदन्) कहता हुआ (आगतः) वह आया (एतत्) इस (आश्चर्यम्) आश्चर्य को (द्रष्टुम्) देखने के लिये (सर्वे) सब मनुष्य (अपि) भी (एकीभूय) इकट्ठा हो करके (मूक) ऐ मूक! (क्व) कहाँ पर (गतः) तुम गये थे (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) पूछे। (च) और (सः) उस मूक ने (अहम्) मैं (क्षीराब्धिम्) क्षीरसागर को (गतः) गया था (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा। तब (ते) वे इकट्ठे हुए मनुष्य (तत्र) उस क्षीरसागर में (कः) कौन (विशेषः) विशेष समाचार है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) पूछे। (च) और (सः) वह मूक (विष्वक्सेनः) विष्वक्सेन भगवान् ने (रामानुजरूपेण) रामानुज रूप से (अवततार) अवतार लिया है (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (अन्तर्दधे) वह मूक अन्तर्धान हो गया (इति) इस प्रकार के (सेनापतियतिः) सेनापति यति ने (अवोचत्) कहा है। इस एक सौ चौसठवीं वार्ता में तिरपन पद हैं। इति सेनापतियत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१६४॥

अब यादव प्रकाश और ब्रह्मराक्षस के संवाद रूप वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ ब्रह्मराक्षसयादवप्रकाशोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३
मू०-यादवप्रकाशसमीपे भाष्यकृतो विद्याभ्यासकाले
४ ५ ६ ७
तद्राज्ये राजपुत्रं ब्रह्मरक्षोऽवस्कन्दितं यादवप्रकाशाय

निवेदयामासुः, स च यादवप्रकाशो गच्छेति ब्रह्मराक्ष-
सं वदतेत्यवोचत्, तच्छ्रुत्वा तेऽपि तथा वदन् तच्छ्रुत्वा
राक्षसोऽपि तमेव ततोऽन्यत्र गच्छेत्यहं वदामीति ब्रूते-
त्यवदत् तेऽपि यादवप्रकाशमवदन् तच्छ्रुत्वा यादवप्रकाशो-
ऽतिकोपितः शिष्यैः सह महामंत्रं जपन् ब्रह्मराक्षस्याग्रे-
ऽतिष्ठत्, राक्षसश्च पूर्वौ कुञ्चितौ पादौ प्रसार्य्य हे यादव-
प्रकाश ! त्वया जप्यमानं मंत्रमहं जानामीति तादृशमंत्र-
मप्युक्त्वा अहमेतेन मंत्रेण न गच्छामि, त्वं स्वजन्म-
मज्जन्म च जानीहीत्यवदत्, स च यादवप्रकाशः ननु त्वं
सर्वज्ञः मम तव च जन्म कीदृशमित्यपृच्छत्, स च
तव जन्म शृणु श्रीमथुरान्तिकतटाकसमीपे कस्मिंश्चि-
द्वल्मीके त्वं गोधाशरीरोऽवसः, तत्र श्रीवेङ्कटगिरिं समूही-
भूय गच्छन्तः श्रीवैष्णवाः-तत्तटाके स्नात्वा स्वयं पाकं
कृत्वा-अभुञ्जत, तद्भुक्तपात्राणामधः स्थितान् विघसान्
भुक्त्वा तत्तीर्थमपिबःतेन इदानीं त्वं विद्वान् जातः, अथ
मम जन्म शृणु, अहं ब्राह्मणजन्मा यागं कर्तुमुद्युक्तः-
तत्र मंत्रलोपक्रियालोपादौ संभवति ब्रह्मराक्षसः जात-
इत्यवदत्, यादवप्रकाशश्च त्वं कनोपायेन गच्छसीत्य-
पृच्छत्, स च त्वत्समीपे-अध्येतृणां मध्ये-एकोऽनन्त-
गरुडविष्वक्सेनादिषु नित्यसूरिषु कश्चन इति भाष्यकृत
प्रदृश्य तच्चरणयोः प्रणम्य-अयं गच्छेति वदति चेत्
गच्छामीत्यवदत्, तद् श्रुत्वा भाष्यकृतं प्रति यादवप्रकाशो

१८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८
भवानेव वदत्वित्यवोचत्, स च त्वद्मनस्य चिह्नं
१८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६
प्रदर्श्य गच्छेत्यवदत्, ब्रह्मराक्षसश्च-अयमश्वत्थः पति-
१९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४
ष्यतीत्युक्त्वा तत्रत्यमश्वत्थं निपात्य-अगच्छत्, यादव-
२०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११
प्रकाशश्च भाष्यकृतं भवान् सर्वज्ञ इत्युपश्लोक्य पुन-
२१२ २१३
र्मठमगमत् ॥१६५॥

॥ लक्ष्मणार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- ततो महाँल्लक्ष्मणदेशिकेन्द्रः शास्त्रप्रवीणोपि तदर्थजातम्।
नित्यं पठंस्तत्त्वविदग्रगण्यस्समास्थितोऽभूत्किल यादवाग्रे ॥१३९॥

(यादवप्रकाशसमीपे) यादवप्रकाश पण्डित के समीप में (भाष्यकृतः) श्रीभाष्यकार के (विद्याभ्यासकाले) विद्या अध्ययन करने के समय में (तद्राज्ये) उसी राज्य में (अर्थात्) काँचीपुरी में (ब्रह्मरक्षोवस्कन्दितम्) ब्रह्मराक्षस से अवस्कन्दित (राजपुत्रम्) राजा के पुत्र को (यादवप्रकाशाय) यादव प्रकाश के लिये (निवेदयामासुः) राजा के अनुचर सबों ने निवेदन किया (च) और (सः) उस (यादवप्रकाशः) यादव प्रकाश ने (गच्छ) तुम चले जावो (इति) इस प्रकार के (ब्रह्मराक्षसम्) ब्रह्मराक्षस से (वदत) तुम सब कहो (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा (तत्) तब उसी कहे हुए वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (ते) वे राजा के अनुचर सब (अपि) भी (तथा) वैसेही (अवदन्) ब्रह्मराक्षस से बोले। उसके बाद (तत्) उस कहे हुए वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (राक्षसः) ब्रह्मराक्षस (अपि) भी (तम्) उस यादव प्रकाश को (एव) निश्चय करके (ततः) उस जगह से (अन्यत्र) दूसरे जगह पर (गच्छ) तुम चले जावो (इति) इस प्रकार के (अहम्) मैं ब्रह्मराक्षस (वदामि) कहता हूँ (इति) इस प्रकार के (ब्रूत) तुम सब यादव प्रकाश से कहो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) उस ब्रह्मराक्षस ने कहा। इसके बाद (ते) वे राजा के अनुचर सब (अपि) भी (यादवप्रकाशम्) यादव प्रकाश से (अवदन्) ब्रह्मराक्षस की बात को बोले (तत्) उस ब्रह्मराक्षस के वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (यादवप्रकाशः) यादवप्रकाश (अतिकोपितः) अत्यन्त खिसिआया हुआ (शिष्यैः) अपने शिष्यों के (सह) साथ (महामंत्रम्) रक्षोघ्न महामंत्र को (जपन्) जपते हुए (ब्रह्मराक्षसस्य) ब्रह्मराक्षस के (अग्रे) आगे में (अतिष्ठत्) ठहरा। (च) और (राक्षसः) ब्रह्मराक्षस (पूर्वौ) पहले (कुंचितौ) बटोरे हुए (पादौ) दोनों चरणों को (प्रसार्य) यादव प्रकाश के आगे बिना

भय के फैला करके (हे यादवप्रकाश) ऐ यादव प्रकाश ! (त्वया) तेरेसे (जप्यमानम्) जपे हुए (मंत्रम्) महामंत्र को (अहम्) मैं (जानामि) जानता हूँ (इति) इस कारण से (तादृशमंत्रम्) जैसा मंत्र तुम जपते हो वैसे मंत्र को (अपि) भी (उक्त्वा) कहकर (अहम्) मैं (एतेन) इस (मंत्रेण) मंत्र से (न) नहीं (गच्छामि) जाऊँगा। (त्वम्) तुम (स्वजन्म) अपने जन्म को (च) और (मज्जन्म) मेरे जन्म को (जानीहि) जानते हो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) वह ब्रह्मराक्षस यादव प्रकाश से बोला। (च) और (सः) वह (यादवप्रकाशः) यादव प्रकाश (ननु) निश्चय करके (त्वम्) तुम (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ हो इससे (मम) मेरा (च) और (तव) तेरा (जन्म) जन्म (कीदृशम्) किस प्रकार से है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) उस ब्रह्मराक्षस से पूछा (च) और (सः) उस ब्रह्मराक्षस ने कहा कि (तव) तेरा (जन्म) जन्म कहता हूँ (शृणु) तुम सुनो। (श्रीमथुरान्तिकतटाकसमीपे) श्री दक्षिण मथुरा के पास के तलाब के समीप में (कस्मिंश्चित्) किसी (वल्मीके) दिवकाण में (त्वम्) तुम (गोधाशरीरः) गोह के शरीर से (अवसः) रहते थे। (तत्र) वहाँ पर (श्रीवेङ्कटगिरिम्) श्रीवेङ्कटाचल के (समूहीभूय) समूह होकर अर्थात् जमात बाँधकर (गच्छन्तः) जाते हुए (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (तत्तटाके) उस तालाब में (स्नात्वा) स्नानकर (स्वयम्) अपने से (पाकम्) पाक को (कृत्वा) बनाकर (अभुञ्जत) भगवत् को समर्पण करके भोजन किया। (तद्भुक्तपात्राणाम्) उन श्रीवैष्णवों के भोजन किये हुए पात्रों के (अधः) नीचे (स्थितान्) स्थित (विघसान्) जूठे अन्नों को (भुक्त्वा) खाकर (तत्तीर्थम्) उन श्रीवैष्णवों के तीर्थको (अपिबः) तूने पीया। (तेन) उस पुण्य से (इदानीम्) इस समय में (त्वम्) तुम (विद्वान्) विद्वान् (जातः) उत्पन्न हुए हो। (अथ) इसके बाद अब (मम) मेरा (जन्म) जन्म (शृणु) सुनो। (अहम्) मैं (ब्राह्मणजन्मा) ब्राह्मण जन्मवाला (यागम्) यज्ञ को (कर्तुम्) करने के लिये (उद्युक्तः) तैयार हुआ (तत्र) उस यज्ञ में (मंत्रलोपक्रियालोपादौ) मंत्रलोप और क्रिया लोप आदिके (संभवति) अच्छे प्रकार से होने पर (ब्रह्मराक्षसः) मरकर मैं ब्रह्मराक्षस (जातः) उत्पन्न हुआ हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) उस ब्रह्मराक्षस ने कहा। (च) और तब (यादवप्रकाशः) यादव प्रकाश ने (त्वम्) तुम (केन) किस (उपायेन) उपाय से (गच्छसि) जावोगे (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सः) उस ब्रह्मराक्षस ने (त्वत्समीपे) आपके पास में (अध्येतृणाम्) अध्ययन करनेवालों के (मध्ये) मध्य में (एकः) एक (अनन्तगरुडविष्वक्सेनादिषु)। अनन्त गरुड विष्वक्सेन आदि (नित्यसूरिषु) नित्य सूरियों में (कश्चन) कोई है (इति) इस प्रकार के (भाष्यकृतम्) श्रीभाष्यकार को (प्रदृश्य) प्रकर्षरूप से दिखाकर (तच्चरणयोः) श्री भाष्यकार के चरणारविन्दों में (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (अयम्) यह नित्यसूरि (गच्छ) चले जावो (इति)

इस प्रकार के (चेत्) यदि (वदति) कहते हैं तो (गच्छामि) मैं चला जाता हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा। (तत्) उस ब्रह्मराक्षस के वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (भाष्यकृतम्) श्रीभाष्यकार के (प्रति) प्रति (यादवप्रकाशः) यादव प्रकाश ने (भवान्) आप (एवम्) इस प्रकार के (वदतु) कहिये (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा। (च) और (सः) वह (त्वद्गमनस्य) अपने जाने के (चिह्नम्) चिह्न को (प्रदर्श्य) प्रकर्षरूप से दिखाकर (गच्छ) चले जावो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले। (च) और (ब्रह्मराक्षसः) ब्रह्मराक्षस (अयम्) यह (अश्वत्थः) पीपलका वृक्ष (पतिष्यति) गिरेगा। (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (तत्रत्यम्) वहाँपर स्थित (अश्वत्थम्) पीपल के वृक्ष को (निपात्य) गिराकर (अगच्छत्) चला गया। (च) और (यादवप्रकाशः) यादव प्रकाश (भाष्यकृतम्) श्रीभाष्यकार को (भवान्) आप (सर्वज्ञः) सर्वज्ञ हैं (इति) इस प्रकार के (उपश्लोक्य) स्तुति करके (पुनः) फिर (मठम्) अपने मठ में (अगमत्) चला गया "अगमत्" यहाँ पर ॥ **पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ५५॥** इस सूत्र से अङ् हुआ है। अब यहाँ पर बहुत से दलीलबाज लोग मनुष्य योनि से अलग यक्ष राक्षस गन्धर्व किन्नर भूत प्रेत पिशाच आदि कुछ भी नहीं मानते हैं। परन्तु ये मनुष्य से अलग हैं। इस विषय में अधोलिखित प्रमाणों को कृपया सज्जन लोग अवलोकन करें।

॥ यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान्। नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥ मनु० अ० १, श्लो० ३७॥

यक्ष राक्षस पिशाच गन्धर्व अप्सरा असुर नाग सर्प गरुड़ और पितृगणों को भी अलग अलग उत्पन्न किया ॥३७॥ और वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि **॥ राक्षसानां पिशाचानां रौद्राणां क्रूरकर्मणाम् ॥ वाल्मी० रा० अयो० २, स० २५, श्लो० १७ ॥ क्रव्यादानां च सर्वेषां माभूत्पुत्रक तेभयम् ॥१८॥** रौद्र क्रूरकर्मवाले राक्षसों से और पिशाचों से ॥१७॥ हे पुत्र ! तथा समस्त क्रव्यादों से तुझको भय न हो ॥१८॥ और सुश्रुत में लिखा है कि–

भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ॥ सुश्रुतसूत्रस्थान ११॥

भूत विद्या माने देव असुर गन्धर्व यक्ष राक्षस पितर पिशाच और नाग तथा ग्रह आदि करके व्याप्तचित्तवाले पुरुषों के आनन्द के लिये शान्ति कर्म करना बलि देना और ग्रह को शमन करना आदि है ॥११॥ और सुश्रुत के उत्तर तंत्र अध्याय साठ में भूत के विषय में पूरा वर्णन है। और शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि ॥ **अग्निर्हिरक्षसामपहन्ता ॥ शत० २/४/२/१५॥** निश्चय करके अग्नि राक्षसों का नाश करनेवाली

है ।।१५।। और बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ याज्ञवल्क्येति होवाच मद्रेषुचरकाः पर्यव्रजाम ते पतंजलस्य काप्यस्य गृहानैम तस्यासीद्दुहिता गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कासीति सोऽब्रवीत् सुधन्वाङ्गिरस इति ॥ बृह० अ० ३, ब्रा० ३, श्रु० १॥

याज्ञवल्क्य ने कहा हम मद्र देश में फिरते रहे, वहाँ पर पतञ्जल की कन्या को गन्धर्व ने ग्रहण किया। हमने उससे पूछा तुम कौन हो, उसने कहा कि मैं सुधन्वांगिरस हूँ।।१।। और यजुर्वेद में लिखा है कि।।

न तद्रक्षांसि न पिशाचाश्चरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् यो बिभर्ति। दाक्षायणं हिरण्यं सदेवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ यजु० अ० ३४ मं० ५१॥

जो सुवर्ण को धारण करता है उसको राक्षस और पिशाच अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं। यह देव गण का प्रथम उत्पन्न तेज है। यह दाक्षायणतेज जो धारण करता है वह देवता और मनुष्य लोक में सर्वत्र ही दीर्घ आयु को प्राप्त करता है।।५१।। और देखिये अथर्ववेद में लिखा है कि।।

नैनं घ्नन्ति अप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः। सर्वा दिशो विराजन्ति यो बिभर्तीमं मणिम्॥ अथर्व० काण्ड० सू० ५, मं० १३॥

जो इस मणि को धारण करता है उसको अप्सरा गन्धर्व और मनुष्य बाधा नहीं पहुँचा सकते हैं और उसके लिये सब दिशाएँ प्रकाशित रहती हैं।।१३।। और देखिये भूत और पिशाच की आकृति भी मनुष्य की आकृति से भिन्न होती है।।

येषां पश्चात् प्रपदनानि पुरः पार्ष्णी पुरो मुखाः खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मटमटाः कुम्भमुष्का अयाशवः तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतिबोधेन नाशय॥ अथर्व० कां० ८, सू० ६, मं० ॥१५॥

हे वेद के अधिपते ! जिन पिशाच और भूतादिकों के पीछे की ओर पैर के पंजे और अगाड़ी की ओर एड़ी और मुँह होता है और ये खलिहान में तथा शक के धूम से उत्पन्न होनेवाले हैं, तथा कुम्हारों की अवाओं में मटमट करते रहते हैं और जिनके कुम्भ के समान अण्डकोश होते हैं, और जो सबसे अधिक चल सकते हैं, उन मनुष्य से भिन्न आकृतिवाले भूतों को मंत्र के प्रभाव से नष्ट कर दीजिये ।।१५।। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि मनुष्य योनि से प्रेतादिक योनि अलग है। इस एकसौ पैंसठिवीं वार्ता में दो सौ तेरह पद हैं। इति ब्रह्मराक्षसयादवप्रकाशोक्त-वार्ताव्याख्यानम् ।।१६५।।

अब अनन्ताल्वार के शिष्यों के और मंगलमुडयान् के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि--

॥ अथानन्ताल्वारशिष्यमंगलमुडयानार्योक्ता वार्ता ॥

मू०--अनन्ताल्वारश्रीपादसंबन्धिनः केचन श्रीवैष्णवाः श्रीरङ्गपत्तनात् श्रीवेंकटाद्रिं सेवितुं गच्छन्ति तदा बलवत्तान् मंगलमुडयान् बहिर्वेदिकायां शयानो भवन्तः क्व गच्छन्ति इत्यपृच्छत्, ते च श्रीवेङ्कटेशं सेवितुं गच्छाम इत्यवदन्, स चाहमप्यागच्छामीत्युक्त्वा तैः सह निःसृतः सर्वेषु द्वित्रिदिवसमार्गं गतेषु ते तं पृथक् कृत्वा स्वयमेकीभूय गन्तुमुद्युक्ता अभवन्, स च तदानीं मामपि श्रीवैष्णवं कृत्वा गच्छतेति-एतान् बहुकालं निबंबन्ध, ते च तूष्णीं गत्वा श्रीवेंकटाद्रौ अनन्ताल्वारचरणयोः प्रणम्यातिष्ठन्, स चानन्ताल्वारः कुशलादिकं पृष्ट्वा-एतान् प्रति काश्चन वार्ता उक्त्वा श्रीवेङ्कटेशं प्रणेतुं गच्छतेत्यवदत् ॥१६६॥

॥ अनन्तार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- अनन्तार्योथ सहसा स्नात्वा सम्यग् दृढव्रतः ।
कैंकर्याणि यथापूर्वं कुर्वन्निश्चल आस्थितः ॥१४०॥

(अनन्ताल्वारश्रीपादसंबन्धिनः) अनन्ताल्वारस्वामीजी के श्रीपादसंबन्धी (केचन) कुछ (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (श्रीरङ्गपत्तनात्) श्रीरंगपत्तन से (श्रीवेङ्कटाद्रिम्) श्रीवेंकटाचल को (सेवितुम्) सेवन करने के लिये (गच्छन्ति) चले। (तदा) तब (बहिः) बाहर (वेदिकायाम्) वेदिका पर (शयानः) सोते हुए (मंगलमुडयान्) मंगलमुडयान् नाम के महात्माने (बलवत्तान्) बल वाले उन श्रीवैष्णवों से (भवन्तः)

आप सब (क्व) कहाँ पर (गच्छन्ति) जाते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (ते) वे श्रीवैष्णव (श्रीवेङ्कटेशम्) श्रीवेंकटेश भगवान् को (सेवितुम्) सेवा करने के लिये (गच्छामः) हम सब जाते हैं। (इति) इस प्रकार के (अवदन्) कहे हैं। (च) और (सः) वह मंगलमुडयान् नाम का महात्मा (अहम्) मैं (अपि) भी (आगच्छामि) आता हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कह कर (तैः) उन श्रीवैष्णवों के (सह) साथ (निःसृतः) निकल गये। (सर्वेषु) सब के (द्वित्रिदिवसमार्गम्) दो तीन दिनतक रास्ता में (गतेषु) जाने पर (ते) वे श्रीवैष्णव (तम्) उस मंगलमुडयान् महात्मा को (पृथक्) अलग (कृत्वा) करके (स्वयम्) अपने में (एकीभूय) इकट्ठा होकर (गन्तुम्) जाने के लिये (उद्युक्ताः) तैयार (अभवन्) हो गये। (च) और (सः) वह मंगलमुडयान् (तदानीम्) उस समय में (माम्) हमको (अपि) भी (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव (कृत्वा) बनाकर (गच्छत) आप सब जाइये (इति) इस प्रकार के (एतान्) इन श्रीवैष्णवों को (बहुकालम्) बहुत देरतक (निर्बबन्ध) आग्रह किये। (च) और (ते) वे श्रीवैष्णव सब (तूष्णीम्) चुपचाप (गत्वा) जा करके (श्रीवेङ्कटाद्रौ) श्रीवेंकटाचल पर (अनन्ताल्वारचरणयोः) अनन्ताल्वार स्वामीजी के चरणारविन्दों में (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (अतिष्ठन्) ठहर गये। (च) और (सः) वह (अनन्ताल्वारः) अनन्ताल्वार स्वामीजी (कुशलादिकम्) कुशल आदिक को (पृष्ट्वा) पूछ करके (एतान्) इन श्रीवैष्णवों के (प्रति) प्रति (काश्चन) कुछ (वार्ताः) वार्ताओं को (उक्त्वा) कहकर (श्रीवेङ्कटेशम्) श्रीवेंकटेश भगवान् को (प्रणेतुम्) प्रणय करने के लिये (गच्छत) तुम सब चले जावो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। इस एक सौ छियासठवीं वार्ता में बेयासी पद हैं। इत्यनन्ताल्वारशिष्यमंगलमुडयानार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१६६॥

अब अनन्ताल्वारस्वामीजी के और श्रीवैष्णवों के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

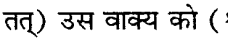
॥ अथानन्ताल्वारश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

मू०–ते[१] च[२] तं[३] प्रदर्श्य[४]-एतद्वाचं[५] शृणु[६]-इत्यवदन्[७], स[८] च[९] तच्छ्रुत्वा[१०]-अयं[११] किं[१२] वदतीत्यपृच्छत्[१३], ते[१४] चायं[१५] स्वय-मङ्गीकार्य[१६] इति[१७] विज्ञापयामासुः[१८] ॥१६७॥

॥ अनन्तार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- स कदाचिदनन्तार्यो वृषाद्रौ पुष्पमण्डपे।
तस्थौ श्रीवेङ्कटेशस्य कुर्वन्कुसुममालिकाः ॥१४१॥

(च) और (ते) वे अनन्ताल्वार श्रीपाद संबन्धी श्रीवैष्णव सब (तम्) उस मंगलमुडयान् महात्मा को (प्रदर्श्य) प्रकर्ष रूप से दिखा करके (एतद्वाचम्) इस मंगलमुडयान् की वाणी को (शृणु) सुनो (इति) इस प्रकार के (अवदन्) बोले। (च) और (सः) वह अनन्ताल्वार (तत्) उस वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (अयम्) यह मंगलमुडयान् (किम्) क्या (वदति) कहते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे (च) और तब (ते) वे श्रीवैष्णव सब (अयम्) यह मंगलमुडयान् (स्वयम्) अपने से (अङ्गीकार्यः) स्वीकार करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार के (विज्ञापयामासुः) विज्ञापन किये। इस वार्ता में चौबीस पद हैं। इत्यनन्ताल्वारश्रीवैष्णवोक्तवार्त्ताव्याख्यानम् ॥१६७॥



अब अनन्ताल्वार और मंगलमुडयानार्य की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथानन्ताल्वारमंगलमुडयानार्योक्ता वार्ता ॥

मू०-अनन्ताल्वारः[१] त्वया[२] मदाश्रयणं[३] कार्यं[४] किं[५]-मित्यपृच्छत्[६], स[७] च[८] मां[९] स्वीकुरु[१०] रक्षेत्यवदत्[११], स[१२] च[१३] मत्स[१४]-मीपे[१५] हितं[१६] शृणोति[१७] चेत्[१८] त्वदैश्वर्यं[१९] त्वां[२०] विहाय[२१] गच्छे[२२]-दित्यवदत्[२३], स[२४] च-एतद्[२५] च्छ्रुत्वित्यवदत्[२६], अनन्ताल्वारः[२७] मया[२८] गन्तव्यं[२९] देशं[३०] त्वमपि[३१] गच्छसीत्युक्त्वा[३२] हितमवोचत्[३३], अन[३४]-न्तरं[३५] धान्यस्य[३६] दुग्धे[३७] शुष्यति[३८] तत्स्तंबो[३९] यथा[४०] नमति[४१] तथा[४२] शरणागत्यर्थे[४३] हृदयं[४४] गते[४५] सति[४६] स्वयमतिनम्रः[४७] स्वोपरि-विद्यमानं[४८] सुवर्णं[४९] सर्वमपि[५०]-आचार्यदक्षिणां[५१] दत्वा[५२] स्वग्राम[५३]-मगमत्[५४], अनन्तरमयं[५५] श्रीवैष्णवो[५६] जात[५७] इति[५८] द्रष्टुमाग[५९]-तेभ्यः[६०] श्रीवैष्णवेभ्योऽपेक्षितं[६१] दातुमुद्युक्तोऽभवत्[६२], तदा[६३] तन्मातापितरौ[६४] तमाहूय[६५] ऋषिसदृशेभ्य[६६] आगतेभ्यो[६७] ब्राह्मणेभ्यस्त्वं[६८] ददासि[६९] त्वया[७०] क्रियमाणं[७१] धर्ममावां[७२] न

प्रतिबध्नीवः, त्वां विश्वसतोरावयोः किञ्चिद्धेहीत्यवदतां स च तथैव करोमीत्युक्त्वा तत्र विभज्य तयोरपि दत्वा स्वयमपि प्रबन्धानीत्य-उत्पन्नः स्वरूपज्ञानः श्रीवेङ्कटाद्रि-मगमत्, अनन्ताल्वान् ननु तदैवाहमवदत्, त्वदैश्वर्यं त्वां त्यक्त्वा गच्छेदित्यवदत् ॥१६८॥

॥ अनन्ताल्वारस्तुतिः ॥

अर्थ- आह्वयामास भगवाननन्तार्यं स्वसन्निधिम्।
स तच्छ्रुत्वाप्यसंभाष्य तूष्णीं तस्थौ तदुद्यमः ॥१४२॥

(अनन्ताल्वारः) अनन्ताल्वार स्वामीजी ने (त्वया) तुम (मदाश्रयणम्) मेरा आश्रयण (कार्यम्) करोगे (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सः) वह मंगलमुडयान् (माम्) मुझको (स्वीकुरु) स्वीकार कीजिये (रक्ष) और रक्षा कीजिये (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले। (च) और (सः) वह अनन्ताल्वारस्वामीजी (मत्समीपे) मेरे पास में (हितम्) अपने कल्याण को यदि (शृणोति) सुनते हो (चेत्) तो (त्वदैश्वर्यम्) तेरा ऐश्वर्य (त्वाम्) तुमको (विहाय) छोड़कर (गच्छेत्) चला जायगा (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। (च) और (सः) वह मंगल मुडयान् (एतत्) यह मेरा ऐश्वर्य (गच्छतु) चला जाय (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। (अनन्ताल्वारः) अनन्ताल्वार स्वामीजी ने (मया) मेरे करके (गन्तव्यम्) जाने योग्य (देशम्) देश को (त्वम्) तुम (गच्छसि) जावोगे (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (हितम्) कल्याण को (अवोचत्) कहा है। (अनन्तरम्) अनन्तर (धान्यस्य) धान के (दुग्धे) दूध (शुष्यति) सूखने पर (तत्स्तंबः) धानकास्तंब (यथा) जैसे (नमति) झुक जाता है। (तथा) वैसे ही (शरणागत्यर्थे) शरणागति के अर्थ में (हृदयम्) हृदय (गते) प्राप्त (सति) होने पर (स्वयम्) अपने ही (अतिनम्रः) अत्यन्त नम्र हो जाता है। मंगल मुडयान् (स्वोपरि) अपने शरीर के ऊपर (विद्यमानम्) विद्यमान (सर्वम्) संपूर्ण (सुवर्णम्) सोने के भूषण को (अपि) भी (आचार्यदक्षिणाम्) अनन्ताचार्य स्वामीजी के लिये दक्षिणा को (दत्वा) देकर (स्वग्रामम्) अपने गाँव को (अगमत्) चले गये। (अनन्तरम्) इसके बाद (अयम्) यह मंगल मुडयान् (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (जातः) हो गये हैं (इति) इस कारण से (द्रष्टुम्) देखने के लिये (आगतेभ्यः) आये हुए (श्रीवैष्णवेभ्यः) श्रीवैष्णवों के लिये (अपेक्षितम्) अपेक्षित वस्तु को (दातुम्) देने

के लिये (उद्युक्तः) उद्युक्त (अभवत्) हुए। (तदा) तब (तन्मातापितरौ) उस मंगल मुडयान् के माँ और बाप (तम्) उस मंगलमुडयान् को (आहूय) बुलाकर (ऋषिसदृशेभ्यः) ऋषि के समान (आगतेभ्यः) आये हुए (ब्राह्मणेभ्यः) ब्राह्मणों के लिये (त्वम्) तुम (ददासि) द्रव्यादिक देते हो (त्वया) तूझसे (क्रियमाणम्) क्रियमाण (धर्मम्) धर्म को (आवाम्) हम दोनों (न) नहीं (प्रतिबध्नीवः) रोकते हैं (त्वाम्) तुमको (विश्वसतोः) विश्वासवाले (आवयोः) हम दोनों के लिये (किंचित्) कुछ द्रव्य को (देहि) दो (इति) इस प्रकार के (अवदताम्) वे दोनों कहे। (च) और (सः) वह मंगलमुडयान् (तथा) वैसे ही (एव) निश्चय करके (करोमि) करता हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (तत्र) वहाँपर (विभज्य) अपने धन में विभाग करके (तयोः) उन दोनों माँ बाप के लिये (अपि) भी (दत्वा) धन को देकर (स्वयम्) अपने (अपि) भी (प्रबन्धान्) "तिरुविरुत्ते" "तिरुवाशिरिये" "पेरियतिरुवन्दादौ" "तिरुवायमोलि" इत्यादिक प्रबन्धों को (अधीत्य) पढ़कर (उत्पन्नः) उत्पन्न (स्वरूपज्ञानः) स्वरूपज्ञानवाला मंगल मुडयान् (श्रीवेंकटाद्रिम्) श्रीवेंकटाचल को (अगमत्) चले गये। (अनन्ताल्वान्) अनन्ताल्वार स्वामीजी ने (अवदत्) मंगलमुडयान् से कहा कि (ननु) निश्चय करके (तदा) उस हितोपदेश देने के समय में (एव) ही (अहम्) मैं ने कहा था कि (त्वदैश्वर्यम्) तेरा ऐश्वर्य (त्वाम्) तुझको (त्यक्त्वा) छोड़कर (गच्छेत्) चला जायगा (इति) इस प्रकार के अनन्ताल्वार स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। इस एक सौ अड़सठवीं वार्ता में एक सौ बत्तीस पद हैं। इत्यनन्ताल्वारमंगलमुडयानार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१६८॥

अब मंगलमुडयानार्य की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ मंगलमुडयानार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–तच्छ्रुत्वा स च द्वे वार्ते मम भवद्भिरुक्ते एका मत्तो हितं श्रृणोति चेत्, मया प्राप्यं देशं गच्छसीति वार्ता मूलधनमित्यगृह्णम्, द्वितीया तु त्वदैश्वर्यम् त्वां विहाय गच्छेदिति सा प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा-अथ श्रीपादयोर्दास आगत इत्यवदत् ॥१६९॥

॥ लक्ष्मणार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीरङ्गेशो वृषाद्रीशो वरदो यदुशैलराट्।
पोष्यः शिष्यो गुरुः पुत्रो यस्य तं गुरुमाश्रये ॥१४३॥

(तत्) अनन्ताल्वार स्वामीजी के उस वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (च) और (सः) वह मंगलमुडयान् (द्वे) दो ठो (वार्त्ते) वार्ता (मम) मेरे लिये (भवद्भिः) आपने (उक्ते) कही। (एका) उसमें एक वार्ता यह है कि (मत्तः) मेरे से (हितम्) हित को (शृणोति) सुनता है (चेत्) यदि तो (मया) मेरे से (प्राप्यम्) प्राप्त करने योग्य (देशम्) देश को (गच्छसि) तुम प्राप्त करोगे (इति) इस प्रकार की (वार्त्ताम्) वार्ता को (मूलधनम्) मूलधन (इति) ऐसा समझ कर (अगृह्णम्) मैंने ग्रहण किया है। और (द्वितीया) दूसरी (तु) तो यह वार्त्ता है कि (त्वदैश्वर्यम्) तेरा ऐश्वर्य (त्वाम्) तुमको (विहाय) छोड़कर (गच्छेत्) चला जायेगा (इति) इस प्रकार की दूसरी वार्ता है (सा) वह दूसरी वार्ता तो (प्रत्यक्षतः) प्रत्यक्ष से (दृष्टा) देखी गयी है। (अथ) इसके बाद (श्रीपादयोः) श्रीमान् के श्रीचरणों में (दासः) दास (आगतः) आया है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) मंगलमुडयान् ने कहा है। इस वार्ता में उन्तालीस पद हैं। इति मंगलमुडयानार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१६९॥

अब अनन्ताल्वार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथानन्ताल्वारोक्ता वार्ता॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मू०-स च इतः परमत्रैव तिष्ठेत्यवोचत्॥१७०॥

॥ अनन्ताल्वारस्तुतिः॥

अर्थ- यूयं वयं च शेषाद्रेरस्य तुल्यास्ततो ध्रुवम्।
मां निर्वासयितुं देव कथं शक्तोभवान् भवेत्॥४४॥

(च) और (सः) उस अनन्ताल्वार स्वामीजी ने (इतः) आजसे (परम्) परे (अत्र) यहाँ वेङ्कटाचल पर (एव) निश्चय करके (तिष्ठ) तुम ठहरो (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है। इस एक सौ सत्तरवीं वार्तामें नव पद हैं। इत्यनन्ताल्वारोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७०॥

अब श्रीरङ्गनाथभगवान्के और कूरेशस्वामीजीके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ रङ्गनाथकूरेशोक्ता वार्ता॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१

मू०–श्रीरङ्गनाथः कूरेशं दृष्ट्वा त्वं स्वापेक्षितं गृहाणेत्यवदत्, स च दासस्य पूर्वमेव सर्वमदा इति विज्ञापयामास, स्वाम्यपि-इदानीं किञ्चिदभिमतं गृहाणेत्यवोचत्, कूरेशश्च मत्संबन्धिनां सर्वेषामपि परमपदं देहीत्यवदत्, स्वाम्यपि तथैव दतमित्यवोचत्॥१७१॥

॥ अथ कूरेशस्तुतिः॥

अर्थ- तदा कूरेश्वरो विद्वांश्चक्रे स्तोत्रचतुष्टयम्।
श्रीस्तवं सुन्दरभुजस्तवं चैवातिमानुषम्।
श्रीवैकुण्ठस्तवमिति ख्यातमेतच्चतुष्टयम्॥१४५॥

(श्रीरङ्गनाथः) श्रीरंगनाथ भगवान् ने (कूरेशम्) कूरेश स्वामीजीको (दृष्ट्वा) देखकर (त्वम्) तुम (स्वापेक्षितम्) अपने अपेक्षित वरको (गृहाण) मुझसे ग्रहण करो (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। "गृहाण" यहाँ पर॥ **हलः श्नः शानज्झौ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ८३॥** इस सूत्रसे शानजादेश हुआ है। (च) और (सः) उस कूरेश स्वामीजी ने (दासस्य) दासके (पूर्वम्) पहले ही (एव) निश्चय करके (सर्वम्) सब कुछ (अदाः) आप दिये हैं (इति) इस प्रकारके (विज्ञापयामास) विज्ञापन किया। तब (स्वामी) श्रीरंगनाथ भगवान् ने (अपि) भी (इदानीम्) इस समयमें (किञ्चित्) कुछ (अभिमतम्) अभिमत वरको (गृहाण) मुझसे ग्रहण करो (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है। (च) और (कूरेशः) कूरेश स्वामीजी ने (मत्संबन्धिनाम्) मेरे संबन्धी (सर्वेषाम्) सबोंके (अपि) भी (परमपदम्) परमपदको (देहि) दीजिए "देहि" यहाँ पर॥ **घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० ११९॥** इस सूत्रसे एत्त्व और अभ्यास लोप होता है। (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। (स्वामी) श्रीरंगनाथ भगवान् ने (अपि) भी (तथा) जैसा कूरेशस्वामीजी ने वर माँगा था वैसा ही (एव) निश्चय करके (दतम्) मैं दिया हूँ (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहा है। इस एक सौ ईकहत्तरवीं वार्तामें ईकतालीस पद हैं। इति रङ्गनाथकूरेशोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७१॥

अब श्रीभाष्यकार की वार्ता को कहते हैं-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता॥

मू०–एतच्छ्रुत्वा भाष्यकारः कषायमुद्धृत्य ननर्त, समीपस्था एतत् किमित्यपृच्छन्, स च ममापि कूरेश-संबन्धस्य सत्वात् परमपदं प्राप्यं भवेदित्यवोचत्॥१७२॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ- सर्वाज्ञानाविष्णुपदाब्जभृङ्गान्कुर्वन्स्वसामर्थ्यबलेन धीरः।
गोविन्दकूरेशमुखैश्च शिष्यैस्तस्थौ स रङ्गं यतिसार्वभौमः॥१४६॥

(एतत्) इस कूरेशस्वामीजीके संबन्धियोंके श्रीरंगनाथजी परमपद देनेके लिये वर दिये हैं इस बातको (श्रुत्वा) सुनकर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार ने (कषायम्) कषायवस्त्रको (उद्धृत्य) उद्धरण करके (ननर्त) नृत्य किया। तब (समीपस्थाः) समीपमें स्थित पुरुष सबों ने (एतत्) यह (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अपृच्छन्) पूछा। (च) और (सः) वह श्रीभाष्यकार (मम) मुझे (अपि) भी (कूरेशसंबन्धस्य) कूरेशके साथ गुरु शिष्यरूप संबन्धके (सत्वात्) होनेसे (परमपदम्) पदमपद (प्राप्यम्) प्राप्त करने योग्य (भवेत्) होगा (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले हैं। इस वार्तामें बाईस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७२॥

अब धनुर्दासजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथधनुर्दासोक्ता वार्ता॥

मू०–भाष्यकारेऽभयप्रदानार्थं वदति धनुर्दासो गोष्ठीतो निर्गम्य श्रीविभीषणं स्वाभिमानं त्यक्त्वा भगवच्चारणौ शरणत्वेन "सर्वलोकशरण्याय" इति स्वीकुर्वन्तमुद्दिश्य शिलाकाष्ठेऽगृह्णात्, तत्परिकरा वयं किं कुर्म इत्यबिभेत्॥१७३॥

॥ धनुर्दासस्तुतिः॥

अर्थ- यतीशसंबन्धमहाबलेन श्रीरङ्गराजस्य कृपाबलेन।
निरस्तकामादिमहारिवर्गो बभूव मल्लाधिपतिर्महात्मा॥१४७॥

(भाष्यकारे) श्रीभाष्यकारके (अभयप्रदानार्थम्)।। **सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥** वाल्मी० युद्ध० ६, स० १८, श्लो० ३३॥

एक बार भी मैं आपका दास हूँ जो ऐसी याचना करता है, उस प्रपन्न जनके लिये संपूर्ण जीवोंसे मैं अभयप्रदान करता हूँ, यह मेरा व्रत है।।३३।। इस अभय प्रदानके अर्थको (वदति) कहने पर (धनुर्दासः) धनुर्दासजी ने (गोष्ठीतः) गोष्ठीसे (निर्गम्य) निकलकर (स्वाभिमानम्) अपने अभिमानको (त्यक्त्वा) छोड़कर (भगवच्चरणौ) श्रीमन्नारायण भगवान्के चरणारविन्दों को (शरणत्वेन) उपायता करके (सर्वलोकशरण्याय) सब लोकके रक्षक श्रीरामभद्रके लिये (इति) इस प्रकारके (स्वीकुर्वन्तम्) स्वीकार करनेवाले (श्रीविभीषणम्) श्रीविभीषणको (उद्दिश्य) उद्देश्यकर (शिलाकाष्ठे) शिला और शाल के काठको (अगृह्णात्) भगवत्की सेनाने ग्रहण किया। (तत्परिकराः) उन भागवतोंके परिकार (वयम्) हम सब (किम्) क्या (कुर्मः) करते हैं (इति) इस प्रकारके (अबिभेत्) भय किया है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीविभीषण ने स्वाभिमानको छोड़कर श्रीरामजीकी शरणागति की है? इस प्रश्नका उत्तर लिखा है कि

॥ सोऽहं परुषितस्तेन दासवन्नावमानितः। त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः॥ वाल्मी० रा० युद्ध० ६, स० १७, श्लो० १६॥

मैं उस रावणसे कठोर वचन सुन नौकरकी तरह अपमानित हो पुत्र और स्त्रियोंको छोड़ कर श्रीराघवजीकी शरणमें आया हूँ।।१६।। इस प्रकारके पहले प्रश्नका उत्तर होनेपर तो दूसरा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीरामजीकी सेनाने शिला और शालके काठको ग्रहण किया है? इस प्रश्नका उत्तर वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि

॥ सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः। शालानुद्यम्य शैलांश्च इदं वचनमब्रुवन्॥ वा० रा० यु० ६, स० १७, श्लो० ८॥ **शीघ्रं व्यादिश नो राजन्वधायैषां दुरात्मनाम्॥९॥**

सुग्रीवके वचनको सुनकर सब वे वानरोत्तम शालोंको और शैलोंको लेकर इस वचन को बोले।।८।। हे राजन्! इन दुष्टात्माओंके मारनेके लिये शीघ्र हम सबोंको आज्ञा दीजिये।।९।। इस प्रकारके दूसरे प्रश्नका उत्तर होनेपर तीसरा प्रश्न होता है कि "सर्वलोकशरण्याय" यह संपूर्ण श्लोक किस प्रकार का है। और उसका अर्थ क्या है? इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकारसे लिखा है कि;

॥ सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने। निवेदयत मां क्षिप्रं विभीषणमुपस्थितम्॥ वा० रा० यु० ६, स० १७, श्लो० १७ ॥

समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले महात्मा श्रीरामजीके लिये उपस्थित विभीषण नामवाले मुझको शीघ्र तुम सब निवेदन करो॥१७॥ इस प्रकारसे तीसरे प्रश्नका उत्तर है। इस एक सौ तिहत्तरवीं वार्तामें तेईस पद हैं। इति धनुर्दासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७३॥

अब श्रीभाष्यकारस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

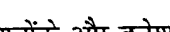
॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता॥

मू०—तदा[१] भाष्यकारः[२] मम[३] महापूर्णस्तिष्ठति[४] तवाहं[५] तिष्ठामीत्यवोचत्[६]॥१७४॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ- उपायोपेयभूतश्च लक्ष्मणार्यो जगद्गुरुः।
तन्नामोच्चारणादेव सर्वं नश्यति पातकम्॥१४८॥

(तदा) धनुर्दासजीके डरनेपर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (मम) मेरे (महापूर्णः) महापूर्ण स्वामीजी आचार्य (तिष्ठति) मोक्षके विषयमें निर्भय करनेके लिये ठहरते हैं। और (तव) तेरे मोक्षके विषयमें निर्भय करनेके लिये (अहम्) मैं (तिष्ठामि) ठहरा हूँ (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले हैं। इस वार्तामें दस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७४॥



अब श्रीवैष्णवोंके और कूरेशस्वामीजीके संवादरूपवार्ताको कहते हैं कि

॥ अथ कूरेशश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता॥

मू०—भाष्यकाराद्यामुनाचार्याच्च[१] वैलक्षण्यं[२] कस्यास्तीति[३] कूरेशं[४] श्रीवैष्णवा[५] अपृच्छन्[६], स[७] च[८] एकां[९] रात्रीम्[१०] विचार्य्य[११] श्रियः[१२] पतेलक्ष्म्याश्च[१३] वैलक्षण्यं[१४] कस्यास्तीत्यवदत्[१५]॥१७५॥

॥ कूरेशस्तुतिः॥

अर्थ- कृताधिवासः श्रीरङ्गे कूरेशो देशिकप्रियः।
उञ्छवृत्तिपरो नित्यमुवास स महायशाः॥१४९॥

(भाष्यकारात्) श्रीभाष्यकारसे (च) और (यामुनाचार्यात्) यामुनाचार्य स्वामीजीसे (वैलक्षण्यम्) वैलक्षण्य (कस्य) किसका (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (कूरेशम्) कूरेश स्वामीजीसे (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (अपृच्छन्) पूछा। (च) और (सः) उस कूरेशस्वामीजी ने (एकाम्) एक (रात्रीम्) रात्रिमें (विचार्य) विचारकर (श्रियः) लक्ष्मीजीके (पतेः) पतिनारायण भगवान्से (च) और (लक्ष्म्याः) लक्ष्मीजीसे (वैलक्षण्यम्) विलक्षणता (कस्य) किसकी (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। इस एक सौ पचहत्तरवीं वार्तामें चौबीस पद हैं। इति कूरेशश्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७५॥

अब श्रीवैष्णवोंके और भाष्यकारके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ भाष्यकारश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता॥

मू०-एकदा श्रीवैष्णवैः सह भाष्यकारे गच्छति महापूर्णः साष्टाङ्गं प्रणनाम, भाष्यकारश्चाञ्जलिं बध्वा-अगच्छत्, श्रीवैष्णवाः किमिदमिति भाष्यकारमपृच्छन्, स च तदानीं तदिष्टानुवर्तनमस्माकं स्वरूपमित्य-वोचत्॥१७६॥

॥ यतीन्द्रस्तुतिः॥

अर्थ- काञ्च्यां यतीन्द्रः करुणाकरेन्द्रः कमादिदोषान्करुणार्द्रदृष्ट्या।
जनस्य सर्वान्प्रणुदन् विरेजे यथातपं शीतकरो निशायाम्॥१५०॥

(एकदा) एक समयमें (श्रीवैष्णवैः) श्रीवैष्णवोंके (सह) साथ (भाष्यकारे) श्रीभाष्यकार के (गच्छति) जानेपर (महापूर्णः) महापूर्णस्वामीजी ने (साष्टाङ्गम्) साष्टाङ्ग (प्रणनाम) प्रणाम किया। (च) और (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (अञ्जलिम्) अंजलिको (बध्वा) जोड़कर (अगच्छत्) चले गये। तब (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (इदम्) यह (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकारसे

(अपृच्छन्) पूछा। (च)और (सः) वह श्रीभाष्यकार (तदानीम्) उस समयमें (तदिष्टानुवर्तनम्) महापूर्णस्वामीजी की इच्छाके अनुसार अनुवर्तन करना (अस्माकम्) हम सबोंका (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले हैं। इस वार्तामें सत्ताईस पद हैं। इति भाष्यकारश्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१७६।।

अब श्रीवैष्णवों के और महापूर्ण स्वामीजीके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ महापूर्णश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता॥

मू०-अनन्तरं महापूर्णमपृच्छन्, स च श्रीवैष्णवैः सह यामुनाचार्यस्यैव तदा गमनं दृष्ट्वा-अहं प्राणममित्य-वोचत्,इदं कथमिति पुनरपृच्छन्, स च यामुनाचार्या-नन्तरमर्थस्थितिरत्रैव नान्यत्र तथा सत्येकं प्रणमति चेत्, अन्यमपि प्रणमतीत्यवदत्॥१७७॥

॥ महापूर्णस्तुतिः॥

अर्थ- एतद्दृष्ट्वा यामुनार्यवैभवं लोकविश्रुतम्।
अशिश्रियन्महापूर्णो यामुनार्यं गुरूत्तमम्॥१५१॥

(अनन्तरम्) श्रीभाष्यकारके कहनेके बाद वे श्री वैष्णव सब (महापूर्णम्) महापूर्ण स्वामीजीसे (अपृच्छन्) पूछे। (च) और (सः) वह महापूर्ण स्वामीजी (श्रीवैष्णवैः) श्रीवैष्णवोंके (सह) साथ (यमुनाचार्यस्य) यामुनाचार्य स्वामीजीके (एव) निश्चय करके (तदा) तब (गमनम्) गमनको (दृष्ट्वा) देखकर (अहम्) मैंने (प्राणमम्) साष्टाङ्ग प्रणाम किया (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहे हैं। (इदम्) यह (कथम्) कैसे, क्योंकि यामुनाचार्य स्वामीजीका परम पद हो गया है (इति) इस प्रकारके (पुनः) फिरसे (अपृच्छन्) वे श्रीवैष्ण पूछे। (च) और (सः) वह महापूर्ण स्वामीजी (यामुनाचार्यानन्तरम्) यामुनाचार्य स्वामीजीके बाद (अर्थस्थितिः) अर्थकी स्थिति (अत्र) इस श्रीभाष्यकारमें (एव) निश्चय करके है। (अन्यत्र) अन्य पुरुषमें अर्थकी स्थिति (न) नहीं है। (तथा) तैसे (सति) रहनेपर (एकम्) एकको यदि (प्रणमति) साष्टाङ्ग प्रणाम करता है (चेत्) तो (अन्यम्) अन्यको (अपि) भी (प्रणमति) साष्टाङ्ग प्रणाम करता है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहे हैं। इस एक सौ सतहत्तरवीं

वार्तामें उन्तालीस पद हैं। इति महापूर्णश्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१०७।।

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता॥

मू०-भाष्यकारे[१] पश्चिमदेशे[२] श्वेतं[३] परिधाय[४] गच्छ-तीति[५] तदुपन्यासं[६] श्रुत्वा[७] सर्वे[८] विस्मिता[९] अभवन्[१०], तद्[११] दृष्ट्वा[१२] भाष्यकारः[१३] परमाचार्यवार्तां[१४] श्रुत्वा[१५]-एवं[१६] वदामि[१७] तं[१८] नेत्राभ्या-मपश्यँश्चेत्[१९] परमपदपर्यन्तं[२०] सोपानं[२१] बध्नीयामित्यवो-चत्[२२]॥१७८॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ- **अत्र स्थातुमयुक्तं ते शिष्यैरेवं प्रभाषितः।**
प्रतीचीं लक्ष्मणाचार्यः प्रतस्थे रङ्गशासनात्॥१५२॥

(भाष्यकारे) कृमिकण्ठ चोलराजाके व्याजसे श्रीभाष्यकारके (पश्चिमदेशे) पश्चिम देशमें (श्वेतम्) श्वेतवस्त्रको (परिधाय) धारण कर (गच्छति) जाने पर (इति) इस प्रकारके (तदुपन्यासम्) उस श्रीभाष्यकारके उपन्यासको (श्रुत्वा) सुनकर (सर्वे) सब लोग (विस्मिताः) आश्चर्ययुक्त (अभवन्) हो गये। (तद्) उसको (दृष्ट्वा) देखकर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (परमाचार्यवार्ताम्) परमाचार्यकी वार्ताको (श्रुत्वा) सुनकर (एवम्) इस प्रकार के (वदामि) कहता हूँ। (तम्) उस परमाचार्यको (नेत्राभ्याम्) दोनों नेत्रोंसे (अपश्यन्) नहीं देखता हुआ (चेत्) तो (परमपदपर्यन्तम्) परमपदके स्थानपर्यन्त (सोपानम्) सिढ़ीको (बध्नीयाम्) बाँध दूँगा (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्तामें सत्ताईस पद है। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम्।।१७८।।

अब यामुनाचार्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ यामुनोक्ता वार्ता॥

मू०-श्रियः[१] पतिः[२] शठकोपरूपेण[३]-अवततारेति[४] यामुनाचार्य्यः[५]॥१७९॥

॥ यामुनाचार्यस्तुतिः॥

अर्थ- धात्वब्दे कर्कटे मासि पौर्णमास्यां भृगोर्दिने।
मित्रभे रङ्गनायक्यां श्रीसिंहासनभागतः।
मतिमानीश्वरमुने र्जज्ञे कश्चित्सुतो महान्॥१५३॥

(श्रियः) लक्ष्मीजीके (पतिः) स्वामी नारायण भगवान् ने (शठकोपरूपेण) शठकोप स्वामीजीके आकारसे (अवतत्तार) अवतार धारण किया है (इति) इस प्रकारके (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी ने कहा है। इस वार्तामें छः पद हैं। इति यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१७९॥

अब गोविन्दाचार्य स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ गोविन्दाचार्योक्ता वार्ता॥

मू०-नित्यसंसारिषु-एकमुभयविभूतिविलक्षणं श्रियः पतिः स्वयमकरोदिति गोविन्दाचार्य्यः॥१८०॥

॥ गोविन्दाचार्यस्तुतिः॥

अर्थ- तदा प्रभृति तस्यासीद्गोविन्दस्य महात्मनः।
यंबाराख्यं ततो नाम त्रैलोक्यविदितं महत्॥१५४॥

(नित्यसंसारिषु) नित्य संसारियोंमें (एकम्) एक पुरुषको (उभयविभूतिविलक्षणम्) लीला विभूति और त्रिपाद्विभूति इन दोनों विभूतियोंसे विलक्षण (श्रियः) लक्ष्मीदेवीजीके (पतिः) स्वामी नारायण भगवान् ने (स्वयम्) अपनेसे (अकरोत्) किया है (इति) इस प्रकारके (गोविन्दाचार्यः) गोविन्दाचार्य स्वामीजी ने कहा है। इस एक सौ अस्सीवीं वार्तामें नव पद हैं। इति गोविन्दाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१८०॥

अब श्रीमालाकार स्वामीजीके और श्रीभाष्यकारके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ मालाकारभाष्यकारोक्ता वार्ता॥

मू०-श्रीमालाकारसमीपे भाष्यकृतः सहस्रगी-

त्यर्थश्रवणसमये[४] यामुनाचार्यैः[५] उक्त[६] इति[७] श्रीमालाकारै-
रुक्तमर्थं[८] विना[९] प्रतिपासुरं[१०] कांश्चिदर्थविशेषान्[११] प्रतिपाद्य[१२]-अय-
मर्थ[१३] उचितः[१४] किमिति[१५] भाष्यकारः[१६] पृच्छति[१७], अमुमर्थ-
महं[१८] यामुनाचार्यसमीपे[१९] नाश्रृण्वमिति[२०] मालाकारो[२१] वदति[२२]
एवं[२३] कालक्षेपे[२४] क्रियमाणे[२५] ''अर्याः[२६] कालत्त[२७]'' इति[२८] पाशुरार्थ-
प्रस्तावे[२९] ज्ञानाभावदशायां[३०] सम्बन्धज्ञानमुत्पाद्य[३१]-उत्पन्नं
ज्ञानं[३२] नाशयता[३३] देहसंबन्धेन[३४] मां[३५] स्थापयसीति[३६] दुःखेन[३७]
वदतीति[३८] मालाकारोक्तमर्थं[३९] श्रुत्वा[४०] भाष्यकारः[४१] पूर्वं
पश्चादपि[४२] पाशुरेऽपि[४३] महत्या[४४] प्रीत्या[४५] वदतो[४६] मध्ये-अप्रीत्या-[४७]
कथनमसङ्गतं[४८] तस्मादेवमर्थः-अज्ञातमहामायं[४९] ज्ञानाभाव-
दशायामपि[५०] कैंकर्यं[५१] प्रीतिं[५२] कारयसीत्युपकारार्थस्मृत्या[५३]
वदतीत्यवोचत्[५४], मालाकारः-इयं[५५] विश्वामित्रसृष्टिः[५६] यामुना-
चार्यसमीपे-अमुमर्थं[५७] न[५८] श्रुतवान्[५९], इत्युक्त्वा[६०] सहस्रगीति-
व्याख्यानाद्विरराम[६१]॥१८१॥

॥ मालाकारस्तुतिः॥

अर्थ- ततो मालाधरस्याग्रे मन्नाथो विनयान्वितः।
सहस्रगीतेर्व्याख्यानं शृण्वंस्तत्र समास्थितः॥१५५॥

(श्रीमालाकारसमीपे) श्रीमालाकार स्वामीजीके समीपमें (भाष्यकृतः) श्रीभाष्यकारके (सहस्रगीत्यर्थश्रवणसमये) सहस्र गीतिके अर्थ सुनने के समयमें (यामुनाचार्यैः) यामुनाचार्य स्वामीजीसे (उक्तः) कहा हुआ (इति) इस प्रकारसे है। (श्रीमालाकारैः) श्रीमालाकार स्वामीजीसे (उक्तम्) कहे हुए (अर्थम्) अर्थके (विना) बिना (प्रतिपासुरम्) हर एक पाशुरका (कांश्चित्) कुछ (अर्थविशेषान्) विशेष अर्थको (प्रतिपाद्य) कहकर (अयम्) यह (अर्थः) अर्थ (उचितः) उचित है (किम्) क्या? (इति) इस प्रकारके (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने (पृच्छति) श्रीमालाकार स्वामीजीसे पूछा। तब (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थको (अहम्) मैंने (यामुनाचार्यसमीपे)

यामुनाचार्य स्वामीजीके पासमें (न) नहीं (अशृण्वम्) सुना था (इति) इस प्रकारके (मालाकारः) मालाकार स्वामीजी (वदति) कहते हैं। (एवम्) इस प्रकारके (कालक्षेपे) कालक्षेप (क्रियमाणे) करने पर (अर्याः कालत्तः) अज्ञान कालसे (इति) इस (पाशुरार्थप्रस्तावे) पाशुरका अर्थ प्रारंभ होने पर (ज्ञानाभावदशायाम्) ज्ञानके अभावकी दशामें (संबन्धज्ञानम्) संबन्धके ज्ञानको (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर (उत्पन्नम्) उत्पन्न (ज्ञानम्) ज्ञानको (नाशयता) नाश करवाते हुए (देहसंबन्धेन) शरीरके संबन्धसे (माम्) मुझको (स्थापयति) तुम स्थापन करते हो (इति) इस प्रकारके (दुःखेन) दुःखसे (वदति) आचार्य कहते हैं। (इति) इस प्रकारके (मालाकारोक्तम्) मालाकार स्वामीजीसे कहे हुए (अर्थम्) अर्थको (श्रुत्वा) सुनकर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (पूर्वम्) पहला पाशुर और (पश्चात्) पिछला पाशुर (अपि) भी (पाशुरे) पूर्व तथा पीछेके दोनों पाशुर (अपि) भी (महत्या) बड़ी भारी (प्रीत्या) प्रीतिसे (वदतः) कहते हैं, तो (मध्ये) "अर्याःकालत्तः" इस मध्यपाशुरमें (अप्रीत्या) अप्रीतिसे (कथनम्) कहना (असङ्गतम्) संगत नहीं है (तस्मात्) उस कारणसे (एवम्) इस प्रकारका (अर्थः) अर्थ है कि (अज्ञातमहामायम्) नहीं जानी गई है बड़ी माया जिसकी उसको (ज्ञानाभावदशायाम्) ज्ञानकी अभावदशामें (अपि) भी (कैंकर्ये) कैंकर्यमें (प्रीतिम्) प्रीतिको (कारयसि) तुम कराते हो (इति) इस प्रकारके (उपकारार्थस्मृत्या) उपकारके अर्थकी स्मृतिसे (वदति) कहता है (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले हैं। (मालाकारः) श्रीमालाकार स्वामीजी ने (इयम्) यह (विश्वामित्रसृष्टिः) विश्वामित्रकी सृष्टि है (यामुनाचार्यसमीपे) क्योंकि यामुनाचार्य स्वामीजीके समीपमें (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थको (न) नहीं (श्रुतवान्) सुना हूँ (इति) इस प्रकारके' (उक्त्वा) कहकर (सहस्रगीतिव्याख्यानात्) सहस्र गीतिके व्याख्यानसे (विरराम) विरामको प्राप्त किया। "विरराम" यहाँ पर ॥ **व्याङ्परिभ्यो रमः॥ व्या० अ० १, पा० ३, सू० ८३॥** इस सूत्रसे परस्मैपद हुआ है। इस एक सौ इक्यासिवीं वार्तामें बानबे पद हैं। इति मालाकारभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१८१॥

अब श्रीवैष्णवके और भिल्लोंके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीवैष्णवभिल्लोक्ता वार्ता॥

मू०—भाष्यकारे श्वेतं परिधाय गच्छति तिरुमलैनंबिज्ञानशिष्याः केचन भिल्लाः स्वनिवासभूतपर्यन्तप्रान्ते मार्गा-

दागतं कञ्चन श्रीवैष्णवमूर्ध्वपुण्ड्रेण श्रीवैष्णवं ज्ञात्वा भवान् कुत आगच्छतीति पप्रच्छुः, स च श्रीरङ्गादागच्छामीत्यवदत् ते तं पुनः श्रीभाष्यकारचरणयोः कुशलमस्ति कच्चिन्महासंपदः कश्चन विघ्नो नास्ति कच्चिदिति पप्रच्छुः, स च तान् प्रति क्व भाष्यकारः क्व महासंपत्, भाष्यकृच्छ्वेतं परिधाय गतः, क्व वा गतो न ज्ञायते, इत्यवदत्, ते तच्छ्रुत्वा षड्रात्रीरनशना अतिष्ठन्॥१८२॥

॥श्रीवैष्णवस्तुतिः॥

अर्थ- यः कश्चिद्वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी।
पुनाति सकलांल्लोकान्सहस्रांशुरिवोदितः॥१५६॥

(भाष्यकारे) श्रीभाष्यकारके (श्वेतम्)श्वेतवस्त्रको (परिधाय) पहनकर (गच्छति) श्रीरंगम्से चले जानेपर (तिरुमल्लैनल्लानशिष्याः) तिरुमल्लैनल्लान स्वामीजीके शिष्य (केचन) कोई (भिल्लाः) भिल्ल सब (स्वनिवासभूतपर्यन्तप्रान्ते) अपने निवास भूतपर्यन्त प्रान्तमें (मार्गात्) रास्तेसे (आगतम्) आये हुए (कञ्चन) किसी (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णवको (ऊर्ध्वपुण्ड्रेण) ऊर्ध्वपुंड्रसे (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव (ज्ञात्वा) समझकर (भवान्) आप (कुतः) कहाँसे (आगच्छति) आते हैं (इति) इस प्रकारके (पप्रच्छुः) पूछे। (च) और (सः) उस श्रीवैष्णव ने (श्रीरङ्गात्) श्रीरंगंक्षेत्रसे (आगच्छामि) आता हूँ (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। (ते) वे भिल्ल सब (तम्) उस श्रीवैष्णवसे (पुनः) फिरसे भी (श्रीभाष्यकारचरणयोः) श्रीभाष्यकार स्वामीजीके दोनों चरण कमलोंका (कुशलम्) कुशल (अस्ति) है। (कच्चित्) क्या (महासंपदः) श्रीभाष्यकारकी बड़ी सपत्ति है (कच्चित्) क्या (कश्चन) कोई (विघ्नः) श्रीभाष्यकार को विघ्न तो (न) नहीं (अस्ति) है (कच्चित) क्या (इति) इस प्रकारके (पप्रच्छुः) पूछे। (च) और (सः) वह श्रीवैष्णव (तान्) उन भिल्लोंके (प्रति) प्रति (क्व) कहाँ पर, (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार और (क्व) कहाँपर (महासंपत्) बड़ी भारी संपत्ति, (भाष्यकृत्) भाष्यकार और (श्वेतम्) सफेद वस्त्रको (परिधाय) धारणकर (गतः) श्रीरंगम्से चले गये (वा) और (क्व) कहाँपर (गतः) चले गये, यह (न)नहीं (ज्ञायते) जाना जाता है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले (ते) वे भिल्ल सब (तत्) उस बातको (श्रुत्वा) सुनकर (षट्) छः (रात्रीः) रात्रि (अनशनाः) बिना

भोजन किये हुए (अतिष्टन्) रह गये। इस वार्तामें यतिराजको शुक्ल वस्त्र पहनकर जानेको लिखा है सो अत्यन्त रहस्यतम बात है, इससे आचार्योंके द्वारा जानना चाहिये। यतिराजको देखकर और संन्यासियोंको कभी भी शुक्ल वस्त्र नहीं धारण करना चाहिये नहीं तो पतित हो जायेंगे, क्योंकि लिखा है कि

॥ मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च। दिवा स्वापं च यानं च यतीनां पातकानि षट्॥ नारद परिव्रा० उपदेश० ३, श्लो० ७१॥

मंचिया पर बैठना १, सफेद वस्त्र पहनना २, स्त्री की बात करना ३, और चंचलता करना ४, दिन में सोना ५, तथा हाथी घोड़ा आदि पर चढ़ना ६, ये छ संन्यासियों के पातक हैं ॥७१॥ और वह्वृच परिशिष्ट में लिखा है कि;

॥ दिवास्वप्नं च यानं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च । मञ्चकः शुक्लवासश्च यतीनां पतनानि षट् ॥

दिनमें सोना १, तथा हाथी घोड़ा पर चढ़ना २, स्त्रीकी बात करना ३, चपलता करना ४, मंचिया पर बैठना ५, और सफेद वस्त्र पहनना ६, ये छः संन्यासियोंके पतन हैं।' इन प्रमाणोंसे साबित हो गया कि संन्यासियोंको शुक्ल यस्त्र कभी भी नहीं धारण करना चाहिये। यहाँ पर बहुतसे लोग कहते हैं कि संन्यासी होकर श्रीभाष्यकार ने यदि शुक्ल वस्त्र धारण किया तो उनको भी पातक होना चाहिये? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि शेषावतार उभय विभूति नायक प्रपन्न पारिजात श्रीभाष्यकारको पातक नहीं है क्योंकि; श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि **॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ श्रीमद्भाग० स्कं० १०, अ० ३३, श्लो० ३०।** तेजस्वियोंके दोषके लिये नहीं होता है जैसे सब कुछ भोजन करनेवाले अग्निको दोष नहीं होता है ॥३०॥ इस एक सौ बयासिवीं वार्तामें छियासठ पद हैं। इति श्रीवैष्णवभिल्लोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१८२॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता॥

मू०-षष्ठदिवसरात्रौ[१] श्रीभाष्यकारोऽशनिविद्युज्जवर-[२][३]
पीडितः[४] शीतेनातीव[५] बाधितः[६]-तदावासपर्वतेऽग्निप्रकाशं[७] दृष्ट्वा[८][९][१०]
मां[११] तत्र[१२] नयतेत्यवोचत्[१३]॥१८३॥[१४][१५]

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ- तन्मार्गे षडहोरात्रं निराहारो यतीश्वरः।
पीडितो वातवर्षाभ्यां षष्ठेऽह्नि निशिकानने॥१५७॥

(षष्ठदिवसरात्रौ) छठवें दिनकी रातमें (श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (अशनिविद्युज्जवरपीडितः) अशनि तथा विद्युत् और ज्वरसे पीड़ित (शीतेन) शीतसे (अति) अत्यन्त (वाधितः) बाधितके (इव) समान (तदावासपर्वते) उन भिल्लोंके निवास पर्वत पर (अग्निप्रकाशम्) अग्निके प्रकाशको (दृष्ट्वा) देखकर (माम्) मुझको (तत्र) उस पहाड़ पर (नयत) तुम सब ले चलो (इति) इस प्रकारसे (अवोचत्) श्रीवैष्णवोंसे बोले हैं। इस वार्तामें पन्द्रह पद हैं। इति भाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥१८३॥

अब श्रीवैष्णवोंके और भिल्लोंके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीवैष्णवभिल्लोक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीवैष्णवाश्च तत्र गत्वा मार्गः क इति तान्-पृच्छन्, ते तच्छ्रुत्वा-अयं ब्राह्मणोच्चरितः शब्दः श्रान्तध्वनिरिति शीघ्रमागत्य वृत्तिं दूरीकृत्वात्रगच्छतेति-अग्निसमीप-आहूय धौतवस्त्रं दत्वार्द्रवस्त्रं प्रताप्य दत्वा भवन्तः कुत आगच्छन्तीत्यपृच्छन्, ते च श्रीरङ्गादागच्छाम इत्यवदन्, ते च भाष्यकारः किं करोतीत्यपृच्छन्, श्रीवैष्णवाः भवन्तः कथं भाष्यकारं जानन्तीत्यपृच्छन्, ते च वयं श्रीनल्ला-नशिष्याः-अस्माकं हितोपदेशसमये श्रीभाष्यकारचरणा-वेवोपायत्वेन निश्चिन्वितेति-उपदिदेश, तदा प्रभृति श्री-भाष्यकारचरणावेवोपायत्वेनाध्यवस्याम इत्यवदन्, श्रीवैष्णवाः भाष्यकारं प्रदर्श्य-अयमेव भाष्यकार इत्य-वदन्,ते च श्रीभाष्यकारचरणौ गृहीत्वातिव्याकुलचित्ताः प्रणेमुः भाष्यकारश्च नल्लानकालमेघो माहरण्ये ववर्षेति प्रीतोऽभवत॥१८४॥

॥ श्रीवैष्णवस्तुतिः ॥

अर्थ- स्मृतः संभाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तमः ।
पुनाति भगवद्भक्तश्चण्डालोऽपि यदृच्छया ॥१५८॥

(च) और (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (तत्र) उस अग्नि के प्रकाशवाले पहाड़ पर (गत्वा) जाकर (मार्गः) रास्ता (कः) कौन है (इति) इस प्रकार के (तान्) उन मिल्लों से (अपृच्छन्) पूछे (ते) वे भिल्ल सब (तत्) उस वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (अयम्) यह (ब्राह्मणोच्चरितः) ब्राह्मण का उच्चारण किया हुआ (शब्दः) शब्द है (श्रान्तध्वनिः) और थके हुए का यह शब्द है, (इति) इस प्रकार के निश्चय करके (शीघ्रम्) जल्दी से (आगत्य) आकर (वृत्तिम्) अपनीवृत्ति को (दूरीकृत्वा) दूर कर (अत्र) यहाँ पर (आगच्छत) आप सब आइये (इति) इस प्रकार के (अग्निसमीपे) आग के पास में (आहूय) बुला कर (धौतवस्त्रम्) धौत वस्त्र को (दत्वा) देकर (आर्द्रवस्त्रम्) भिंगे हुए वस्त्र को (प्रताप्य) अच्छी तरह से तपा कर अर्थात् सुखाकर और (दत्वा) देकर (भवन्तः) आप सब (कुतः) कहाँ से (आगच्छन्ति) आते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) श्रीवैष्णों से पूछे। (च) और (ते) वे श्रीवैष्णव सब (श्रीरंङ्गात्) श्रीरंङ्गम् से (आगच्छामः) हम सब आते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदन्) बोले (च) और (ते) भिल्ल सब (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (किम्) क्या (करोति) करते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) पूछे (श्रीवैष्णवाः) तब श्रीवैष्णव सब (भवन्तः) आप सब (कथम्) कैसे (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार को (जानन्ति) जानते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) पूछे हैं। (च) और (ते) वे भिल्ल सब (वयम्) हम सब (श्रीनल्लानशिष्याः) श्रीनल्लान स्वामीजी महाराज के शिष्य हैं (अस्माकम्) हम सबों के (हितोपदेशसमये) हित को उपदेश करने के समय में (श्रीभाष्यकारचरणौ) श्रीभाष्यकार के दोनों चरणारविन्दों को (एव) निश्चय करके (उपायत्वेन) उपायता करके (निश्चिन्वित) तुम सब निश्चय करना (इति) इस प्रकार के (उपदिदेश) श्रीचरणों ने उपदेश दिया। (तदाप्रभृति) उसी दिन से (श्रीभाष्यकारचरणौ) श्रीभाष्यकार के दोनों चरणारविन्दों को (एव) निश्चय करके (उपायत्वेन) साधनता करके (अध्यवस्यामः) हम सब निश्चय करते हैं (इति) इस प्रकार (अवदन्) कहे हैं। (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार को (प्रदर्श्य) दिखाकर (अयम्) यही (एव) निश्चय करके (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार हैं (इति) इस प्रकार के (अवदन्) कहे हैं। (च) और (ते) वे श्रीवैष्णव भिल्ल (श्रीभाष्यकारचरणौ) श्रीभाष्यकार के दोनों चरणारविन्दों को (गृहीत्वा) पकड़ कर (अतिव्याकुलचित्ताः) अत्यन्त व्याकुल चित्तवाले (प्रणेमुः) साष्टाङ्ग प्रणाम किये।

(च) और (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (नल्लानकालमेघः) नल्लानकालमेघ (महारण्ये) बड़े भारी जंगल में (ववर्ष) वर्षा किया (इति) इस प्रकार के (प्रीतः) प्रसन्न (अभवत्) हो गये। इस एक सौ चौरासीवीं वार्ता में अण्ठानवे पद हैं। इति श्रीवैष्णवभिल्लोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१८४॥

अब श्रीवैष्णव भिल्लों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भिल्लोक्ता वार्ता ॥

मू०–अनन्तरं भिल्लाः-आमान्नं मधु चोपनीय-इदं भर्जयित्वा मधुना मिश्रीकृत्य भुङ्ग्ध्वमित्यवदन्, तेऽपि तथा कृत्वा सुषुपुः, परेद्युस्तेषां भिल्लानां मध्ये-एकमेकं श्रीवैष्णवं च श्रीरङ्गं प्रेषयामासुः, ताभ्यां सह पञ्च चत्वारिंशत् श्रीवैष्णवा आगताः, ततस्ते भिल्लास्ततः पर्वता-दर्द्धयोजनदूरं गत्वा कस्यचिद्भिल्लस्य गेहं तान्प्रवेशयित्वा स्वगृहमाययुः ॥१८५॥

अर्थ– (अनन्तरम्) इसके बाद (भिल्लाः) भिल्ल सब (आमान्नम्) कच्चे अन्न को (च) और (मधु) मधु को (उपानीय) श्रीवष्णवों के पास में लाकर (इदम्) इस कच्चे अन्न को (भर्जयित्वा) भूँज कर (मधुना) मधु (मिश्रीकृत्य) मिलाकर (भुङ्ग्ध्वम्) आप सब भोजन कीजिये (इति) इस प्रकार के (अवदन्) कहे हैं। (ते) वे श्रीवैष्णव (अपि) भी (तथा) वैसे ही (कृत्वा) करके (सुषुपुः) सो गये। (परेद्युः) दूसरे दिन (तेषाम्) उन श्रीवैष्णव (भिल्लनाम्) भिल्लों के (मध्ये) मध्य में (एकम्) एक भिल्ल को (च) और (एकम्) एक (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव को (श्रीरङ्गम्) श्रीरंगक्षेत्र में (प्रेषयामासुः) वे श्रीवैष्णव सब भेज दिये। (ताभ्याम्) उन दोनों के (सह) साथ (पञ्च) पाँच और (चत्वारिंशत्) चालीस अर्थात् पैंतालिस (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (आगताः) श्रीरंगम् से आ गये। (ततः) उसके बाद (ते) वे (भिल्लाः) भिल्ल सब (ततः) उस (पर्वतात्) पहाड़ से (अर्द्धयोजनदूरम्) पश्चिम दिशा में दो कोस दूर (गत्वा) जाकर (कस्यचिद्) किसी (भिल्लस्य) भिल्ल के (गेहम्) गृह में (तान्) उन श्रीवैष्णवों को (प्रवेशयित्वा) प्रवेश करा कर (स्वगृहम्)

अपने मकान पर (आययुः) आ गये। इस एक सौ पचासिवीं वार्ता में अड़तालीस पद हैं। इति भिल्लोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१८५॥

अब भिल्लगृहपति की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भिल्लगृहपतिवार्ता ॥

मू०–तद्गृहपति[१] र्दिवसे[२] मृगयां[३] कृत्वा[४] रात्रौ[५] गृह[६]-मागत्य[७] भोक्तुमुद्युक्त[८] स्तान्[९] दृष्ट्वा[१०] ब्राह्मणा[११] अभुञ्जाना[१२]-स्तिष्ठन्ति[१३], मया[१४] न[१५] भोक्तव्यमित्युक्त्वा[१६] समीपग्रामे[१७] कट्ट[१८]-लायिरनामकस्य[१९] कस्यचिद्गृहेऽपेक्षितसामग्रीं[२०] दत्वैतान्[२१]-वतार्य्य[२२] शीघ्रं[२३] पक्त्वा[२४] भुङ्ग्ध्वमित्युक्त्वा[२५] पुनः[२६] स्वगृह[२७]-मागतः[२८] ॥१८६॥

अर्थ–(तद्गृहपतिः) उस भिल्ल के घर का मालिक (दिवसे) दिन में (मृगयाम्) अहेर (कृत्वा) कर (रात्रौ) रात में (गृहम्) अपने घरपर (आगत्य) आकर (भोक्तुम्) भोजन करने के लिये (उद्युक्तः) तैयार हुआ। तब तक (तान्) उन श्रीवैष्णव ब्राह्मणों को (दृष्ट्वा) देखकर (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण सब (अभुञ्जानाः) बिना भोजन किये हुए (तिष्ठन्ति) मेरे मकान पर ठहरे हैं। इससे (मया) मुझ करके (न) नहीं (भोक्तव्यम्) भोजन करने योग्य है। (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (समीपग्रामे) पास के गाँव में (कट्टलायिरनामकस्य) कट्टलायिर नामवाले (कस्यचित्) किसी ब्राह्मण के (गृहे) घर में (अपेक्षितसामग्रीम्) अपेक्षित चावल, दाल, साग घी आदि सामान को (दत्वा) देकर (एतान्) इन श्रीवैष्णवों को (अवतार्य) कट्टलायिर ब्राह्मण के द्वार पर उतारकर (शीघ्रम्) शीघ्र (पक्त्वा) पाक बनाकर (भुङ्ग्ध्वम्) आप सब भोजन कीजिये (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (पुनः) फिर वह भिल्ल (स्वगृहम्) अपने घर पर (आगतः) आ गया। इस वार्ता में पैंतीस पद हैं। इति भिल्लगृहपतिवार्ताव्याख्यानम् ॥१८६॥

अब चेलाञ्चलाम्बादेवी के और श्रीवैष्णवों के सम्वादरूपवार्ता को कहते हैं कि

॥ अथ श्रीवैष्णवचेलाञ्चलाम्बोक्ता वार्ता ॥

मू०–तद्गृहस्नुषा भवन्तो न भुञ्जते किमित्य-
पृच्छत्,ते च वयं न भुञ्ज्महे-इत्यवदन्, भवन्तो माभैषुः,
अहमपि श्रीभाष्यकारचरणसम्बधिनी-इत्यवदत्, ते कुत्र
त्वं भाष्यकारमाश्रय इत्यपृच्छन्, सा च पुरा-अत्र
वृष्टि नाभूत् तदा-अतो देशात् श्रीरङ्गं गता तत्र मद्गृह-
पतिरहं च कस्मिंश्चित् सौधे-अतिष्ठाव तत्काले भाष्य-
कारः सप्तसु गृहेषु माधूकरीं कृत्वा प्रत्यहमभुङ्क्त, स च
यदा वीथ्यां निर्गच्छति तदा-अकलङ्कनादाल्वानप्रभृतयः
श्रीवैष्णवाः तच्चरणौ सेवमाना-अनुसरन्ति, स च माधू-
करी निमित्तं मदधिष्ठितगेहमगमत्, अहं सौधादवतीर्य्य
तं प्रत्यरुणधं स च मां किमिदं बाले! इत्यपृच्छत्, अहं
च त्वां भवन्तं राजानो भट्टार्यप्रभृतयश्च ज्ञानाधिकाः
साष्टाङ्गं प्रणमन्ति, भवान् माधूकरीं वृत्तिं करोति किमिद-
मित्यपृच्छम् ॥

॥ चेलाञ्चलाम्बास्तुतिः ॥

अर्थ-व्याजेन कृमिकन्धरस्य सहसा रङ्गं विहायोत्तमं देशं पश्चिममाससाद भगवाँल्लोकावनायान्तरम्। अङ्गीकृत्य तदर्चनं यतिपतिर्व्याधैः कृतं भक्तितो भेजे सप्तमवासरे विधिवशाच्चेलाञ्चलाम्बागृहम् ॥१५९॥

(तद्गृहस्नुषा) उस कट्टलायिर नामवाले ब्राह्मण के घर की पतोहू चेलाञ्चलाम्बा ने (भवन्तः) आप सब श्रीवैष्णव (न) नहीं (भुञ्जते) भोजन करते हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (ते) वे श्रीवैष्णव सब (वयम्) हम सब (न) नहीं (भुञ्ज्महे) भोजन करते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदन्) बोले (भवन्तः) आप सब (माभैषुः) मत डरिये (अहम्) मैं चेलाञ्चलाम्बा (अपि) भी (श्रीभाष्यकारचरणसम्बन्धिनी) श्रीभाष्यकार के चरणारविन्द के सम्बन्धवाली हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोली (ते) वे श्रीवैष्णव (कुत्र) कहाँ पर (त्वम्)

तुम (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार को (आश्रय:) आश्रयण की हो (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) पूछे हैं। (च) और (सा) वह चेलाञ्चलाम्बा (पुरा) पहले (अत्र) यहाँ पर (वृष्टि:) वर्षा (न) नहीं (अभूत्) हुई। (तदा) तब (अत:) इस (देशात्) देश से (श्रीरङ्गम्) श्रीरङ्गम् क्षेत्र को (गता) मैं चली गई। (तत्र) उस श्रीरङ्गम् में (मद्गृहपति:) मेरे घर का स्वामी (च) और (अहम्) हम (कस्मिंश्चित्) किसी (सौधे) कोठे के ऊपर (अतिष्ठाव) ठहरे थे। (तत्काले) उसी समय में (भाष्यकार:) श्रीभाष्यकार (सप्तसु) सात (गृहेषु) घरों में (माधूकरीम्) माधूकरी भिक्षा को (कृत्वा) करके (प्रत्यहम्) नित्य प्रति (अभुङ्क्त) भोजन किया करते थे। (च) और (स:) वह श्रीभाष्यकार (यदा) जब (वीथ्याम्) वीथी में (निर्गच्छति) निकलते थे (तदा) तब (अकलङ्कनादाल्वानप्रभृतय:) अकलङ्कनादाल्वान आदिक (श्रीवैष्णवा:) श्रीवैष्णव सब (तच्चरणौ) उस श्रीभाष्यकार के चरणारविन्दों की (सेवमाना:) सेवा करते हुए (अनुसरन्ति) पीछे पीछे चलते थे। (च) और (स:) वह श्रीभाष्यकार (माधूकरीनिमित्तम्) माधूकरी भिक्षाके निमित्त (मदधिष्ठितगेहम्) जिस मकान में मैं ठहरी थी उस मकान पर (अगमत्) चले गये। तब (अहम्) मैंने (सौधात्) कोठे से (अवतीर्य) उतर कर (तम्) उस श्रीभाष्यकार के (प्रति) प्रति (अरुणधम्) आवरण किया। "अरुणधम्" यहाँ पर (रुधादिभ्य: श्नम्) ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ७८। इस सूत्र से श्नम् हुआ है। (च) और (स:) उस श्रीभाष्यकार ने (बाले) ऐ बच्ची ? (इदम्) यह (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (माम्) मुझसे (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (अहम्) मैंने चेलाञ्चलाम्बा (भवन्तम्) आपको (राजान:) राजा सब (च) और (त्वाम्) तुमको (ज्ञानाधिका:) अधिक ज्ञानवाले (भट्टार्यप्रभृतय:) पराशरभट्टाचार्य स्वामीजी प्रभृति (साष्टाङ्गम्) साष्टाङ्ग (प्रणमन्ति) प्रणाम करते हैं (भवान्) आप (माधूकरीम्) माधूकरी (वृत्तिम्) वृत्ति को (करोति) करते हैं (इदम्) यह (किम्) क्या है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छम्) पूछा। इस वार्ता में यतिराज को माधुकरी भिक्षा करने को लिखा है। इससे यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर भिक्षा करने को ग्रन्थों में लिखा है ? और माधूकरी भिक्षा किसको कहते हैं। इन दोनों प्रश्नों का उत्तर नीचे मैं लिखता हूँ कृपा करके सज्जन अवलोकन करें।

॥ विधूमे च प्रशान्ताग्नौ यस्तु माधुकरीञ्चरेत्। गृहे च विप्रमुख्यानां यति: सर्वोत्तम: स्मृत: ॥ नारदपरि० उपदे० ६, श्लो० ६ ॥

रसोई की धुआँ दूर होने पर और अग्नि बुझ जाने पर जो संन्यासी श्रेष्ठ ब्राह्मणों के घर में माधूकरी भिक्षा को करता है, वह सब सन्यासियों में उत्तम कहा गया है ॥६॥ और संन्यासोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ मधुकरवृत्त्याहारमाहरन्कृशीभूत्वा मेदो वृद्धिमकुर्वन्विहरेत् ॥ संन्यासोप० श्रु० ५९ ॥ पञ्च सप्तगृहणां तु भिक्षामिच्छेत्क्रियावताम् । गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेन्निष्क्रान्तो न पुनर्व्रजेत् ॥६१॥

मधुकर वृत्ति से आहार को करता हुआ दुर्बल होकर मेदा को नहीं बढ़ाता हुआ संन्यासी विहरे ॥५९॥ क्रिया वाले ब्राह्मणों के पाँच सात घर पर भिक्षा को ग्रहण करे, गौके दुहने मात्र समय केवल द्वार पर ठहरे, वहाँ से चले जाने पर फिर से उस दिन उस द्वार पर नहीं संन्यासी जाय ॥६१॥ और आरुणिकोपनिषद् में लिखा है कि–**यतयो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशन्ति ॥ आरु० श्रु० ५ ॥** संन्यासी लोग भिक्षा के लिये गाँव में प्रवेश करते हैं ॥५॥ और मनुस्मृति में लिखा है कि–**भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ मनु० अ० ६, श्लो० ५६ ॥** संन्यासी नित्य भिक्षा को करे ॥५६॥ और याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि–**अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यम् ॥ याज्ञ० अ० ३, श्लो० ५९ ॥** संन्यासी प्रमाद छोड़कर भैक्ष्य को करे ॥५९॥ तथा गौतम-स्मृति में लिखा है कि–**भिक्षार्थी ग्राममियात् ॥ गौत० अ० ३ ॥** भिक्षा के लिये संन्यासी ग्राम में जाय ॥३॥ और शंख स्मृति में लिखा है कि–**सप्तागारांश्चरेद् भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ॥ शंख० अ० ७, श्लो० ३ ॥** संन्यासी सात घरों से भिक्षा माँगे और माँगे घर से फिर से न माँगे ॥३॥ और वशिष्ठ स्मृति में लिखा है कि–**ब्राह्मणकुले वा यल्लभेत तद् भुञ्जीत ॥ वशि० अ० १० ॥** अथवा ब्राह्मणों के घर में जो मिल जाय उसको संन्यासी भोजन करे ॥१०॥ और श्रीमद्भागवत में लिखा है कि–

॥ स्तोकं स्तोकं ग्रसेद् ग्रासं देहो वर्तेत यावता । गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं माधूकरीं मुनिः ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ११, अ० ८, श्लो० ९ ॥

थोड़े थोड़े ग्रास को ग्रहण करेजितने से देह रहे, किसी के घर पर दुःख न देता हुआ मनन स्वभाववाला संन्यासी माधूकरी वृत्ति को ग्रहण करे ॥९॥ पूर्वोक्त प्रमाणों से यह साबित हो गया कि ब्राह्मणों के घर पर संन्यासियों को माधूकरी भिक्षा करनी चाहिये । अब पाँच प्रकार की भिक्षा जो संन्यासियों को होती है, उन सबों को मैं लिखता हूँ कि–

॥ माधूकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् । तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ संन्यासो० श्रु० ६५ ॥

संकल्प रहित माधूकर भिक्षा १, प्राक् प्रणीत भिक्षा २, अयाचित भिक्षा ३, तात्कालिकक भिक्षा ४, और उपपन्न भिक्षा ५, इस प्रकार की भिक्षा पाँच प्रकार की कही गयी है ॥६५॥ उसमें–

॥ मनः संकल्परहितांस्त्रीगृहान्पञ्च सप्त वा । मधुमक्षिकवत्कृत्वा माधूकरमिति स्मृतम् ॥६६॥

मन के संकल्प से रहित तीन या पाँच अथवा सात घर पर मधुमक्खी के समान थोड़ी थोड़ी भिक्षा को ग्रहण करना उसको माधूकर भिक्षा कहते हैं ॥६६॥ और–

॥ प्रातःकाले च पूर्वेद्युर्यद्भक्तैः प्रार्थितं मुहुः । तद्भैक्षं प्राक्प्रणीतं स्यात्स्थितिं कुर्यात्तथापि वा ॥६७॥

पहले दिन प्रातःकाल में जो बारम्बार भक्तों से प्रार्थना की जाती है इसके बाद जो भिक्षा की जाती है उसको प्राक् प्रणीत कहते हैं, इससे भी संन्यासियों को शरीर का निर्वाह करना चाहिये ॥६७॥ और–

॥ भिक्षाटनसमुद्योगाद्येन केन निमन्त्रितम् । अयाचितं तु तद्भैक्षं भोक्तव्यं च मुमुक्षुभिः ॥६८॥

भिक्षा माँगने से पहले जिस किसी से निमन्त्रित हो भिक्षा करता है, उसको अयाचित भिक्षा कहते हैं वह मुमुक्षु संन्यासियों के भोजन करने योग्य है ॥६८॥ तथा–

॥ उपस्थानेन यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन तत् । तात्कालिकमिति ख्यातं भोक्तव्यं यतिभिस्तदा ॥६९॥

स्थान के पास में ब्राह्मण से जो भिक्षा के लिये कहा गया हो उसको तात्कालिक भिक्षा कहते हैं वह संन्यासियों के भोजन करने योग्य है ॥६९॥ और–

॥ सिद्धमन्नं यदानीतं ब्राह्मणेन मठं प्रति । उपपन्नमिति प्राहुर्मुनयो मोक्षकाँक्षिणः ॥७०॥

सिद्ध अन्न ब्राह्मण करके जो संन्यासी के मठ के प्रति लाया जाता है उसको मोक्ष चाहनेवाले मुनि सब उपपन्न भिक्षा कहते हैं ॥७०॥ यहाँ पर ग्रन्थ विस्तार के भय से अधिक प्रमाण मैं नहीं लिखता हूँ । जिसको अधिक जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "यतीन्द्रधर्ममार्तण्डः" नामक ग्रन्थ को देख ले ॥शमिति॥

मू०–स च तेषामहं भगवद्विषये काश्चिद्वार्त्तामकथयं ततस्ते प्रणमन्तीत्यवदत्, अहं च तां वार्त्तां ममाऽपि कथयेत्यवदं तदोपदिदेश, ततोऽस्मिन्देशे सुवृ-

२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७
ष्टिरभूत्, वयं च एतद्देशमागन्तुमुद्युक्ताः-तदा पूर्वोक्त-
३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६
वार्त्ता विस्मृतेत्यकथयं स च तां वार्त्तां हृद्गतामकरोत्,
४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३
पुनश्च प्रयाणसमये दास्याः-आत्मरक्षार्थं किञ्चिद्देय-
५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३
मित्यवदं तदा धृतोपानहमदात्, ततोऽत्र-आगता पुनस्तं
६४ ६५ ६६ ६७
नापश्यमित्यवदत् ॥१८७॥

अर्थ–(च) और (सः) वह श्रीभाष्यकार (तेषाम्) उन भट्टार्यप्रभृति के प्रति (अहम्) मैंने (भगवद्विषये) भगवद्विषय में (काञ्चित्) किसी (वार्ताम्) वार्ता को (अकथयम्) कहा था। (ततः) उस कारण से (ते) वे भट्टार्य प्रभृति (प्रणमन्ति) साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। (च) और (अहम्) चेलाम्बलाम्बा मैं (ताम्) जिस वार्ता को भट्टार्य प्रभृति से आप कहे थे उस (वार्ताम्) वार्ता को (मम) मुझसे (अपि) भी (कथय) आप कहिये (इति) इस प्रकार के (अवदम्) कही। (तदा) तब (उपदिदेश) उस वार्ता को मुझे श्रीभाष्यकार ने उपदेश किया। (ततः) उसके बाद (अस्मिन्) इस (देशे) देश में (सुवृष्टिः) सुन्दर वृष्टि (अभूत्) हुई। (च) और (वयम्) हम सब (एतत्) इस (देशम्) देश को (आगन्तुम्) आने के लिये (उद्युक्ताः) तैयार हुई। (तदा) तब (पूर्वोक्तवार्ता) हे भगवन्! आपसे पहले कही हुई वार्ता को (विस्मृता) मैं भूल गयी हूँ (इति) इस प्रकार से (अकथयम्) मैंने कहा (च) और (सः) उस श्री भाष्यकार ने (ताम्) उस भूली हुई (वार्त्ताम्) वार्ता को (हृद्गताम्) हृदयगत (अकरोत्) कर दिया। (च) और (पुनः) फिर से (प्रयाणसमये) वहाँ से चलने के समय में (दास्याः) दासी की (आत्मरक्षार्थम्) आत्मा की रक्षा करने के लिये (किञ्चित्) कुछ (देयम्) देने योग्य है (इति) इस प्रकार से (अवदत्) यह दासी बोली। (तदा) तब (धृतोपानहम्) अपने पहने हुए जूते को (अदात्) श्रीभाष्यकार ने दे दिया। (ततः) उसके बाद श्रीरङ्गजी से (अत्र) यहां पर (आगता) मैं आ गई (पुनः) फिर से (तम्) उस श्रीभाष्यकार को (न) नहीं (अपश्यम्) मैंने देखा (इति) इस प्रकार के (अवदत्) चेलाम्बलाम्बा बोली है। इस वार्ता में "धृतोपानहम्" ऐसा पद आया है, जिससे ज्ञात होता है कि यतिराज जूते पहनते थे। इससे यहाँ पर कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि क्या संन्यासी को जूता भी पहनने को लिखा है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हाँ संन्यासी को जूते पहनने के लिये लिखा है, कृपा करके अधोलिखित प्रमाणों को सज्जन लोग अवलोकन करें॥

॥ कुण्डिकां चमसं शिक्यं त्रिविष्टपमुपानहौ। शीतोपघातिनीं कन्थां कौपीनाच्छादनं

तथा ॥ कुण्डिकोप० श्रु० ९ ॥ पवित्रं स्नानशाटीं च–उत्तरासङ्गमेव च। अतोऽतिरिक्तं यत्किञ्चित्सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः ॥१०॥

कमण्डलु १, चमसा २, शिक्य ३, आसन ४, जूता ५, शीत को नाश करनेवाली कन्था ६, और कौपीन कटिवस्त्र ७, ॥९॥ तथा पवित्रा ८, स्नानशाटी ९, चादर १०, और चकार से त्रिदण्ड ११ इन सबों से अतिरिक्त जो कुछ हो उन सब चीजों को संन्यासी परित्याग कर दे ॥१०॥ और कण्वस्मृति में लिखा है कि–

॥ सर्वदोपानहौ भिक्षुर्न त्यजेत्तु कदाचन। उदपात्रं च भिक्षा च दुष्येदृत उपानहौ ॥ कण्वस्मृ० ॥

संन्यासी सर्वदा जूते पहने, कभी भी जूते को परित्याग न करे, कारण कि बिना जूते के जलपात्र और भिक्षा अशुद्ध हो जाते हैं ॥ और भी लिखा है कि–

॥ उपानहौ ग्रहीतव्ये कार्पासमयमप्युत। ऊर्णाकारोद्भवं वापि यद्वान्यत्स्यादयाचितम् ॥

संन्यासी कपास के बने हुए या ऊर्णा सूत के बने हुए अथवा बिना मांगे जिसी किसी वल्कलादिक से बने हुए जूते को ग्रहण करे ॥ इन पूर्वोक्त प्रमाणों से यह साबित हो गया कि संन्यासी को जूते पहनने को लिखा है। इस एकसौ सत्ताइसवीं वार्ता में एक सौ सत्तर पद हैं। इति चेलाञ्चलाम्बोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१८७॥

अब श्रीभाष्यकार की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारवार्ता ॥

मू०–तच्छ्रुत्वा श्रीभाष्यकारो मनसा विचार्य पाकं कुर्विति तामुक्त्वा–इयं किं करोतीति पश्येति कञ्चित् श्रीवैष्णवं प्रेरयामास ॥१८८॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ– चेलाञ्चलाम्बासदनं समासाद्य स योगिराट्।
सप्तमे दिवसे सायं सुखं तस्थौ व्यपेतभीः ॥१६०॥

(तत्) उस चेलाञ्चलाम्बा के वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (मनसा) मन से (विचार्य) विचारकर (पाकम्) रसोई को (कुरु) करो

(इति) इस प्रकार से (ताम्) उस चेलाञ्चलाम्बा से (उक्त्वा) कह कर (इयम्) यह श्रीवैष्णवी (किम्) क्या (करोति) करती है (इति) इस काम को (पश्य) तुम देखो (इति) इस प्रकार के (कञ्चित्) किसी (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव को (प्रेरयामास) प्रेरणा किये। इस एकसौ अठासिवीं वार्ता में उन्नीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारवार्ताव्याख्यानम् ॥१८८॥

अब चेलाञ्चलाम्बाजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ चेलाञ्चलाम्बावार्ता ॥

मू०–सा[१] च[२] सम्यक्[३] पक्त्वा[४] पूर्वधृतवस्त्रं[५] दूरीकृत्य[६] धौतवस्त्रं[७] परिधाय[८]-अन्तः[९] प्रविश्य[१०] श्रीरामानुजचरणावेव[११] शरणमित्युच्चरन्ती[१२] तदुपानहमादाय[१३] प्रक्षाल्यान्नं[१४] निवेद्य[१५] बहिरागत्य[१६] तान्[१७] प्रणम्य[१८] पादौ[१९] प्रक्षाल्य[२०] भोजनार्थमागतेति[२१] विज्ञापयामास[२२] ॥१८९॥

अर्थ–(च) और (सा) उस चेलाञ्चलाम्बा ने (सम्यक्) अच्छी तरह से (पक्त्वा) रसोई को बनाकर (पूर्वधृतवस्त्रम्) पहले के धारण किये हुए वस्त्र को (दूरीकृत्य) दूर हटाकर (धौतवस्त्रम्) धौतवस्त्र को (परिधाय) धारणकर (अन्तः) देवगृह के भीतर (प्रविश्य) बैठकर (श्रीरामानुजचरणौ) श्रीरामानुजस्वामीजी के दोनों चरणारविन्द (एव) निश्चय करके (शरणम्) मेरे रक्षक हैं, (इति) इस प्रकार के (उच्चरन्ती) उच्चारण करती हुई (तदुपानहम्) उस श्रीरामानुज स्वामीजी के जूते को (आदाय) लेकर (प्रक्षाल्य) प्रक्षालन कर (अन्नम्) रसोई के अन्न को (निवेद्य) निवेदन कर (बहिः) उस घर से बाहर (आगत्य) आकर (तान्) उन श्रीवैष्णवों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम कर (पादौ) श्रीवैष्णवों के पैरों को (प्रक्षाल्य) धोकर (भोजनार्थम्) भोजन के लिये अर्थात् बीजेकराने के लिये (आगता) मैं आई हूँ (इति) इस प्रकार के (विज्ञापयामास) विज्ञापन किया। इस एक सौ नवासिवीं वार्ता में तीस पद हैं। इति चेलाञ्चलाम्बावार्ताव्याख्यानम् ॥१८९॥

❀

अब श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्यवार्ता ॥

मू०–रामानुजश्च पूर्वं दर्शनार्थं प्रेषितं श्रीवैष्णव-माहूय-इयं किमकरोदित्यपृच्छत् ॥१९०॥

अर्थ–(च) और (रामानुजः) रामानुजाचार्य स्वामीजी (पूर्वम्) पहले (दर्शनार्थम्) चेलाक्षलाम्बा के कार्य को देखने के लिये (प्रेषितम्) भेजे हुए (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव को (आहूय) बुलाकर (इयम्) इस चेलाक्षलाम्बा ने (किम्) क्या (अकरोत्) किया है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। इस एक सौ नब्बे की वार्ता में बारह पद हैं। इति रामानुजाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९०॥

अब श्रीवैष्णव की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

मू०–स च-इयं पाकं कृत्वा पूर्वधृतवस्त्रं दूरीकृत्य शुद्धवस्त्रं परिधाय पक्वमन्नमन्तर्नीत्वा कपाटं पिधाय ध्यायन्त्यतिष्ठत्, ध्यायमानं च श्यामं दीर्घं वस्तु भगवन्मूर्ति र्न भवतीत्यवदत् ॥१९१॥

अर्थ–(च) और (सः) वह चेलाक्षलाम्बा के कार्य को देखने के लिये श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी से भेजा हुआ श्रीवैष्णव (इयम्) यह चेलाक्षलाम्बा (पाकम्) रसोई को (कृत्वा) बनाकर (पूर्वधृतवस्त्रम्) पहले से धारण किये हुए वस्त्र को (दूरीकृत्य) दूर हटाकर (शुद्धवस्त्रम्) पवित्रवस्त्र को (परिधाय) धारण कर (पक्वम्) पकाये हुए (अन्नम्) अन्न को (अन्तः) देवगृह के भीतर (नीत्वा) लेजाकर (कपाटम्) किवाड़ को (पिधाय) बन्दकर (ध्यायन्ती) ध्यान करती हुई (अतिष्ठत्) ठहरी रही। (च) और (ध्यायमानम्) चेलाक्षलाम्बा करके ध्यान किया हुआ (श्यामम्) श्यामसुन्दरमङ्गलमयविग्रहवाला (दीर्घम्) दीर्घ (वस्तु) वस्तु (भगवन्मूर्तिः) भगवान् की मूर्ति (न) नहीं (भवति) हो सकती है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। इस वार्ता में यह भी ज्ञात होता है कि जिस वस्त्र को पहनकर रसोई बनाना चाहिये, उस वस्त्र को छोड़कर दूसरे पवित्र सुन्दरवस्त्र को पहनकर रसोई को भगवान् के लिये निवेदन करना चाहिये। इस एक सौ इक्यानबे की वार्ता में सताईस पद हैं। इति श्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९१॥

अब श्रीभाष्यकार के और चेलाक्षलाम्बा के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारचेलाक्षलाम्बोक्ता वार्ता ॥

मू०–अनन्तरं भाष्यकारस्तामाहूय त्वमन्तः किमकरोरित्यपृच्छत्, सा च पूर्वं ममात्मरक्षार्थं प्रसादितामुपानहं प्रक्षाल्य पक्वमन्नं निवेद्य तत्प्रसादं प्रत्यहमहं भुञ्जे, इदानीमपितथैवान्नं न्यवेदयमित्यवदत्, तर्हि तां प्रदर्शयेत्यवदत्, साऽपि तां प्रादर्शयत्, तां स च स्वचरणयोरनुरूपां दृष्ट्वा-इदमवदत्, इयमनुरूपा चेत्, एते न भुञ्जते तां वार्ताम् कर्णयोर्वदेत्यवदत्, सापि तां वार्त्तामवदत्, पुन भाष्यकार इदमप्युचितमेव, तथापि-एतेषु श्रीवैष्णवेषु रामानुजोऽस्ति न वा पश्येत्यवदत्, सापि दीपं सम्यक् प्रज्वाल्य सर्वान् श्रीवैष्णवान् सम्यक् दृष्ट्वा श्रीरामानुजचरणौ पश्यन्ती तत्र सविभ्रमा स्थित्वा-इमौ रामानुजचरणाविव दृश्येते, काषायाभावान्न निश्चिनोमीत्यवदत्, रामानुजश्चाहमेवेत्यवदत्, सा च चरणौ गृहीत्वा रुरोद ॥१९२॥

॥ यतीन्द्रस्तुतिः ॥

अर्थ- विसृज्य रङ्गेशवियोगदुःखं चेलाञ्चलाम्बादरणाद्यतीन्द्रः ।
गतक्लमः शिष्यजनैः सुखेन तत्रैव तस्थौ कतिचिद्दिनानि ॥१६१॥

(अनन्तरम्) इसके बाद (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (ताम्) उस चेलाञ्चलाम्बा को (आहूय) पास में बुलाकर (त्वम्) तुम (अन्तः) देवगृह के भीतर (किम्) क्या (अकरोः) की थी (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (सा) वह चेलाक्षलाम्बा (पूर्वम्) पहले (मम) मेरी (आत्मरक्षार्थम्) आत्मा की रक्षा के लिये (प्रसादिताम्) प्रसादित (उपानहम्) जूते को (प्रक्षाल्य) प्रक्षालन

कर (पक्वम्) पकाये हुए (अन्नम्) अन्न को (निवेद्य) जूते के लिये निवेदन करके (तत्प्रसादम्) उस जूते के प्रसाद को (प्रत्यहम्) नित्यप्रति (अहम्) मैं (भुञ्जे) भोजन करती हूँ। (इदानीम्) इस समय में (अपि) भी (तथा) वैसे ही (एव) निश्चय करके (अन्नम्) सिद्धान्न को (न्यवेदयम्) मैंने जूते के लिये निवेदन किया है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोली है। (तर्हि) तब तो (ताम्) उस जूते को (प्रदर्शय) तुम दिखावो। (इति) इस प्रकार के (अवदत्) श्रीभाष्यकार ने कहा है। और (सा) वह चेलाञ्चलाम्बा (अपि) भी (ताम्) उस जूते को (प्रादर्शयत्) दिखायी। (च) और (सः) वह श्रीभाष्यकार (स्वचरणयोः) अपने दोनों चरणों के (अनुरूपाम्) अनुरूप (ताम्) उस जूते को (दृष्ट्वा) देखकर (इदम्) इस वक्ष्यमाण बात को (अवदत्) बोले हैं कि (इयम्) यह जूता (अनुरूपा) अनुरूप है (चेत्) तौभी (एते) ये श्रीवैष्णव सब (न) नहीं (भुञ्जते) भोजन करते हैं। इससे (ताम्) जिस वार्ता को श्रीभाष्यकार से तुम सुनी हो उस (वार्ताम्) वार्ता को (कर्णयोः) मेरे कानों में (वद) तुम कहो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) श्रीभाष्यकार ने कहा है। (सा) वह चेलाञ्चलाम्बा (अपि) भी (ताम्) उस (वार्ताम्) वार्ता को (अवदत्) यतिराज के कान में कही है। (पुनः) फिर से (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (इदम्) यह (अपि) भी (उचितम्) उचित है (एव) निश्चय करके (तथापि) तौभी (एतेषु) इन (श्रीवैष्णवेषु) श्रीवैष्णवों में (रामानुजः) रामानुजाचार्य जी (अस्ति) हैं (वा) अथवा (न) नही हैं (पश्य) इसको तुम देखो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) वे श्रीभाष्यकार चेलाञ्चलाम्बा से बोले हैं। (सा) और वह चेलाञ्चलाम्बा (अपि) भी (दीपम्) चिराग को (सम्यक्) अच्छी तरह से (प्रज्वाल्य) प्रज्वलित करके (सर्वान्) सम्पूर्ण (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (सम्यक्) अच्छी तरह से (दृष्ट्वा) देखकर (श्रीरामानुजचरणौ) श्रीरामानुजस्वामीजी के श्रीचरणों को (पश्यन्ती) देखती हुई (तत्र) उस श्रीरामानुजस्वामीजी के श्रीचरणों के पास में (सविभ्रमा) विशेष भ्रम के साथ (स्थित्वा) स्थित होकर (इमौ) ये दोनों (रामानुजचरणौ) श्रीरामानुजस्वामीजी के श्रीचरणों के (इव) समान (दृश्येते) देखे जाते हैं। परन्तु (काषायाभवात्) काषाय वस्त्र के नहीं होने से (न) नहीं (निश्चिनोमि) निश्चय करती हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) चेलाञ्चलाम्बा बोली है। (च) और तब श्रीभाष्यकार (रामानुजः) रामानुज (अहम्) मैं (एव) निश्चय करके हूँ, (इति) इसु प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। (च) और तब (सा) वह चेलाञ्चलाम्बा (चरणौ) श्रीरामानुजस्वामीजी के दोनों श्रीचरणों को (गृहीत्वा) पकड़कर (रुरोद) रोयी। इस एकसौ बयानबे की वार्ता में एकसौ अठारह पद हैं। इति श्री भाष्यकारचेलाञ्चलाम्बोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९२॥

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–स च तन्नेत्राश्रु परिमार्ज्य "विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च" इतिवत् पावनत्वभोग्यत्वयुक्तमन्नं भुङ्ग्ध्वमिति श्रीवैष्णवानुक्त्वा स्वयमस्वपत् ॥१९३॥

अर्थ–(च) और (सः) वह श्रीभाष्यकार (तन्नेत्राश्रु) उस चेलाञ्चलाम्बा की आँख के आँसू को (परिमार्ज्य) अच्छी तरह से मार्जनकर (शुचीनि) पवित्र (च) और (गुणवन्ति) गुणवाले (विदुरान्नानि) श्रीविदुर के अन्नों को (बुभुजे) श्रीकृष्ण भगवान् ने भोजन किया। (इतिवत्) इसके समान (पावनत्वभोग्यत्वयुक्तम्) पवित्रता और भोग्यता से युक्त (अन्नम्) अन्न को (भुङ्ग्ध्वम्) तुम सब भोजन करो (इति) इस प्रकार के (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों से (उक्त्वा) कहकर (स्वयम्) अपने श्रीभाष्यकार (अस्वपत्) भोजन करके सो गये। इस वार्ता में। **विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥ महाभा० उद्योगप० अ० ९१, श्लो०॥४१॥** यह प्रतीक है इससे समस्त श्लोक को लिखकर उसके अर्थ को लिखता हूँ।

॥ ततोऽनुयायिभिः सार्धं मरुद्भिरिव वासवः। विदुरान्नानि बुभुजे शुचीनि गुणवन्ति च ॥ महाभा० उद्योगप० अ० ९१, श्लो० ४१ ॥

उसके बाद श्रीकृष्ण भगवान् ने ऊञ्चास मरुतों के साथ इन्द्र के समान अपने अनुयायियों के साथ पवित्र और गुणवाले श्रीविदुर के अन्नों को भोजन किया ॥४१॥ इस एक सौ तिरानबे की वार्ता में अट्ठारह पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ता व्याख्यानम् ॥१९३॥

अब चेलाञ्चलाम्बा के और उसके पति के संवादरूपवार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ चेलाञ्चलाम्बाश्रीरङ्गदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–इयं च तदुच्छिष्टप्रसादं दुग्धेन मिश्रीकृत्य-एतद्-वृत्तान्तमजानन्तं सौधोपरि स्वपन्तं भर्त्तारमुद्बोध्य प्रसादं भोजयित्वा स्वयमभुञ्जानातिष्ठत्, तद्भर्ता-इदं किमित्यपृच्छत्, सा च श्रीरङ्गात् रामानुजः श्रीवैष्णवाश्च

२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९
आगता न भुञ्जाना एवं स्वपन्तीत्यवदत्, स चाहं किं
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७
कुर्यामित्यपृच्छत्, सा च भवान् रामानुजचरणावाश्रयत्वि-
४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७
त्यवदत्, स च रात्रौ सम्यक् प्रत्ययं कृत्वा तामभोजयत्,
५८ ५९ ६० ६१ ६२
साऽपि भुक्त्वा-उभावस्वपताम् ॥१९४॥

॥ श्रीरङ्गदास्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीरङ्गदासो योगीन्द्रं सभार्यः प्रणिपत्य तम्।
पूजयामास तान् सर्वान् वस्त्रैराभरणैर्द्विजान् ॥१६२॥

(च) और (इयम्) यह चेलाञ्चलाम्बा (तदुच्छिष्टप्रसादम्) श्रीभाष्यकार के उच्छिष्ट प्रसाद को (दुग्धेन) दूध के साथ (मिश्रीकृत्य) मिलाकर (एतत्) इस श्रीभाष्य के आगमनरूप (वृत्तान्तम्) वृत्तान्त को (अजानन्तम्) नहीं जानते हुए (सौधोपरि) कोठे के ऊपर (स्वपन्तम्) सोते हुए (भर्तारम्) अपने पति को (उद्बोध्य) जगाकर (प्रसादम्) उस तलेप्रसाद को (भोजयित्वा) भोजन कराकर (स्वयम्) अपने (अभुञ्जाना) बिना भोजन की हुई (अतिष्ठत्) कहीं भूमिपर स्थित हो गयी। (तद्भर्ता) तब उस चेलाञ्चलाम्बा के पति ने (इदम्) यह (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सा) वह चेलाञ्चलाम्बा (श्रीरङ्गात्) श्रीरंगजी से (रामानुजः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (च) और (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णवसब (आगताः) यहाँ पर आये हैं (न) वे सब मूर्ति बिना (भुञ्जानाः) भोजन किये हुए (एवम्) ऐसे ही (स्वपन्ति) सोते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोली है। (च) और सः) उस चेलाञ्चलाम्बा के पति श्रीरङ्गदास ने (अहम्) मैं तब (किम्) क्या (कुर्याम्) करूँ (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) अपनी स्त्री से पूछा। (च) और (सा) वह श्रीरङ्गदासकी स्त्री चेलाञ्चलाम्बा ने (भवान्) आप (रामानुजचरणौ) श्रीभाष्यकार के दोनों श्रीचरणों को (आश्रयतु) आश्रयण कर लीजिये (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा (च) और (सः) वह चेलाञ्चलाम्बा के पति श्रीरंगदास ने (रात्रौ) रात्रि में (सम्यक्) अच्छे प्रकार के (प्रत्ययम्) शपथ (कृत्वा) करके (ताम्) उस चेलाञ्चलाम्बा को (अभोजयत्) भोजनकरवाया। (सा) वह चेलाञ्चलाम्बा (अपि) भी (भुक्त्वा) भोजन करके (उभौ) वेदोनों स्त्री पुरुष (अस्वपताम्) पलङ्गपर सो गये। इस एक सौ चौरानबे की वार्ता में बासठ पद हैं। इति चेलाञ्चलाम्बाश्रीरङ्गदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९४॥

अब चेलाञ्चलाम्बा की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ चेलाचलाम्बोक्ता वार्ता ॥

मू०–सा[१] च[२] प्रातः[३] उत्थाय[४] श्रीरामानुजचरणौ[५] प्रणम्य[६]-अद्य[७]-अत्र[८] स्थित्वा[९]-एनम्[१०] अङ्गीकृत्य[११] श्वः[१२] गन्तासि[१३]-इति[१४] अवदत्[१५] ॥१९५॥

॥ चेलांचलाम्बास्तुतिः ॥

अर्थ- चेलाञ्चलाम्बा सन्तुष्ट ततः साध्वी गुरुप्रिया।
भुक्त्वा यथेष्टं सा भर्त्तुस्तल्पे शेते च पूर्ववत् ॥१६३॥

(च) और (सा) वह चेलाञ्चलाम्बा (प्रातः) सबेरे (उत्थाय) पलंग से उठकर (श्रीरामानुजचरणौ) श्रीभाष्यकार के श्रीचरणों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम कर हे भगवन्! (अद्य) आज (अत्र) यहाँ पर (स्थित्वा) ठहर कर (एनम्) इस मेरे पति को (अङ्गीकृत्य) स्वीकार कर (श्वः) कल (गन्तासि) आप जाइयेगा (इति) इस प्रकार से (अवदत्) बोली है। इस वार्ता में पन्द्रह पद हैं। इति चेलाञ्चलाम्बोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९५॥

❁❁❁

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–रामानुजः[१] च[२] तत्र[३] स्थित्वा[४] तम्[५] अङ्गीकृत्य[६] तत्र[७] ग्रामे[८] पञ्च[९] षट्[१०] दिवसान्[११] स्थित्वा[१२] त्रिदण्डकाषायादीन्[१३] सम्पाद्य[१४] स्वाराध्य[१५] वरदराजस्य[१६] अग्रतः[१७] निधाय[१८] प्रणम्य[१९] पूर्ववत्[२०]-तान्[२१] अदधात्[२२], भगवद्विषये[२३]-अपेक्षा[२४] वार्तामात्रं[२५] श्रीवैष्णव[२६] विषये-अपेक्षा[२७] हस्तग्रहणम्[२८], आचार्यविषये[२९]-अपेक्षा[३०] पादग्रहणं[३१] गुरुप्रमाणीकृतचित्तवृत्तयः[३२] श्रुतप्रमाणीप्रतिपन्नवृत्तयः[३३]-अमानिनोऽसंभवनिवृत्ता[३४] नरास्तरन्ति[३५] संसारसमुद्रम्[३६] अश्रमम्[३७]''

अन्यशेषत्वनिवृत्तिः[४०] स्वातन्त्र्यनिवृत्तिश्चाधिकारिकृत्यं[४१] ज्ञानप्रदानं[४२] ज्ञानवर्द्धनञ्चाचार्य्यकृत्यं[४३] पुरुषकारत्वं[४४] कैंकर्य-वर्द्धनं[४५] च लक्ष्मीकृत्यं[४६] विरोधिनिवर्त्तनं[४७] प्राप्यप्रदानं[४८] चेश्व-रकृत्यम्[४९], अग्निं[५०] निवारयन्तः[५१], अविद्यां[५२] निवारयन्तः[५३], अन्यान्[५४] निवारयन्तः[५५], भयं[५६] निवारयन्तः[५७], अभोग्यं[५८] निवारयन्तश्च[५९], दुःखानुभवं[६०] प्रकृतिः[६१], दुःखस्यानुभविता[६२]-आत्मा[६३], दुःखा-सहिष्णुः[६४] लक्ष्मीः[६५], दुःखनिवारक[६६] ईश्वरः[६७] ॥१९६॥

॥ लक्ष्मणार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीरङ्गदासेन च लक्ष्मणार्यः संपूजितः सादरमार्यवर्यः ।
सर्वाञ्छनान् ग्रामचरान् स्वशिष्याञ्चकार संपूर्णविलोकनेन ॥१६४॥

(च) और (रामानुजः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने (तत्र) उस चेलाक्षलाम्बा के घर पर (स्थित्वा) ठहर कर (तम्) उस श्रीरंगदासजी को (अंगीकृत्य) स्वीकार करके (तत्र) उस (ग्रामे) गाँव में (पञ्च) पाँच (षट्) छः (दिवसान्) दिनतक (स्थित्वा) ठहर कर (त्रिदण्डकाषायादीन्) त्रिदण्ड तथा काषायवस्त्र और कमण्डलुको (संपाद्य) संपादन कर (स्वाराध्यवरदराजस्य) अपने आराध्य वरदराज भगवान्के (अग्रतः) आगेमें (निधाय) रखकर (प्रणम्य) वरदराज भगवान्के प्रति साष्टाङ्ग प्रणाम कर (पूर्ववत्) पहलेके समान (तान्) उन त्रिदण्ड तथा काषायवस्त्र और कमण्डलुको (अदधात्) धारण कर लिया । (भगवद्विषये) भगवान्के विषयमें (अपेक्षा) अपेक्षा (वार्तामात्रम्) वार्तामात्र है । तथा (श्रीवैष्णवविषये) श्रीवैष्णवोंके विषय में (अपेक्षा) अपेक्षा (हस्तग्रहणम्) हस्त-ग्रहणमात्र है । और (आचार्यविषये) आचार्यके विषय में (अपेक्षा) अपेक्षा (पादग्रहणम्) श्रीपादग्रहणमात्र है । (गुरुप्रमाणीकृतचित्तवृत्तयः) श्रीगुरुमें अत्यन्त आसक्त कर दिया है चित्तकी वृत्तियोंको जिन लोगोंने तथा (श्रुतप्रमाणीप्रतिपन्नवृत्तयः) सुननेसे प्रमाणयुक्त प्राप्त कर लिया है समस्त वृत्तियोंको जिन लोगोंने और (अमानिनः) मानरहित (असंभवनिवृत्ताः) असम्भवसे निवृत्त जो लोग हैं (नराः) वे मनुष्य (अश्रमम्) बिना परिश्रमके (संसारसमुद्रम्) संसार सागरको (तरन्ति) पार कर जाते हैं । (अन्यशेषत्वनिवृत्तिः) अन्य शेषताकी निवृत्ति (च) और (स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तिः) अपनी स्वतन्त्रताकी निवृत्ति (अधिकारिकृत्यम्) अधिकारियोंका कृत्य है । तथा (ज्ञानप्रदानम्) ज्ञानको प्रकर्षरूपसे देना (च) और (ज्ञानवर्द्धनम्)

ज्ञानको बढ़ाना (आचार्यकृत्यम्) आचार्योंका कृत्य है। तथा (पुरुषकारत्वम्) पुरुषकारता (च) और (कैंकर्यवर्द्धनम्) भगवान्के कैंकर्यको बढ़ाना (लक्ष्मीकृत्यम्) लक्ष्मीजीका कृत्य है। तथा (विरोधिनिवर्त्तनम्) विरोधियोंको हटाना (च) और (प्राप्यप्रदानम्) प्राप्य वस्तुको प्रकर्ष रूपसे देना (ईश्वरकृत्यम्) परमेश्वरका कृत्य है। (अग्निम्) अग्निको (निवारयन्तः) निवारण करनेवाले हैं। और (अन्यान्) अन्य कामादिकोंको (निवारयन्तः) निवारण करनेवाले हैं। तथा (भयम्) भयको (निवारयन्तः) निवारण करनेवाले हैं। (च) और (अभोग्यम्) अभोग्यको (निवारयन्तः) निवारण करनेवाले हैं। (दुःखानुभवम्) दुःखके अनुभव का स्थान (प्रकृतिः) माया है। तथा (दुःखस्य) दुःखका (अनुभविता) अनुभव करनेवाला (आत्मा) जीवात्मा है। और (दुःखासहिष्णुः) चेतनके दुःखको नहीं सहनेवाली (लक्ष्मीः) लक्ष्मी देवीजी हैं। तथा (दुःखनिवारकः) चेतनके दुःखको दूर करनेवाला (ईश्वरः) परमेश्वर हैं। इस वार्तामें त्रिदण्डादिककों सम्पादन करनेका वर्णन आया है। इससे प्रश्न होता है कि त्रिदण्ड किस वस्तुका और कितना लम्बा होना चाहिए? इस प्रश्नका उत्तर देखिये संन्यासोपनिषद् में लिखा है कि-

॥ दण्डं तु वैष्णवं सौम्यं सत्वचं समपर्वकम्। पुण्यस्थलसमुत्पन्नं नानाकल्मषशोधितम्॥ संन्यासोप० श्रु० ९॥ अदग्धमहतंकीटैः पर्वग्रन्थिविराजितम्। नासादध्नं शिरस्तुल्यं भ्रुवोर्वा विभृयाद्यतिः॥ १०॥

सुन्दर छिलके सहित बराबर पोरवाला तथा पवित्र भूमिमें उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके कल्मषोंसे रहित बांसका त्रिदण्ड होता है ॥९॥ अग्निसे जला न हो और कीट इत्यादिकोंसे खाया न हो तथा पोरके गांठ सब मालूम होती हो तो ऐसे त्रिदण्डको संन्यासी अपनी नाकके बराबर या सिरके बराबर या दोनों भौंहों के बराबर लम्बा, विधिसे धारण करे ॥१०॥ और अत्रिस्मृतिमें लिखा है कि-

॥ धारयेद्वैणवं दण्डं न स्थूलं न कृशं तथा। तस्य चाग्रे च मूले च ग्रन्थिं त्यक्त्वा तु धारयेत्॥ द्विचत्वारि षडष्टौ वाह्याङ्गुलानि समाहितः। न न्यूनं नातिरिक्तञ्च द्विगुणं मूलतोऽग्रके॥ अत्रिस्मृ०॥

जिसके मूलसे अग्रभाग दूना हो कम या अधिक न हो और दो चार छः आठ अंगुलके पोरके बीचमें अन्तर हो, तथा आदि और अन्तमें गांठ न हो, और अधिक मोटा या पतला न हो ऐसे बाँसके त्रिदण्डको धारण करे। ओर बौधायनस्मृतिमें लिखा है कि-

त्रीन्दण्डानङ्गुलिस्थूलान्वैणवान्मूर्धसंमितान्। एकादश नवद्वित्रिचतुः सप्तान्यपर्वकान्॥ वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्वा तु चतुरङ्गुलान्। गोवालरहितं

चान्यद्धारयेदुपदण्डकम् ।

अंगुलीके समान मोटा मस्तक पर्यन्त तीन बाँसके दण्ड रखे, जिसमें ग्यारह नव दो तीन चार सात पोर हों, और काली गौके बालोंकी रस्सीके चार अंगुलके वेष्टन हो और उन तीन दण्डोंके साथ गोबालके वेष्टनसे रहित दूसरा एक उपदण्ड भी धारण करे । और देखिए हारीतस्मृतिमें लिखा है कि-

॥ त्रिदण्डं वैष्णवं सम्यक् संततं समपर्वकम् । वेष्टितंकृष्णगोवाल रज्जुमच्चतुरङ्गुलम् ॥ हारीतस्मृ० अ० ६, श्लो० ६ ॥

चार अंगुल काली गौके बालोंकी रस्सी लिपटी हो और जिसकी गाँठ बराबर हो, ऐसे सुन्दर बाँसके विष्णु सम्बन्धी त्रिदण्डको ग्रहण करे ।।६।। इस प्रकारके त्रिदण्ड विषयक प्रश्नका उत्तर होनेपर तो यह प्रश्न होता है कि कमण्डलु संन्यासीका किस चीज का होना चाहिए ? इस प्रश्नका उत्तर शाट्यायनीयोपनिषद्में लिखा है कि- **मृद्वर्वलाबूफलपर्णपात्रम् ॥ शाट्या० श्रु० १९ ॥** मिट्टी, काठ, तूंबीफल पत्रके पात्र संन्यासीको होना चाहिए ।।१९।। और याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है कि-

॥ यति पत्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च । सलिलैः शुद्धिरेतेषां गोवालैश्चावघर्षणम् ॥ याज्ञव० अ० ३, श्लो० ६० ॥

मिट्टी, बाँस, काठ, तूँबीके संन्यासीका कमण्डलु होता है, जलसे धोकर गोबालके घिसनेसे ही उनकी शुद्धि होती है ।।६०।। और मनुस्मृतिमें लिखा है कि-

अलाबुं दारुपात्रं वा मृण्मयं वैष्णवं तथा । एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ मनुस्मृ० अ० ६, श्लो० ५४ ॥

तूँबी १, काठ २, मिट्टी ३, बाँस ४, के बने हुए संन्यासियोंके पात्र होते हैं, यह स्वायंभू मनुने कहा है ।"५४।। इस एक सौ छानबेकी वार्तामें पचहत्तर पद हैं । इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्या गानम् ।।१९६।।

अब वेदान्ती स्वामीजीके और भट्टारकस्वामीजीके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ यतिभट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०-वेदान्ती भट्टार्य्य श्रीरङ्गनाथश्चन्द्रपुष्करणीतीरे-शेते, अत्राभिप्रायः को वेत्यपृच्छत्, स च नारायणमणिवर्ण-

१५ १६ १७ १८ १९ २० २१
इत्याक्रोशानन्तरं खलु ह्रदतीरमागतः, अत्र शयनं मदा-
२२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२
क्रोशात् पूर्वं मामुद्धर्तुं यत्र ह्रदे-अहं मज्जामि, तत्र सहैव-
३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२
आगत्य शेते, अमुमर्थं त्वं स्वयमेव न पृच्छसि, त्वद्-
४३ ४४ ४५ ४६ ४७
द्वारा मदभिप्रायं श्रीरङ्गनाथः प्रकाशयतीत्यवदत् ॥१९७॥

अर्थ- (वेदान्ती) वेदान्तीस्वामीजी ने (भट्टार्यम्) भट्टारकस्वामीजीसे (श्रीरंङ्गनाथः) श्रीरंगनाथ भगवान् (चन्द्रपुष्करणीतीरे) चन्द्रपुष्करणीके किनारेपर (शेते) सोते हैं। "शेते" यहाँ ॥ **शीङः सार्वधातुके गुणः ॥ व्या० अ० ७, पा० सू० २१ ॥** इस सूत्रसे गुण हुआ है। (अत्र) यहाँ पर सोनेमें (कः) कौन (अभिप्रायः) अभिप्राय (वा) है। (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और (सः) वह भट्टारक स्वामीजी (नारायणमणिवर्ण) हे नारायणमणिवर्ण! (इति) इस प्रकारके (आक्रोशानन्तरम्) चिल्लानेके बाद (खलु) निश्चय करके (ह्रदतीरम्) चन्द्रपुष्करणीके तीरपर (आगतः) श्रीरंगनाथ भगवान् आ गये हैं। (अत्र) इस चन्द्रपुष्करणीके तीरपर (शयनम्) श्रीरंङ्गनाथ भगवान्का शयन (मदाक्रोशात्) मेरे चिल्लानेसे (पूर्वम्) पहले ही (माम्) मुझको (उद्धर्तुम्) उद्धार करनेके लिये (यत्र) जिस (ह्रदे) हदमें (अहम्) मैं (मज्जामि) डूबूँगा (तत्र) उस ह्रदके तीरपर (सह) साथ ही (एव) निश्चय करके (आगत्य) आकर (शेते) शयन करते हैं। (अमुम्) इस पूर्वोक्त (अर्थम्) अर्थ को (त्वम्) तुम (स्वयम्) अपने से (एव) निश्चय करके (न) नहीं (पृच्छसि) पूछते हो। (त्वद्द्वारा) तेरे द्वारा (मदभिप्रयाम्) मेरे अभिप्रायको (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (प्रकाशयति) प्रकाश करा रहे हैं (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले हैं। इस एकसौ सन्तानवे वार्तामें सैंतालीस पद हैं। इतिभट्टार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९७॥

अब कूरेशस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कूरेशोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५
मू०-कूरेशस्य बालमित्रं कश्चन ब्राह्मणस्तस्य
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
बहुकालं पुत्रो नासीत्, अनन्तरं यज्ञे श्रीरङ्गे तद्वार्ता
१४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
शृण्वन्नेव कूरेशः श्रीरङ्गनाथसमीपे गत्वा हितमुक्त्वा-
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
आगच्छतः सर्वानपि सपुत्रः किं कारोतीत्यपृच्छत् ॥१९८॥

॥ कूरेशस्तुतिः॥

अर्थ- जगद्गुरुर्लक्ष्मणार्यः सुखं यदि हि वर्तते।
तदेवालं ममेत्युक्त्वा संतुष्टः कूरण्डभूत् ॥१६५॥

(कूरेशस्य) कूरेशस्वामीजीके (बालमित्रम्) लड़कपनका मित्र (कश्चन) कोई (ब्राह्मणः) ब्राह्मण था (तस्य) उस ब्राह्मणका (बहुकालम्) बहुत दिनतक (पुत्रः) लड़का (न) नहीं (आसीत्) था। (अनन्तरम्) इसकेबाद (श्रीरङ्गे) श्रीरङ्ग (यज्ञे) यज्ञमें (तद्वार्त्ताम्) उस लड़कपनके मित्र ब्राह्मणकी वार्ताको (शृण्वन्) सुनता हुआ (एव) निश्चय करके (कूरेशः) कूरेशस्वामीजी (श्रीरङ्गनाथसमीपे) श्रीरंगनाथ भगवान्के समीपमें (गत्वा) जाकर (हितम्) हितको (उक्त्वा) कहकर (आगच्छतः) आनेवाले (सर्वान्) सब को (अपि) भी (सपुत्रः) पुत्र सहित (किम्) क्या (करोति) आप करते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। इस एक सौ अट्ठानबे की वार्ता में अट्ठाईस पद हैं। इति कूरेशोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९८॥

अब कूरेश स्वामीजी की माता के और कूरेश स्वामीजी के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कूरेशजनन्युक्ता वार्ता ॥

मू०–कूरेशस्य माता तमाहूय किं सम्बन्धं पालयसीत्यपृच्छत्, स चाहं तस्यैकां समीचीनवार्तामवदम्, इत्यवदत्, सा च क्व सः, क्व भवान्, एवं कथं वार्तोच्यते, इत्यपृच्छत्, स च कश्चन निगलबद्धश्चेत् निगलं विमोचनसमये निगलबद्धस्य न वदति, बध्नतश्च राज्ञो न वदतीत्यवोचत् ॥१९९॥

॥ कूरेशस्तुतिः॥

अर्थ- मकरे हस्तनक्षत्रे ततो रामांशतोऽजनि।
श्रीमाननन्तभट्टार्यान्महादेव्यां महायशाः।
कूरेशोऽस्मत्पिता सर्वविबुधाग्रेसरोऽनघ ॥१६६॥

(कूरेशस्य) कूरेश स्वामीजी की (माता) माँ महादेवीजी (तम्) उस कूरेश स्वामीजी को (आहूय) बुलाकर (किम्) क्या (सम्बन्धम्) सबन्ध को (पालयसि) पालन कराते हो (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछी हैं। "पालयसि" यहाँ पर **॥ पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः ॥** इस वार्तिक से लुगागम हुआ है। (च) और (सः) वह कूरेश स्वामीजी (अहम्) मैं (तस्य) उसकी (एकाम्) एक (समीचीनवार्ताम्) अच्छी वार्ता को (अवदम्) कहा हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले (च) और (सा) वह कूरेश स्वामीजी की माता महादेवी (सः) वह (क्व) कहाँ पर हैं और (भवान्) आप (क्व) कहाँ पर हैं (एवम्) इस प्रकार की (वार्ता) वार्ता (कथम्) कैसे (उच्यते) आप कहते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछी हैं। (च) और (सः) वह कूरेश स्वामीजी (कश्चन) कोई (निगलबद्धः) निगलबद्ध (चेत्) यदि हो तो (निगलम्) निगल को (विमोचनसमये) छोड़ने के समय में (निगलबद्धस्य) निगलबद्ध को (न) नहीं (वदति) कहता है। (च) और (बध्नतः) बाँधनेवाले (राज्ञः) राजा को भी (न) नहीं (वदति) कहता है। (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। इस एक सौ निन्यानबे की वार्ता में सैंतालीस पद हैं। इति कूरेशजनन्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥१९९॥

अब ब्राह्मण पुत्र की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ ब्राह्मणपुत्रवार्ता ॥

मू०–स[१] च[२] ब्राह्मणपुत्रः[७]–उपनयनसमनन्तरं[३] श्रीरङ्गम्[५]–आगत्य कूरेशचरणौ[६] आश्रयत्[४] ॥२००॥

॥ कूरेशस्तुतिः॥

अर्थ– **स तत्र सुन्दरभुजं नत्वा भक्त्या वनाचले।**
नित्यवासपरो धीमान् किञ्चित्कालमवर्तत ॥१६७॥

(च) और (सः) उस (ब्राह्मणपुत्रः) ब्राह्मण के लड़के ने (उपनयनसमनन्तरम्) यज्ञोपवीतसंस्कार होने के बाद (श्रीरङ्गम्) श्रीरंगक्षेत्र में (आगत्य) आकर (कूरेशचरणौ) कूरेश स्वामीजी के श्रीचरणों को (आश्रयत्) आश्रयण किया। इस दो सौ की वार्ता में सात पद हैं। इति ब्राह्मणपुत्रवार्ताव्याख्यानम् ॥२००॥

अब श्रीभाष्यकार की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारवार्ता ॥

मू०–बहुलराज्ये[१] श्रीशालग्रामं[२] भाष्यकारोऽगच्छत्[३][४], तद्ग्रामे[५] सर्वेषां[६][७] शैवत्वात्[८][९] कोऽपि[१०] नाद्रियत[११] श्रीभाष्यकारः[१२] दाशरथिं[१३] दृष्ट्वा[१४][१५] यत्र[१६] जलं[१७] पिबन्ति[१८] तत्र जले[१९][२०] त्वं[२१] पादौ[२२] प्रक्षालयेत्यवदत्[२३][२४], सोऽपि[२५][२६] तथाकरोत्[२७][२८], परेद्युस्तद्ग्राम-[२९] वासिनः[३०] सर्वे[३१] श्रीरामानुजचरणावाश्रयन्[३२][३३], ततः[३४] परं[३५] शाल-[३६] ग्राम[३७] इति[३८] ग्रामनामाभूत् ॥२०१॥

॥ लक्ष्मणार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- ततश्च मिथिलां गत्वा पुरीं लक्ष्मणदेशिकः ।
किञ्चित्कालं स्थितस्तत्र शालग्राममथाययौ ॥१६८॥

(बहुलराज्ये) बहुलके राज्य में (श्रीशालग्रामम्) श्रीशालग्राम क्षेत्र में (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (अगच्छत्) चले गये। (तद्ग्रामे) उस बहुलके गाँव में अर्थात् मिथिलापुरी में (सर्वेषाम्) सबके (शैवत्वात्) शैव होने से (कः) किसी ने (अपि) भी (न) नहीं (आद्रियत) श्रीभाष्यकार का आदर किया। (श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने (दाशरथिं) दाशरथी स्वामीजी को (दृष्ट्वा) देखकर (यत्र) जिस तालाब में (जलम्) जल को (पिबन्ति) मिथिलापुरी के रहनेवाले पीते हैं। (तत्र) उस तालाब के (जले) जल में (त्वम्) तुम (पादौ) अपने दोनों चरणों को (प्रक्षालय) प्रक्षालन करो। (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं (सः) उस दाशरथि स्वामीजी ने (अपि) भी (तथा) वैसे ही अर्थात् श्रीभाष्यकार के कहने के अनुसार ही (अकरोत्) किया। (परेद्युः) दूसरे दिन (तद्ग्रामवासिनः) उस मिथिलापुरी के रहनेवाले (सर्वे) सब स्त्री पुरुषों ने (श्रीरामानुजचरणौ) श्रीभाष्यकार के श्रीचरणों को (आश्रयन्) आश्रयण किया। (ततः) उसके (परम्) बाद (शालग्रामः) शालग्राम (इति) ऐसा (ग्रामनामा) गाँव का नाम (अभूत्) हो गया। "अभूत्" यहाँ पर **गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु ॥ व्या० अ० २, पा० ४, सू० ७७ ॥** इस सूत्र से सिच् का लुक् हुआ है। इस दो सौ एक की वार्ता में उन्तालीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारवार्ताव्याख्यानम् ॥२०१॥

अब मूलहल्वानाचार्यजी के और श्रीवैष्णवों के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ मूलहल्वानाचार्योक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४
मू०–मूलहल्वानाचार्यं श्रीवैष्णवाः भवान् बहुकालं
५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
पूर्वग्रामं किमर्थं गच्छतीत्यपृच्छन्, स च-अहं तत्र गत-
१६ १७ १८ १९ २० २१
श्चेत् भगवद्विषयानुकूलाः वार्ताः वदामि, ततः श्रीरङ्गस्य
२२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
विरोधं न कुर्वन्ति, तत्समीपात् काञ्चन पदार्थान् गृहीत्वा
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४
भागवतविषये-उपकुर्यां चेत् तेषां भागवतविषये-आनुकूल्यं
३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२
भवेदिति निश्चित्य गच्छामीत्यवदत्, तर्हि तत्पदार्थाः
४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१
भागवतानामर्हाः किमित्यपृच्छन्, स च सर्वानहं ना-
५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७
रायणसंबन्धिनः पश्यामि, न तु प्रकृतिसम्बन्धिनः, तस्मात्
५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५
किमपि वस्तु-अन्यदीयं न भवतीत्यवदत् ॥२०२॥

॥ महाभागवतस्तुतिः॥

अर्थ- महाभागवता यत्र वसन्ति विमलाः शुभाः ।
तद्भूमिर्मङ्गला प्रोक्ता यथा विष्णुपदं शुभम् ॥१६९॥

(मूलहल्वानाचार्यम्) मूलहल्वानाचार्यजी से (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (भवान्) आप (बहुकालम्) बहुत समय (पूर्वग्रामम्) पूर्वाश्रम के गांव में (किम्) किस (अर्थम्) प्रयोजन से (गच्छति) जाते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) पूछा। (च) और (सः) वह मूलहल्वानाचार्य (अहम्) मैं (तत्र) उस पूर्वाश्रम के गाँव पर (गतः) चला जाता हूँ (चेत्) यदि तो (भगवद्विषयानुकूलाः) भगवद्विषय के अनुकूल (वार्ताः) वार्ता को (वदामि) कहता हूँ। (ततः) उससे (श्रीरङ्गस्य) श्रीरंगनाथ भगवान् के (विरोधम्) विरोध को (न) नहीं (कुर्वन्ति) करते हैं। और (तत्समीपात्) उन गृहस्थों के समीप से (काञ्चन) कुछ भी (पदार्थान्) पदार्थों को (गृहीत्वा) ग्रहण कर (भागवतविषये) भागवतों के विषय में (उपकुर्याम्) उपकार करूँगा (चेत्) यदि तो (तेषाम्) उन सब गृहस्थों के (भागवतविषये) भागवतों के विषय में (आनुकूल्यम्) अनुकूलता (भवेत्) होगी (इति) इस प्रकार के (निश्चित्य) निश्चय कर (गच्छामि) जाता हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। (तर्हि)

तो (तत्पदार्थाः) उन प्राकृत पुरुषों के पदार्थ (भागवतानाम्) भागवतों के (अर्हाः) योग्य हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छन्) श्रीवैष्णवों ने पूछा है। (च) और (सः) वह मूलहल्वानाचार्यजी (सर्वान्) सब जीवों को (अहम्) मैं (नारायणसंबन्धिनः) नारायण भागवान् के संबन्धी (पश्यामि) देखता हूँ। (प्रकृतिसंबन्धिनः) प्रकृति के संबन्धी पदार्थों को (तु) तो (न) नहीं देखता हूँ। (तस्मात्) इस कारण से (किम्) कुछ (अपि) भी (वस्तु) पदार्थ (अन्यदीयम्) दूसरे का (न) नहीं (भवति) हो सकता है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। इस दो सौ दो वार्ता में पैंसठ पद हैं। इति मूलहल्वानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२०२॥

अब पिरङ्गुरिपुल्लै महात्मा की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पिरंगुरिपुल्लैगदिता वार्ता ॥

मू०–नडादुरअम्बार (१) आलिपुल्लान (२) उभावपि (३) सह (४) भुञ्जानौ (५) दृष्ट्वा (६) पिरङ्गुरिपुल्लै (७) भवतोः–अनुष्ठानम (८) अदृष्ट्वा (९) भवदुक्त (१०) वार्तामात्रमुपायत्वेन (११) स्वीकुर्यां (१२) चेत्, अनर्थमेव (१३) प्राप्नुयामित्यवोचत् (१४) ॥२०३॥

अर्थ–(नडादुरअम्बारः) नडादुर अंवार महात्मा और (आलिपुल्लानः) आलिपुल्लान महात्मा (उभौ) इन दोनों महात्माओं को (अपि) भी (सह) साथ (भुञ्जानौ) भोजन करते हुए (दृष्ट्वा) देखकर (पिरङ्गुरिपुल्लै) पिरंगुरिपुल्लै (भवतोः) आप दोनों के (अनुष्ठानम्) आचरणको (अदृष्ट्वा) नहीं देखकर (भवदुक्तवार्तामात्रम्) आप सबों से कही हुई वार्तामात्र को (उपायत्वेन) साधनता करके (स्वीकुर्याम्) यदि मैं स्वीकार करूँगा (चेत्) तो (अनर्थम्) अनर्थ को (एव) निश्यच करके (प्राप्नुयाम्) मैं प्राप्त करूँगा (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले। इस वार्ता में बीस पद हैं। इति पिरङ्गुरिपुल्लैगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥२०३॥

अब अम्ब्बालाचार्यजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ अम्व्वालाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अम्व्वालः (१) सदाचार्यप्रसादमुद्देश्यं (२) चेत् (३) सर्वमप्यत्र (४) तिष्ठतीत्यवदत् (५) ॥२०४॥

॥ लक्ष्मणार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- राङ्गराजादयः प्रोक्ताः प्रधानास्तत्र तत्र ये।
तेष्वेवायं लक्ष्मणार्यः प्रधानोऽभून्जगद्गुरुः ॥१७०॥

(अम्व्वालः) अम्व्वालाचार्य (सदाचार्यप्रसादम्) सदाचार्य की प्रसन्नता (उद्देश्यम्) उद्देश्य यदि है (चेत्) तो (सर्वम्) सब पदार्थ (अपि) भी अत्र यहाँ भूतलपर ही (तिष्ठति) रहता है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। इस वार्ता में दस पद हैं। इति अम्व्वालाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२०४॥

अब गोष्ठीपूर्णस्वामीजी के और उनके भ्राता के सम्वादरूपवार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीगोष्ठीपूर्णः स्वज्येष्ठभ्रात्रा-अन्तिमदशायां ममोपायः कोवेति पृष्टः, विरजाया इतस्तीरे भवान् कुत आगत इति भवन्तं पृच्छति चेत्, श्रीगोष्ठीपूर्णचरण-समीपात् आगच्छामीति वदस्व, तत्तीरे तिष्ठन्तो भवान् क इति पृच्छन्ति चेत्, श्रीगोष्ठीपूर्णस्य ज्येष्ठभ्रातेति वदस्वेत्यवोचत्, अभागवतत्यागो भागवतपरिग्रहो भग-वत्स्वीरकार आचार्य्याङ्गीकारः स्वप्रज्ञा एते सर्वे कस्यचि-दुत्तारकहेतवः ॥२०५॥

॥ गोष्ठीपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- गोष्ठीपूर्ण गुरुश्रेष्ठ रहस्यार्थान्विशेषतः।
मामकाय वद प्राज्ञ लक्ष्मणार्याय धीमते ॥१७१॥

(श्रीगोष्ठीपूर्णः) श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीजी से (स्वज्येष्ठभ्रात्रा) गोष्ठीपूर्णस्वामीजीके जेठाभाईने (अन्तिमदशायाम्) मरण समयमें (मम) मेरा (उपायः) संसारसागरसे पार करनेवाला उपाय (कः) कौन (वा) है (इति) इस प्रकारके (पृष्टः) पूछा। (विरजायाः) विरजा नदीके (इतः) इस लीला विभूति सम्बन्धी (तीरे) तीर पर (भवान्) आप (कुतः) कहाँसे (आगतः) आये हैं (इति) इस प्रकारके (भवन्तम्)

आपसे यदि (पृच्छन्ति) पूछते हैं (चेत्) तो (श्रीगोष्ठीपूर्णचरणसमीपात्) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीके चरणके समीपसे (आगच्छामि) आता हूँ (इति) इस प्रकारके (वदस्व) स्पष्ट कहना "वदस्व" यहाँ पर ॥ **व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥ व्या० अ० १, पा० ३, सू० ४८** ॥ इस सूत्रसे आत्मनेपद होता है। (तत्तीरे) विरजा नदीके तीर पर (तिष्ठन्तः) ठहरनेवाले सब (भवान्) आप (कः) कौन हैं (इति) इस प्रकारसे (पृच्छन्ति) यदि पूछते हैं (चेत्) तो (श्रीगोष्ठीपूर्णस्य) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीका (ज्येष्ठभ्राता) जेठा भाई हूँ (इति) इस प्रकारसे (वदस्व) स्पष्ट कहना (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले हैं। (अभागवतपरित्यागः) भागवतसे अतिरिक्तको परित्याग करना, और (भागवतपरिग्रहः) भागवतोंको अच्छे प्रकारसे ग्रहण करना, तथा (भगवत्स्वीकारः) भगवान्‌को स्वीकार करना और (आचार्याङ्गीकारः) आचार्य्यको स्वीकार करना तथा (स्वप्रज्ञा) आत्मामें प्रज्ञा करना (एते) ये (सर्वे) सब (कस्यचित्) किसी पुरुषके भी (उत्तारकहेतवः) संसार सागरसे पार करनेके उपाय हैं। इस दो सौ पाँचवीं वार्तामें पैंतालीस पद हैं। इति गोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२०५॥

अब श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीके और भाष्यकारके संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीगोष्ठीपूर्णभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

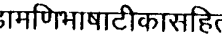
मू०–श्रीगोष्ठी[१]पूर्णसमीपे भाष्य[२]कारे-अष्टा[३]दशवारं गच्छति-इतः[४] परं[५] अपि[६] श्रोतुं[७] आगतः[८] किं[९]मिति[१०] गोष्ठी[११]पूर्णः[१२] पप्रच्छ[१३], भाष्यकारश्च[१४]-एकवारं[१५] द्विवारं[१६] त्रिवारं[१७] श्रवणपर्यन्त[१८]-मागच्छामी[१९]त्यवदत्[२०] ॥२०६॥

॥ श्रीगोष्ठीपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- तत्राष्टदशवारं तु गत्वा गत्वा पुनः पुनः।
आयातो रङ्गनगरमेवं तूष्णीं यतीश्वरः ॥१७२॥

(श्रीगोष्ठीपूर्णसमीपे) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीके समीपमें (भाष्यकारे) श्रीभाष्यकारके (अष्टादशवारम्) अठारह बार (गच्छति) जाने पर (इतः) इससे (परम्) परे (अपि) भी (श्रोतुम्) सुनने के लिये (आगतः) आवोगे (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने (पप्रच्छ) पूछा है। (च) और (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार ने (एकवारम्) एकबार (द्विवारम्) दोबार और (त्रिवारम्) तीनबार

(श्रवणपर्यन्तम्) सुनने पर्यन्त (आगच्छामि) आऊँगा (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। इस दो सौ छठवीं वार्तामें बाईस पद हैं। इति गोष्ठीपूर्णभाष्यकारोक्त-वार्ताव्याख्यानम् ॥२०६॥



अब कलिवैरिदास स्वामीजी के और वेदान्ती स्वामीजीके सम्वाद रूप वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ यतिकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०-कलिवैरिदासः वेदान्तिनं नाथमुनेः शठकोपस्य च मध्ये-आचार्याः न ज्ञातव्याः किमित्यपृच्छत्, स च ते बहुत्वान्न ज्ञातुं शक्यन्ते, अनेनास्य ज्ञानस्य फलस्य वा न भङ्गोऽस्ति। तथाहि सन्ताने पितृपितामहप्रपितामहेभ्यः पूर्वाऽन्वयं न जानीमः, अनेन ब्राह्मण्यस्य भङ्गो नास्ति खलु-इत्यवोचत् ॥२०७॥

अर्थ-(कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजीसे (नाथमुनेः) नाथ मुनिस्वामीजीके (च) और (शठकोपस्य) शठकोप स्वामीजीके (मध्ये) मध्य में (आचार्याः) जो आचार्य हैं सो (न) नहीं (ज्ञातव्याः) जानने योग्य हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा (च) और (सः) वह वेदान्ती स्वामीजी (ते) वे आचार्य (बहुत्वात्) बहुत होनेसे (न) नहीं (ज्ञातुम्) जाननेके लिये (शक्यन्ते) समर्थ हो सकते हैं। (अनेन) इस कथनसे (अस्य) इस (ज्ञानस्य) ज्ञानका (वा) अथवा (फलस्य) फलका (भङ्गः) भङ्ग (न) नहीं (अस्ति) है। (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (सन्ताने) अच्छी तरह से विस्तृत होनेपर (पितृपितामहप्रपितामहेभ्यः) पिता पितामह-प्रपितामहों से (पूर्वाभ्यम्) पहलेके वंश को (न) नहीं (जानीमः) हमसब जानते हैं। (अनेन) इस कथनसे (ब्राह्मण्यस्य) ब्राह्मणताका (भङ्गः) भङ्ग (खलु) निश्चय करके (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले। इस दो सौ सातवीं वार्तामें इकतालीस पद हैं। इति यतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२०७॥



अब वेदान्ती स्वामीजीके और प्रपर्यकोइल्वल्लवाचार्यजीके संवाद रूप वार्ताको कहते

हैं कि-

॥ अथ यतिप्रपर्यकोइल्वल्लवाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०-वेदान्तिनं प्रपर्यकोइल्वल्लवाचार्यः सहस्रगीत्यर्थ-
प्रस्तावे यत्युक्तार्थभिन्नं कञ्चनमर्थमुक्त्वा-अयमर्थो न
भवति किमित्यपृच्छत्, स च मदुक्तार्थ एव समीचीन
इति कलिवैरिदासोऽपि वदतीत्यवदत्, स च भवतः शिष्यः
श्लाघते चेत्, तत् किं प्रमाणं भवतीत्यपृच्छत्, वेदान्ती च
तत्र न कोऽपि निर्बन्धः सदाचार्यो वा सच्छिष्यो वा
कस्यचित् प्रत्ययेन भवितव्यमित्यवदत् ॥२०८॥

॥ सहस्रगीतिस्तुतिः ॥

अर्थ- भक्तामृतं विश्वजनानुमोदनं सर्वार्थदं श्रीशठकोपवाङ्मयम्।
सहस्रशाखोपनिषत्समागमं नमाम्यहं द्राविडवेदसागरम् ॥१७३॥

(वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजीसे (प्रपर्यकोइल्वल्लवाचार्यः) प्रपर्यकोइल्वल्लवाचार्यजी ने (सहस्रगीत्यर्थप्रस्तावे) सहस्रगीतिके अर्थके प्रस्तावमें (यत्युक्तार्थभिन्नम्) वेदान्ती स्वामीजीसे कहे अर्थसे भिन्न (कञ्चनम्) किसी (अर्थम्) अर्थको (उक्त्वा) कहकर (अयम्) यह (अर्थः) अर्थ (न) नहीं (भवति) होता है (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने (मदुक्तार्थः) मेरा कहा हुआ अर्थ (एव) निश्चय करके (समीचीनः) अच्छा है (इति) इस प्रकारके (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदासजी (अपि) भी (वदति) कहते हैं (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। (च) और (सः) उस प्रपर्यकोइल्वल्लवाचार्यजी ने (भवतः) आपका (शिष्यः) शिष्य कलिवैरिदासजी (श्लाघते) यदि आपके अर्थकी प्रशंसा करते हैं (चेत्) तो (तत्) वह कलिवैरिदासजीका वाक्य (किम्) क्या (प्रमाणम्) प्रमाण (भवति) हो सकता है (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और (वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी ने (तत्र) उस विषयमें (कः) कोई (अपि) भी (निर्बन्धः) निर्बन्ध (न) नहीं है कि साक्षी (सदाचार्यः) सदाचार्य हो (वा) अथवा (सच्छिष्यः) अच्छा शिष्य हो (वा) अथवा (कस्यचित्) किसीके भी (प्रत्ययेन) साक्षीरूपसे (भवितव्यम्) होना चाहिये (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है।

इस वार्तामें "शिष्यः" यह पद आया है इससे प्रश्न होता है कि शिष्य किसको कहते हैं ? इस प्रश्नका उत्तर देखिये लिखा है कि-

शरीरं वसु विज्ञानं वासः कर्म गुणानसून् । गुर्वर्थं धारयेद्यस्तु स शिष्यो नेतरः स्मृतः ॥ प्रपन्ना० अध्या० २०, श्लो० ३० ॥

शरीर द्रव्य विज्ञान गुण और प्राणोंको जो गुरुके लिये धारण करता है वही शिष्य है, अन्य शिष्य नहीं है ॥ ३०॥ इस दो सौ आठवीं वार्तामें तिरपन पद हैं । इति यतिप्रपर्यकोइल्वल्लवाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २०८ ॥



अब श्रीकृष्णपादस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीभट्टार्यः सेतौ स्नात्वा-आगमनसमये रात्रि-मार्गे-आगत्य तदायासेन कस्यचिद्वृक्षस्याधस्तात् वेदा-न्तिनोऽङ्के मस्तकं निधाय-अस्वपत्, तच्छेषरात्रिं सर्व जङ्घाया विनिमयं चालनं चाकृत्वा स्थित्वेति श्रीकृष्ण-पादोऽवदत् ॥२०९॥

अर्थ-(श्रीभट्टाचार्यः) श्रीपराशरभट्टाचार्य स्वामीजी (सेतौ) सेतुबन्ध तीर्थमें (स्नात्वा) स्नानकर (आगमनसमये) आने के समय (रात्रिमार्गे) रातमें रास्तेमें (आगत्य) आकर (तदायासेन) रास्ता चलनेके परिश्रमसे (कस्यचित्) किसी भी (वृक्षस्य) पेड़के (अधस्तात्) नीचे में (वेदान्तिनः) वेदान्तीस्वामीजीकी (अङ्के) गोद में (मस्तकम्) मस्तक को (निधाय) रखकर (अस्वपत्) सो गये । (तच्छेषरात्रिम्) उस शेष रात्रिको (सर्वम्) सम्पूर्ण (जङ्घायाः) जाँघके (विनिमयम्) अदल बदलको (च) और (चालनम्) चालनको (अकृत्वा) नहीं करके (स्थित्वा) स्थित होकर वेदान्तीस्वामीजी ठहरे (इति) इस प्रकारके (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपादस्वामीजी ने (अवदत्) कहा है । इसमें (सेतौ) यह पद आया है इससे यह प्रश्न होता है कि सेतुबन्ध का आर्ष ग्रन्थोंमें कहाँ पर वर्णन आया है ? इसका उत्तर देखिये लिखा है कि-

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः । वाल्मी० रा० युद्ध० ६, सर्ग० १२५

श्लो० ॥ २० ॥ सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्। एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम् ॥ २१ ॥

महात्मा सागरका यह तीर्थ देखा जाता है ॥ २० ॥ यह तीर्थ सेतुबन्ध इस नामसे संसारमें प्रसिद्ध है, और त्रैलोक्यसे पूजित है, यह परम पवित्र तीर्थ बड़े भारी पातक को नाश करने वाला है ॥ २१ ॥ इस दोसौनौवीं वार्तामें छब्बीस पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २०९ ॥



अब श्रीकृष्णपादस्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीरामानुजः श्रीगोष्ठीपूर्णसमीपे बहुकालं स्थित्वा स्तोत्रं श्रुत्वा शान्तिमकरोत्, ततो गोष्ठीपूर्णः इतः परं तव ज्ञानकार्यं कर्तव्यं नास्ति महापूर्णस्य प्रीत्यर्थं श्रीरङ्गनाथाराधनं कारयेत्युक्त्वा चरमश्लोकार्थमपि तदोपदिश्य प्रेषयामास, स चागत्य श्रीपुष्करणीतीरे स्थितः, तदा श्रीदाशरथिः रामानुजाय विलम्बो जातः तत्पादौ दृष्ट्वा-आगच्छामीत्यागतः, तं दृष्ट्वा रामानुजः क्षणकालात्पूर्वं नागतः मम चरमश्लोकमुक्त्वा तत्सन्तोषेण तिष्ठति गत्वा प्रणम्यागच्छेति तमवोचत्, दाशरथिश्च श्रीगोष्ठीपूर्णं प्रणम्यातिष्ठत्, गोष्ठीपूर्णश्च त्वं रामानुजपरिगृहीत इव दृश्यसे, इत्युक्त्वा तमङ्गीकृत्य चरमश्लोकार्थमुपदिश्यावदत्, त्वया परिहार्य्यास्त्रयोऽवटाः विद्वानभिजातः रामानुजस्य भागिनेय इत्यभिमानाः, एतत् सर्वमनुद्दिश्यमिति ज्ञात्वा रामानुजचरणसम्बन्ध एव उत्तारक इति तच्छ्रुत्वा अत्यन्तहेयं मामपि स्वैः सह एकमालायां

ग्रथितवान्[१०७] इत्यनुसन्धाय[१०८] स्तवन्नेत्रजलो[१०९] रामानुजचरण-[११०]
समीपमागत[१११] इति[११२] श्रीकृष्णपादोऽवदत्[११३] ॥ २१० ॥[११४][११५]

अर्थ- (श्रीरामानुजः) श्रीरामानुजस्वामीजी ने (श्रीगोष्ठीपूर्णसमीपे) श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीजीके पासमें (बहुकालम्) बहुत दिनतक (स्थित्वा) रहकर (स्तोत्रम्) आलवन्दारादिस्तोत्रको (श्रुत्वा) सुनकर (शान्तिम्) अपनीआत्माकी शान्तिको (अकरोत्) किया। (ततः) उसके बाद (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने (इतः) इससे (परम्) परे (तव) तेरा (ज्ञानकार्यम्) ज्ञानका कार्य (कर्तव्यम्) करने योग्य (न) नहीं (अस्ति) है। (महापूर्णस्य) महापूर्ण स्वामीजीकी (प्रीत्यर्थम्) प्रसन्नताके लिये (श्रीरङ्गनाथाराधनम्) श्रीरङ्गनाथभगवान्के आराधन (कारय) करवावो (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कहकर (चरमश्लोकार्थम्) चरमश्लोकके अर्थको (अपि) भी (तदा) तब (उपदिश्य) उपदेश देकर (प्रेषयामास) भेज दिया। (च) और (सः) वे रामानुजस्वामीजी (आगत्य) श्रीरङ्गजीमें आकर (श्रीपुष्करणीतीरे) श्रीपुष्करणीके तीरपर (स्थितः) ठहर गये। (तदा) तब (श्रीदाशरथिः) श्रीदाशरथि स्वामीजी (रामानुजस्य) श्रीरामानुज स्वामीजीके (विलम्बः) यहाँ आनेमें देर (जातः) उत्पन्न हो गई है इस कारणसे (तत्पादौ) श्रीभाष्यकारके उन श्रीचरणोंको (दृष्ट्वा) देखकर (आगच्छामि) आता हूँ (इति) इस प्रकारके कह कर दाशरथि स्वामीजी (आगतः) श्रीभाष्यकारके समीपमें आ गये। (रामानुजः) रामानुज स्वामीजी ने (तम्) उस दाशरथि स्वामीजीको (दृष्ट्वा) देखकर (क्षणकालात्) एक क्षण समय से (पूर्वम्) पहले (न) नहीं (आगतः) तुम आये हो। (मम) मुझे (चरमश्लोकम्) चरमश्लोकके अर्थको (उक्त्वा) कहकर (तत्सन्तोषेण) उसके सन्तोषसे (तिष्ठति) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ठहरे हैं। इससे (गत्वा) श्रीस्वामीजीकी सन्निधि में जाकर (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (आगच्छ) तब मेरे पासमें आवो (इति) इस प्रकारके (तम्) उस दाशरथि स्वामीजीसे (अवोचत्) कहा (च) और (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजी (श्रीगोष्ठीपूर्णम्) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजीको (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (अतिष्ठत्) वहाँ पर ठहर गये। (च) और (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी (त्वम्) तुम (रामानुजपरिगृहीतः) श्रीभाष्यकार करके परिगृहीतके (इव) समान (दृश्यसे) देखे जाते हो (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कहकर (तम्) उस दाशरथि स्वामीजीको (अङ्गीकृत्य) अङ्गीकार करके (चरमश्लोकार्थम्) चरमश्लोक के अर्थको (उपदिश्य) उपदेश देकर (अवदत्) बोले कि (त्वया) तेरे (परिहार्याः) अच्छे प्रकारसे छोड़ने योग्य (त्रयः) तीन ठो (अवटाः) अवट हैं। वे ये अधोलिखित हैं। उसमें विद्वान्) मैं विद्वान् हूँ तथा (अभिजातः) सुन्दरकुल में जन्म लिया हूँ और (रामानुजस्य)

श्रीभाष्यकार का (भागिनेयः) मैं भागिनेय हूँ (इति) ये तीनों (अभिमानाः) अभिमान हैं। (एतत्) ये पूर्वोक्त अभिमान (सर्वम्) सब (अनुद्दिश्यम्) उद्देश्य करने योग्य नहीं हैं (इति) इस प्रकारके (ज्ञात्वा) समझकर (रामानुजचरणसम्बन्धः) श्रीभाष्यकार के श्रीचरणोंका सम्बन्ध (एव) निश्चय करक (उत्तारकः) संसार-सागरसे पार करनेवाला है (इति) इस प्रकारके (तत्) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजीके उस वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर दाशरथि स्वामीजी (अत्यन्तहेयम्) अत्यन्त परित्याग करने योग्य (माम्) मुझको (अपि) भी (स्वैः) अपने जनोंके (सह) साथ (एकमालायाम्) एक मालामें (ग्रथितवान्) गूंथदिये हैं (इति) इस प्रकारके (अनुसन्धाय) अनुसन्धान कर (स्रवन्नेत्रजलः) आँखसे लोर गिरते हुए (रामानुजचरणसमीपम्) रामानुज स्वामीजीके श्रीचरणोंके समीपमें (आगतः) आ गये। (इति) इस प्रकारके (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। इस दो सौ दसवीं वार्तामें एकसौ पन्द्रह पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २१० ॥

अब श्रीकृष्णपाद स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीभाष्यकारो गोदात्रिंशद्रथासु-अष्टादशतम-पाशुरमनुसन्दधानः महापूर्णस्य गृहद्वारं प्राप्यान्तिमपाद-मनुसन्दधत् अन्तः प्रवेष्टुमुद्युक्तस्तदा महापूर्णस्य पुत्रीं कपाटमुद्घाट्य निर्गच्छन्तीं साष्टाङ्गं प्रणम्य स्थितः-तं दृष्ट्वा स्वहस्तौ पीडयन्ती सा-अन्तः प्रविवेश, तां दृष्ट्वा महापूर्णः किमिदं पुत्रीत्यपृच्छत्, सा च मां भाष्यकारः प्राणमदित्यवदत्, महापूर्णस्ततस्त्वं माभैषीरित्युक्त्वा अन्तः प्रविष्टं भाष्यकारं नन्विदानीं गोदात्रिंशद्रथासु-अष्टदशतमपाशुरमनुसन्दधाति किमित्यपृच्छत्, इति श्री-कृष्णपादोऽवदत् ॥ २११ ॥

॥ गोदादेवीस्तुतिः ॥

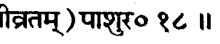
अर्थ-नीलातुङ्गस्तनगिरितटीसुप्तमुद्बोध्यकृष्णं पारार्थ्यं स्वंश्रुति- शतशिरसिसिद्धमध्यापयन्ती। स्वोच्छिष्टायां स्रजि निगलितं या बलात्कृत्य भुङ्क्ते गोदा तस्यै नम इदमिदं भूय एवास्तु भूयः ॥ १७४ ॥

(श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (गोदात्रिंशद्गाथाम्) श्रीगोदादेवीजीकी तीस गाथाओं में (अष्टशतमपाशुरम्) अठारहवीं गाथाको (अनुसन्दधानः) अनुसन्धान करते हुए (महापूर्णस्य) महापूर्णस्वामीजीके (गृहद्वारम्) घरके द्वारको (प्राप्य) पाकर (अन्तिमपादम्) "तिरुप्पावै" प्रबन्धके अठारहवीं गाथाके आखिरके पादको (अनुसन्दधत्) अनुसन्धान करते हुए (अन्तः) महापूर्ण स्वामीजीके घरके भीतरमें (प्रवेष्टुम्) प्रवेश करनेके लिये (उद्युक्तः) तैयार हुए। (तदा) तब (कपाटम्) केवाड़को (उद्घाट्य) खोलकर (निर्गच्छन्तीम्) निकलती हुई (महापूर्णस्य) महापूर्ण स्वामीजीकी (पुत्रीम्) लड़की अतुलायी देवीजी को देखकर (साष्टाङ्गम्) साष्टाङ्ग (प्रणम्य) प्रणाम करके (स्थितः) खड़े हो गये। और (सा) वह महापूर्णस्वामीजीकी पुत्री अतुलाईदेवी (तम्) उस श्रीभाष्यकारको (दृष्ट्वा) देखकर (स्वहस्तौ) अपने दोनों हाथोंको (पीडयन्ती) पीडित करती हुई (अन्तः) घरके भीतर (प्रविवेश) बैठ गयी। (महापूर्णः) महापूर्णस्वामीजी ने (ताम्) उस अपनी पुत्रीको (दृष्ट्वा) देखकर (इदम्) यह (किम्) क्या (पुत्री) बच्ची है (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) अपनी पुत्री से पूछा (च) और (सा) वह महापूर्णस्वामीजीकी पुत्री (माम्) मुझको (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (प्राणमत्) साष्टाङ्ग प्रणाम किये हैं (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोली (ततः) उसके बाद (महापूर्णः) महापूर्णस्वामीजी (त्वम्) तुम (माभैषीः) मतडरो (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कहकर (अन्तः) घरके भीतरमें (प्रविष्टम्) प्रवेश किये हुए (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार को (ननु) ये निश्चय करके (इदानीम्) इस समयमें (गोदात्रिंशद्गाथासु) श्रीगोदादेवीजीकी तीस गाथाओं में (अष्टादशतमपाशुरम्) अठारहवीं गाथाको (अनुसन्दधाति) आप अनुसन्धान करते हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछे हैं। (इति) इस प्रकार के (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्ण पादस्वामीजी (अवदत्) कहे हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि वह अठारहवीं गाथा कौनसी है जिसको श्रीभाष्यकार अनुसन्धान करते थे ? इस प्रश्नका उत्तर देखिये लिखा है कि-

॥ प्रवहन्मदजलगजा धावद्भुजवलयवन्नन्द गोपालस्वस्त्रीये नीले गन्धपरिमलितकेशे द्वारमुद्घाट्यागत्या सर्वत्र कुक्कुटाह्वयन्ति भो माधवीमण्डपे अनेकवारं कोकिलगणाः कूजन्ति भो कन्तुकपूर्णाङ्गुले त्वान्मातुलयेनाम गातुं रक्ततामरसकरेण गुणपूर्णवलयेषु शब्दायमानेष्वागत्य उद्घाट्य सन्तुष्य भो

जानीतास्मच्छन्दः ॥ तिरुप्पावै (श्रीव्रतम्) पाशुर० १८ ॥

इस दोसौ ग्यारहवीं वार्तामें तिरसठ पद हैं । इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥ २११॥



अब कृष्णपादस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–नंवितिरवल्लधिवल्लनारदासः-एकवारं मधुर-कविप्रबन्धमनुसन्धाय "मधुरकविनोक्ते वाक्ये विश्वास-वतां स्थानं वैकुण्ठं पश्यत" इति चरमपाशुरार्थमुक्तवान्, तदा पार्श्वे स्थितः श्रीवैष्णवः लीलाविभूतौ कश्चन-अमु-मर्थं श्रद्धापूर्वमनुसन्दधाति चेत् तत् स्थानं कथं नित्य-विभूतिर्भवेदित्यपृच्छत्, स च तच्छ्रुणु, कूरेशस्य पुत्रस्या-वतरणानन्तरं मध्यभित्तिं दूरीकृत्य विभूतिद्वयमपि-एकीकृतमित्यवोचत्, इति श्रीकृष्णपादोऽवदत् ॥ २१२ ॥

॥ मधुरकविस्तुतिः॥

अर्थ- अविदितविषयान्तरश्शठारेरुपनिषदामुपगानमात्रभोगः ।

अपि च गुणवशात्तदेकशेषी मधुरकविर्हृदये ममाविरस्तु ॥ १७५ ॥

(नंवितिरवल्लधिवल्लनारदासः) नंवितिरवल्लधिवल्लनारदासजी ने (एकवारम्) एकबार (मधुरकविप्रबन्धम्) मधुरकविस्वामीजीके प्रबन्धको अर्थात् कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु "ग्रन्थिमत्सूक्ष्महस्वरज्जु" नामवाले प्रबन्धको (अनुसन्धाय) अनुसन्धानकर (मधुरकविना) मधुरकवि स्वामीजीसे (उक्ते) कहे हुए (वाक्ये) वाक्य में (विश्वासवताम्) विश्वास करने वाले भागवतोंके (स्थानम्) स्थान (वैकुण्ठम्) वैकुण्ठको (पश्यत) तुम सब देखो (इति) इस (चरमपाशुरार्थम्) कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु प्रबन्ध के अन्तिम ग्यारहवें पाशुरके अर्थको (उक्तवान्) कहा । (तदा) तब (पार्श्वे) पार्श्वमें (स्थितः) ठहरे हुए (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव ने (लीलाविभूतौ) लीलाविभूतिमें (कश्चन) कोई पुरुष (अमुम्) इस पूर्वोक्त (अर्थम्) अर्थको यदि (श्रद्धापूर्वम्) श्रद्धापूर्वक (अनुसन्दधाति) अनुसन्धान करता है (चेत्) तो (तत्) वह वैकुण्ठ (स्थानम्) स्थान (कथम्) कैसे

(नित्यविभूतिः) नित्यविभूति (भवेत्) हो सकता है (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सः) उस नवितिरवल्लधिवल्ल नारदासजी ने कहा कि (तत्) जो तुम पूछे हो उसका उत्तर (शृणु) सुनो (कूरेशस्य) कूरेश स्वामीजीके (पुत्रस्य) पुत्र पराशर भट्टाचार्य स्वामीजीके (अवतरणानन्तरम्) अवतार होनेके बाद (मध्यभित्तिम्) लीलाविभूति और नित्यविभूति इन दोनों विभूतियोंके बीच के भित्तको (दूरीकृत्य) ज्ञानवैराग्यविशिष्टभक्तिके द्वारा दूर हटाकर (विभूतिद्वयम्) लीलाविभूति और त्रिपद्विभूति इन दोनों विभूतियों को (अपि) भी (एकीकृतम्) एक कर दिये हैं (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले। (इति) इस प्रकारके (श्रीकृष्णपादः) श्रीकृष्णपादस्वामीजी (अवदत्) बोले। इस वार्तामें ॥ **मधुरकविनोक्ते वाक्ये विश्वासवतां स्थानं वैकुण्ठं पश्यत** ॥ यह वाक्य **कण्णनुण्शिरुत्ताम्बु अर्थात् "ग्रन्थिमत्सूक्ष्महृस्वरज्जुः"** इस प्रबन्धके ग्यारहवें पाशुर का प्रतीक है। इससे यहाँ पर समस्त इस पाशुरको लिखकर अर्थ लिखता हूँ ॥ **भक्तस्य स्वमाश्रितानां सर्वेषां स्नेहवतः दक्षिणकुरुकापुरीनगरपूर्ण स्नेहवता मधुरकविनोक्ते वाक्ये विश्वासवतां स्थानं वैकुण्ठं पश्यत ॥ कण्णनुण् पाशु० ११** ॥ दक्षिणकुरुकापुरी नगरके पूर्ण स्नेह वाले भक्तके और अपने समस्त आश्रित जीवों के ऊपर स्नेह वाले श्रीमधुर कवि स्वामीजीसे कहे हुए वाक्यमें विश्वास करनेवालों के स्थान वैकुण्ठको तुम सब देखो ॥११॥ इस दो सौ बारहवीं वार्ता में उल्लास ५ हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २१२ ॥

अब यामुनाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ यामुनाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीयामुनाचार्यशिष्यावुभौ श्रीवैष्णवौ-अन्योन्यविश्लेषभीरू एकदा कावेरीगतौ तयोरेकः प्रथमतो निर्गत्य-आगतः, तदा यामुनाचार्योक्ता वार्ता कुरय्या अवस्था जाता चेत् आत्मज्ञानं जातमिति यामुनाचार्यः ॥ २१३ ॥

॥ यामुनाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- स चैवमात्मनो रीत्या सर्वं सन्त्यज्य दूरतः।
संन्यासं विदधे सम्यग्यामुनाचार्यो महायशाः ॥ १७६ ॥

(श्रीयामुनाचार्यशिष्यौ) श्रीयमुनाचार्य स्वामीजीके शिष्य (उभौ) दोठो (श्रीवैष्णवौ) श्रीवैष्णव (अन्योन्यविश्लेषभीरू) आपसके वियोगमें डरनेवाले वे दोनों साथियोंमें से (एकः) एक साथी (प्रथमतः) पहले ही (निर्गत्य) कावेरी नदी के तटसे निकलकर (आगतः) अपने स्थान पर आ गया (तदा) तब (यामुनाचार्योक्ता) यामुनाचार्य स्वामीजीसे कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (कुर्याः) कुररी पक्षी की (अवस्था) अवस्था यदि (जाता) उत्पन्न हो गई (चेत्) तो (आत्मज्ञानम्) आत्मज्ञान (जातम्) उत्पन्न हो गया (इति) इस प्रकारके (यामुनाचार्यः) यमुनाचार्य स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ तेरहवीं वार्तामें बाईस पद हैं। इति यामुनाचार्योक्तावार्ता व्याख्यानम् ॥ २१३ ॥

अब तैववारीयाण्डान् स्वामीजी की और यमुनाचार्य स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ यामुनाचार्यतैववारीयाण्डानार्योक्ता वार्ता ॥

मू० – श्रीअनन्तपुरगमनसमये तैववारीयाण्डान् आचार्यमठरक्षणार्थं तत्र विसृज्य-अनन्तपुरं गच्छन् मध्ये समीपे स्थितान् श्रीवैष्णवान् दृष्ट्वा कुरुहावलीअप्य-नित्यनेनास्माकं दतां पत्रिकामानयेति-उक्त्वा तैरानीतां पत्रिकां दृष्ट्वा-अयमेव पासः, दिवसश्चायमेव, अस्माक-मेकं पुष्पकविमानं दुर्लभं जातमिति-अतीव शोचित्वा-आर्तः पुनरागच्छत्, स्वविश्लेषासहिष्णुतया तस्य शरीरे शोथोऽभवत्, वैद्यास्तं दृष्ट्वा-अस्य विषयस्पृहया शोथो-जात इत्यवदन्, तत्रत्यास्तव कस्मिन् विषये स्पृहेत्य-पृच्छन्, सोऽपि यामुनाचार्यातिरिक्तो मम को वा विषयो-ऽस्तीत्यवदत्, वैद्यास्तर्हि-अमुं तत्रैव नयतेत्यवदन्, ततोऽमुं शिविकामारोप्य तत्रानयन् मार्गे दिने दिने तस्य शरीरे शोथोऽपि निवृत्तः स्वयमेव गन्तुं शक्तो-ऽभवत् ॥ २१४ ॥

॥ यामुनाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- सतैः समेतो भगवत्परायणैः श्रीवैष्णवैर्यामुनदेशिकेन्द्रः ।
श्रीराममिश्रानुमतैकचित्तः श्रीरङ्गआस्तेऽखिललोकरक्षः ॥ १७७ ॥

(श्रीअनन्तपुरगमनसमये) श्रीअनन्तपुरमें जाने के समयमें (तैववारीयाण्डान्) तैववारीयाण्डान् स्वामीजी (आचार्यमठरक्षणार्थम्) यामुनाचार्य स्वामीजीके मठकी रक्षा करने के लिये (तत्र) उस श्रीरंगक्षेत्रमें (विसृज्य) अपने संबन्धियोंको छोड़कर (अनन्तपुरम्) अनन्त शयन भगवान्के पुर में (गच्छन्) जाते हुए (मध्ये) मध्यमें (समीपे) पासमें (स्थितान्) ठहरे हुए (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवोंको (दृष्ट्वा) देखकर (कुरुहावलीअप्यन्) कुरुहावली अप्यन् (इति) इस (अनेन) महात्मा करके (अस्माकम्) हम सबोंकी (दताम्)॰ दी हुई (पत्रिकाम्) चिट्ठीको (आनय) लाओ (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कहकर (तैः) उन वैष्णवोंसे (आनीताम्) लायी हुई (पत्रिकाम्) चिट्ठी को (दृष्ट्वा) देखकर (अयम्) यही (एव) निश्चय करके (मासः) महीना है (च) और (अयम्) यही (एव) निश्चय करके (दिवसः) दिन है (अस्माकम्) हम सबोंको (एकम्) एक (पुष्पकविमानम्) पुष्पक विमान (दुर्लभम्) दुर्लभ (जातम्) हो गया है (इति) इस प्रकारके (अति) अत्यन्त के (इव) समान (शोचित्वा) शोककर (आर्तः) आर्त हो (पुनः) फिरसे (आगच्छत्) श्रीरंगजीमें आ गये। और (स्वविश्लेषासहिष्णुतया) अपने आचार्य यामुनाचार्यके विश्लेष को नहीं सहन करनेके कारणसे (तस्य) उस तैववारीयाण्डान् महात्माके (शरीरे) देहमें (शोथः) शोथरोग (अभवत्) हो गया। (वैद्याः) वैद्य सब (तम्) उस गुरुभक्त तैववारीयाण्डान् को (दृष्ट्वा) देखकर (अस्य) इस तैववारीयाण्डान् को (विषयस्पृहया) विषयकी चाहनासे (शोथः) शोथ रोग (जातः) उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकारके (अवदन्) कहे हैं। (तत्रत्याः) वहाँपर रहनेवाले मनुष्यों (तव) तुम्हारी (कस्मिन्) किस (विषये) विषयमें (स्पृहा) चाहना है (इति) इस प्रकारके (अपृच्छन्) पूछा है। (सः) वह आचार्याभिमानी तैववारीयाण्डान्जी ने (अपि) भी (यामुनाचार्यातिरिक्तः) यामुनाचार्यस्वामीजीसे अन्य (मम) मेरा (कः) कौन (वा) सा (विषयः) विषय (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। (तर्हि) तब तो (वैद्याः) वैद्य सबों (अमुम्) इस शोथरोगग्रस्त गुरुभक्तको (तत्र) वहाँ यामुनाचार्यस्वामीजीके समीपमें (एव) निश्चय करके (नयत) तुम सब ले चलो (इति) इस प्रकारके (अवदन्) कहा है। (ततः) इसके बाद (अमुम्) इस तैववारीयाण्डान्को (शिविकाम्) पालकी में (आरोप्य) रखकर (तत्र) वहाँपर (आनयन्) वे सब ले आये। (मार्गे) रास्तेमें (दिने) रोज (दिने) रोज (तस्य) तैववारीयाण्डान्के (शरीरे) शरीरका (शोथः)

शोथरोग (अपि) भी (निवृत्तः) निवृत्त हो गया। और वह गुरुभक्त तैववारीयाण्डान् महात्मा (स्वयम्) अपने से (एव) निश्चय करके (गन्तुम्) गमन करनेके लिये (शक्तः) समर्थ (अभवत्) हो गये हैं॥ शमिति॥



मू०—यामुनाचार्य श्रीअनन्तपुरं सेवित्वा पुन रागच्छन्तं ससाष्टाङ्गं प्रणम्य पुनरुत्थितुमशक्तोऽभवत्, यामुनाचार्यः भगवतः स्वतन्त्रत्वात् शूरत्वाच्च तदुक्तस्थले भरतोऽतिष्ठत्, मम परतन्त्रत्वादशूरत्वाच्च मदुक्तस्थले त्वनतिष्ठन्नागत इत्यवदत्, तच्छ्रुत्वा स अहमागत्य स्वरूप-हानिं प्राप्नवमिति तथैवातिष्ठत्, मां स्वतन्त्रं शूरं च कृत्वा उत्थापयितुमिच्छति किमिति यामुनाचार्योऽवदत्, उक्त-स्थले-अनवस्थानेन स्वरूपहानिर्जाता, इयमपि-एका स्वरूपहानिरिति ससंभ्रममुदतिष्ठत्, यामुनाचार्यः-अय मप्येकोऽधिकारिविशेष इत्यतीवप्रसन्न अतीव क्लेशित इति कृपां कृत्वा-अयं श्रीअनन्तपुरगोपुरो दृश्यते, तत्र पद्मनाभं प्रणम्यागच्छेत्यवदत्, स च मम श्रीअनन्तपुरं संमुखमागतमित्युक्त्वा स्वाचार्यस्य यामुनाचार्यस्य चरणौ सेवमानो निवृत्य-आगच्छत्॥ २१५॥

अर्थ-(श्रीअनन्तपुरम्) श्रीअनन्त शयन भगवान् को (सेवित्वा) सेवनकर (पुनः) फिर से (आगच्छन्तम्) श्रीरंगक्षेत्रमें आते हुए (यामुनाचार्यम्) यामुनाचार्यस्वामीजीको (ससाष्टाङ्गम्) साष्टाङ्गके सहित (प्रणम्य) प्रणाम करके वह गुरुभक्त तैववारीयाण्डान् महात्मा (पुनः) फिरसे (उत्थितुम्) उठनेके लिय (अशक्तः) असमर्थ (अभवत्) हो गये। (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्यस्वामीजी (भगवतः) भगवान्को (स्वतन्त्रत्वात्) स्वतंत्र होनेसे (च) और (शूरत्वात्) शूर होने से (तदुक्तस्थले) भगवान् रामभद्रसे कहे हुए स्थान पर (भरतः)

श्रीभरतसूरिजी (अतिष्ठत्) ठहरे थे। और (मम) मुझे (परतन्त्रत्वात्) परतन्त्र होनेसे (च) तथा (अशूरत्वात्) शूर नहीं होनेसे (मदुक्तस्थले) मुझसे कहे हुए स्थान पर (तु) तो (अनतिष्ठम्) नहीं ठहरते हुए (आगतः) तुम यहाँ पर चले आये हो (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले। (तत्) यामुनाचार्यस्वामीजी के उस वाक्यकोक (श्रुत्वा) सुनकर (सः) वह तैववारीयाण्डान् महात्मा (अहम्) मैंने (आगत्य) आकर (स्वरूपहानिम्) स्वरूपकी हानिको (प्रान्पवम्) प्राप्त किया (इति) इसप्रकारके (तथा) वैसे ही साष्टाङ्ग किये हुए (अतिष्ठत्) ठहर गये। (माम्) मुझको (स्वतन्त्रम्) स्वतंत्र (च) और (शूरम्) शूर (कृत्वा) बनाकर (उत्थापियतुम्) उठवाने के लिये (इच्छति) इच्छा करते हो (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (यामुनाचार्यः) यामुनायार्च स्वामीजी ने (अवदत्) कहा हैं। (उक्तस्थले) यामुनाचार्यस्वामीजीसे कहे हुए स्थान श्रीरङ्गजी में (अनवस्थानेन) नहीं रहनेसे (स्वरूपहानिः) स्वरूपकी हानि (जाता) उत्पन्न हो गई (इयम्) यह साष्टाङ्ग करके नहीं उठना (अपि) भी (एका) एक (स्वरूपहानिः) स्वरूपकी हानि है (इति) इस प्रकारके सोच कर (ससंभ्रमम्) संभ्रमके साथ वह तैववारीयाण्डान् (उदतिष्ठत्) उठ गये। तब (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्यस्वीजी (अयम्) यह तैववारीयाण्डान् (अपि) भी (एकः) एक (अधिकारिविशेषः) अधिकारी विशेष हैं (इति) इस प्रकारके (अति) अत्यन्त के (इव) समान (प्रसन्नः) प्रसन्न हो गये। और (अति) अत्यन्त (क्लेशितः) दुःखितके (एव) समान तैववारीयाण्डान् हैं (इति) इस कारणसे यामुनाचार्यस्वामीजी ने उस गुरुभक्त के ऊपर (कृपाम्) कृपाको (कृत्वा) करके (अयम्) यह (अनन्तपुरगोपुरः) अनन्तपुरका गोपुर (दृश्यते) दिखाई देता है। तत्र उस अनन्तपुरमें (पद्मनाभं) पद्मनाभ भगवान् को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणामकर (आगच्छ) चले आवो (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है (च) और (सः) वह तैववारीयाण्डान् (मम) मेरा (श्रीअनन्तपुरम्) श्रीअनन्तपुर (संमुखम्) सामने (आगतम्) आ गया है (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कह कर (स्वाचार्यस्य) अपने आचार्य (यामुनाचार्यस्य) यमुनाचार्य स्वामीजीके (चरणौ) श्रीचरणोंकी सेवा करते हुए तैववारीयाण्डान् (निवृत्य) श्रीअनन्त शयनके पास से बिना पद्मनाभ भगवान्के दर्शन किये लौटकर (आगच्छत्) यामुनाचार्य स्वामीजी के साथ चले आये। यहाँपर कुछ लोग यह कहते हैं कि तैववारीयाण्डान् महात्मा बिना पद्मनाभ भगवान्को दर्शन किये जो लौट आये हैं सो ठीक नहीं किये हैं। इस विषयमें इस अकिञ्चनका यह कहना है कि आचार्याभिमानको प्रकाश करने के लिये प्रातः स्मरणीय जो तैववारीयाण्डान् स्वामीजी ने किया है सो परमवैदिक होनेसे अत्यन्त ठीक हो। इस विषयमें कृपया

अधोलिखित प्रमाणोंको सज्जन लोग अवलोकन करें। **॥ गुरुः साक्षादादिनारायणः पुरुषः ॥ त्रिपाद्विभू० अ० ८ ॥** गुरु साक्षात् आदि नारायण पुरुष हैं ॥ ८ ॥ और ब्रह्मविद्योपनिषद्में लिखा है कि- **गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः ॥ ब्रह्मवि० श्रु० ३१ ॥** गुरु ही साक्षात् नारायण हैं अन्य नहीं ऐसी श्रुति कहती है ॥३१॥ तथा अद्वयतारकोपनिषद् में लिखा है कि-

॥ गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परागतिः । गुरुरेव पराविद्या गुरुरेव परायणम् ॥ गुरुरेव पराकाष्ठ गुरुरेव परं धनम् । यस्मात्तदुपदेष्टासौ तस्माद् गुरुतरो गुरुः ॥ अद्वयतार० ॥

गुरु ही परब्रह्म हैं, तथा गुरु ही परागति हैं, गुरु ही पराविद्या हैं, और गुरु ही श्रेष्ठ स्थान हैं ॥ तथा गुरु ही पराकाष्ठा हैं और गुरु ही श्रेष्ठ धन हैं क्योंकि तत्त्वज्ञानको उपदेश देनेवाले वे हैं इससे गुरु सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ और योगशिखोपनिषद् में लिखा है कि-

॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवः सदाच्युतः । न गुरोरधिकः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ योगशि० अ० ५, श्रु० ५६ ॥

गुरु ब्रह्मा हैं गुरु विष्णु हैं गुरुदेव सदा अच्युत हैं तीनों लोक में गुरुसे बड़ा कोई नहीं है ॥ ५६ ॥ तथा मनुस्मृति में लिखा है कि-**आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः ॥ मनु० अ० २, श्लो० २२६ ॥** आचार्य ब्रह्मकी मूर्ति हैं ॥ २२६ ॥ और श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि-

॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ श्रीमद्भाग० स्कं० ११, अ० १७, श्लो० २७ ॥

आचार्य को परमात्मा समझे, कभी भी अपमान न करे, और मनुष्य बुद्धि से असूया न करे, क्योंकि सर्वदेवमय गुरु हैं ॥ २७ ॥ और देखिये अन्यत्र भी लिखा है कि-

॥ सुलभं स्वगुरुं त्यक्त्वा दुर्लभं य उपासते । लब्धं त्यक्त्वा धनं मूढो गुप्तमन्वेषते क्षितौ ॥ जो मनुष्य सुलभ अपने गुरुको छोड़कर दुलर्भ परमात्माकी उपासना करता है वह मूढ़ हाथ में मिले हुए धन को छोड़कर भूमिमें गड़े हुए धन की अपेक्षा करता है ।

॥ चक्षुर्गम्यं गुरुंत्यक्त्वा शास्त्रगम्यं तु यः स्मरेत् । हस्तस्थमुदकं त्यक्त्वा घनस्थं सोऽभिवाञ्छति ॥

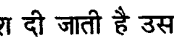
जो मनुष्य नेत्र से देखने योग्य गुरुको छोड़कर शास्त्र से जानने योग्य परमात्मा को स्मरण करता है वह हाथ में मिले हुए जलको छोड़कर मेघ के जल की अपेक्षा करता है ।

॥ बालमूकजडान्धाश्च पंगवोवधिरस्तथा । सदाचार्येण संदृष्टाः प्राप्नुवन्ति परांगतिम् ॥

बालक गूँगा जड़ अन्धा बहरा ये सब सदाचार्य के देखने से परांगति को प्राप्त करते हैं ॥ और भी लिखा है कि-

॥ येनैव गुरुणा यस्मै न्यासविद्या प्रदीयते । तस्य वैकुण्ठदुग्धाब्धिद्वारकाः सर्व एव सः ॥ प्रपन्नामृ० अ० ११४, श्लो० ४६ ॥

जिस गुरु से जिस पुरुष के लिये प्रपत्ति उपदेश दी जाती है उस पुरुष के वही उपदेश देनेवाला गुरु वैकुण्ठ तथा क्षीरसागर और द्वारका तथा सब दिव्य देश हैं ॥ ४६ ॥ यहाँ पर ग्रन्थ के विस्तार के भय से अधिक प्रमाणों को मैं नहीं लिखता हूँ । जिसको अधिक जानना हो वह मेरी बनाई हुई श्रीवचनभूषण की "चिन्तामणि" टीका के अन्तिम प्रकरण में देख लें । इस दो सौ पन्द्रहवीं वार्ता में दो सौ दो पद हैं । इति यामुनाचार्यतैववारीयाण्डानार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २१५ ॥



अब श्रीशैलपूर्णस्वामीजी के और गोविन्दाचार्यस्वामीजी के सम्वादरूपवार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीशैलपूर्णगोविन्दाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०-गोविन्दाचार्य्यं श्रीशैलपूर्णगृहे सकलविधकैंकर्याणि कुर्वन्तं दृष्ट्वा भाष्यकारोऽतीव प्रीतोऽभवत्, तदैकदा श्रीशैलपूर्णस्य शय्यां कृत्वा गोविन्दार्य्यः स्वयमशेत, एतद् दृष्ट्वा भाष्यकारः-एतदभिप्रायं दृष्ट्वा-एतत् क्रूरमिति श्रीशैलपूर्णं प्रत्यवदत्, स च गोविन्दाचार्यमाहूय ननु त्वं मदर्थायां कृतायां शय्यायामशेथा इत्यशृणवम्, अस्य किं फलमित्यपृच्छत्, गोविन्दाचार्यो नरकमस्य फलमित्यवदत्, स चैवं जानन् किमित्यकरोरित्यपृच्छत्, स च भवच्छ्रीविग्रहे किञ्चित् पीड्यं

६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५,७६
विना भवान् स्वपिति चेत् मम नरकमप्युचितमेवेत्य
७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४
वदत्, एतच्छ्रुत्वा भाष्यकारः-अयमपि कश्चित् प्रतिपत्ति-
८५ ८६ ८७ ८८ ८९
विशेष इत्यतीवप्रीतोऽभवत् ॥ २१६ ॥

॥ श्रीशैलपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीशैलपूर्णसदने भुक्त्वा लक्ष्मणदेशिकः ।
शृण्वन् रामायणं तस्य सन्निधौ वत्सरं स्थितः ॥ १७८ ॥

(श्रीशैलपूर्णगृहे) श्रीशैलपूर्णस्वामीजीके घरमें (सकलविधकैंकर्याणि) सब प्रकार के कैंकर्योंको (कुर्वन्तम्) करते हुए (गोविन्दाचार्यम्) गोविन्दाचार्यस्वामीजी को (दृष्ट्वा) देखकर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (अति) अत्यन्त (प्रीतः) प्रसन्न के (इव) समान (अभवत्) हो गये। (तदा) तब (एकदा) एक समय में (श्रीशैलपूर्णस्य) श्रीशैलपूर्णस्वामीजीके सोने के लिये (शय्याम्) पलङ्कको (कृत्वा) सजाकर (गोविन्दाचार्यः) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी ने (स्वयम्) अपने ही (अशेत) शयन किया। (एतत्) गोविन्दाचार्य स्वामीजीको श्रीशैलपूर्ण स्वामीजी की शय्या पर सोये हुए (दृष्ट्वा) देखकर (भाष्यकारः) भाष्यकार (एतदभिप्रायम्) इस गोविन्दाचार्य स्वामीजी के अभिप्राय को (दृष्ट्वा) देखकर (एतत्) यह (क्रूरम्) क्रूर है (इति) इस कारण से (श्रीशैलपूर्णम्) श्रीशैलपूर्ण स्वामीजी के (प्रति) प्रति (अवदत्) उस सम्पूर्ण गोविन्दाचार्य स्वामीजी के वृतान्त को कह दिये। (च) और (सः) वह श्रीशैलपूर्ण स्वामीजी (गोविन्दाचार्यम्) गोविन्दाचार्य स्वामीजी को (आहूय) बुलाकर (ननु) निश्चय करके (त्वम्) तुम (मदर्थायाम्) मेरे शयन करने के लिये (कृतायाम्) सजायी हुई (शय्याम्) शय्या पर (अशेथाः) शयन किये हो (इति) इस प्रकार के (अशृणवम्) मैं सुना हूँ। (अस्य) जो तुम मेरे पलङ्क पर सोये हो इसका (किम्) क्या (फलम्) फल है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) श्रीशैलपूर्ण स्वामीजी ने गोविन्दाचार्य स्वामीजी से पूछा है। और (गोविन्दाचार्य्यः) गोविन्दचार्य स्वामीजी (नरकम्) नरक (अस्य) इसका (फलम्) फल है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले (च) और (सः) वह श्रीशैलपूर्णस्वामीजी (एवम्) इस प्रकार के (जानन्) जानते हुए (किम्) क्यों (इति) इस प्रकार के (अकरोः) तुमने किया (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (सः) वह गोविन्दाचार्य स्वामीजी (भवच्छ्रीविग्रहे) आपके श्रीमद्भलमय विग्रह में (किञ्चित्) कुछ भी (पीड्यम्) पीडा करने योग्य वस्तु के (विना) बिना (भवान्) आप यदि (स्वपिति) शयन करते हैं (चेत्) तो (मम) मुझे (नरकम्) नरक (अपि) भी

(उचितम्) उचित है (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले। (एतत्) गोविन्दाचार्य स्वामीजी के इस वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (अयम्) यह (अपि) भी (कश्चित्) कोई (प्रतिपत्तिविशेषः) प्रतिपत्ति विशेष है (इति) इस प्रकार के (अति) अत्यन्त (प्रीतः) प्रसन्न के (इव) समान (अभवत्) हो गये हैं। इस दो सौ सोलहवीं वार्ता में नवासीपद हैं। इति श्रीशैलपूर्णगोविन्दाचार्य्योक्तवार्ता- व्याख्यानम् ॥ २१६ ॥

अब महापूर्णस्वामीजीकी कन्या की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ महापूर्णकन्यावार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५
मू०-महापूर्णस्य कन्या श्वशुरगृहे तिष्ठन्त्येकदा-
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
अहं स्नानार्थं गच्छामि मया सह आगन्तव्यमिति श्वश्रू-
१४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३
मवदत्, तया च स्त्रीधनदासी सहाया गच्छेत्यतिक्रूरमुक्त्वा
२४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०
महापूर्णसमीपं गत्वा मामेवमुक्तवतीत्यवदत् ॥ २१७ ॥

अर्थ-(महापूर्णस्य) महापूर्ण स्वामीजीकी (कन्या) पुत्री अतुलाय्यम्बा (श्वशुरगृहे) अपनेश्वशुर के घर में (तिष्ठन्ती) रहती हुई (एकदा) एक समय में (अहम्) मैं (स्नानार्थम्) स्नान करने के लिये (गच्छामि) चलती हूँ (मया) मेरे (सह) साथ (आगन्तव्यम्) आपको आने योग्य है (इति) इस प्रकार के (श्वश्रूम्) अपनी सास से (अवदत्) बोली। (च) और (तया) वह महापूर्ण स्वामीजी की कन्या की सास (स्त्रीधनदासी) स्त्री और धनदासी हैं उस स्त्री धनदासी को (सहाया) सहायक लेकर (गच्छ) तुम स्नान करने के लिये जाओ (इति) इसप्रकार के (अति) अत्यन्त (क्रूरम्) क्रूर वाक्य को (उक्ता) बोली। इसके बाद (महापूर्णसमीपम्) महापूर्ण स्वामीजी के पास में (गत्वा) जाकर (माम्) मुझको (एवम्) स्त्रीधनदासी को सहायक लेकर स्नान करने के लिये तुम जाओ इस प्रकार के (उक्तवती) मेरी सास ने कहा है (इति) इस प्रकार से (अवदत्) महापूर्ण स्वामीजी की कन्या ने कहा है। इस दो सौ सत्तरहवीं वार्ता में तीस पद हैं। इति महापूर्णकन्यावार्ताव्याख्यानम् ॥ २१७ ॥

अब महापूर्णस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ महापूर्णोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
मू०–स च नाहं जाने त्वं भाष्यकारं वदेत्य-
वदत् ॥ २१८ ॥

अर्थ-(च) और (सः) उस महापूर्णस्वामीजी ने (अहम्) मैं (न) नहीं (जाने) जानता हूँ (त्वम्) तुम (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकारसे (वद) कहो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। इस वार्ता में दस पद हैं। इति महापूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २१८ ॥

अब अत्तुलायी के और श्रीभाष्यकार के संवाद रूपवार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मू०–सा च तं प्रत्यवदत्, भाष्यकारश्च दाशरथिं
१ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७
दृष्ट्वा- अयं तव स्त्रीधनदासी, एनमादाय गच्छेत्य-
वदत् ॥ २१९ ॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ- दाशरथ्यादिशिष्येभ्यस्तत्सर्वमुपदिश्य च।
स्वमठे कतिचिन्मासानुवास स महायशाः ॥ १७९ ॥

(च) और (सा) वह महापूर्णस्वामीजीकी पुत्री अत्तुलायी (तम्) उस श्रीभाष्यकारजी के (प्रति) प्रति (अवदत्) अपनी सास से कहे हुए वाक्य को बोली। (च) और (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (दाशरथिम्) दाशरथी स्वामीजी को (दृष्ट्वा) देखकर (अयम्) यह दाशरथी भक्त (तव) तेरी (स्त्रीधनदासी) स्त्री धन दासी है (एनम्) इस दाशरथी को (आदाय) लेकर (गच्छ) तुम सास के घरमें चली जाओ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। इस वार्ता में सत्तरह पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २१९ ॥

अब दाशरथी स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–तदा[१] दाशरथिः[२]- तया[३] सह[४] गत्वा[५] तां[६] स्नापयित्वा[७] तच्छ्वशुरगृहे[८] गत्वा[९] दास्यवृत्तिं[१०] कर्तुमारेभे[११,१२] तच्छ्वशुरगृहस्थाः[१३,१४,१५] किमिदं[१६] क्रियते[१७] इति[१८] दाशरथिमपृच्छन्[१९], स[२०] च[२१] प्रेषितवता[२२] भाष्यकृता[२३] यदुक्तं[२४] तत्सर्वं[२५] कर्त्तव्यमित्यवदत्[२६,२७,२८,२९,३०] ॥ २२० ॥

॥ दाशरथिस्तुतिः ॥

अर्थ- तस्याज्ञां शिरसा धृत्वा धीमान् दाशरथिस्तदा।
तथा गत्वा स तत्सर्वं कुर्वंस्तत्र समास्थितः ॥ १८० ॥

(तदा) तब श्रीभाष्यकारस्वामीजी की आज्ञा पाने पर (दाशरथिः) दाशरथी स्वामीजी ने (तया) उस महापूर्णस्वामीजी की पुत्री अत्तुलायी देवी के (सह) साथ (गत्वा) जाकर (ताम्) उस अत्तुलायी देवी को (स्नापयित्वा) स्नान करवाकर (तत्श्वशुरगृहे) उस अत्तुलायी देवी के ससुर के घर में (गत्वा) जाकर (दास्यवृत्तिम्) सेवकता वृत्तिको (कर्तुम्) करने के लिये (आरेभे) प्रारम्भ कर दिया। (तत्श्वशुरगृहस्थाः) उस अत्तुलायी देवी के ससुर के घर में रहने वाले पुरुष सबों ने (इदम्) यह (किम्) क्या (क्रियते) करते हैं (इति) प्रकार के (दाशरथिम्) दाशरथी स्वामीजी से (अपृच्छन्) पूछा है। (च) और (सः) वह दाशरथी स्वामीजी (प्रेषितवता) मुझको भेजनेवाले (भाष्यकृता) श्रीभाष्यकारस्वामीजी (यत्) जो कुछ (उक्तम्) कहा गया है (तत्) वह (सर्वम्) सब कुछ (कर्तव्यम्) मुझे करने योग्य है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले। इस दो सौ बी- सवीं वार्ता में तिरसठ पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२० ॥

अब श्रीभाष्यकारस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–ते[१] च[२] महापूर्णं[३] प्रति[४] दाशरथिं[५] प्रेष्यास्मान्[६,७,८] एवं[९] किमिति[१०] नाशयसीत्यपृच्छन्[११,१२,१३,१४,१५], स[१६] च[१७] नाहं[१८] जानामि,

१९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७
रामानुजः प्रष्टव्य इत्यवदत्, ते च तमपृच्छन्, रामानुज
२८ २९ ३०३१ ३२ ३३ ३४
श्च महापूर्णदुहितु र्दासवृत्तिं कर्त्तुं प्रेषितः, तत्र तदवस्थानं
३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२
युष्माकमनभिमतं चेत् अत्रैव स्थित्वा दासवृत्तिं करोत्वि-
४३ ४४ ४५ ४६
त्युक्त्वा तमाहूतवान् ॥ २२१ ॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ- कृतवैष्णवदास्याय लक्ष्मणार्यो दयानिधिः ।
उपदिश्य ययौ वेगाद्वररङ्गगृहं प्रति ॥ १८१ ॥

(च) और (ते) वे अतुलायी देवी के ससुर के घर में रहने वाले पुरुष सब (महापूर्णम्) महापूर्ण स्वामीजीके (प्रति) प्रति (दाशरथिम्) सेवकता करने के लिये दाशरथी स्वामीजीको (प्रेष्य) भेजकर (अस्मान्) हम सबोंको (एवम्) इस प्रकारके (किम्) क्या (इति) इस (नाशयसि) नाशको तुम प्राप्त कराते हो (इति) इस प्रकारके (अपृच्छन्) पूछे हैं। (च) और (सः) वह महापूर्ण स्वामीजी (अहम्) मैं (न) नहीं (जानामि) इस विषयको जानता हूँ (रामानुजः) श्रीभाष्यकार (प्रष्टव्यः) पूछने योग्य हैं (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले। (च) और (ते) वे अतुलायीके ससुरके घरमें रहनेवाले पुरुष सब (तम्) उस श्रीभाष्यकारसे (अपृच्छन्) पूछे हैं। (च) और (रामानुजः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (महापूर्णदुहितुः) महापूर्ण स्वामीजीकी पुत्री अतुलायी देवीके (दासवृत्तिम्) सेवककी वृत्तिको (कर्तुम्) करनेके लिये (प्रेषितः) मैं भेजा हूँ। (तत्र) वहांपर (तदवस्थानम्) उस परमभागवत दाशरथिजीका रहना (युष्माकम्) आप सबोंको यदि (अनभिमतम्) अभिमत नहीं है (चेत्) तो (अत्र) यहाँपर (एव) निश्चय करके (स्थित्वा) रहकर (दासवृत्तिम्) सेवककी वृत्तिको (करोतु) करें (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कहकर (तम्) उस दाशरथी स्वामीजीको (आहूतवान्) बुलाये। इस दो सौ इक्कीसवीं वार्तामें छियालीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२१॥

अब त्रैलोक्यादेवीके और अग्नी महात्माके संवादरूपवार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ अग्नित्रैलोक्यागदितावार्त्ता ॥

१ २ ३ ४ ५
मू०-त्रैलोक्याभिधा काचन स्त्री-अग्निशिष्या तत्र,
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
अनन्तार्य्यः समागतः, सा च तं षण्मासं सेवित्वा तस्मिन्

१४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१
गते-अङ्घ्रिश्रीपादौ प्रणनाम, स च एतावत्कालं कुतो
२२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२
नागतेति तामपृच्छत्, सा चानन्तार्य्यं सेवमानातिष्ठमित्य
३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२
वदत्, स च मदुक्तार्थेभ्यः अधिकोऽर्थस्तदुक्तोऽस्तीति
४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९
किं- मित्यपृच्छत्, सा चास्ति भवदाश्रयणकालमारभ्य
५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८
भगवच्चरणावेवाध्यवसायं कुर्विति भवदुक्तोऽर्थः, स च
५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६
षट्सु मासेषु रामानुजचरणावेव शरणमित्यध्यवसायमती
६७ ६८ ६९ ७०
वाकरोदित्यवदत् ॥ २२२ ॥

॥ अनन्तार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- अनन्तार्योऽथ सहसा स्नात्वा सम्यग् दृढव्रतः ।
कैंकर्याणि यथापूर्वं कुर्वन्निश्चल आस्थितः ॥ १८२ ॥

(त्रैलोक्याभिधा) त्रैलोक्या नामवाली (काचन) कोई (स्त्री) स्त्री (अङ्घ्रिशिष्या) अङ्घ्रीमहाराजकी शिष्या थी (तत्र) उस त्रैलोक्यादेवीके स्थान पर (अनन्तार्यः) अनन्ताचार्य स्वामीजी (समागतः) आ गये । (च) और (सा) उस त्रैलोक्यादेवीने (तम्) उस अनन्ताचार्य स्वामीजीको (षण्मासम्) छः महीना (सेवित्वा) सेवाकर (तस्मिन्) उस अनन्ताचार्यस्वामीजीके (गते) वहाँसे चले जाने पर (अङ्घ्रि श्रीपादौ) अङ्घ्रिस्वामीजीके श्रीचरणोंको (प्रणनाम) प्रणाम किया । (च) और (सः) उस अङ्घ्रिस्वामीजी ने (एतावत्) इतने छः महीने (कालम्) समय तक (कुतः) किस कारणसे (न) नहीं (आगता) तुम आई (इति) इस प्रकारके (ताम्) उस त्रैलोक्यादेवीसे (अपृच्छत्) पूछा । (च) और (सा) उस त्रैलोक्यादेवी ने (अनन्तार्यम्) अनन्ताचार्य स्वामीजीकी (सेवमाना) सेवा करती हुइ (अतिष्ठम्) छः महीने तक मैं ठहरी रही (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है । (च) और (सः) उस अङ्घ्रिस्वामीजी ने (मदुक्तार्थेभ्यः) मुझसे कहे हुए अर्थोंसे (अधिकः) अधिक (अर्थः) अर्थ (तदुक्तः) उस अनन्ताचार्य स्वामीजीसे कहा हुआ (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा है । (च) और (सा) वह त्रैलोक्या देवी (अस्ति) आपसे कहे हुए अर्थोंसे अनन्ताचार्य स्वामीजी से कहा हुआ अधिक अर्थ है क्योंकि (भवदाश्रयणकालम्) आपको आश्रयण करनेके समयसे (आरभ्य) लेकर (भगवच्चरणौ) भगवान्के दोनों चरणारविन्द (एव) निश्चय करके (अध्यवसायम्) उपायत्वेन स्वीकार (कुरु) करो (इति) इस प्रकारके (भवदुक्तः) आपसे कहा हुआ

(अर्थः) अर्थ है। (च) और (सः) वह अनन्तार्य स्वामीजी (षट्सु) छः (मासेषु) महीनोंमें (रामानुजचरणौ) श्रीभाष्यकारके दोनों चरणारविन्दोंको (एव) निश्चय करके (शरणम्) उपाय समझना (इति) इस प्रकार के (अध्यवसायम्) अध्यवसाय (अति) अत्यन्त के (इव) समान (अकरोत्) किये हैं (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोली है। इस दो सौ बाईसवीं वार्ता में सत्तर पद हैं। इति अग्नित्रैलोक्यागदितवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२२ ॥

❁

अब अप्यन् स्वामीजीके और भट्टारक स्वामीजीके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ अप्यन् भट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०-अप्यन्[१] कूरेशान्तिमदशायां[२] श्रीपादं[३] सेवितुं[५] भाग्यहीनोऽस्मि[६], मम[८] हितांशो[९] वक्तव्यः[१०]- इति[११] भट्टारकम्[१२] अवदत्[१३], स[१४] च[१५] ग्रामं[१६] स्वस्थं[१७] च[१८] त्यक्त्वा[१९] पश्चिमाशां[२०] प्रतिपलायत[२१] स्तदा[२२] हितांशो[२३] वक्तव्यः[२४] किमित्यवदत्[२५] ॥ २२३ ॥

॥ कूरेशस्तुतिः ॥

अर्थ- गृहीततुलसीतीर्थमालिकादिमतन्द्रितम्।
तथा प्रस्थापयामास कूरेशं रङ्गभूपतिः ॥ १८१ ॥

(अप्यन्) अप्यन् आल्वार ने (कूरेशान्तिमदशायाम्) कूरेशस्वामीजीकी अन्तिम दशामें (श्रीपादम्) श्रीपादको (सेवितुम्) सेवन करनेके लिये (भाग्यहीनः) भाग्यसे हीन (अस्मि) मैं हूँ। (मम) मुझे (हितांशः) हितका अंश (वक्तव्यः) कहने योग्य है (इति) इस प्रकारके (भट्टारकम्) भट्टारक स्वामीजीसे (अवदत्) कहा है। (च) और (सः) वह भट्टारक स्वामीजी (ग्रामम्) गाँवको (च) और (स्वस्थम्) आत्माकी स्थितिको (त्यक्त्वा) छोड़कर (पश्चिमाशाम्) पश्चिम दिशाके (प्रति) प्रति (पलायतः) भागनेवाले को (तदा) तब (हितांशः) हितका अंश (वक्तव्यः) कहने योग्य है (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले हैं। इस वार्तामें अट्ठाईस पद हैं। इति अप्यन्भट्टारकोक्तावार्ताव्याख्यानम् ॥ २२३ ॥

❁

अब दाशरथिस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथ्युक्तावार्ता ॥

मू०–दाशरथिः[१] स्वानुवृत्तिप्रसन्नाचार्येणमोक्ष[२][३][४] इत्य-वदत्[५] ॥१२४ ॥

अर्थ-(दाशरथिः) दाशरथिस्वामीजी ने (स्वानुवृत्तिप्रसन्नाचार्य्येण) अपनी अनुवृत्तिसे प्रसन्न आचार्य द्वारा (मोक्षः) होता है (इति) प्रकारके (अवदत्) कहा है। इस वार्तामें पाँच पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२४ ॥

अब कूरेशस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कूरेशोक्ता वार्ता ॥

मू०–कूरेशः[१] कृपामात्रप्रसन्नाचार्य्येण[२] मोक्ष[३][४] इत्य-वदत्[५] ॥ २२५ ॥

॥ कूरेशस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रुतिस्मृतिपुराणानि कूरेशो व्याजहार सः।
श्रुत्वा सर्वाणि वाक्यानि यादवो विस्मयान्वितः ॥ १८४ ॥

(कूरेशः) कूरेशस्वामीजी ने (कृपामात्रप्रसन्नाचार्येण) कृपा मात्रसे प्रसन्न आचार्य करके (मोक्षः) मोक्ष होता है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है। इस वार्तामें पाँच पद हैं। इति कूरेशोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२५ ॥

अब दाशरथि स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथ्युक्तावार्त्ता ॥

मू०–दाशरथिः[१] दोषहीनोऽभिवृद्धगुणो[२][३] गुरुणामनु-कूल[४][५][६] इति[७] विष्णुचित्तोक्तेः[८] स्वानुवृत्तिप्रसन्नाचार्येण मोक्ष[९][१०][११] इत्यवदत् ॥ २२४ ॥

॥ विष्णुचित्तस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीज्येष्ठमासे पवमानतारे ज्येष्ठे गुणेनाजनि भट्टनाथः ।
कृताभिरूपः स गरुत्मदात्मा कटाक्षलक्ष्यः कमलापतेर्यः ॥ १८५ ॥

(दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजी (दोषहीनः) दोषोंसे हीन तथा (अभिवृद्धगुणः) अत्यन्त बढ़ा हुआ गुण और (गुरुणाम्) गुरुओंके (अनुकूलः) अनुकूल (इति) इस प्रकारके (विष्णुचित्तोक्तेः) विष्णु चित्त स्वामीजी के कथन होनेसे (स्वानुवृत्तिप्रसन्नाचार्येण) अपनी आत्माकी अनुवृत्ति से प्रसन्न आचार्य करके (मोक्षः) मोक्ष होता है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले हैं। इस दो सौ छब्बीसवीं वार्ता में ग्यारह पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२६ ॥

अब कूरेशस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कूरेशोक्ता वार्त्ता ॥

मू०-कूरेशस्तथा न भवति मधुरकविनवमपाशुरोक्त-प्रकारेण तत्पारतन्त्र्ये तिष्ठतां स्वानुवृत्यसंभवेन कृपामात्र-प्रसन्नाचार्य्येण मोक्ष इत्यवदत् ॥ २२७ ॥

॥ कूरेशस्तुतिः ॥

अर्थ-श्रुत्यादिप्रचुरप्रमाणवचनैः सर्वोत्तमत्वे हरेश्चक्राद्यङ्कनधारणे च सगुणब्रह्मण्यनन्ते परे । कूरेशः प्रतिपाद्यदार्ढ्यमधिकं सद्योऽनवद्यां प्रथां विख्यातं यतिशेखरं समभजज्जित्वा तदा यादवम् ॥ १८६ ॥

(कूरेशः) कूरेशस्वामीजी (तथा) वैसे (न) नहीं (भवति) हो सकता है (मधुरकविनवमपाशुरोक्तप्रकारेण) मधुरकवि स्वामीजीका "**कण्णिनुण्शिरुत्तांबु**" प्रबन्ध के नौवें पाशुरमें कहे हुए प्रकारसे (तत्पारतन्त्र्ये) उस आचार्यकी परतन्त्रता में (तिष्ठताम्) ठहरनेवालों के (स्वानुवृत्त्यसंभवेन) अपनी अनुवृत्तिके असम्भव होनेसे (कृपामात्रप्रसन्नाचार्येण) कृपामात्रसे प्रसन्न आचार्य करके (मोक्षः) मोक्ष होता है। (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले हैं। यहाँपर यह प्रश्न होता है कि मधुरकवि स्वामीजीका बनाया हुआ "कण्णिनुण्शिरुत्तांबु" प्रबन्ध के नौंवा पाशुर कौन सा है और उसका अर्थ क्या है ? इस प्रश्नका उत्तर देखिये लिखा है कि-

श्रेष्ठवेदिनां वेदस्यान्तः पदार्थं सुस्थिरं गीत्वा मम मनसि स्थापितवान्,

उचितगुणस्य शठकोपस्य मम पूर्णस्य दास्ये प्रवेशकृदाशा दास्यफलं तदैव ॥ ॥ कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु० पाशु० ९ ॥

श्रेष्ठ वेदवालों के वेद के भीतर सुन्दर स्थिर पदार्थको गाकर मेरे मनमें स्थापन करें दिये हैं। उचित गुणवाले परिपूर्ण श्रीशठकोपस्वामीजीकी दासतामें जब प्रवेश करने की आशा मेरी होती है, तभी निश्चय करके दासता का फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ इस दो सौ सत्ताईसवीं वार्तामें बारह पद हैं। इति कूरेशोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२७ ॥

अब दाशरथिस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथिवार्त्ता ॥

मू०-दाशरथिश्च तथैवेत्युक्त्वा-अतिप्रसन्नोऽभवत्, ईश्वरःमोक्षप्रद इत्यध्यवस्यन् आचार्यं शरणं जानाति, आचार्य्यं मोक्षप्रदमध्यवस्यन् आचार्यवैभवोपदेष्टारं शरणं जानाति ॥ २२८ ॥

अर्थ-(च) और (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजी (तथा) वैसे ही (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (अतिप्रसन्नः) अत्यन्त प्रसन्न (अभवत्) हो गये। तथा जो पुरुष (ईश्वरः) परमेश्वर (मोक्षप्रदः) मोक्षको प्रकर्षरूपसे देनेवाले हैं (इति) इस प्रकारका (अध्यवस्यन्) निश्चय करता है वह (आचार्यम्) आचार्यको (शरणम्) रक्षक या उपाय (जानाति) जानता है। और जो पुरुष (आचार्यम्) आचार्यको (मोक्षप्रदम्) मोक्षको प्रकर्षरूपसे देनेवाला (अध्यवस्यन्) निश्चय करता है वह (आचार्यवैभवोपदेष्टारम्) आचार्यके वैभवकों उपदेश देनेवालेको (शरणम्) रक्षक या उपाय (जानाति) जानता है। इस दो सौ अट्ठाईसवीं वार्तामें इक्कीस पद हैं। इति दाशरथिवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२८ ॥

अब पराशर भट्टारकस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ भट्टार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०-कलिवैरिदासं पश्चात् सुन्दरजामातृमुनिमठे तिष्ठन्तं तत्रत्याः सर्वे शठकोपस्यावस्था यस्य जायते

तस्य मोक्षः प्राप्यस्त्र्यन्नपानादिभिर्वर्त्तमानैरस्माभिः किं कर्तव्यमित्यपृच्छन्, स चात्र तादृशावस्थानुत्पादेऽपि सदाचार्यकटाक्षविशेषेण स्थूलशरीरविमोचनकैंकर्य्यप्राप्ते र्मध्ये तामवस्थामुत्पाद्य, ईश्वरः कार्यं करोतीत्यवददिति मध्यवीथिभटार्य्योऽवदत् ॥ २२९ ॥

अर्थ-(सुन्दरजामातृमुनिमठे) सुन्दर जामातृमुनिके मठमें (पश्चात्) पीछेसे (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुए (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजीसे (तत्रत्याः) वहाँ के रहने वाले (सर्वे) सब लोग (शठकोपस्य) श्रीशठकोपस्वामीजीकी (अवस्था) अवस्था (यस्य) जिसको (जायते) उत्पन्न होती है (तस्य) उसको (मोक्षः) मोक्ष होता है। (प्राप्यस्त्र्यन्नपानादिभिः) प्राप्य स्त्री अन्न, पान, वस्त्र, द्रव्य आदिकोंसे (वर्तमानैः) वर्तमान (अस्माभिः) हम सबोंसे (किम्) क्या (कर्तव्यम्) करने योग्य है (इति) इस प्रकारके (अपृच्छन्) पूछे हैं। (च) और (सः) वह कलिवैरिदासजी (अत्र) यहाँपर (तादृशावस्थानुत्पादे) श्रीशठकोपस्वामीजी के समान अवस्थाके नहीं उत्पन्न होनेपर (अपि) भी (सदाचार्यकटाक्षविशेषण) सदाचार्यों के कृपाकटाक्ष विशेषसे (स्थूलशरीरविमोचनकैंकर्यप्राप्तेः) स्थूल शरीरके विमोचन द्वारा कैंकर्य प्राप्तिके (मध्ये) बीचमें (ताम्) उस पराङ्कुशमुनिकी (अवस्थाम्) अवस्थाको (उत्पाद्य) उत्पन्न कर (ईश्वरः) परमेश्वर (कार्यम्) कार्यको (करोति) करते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं (इति) इस प्रकारकी वार्ताको (मध्यवीथिभट्टार्यः) मध्यवीथिमें भट्टारक स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। इस दो सौ उन्तीसवीं वार्तामें अड़तीस पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२९ ॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०-शिष्य आचार्यविषये-अर्थमुखेन प्रपत्तिकरण-समये तस्य न्यूनतामस्ति नास्तीति न निरूपयेत्, स्वशरीर-धारणवद्वा तस्य तन्मुखेन प्रीतिकरणं स्वरूपमिति कलि-वैरिदासोक्तिः ॥ २३० ॥

अर्थ-(शिष्यः) शिष्य (आचार्यविषये) अपने आचार्यके विषयमें (अर्थमुखेन) अर्थ मुख करके (प्रपत्तिकरणसमये) प्रपत्ति करनेके समयमें (तस्य) इस आचार्यकी (न्यूनताम्) न्यूनताको (अस्ति) है या (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (न) नहीं (निरूपयेत्) निरूपण करे। (वा) अथवा (स्वशरीरधारणवत्) अपना शरीर धारण करने के समान (तस्य) इस सदाचार्यके (तन्मुखेन) इस आचार्यके मुखसे (प्रीतिकरणम्) प्रीति करना (स्वरूपम्) शिष्यका स्वरूप है (इति) इस प्रकारके (कलिवैरिदासोक्तिः) कलिवैरिदास स्वामीजी की उक्ति है। इस वार्तामें बीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३० ॥

अब वेदान्तीस्वामीजी के और भट्टारकस्वामीजीके संवादरूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ यतिभट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०-वेदान्तिनि[१] भट्टारकस्य[२] शिविकां[३] वोढुमुद्युक्ते[४] सति[५] त्वद्वेषस्य[६] विरुद्धमिदं[७] मा[८] कुर्विति[९] भट्टार्य्योऽवदत्[१०], स[११] च[१२] आचार्यकैंकर्यस्यानुकूलमिति[१३], अमुं[१४] वेषमगृहणाम्[१५] अय-मेव[१६] यदि[१७] तद्विरुद्धः[१८] स्यात्[१९] तदा[२०] प्राचीनमेव[२१] श्वेतं[२२] पर्य्यधा-मित्यवोचत्[२३] ॥ २३१ ॥

अर्थ-(वेदान्तिनि) वेदान्ती स्वामीजीके (भट्टारकस्य) भट्टारकस्वामीजीकी (शिविकाम्) सवारीको (वोढुम्) ढोनेके लिये (उद्युक्ते) तैयार (सति) होनेपर (त्वत्) आपका (वेषस्य) संन्यासवेषके (विरुद्धम्) विरुद्ध (इदम्) यह सवारी ढोना है इससे (मा) इस कामको मत (कुरु) करो (इति) इस प्रकारके (भट्टार्यः) भट्टारकस्वामीजी (अवदत्) बोले हैं। (च) और (सः) वह वेदान्ती स्वामीजी (आचार्यकैंकर्यस्य) आचार्यके कैंकर्यके (अनुकूलम्) अनुकूल संन्यास है (इति) इस कारणसे (अमुम्) इस (वेषम्) संन्यासवेषको (अगृह्णाम्) मैंने ग्रहण किया (अयम्) यह संन्यासवेष (एव) निश्चय करके (यदि) यदि (तद्विरुद्धः) उस आचार्यके कैंकर्यके विरुद्ध (स्यात्) होवे (तदा) तब (एव) निश्चय करके (प्राचीनम्) प्राचीन वेषके अनुसार (श्वेतम्) सफेद वस्त्रको (पर्यधाम्) अच्छी तरहसे मैं धारण करुँगा (इति) इस प्रकारके

(अवोचत्) बोले हैं। इस दो सौ इकत्तीसवीं वार्ता में पैंतीस पद हैं। इति यतिभट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३१ ॥

अब श्रीकृष्णपादस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीवैष्णवस्य करणत्रयेणापि कालक्षेपः केनेति चेत् आचार्य्यकैंकर्येण भगवत्कैंकर्येण भागवतकैंकर्येण च-एतत् त्रितयं मिथस्तुल्यं किमिति चेत् स्वरूपज्ञः-आचार्य-कैंकर्य्यमेव भगवत्कैंकर्यं भागवतकैंकर्य्यं च जानाति, प्रभावज्ञः भगवत्कैंकर्यमेव प्रधानं जानाति, उभयमजा-नन्तः-त्रितयं समं जानन्ति, सकलाचार्याभिप्राये सकल-दिव्यसूरितात्पर्ये सकलवेदरतौ सकलशास्त्राभिप्राये च निरूपिते आचार्य्यकैंकर्यमेव परमप्रयोजनमिति वेदान्तिना कलिवैरिदासं प्रत्युक्तमिति-उत्तरवीथिकृष्णपादोऽवदत् ॥ २३२ ॥

अर्थ-(श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णवके (करणत्रयेण) मन तथा वाणी और शरीर इन तीनों करणोंसे (अपि) भी (कालक्षेपः) कालक्षेप करना चाहिये। (केन) किससे कालक्षेप करना चाहिये (इति) इस प्रकार के (चेत्) यदि कहो तो सुनो (आचार्यकैंकर्येण) आचार्यके कैंकर्यसे तथा (भगवत्कैंकर्येण) भगवान् के कैंकर्यसे (च) और (भागवतकैंकर्येण) भागवतके कैंकर्यसे (एतत्) ये (त्रितयम्) तीनों कैंकर्य (मिथः) आपसमें (तुल्यम्) तुल्य हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकारके (चेत्) यदि कहो तो सुनो (स्वरूपज्ञः) अपने स्वरूपको जाननेवाला (आचार्यकैंकर्यम्) आचार्य्यके कैंकर्यको (एव) निश्चय करके (भगवत्कैंकर्यम्) भगवान्के कैंकर्य्यको (च) और (भागवतकैंकर्यम्) भागवत के कैंकर्यको (जानति) जानता है। और (प्रभावज्ञः) प्रभाव को जाननेवाला (भगवत्कैंकर्यम्) भगवान्के कैंकर्यको (प्रधानम्) प्रधान (जानाति) जानता है। तथा (उभयम्) स्वरूप और प्रभाव इन दोनोंको (अजानन्तः) नहीं जाननेवाले (त्रितयम्) आचार्य कैंकर्य तथा भगवत्कैंकर्य और भागवतकैंकर्य इन तीनोंको (समम्) तुल्य (जानन्ति) जानते हैं। (सकलाचार्याभिप्राये) समस्त आचार्योंके

अभिप्राय और (सकलदिव्यसूरितात्पर्य्ये) समस्त दिव्य सूरियों के तात्पर्य्य तथा (सकलवेदरतौ) सम्पूर्ण मंत्र ब्राह्मणात्मक वेदोंकी रति (च) और (सकलशास्त्राभिप्राये) समस्त शास्त्रोंके अभिप्राय (निरूपिते) निरूपण करनेपर (आचार्य्यकैंकर्यम्) आचार्यका कैंकर्य (एव) निश्चय करके (परमप्रयोजनम्) सबसे श्रेष्ठ प्रयोजन है (इति) इस प्रकारके (वेदान्तिना) वेदान्ती स्वामीजी ने (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजीके (प्रति) प्रति (उक्तम्) कहा है (इति) इस प्रकारके (उत्तरवीथिकृष्णपादः) उत्तरवीथिमें कृष्णपापाद स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। इस दो सौ बत्तीसवीं वार्तामें इक्यावन पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३२ ॥

अब आन्ध्रपूर्णस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ आन्ध्रपूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०–आचार्यकैंकर्य स्वस्य क्षुधाभिवृद्धौ भोजनं भागवतकैंकर्य मातु भोजनदानं भगवत्कैंकर्य प्रतिभोजन मित्यान्ध्रपूर्णस्योक्तिः ॥ २३३ ॥

॥ आन्ध्रपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- आन्ध्रपूर्णो यतीन्द्रस्य पादतीर्थं विना क्वचित्।
अन्योदकं न पिबति गुरुभक्तिमतां वरः ॥ १८७ ॥

(आचार्यकैंकर्यम्) आचार्यका कैंकर्य (स्वस्य) अपनी (क्षुधाभिवृद्धौ) भूखके अत्यन्त बढ़नेपर (भोजनम्) भोजन है। तथा (भागवतकैंकर्यम्) भागवत्का कैंकर्य (मातुः) माताका (भोजनदानम्) दिया हुआ भोजन है। और (भगवत्कैंकर्यम्) भगवान् का कैंकर्य (प्रतिभोजनम्) खरीदा हुआ भोजन है (इति) इस प्रकारके (आन्ध्रपूर्णस्य) आन्ध्रपूर्णस्वामीजीकी (उक्तिः) उक्ति है। इस वार्तामें बारहपद हैं। इति आन्ध्रपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२३ ॥

अब श्रीवकुलाभरणदासजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीवकुलाभरणदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–स्वनिवृत्तिः चैतन्यनिवृत्तिः साधनान्तरनिवृत्तिः

४ ५ ६ ७ ८
तच्च मूलवासनानिवृत्तिः व्यापारनिवृत्तिः विषयान्तरनिवृत्ति
९ १० ११
श्रेति श्रीवकुलाभरणदासवार्ता ॥ २३४ ॥

॥ शठारिस्तुतिः ॥

अर्थ- राधे कलितनैराधे वैशाखे काव्यवासरे ।
लग्नेकर्कटकेसूत तनयं नाथनायिका ॥ १८८ ॥

प्रपन्नोंके (स्वनिवृत्तिः) अपनी स्वतंत्रताकी निवृत्ति होनी चाहिये। तथा (चैतन्यनिवृत्तिः) उपायान्तर के उपयोगीज्ञानकी निवृत्ति होनी चाहिये। तथा (साधनान्तरनिवृत्तिः) अन्य साधनोंकी निवृत्ति होनी चाहिये। (च) और (तत्) वह उपायान्तर निवृत्ति होनी चाहिये। तथा (मूलवासनानिवृत्तिः) सबको मूलवासना की निवृत्ति होनी चाहिये। तथा (व्यापारनिवृत्तिः) व्यापारकी निवृत्ति होनी चाहिये। (च) और (विषयान्तरनिवृत्तिः) भगवद्विषयसे अन्य विषयों की निवृत्ति होनी चाहिये। (इति) इस प्रकारके (श्रीवकुलाभरणदासवार्ता) श्रीवकुलाभरणदासजीकी वार्ता है। इस दो सौ चौतीसवीं वार्ता में ग्यारह पद हैं। इति वकुलाभरणदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २२६ ॥

अब कृष्णपादस्वामीजीकी महिषीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कृष्णपादमहिषीवार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
मू०-कृष्णपादस्य महिषी मठे तेन सह संजातवैमन-
७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
स्यासंमार्जनी तिष्ठेत्युक्त्वा मठे कृष्णपादवृद्धेः एका संमा-
१५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२
र्जन्यप्यपेक्षिता, इयं संमार्जनी बहिरगणं संमार्ज्य बहि-
२३ २४ २५ २६ २७ २८ २९
र्वेदिकायां तिष्ठतु, अथवा शय्यागृहं संमार्ज्य-अन्तरेव
३० ३१ ३२
तिष्ठत्वित्यवदत् ॥ २३४ ॥

अर्थ-(कृष्णपादस्य) कृष्णपादस्वामीजीकी (महिषी) कृताभिषेका रानी (मठे) मठमें (तेन) उस कृष्णपादस्वामीजीके (सह) साथ (संजातवैमनस्या) अच्छी तरहसे उत्पन्न वैमनस्यवाली (संमार्जनी) सम्यक् मार्जन करनेवाली (तिष्ठ) तुम ठहरो (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कहकर (मठे) मठमें (कृष्णपादवृद्धेः) कृष्णपादजीकी वृद्धिकी (एका) एक (संमार्जनी) संमार्जनी (अपि) भी (अपेक्षिता) अपेक्षित है (इयम्) यह (संमार्जनी)

अच्छी तरहसे मार्जन करनेवाली (बहिः) बाहर (अङ्गणम्) आँगनको (संमार्ज्य) अच्छी तरहसे मार्जनकर (बहिः) बाहर (वेदिकायाम्) वेदीमें (तिष्ठतु) ठहरे (अथवा) या (शय्यागृहम्) शय्याके घरको (संमार्ज्य) अच्छी तरहसे मार्जन कर (अन्तः) भीतर (एव) निश्चय करके (तिष्ठतु) ठहरे (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोली है। इस दो सौ चौंतीसवीं वार्तामें बत्तीस पद हैं। इति कृष्णपादमहिषीवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३४ ॥

अब श्रीभाष्यकारकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०-भगवत्प्रसादो भगवद्रुचिं जनयति, भगवद्रुचिराचार्य्याङ्गीकारं जनयति, आचार्य्योङ्गीकारः स्वीकारज्ञानं जनयति, स्वीकारज्ञानं भगवत्प्राप्तिं जनयति, भगवत्प्राप्तिर्भगवत्कैंकर्य्यं जनयति, तत्कैंकर्यं तदीयकैंकर्य्यं जनयति॥ २३५ ॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ- यतीन्द्रः पूर्णकृपया शास्त्रसारतमांस्तदा।
शिष्येभ्य श्चोपदिश्यार्थान् सर्वेभ्यो मुदमाप सः ॥ १८९ ॥

(भगवत्प्रसादः) भगवान्की प्रसन्नता (भगवद्रुचिम्) भगवान्की प्रीतिको (जनयति) उत्पन्न करती है। "जनयति" यहाँपर ॥ जनीजृष्क्नसुरञोऽमन्ताश्च॥ इस गणशास्त्रसे मित्संज्ञा होकर ॥ मितांह्रस्वः ॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० ९२ ॥ इस सूत्रसे ह्रस्व होता है। (भगवद्रुचिः) भगवान की प्रीति (आचार्य्याङ्गीकारम्) आचार्य अङ्गीकारको (जनयति) उत्पन्न करती है। (आचार्य्याङ्गीकारः) आचार्यका अङ्गीकार (स्वीकारज्ञानम्) स्वीकारज्ञानको (जनयति) उत्पन्न करता है। (स्वीकारज्ञानम्) स्वीकार ज्ञान (भगवत्प्राप्तिम्) भगवानकी प्राप्तिको (जनयति) उत्पन्न करता है। (भगवत्प्राप्तिः) भगवान्की प्राप्ति (भगवत्कैंकर्यम्) भगवान् के कैंकर्य्य को (जनयति) उत्पन्न करती है। और (तत्कैंकर्यम्) भगवान्का कैंकर्य (तदीयकैंकर्यम्) भागवतके कैंकर्यको (जनयति) उत्पन्न करता है। इस वार्तामें अट्ठारह पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३५ ॥

अब श्रीभाष्यकारके अन्तिम समयमें कही हुई वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०-भाष्यकारैरन्तिमदशायामुक्ता वार्ता कश्चन प्रपन्नः स्वदेहयात्रायाः कर्माधीनत्वात्तदर्थं न क्लिश्येत्, यदि क्लिश्यति तदा नास्तिको भवति, आत्मयात्राया भगवदधीनत्वात् तत्रान्वयो नास्ति यद्यन्वयोऽस्तीति मन्यते-तदा-आत्मसमर्पणं मिथ्या भवति, तस्मादुभयोरपि यात्रयोरन्वयो नास्ति, तस्मात्करणत्रयेण यथेष्टं कुर्वतस्तस्यात्र स्थितिसमये कर्तव्यानि कैंकर्य्याणि षट् तानि श्रीभाष्यं स्वयमधीत्याध्यापनं तत्राशक्तस्य दिव्यप्रबन्धाध्ययनमध्यापनं च तत्राप्यशक्तस्य तण्डुलचन्दनादिभिराराधनकरणं तत्राप्यशक्तस्य श्रीयादवाद्रौ-एकां कुटीं निर्माय तत्र वासः, तत्राप्यशक्तस्य द्वयार्थानुसन्धानं तत्राप्यशक्तस्य मदीयत्वाभिमानिनः कस्यचित् श्रीवैष्णवस्याभिमानान्तर्भावः ॥

॥श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ-श्रीभाष्यं द्रविडागमप्रवचनं श्रीशस्थलेष्वन्वहं कैंकर्य्यं यदुशैलनित्य-वसतिः सार्थद्वयोद्धारणम्। यद्वा भागवताभिमानवसतिः श्रेयः सतामित्यलं शिष्यान् प्राह यतीश्वरः परमगाद्विष्णोः पदं शाश्वतम् ॥ १९० ॥

(भाष्यकारैः) श्रीभाष्यकारसे (अन्तिमदशायाम्) अन्तिम समयमें (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (कश्चन) कोई (प्रपन्नः) प्रपन्नजन (स्वदेहयात्रायाः) अपनी शरीर-यात्राके (कर्माधीनत्वात्) कर्मके अधीन होने से (तदर्थम्) अपनी शरीर-यात्रा के लिये (न) नहीं (क्लिश्येत्) क्लेश करे। (यदि) यदि (क्लिश्यति) क्लेश करता है (तदा) तब (नास्तिकः) नास्तिक (भवति) होता है। और (आत्मयात्रायाः) आत्मा की

यात्राके (भगवदधीनत्वात्) भगवान्‌के अधीन होनेसे (तत्र) वहाँ पर (अन्वयः) सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है। (यदि) यदि (अन्वयः) सम्बन्ध (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (मन्यते) मानता है (तदा) तब (आत्मसमर्पणम्) आत्म-समर्पण (मिथ्या) झूठा (भवति) होता है। (तस्मात्) इस कारणसे (उभयोः) देह और आत्मा इन दोनोंको (अपि)भी (यात्रयोः) यात्राका (अन्वयः) सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है। (तस्मात्) उस कारणसे (करणत्रयेण) मन, वाणी, और शरीर, इन तीन करणोंसे (यथा) जैसा (इष्टम्) इष्ट हो वैसा (कुर्वतः) करते हुए (तस्य) उस प्रपन्नजन के (अत्र) यहाँ पर (स्थितिसमये) रहनेके समयमें (कर्त्तव्यानि) करने योग्य (कैंकर्याणि) कैंकर्य्य (षट्) छः हैं (तानि) वे कैंकर्य छः अधोलिखित हैं। (श्रीभाष्यम्) श्रीभाष्यनामके ग्रन्थ को (स्वयम्) अपने (अधीत्य) पढ़कर (अध्यापनम्) दूसरेको पढ़ाना है ॥ १ ॥ (तत्र) उस श्रीभाष्यके पठन पाठनमें (अशक्तस्य) असमर्थ प्रपन्नजनके (दिव्यप्रबन्धाध्ययनम्) दिव्यद्रविडागमको अपने पढ़ना (च) और (अध्यापनम्) दूसरेको पढ़ाना है ॥ २ ॥ (तत्र) उस दिव्य प्रबन्धोंके पठनपाठनमें (अपि) भी (अशक्तस्य) असमर्थ प्रपन्नजनके के (तण्डुलचन्दनादिभिः) चावल, चन्दन आदि शब्दसे चाँदनी चादर चमेली चम्पा चौतनी चौका चूत आदि पदार्थोंसे (आराधनकरणम्) श्रीशस्थलोंमें नित्यप्रति भगवत् भागवत और आचार्योंका आराधन करना है ॥ ३ ॥ (तत्र) उस चावल आदिसे आराधन करनेमें (अपि) भी (अशक्तस्य) असमर्थ भागवतके (श्रीयादवाद्रौ) श्रीयदुगिरिपर (एकम्) एक (कुटीम्) कुटीको (निर्माय) बनाकर (तत्र) उस यदुशैल पर (वासः) निवास करना है ॥ ४ ॥ (तत्र) उस यदुगिरि पर एक कुटी को बनाकर निवास करने में (अपि) भी (अशक्तस्य) असमर्थ प्रपन्नजनको (द्वयार्थानुसन्धानम्) द्वयमन्त्रके अर्थ को अनुसन्धान करना है ॥ ५ ॥ (तत्र) उस द्वयमंत्र के अर्थको अनुसन्धान करनेमें (अपि) भी (अशक्तस्य) असमर्थ प्रपन्नजनके (मदीयत्वाभिमानिनः) मदीयत्व के अभिमान करनेवाले (कस्यचित्) किसी भी (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णवके (अभिमानान्तर्भावः) अभिमान का अन्तर्भाव होकर रहना है ६ ॥ शमिति ॥



मू०–एवं[१] वर्तमानस्याधिकारिणोऽवश्यमवलोक[२]-[३]-[४]-[५]-[६]नीया[७] विषयास्त्रयः-अनुकूलाः[८] प्रतिकूलाः-अनुभयाश्च[९]-[१०]-[११], तत्रानुकूलाः[१२] श्रीवैष्णवाः[१३], प्रतिकूला[१४] भगवद्द्विषः[१५], अनुभयाः[१६] संसारिणः[१७], श्रीवैष्णवं[१८] पश्यति[१९] चेत्[२०] चन्दनकुसुमताम्बूलानां[२१]-[२२]

चन्द्रिकामलयमारुतयोरभिमतदर्शनस्येव प्रीतो भवेत्, भगवद्द्विषः पश्यति चेत् सर्पाग्निदर्शन इव भीतोभवेत् अनुभयान् पश्यति चेत् काष्ठलोष्ठादीनिव-उपेक्ष्य वर्तेत, एवं वृत्तेर्विरोधी-अर्थकामप्रावण्यम् अर्थकामहेतुनानु-कुलान् श्रीवैष्णवान् परिभावयति चेत् राजपुत्रपरिभवे कृते राजहृदयवत् ईश्वरस्य हृदयं दुःखितं भवति प्रति-कूलान् भगवद्द्विषः अर्थकामहेतुना-आद्रियते चेत् राज्ञः सार्वभौमस्य महिषी क्षुद्रजन्तून् याचते चेत् राज्ञ इव भगवतोऽवद्यं भवेत् तस्य हृदयं च दुःखितं भवति अनुभयान् संसारिणः अर्थकामहेतुना आद्रियते चेत् रत्नपाषाणयोस्तारतम्यानभिज्ञ इव अस्माकमितरेषां च तारतम्यमयं न जानाति, अस्योत्पन्नं ज्ञानं कार्य्यकरं नाभवत्, इत्येतद्विषये-ईश्वरः सदा उदासीनो भव-तीति ॥ २३६ ॥

अर्थ-(एवम्) इस प्रकार के (वर्तमानस्य) वर्तमान (अधिकारिणः) अधिकारी सबके (अवश्यम्) अवश्य (अवलोकनीयाः) देखने योग्य (विषयाः) विषय (त्रयः) तीनठो हैं (अनुकूलाः) अनुकूल १, (प्रतिकूलाः) प्रतिकूल २, (च) और (अनुभयाः) अनुकूल तथा प्रतिकूल इन दोनोंसे भिन्न ३, हैं। (तत्र) उनमें (अनुकूलाः) अनुकूल विषय (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव हैं। तथा (प्रतिकूलाः) प्रतिकूल विषय (भगवद्द्विषः) भगवान्से द्वेष करनेवाले हैं। और (अनुभयाः) अनुकूल तथा प्रतिकूल इन दोनोंसे भिन्न अनुभय विषय (संसारिणः) संसारी जीव हैं। यदि (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव को (पश्यति) देखता है (चेत्) तो (चन्दनकुसुमताम्बूलानाम्) चंदन फूल पानोंके और (चन्द्रिकामलयमारुतयोः) चन्द्रिका तथा मलयमारुतके (अभिमतदर्शनस्य) अभिमत दर्शनके (इव) समान (प्रीतः) प्रसन्न (भवेत्) हो जाय। तथा यदि (भगवद्द्विषः) भगवान्से द्वेष करने वालोंको (पश्यति) देखता है (चेत्)

तो (सर्पाग्निद्विषः) साँप तथा आगको देखनेके (इव) समान (भीतः) डर युक्त (भवेत्) हो जाय और यदि (अनुभयान्) अनुकूल तथा प्रतिकूल इन दोनोंसे भिन्न अनुभयों को (पश्यति) देखता है (चेत्) तो (काष्ठलोष्ठादीन्) काठ ढ़ेले आदिके (इव) समान (उपेक्ष्य) उपेक्षा कर (वर्तेत) रहे। (एवम्) इस पूर्वोक्त प्रकार की (वृत्तेः) वृत्ति का (विरोधी) विरोधी (अर्थकामप्रावण्यम्) अर्थ और कामकी प्रवणता है। (अर्थकामहेतुना) अर्थ और कामके कारणसे (अनुकूलान्) अनुकूल (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को यदि (परिभावयति) अनादर करता है (चेत्) तो (राजपुत्रपरिभवे) राजा के पुत्रका अनादर (कृते) करनेपर (राजहृदयवत्) राजा के हृदयके समान (ईश्वरस्य) परमेश्वरका (हृदयम्) हृदय (दुःखितम्) दुःखी (भवति) होता है। तथा (प्रतिकूलान्) प्रतिकूल (भगवद्द्विषः) भगवान्से द्वेष करनेवालोंको (अर्थकामहेतुना) अर्थ और कामके कारणसे (आद्रियते) आदर करता है (चेत्) तो (सार्वभौमस्य) सार्वभौम चक्रवर्ती (राज्ञः) राजाकी (महिषी) कृताभिषेका रानी (क्षुद्रजन्तून्) छोटे जीवोंसे यदि (याचते) याचना करती है (चेत्) तो (राज्ञः) सार्वभौम राजाके (इव) समान (भगवतः) भगवान्के (अवद्यम्) निन्दित (भवेत्) होगा। (च) और (तस्य) उस भगवान्का (हृदयम्) हृदय (दुखितम्) दुःखी (भवति) होता है और (अनुभयान्) अनुकूल तथा प्रतिकूल इन दोनोंसे भिन्न अनुभय (संसारिणः) संसारी जीवोंको (अर्थकामहेतुना) अर्थ और कामके कारणसे यदि (आद्रियते) आदर करता है। (चेत्) तो (रत्नपाषाणयोः) रत्न तथा पत्थर के (तारतम्यानभिज्ञः) तारतम्यको नहीं जाननेवालोंके (इव) समान (अस्माकम्) हम सबोंके (च) और (इतरेषाम्) अन्य सबोंके (तारतम्यम्) तारतम्यको (अयम्) यह पुरुष (न) नहीं (जानाति) जानता है (अस्य) इस पुरुषका (उत्पन्नम्) उत्पन्न (ज्ञानम्) ज्ञान (कार्यकरम्) कार्य करनेवाला (न) नहीं (अभवत्) हुआ है (इति) इस प्रकारके (एतद्विषये) इसके विषयमें (ईश्वरः) परमेश्वर (सदा) हमेशा (उदासीनः) उदासीन (भवति) होते हैं (इति) इस प्रकारकी श्रीभाष्यकारकी वार्ता है। इस दो सौ छत्तीसवीं वार्ता में एक सौ नव पद हैं। इति भाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३६ ॥

अब दाशरथिस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ दाशरथिवार्ता ॥

मू०-अथ[१] दाशरथि[२]वार्ता[३] प्रपन्नेन[४] यावच्छरीरं[५] काल-यापनार्थं[६] कर्तव्यानि[७] देहे-आत्मबुद्धिनिवृत्तिः[८] देहानुबन्धि-[९]

पदार्थेषु ममतानिवृत्तिः देहात्परस्यात्मनो ज्ञानं स्वरक्षण
प्राप्त्ययोग्यपारतन्त्र्यमेव स्वरूपमिति ज्ञानं पारतन्त्र्य-
सीमा तदीयशेषत्वमित्यवस्थानम्, उद्देश्यश्रीवैष्णवविषये
महोपकारभगवद्विषये च करणत्रयेण यथाशक्त्यनुकूल-
वृत्तिकरणं प्रातिकूल्यनिवृत्तिश्च-आचार्यरुचिपरिगृहीतद्व-
यार्थानुसन्धानम्, अभिमतदिव्यदेशेषु सदा-वर्तनं दिव्य-
प्रबन्धैः कालयापनं न्यायार्जितद्रव्येण क्षुन्निवृत्तिमात्रे
पर्याप्तिः देहात्माभिमाननिवृत्तिपूर्वकसांसारिकव्यापार-
निवृत्तिः परदेवताप्रतिपत्तिः प्रयोजनान्तरनिवृत्तिपूर्विका-
प्राप्यरुचिः साधनान्तरनिवृत्तिपूर्विका सिद्धोपायव्यवस्था,
एतत्सर्वमाचार्य्यकटाक्षेण-ईश्वरविषयीकारेण च सिध्य-
तीत्यध्यवसायः, आचार्यसान्निध्याभावे पिपासितस्य जला-
भिनिवेशवत् आचार्यविषयाभिनिवेशः भगवत्सान्निध्याभावे
मध्यमार्गे क्षुधितस्य ग्रामप्राप्त्यभिनिवेशवत् भगवदभिनि-
वेशः, एवं भूतस्याधिकारिणः श्रीवैष्णवश्रीपादतीर्थं सद्यो
जातायाः प्रजायाः मातृस्तन्यमिव भगवत्तीर्थं गोदुग्ध-
घृते इव दिव्यसूरिप्रबन्धोऽमृतपानमिव सामान्यशास्त्र-
प्रावण्यमभिमतभोजनमिव विविधफलनानाविधभगवन्मंत्र-
जपादिवासनाबलेन संसारधर्मानुवर्त्तनमिव द्वयानुसन्धानं
प्राप्यदेशवाससुखसमानमिति वक्तुमुचितम्, अन्यथा न
वक्तुं शक्यते यदा-आचार्य्यसमाश्रयणं जातं तदा प्रभृति
शरीरान्तरपरिग्रहपर्यन्तमेवं तिष्ठति चेत् तत्स्वरूपस्य स्व-

१०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११
स्वरूपस्य चानुरूपं भवति, अन्यथेश्वरः-अमुं पुरुषकार-
११२ ११३ ११४ ११५ ११६
पुरस्कारेण स्वीकृतत्वाद्विधिरिति रक्षतीति ॥ २३७ ॥

अर्थ-(अथ) इसके बाद (दाशरथिवार्त्ता) दाशरथि स्वामीजीकी वार्ता है कि (प्रपन्नेन) प्रपन्नजन करके (यावत्) जबतक (शरीरम्) देह रहे तबतक (कालयापनार्थम्) समय बितानेके लिये (कर्तव्यानि) करने योग्य ये अधोलिखित कर्म हैं। (देहे) शरीरमें (आत्मबुद्धिनिवृत्तिः) आत्माकी बुद्धिको दूर करना। (देहानुबन्धिपदार्थेषु) शरीरके अनुबन्धी पदार्थोंमें (ममतानिवृत्तिः) ममताको दूर करना। (देहात्) शरीरसे (परस्य) परे (आत्मनः) जीवात्मा के (ज्ञानम्) ज्ञान (स्वरक्षणप्राप्त्ययोग्यपारतन्त्र्यम्) अपनी रक्षा की प्राप्ति के अयोग्य जो परतंत्रता है वही (एव) निश्चय करके (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) इस प्रकारके (ज्ञानम्) ज्ञान है। (पारतन्त्र्यसीमा) परतन्त्रता की सीमा (तदीयशेषत्वम्) तदीय भागवतोंके शेषत्व (इति) इस प्रकार की (अवस्थानम्) अवस्थिति करना है। (उद्देश्यश्रीवैष्णवविषये) उद्देश्य श्रीवैष्णवों के विषयमें (च) और (महोपकारकभगवद्विषये) अत्यन्त उपकार करनेवाले भगवान्के विषयमें (करणत्रयेण) मन, वाणी, शरीर, इन तीनों करणोंसे (यथा) जैसे हो सके वैसे (शक्त्यनुकूलवृत्तिकरणम्) अपनी शक्ति के अनुकूल वृत्ति करना। (च) और (प्रातिकूल्यनिवृत्तिः) प्रतिकूलता को दूर करना। (आचार्य्यरुचिपरिगृहीतद्वयार्थानुसन्धानम्) आचार्यकी रुचिसे परिगृहीत द्वयमंत्र के अर्थ को अनुसन्धान करना। (अभिमतदिव्यदेशेषु) भगवद्भागवत आचार्योंके अभिमत श्रीरंगम् आदिक दिव्य देशोंमें (सदा) हमेशा (वर्तनम्) रहना। (दिव्यप्रबन्धैः) दिव्य सहस्रगीति आदि प्रबन्धोंसे (कालयापनम्) समयको व्यतीत करना। (न्यायार्जितद्रव्येण) न्याय से उपार्जन किये हुए द्रव्य से (क्षुन्निवृत्तिमात्रे) भूखकी निवृत्तिमात्रमें (पर्याप्तिः) संतुष्ट रहना। (देहात्माभिमाननिवृत्तिपूर्वकसांसारिकव्यापारनिवृत्तिः) देहमें आत्माके अभिमान निवृत्तिपूर्वक दुनियादारी व्यापार की निवृत्ति करना। (परदेवताप्रतिपत्तिः) पर देव श्रीमन्नारायण भगवान्में प्रतिपत्ति करना। (प्रयोजनान्तरनिवृत्तिपूर्विका) भगवत् प्राप्तिसे अन्य प्रयोजनों की निवृत्ति पूर्वक (प्राप्यरुचिः) प्राप्त करने योग्य वस्तुमें प्रीति करना। (साधनान्तरनिवृत्तिपूर्विका) भगवान्से अन्य उपायों की निवृत्ति पूर्वक (सिद्धोपायव्यवस्था) सिद्ध उपायमें व्यवस्था करना। (एतत्) यह (सर्वम्) सब पूर्वोक्त (आचार्य्यकटाक्षेण) सदाचार्य की कृपा कटाक्षसे (च) और (ईश्वरविषयीकारेण) परमेश्वरके विषयीकारसे (सिध्यति) सिद्ध होता है (इति) इस प्रकारके (अध्यवसायः) निश्चय करके यत्न करना। (आचार्यसान्निध्याभावे) आचार्यके सान्निध्यके अभाव होनेपर (पिपासितस्य)

प्यासे हुए पुरुषके (जलाभिनिवेशवत्) जलके अभिनिवेशके समान (आर्चायविषयाभिनिवेशः) आचार्यके विषयका अभिनिवेश है। (भगवत्सान्निध्याभावे) भगवान्‌के सान्निध्यके अभाव होनेपर (मध्यमार्गे) बीच रास्तेमें (क्षुधितस्य) भूखे हुए पुरुषके (ग्रामप्राप्त्यभिनिवेशवत्) ग्राम प्राप्तिके अभिनिवेश के समान (भगवदभिनिवेशः) श्रीमन्नारायण भगवान्‌का अभिनिवेश है। (एवम्) इस प्रकारके (भूतस्य) भये हुए (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुषके (श्रीवैष्णवश्रीपादतीर्थम्) श्रीवैष्णवोंके श्रीपादतीर्थ (सद्यः) तुरन्त ही (जातायाः) उत्पन्न हुई (प्रजायाः) सन्ततिके (मातृस्तन्यम्) माताके स्तनके दूधके (इव) समान है। (भगवत्तीर्थम्) भगवान का तोर्थ (गोदुग्धघृते) गौके दूध और घी के (इव) समान है। (दिव्यसूरिप्रबन्धः) दिव्यसूरिपरांकुशमुनि प्रभृतिके प्रबन्ध (अमृतपानम्) अमृतापानके (इव) समान है। (सामान्यशास्त्रप्रावण्यम्) सामान्यशास्त्रकी प्रवणता (अभिमतभोजनम्) अभिमत भोजनके (इव) समान है। (विविधफलनानाविधभगवन्मंत्रजपादिवासनाबलेन) अनेक प्रकारके फलसे युक्त अनेक प्रकारके भगवान्‌के मंत्रोंके जप आदिक की वासना के बलसे (संसारधर्मानुवर्तनम्) संसार के धर्मके अनुवर्तन के (इव) समान है। (द्वयानुसन्धानम्) द्वयमंत्रका अनुसन्धान (प्राप्यदेशवाससुखसमानम्) प्राप्ति करने योग्य वैकुण्ठ लोक के निवास के सुखके समान है। (इति) इस प्रकारके (वक्तुम्) कहने के लिए (उचितम्) उचित है। (अन्यथा) इस पूर्वोक्त कथन से भिन्न (न) नहीं (वक्तुम्) कहने के लिये (शक्यते) समर्थ हो सकता है। (यदा) जब (आचार्य्यसमाश्रयणम्) सदाचार्य का समाश्रयण (जातम्) हो गया (तदा) तब (प्रभृति) से लेकर (शरीरान्तरपरिग्रहपर्यन्तम्) दूसरे देहके धारण पर्यन्त (एवम्) इस पूर्वोक्त प्रकारके (तिष्ठति) यदि ठहरता है (चेत्) तो (तत्स्वरूपस्य) उस स्वरूप के (च) और (स्वरूपस्य) अपने स्वरूपके (अनुरूपम्) अनुरूप (भवति) होता है। (अन्यथा) पूर्वोक्त प्रकारको नहीं मानने पर (ईश्वरः) परमेश्वर (अमुम्) इस चेतन को (पुरुषकारपुरस्कारेण) पुरुषकारके पुरस्कारसे (स्वीकृतत्वात्) स्वीकार करनेसे (विधिः) विधान है (इति) इस प्रकारसे (रक्षति) रक्षा करता है (इति) इस प्रकार की दाशरथि स्वामीजी की यह वार्ता है। इस वार्तामें जीव को परतन्त्र बतलाया गया है। इससे यहाँपर कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि इसमें क्या प्रमाण है कि जीव परतन्त्र है ? इस विषयमें यह कहना है कि जीव सर्वदा ईश्वरका परतन्त्र है। इस विषय में अधोलिखित प्रमाणों को सज्जन लोग अवलोकन करें॥ **सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सः॥ बृह० अ० ४, ब्रा० ४, श्रु० २२॥** वह परमात्मा सबको वशमें रखनेवाला सबका ईशान और सब चर-अचर का अधिपति है॥ २२॥ और भी लिखा है कि-

॥ एको देवः सर्वभूते गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ श्वेताश्व० अ० ६, श्रु० ११ ॥

एक दिव्य देव परमेश्वर सब जीवोंमें छिपा हुआ है, वह सर्वव्यापी सब जीवोंकी अन्तरात्मा सब कर्मोंका अध्यक्ष सब जीवोंमें निवास करनेवाला साक्षी सबकोचेतना देनेवाला और प्राकृत गुणोंसे रहित केवल है ॥ ११ ॥ और वेदान्तदर्शनमें लिखा है कि-**परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ वे० अ० २, पा० ३, सू० ४१ ॥** जीव ईश्वरके अधीन है, श्रुति प्रमाण होनेसे ॥ ४१ ॥ इसमें यह नीचे की श्रुति प्रमाण है ।

॥ एष ह्येव साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष उ एवाऽसाधुकर्म कारयति तं यमधो निनीषते ॥

निश्चय करके वही परमात्मा उस जीव से सुकर्म कराता है जिस जीवको ऊपर ले जाने की इच्छा करता है और वही परमात्मा उस जीव से पाप कर्म कराता है जिस जीवको नीचे ले जानेकी इच्छा करता है । और भी वेदान्तदर्शनमें लिखा है कि-**कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ वे० अ० २, पा० ३, सू० ४२ ॥** किये हुए प्रयत्नों की अपेक्षा युक्त परमात्मा करता है विहित या प्रतिषिद्धोंके वृथा न होने आदिक हेतुओंसे ॥ ४२ ॥ और भगवद्गीता में लिखा है कि-

॥ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६१ ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर सब जीवों के हृदय स्थानमें विराजमान रहता है और अपनी माया से सब जीवोंको कर्मानुसार काठकी पुतली की तरह घुमाता है ॥ ६१ ॥ और महाभारत में लिखा है कि-

॥ यद्यायं पुरुषः किंचित्कुरुते वै शुभाशुभम् । तद्भातृविहितं विद्धि पूर्वकर्मफलोदयम् ॥ महाभार० वनप० अ० ३२, श्लो० २२ ॥

निश्चय करके यह पुरुष जो कुछ शुभाशुभ कर्मको करता है उसको पूर्व कर्मके फलका उदय ईश्वर से किया हुआ जानो ॥ २२ ॥ और भी लिखा है कि-

॥ नह्येव कर्ता पुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः । अस्वतन्त्रो हि पुरुषः कार्यते दारुयन्त्रवत् ॥ महाभा० उद्योगप० अ० १२९, श्लो० १४ ॥

पुरुष शुभाशुभ कर्मोंका करनेवाला नहीं है, पुरुष अस्वतन्त्र है, काठके यंत्रोंके समान कर्मोंमें नियुक्त किया जाता है ॥ १४ ॥ और लिखा है कि-

॥ एतत्प्रधानं च न कामकारो यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि । भूतानि सर्वाणि

विधि र्नियुङ्क्ते विधिर्बलीयानिति वित्त सर्वे ॥ महाभा० शान्तिप० आपद्ध० ३७, श्लो० ४८ ॥

यह बात मुख्य है कि मैं इच्छा के अनुसार कर्म करनेवाला नहीं हूँ, जिस प्रकार नियुक्त किया गया हूँ उसी प्रकार करता हूँ, सम्पूर्ण जीवोंको परमात्मा नियुक्त करता है, परमेश्वर बलवान् है तुम सब इस प्रकार के जानो ।। ४८ ।। और पाण्डव गीता में लिखा है कि-

॥ जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति र्जानामि पापं न च मे निवृत्तिः । केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥ पाण्डवगी० श्लो० ५८ ॥

मैं धर्म को तो जानता हूँ परन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं है, और पापों को भी जानता हूँ परन्तु उनमें मेरी निवृत्ति नहीं है, किसी हृदय में बैठे हुए देवकी प्रेरणानुसार जैसा वह चाहता है वैसा ही मैं करता हूँ ।। ५९ ।। इन पूर्वोक्त श्रुति स्मृति सूत्र इतिहासके प्रमाणों से स्पष्ट साबित होता है कि जीव परतन्त्र है । इस दो सौ सैंतिसवीं वार्ता में एक सौ सोलह पद हैं । इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३७ ॥

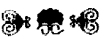
अब पराशरभट्टाचार्यस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ भट्टारकोक्तावार्ता ॥

मू०-अथ[१] वेदान्तिनं[२] प्रति[३] भट्टारकै[४]रुक्ता[५] दशार्था[६]: समारोपितसम्भारा[७]याः नाव[८]: प्रतीपपवनेन[९] समुद्रस्थपर्वत[१०]-शिखरसम्पीडनेन[११] महासमुद्रप्रवेशेन[१२] महामत्स्यपुच्छ[१३]-विक्षेपेण[१४] वा यथा[१५]-अप्रतिकारो[१६] नाशो[१७] भवति[१८], तथा[१९] भग[२०]-वन्निरणयो: कृतप्रपत्तेर्भागवतविषयेषु[२१] ज्ञात्वा[२२]-अज्ञात्वा[२३] वा[२४] कृतैरपचारै[२५]: केचनान्तराया[२६]: नाशपर्यन्ता[२७]: सम्भवे[२८]यु[२९]-स्तत्सम्भावनानिवृत्त्यर्थम्[३०] इमान्[३१] दशार्थान्[३२] ज्ञात्वाअनुष्ठाय[३३] निर्भरो[३४] वक्षसि[३५] हस्तं[३६] निक्षिप्य[३७] स्वपेत्[३८] ॥

अर्थ-(अथ) इसके बाद (वेदान्तिनम्) वेदान्तीस्वामीजी के (प्रति) प्रति (भट्टारकै:) पराशरभट्टाचार्यस्वामीजीसे (उक्ता:) कहे हुए (दश) दस (अर्था:) अर्थ

हैं । (समारोपितसम्भाराया:) अच्छे प्रकार से अपनी बोझसे भरी हुई (नाव:) नौका के (प्रतीपपवनेन) प्रतिकूल बड़ी भारी आन्धी से या (समुद्रस्थपर्वतशिखरसंपीडनेन) समुद्र में स्थित पहाड़के शिखर से अच्छे प्रकारसे ठोकर लग जानेसे या (महासमुद्रप्रवेशेन) महासागर में प्रवेश करनेसे (वा) अथवा (महामत्स्यपुच्छविक्षेपेण) बड़ी भारी मछलीकी पूँछ के मारनेसे (यथा) जैसे (अप्रतिकार:) बिना उपायका (नाश:) नाश (भवति) होता है (तथा) वैसे ही (भगवच्चरणयो:) श्रीमन्नारायण भगवान्के दोनों चरणारविन्दोंमें (कृतप्रपत्ते:) प्रपत्ति किये हुए प्रपन्न जनके (भागवतविषयेषु) भागवतोंके विषयमें (ज्ञात्वा) जानकर (वा) अथवा (अज्ञात्वा) नहीं जान कर (कृतै:) किये हुए (अपचारै:) अपराधोंसे (केचन) कुछ (अन्तराया:) विघ्न (नाशपर्यन्ता:) नाशपर्यन्त अच्छे प्रकारसे होनेवाले विघ्नोंकी संभावना निवृत्तिके लिये (इमान्) इन अधोलिखित (दश) दस (अर्थान्) अर्थोंको (ज्ञात्वा) जानकर (अनुष्ठाय) अनुष्ठान कर (निर्भर:) निर्भर हो (हस्तम्) हाथ को (वक्षसि) छाती पर (निक्षिप्य) रखकर (स्वपेत्) शयन करे ॥ शमिति ॥



१ २ ३ ४ ५ ६
मू०–ते च-आचार्य्यः स्वहृदयेन-अनवरतमात्मानं
७ ८ ९ १० ११ १२ १३
यथा स्मरति तथा शरीरार्थप्राणान् विनाश्यापि-एकं
१४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
कैंकर्यं कुर्यात्, भगवद्विषये यथा सर्वे प्रशंसन्ति तथा
२१ २२ २३ २४ २५
भगवदभिमतं स्वहृदयानुकूलम् एकं कैंकर्य्यं कुर्यात्,
२६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२
भागवतविषयेऽपि तथैव सर्वत्र श्रीवैष्णवगोष्ठ्यामयं-
३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९
कल्याणः भागवतविषये कैंकर्यं सम्यक् करोतीति यथा
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६
सर्वे प्रशंसन्ति तथा कुर्यात्, सर्वसाक्षी सर्वज्ञ ईश्वरो
४७ ४८ ४९ ५० ५१
यथा न परिहसति तथा- अतिदुर्गन्धाल्पास्थिरफलश्रद्धया-
५२ ५३ ५४ ५५
एकान्तेऽप्यन्यदेवतोपासनादिभ्यो निवर्त्तेत, अन्यदेवतो-
५६ ५७ ५८ ५९
पासकैः सह गमनसहवाससहावस्थानसंभाषणादीन् कथं-
६० ६१ ६२ ६३ ६४
चित्परित्यजेत्, अन्नगन्धाशया मूषकः पिञ्जराक्रान्तो
६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७०
यथानर्थं प्राप्नोति तथा-अर्थसंबन्धादिनिमित्तेन भोजना-

सनशयनादिसंबन्धेन[७१] विनष्टज्ञानः-उत्पन्नविपरीतज्ञानः-[७२]
श्रीवैष्णवगोष्ठ्या[७३] बहिष्कृतो[७४] भवति[७५], शिरश्छेदाभिषेकपर्यन्त-[७६]
महापत्सु[७७] संपत्संभवेऽपि[७८] यथात्मधर्मप्रच्युतिर्न[७९] भवेत्[८०] तथा-[८१]
दृष्ट्वाध्यवसायनिष्ठो[८२] भवेत्[८३], अत्र[८४] निदर्शनं[८५] महापूर्णः[८६]
क्रूरेशश्च[८७] ॥[८८][८९][९०][९१]

अर्थ-(च) और (ते) वे दस अर्थ ये हैं कि (आचार्यः) सदाचार्य (स्वहृदयेन) अपने हृदयसे (अनवरतम्) हमेशा (आत्मानम्) आत्मा को (यथा) जैसे (स्मरति) स्मरण करते हैं (तथा) वैसे ही (शरीरार्थप्राणान्) देह तथा अर्थ और प्राणोंको (विनाश्य) विनाश कर (अपि) भी (एकम्) एक (कैंकर्यम्) कैंकर्यको (कुर्यात्) करे। "कुर्यात्" यहाँ पर ॥ **ये च व्या० अ० ६, पा० ४ सू० १०९** ॥ इस सूत्रसे उ लोप हुआ है। (यथा) जैसे (सर्वे) सब लोग (भगवद्विषये) भगवान्के विषयमें (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं (तथा) वैसे ही (भगवदभिमतम्) भगवान्के अभिमत (स्वहृदयानुकूलम्) अपने हृदय के अनुकूल (एकम्) एक (कैंकर्यम्) कैंकर्य्य को (कुर्यात्) करे। (भागवतविषये) भागवतोंके विषयमें (अपि) भी (तथा) वैसे ही अर्थात् भगवान्के समान ही (एव) निश्चय करके कैंकर्य करे। (सर्वत्र) सब जगह पर (श्रीवैष्णवगोष्ठ्याम्) श्रीवैष्णवोंकी गोष्ठीमें (अयम्) यह (कल्याणः) कल्याण है कि (भागवतविषये) भागवतों के विषय में (कैंकर्यम्) कैंकर्यको (सम्यक्) अच्छे प्रकारसे (करोति) करते हैं (इति) इस प्रकारके (यथा) जैसे (सर्वे) सब लोग (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं (तथा) वैसे ही (कुर्यात्) कैंकर्य को करे। (सर्वसाक्षी) सबका साक्षी (सर्वज्ञः) सबको जाननेवाला (ईश्वरः) परमेश्वर (यथा) जिससे (न) नहीं (परिहसति) परिहास करते हैं (तथा) वैसे ही (अतिदुर्गन्धाल्पास्थिरफलश्रद्धया) अत्यन्त दुर्गन्ध तथा अत्यन्त थोड़ा और अत्यन्त चंचल फलकी श्रद्धा से (एकान्ते) एकान्त में (अपि) भी (अन्यदेवतोपासनादिभ्यः) श्रीमन्नारायणसे अन्य देवता आदिकी उपासनादिकोंसे (निवर्तेत) निवृत्त हो जावे। (अन्यदेवतोपासकैः) श्रीमन्नारायणसे अन्य देवताओंकी उपासना करनेवालोंके (सह) साथ (गमनसहवाससहावस्थानसंभाषणादीन्) चलना, साथ निवास करना, एक साथ ठहरना, बात करना, और आदि शब्दसे जल पीना, भोजन करना, व्यवहार करना इत्यादि सब कामोंको (कथंचित्) किसी प्रकारसे भी (परित्यजेत्) परित्याग कर दे। (अन्नगन्धाशया) अन्नके गन्धकी आशा से (मूषकः) चूहा (पिञ्जराक्रान्तः) पिंजड़ेमें फँसकर (यथा) जैसे (अनर्थम्) अनर्थको

(प्राप्नोति) प्राप्त करता है (तथा) वैसे ही (अर्थसंबन्धादिनिमित्तेन) अर्थ और संबन्ध आदिके कारणसे (भोजनासनशयनादि संबन्धेन) भोजन तथा आसन और शयन आदि के संबन्धसे (विनष्टज्ञानः) विशेष रूपसे नष्ट हो गया है ज्ञान जिसका वह पुरुष और (उत्पन्नविपरीतज्ञानः) उत्पन्न हो गया है उलटा ज्ञान जिसका वह पुरुष (श्रीवैष्णवगोष्ठ्या) श्रीवैष्णवोंकी गोष्ठीसे (बहिष्कृतः) वहिष्कृत (भवति) होता है। (शिरश्छेदाभिषेकपर्यन्तमहापत्सु) मरण और अभिषेक पर्यन्त बड़ी भारी आपत्तियोंमें (संपत्संभवे) संपत्तिके संभव होनेपर (अपि) भी (यथा) जैसे (आत्मधर्मप्रच्युतिः) अपने धर्मसे पतन (न) नहीं (भवेत्) होवे (तथा) वैसे ही (दृष्ट्वा) देखकर (अध्यवसायनिष्ठः) अध्यवसायमें निष्ठ (भवेत्) होवे। (अत्र) इस विषयमें (निदर्शनम्) दृष्टान्त (महापूर्णः) महापूर्णस्वामीजी हैं (च) और (कूरेशः) कूरेश स्वामीजी हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि महापूर्णस्वामीजी और कूरेशस्वामीजी कैसे पूर्वोक्त विषयमें निदर्शन हैं? इस प्रश्नका उत्तर देखिये "प्रपन्नामृत" में लिखा है कि चोलदेशका राजा कृमिकण्ठ ने कहा कि-

॥ शिवात्परतरं नास्तिचेत्येवं लिख सत्वरम् ॥ प्रपन्ना० अ० ४९, श्लो०, १५ ॥

शिवसे परतर तत्त्व नहीं हैं ऐसा जल्दी से लिखो ॥ १५ ॥ इस प्रकारक बारं-बार कहने पर-**॥ कूरनाथो लिलेखेति द्रोणमस्ति ततः परम् ॥ १६ ॥**

कूरेशस्वामीजी ने शिवसे पर द्रोण है इस प्रकारका लिखा ॥ १६ ॥ इसके बाद उस कृमिकण्ठ राजा ने-

॥ दूतानाज्ञापयामास नेत्रोत्पाटनकर्मणि ॥ प्रपन्ना० अ० ४९, श्लो० १७ ॥

दूतों को आँख फोड़ने के लिये आज्ञा दी ॥ १७ ॥ और उसकी आज्ञासे-

॥ तथा चक्रुर्यतिश्रेष्ठ ते दूता राजशासनात् । वृद्धत्वात्स तु पूर्णार्यो नेत्रोत्पाटनवेदनः ॥ १८ ॥ शरीरधारणे शक्तो नाभवद्यतिपुंगवः ॥ १९ ॥

वे दूत सब राजाके शासनसे महापूर्ण स्वामीजीकी और कूरेशस्वामीजीकी आँख फोड़ दिये और वृद्ध होनेके कारणसे वह महापूर्णस्वामीजी आँख फूटनेकी दर्द से ॥ १८ ॥ ये यतिपुंगव शरीरधारण करनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥ १९ ॥

यामुनाचार्य्यपादाब्जं ध्यायंस्तूर्णं जहौ तनुम् ॥ २५ ॥

यामुनाचार्य्य स्वामीजीके चरणारविन्दको ध्यान करते हुए जल्दीसे शरीरको छोड़ दिये ॥ २५ ॥ और ॥ २६ ॥ **कूरेशोनेत्रहीनोऽभूत्** ॥ २६ ॥ कूरेशस्वामीजी नेत्रहीन हो गये ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर है ॥ कमिति ॥

मू०–सामान्यशास्त्रे-अतीव हृदयमप्रविश्य विशेष शास्त्रेऽनवरतपरिचयं कुर्वन् अनुष्ठानेऽपि तथा भूतो निःसंशयो भवेत्, आदिभरतः तिरुक्कुण्णमंगैयाण्डान् अत्र प्रमाणम् अस्माकं दुर्लभं खल्विति चेत् आरोहतोऽश्वः स्वाधीनः मृदुहृदयानां सर्वेषामपि-अत्राध्यवसायः सुलभः काचिदभ्यासेन हस्तिनमुद्धारेति ह्यैतिह्यं श्रीरङ्गवेङ्कटकाञ्चीप्रभृतिषु प्रसिद्धक्षेत्रेषु नित्यवासं कुर्यात्, तत्र नित्यं वसन्तोऽभियुक्ताः श्रीवैष्णवाः यथा सदा स्मरेयुस्तथा प्राप्तः सन् अर्थोपकारेण शेषवृत्त्या वा अनुकूलवृत्तिं कुर्यात् पुत्रक्षेत्रकलत्रार्थमित्रदेहादिषु-अतिप्रसक्तिमकुर्वन् आचार्यकृतात्महितप्रयुक्तवैलक्षण्यं यथा ज्ञायते तथा तेषु निःसंगस्तिष्ठेत्, भगवद्भागवतकैंकर्य्येषु अतिप्रीतिमान्संसारेष्वनित्यतामनुसंदधानः-तेषु सवासनरागनिवर्त्तकं नित्यं प्रियतमं सकलविधबन्धुं भगवन्तं निरन्तरमनुसंदधानस्तिष्ठेत्, इमे दशार्थाः प्रतिपत्तिस्थानम् ॥ २३८ ॥

अर्थ-(सामान्यशास्त्रे)सामान्य शास्त्रमें (अति) अत्यन्त के (इव) समान (हृदयम्) हृदयको (अप्रविश्य) नहीं प्रवेशकर (विशेषशास्त्रे) विशेष शास्त्रमें(अनवरतपरिचयम्) हमेशा परिचयको (कुर्वन्) करते हुए (अनुष्ठाने) अनुष्ठान करनेमें (अपि) भी (तथा) वैसे (भूतः) भया हुआ (निःसंशयः) बिना सन्देहके (भवेत्) होवे। (अत्र) इस पूर्वोक्त विषयमें (प्रमाणम्) प्रमाण (आदिभरतः) आदि भरत और (तिरुक्कुण्णमंगैयाण्डान्) तिरुक्कुण्णमंगैयाण्डान् महात्मा हैं। (अस्माकम्) हम सबोंके (दुर्लभम्) दुलर्भ (खलु) निश्चय करके है। (इति) इस प्रकारके यदि (चेत्) हो तो (आरोहतः) चढ़नेसे (अश्वः) घोड़ा (स्वाधीनः) अपने अधीन होता है। (मृदुहृदयानाम्) कोमल हृदयवाले (सर्वेषाम्) सब पुरुषोंको (अपि) भी (अत्र) इस विषयमें (अध्यवसायः) यत्न करना (सुलभः) सुलभ है। (काचित्)

किसी स्त्रीने (अभ्यासेन) अभ्याससे (हस्तिनम्) हाथीको (उद्धार) ऊपर धारण किया (इति) इस प्रकार के (हि) निश्चय करके (ऐतिह्यम्) ऐतिह्यलोक प्रसिद्ध है। (श्रीरंगवेंकटकांचीप्रभृतिषु) श्रीरंगक्षेत्र वेंकटाचल काँची और प्रभृति शब्दसे यदुगिरि पुरुषोत्तमक्षेत्र नारायणक्षेत्र अयोध्या वृन्दावन, द्वारका, प्रयाग सिद्धाश्रम आदिक (प्रसिद्धक्षेत्रेषु) प्रसिद्ध क्षेत्रोंमें (नित्यवासम्) हमेशा निवास (कुर्यात्) करे। (तत्र) उन प्रसिद्ध क्षेत्रोंमें (नित्यम्) हमेशा (वसन्तः) रहनेवाले (अभियुक्ताः) अभियुक्त (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (यथा) जैसे (सदा) हमेशा (स्मरेयुः) स्मरण करें (तथा) वैसे ही (प्राप्तः) प्राप्त (सन्) होते हुए (अर्थोपकारेण) अर्थ के उपकार से (वा) अथवा (शेषवृत्त्या) शेषत्वकी से वृत्तिसे (अनुकूलवृत्तिम्)अनुकूल वृत्तिको(कुर्यात्) करे। (पुत्रक्षेत्रकलत्रार्थमित्रादेहादिषु) पुत्र, खेत, स्त्री, द्रव्य, मित्र, शरीर, और आदि शब्दसे पशु, पक्षी आदिक सम्बन्धियोंमें (अतिप्रसक्तिम्) अत्यन्त प्रसक्ति को (अकुर्वन्) नहीं करते हुए (आचार्यकृतात्महितप्रयुक्तवैलक्षण्यम्) आचार्यसे कृत आत्माके हित प्रयुक्त विलक्षणता (यथा) जैसे (ज्ञायते) जानी जाती है (तथा) वैसे ही (तेषु) उन विषयोंमें (निःसंगः) बिना आसक्ति के (तिष्ठेत्) ठहरे। (भगवद्भागवतकैंकर्येषु) भगवान् और भागवतोंके कैंकर्यमें (अतिप्रीतिमान्) अत्यन्त प्रीतिवाला (संसारेषु) संसारमें (अनित्यताम्) अनित्यताको (अनुसंदधानः) अनुसंधान करता हुआ (तेषु) उन अनित्य पदार्थों में (सवासनरागनिवर्तकम्) वासना सहित रागको दूर करनेवाला (नित्यम्) नित्य (प्रियतमम्) अतिशय प्रिय (सकलविधबन्धुम्) सब प्रकारके बन्धु (भगवन्तम्) भगवान्को (निरन्तरम्) निरन्तर (अनुसंदधानः) अनुसंधान करता हुअ (तिष्ठेत्) ठहरे (इमे) ये (दश) दसठो (अर्थाः) अर्थ (प्रतिपत्तिस्थानम्) प्रतिपत्तिके स्थान हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि आदि भरतका चरित्र कहाँ पर कैसा लिखा हुआ है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध में लिखा है कि महाभागवत भरत अनेक प्रकारके वैदिक कर्मों को करके अपने पुत्रों के लिये धनको बाँटकर ॥ **स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ५, अ० ७, श्लो० ८ ॥** अपने मकानसे पुलह महर्षिके आश्रम पर चले गये ॥ ८ ॥ वहाँ पर अनेक प्रकारके पदार्थों से भगवान्का अराधन करता हुए ठहरे। वह भरत एक समय में वहाँ पर नारायणी नदीमें स्नान करके उस नदीके पासही में बैठे थे कि सिंह के शब्द को सुनकर डरी हुई एक हरिणी नदी के प्रवाह में कूदी, और उसकी योनि से एक हरिण का बच्चा जलमें गिरा और थोड़े दूर पर वह हरिणी मर गई। तब वह भरत इस दीन हरिणके बच्चे की रक्षा करना परमधर्म है, ऐसा विचार कर उसमें अत्यन्त आसक्त होकर उसकी रक्षा करने लगे। और कराल कालके आने पर उस हरिण को सोचते हुए मर गये।

तथा मर कर ॥ **मृगशरीरमवाप ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ५, अ० ८, श्लो० २७ ॥** हरिण के देह को भरत ने प्राप्त किया ॥ २७ ॥ इससे साबित हो गया कि सामान्य शास्त्रमें अत्यन्त हृदयको आसक्त न करे। इस प्रकार के पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि तिरुक्कुण्णमंगैयाण्डान् महात्मा का चरित्र कहाँ पर कैसा लिखा है। इस प्रश्न का उत्तर प्रपन्नामृतके एक सौ नवें अध्याय में लिखा है कि एक नौकर ने किसी दूसरे नौकर के कुत्ते को मारा तब वह कुत्ता जिस नौकर का था, वह नौकर मारनेवोले नौकर को मार कर अपने भी मर गया। इस वृत्तान्त को देखकर तिरुक्कुण्णमंगैयाण्डान् महात्मा ने सोचा कि एक क्षुद्र चेतन अपने अभिमत कुत्ते के लिये मर गया तो परमचतेन सर्वेश्वर के अभिमान में अन्तर्भूत होने पर वह क्या उद्धार न करेगा, ऐसा विचार कर अपनी रक्षा के व्यापारोंको छोड़कर उस कुत्ते के समान अपनेको मानकर श्रीकृष्ण मंगल क्षेत्रमें जाकर भक्तवत्सल भगवान्के द्वार पर कुत्ते के समान जानु और हाथसे चलते हुए रहने लगे इसके बाद ॥ **मोक्षदाने मतिं चक्रे भगवान् भक्तवत्सलः ॥ प्र० अ० १०९, श्लो० ८८ ॥**

भक्तवत्सल भगवान् ने तिरुक्कुण्णमंगैयाण्डान् महात्मा के लिये मोक्ष देने की मति की ॥ ८८ ॥ और वहाँ पर रहनेवाले सब नरनारियोंसे स्वप्न में कहा कि सबेरे कुत्तेकी वृत्तिवाले भागवतके लिये मैं मोक्ष दूँगा। इस प्रकारके स्वप्न होनेसे उस महात्माके पास में सबेरे बड़ी भीड़ हुई और सब लोगों के देखते ही–

यदनिर्वचनीयं तत्तेजो विद्युद् णोपमम्। अलक्ष्यत तदा तत्र नालक्ष्यत स वैष्णवः ॥ प्रपन्ना० अ० १०९, श्लो० ९९ ॥

विद्युद्गणके समान वह अनिर्वचनीय तेज वहाँ पर देखा गया, और वह श्रीवैष्णव तिरुक्कुण्णमंगैयाण्डान् वहाँ पर नहीं देखे गये ॥ ९९ ॥ इस प्रकारके। **मोक्षं प्रत्यक्षतो दत्वा तस्मै भक्ताय सत्वरम् ॥ १०१ ॥**

उस भक्त के लिये सबको देखते हुए मोक्षको देकर ॥ १०१ ॥ सबको मुग्ध कर दिया। इससे साबित हो गया कि विशेष शास्त्रमें हमेशा अत्यन्त प्रेम करना चाहिये। इस प्रकारका पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर है। इस दो सौ अड़तीसवीं वार्तामें दो सौ बीस पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम ॥ २३८ ॥

अब कण्डार आण्डानाचार्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कण्डारआण्डानाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–कण्डारआण्डानवार्ता श्रीवैष्णवस्य संसारमण्डल-
स्थितिं जानकी रावणगृहे स्थित्वा प्रादर्शयत्, तथाहि
श्रीलक्ष्मणविषये जानक्युक्ता वार्ता भगवच्चरणविश्लेषस्य
कारणं तथा तदीयापराधोऽस्य भगवच्चरणविश्लेषकारणं
भवेत्, जानक्या रावणगृहवास इवास्य देहसंबन्धः, जानक्या-
स्तर्जनभर्त्सनादिकर्त्रीराक्षसीसहवास इवास्य पुत्रकलत्र
सहवासः, जानक्या मारीचदर्शनवत् अस्य विषयप्रावण्यं
जानक्या रावणदर्शनवत् अस्येन्द्रियाणि, जानक्या हनुमद्द-
र्शनवत् अस्याचार्यदर्शनं जानक्या हनुमत्कृतरामगुणानु-
वादवत् अस्य दिव्यसूरिप्रबन्धाः जानक्या हनुमत्कृताङ्गु
लीयकवार्तावत् अस्याचार्यकृतगुरुपरम्परोपदेशः, जानक्य
हनुमद्दत्ताङ्गुलीयकवत् अस्याचार्य्योपदिष्टः श्रीमंत्र
जानक्याः श्रीविभीषणपुत्रीसल्लापसहायवत् अस्य श्रीवै-
ष्णवाः सल्लापसहायाः जानक्या विरोधिनो रावणादी-
न्निरस्य यथा स्वामी-अयोध्यां प्रापयत् तथा सर्वेश्वरोऽस्य
विरोधिनं प्रकृतिसंबन्धं निरस्य परमं पदं प्रापयति, एते
दशार्थाः यस्यानुष्ठानपर्यन्ताः शरीरावासनपर्यन्तं तिष्ठन्ति
स निरयाय भगवच्चरणौ प्राप्नोति ॥ २३९ ॥

॥ सीतास्तुतिः ॥

अर्थ– श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीसर्वदेहिनाम् ।
सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ॥ १८९ ॥

(कण्डारआण्डानवार्ता) कण्डार आण्डानाचार्य स्वामीजी की वार्ता है कि (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णवके (संसारमण्डलस्थितिम्) संसारमण्डलकी स्थिति को (जानकी) श्रीसीता देवीजी (रावणगृहे) लंकापुरी में (स्थित्वा) रहकर (प्रादर्शयत्) दिखायी हैं। (तथाहि) निश्चय करके उसीको दिखाते हैं कि (श्रीलक्ष्मणविषये) पंचवटी में श्रीलक्ष्मणजी के विषयमें (जानक्युक्ता) जानकी जी से कही हुई (वार्ता) जो मर्मवचनयुक्तवार्ता है वही (भगवच्चरणविश्लेषस्य) भगवान् रामचन्द्रजी के चरणारविन्दसे सीताजी के वियुक्त होनेका (कारणम्) कारण है। (तथा) वैसे ही (तदीयापराधः) भागवतापचार (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (भगवच्चरणविश्लेषकारणम्) भगवान्के चरणारविन्दके विश्लेषमें कारण (भवेत्) होगा। (जानक्याः) श्रीसीतादेवीके (रावणगृहवासः) लंका में निवास करनेके (इव) समान (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (देहसंबन्धः) शरीरके संबन्ध हैं। (जानक्याः) श्रीजानकीजीके (तर्जनभर्त्सनादिकत्रीराक्षसीसहवासः) तर्जन भर्त्सन आदि करनेवाली राक्षसियों के साथ अशोक वाटिका में श्रीसीताजीके वासके (इव) समान (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (पुत्रकलत्रसहवासः) पुत्र स्त्रीके साथ वास करना है। (जानक्याः) श्रीसीतादेवीजीके (मारीचदर्शनवत्) मारीच राक्षसके दर्शनके समान (अस्य) इस वैष्णवके (विषयप्रावण्यम्) विषयकी प्रवणता है। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (रावणदर्शनवत्) रावणके दर्शनके समान (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (इन्द्रयाणि) इन्द्रियाँ हैं। (जानक्याः) जानकीजीके (हनुमद्दर्शनवत्) हनुमान्जी के दर्शन के समान (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (आचार्य्यदर्शनम्) आचार्य के दर्शन हैं। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (हनुमत्कृतरामगुणानुवादवत्) हनुमानजी से किये हुए श्रीरामचन्द्रके गुणानुवादके समान (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (दिव्यसूरिप्रबन्धाः) दिव्यसूरिके सहस्रगीति आदि प्रबन्ध हैं। (जानक्याः) जानकीजीके (हनुमत्कृताङ्गुलीयकवार्तावत्) महावीरजीसे की हुई अंगूठी की वार्ताके समान (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (आचार्यकृतगुरुपरम्परोपदेशः) आचार्यसे किया हुआ गुरुपरंपरा का उपदेश है। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (हनुमद्दत्ताङ्गुलीयकवत्) हनुमान्जीसे दी हुई अूंगठी के समान (अस्य) इस श्रीवैष्णवके (आचार्योपदिष्टः) आचार्यसे उपदेश दिया हुआ (श्रीमंत्रः) श्रीमंत्र है। (जानक्याः) जानकीजीके (विभीषणपुत्रीसल्लापसहायवत्) श्रीविभीषणपुत्री त्रिजटा के सुन्दर भाषण और सहाय के समान (अस्य) इस चेतन के (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब हैं अर्थात् त्रिजटा के समान आपत्ति में साथ देने वाले श्रीवैष्णव हैं। (सल्लापसहायाः) और त्रिजटाके सुन्दर भाषण के समान श्रीवैष्णवों के सुन्दर भाषण हैं तथा त्रिजटा के सहाय के समान श्रीवैष्णवका सहाय है। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (विरोधिनः) विरोधी (रावणादीन्) रावण आदिको (निरस्य) मारकर (यथा) जैसे (स्वामी) स्वामी रामभद्र (अयोध्याम्)

अयोध्यापुरी में (प्रापयत्) श्रीसीताजी को प्राप्त कराये (तथा) वैसेही (सर्वेश्वरः) अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीमन्नारायण भगवान् (तस्य) इस श्रीवैष्णवके (विरोधिनम्) विरोधी (प्रकृतिसंबन्धम्) प्रकृतिके संबन्धको (निरस्य) दूर कर (परमम्) श्रेष्ठ (पदम्) स्थानको (प्रापयति) प्राप्त कराते हैं। (एते) ये पूर्वोक्त (दश) दस (अर्थाः) अर्थ (यस्य) जिस पुरुषके (अनुष्ठानपर्यन्ताः) अनुष्ठानपर्यन्त (शरीरावसानपर्यन्तम्) देहके आखिर समय तक (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं (सः) वह पुरुष (निरयाय) निरयके लिये अर्थात् नरकसे पार होने के लिये (भगवच्चरणौ) श्रीमन्नारायण भगवान्के दानों चरणारविन्दोंको (प्राप्नोति) प्राप्त करता है। अब यहाँ पर पहला प्रश्न यह होता है कि श्रीलक्ष्मणजी के विषय में कौन सी बात श्रीसीताजी बोली हैं जिससे कि श्रीरामजीके चरणसे विश्लेष हुआ है ? इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि-

तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा। सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्॥ वाल्मी० अरण्य० ३, सर्ग० ४५, श्लो० ५॥ यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे। इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते॥ ६॥ लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्। व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते॥ ७॥ तेन तिष्ठसि विश्रब्धो तमपश्यन्महाद्युतिम्। किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत्॥ ८॥ कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः॥ ९॥

पञ्चवटी में क्षुभित श्रीजानकीजी ने उस श्रीलक्ष्मणजीसे कहा है कि हे लक्ष्मण ! मित्ररूपसे तुम श्रीरामजीके शत्रु के समान हो॥ ५॥ जो कि तुम ऐसी अवस्था आने पर भी श्रीरामजी के पास में नहीं जाते हो। हे लक्ष्मण ! तुम मेरे लिये श्रीरामजी का विनाश चाहते हो॥ ६॥ निश्चय करके मेरे लिये लोभसे तुम श्रीराघवके पास में नहीं जाते हो, तुझे व्यसनप्रिय है ऐसा मैं मानती हूँ, तेरा भाई में स्नेह नहीं है॥ ७॥ उससे विश्रब्ध तुम उस महाद्युति वाले श्रीरामजीको बिना देखे हुए ठहरे हो। उस श्रीरामजीके संशय प्राप्त होने पर यहाँ पर मुझसे क्या हो सकता है॥ ८॥ यहाँ पर रहती हुई मुझसे करने योग्य क्या है जहाँ पर प्रधान तुम आये हो॥ ९॥ और भी श्रीसीताजी-

॥ अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम्। अनार्यकरुणारम्भनृशंस कुलपांसन॥ वा० रा० अर० ३, सर्ग० ४५ श्लो० २१॥ अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्। रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानिप्रभाषसे॥ २२॥ नैव चित्रं सपत्नेषु पापं लक्ष्मण यद्भवेत्। त्वद्विधेषु नृशंसेषु नित्यं प्रच्छन्नचारिषु॥ २३॥ सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि। मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥ २४॥ तन्न सिध्यति सौमित्रे तवापि भरतस्य वा। कथमिन्दीवरश्यामं रामं

पद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्य भर्तारं कामयेयं पृथग्जनम् । समक्षं तव सौमित्रे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले ॥ २७ ॥

सच्चे बोलने वाले श्रीलक्ष्मणजीसे परुष वाक्यको बोली कि हे अनार्य करुणारम्भ ! हे नृशंस ! हे कुलपांसन लक्ष्मण ! ॥ २१ ॥ मैं ऐसा समझती हूँ कि श्रीरामजीका बड़ा व्यसन ही तुझ को प्रिय है इससे श्रीरामके व्यसन को देखकर ऐसे तुम कहते हो ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! तेरे समान नृशंस हमेशा छिप कर साथ चलने वाले सपत्नों के विषयमें जो पाप हो जावे इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ २३ ॥ अत्यन्त दुष्ट तुम मेरे लिये कपट से छिपे हुए अथवा भरतसे नियुक्त वनमें अकेला श्रीरामजीके पीछे-पीछे तुम चलते हो ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! तेरा और भरतका मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता है । पद्मके समान नेत्र वाले इन्दीवर श्यामसुन्दर मङ्गलमय विग्रह वाले श्रीरामजी को कैसे ॥ २५ ॥ आश्रयण करके अन्य पुरुष को पतिभाव से कामना करूँगी । हे लक्ष्मण ! तेरे सामने मैं प्राणों को छोड़ूगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ श्रीरामजीके बिना क्षणभर भी मैं भूतल पर नहीं जीऊँगी ॥ २७ ॥ और भी श्रीसीताजी ने कहा है कि-

॥ गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण । आवधिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥ वाल्मी० रा० अरण्य० ३, सर्ग० ४५, श्लो० ३६ ॥ पिबामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥ ३७ ॥

हे लक्ष्मण ! बिना श्रीरामजीके गोदावरी नदीमें मै प्रवेश कर जाऊँगी या किसी प्रकार से अपना वध करूँगी अथवा विषम स्थल पर अपने देहको मैं परित्याग करूँगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष को मैं पान करूँगी अथवा आग में मैं भस्म हो जाऊँगी परन्तु श्रीरामचन्द्रजी से अन्य पुरुष को कभी भी मैं नहीं स्पर्श करूँगी ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से पहले प्रश्नका उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि किस प्रकारसे श्रीसीताजीको राक्षसियों ने तर्जन भर्त्सन किया है । इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि-

तां कृशां दीनवदनां मलिनांबरवासिनीम् । भर्त्सयाञ्चक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समंततः । वा० रा० सुन्दर० ५, सर्ग० २४, श्लो० १९ ॥ ततस्तुविनता नामराक्षसी भीमदर्शना । अब्रवीत्कुपिताकारा कराला निर्णतोदरी ॥ २०॥ सीते पर्याप्तमेतावद्भर्तुः स्नेहः प्रदर्शितः । सर्वत्रातिकृतं भद्रे व्यसनायोपकल्पते ॥ २१ ॥ परितुष्टास्मि भद्रं ते मानुषस्ते कृतो विधिः । ममापि तु वचः पथ्यं ब्रुवन्त्याः कुरु मैथिलि ॥ २२ ॥ रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् । विक्रान्तमापतन्तं च सुरेशमिव वासवम् ॥ २३ ॥ दक्षिणं त्यागशीलं च सर्वस्य प्रियवादिनम् । मानुषं कृपणं रामं त्यक्त्वा रावणमाश्रय ॥ २४ ॥ दिव्यांगरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता । अद्यप्रभृतिलोकानां

सर्वेषामीश्वरी भव ॥ २५ ॥ अग्नेः स्वाहा यथादेवी शचीवेन्द्रस्य शोभने । किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ॥ २६ ॥ एतदुक्तं च मे वाक्यं यदि त्वं न करिष्यसि । अस्मिन्मुहूर्ते सर्वास्त्वां भक्षयिष्यामहे वयम् ॥ २७ ॥ अन्या तु विकटानाम लम्बमानपयोधरा । अब्रवीत्कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तर्जती ॥ २८ ॥ बहून्यप्रतिरूपाणि वचनानि सुदुर्मते । अनुक्रोशान्मृदुत्वाच्च सोढानि तव मैथिली ॥ २९ ॥ न च नः कुरुषे वाक्यं हितं कालपुरस्कृतम् । आनीतासि समुद्रस्य पारमन्यैर्दुरासदम् ॥ ३० ॥ रावणान्तः पुरे घोरे प्रविष्टा चासि मैथिली । रावणस्य गृहे रुद्धा अस्माभिस्त्वभिरक्षिता ॥ ३१ ॥ न त्वां शक्रः परित्रातुमपि साक्षात्पुरन्दरः । कुरुष्व हितवादिन्या वचनं मम मैथिली ॥ ३२ ॥ अलमश्रुनिपातेन त्यज शोकमनर्थकम् । भजप्रीतिं प्रहर्षं च त्यजन्ती नित्यदैन्यताम् ॥ ३३ ॥ सीते राक्षसराजेन परिक्रीड यथा सुखम् । जानीमहे यथा भीरुस्त्रीणां यौवनमध्रुवम् ॥ ३४ ॥ यावन्न ते व्यतिक्रामेत्तावत्सुखमवाप्नुहि । उद्यानानि च रम्याणि पर्वतोपवनानि च ॥ ३५ ॥ सह राक्षसराजेन चर त्वं मदिरेक्षणे । स्त्रीसहस्राणि ते देवि वशेस्थास्यन्ति सुन्दरि ॥ ३६ ॥ रावणं भज भर्तारं भर्तारं सर्वरक्षसाम् । उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिलि ॥ ३७ ॥ यदिमे व्याहृतं वाक्यं न यथावत्करिष्यसि । ततश्चण्डोदरी नाम राक्षसी क्रूरदर्शना ॥ ३८ ॥ भ्रामयन्ती महच्छूलमिदं वचनमब्रवीत् । इमां हरिणशावाक्षीं त्रासोत्कंपपयोधराम् ॥ ३९ ॥ रावणेन हृतां दृष्ट्वा दौर्हृदो मे महानयम् । यकृत्प्लीहं महत्क्रोडं हृदयं च सबन्धनम् ॥ ४० ॥ गात्राण्यपि तथा शीर्ष खादेयमिति मे मतिः । ततस्तु प्रघसा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ विशस्येमां ततः सर्वान्समान्कुरुत पिण्डकान् । विभजाम ततः सर्वा विवादो मे न रोचते ॥ ४२ ॥ पेयमानीयतां क्षिप्रं माल्यं च विविधंबहु । ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ अजामुख्या यदुक्तं वै तदेव मम रोचते । सुरा चानीयतां क्षिप्रं सर्वशोकविनाशिनी ॥ ४४ ॥ मानुषं मांसमासाद्य नृत्यामोऽथ निकुम्भिलाम् । एवं निर्भर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा ॥ ४५ ॥

मलिन वस्त्र पहनी हुई दीन वदन वाली दुबली उस श्रीसीताजीको वे भीम राक्षसियाँ चारो तरफ से भर्त्सन करने लगीं ॥ १९ ॥ इसके बाद धसे हुए पेट वाली कराल देखने में भंयकर खिसिआई हुई विनता नामकी राक्षसी बोली ॥ २० ॥ हे सीते ! इतना ही काफी है तुमने पतिको स्नेह दिखा दिया सब जगह पर अत्यन्त किया हुआ हे भद्रे ! दुःख के लिये होता है ॥ २१ ॥ मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, तेरा कल्याण हो तुमने मानुष विधि की । अब हे मैथिलि ! तेरे लिये पथ्य वचन कहने वाली मेरी बातको तुम करो ॥ २२ ॥ विक्रान्त आते हुए देवताओंके मालिक इन्द्रके समान सब राक्षसों के मालिक रावणपति की तुम सेवा करो ॥ २३ ॥ कृपण मनुष्य रामको छोड़कर समर्थ

दानी सबसे प्रिय बोलने वाले रावणका आश्रयण करो ।। २४ ।। हे वैदेहि ! दिव्य अंग-राग और दिव्य भूषणोंसे भूषित तुम आजसे सब लोकों की मालकिनी हो जाओ ।। २५ ।। हे शोभने ! जैसे अग्निकी स्त्री स्वाहा देवी है, और इन्द्रकी स्त्री शची देवी है, वैसे ही रावण की स्त्री तुम हो जाओ । हे वैदेहि ! कृपण गतायु रामसे तुझे क्या प्रयोजन है ।। २६ ।। यह मुझसे कहे हुए वाक्य यदि तुम नहीं करोगी तो हम सब इसी मुहूर्तमें तुमको खा जायेंगी ।। २७ ।। इसके बाद दूसरी लंबे स्तनवाली खिसिआई हुई विकटा नामकी राक्षसी मुष्टिको उठाकर तर्जती हुई श्रीसीताजीसे बोली ।। २८ ।। कि हे अत्यन्त दुष्ट मतिवालि मैथिलि ! बहुतसे विरुद्ध तेरे वचनोंके अनुक्रोशसे और मृदुता से हम सबोंने सहा ।। २९ ।। कालसे पुरस्कृत तुम हम सबोंके हितवाक्यको नहीं करती हो, दूसरोंसे दुरासद समुद्र के इस पार में रावणसे तुम लायी गयी हो ।। ३० ।। हे मैथिलि ! रावणके घोर अन्तःपुरमें तुम प्रविष्ट हो, और रावणके गृहमें रुकी हुई हम सबों से अभिरक्षित हो ।। ३१ ।। हे जानकी ! तुझको साक्षात् इन्द्र भी रक्षा करनेके लिये नहीं समर्थ हो सकते हैं इससे हित कहने वाली मेरी बात को तुम करो ।।३२।। अब आँसू गिराना बन्द करो अनर्थ शोक को छोड़ो और नित्य दीनता को छोड़ती हुई अत्यन्त हर्ष तथा प्रीतिको सेवन करो ।। ३३ ।। हे सीते ! आनन्दपूर्वक राक्षसराज रावणके साथ क्रीडो करो जब तक तेरा यौवन न बीते तब तक सुख भोगो, सुन्दर बगीचा तथा पहाड़ोंके उपवनों में ।।३५।। हे घूर्णित नेत्रवाली राक्षसराज रावण के साथ तुम विचरो हजारों स्त्रियाँ हे सुन्दरि ! तेरे वश में रहेंगी ।।३६।। सब राक्षसोंके स्वामी रावण नामके पति को तुम सेवन करो अथवा हे मैथिलि ! तेरे हृदयको उखाड़कर मैं भक्षण करूँगी ।। ३७ ।। यदि मेरे कहे हुए वाक्यको तुम ठीकसे नहीं करोगी, इसके बाद क्रूर दृष्टिवाली चण्डोदरी नामकी राक्षसी ने ।। ३८ ।। बड़े शूलको घुमाती हुई इस वाक्य को कहा कि डर से काँपती हुई कम्पित स्तनवाली और मृगशावकनयनी इस सीता को ।। ३९।। रावणसे लाई हुई देखकर यह मेरा बड़ा भारी दौर्हृद है कि यकृत् प्लीहा बड़े भारी क्रोड और बन्धन सहित हृदयको ।। ४० ।। और सीता के शरीर को तथा शिरको मैं खालूँ इस प्रकार की मेरी मति है, उसके बाद प्रघसा नामकी राक्षसी ने वाक्य को कहा ।। ४१ ।। कि इस सीता को काटकर उसके बाद सब मांसके पिण्डोंको बराबर तुम सब करो उसके बाद हम सब सेवन कर लें। विवाद मुझे अच्छा नहीं लगता है ।। ४२ ।। जल्दीसे पीने योग्य पदार्थको अनेक प्रकारके बहुतसे माल्य को तुम सब लावो, उसके बाद शूर्पणखा नामकी राक्षसी ने वाक्यको कहा ।। कि अजामुखी राक्षसी ने जो बात कहा है वही निश्चय करके मुझे अच्छी लगती है इससे जल्दी सब शोकको विनाश करनेवाली सुरा को तुम सब लावो ।। ४४ ।। इसके बाद मनुष्य के मांस को पाकर हम सब निकुंभिलामें में नांच करें, देवताओंकी कन्या के तुल्य सीता इस प्रकार के राक्षसियों से भर्त्सन की गयी ।। ४५ ।।

इस प्रकार से दूसरे प्रश्नके उत्तर होने पर तो तीसरा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीसीताजीको मारीच राक्षस का दर्शन हुआ है ? इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि-

॥ कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना । अनर्हा वनवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम् ॥ वा० रा० आरण्य० ३, सर्ग० ४२, श्लो० ३२ ॥ मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना । तं वै रुचिरदन्तोष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् ॥ ३३ ॥ विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ॥ ३४ ॥

सुन्दर मुखवाली श्रीसीताजी फूलोंको इकट्ठा करती हुई चली, और वनवासके अयोग्य वह सीताजी रत्नमय उस मृगको ॥ ३२ ॥ श्रेष्ठ स्त्री जानकीजी ने मोती मणिसे विचित्र अङ्गवाले तथा सुन्दर दाँत होठवाले रूप्यधातु तनूरुहवाले उस मारीचको देखा ॥ ३३ ॥ और विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रवाली श्री सीताजी ने प्रेम सहित अच्छे प्रकारसे देखा ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे तीसरे प्रश्नका उत्तर होने पर तो चौथा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीसीताजी ने रावणको देखा है ? इस प्रश्न का उत्तर लिखा है कि-

॥ द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् । सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ॥ वा० रा० अर० ३, सर्ग० ४६, श्लो० ३३ ॥

श्रीसीताजी ने द्विजाति के वेष से निश्चय करके आये हुए उस रावण को देखकर सब अतिथि के सत्कार से पूजा की ॥ ३३ ॥ इस प्रकार से चौथे प्रश्नका उत्तर होने पर तो पाँचवाँ प्रश्न होता है कि श्रीसीताजी ने हनुमानजीको देखा है यह कहाँ पर लिखा है ? इस प्रश्नका उत्तर देखिये, लिखा है कि-

॥ सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनं । फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम् ॥ वा० रा० सुन्द० ५, सर्ग० ३२, श्लो० २ ॥ साथ दृष्ट्वा हरिश्रेष्ठं विनीतवदवस्थितम् । मैथिली चिन्तयामास विस्मयं परमं गता ॥ ३ ॥

उस जानकीजी ने वहाँ पर प्रश्रित प्रिय बोलनेवाले तथा फूले हुए अशोकके समान भासवाले और पीले नेत्रवाले हनुमानजीको देखा ॥ २ ॥ वह श्रीसीता विनीत के समान ठहरे हुए कपीश हनुमान्‌जीको देखकर अत्यन्त विस्मय से युक्त चिन्तन करने लगीं ॥ ३ ॥ इस प्रकारके पाँचवें प्रश्नके उत्तर होने पर तो छठवाँ प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीसीताजीके प्रति हनुमान्‌जी ने श्रीरामजीके गुणों को कहा है ? इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि-

॥ आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा । राजा सर्वस्य लोकस्य देवो

वैश्रवणो यथा ॥ वा० रा० सुन्द० ५, सर्ग० ३४, श्लो० २८ ॥ विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः । सत्यवादी मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा ॥ २९ ॥ रूपवान्सुभगः श्रीमान्कन्दर्प इव मूर्तिमान् । स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ॥ ३० ॥

आदित्य के समान तेजस्वी तथा चन्द्रमा के समान लोक में कान्त और सब लोकों के राजा वैश्रवणके समान देव रामभद्र हैं ॥ २८ ॥ विक्रमसे युक्त जैसे बड़े यशवाले विष्णु भगवान् हैं वैसे श्रीरामजी हैं और सत्यवादी मधुर वाणीवाले बृहस्पति के समान हैं ॥ २९ ॥ और सुन्दर रूपवाले श्रीमान् कामदेवके समान हैं तथा समय पर क्रोधमें संहर्ता के समान हैं और लोक में सबसे श्रेष्ठ श्रीरामजी महारथी हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार के छठवें प्रश्नके उत्तर होने पर सातवाँ प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि हनुमान्‌जी ने सीताजी के लिये अंगूठी दी है ? इस प्रश्न का उत्तर लिखा है कि-

॥ भूय एव महातेजा हनूमान्पवनात्मजः । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥ वा० रा० सुन्दर० ५, सर्ग० ३६, श्लो० १ ॥ वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः । रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥ प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना । समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥ ३ ॥

महातेजस्वी पवनसुत हनुमान्‌जी ने श्रीसीताजी के विश्वास के लिये फिरसे प्रश्रित वाक्य को कहा ॥ १ ॥ हे महाभागे ! बुद्धिमान् श्रीरामजी का दूत मैं वानर हूँ, हे देवि ! राम नामसे चिह्नित इस अँगूठी को तुम देखो ॥ २ ॥ उस महात्मा श्रीरामजीकी दी हुई अँगूठी को तेरे विश्वास के लिये मैंने लाया है, तुम धीरता रखो, तेरा कल्याण है, और तेरा दुःखफल नष्ट हो गया है ॥ ३ ॥ इस प्रकारके सातवें प्रश्न के उत्तर होने पर तो आठवाँ प्रश्न होता है कि विभीषण की पुत्री त्रिजटा अशोक वनिका में किस प्रकारकी बात बोली है ? इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि-

॥ सीतां ताभिरनार्याभि र्दृष्ट्वा संतर्जितां तदा । राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् ॥ वा० रा० सुन्द० ५, सर्ग० २७, श्लो० ४ ॥ आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ । जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च ॥ ५ ॥ स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः । राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च ॥ ६ ॥

उन राक्षसियों से अत्यन्त तर्जित श्रीसीताजी को देखकर वृद्धा विदुषी त्रिजटानाम की राक्षसी ने वाक्य को कहा ॥४॥ हे अनार्या ! सब तुमलोग अपने को खा लो, जनकराजा की कन्या और दशरथ महाराज की पतोहू श्रीसीताजी को तुम सब नहीं खा सकती हो ॥५॥ आज मैंने राक्षसों के अभाव होने के लिये और इस श्रीसीताजी के पति के अभ्युदय के लिये रोमांच करनेवाला भयानक स्वप्न देखा है ॥६॥ इस प्रकार के त्रिजटा के वाक्य सुनकर क्रोध मूर्च्छित वे राक्षसियाँ बोलीं कि रात में तूने कैसा स्वप्न देखा हो सो कहो । इस

प्रकार के राक्षसियों के वाक्य को सुनकर।

॥उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम्। गजदन्तमयीं दिव्यां शिविकामन्तरिक्षगाम्॥ वा० रा० सुं० ५, स० २७, श्लो० ९॥ युक्तां वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः। शुक्लमाल्याम्बराधरो लक्ष्मणेन समागतः ॥१०॥ स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता। सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता ॥११॥ रामेण सङ्गता सीता भास्करेण प्रभा यथा। राघवश्च पुनर्दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम ॥१२॥ आरूढः शैलसंकाशं चकास सहलक्ष्मणः। ततस्तु सूर्यसंकाशौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥१३॥ शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकी पर्युपस्थितौ। ततस्तस्य नगस्याग्र ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः ॥१४॥ भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता। भर्तुरङ्कात्समुत्पत्य ततः कमललोचना ॥१५॥ चन्द्रसूर्यौ मयादृष्ट्वा पाणिभ्यां परिमार्जती। ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः सगजोत्तमः ॥१६॥ सीतया च विशालाक्ष्या लंकाया उपरि स्थितः। पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ॥१७॥ शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः। ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः ॥१८॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान्। आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभम् ॥१९॥ उत्तरां दिशमालोक्य प्रस्थितः पुरुषोत्तमः। रावणश्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षितः ॥२०॥ रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः। विमानात्पुष्पकाद्य रावणः पतितः क्षितौ ॥२१॥ कृष्यमाणः स्त्रिया मुण्डो दृष्टः कृष्णाम्बरः पुनः। रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ॥२२॥ पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन्भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः। गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमाश्रितः ॥२३॥ पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः। पतितो विशिरा भूमौ गर्दभाद्भयमोहितः ॥२४॥ सहसोत्थाय संभ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः। उन्मत्तरूपो दिग्वासा दुर्वाक्यं प्रलपन्बहु ॥२५॥ दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम्। मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः ॥२६॥ प्रस्थितो प्रक्षिणामाशां प्रविष्टोऽकर्दमं ह्रदम्। कण्ठेबध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी ॥२७॥ काली कर्दमलिप्तांगी दिशं याम्यां प्रकर्षति। एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ॥२८॥ रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः। वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ॥ २९ ॥ उष्ट्रेण कुंभकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम्। एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतच्छत्रो विभीषणः॥३०॥ चतुर्भिस्सचिवैः सार्द्धं वैहायसमुपस्थितः ॥ ३१॥ समाजश्च महान्वृत्तो गीतवादित्रनिःस्वनः। पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसांरक्तवास- साम् ॥ ३१ ॥ लंका चेयं पुरीरम्या सवाजिरथकुञ्जरा। सागरे पतिता दृष्ट भग्नगोपुरतोरणा ॥ ३२ ॥ पीत्वा तैलं प्रमत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः। लंकाया भस्मरूक्षायां सर्वा राक्षसयोषितः ॥ ३३ ॥ कुंभकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः। रक्तं निवासनं गृह्य प्रांवष्ठ गोमयह्रदम् ॥ ३४ ॥ अपगच्छत पश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः। घातयेत् परमामर्षी युष्मान् सार्धं हि

राक्षसैः ॥३५॥ प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनव्रतामाभर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः॥ ३६ ॥ तदलंक्रूरवाक्यैश्च मान्यमेवाभिधीयताम्। अभियाचाम वैदेहीमतद्धि मम रोचते ॥ ३७ ॥ यस्या ह्यवंविधः स्वप्नो दुःखितयाः प्रदृश्यते। सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ३८ ॥ भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया। राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ॥ ३९ ॥ प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा। अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतोभयात् ॥ ४० ॥ अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपलक्षये। विरूपमपि चाङ्गेषु न सूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥ ४१ ॥ छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्। अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ॥ ४२ ॥ अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम्। राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ॥ ४३ ॥ निमित्तभूतमेतत्तु श्रोतुमस्या महत्प्रियम्। दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ॥ ४४ ॥ ईषच्च हृषितो वास्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः। अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥ ४५ ॥ करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः। वेपन्कथयतीवास्या राघवं पुरतः स्थितम् ॥ ४६ ॥ पक्षी च शाखानिलयं प्रविश्य पुनः पुनश्चोत्तमसान्त्ववादी। सुस्वागतां वाचमुदीरयाणः, पुनः पुनश्चोदयतीव हृष्ट ॥ ४७ ॥

उन अनार्या राक्षसियों से अच्छी तरह वृद्धा त्रिजटा राक्षसी जैसा स्वप्न देखी थी वैसे वचनको सुनकर वह बोली कि अन्तरिक्ष में चलनेवाली गजदन्तमयी दिव्य पालकी का ॥ ९ ॥ हजार घोड़ोंसे जोती हुई, में अपने से सफेद माला और वस्त्रको पहने हुए श्रीलक्ष्मणजीसे युक्त श्रीरामजी चढ़े हुए हैं ॥ १० ॥ और आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि सफेद वस्त्रको पहनी हुई श्रीसीताजी समुद्रसे परिक्षिप्त सफेद पर्वत पर स्थित हुई हैं ॥११॥ जैसे प्रभा सूर्य से युक्त रहती है वैसे ही श्री सीताजीरामभद्र से युक्त रहती हैं। और फिर मैंने देखा है कि श्रीरामचन्द्र चार दाँत वाले महागज पर ॥ १२ ॥ चढ़े हुए हैं। और श्रीलक्ष्मणजी के साथ अत्यन्त दीप्यमान हैं। इसके बाद सूर्य के समान अपने तेज से दीप्यमान वे दोनों ॥ १३ ॥ सफेद माला और वस्त्रको पहने हुए जानकीजी के पास में उपस्थित हुए। उसके बाद उस पहाड़ के आगे आकाश में स्थित हाथीके ॥ १४ ॥ श्रीरामजीसे पकड़े हुए, कन्धे पर श्री सीताजी चढ़ गईं। उसके बाद कमल के समान नेत्र वाली श्रीजानकी जी अपने स्वामीकी गोद से उतर कर ॥ १५ ॥ चन्द्रमा और सूर्यको दोनों हाथोंसे परिमार्जन कर रही हैं ॥ इस प्रकार से मैंने देखा। उसके बाद उन दोनों राम और लक्ष्मण कुमारों ने उस उत्तम गजको प्राप्त किया ॥ १६ ॥ इसके बाद लंकाके ऊपर विशाल नेत्र वाली सीतासे स्वयं स्थित आठ पाण्डुर ऋषभसे युक्त रथको मैंने देखा ॥ १७ ॥ इसके बाद भाई श्रीलक्ष्मणजीके और श्रीसीताजीके साथ वीर्यवान् श्रीरामजी सूर्यके समान तेज वाले

दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़कर ॥ १९ ॥ उत्तर दिशा को देखकर पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी चले। और मुण्ड मुड़ाये हुए और सब शरीरमें तेल लगाये हुए रावण को भी मैंने स्वप्न में देखा है ॥ २० ॥ लाल वस्त्र पहना हुआ तथा मदिरा पीता हुआ मतवाला करवीरकी मालाको पहना हुआ रावण पुष्पक विमान से आज भूमि पर गिर गया है, ॥ २१ ॥ स्त्रीसे खींचते हुए और माथा मुड़ाये हुए तथा काले वस्त्र पहने हुए और लालमाला और चन्दन लगाये हुए तथा गदहे जोते हुए रथ से युक्त रावण को मैंने देखा ॥ २२ ॥ और तेल पीते हुए तथा हँसते हुए और नाचते हुए तथा भ्रान्तचित्तवाले रावणको गदहे पर चढ़कर दक्षिण दिशामें जाते हुए मैंने देखा ॥ २३ ॥ और फिर भी मैंने देखा कि राक्षसों का स्वामी रावण भयसे मोहित होकर बिना सिरके गदहे से भूमिपर गिर गया है ॥ २४ ॥ और जल्द से उठकर संभ्रान्त भयसे आर्त मदविह्वल पगलेके समान लंगड़ा बहुत सा दुर्वाक्य बोलता हुआ ॥ २५ ॥ दुर्गन्धयुक्त दुःखसे सहने योग्य घोर अन्धकारमय नरकके समान मलके पांकमें पैठकर वह रावण उस मल पंकमें शीघ्रही मग्न हो गया ॥ २६ ॥ और दक्षिण दिशामें जाकर रावण सूखे हुए तालाब में पैठ गया। इसके बाद लाल वस्त्र पहनी हुई स्त्री रावणके गले में रस्सी बान्धकर ॥ २७ ॥ अपने शरीर में पांक लपेटी हुई काली देवी दक्षिण दिशा में खींच रही है। और इसी प्रकारके महाबलवाले कुम्भकर्णको भी मैंने देखा ॥ २८ ॥ और रावण के लड़के सब मुड़ मुड़ाये हुए हैं और देहमें तेल लगाये हुए हैं ऐसा मैंने देखा। रावण सुअरसे और मेघनाद शिशुमारसे ॥ २९ ॥ तथा कुम्भकर्ण ऊँटसे दक्षिण दिशा में जा रहा है। एक सफेद छाते से युक्त विभीषण को वहाँ मैंने देखा है कि चार अपने मंत्रियोंके साथ वैहायस गति को उसने प्राप्त किया है ॥ ३० ॥ मदिरा पीनेवाले और लाल माला तथा लाल वस्त्र को पहननेवाले राक्षसोंका बड़ा भारी समाज गाना और बाजे शब्दसे पूर्ण हो रहा है ॥ ३१ ॥ और यह सुन्दर बड़ा रथ हाथी से युक्त लंकापुरी गोपुर और तोरण भग्न होकर समुद्र में गिर गई है ऐसा मैंने देखा है ॥ ३२ ॥ और भस्मसे रूक्ष लंकापुरीमें सब राक्षसों की स्त्रियाँ प्रमत्त होकर के तेलको पीकर बड़ा भारी शब्द करती हुई जोर से हँसती हैं ॥ ३३ ॥ तथा कुम्भकर्ण आदिक ये सब बड़े-बड़े राक्षस लाल वस्त्र को लेकर गोबरके तालाब में पैठ गये हैं ॥ ३४ ॥ तुम सब चली जावो, और इसको तुम सब देखो कि श्रीरामजी श्रीसीताजीको प्राप्त करते हैं। परमामर्षी श्रीरामजी राक्षसोंके साथ तुम सबोंको मरवावेंगे ॥ ३५ ॥ वनवासमें साथ रहनेवाली बहुमत प्रिया श्रीसीताजीके विषयमें तुम सबोंसे किये हुए भर्त्सन तर्जन को श्रीरामजी नहीं सहन कर सकते हैं ॥ ३६ ॥ इससे क्रूरवाक्योंसे शासन तुम सब मत करो, शान्ति को कथन करो, और हम सब मिलकर श्रीसीताजीसे याचना करें, निश्चय करके यही मुझे अच्छा लगता है ॥ ३७ ॥ जिस दुःखी श्रीसीताजीके इस प्रकार का

स्वप्न मैंने देखा है वह श्री सीताजी बहुतसे दुःखों से छूटकर श्रेष्ठ प्रियको प्राप्त करेंगी ।। ३८।। यद्यपि तुम सबों से श्रीसीताजी भर्त्सित हैं। तौ भी तुम सब अरी राक्षसियाँ ! श्रीसीताजीसे याचना करो। अधिक कहने की इच्छासे क्या प्रयोजन है निश्चय करके श्रीरामजीसे घोरभय राक्षसोंका उपस्थित है ।। ३९ ।। प्रणिपातसे प्रसन्न जनकसुता यह श्रीसीता हे राक्षसियाँ! बड़े भारी भयसे रक्षा करनेके लिये समर्थ हैं ।। ४० ।। और विशाल नेत्रवाली श्रीसीताजीका कुछ भी मैं नहीं देखती हूँ। तथा जानकीजी के शरीर में छोटासा भी विरूप लक्षण मैं नहीं देखती हूँ ।। ४१ ।। छायाकी विगुणता मात्र ही उपस्थित दुःख है ऐसी मैं शंका करती हूँ। नहीं दुःखके योग्य इस श्रीसीतादेवीजीको वैहायस उपस्थित ।। ४२ ।। अर्थ सिद्धिको मैं देखती हूँ। तथा राक्षसोंके स्वामी रावणके विनाशको और श्रीरामजीकी विजयको मैं देखती हूँ ।। ४३ ।। इस श्रीसीताजीके यह निमित्तभूत महान् प्रियको सुननेके लिये कमलके पत्र के समान विस्तृत विकसित नेत्र देखा जाता है ।। ४४ ।। और इस जानकीदेवीका वाम नेत्र थोड़ासा विकसित है। तथा अचानक श्रीसीताजी की एक वाम भुजा फड़कती है ।। ४५ ।। हाथी के शुण्डके समान उत्तम श्रीसीताजीकी वाम जाँघा श्रीरामजीके आगेमें स्थित है, ऐसा कहते हुएके समान फरक रही है ।। ४६ ।। और पेड़के घोसलेमें प्रविष्ट बारंबर उत्तम मधुर बोलती हुई चिड़िया सुन्दर स्वागतकी वाणी का उच्चारण करती हुई प्रहृष्ट बारंबर प्रकट हो रही है ।। ४७ ।। इस प्रकार से आठवें प्रश्नका उत्तर होने पर तो अन्तिम नौंवा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीरामजी ने रावणको मारकर सीता को प्राप्त किया है ? इस प्रश्नका उत्तर वाल्मीकीयरामयणमें लिखा है कि-

तेन गत्वा पुरीं लंकां हत्वा रावणमाहवे । रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत् ॥ वा० रा० बाल० १, सर्ग० १, श्लो०।८१॥

श्रीरामजी ने उस सेतु द्वारा लंकापुरीमें जाकर संग्राममें रावणको मारकर श्रीसीताजी को पकार परालज्जाको प्राप्त किया ।। ८१ ।। इस दो सौ उन्तालीसवीं वार्तामें छियासी पद हैं। इति कण्डारआण्डानार्योक्तावार्ताव्याख्यानम् ।। २३९ ।।

अब कण्डारआण्डानाचार्यजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कण्डारआण्डानार्योक्तावार्ता ॥

मू०-दर्शनाशाविषयो[१] भगवद्दर्शनम्[२] अनुभवाशाविषय[३]-

स्तदनुभवः कैंकर्य्याशा भगवदनुभवजनितप्रीतिकरिता-
कैंकर्य्यं सर्वकालं घटयति तत्तीरस्थस्वाधिकरिणः कस्य-
चिन्मुमुक्षोस्त्याज्यानि त्रीणि-उपादेयानि त्रीणि तत्र पौर-
संगः कामसंगोऽर्थसंगश्चत्याज्या आचार्यविग्रहसंगः- आचा-
र्य्यकैंकर्यसंगः आचार्योक्तिष्वतिसंगश्चोपादेयाः स्वस्वरूप-
विरोधिसंबन्धमोचनं स्वस्वरूपानुभवः स्वरूपविकासः
स्वस्वरूपविकासानुभवः उभयविकासश्च ज्ञानदशा प्रापक-
दशा प्राप्तिदशा प्रांप्यानुभवदशा चेति चतुर्धा तत्र ज्ञानद-
शायामज्ञानं पुरस्कुर्यात् प्रापकदशायामाकिंचन्यं पुरस्कु-
र्यात् प्राप्तिदशायामार्तिं पुरस्कुर्यात्, प्राप्यानुभवदशायां
त्वरां पुरस्कुर्यात् अनुभवाविच्छेदार्थं सल्लापसहायार्थं च
देशाविशेषोऽपेक्षितः स्वस्यानुभवो नाम तस्यानुभवः-अभि-
मतविषये रसिकानामिव केचनात्युद्योगेन प्राप्नुवन्ति,
केचन स्थित्वा प्राप्नुवन्ति, भगवत्पराः द्विविधाः मुमुक्षवो-
वुभुक्षवश्च मुमुक्षवो द्विविधाः भगवच्चरणार्थिनः कैवल्या-
र्थिनश्च भगवच्चरणार्थिनो द्विविधाः-उपासकाः प्रपन्नाश्च
प्रपन्नाः द्विविधाः आर्त्ताः दृप्ताश्च-आर्त्ताः द्विविधाः क्षण-
मात्रमपि संसारस्थित्यसहिष्णवः भगवदनुभवालाभे
क्षणमात्रमपिआत्मानं धर्तुमशक्ताः य इतराणि त्यक्त्वा
तमाश्रयते स वैष्णवः यस्तु आत्मानं त्यक्त्वा तमाश्र-
यते स एकान्ती यस्तं त्यक्त्वा तमाश्रयते सः
परमैकान्ती ॥ २४० ॥

।।लक्ष्मणाचार्यस्तुतिः।।

अर्थ- एतादृशैः शिष्यवरैर्यतीन्द्रः पीठैश्चतुः सप्ततिभिस्समेतः ।

दिगन्तकीर्तिः सुखमेव तस्थौ रङ्गे पुरे लक्ष्मणदेशिकेन्द्रः ।।

(दर्शनाशाविषयः) दर्शनकी आशाका विषय (भगवद्दर्शनम्) भगवान्का दर्शन है। (अनुभवाशाविषयः) अनुभवकी आशाका विषय (तदनुभवः) भगवानका अनुभव है। (कैंकर्य्याशा) कैंकर्यकी आशा (भगवदनुभवजनितप्रीतिकरिताकैंकर्यम्) भगवन्के अनुभव करनेसे उत्पन्न प्रीति कारिता का कैंकर्य है सो (सर्वकालम्) सबकालमें (घटयति) रहता है। (तत्तीरस्थस्य) उस तीर पर स्थित (अधिकारिणः) अधिकारी (कस्यचित्) किसी भी (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुषके (त्याज्यानि) त्याग करने योग्य (त्रीणि) तीन ठो हैं। और (उपादेयानि) ग्रहण करने योग्य (त्रीणि) तीन ठो हैं। (तत्र) उनमें (पौरसंगः) ग्रामवासियों का संग १, तथा (कामसंगः) विषयोंका संग २, (च) और (अर्थसंगः) अर्थोंका सङ्ग ३, (त्याज्याः) ये तीन त्याग करने योग्य हैं। और (आचार्यविग्रहसंगः) आचार्यके देहका संग १, तथा (आचार्यकैंकर्यसंगः) आचार्यके कैंकर्यका संग २, (च) और (आचार्योक्तिषु) आचार्यकी उक्तियोंमें (अतिसंगः) अत्यन्त संग ३, (उपादेयाः) ये तीन ठो ग्रहण करने योग्य हैं। (स्वस्वरूपविरोधिसंबन्धमोचनम्) स्वरूप विरोधीके संबन्धका मोचन करना (स्वस्वरूपानुभवः) स्वस्वरूप जो शेषत्व और पारतंत्र्यप्रभृति है उसका अनुभव करना है। (स्वरूपविकासः) तदीयशेषत्वरूप रूपका विकास करना (स्वस्वरूपविकासानुभवः) स्वस्वरूपके विकास का अनुभव करना है (च) और (उभयविकासः) शेषत्व तथा पारतंत्र्य इन दोनोंका विकास करना है। (ज्ञानदशा) ज्ञानकी दशा १ (प्रापकदशा) प्रापक की दशा २, (प्राप्तिदशा) प्राप्तिकी दशा ३, (च) और (प्राप्यानुभवदशा) प्राप्यके अनुभव की दशा ४, (इति) इस प्रकार के (चतुर्धा) दशा चार प्रकार की होती है। (तत्र) उनमें (ज्ञानदशायाम्) ज्ञानकी दशा में (अज्ञानम्) अज्ञानको (पुरस्कुर्यात्) पुरस्कार करे। (प्रापकदशायाम्) प्रापककी दशामें (आकिञ्चन्यम्) अकिंचनताको (पुरस्कुर्यात्) पुरस्कार करे। (प्राप्तिदशायाम्) प्राप्तिकी दशामें (आर्तिम्) आर्तिको (पुरस्कुर्यात्) पुरस्कार करे। और (प्राप्यानुभवदशायाम्)प्राप्यके अनुभवकी दशामें (त्वराम्) त्वराको (पुरस्कुर्यात्) पुरस्कार करे। (अनुभवाविच्छेदार्थम्) अनुभवके अविच्छेद होने के लिये (च) और (सत्प्रापसहायार्थम्) सज्जनों के सुन्दर आलपकी सहायताके लिये (देशविशेषः) सुन्दर देश विशेष (अपेक्षितः) अपेक्षित है। (स्वस्य) आत्माके (अनुभवः) अनुभव (नाम) माने (तस्य) उस आत्माका (अनुभवः) अनुभव करना है। (अभिमतविषये) अभिमत विषयमें (रसिकानाम्) रसिकोंके (इव) समान (केचन) कुछ लोग (स्थित्वा) ठहर कर (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त करते हैं। (केचन) कुछ लोग (स्थित्वा) ठहरकर (प्राप्नुवन्ति) प्राप्त करते हैं। (भगवत्पराः) भगवत्परक (द्विविधाः) दो प्रकार के जन हैं। (मुमुक्षवः) एक मोक्षकी इच्छा करनेवाले हैं (च) और (वुभुक्षवः) दूसरा, भोगकी इच्छा करनेवाले हैं। (मुमुक्षवः) मोक्ष की इच्छा करनेवाले मुमुक्षु (द्विविधाः) दो प्रकारके होते हैं। (भगवच्चरणार्थिनः) एक श्रीमन्नारायण भगवान्के चरणारविन्दों की

चाहना करनेवाले हैं। (च) और (कैवल्यार्थिनः) दूसरे कैवल्यकी इच्छा करनेवाले हैं। (भगवच्चरणार्थिनः) श्रीमन्नारायण भगवान्के चरणारविन्दों की चाहना करने वाले (द्विविधाः) दो प्रकारके होते हैं। (उपासकाः) एक उपासक होते हैं (च) और (प्रपन्नाः) दूसरे प्रपन्न होते है। (प्रपन्नाः) प्रपन्न (द्विविधाः) दो प्रकार के होते हैं। (आर्ताः) एक अति प्रपन्न होते हैं। (च) और (दृप्ताः) दृप्त प्रपन्न होते हैं। (आर्ताः) आर्त (द्विविधाः) दो प्रकार के होते हैं। (क्षणमात्रम्) एक क्षणमात्र (अपि) भी (संसारस्थित्यसहिष्णवः) संसारकी स्थितिको नहीं सहन करने वाले होते हैं। और (भगवदनुभवालाभे) दूसरा, श्रीमन्नारायण भगवान्से अनुभव नहीं लाभ होने पर (क्षणमात्रम्) क्षणमात्र (अपि) भी (आत्मानम्) आत्माको (धर्तुम्) धारणके लिये (अशक्ताः) असमर्थ होते हैं। (यः) जो पुरुष (इतराणि) नारायणसे अन्य देवताओंको (त्यक्त्वा) छोड़कर (तम्) उस श्रीविष्णु भगवान्को (आश्रयते) आश्रयण करता है (सः) वह (वैष्णवः) श्रीवैष्णव है। और (यः) जो पुरुष (तु) तो (आत्मानम्) आत्मा को (त्यक्त्वा) छोड़कर (तम्) उस सिद्धोपायको (आश्रयते) आश्रयण करता है (सः) वह (एकान्ती) एकान्ती है।। (यः) जो पुरुष (तम्) उस सिद्धोपाय स्वरूपको (त्यक्त्वा) छोड़कर (तम्) उस उपेय स्वरूपको (आश्रयते) आश्रयण करता है (सः) वह (परमैकान्ती) परमैकान्ती है। इस दो सौ चालीसवीं वार्तामें एक सौ सत्ताइस पद हैं। इति काण्डारआण्डानार्य्योक्त वार्ताव्याख्यानम्॥ २४०॥



अब अम्मंगी अम्मालस्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ अम्मंगीअम्मालार्योक्ता वार्ता ॥

मू०-अम्मंगीअम्मालवार्ता शरीरमाश्रित्यान्नमन्विच्छन्ति केचन, संबन्धिनमाश्रित्यान्नमन्विच्छन्ति केचन, देहिनमाश्रित्यान्नमन्विच्छन्ति केचन, देहानाश्रित्यान्नमन्विच्छन्ति केचन, लोकमाश्रित्यान्नमन्विच्छन्ति केचन, प्राणमाश्रित्य केचन तमाश्रित्य केचन, तं तां चाश्रित्य कंचन, स्वात्मानं तं चाश्रित्य भ्रमयुक्तं वैशद्यं प्रथमाधिकारिणां वैशद्ययुक्तो भ्रमश्चरमाधिकारिणाम्॥ २४१॥

॥लक्ष्मणाचार्यस्तुतिः॥

अर्थ- स गुरुभ्योऽथ पञ्चभ्यः सर्वार्थान्प्राप्य सादरम् ।
विरेजे लक्ष्मणाचार्यः कलाभिरिव चन्द्रमाः ॥ १९३ ॥

(अम्मंगी आम्मालवार्ता) अम्मंगी अम्माल स्वामीजीकी वार्ता है कि (शरीरम्) त्रैवर्णिक शरीरको (आश्रित्य) आश्रयणकर (केचन) कुछ लोग (अन्नम्) ऐहलौकिक अन्नकी (अन्विच्छन्ति) इच्छा करते हैं। "इच्छन्ति" यहाँ पर **॥ इषुगमियमांछः॥ व्या० अ० ७, पा० ३, सू० ७७ ॥** इस सूत्रसे छकार हुआ है। (सम्बन्धिनम्) वर्णाश्रमानुरूप सम्बन्धवालेको (आश्रित्य) आश्रयणकर (केचन) कुछ लोग (अन्नम्) स्वर्गादिक अन्नकी (अन्विच्छन्ति) इच्छा करते हैं। (देहिनम्) तत्तद्वर्णाश्रमयुक्त आत्मा को (आश्रित्य) आश्रयण कर (केचन) कुछ लोग (अन्नम्) कैवल्यरूप अन्नकी (अन्विच्छन्ति) इच्छा करते हैं। (देहान्) देवतान्तरोंके देहोंको (आश्रित्य) आश्रयणकर (केचन्) कुछ लोग (अन्नम्) देवतान्तरों के सायुज्य रूप अन्नकी (अन्विच्छन्ति) इच्छा करते हैं। (लोकम्) सवर्गादिक लोक को (आश्रित्य) आश्रयण कर (केचन) कुछ लोग (अन्नम्) अन्न की (अन्विच्छन्ति) इच्छाकरते हैं। (प्राणम्) प्राणको (आश्रित्य) आश्रयणकर (केचन) कुछ लोग अन्न की इच्छा करते हैं। (तम्) उसको (आश्रित्य) आश्रयणकर (केचन) कुछ लोग अन्न को चाहते है। (तम्) उस आत्माको (च) और (ताम्) उस स्वस्वार्थशरणागतिको या षडङ्गप्रपत्तिको (आश्रित्य) आश्रयणकर (केचन) कुछ लोग अन्न को चाहते हैं। (स्वात्मानम्) अपनी आत्माको (च) और (तम्) उस आत्माको (आश्रित्य) आश्रयणकर कुछ लोग अन्नकी इच्छा करते हैं। (भ्रमयुक्तम्) भ्रमसे युक्त (वैशद्यम्) विशदता (प्रथमाधिकारिणाम्) प्रथमाधिकारियों की है। और (वैशद्ययुक्तः) विशदता से युक्त (भ्रमः) भ्रम (चरमाधिकारिणाम्) चरमाधिकारियोंका है। इस दौ सौ इकतालसवीं वार्ता में सैंतालीस पद हैं। इति अम्मंगीअम्मालवार्ताव्याख्यानम् ॥ २४१ ॥

अब वेदान्तीस्वामीजीके प्रति भट्टारकस्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ भट्टारकोक्तावार्ता ॥

मू०-वेदान्तिनं[१] प्रति[२] भट्टारकोक्ता[३] वार्ता[४] उपायांशनि-रूवपकास्त्रिविधाः[५] कर्मज्ञाननिष्ठाः[६] सिद्धोपायस्वीकारनिष्ठाः[७] सिद्धोपायान्तर्गतत्वनिष्ठाश्च[८] तत्र[९] सिद्धोपायनिष्ठः[१०] कर्मज्ञान-निष्ठं[११] जुगुप्सते[१२] सिद्धोपायान्तर्गतत्वनिष्ठः[१३] सिद्धोपायस्वीकारं[१४]

१७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६
जुगुप्सते कर्मज्ञाननिष्ठः कर्मपरिपालनभङ्गः कदाचिद्भवे-
दिति संदिहानस्तिष्ठति सिद्धोपायनिष्ठः सिद्धसाधनपरि-
२७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४
पालनभङ्गः कदाचिद्भवेदिति संदिहानस्तिष्ठति सिद्धो-
पायान्तर्गतत्वनिष्ठः सिद्धसाधननिष्ठां करोति ॥ २४२ ॥

अर्थ-(वेदान्तिनम्) वेदान्तीस्वामीजीके (प्रति) प्रति (भट्टारकोक्ता) भट्टारकस्वामीजीकी कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (उपायांशनिरूपकाः) उपाय अंशके निरूपण करनेवाले (त्रिविधाः) तीन प्रकारके होते हैं। (कर्मज्ञाननिष्ठाः) कर्मज्ञान में निष्ठ १, तथा (सिद्धोपायस्वीकारनिष्ठाः) सिद्धोपाय के स्वीकारमें निष्ठ २, (च) और (सिद्धोपायान्तर्गतत्वनिष्ठाः) सिद्धोपायान्तर्गतत्वनिष्ठ ३, ये तीन प्रकार के हैं। (तत्र) उनमें (सिद्धोपायनिष्ठः) सिद्धोपायके स्वीकार में निष्ठ पुरुष (कर्मज्ञाननिष्ठम्) कर्मज्ञानमें निष्ठ पुरुषकी (जुगुप्सते) निन्दा करते हैं। "जुगुप्सते" यहाँ पर **॥ गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ५ ॥** इस सूत्रसे (**गुपेर्निन्दायाम्**)। इस वार्तिक द्वारा निन्दा में सन् प्रत्यय हुआ है, और **॥ सन्यङो ॥ व्या० अ० ६, पा० १, सू० ९ ॥** इस सूत्रसे द्वित्व हुआ है। तथा (सिद्धोपायान्तर्गतत्वनिष्ठः) सिद्धोपायान्तर्गतत्वनिष्ठ पुरुष (सिद्धोपायस्वीकारम्) सिद्धोपायस्वीकारमें निष्ठ पुरुषकी (जुगुप्सते) निन्दा करता है। (कर्मज्ञाननिष्ठः) कर्मज्ञानमें निष्ठ पुरुष (कर्मपरिपालनभङ्गः) कर्मको अच्छे प्रकारसे पालन करनेमें भंग (कदाचित्) कभी (भवेत्) हो जायेगा (इति) इस प्रकारसे (संदिहानः) सन्देह करता हुआ (तिष्ठति) ठहरता है। तथा (सिद्धोपायनिष्ठः) सिद्धोपायके स्वीकारमें निष्ठ पुरुष (सिद्धसाधनपरिपालनभङ्गः) सिद्धोपायसे अच्छे प्रकारसे पालन करने में भंग (कदाचित्) कभी (भवेत्) हो जायगा (इति) इस प्रकारसे (संदिहानः) सन्देह करता हुआ (तिष्ठति) ठहरता है। और (सिद्धोपायान्तर्गतत्वनिष्ठः) सिद्धोपायन्तर्गतत्वनिष्ठ पुरुष (सिद्धसाधननिष्ठाम्) सिद्धोपायकी निष्ठा को (करोति) करता है। इस दो सौ बेयालीसवीं वार्तामें चौंतीस पद हैं। इति भट्टाकरकोक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥ २४२ ॥

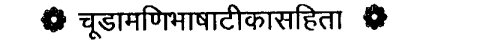
अब तिरिञ्चंगणितोरैनंवी महात्माके प्रति पराशरभट्टाचार्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ पराशरभट्टार्योक्तावार्ता ॥

मू०–तिरिञ्चंगणितोरैनंविनं[१] प्रति[२] भट्टार्योक्ता[३] वार्ता[४] मुमुक्षुचेतनगतं[५] ज्ञानं[६] त्रिविधम्[७], उपासनात्मकं[८] प्रपदनात्मकं[९] स्वरूपयाथात्म्यज्ञानं[१०] च[११], तत्रोपासनज्ञानवान्[१२] उपास्यविषये[१३] स्ववृत्तिजन्यप्रीतिः[१४] स्वस्य[१५] तस्य[१६] चेति[१७] जानाति[१८] प्रपदज्ञानवान्[१९] स्वस्य[२०] प्रपत्तव्यविषयवृत्तिजन्यप्रीतिस्तस्यैवेति[२१] जानाति[२२] स्वरूपयाथात्म्यज्ञानवान्[२३] स्वतः[२४] सर्वज्ञविषये[२५] वृत्तिं[२६] स्वकार्यमिति[२७] जानाति[२८], एतदर्थस्य[२९] निदर्शनं[३०] पतिव्रताया[३१] भग्ने[३२] मंगलसूत्रे[३३] पुनस्तन्निर्माणस्य[३४] हेतुः[३५] भर्तुः[३६] निग्रहानुग्रहौ[३७] नानुसंधत्ते[३८] किन्तु[३९] स्वस्यानर्थनिवृत्तिरेवेति[४०]-अनुसंधत्ते[४१] ॥ २४३ ॥

अर्थ-(तिरिञ्चंगणितोरैनंविनम्) तिरिञ्चंगणितोरैनंवी महात्मा के (प्रति) प्रति (भट्टार्योक्ता) पराशरभट्टाचार्य स्वामीजीकी कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (मुमुक्षुचेतनगतम्) मोक्ष की चाहना करनेवाले जीवोंमें प्राप्त (ज्ञानम्) ज्ञान (त्रिविधम्) तीन प्रकार के होते हैं। (उपासनात्मकम्) उपासनात्मक १, तथा (प्रपदनात्कम्) प्रपदनात्मक २, (च) और (स्वरूपयाथात्म्यज्ञानम्) स्वरूपके यथार्थ ज्ञानात्मक ३, ये तीन प्रकारके हैं। (तत्र) उनमें (उपासनज्ञानवान्) उपासनात्मक ज्ञानवाला पुरुष (उपास्यविषये) उपासना करने योग्य देवता के विषयमें (स्ववृत्तिजन्यप्रीतिः) अपनी वृत्तिसे उत्पन्न प्रीति (स्वस्य) अपनी (च) और (तस्य) उस उपास्यकी है। (इति) इसप्रकारके (जानाति) जानता है। तथा (प्रपदनज्ञानवान्) प्रपदनात्मक ज्ञानवाला पुरुष (स्वस्य) अपने (प्रपत्तव्यविषयवृत्तिजन्यप्रीतिः) प्रपत्तव्य विषयकी वृत्तिसे उत्पन्न प्रीति (तस्य) इस प्रत्ययके ही (एव) निश्चय करके (जानाति) जानता है। और (स्वरूपयाथात्म्यज्ञानवान्) अपने स्वरूपके यथार्थ ज्ञानवाला पुरुष (स्वतः) अपने से (सर्वज्ञविषये) सर्वज्ञ परमात्माके विषयमें (वृत्तिम्) वृत्तिको (स्वकार्यम्) अपना कार्य है (इति) इस प्रकारके (जानाति) जानता है। (एतदर्थस्य) इस पूर्वोक्त अर्थका (निदर्शनम्) निश्चय करके दर्शन यह अधोलिखित है कि (पतिव्रतायाः) पतिव्रता स्त्री के (मंगलसूत्रे) मंगलसूत्र तागपाट (भग्ने) टूट जानेपर (पुनः) फिरसे (तन्निर्माणस्य) उस मंगल सूत्र बनाने का (हेतुः) कारण (भर्तुः) अपने पति को (निग्रहानुग्रहौ) निग्रह

और अनुग्रह को (न) नहीं (अनुसंधत्ते) अनुसन्धान पतिव्रता स्त्री करती है। (किन्तु) किन्तु (स्वस्य) अपने (अनर्थनिवृत्तिः) अनर्थकी निवृत्ति (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकारके (अनुसंधत्ते) पतिव्रता स्त्री अनुसन्धान करती है। इस दो सौ तैंतालीसवीं वार्ता में बावन पद हैं। इति पराशरभट्टाचार्य्योक्तवार्त्ताव्याख्यानम् ॥ २४३॥



अब कलिवैरिदास स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०-कलिवैरिदासवार्ता-आत्मसमः प्राणसमो दृष्टिसमः सर्वेश्वरं समाश्रितः षड्विधः, उत्तमः-उत्तमप्रायः, मध्यमो मध्यमप्रायः, अधमोऽधमप्रायः, उत्तमो भगवन्तमेव स्वस्य बन्धुं जानाति, उत्तमप्रायः-उत्कृष्टाद्भगवतः उपजीव्यांशमपेक्षते, मध्यमः-माधवैश्वर्यस्य महातपः करोति, मध्यमप्रायः-माधवमाश्रित्य स्वरूपानुरूपफलं न जानाति, अधमः-स्वामिनमाश्रित्यान्नमाश्रयते अधमप्रायः स्वामिनमाश्रित्यान्यांश्चाश्रयते ॥ २४४ ॥

अर्थ- (कलिवैरिदासवार्ता) कलिवैरिदास स्वामीजीकी वार्ता है कि (आत्मसमः) आत्मा के समान (प्राणसमः) प्राणके तुल्य (दृष्टिसमः) दृष्टिके समान (सर्वेश्वरम्) सबके स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान्को (समाश्रितः) अच्छे प्रकारसे आश्रयण करनेवाले (षड्विधः) छः प्रकारके होते हैं। (उत्तमः) उत्तम १, (उत्तमप्रायः) उत्तम प्रायः २, (मध्यमः) मध्यम ३, (मध्यमप्रायः) मध्यम-प्रायः ४, (अधमः) अधम ५, (अधमप्रायः) अधमप्राय ६, इस भेदसे छः प्रकारके होते हैं। (उत्तमः) उत्तमजन (भगवन्तम्) श्रीमन्नारायण भगवान्को (एव) निश्चय करके (स्वस्य) अपना (बन्धुम्) बन्धु (जानाति) जानता है। (उत्तमप्रायः) उत्तमप्रायजन (उत्कृष्टात्) सबसे उत्कृष्ट (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान्से (उपजीव्यांशम्) उपजीव्य अंशकी (अपेक्षते) अपेक्षा करता है। (मध्यमः) मध्यमजन (माधवैश्वर्यस्य) माधवके ऐश्वर्यके (महातपः) महातप को (करोति) करता है। (मध्यमप्रायः) मध्यमप्राय जन (माधवम्) माधवको (आश्रित्य) आश्रयण कर

(स्वरूपानुरूपफलम्) स्वरूपके अनुरूप फलको (न) नहीं (जानाति) जानता है। (अधमः) अधमजन (स्वामिनम्) श्रीमन्नारायण भगवान्को (आश्रित्य) आश्रयणकर (अन्नम्) अन्नको (आश्रयते) आश्रयण करता है। (च) और (अधमप्रायः) अधमप्रायजन (स्वामिनम्) स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान्को (आश्रित्य) आश्रयण कर (अन्यान्) अन्य देवों को (आश्रयते) आश्रयण करता है। इस दो सौ चौवालीसवीं वार्तामें पैंतालीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २४४ ॥

अब कदाडयाण्डानाचार्यजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कदाडयाण्डानाचार्योक्तावार्ता ॥

मू०-कदाडयाण्डान् प्रपत्तिनिष्ठस्त्रिविधः, शब्दनिष्ठोऽर्थनिष्ठोऽभिमाननिष्ठश्च ॥ २४५ ॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ- वेदान्तदीपं वेदान्तसारं वेदार्थसंग्रहम्।
श्रीभाष्यं लोकविदितं विधाय बुधसंमतम् ॥ १९४ ॥
गीताभाष्यं च सुमहत्कृत्वा गद्यत्रयं महत्।
गत्वा दश दिशः सम्यक् कृत्वा दिग्विजयं परम् ॥ १९५ ॥

(कादाडयाण्डान्) कादाडयाण्डानाचार्यजी ने कहा है कि (प्रपत्तिनिष्ठः) प्रपत्तिमें निष्ठपुरुष (त्रिविधः) तीन प्रकारके होते हैं। (शब्दनिष्ठः) शब्दनिष्ठपुरुष १, (अर्थनिष्ठः) अर्थनिष्ठ पुरुष २, (च) और (अभिमाननिष्ठः) अभिमाननिष्ठ पुरुष ३, इस वार्तामें सात पद हैं। इति कदाडयाण्डानाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २४५ ॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्तावार्ता ॥

मू०-अज्ञानदशा कुंभकर्णवत् देवतान्तरभजनदशा रावणवत् भक्तिदशा शूर्पणखावत् प्रपत्तिदशा श्रीविभिषणवदिति कलिवैरिदासः ॥ २४६ ॥

अर्थ-(अज्ञानदशा) अज्ञानकी दशा (कुंभकर्णवत्) कुंभकर्णके समान है। (देवतान्तरभजनदशा) नारायणसे अन्य देवताओं के भजन की दशा (रावणवत्) रावणके समान है। (भक्तिदशा) भक्तिकी दशा (शूर्पणखावत्) शूर्पणखा राक्षसी के तुल्य है। (प्रपत्तिदशा) प्रपत्ति की दशा (श्रीविभीषणवत्) श्रीविभीषणजीके समान हैं। (इति) इस प्रकार से (कलिवैरिदास...) कलिवैरिदासस्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ छियालीसवीं वार्तामें दस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम्॥ २४६॥

पुनः कलिवैरिदासस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्तावार्त्ता ॥

मू०-सर्वयोगसंन्यासी सर्वोपायशून्यः भुक्त्वोपवासी सर्वसंगपरित्यागी भक्तिसारः पराङ्कुशः परकालश्च, अर्थ लुब्धः संसारी ज्ञानलुब्धः श्रीवैष्णवः कैंकर्यलुब्धो नित्यो मुक्तश्च दास्यलुब्धः सर्वेश्वरः बद्धः स्वं प्रकृतिं जानाति विषयी-आत्मानं कामुकं जानाति केवलः स्वतन्त्रं शास्त्री सर्वज्ञं कर्मी भोक्तारं ज्ञानी विरक्तंभक्तो मोक्षसाधकं प्रपन्नः चितं जानाति वद्धस्य धारकमन्नपानादिकं पोषकमाज्य-क्षीरादिकं भोग्यं स्रक्चन्दनादिकं मुमुक्षोर्धारकं ज्ञानं पोषक आचार्यवैभवः भोग्यं तद्गुणानुसन्धानं नित्यस्य मुक्तस्य च धारको मिथुनानुभवः पोषकं कैंकर्य्यं भोग्यो भगवन्मुखोल्लासः कश्चिदाचार्य्यमाश्रयतोर्द्वयोर्मध्ये-एको ज्ञानाधिको भवति, एकः संबन्धमात्रवान् कथमिति चेत् पापस्याविनाशात् पापाविनाशे-आश्रयणं कथं संभवतीति चेत् कस्याश्चिस्त्र्याः प्रतिबन्धकानि त्रीणि पाणिग्रहण-विरोधिपापं भर्तृसंश्लेषविरोधिपापं पुत्रजननविरोधिपापं

९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८
च एतानि क्रमेण यथा नश्यन्ति तथा-अस्याधिकारिणः
९९ १०० १०१
समर्पणविरोधिपापं साधनविरोधिपापं प्राप्यविरोधिपापं
१०२ १०३ १०४
च क्रमेण नश्यन्ति ॥

अर्थ- (सर्वयोगसंन्यासी) समस्त योगोंको भगवत्में समपर्ण करनेवाला (सर्वोपायशून्यः) सम्पूर्ण कर्म ज्ञान भक्ति आदिक उपायोंसे रहित (भुक्त्वा) भोगकर (उपवासी) उपवास करनेवाला (सर्वसङ्गपरित्यागी) समस्त स्त्री पुत्र आदिक संगको परित्याग करनेवाला (भक्तिसारः) भक्तिसार स्वामीजी हैं तथा (पराङ्कुशः) पराङ्कुशमुनिस्वामीजी हैं (च) और (परकालः) परकाल स्वामीजी हैं (अर्थलुब्धः) अर्थमें लुब्ध (संसारी) संसारी जीव हैं (ज्ञानलुब्धः) ज्ञानमें लुब्ध (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव हैं (कैंकर्य्यलुब्धः) भगवान्के कैंकर्य्यमें लुब्ध (नित्यः) नित्यजीव हैं (च) और (मुक्तः) मुक्त जीव हैं (दास्यलुब्धः) दासता में लुब्ध (सर्वेश्वरः) सबका स्वामी श्रीमन्नारायण हैं। (बद्धः) बद्धजीव (स्वम्) अपने को (प्रकृतिम्) माया (जानाति) जानता है (विषयी) विषयी जीव (आत्मानम्) अपनी आत्माको (कामुकम्) विषयको चाहनेवाला (जानाति) जानता है (केवलः) केवल जीव (स्वतन्त्रम्) अपनी आत्मा को स्वतंत्र जानता है (शास्त्री) शास्त्री पुरुष (सर्वज्ञम्) अपनी आत्माको सर्वज्ञ जानता है (कर्मी) कर्मीपुरुष (भोक्तारम्) अपनी आत्मा को भोक्ता जानता है (ज्ञानी) ज्ञानी पुरुष (विरक्तम्) अपनी आत्मा को विरक्त जानता है (भक्तः) भक्त पुरुष (मोक्षसाधकम्) अपनी आत्मा को मोक्ष का साधक जानता है और (प्रपन्नः) प्रपन्न जन अपनी आत्माको (चितम्) चेतन (जानाति) जानता है। (बद्धस्य) बद्ध जीवके (धारकम्) धारक (अन्नपानादिकम्) अन्न जल आदिक हैं (पोषकम्) पुष्टकरनेवाला (आज्यक्षीरादिकम्) घी दूध दधि तक्र आदिक है (भोग्यम्) भोग्यपदार्थ (स्रक्चन्दनादिकम्) माला चन्दन इतर तेल आदिक है और (मुमुक्षोः) मुमुक्षु जीवके (धारकम्) धारक (ज्ञानम्) ज्ञान है (पोषकः) पुष्ट करने वाला (आचार्यवैभवः) आचार्यका वैभव है (भोग्यम्) भोग्य (तद्गुणानुसन्धानम्) आचार्यके गुणोंका अनुसन्धान करना है। तथा (नित्यस्य) नित्य जीवके (च) और (मुक्तस्य) मुक्त जीवके (धारकः) धारक (मिथुनानुभवः) लक्ष्मी और नारायण इन दोनों सरकारोंका अनुभव करना है (पोषकम्) पुष्ट करनेवाला (कैंकर्य्यम्) श्रीमन्नारायण का नित्य कैंकर्य है (भोग्यः) भोग्य (भगवन्मुखोल्लासः) श्रीमन्नारायण भगवान्का मुखोल्लास है। (कश्चित्) किसी भी (आचार्यम्) आचार्य (आश्रयतोः)

आश्रयण करवाले (द्वयोः) दोनों के (मध्ये) बीच में (एकः) एक (ज्ञानाधिकः) ज्ञानाधिक (भवति) होता है। (एकः) एक (सम्बन्धमात्रवान्) सम्बन्ध मात्रवाला (कथम्) कैसे है (इति) इस प्रकारके (चेत्) यदि कहो तो सुनो (पापस्य) पापके (अविनाशात्) विनाश नहीं होनेसे (पापाविनाशे) पाप के विनाश नहीं होने पर (आश्रयणम्) भगवत्का आश्रयण (कथम्) कैसे (सम्भवति) हो सकता है, (इति) इस प्रकार के (चेत्) यदि कहो तो सुनो (कस्याश्चित्) किसी भी (स्त्रियाः) स्त्रीके (प्रतिबन्धकानि) प्रतिबन्धक (त्रीणि) तीन पाप हैं, (पाणिग्रहणविरोधिपापम्) पाणिग्रहण विवाहमें विरोध करने वाला पाप १, (भर्तृसंश्लेषविरोधिपापम्) पति के साथ अच्छे प्रकार के आलिङ्गन करने में विरोध करने वाला पाप २, (च) और (पुत्रजननविरोधिपापम्) पुत्र की उत्पत्तिमें विरोध करनेवाला पाप ३, (एतानि) ये पूर्वोक्त तीन पाप (क्रमेण) क्रमसे (यथा) जैसे (नश्यन्ति) नष्ट होते हैं (तथा) वैसे ही (अस्य) इसं (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (समर्पणविरोधिपापम्) भगवत्-समर्पण में विरोध करनेवाला पाप १, तथा (साधनविरोधिपापम्) उपाय में विरोध करने वाला पाप २, (च) और (प्राप्यविरोधिपापम्) प्राप्त करने योग्य तत्त्व में विरोध करने वाला पाप ३, ये तीनों पाप (क्रमेण) क्रमसे (नश्यन्ति) नाष्ट हो जाते हैं ॥ शमिति ॥

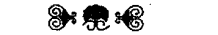
मू०—वैष्णवः[१], एकान्ती[२], परमैकान्ती[३], चेति[४] त्रिधा[५]। देवतान्तरनिवृत्तिपूर्वकभगवच्छेषत्वज्ञानवान्[६] वैष्णवः[७], साधनान्तरनिवृत्तिपूर्वकसिद्धोपायस्वीकारवान्[८] एकान्ती[९], प्रयोजनान्तरनिवृत्तिपूर्वकपरमप्राप्यरुचिमान्[१०] परमैकान्ती[११], वैष्णवः[१२]-अकृत्यं[१३] पापमिति[१४] त्यजति[१५], एकान्ती[१६] स्वरूपहानिरिति[१७] त्यजति[१८], परमैकान्ती[१९] रुच्यभावात्[२०] त्यजति[२१], वैष्णवः[२२] कृत्यमधिकारसंपत्त्यर्थं[२३] करोति[२४], एकान्ती[२५] लोकसंग्रहार्थं[२६] कर्त्तव्यमिति[२७] करोति[२८], परमैकान्ती[२९] कृपया[३०] करोति[३१], वैष्णवः[३२] कैंकर्यं[३३] साधनमितिकरोति[३४], एकान्ती[३५] कालक्षेप[३६] इति[३७] परमैकान्ती[३८] रागप्राप्तमिति[३९] शान्तस्य[४०] सत्वोद्रेकहेतुः[४१] सत्त्वोत्तराणां[४२] शरीरा-

कारनिरूपणपूर्वकदोषनिरूपणशून्या सम्यक् ज्ञाननिष्ठा, स्वरूपज्ञस्य स्ववर्णानुकूलं सुहृद्दर्शनमेव स्वापेक्षितं स्वरक्षणस्य परेच्छानुकूलं स्वशेषत्वमेव स्वरूपोपयुक्तं सत्वस्थस्य सलक्ष्मीकानुभवसाधनं सत्वस्थविषयसलक्ष्मीगतसम्बन्धज्ञानमेव शान्तो निवृत्तचतुर्विधाहङ्कारः, ते च देहे स्वरूपेउपाये-उपेये च देहेऽहङ्कारः स्वात्मनो देहाभेदज्ञानं देहानुबन्धिपदार्थेषु ममताबुद्धिः, देहान्तरानुभवे पुरुषार्थबुद्धिः, एतन्निवृत्तिर्नाम देहात्मबुद्धिनिवृत्तिः, देहानुबन्धिषु ममतानिवृत्तिः, देहान्तरानुभवे पुरुषार्थबुद्धिनिवृत्तिश्च, स्वरूपेऽहङ्कारो नाम-देहसम्बन्धप्रयुक्तस्वरूपप्रकाशाभावः-तन्निवृत्तिः स्वरूपप्रकाशः, उपायेऽहङ्कारो नाम स्वगतस्वीकारेउपायबुद्धिः, तन्निवृत्तिर्नाम स्वगतस्वीकारे-उपायबुद्धिनिवृत्तिपूर्वकं परगतस्वीकारविषयीभवनम्, उपेयेऽहङ्कारो नाम तस्याहं कैंकर्य्यं करोमीत्यनुसन्धानं तन्निवृत्तिर्नाम स्वहस्तेन स्वकेशशोधिते सति यथान्योन्यमुपकारस्मृतिर्न क्रियते, तथावयवभूतोऽयमात्मा-अवयविनः कैंकर्य्यं करोतीतिअनुसन्धानम् ॥

अर्थ- (वैष्णवः) वैष्णव १, तथा (एकान्ती) एकान्ती २, (च) और (परमैकान्ती) परमैकान्ती ३, (इति) इस प्रकारके (त्रिधा) हरिजन तीन प्रकारके होते हैं। (देवतान्तरनिवृत्तिपूर्वकभगवच्छेषत्वज्ञानवान्) श्रीमन्नारायणसे अन्य देवताओं की निवृत्ति पूर्वक भगवान्के शेषत्व ज्ञानवाला (वैष्णवः) वैष्णव होता है। (साधनान्तरनिवृत्तिपूर्वकसिद्धोपायस्वीकारवान्) उपायान्तर की निवृत्तिपूर्वक सिद्धोपायके स्वीकारवाला (एकान्ती) एकान्ती होता है। और (प्रयोजनान्तरनिवृत्तिपूर्वकपरमप्राप्यरुचिमान्) प्रयोजनान्तर की निवृत्ति पूर्वक परमप्राप्यकी रुचिवाला (परमैकान्ती)

परमैकान्ती होता है। (वैष्णवः) वैष्णव (अकृत्यम्) नहीं करने योग्य (पापम्) पाप है (इति) इस प्रकार के समझकर (त्यजति) पापको त्याग करता है। तथा (एकान्ती) एकान्ती (स्वरूपहानिः) स्वरूप नाश करने वाला पाप है (इति) इस प्रकारके समझकर (त्यजति) पापको त्याग करता है। और (परमैकान्ती) परमैकान्ती (रुच्यभावात्) रुचिके अभाव होने से (त्यजति) पापको त्याग करता है। (वैष्णवः) वैष्णव (कृत्यम्) करने योग्य अपने वर्ण और आश्रम के उचित कर्मको (अधिकारसंपत्त्यर्थम्) अधिकार संपत्तिके लिये (करोति) करता है। तथा (एकान्ती) एकान्ती (लोकसंग्रहार्थम्) लोक के संग्रहके लिये (कर्तव्यम्) करने योग्य कर्म है (इति) इस प्रकारके समझकर (करोति) कर्तव्य कर्म को करता है। और (परमैकान्ती) परमैकान्ती (कृपया) कृपा से (करोति) कृत्य करता है। (वैष्णवः) वैष्णव (कैंकर्य्यम्) कैंकर्यको (साधनम्) उपाय (इति) इस प्रकार के समझकर (करोति) करता है। तथा (एकान्ती) एकान्ती (कालक्षेपः) कालक्षेप (इति) इस प्रकारके समझकर करता है। और (परमैकान्ती) परमैकान्ती (रागप्राप्तम्) रागसे प्राप्त है (इति) इस प्रकारके समझकर करता है। (शान्तस्य) शान्तके (सत्त्वोद्रेकहेतुः) सत्त्वगुणका उद्रेक कारण है। (सत्त्वोत्तराणाम्) सत्त्व उत्तरवालोंके (शरीराकारनिरूपणपूर्वकदोष- निरूपणशून्या) शरीरके आकार निरूपण पूर्वक दोष निरूपण से रहित (सम्यक्) अच्छी तरह से (ज्ञाननिष्ठा) ज्ञानकी निष्ठा है। (स्वरूपज्ञस्य) स्वरूप जाननेवालोंके (स्ववर्णानुकूलम) अपने वर्णके अनुकूल (सुहृदर्शनम्) सुहृद्का दर्शन (एव) निश्चय करके (स्वापेक्षितम्) अपना अपेक्षित है। (स्वरक्षणस्य) अपनी रक्षा के (परेच्छानुकूलम्) परब्रह्मकी इच्छा के अनुकूल (स्वशेषत्वम्) अपना शेषत्व (एव) निश्चय करके (स्वरूपोपयुक्तम्) अपने स्वरूप के उपयुक्त है। (सत्वस्थस्य) सत्वगुणमें स्थित पुरुष के (सलक्ष्मीकानुभवसाधनम्) लक्ष्मीजी के सहित नारायण भगवान्के अनुभवका साधन (सत्वस्थविषयलक्ष्मीगतसंबन्धज्ञानम्) सत्वगुणमें स्थित विषयके और लक्ष्मीजीके सहित नारायण भगवान्के प्राप्त संबन्ध ज्ञान (एव) निश्चय करके है। (शान्तः) शान्त पुरुष (निवृत्तचतुर्विधाहङ्कारः) चार प्रकाके अहङ्कारसे रहित होते हैं। (च) और (ते) वे चार प्रकार के अहङ्कार अधोलिखित हैं (देहे) देहमें अहङ्कार १, (स्वरूपे) स्वरूपमें अहङ्कार २, (उपाये) उपाय में अहङ्कार ३, (च) और (उपेये) उपेय में अहङ्कार ४, ये चार प्रकारके हैं। उनमें (देहे) शरीरमें (अहङ्कारः) अहङ्कार यह है कि (स्वात्मनः) अपनी आत्माके (देहाभेदज्ञानम्) और शरीर के अभेदज्ञान करना अर्थात् देहको आत्मा समझना। तथा (देहानुबन्धिपदार्थेषु) देहानुबन्धी स्त्री पुत्रादिक पदार्थों में (ममताबुद्धिः) ममता बुद्धि करना। और (देहान्तरानुभवे) देहान्तरके अनुभव में (पुरुषार्थबुद्धिः) पुरुषार्थ बुद्धि करना।

(एतन्निवृत्तिः) देहाहङ्कारनिवृत्ति (नाम) माने (देहात्मबुद्धिनिवृत्तिः) देह में आत्मा की बुद्धि निवृत्ति करना है। तथा (देहानुबन्धिषु) देहके अनुबन्धी स्त्री पुत्रादिक पदार्थों में (ममतानिवृत्तिः) ममताबुद्धिनिवृत्ति करना है। (च) और (देहान्तरानुभवे) देहान्तर के अनुभव में (पुरुषार्थबुद्धिनिवृत्तिः) पुरुषार्थबुद्धिनिवृत्ति करना है। (स्वरूपे) स्वरूपमें (अहङ्कारः) अहङ्कार (नाम) माने (देहसंबन्धप्रयुक्तस्वरूपप्रकाशाभावः) देह के संबन्ध से प्रयुक्त स्वरूपके प्रकाशका आभाव है। (तन्निवृत्तिः) स्वरूपाहङ्कार निवृत्ति माने (स्वरूपप्रकाशः) स्वरूपका प्रकाश होना है। (उपाये) उपाय में (अहङ्कारः) अहङ्कार (नाम) माने (स्वगतस्वीकारे) स्वगत स्वीकारमें (उपायबुद्धिः) उपाय बुद्धि करना है। (तन्निवृत्तिः) उपायाहङ्कार निवृत्ति (नाम) माने (स्वगतस्वीकारे) स्वगत स्वीकारमें (उपायबुद्धिनिवृत्तिपूर्वकम्) उपाय बुद्धि के निवृत्तिपूर्वक (परगतस्वीकारविषयीभवनम्) परगत स्वीकार का विषय होना है। (उपेये) उपेयमें (अहङ्कारः) अहङ्कार (नाम) माने (तस्य) उसके (कैंकर्यम्) कैंकर्यको (अहम्) मैं (करोमि) करता हूँ (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना है। (तन्निवृत्तिः) उपेयाहङ्कारनिवृत्ति (नाम) माने (स्वहस्तेन) अपने हाथ से (स्वकेशशोधिते) अपने केश शुद्ध (सति) करने पर (यथा) जैसे (अन्योन्यम्) आपसमें (उपकारस्मृतिः) उपकार का स्मरण (न) नहीं (क्रियते) किया जाता है (तथा) वैसे ही (अवयवभूतः) श्रीमन्नारायणका अवयवभूत (अयम्) यह (आत्मा) जीवात्मा (अवयविनः) अवयवी परमात्माके (कैंकर्यम्) कैंकर्यको (करोति) करता है (इति) इस प्रकारके (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना है ॥ कमिति ॥



मू०–बद्धोऽविद्याधीनः, शास्त्री पुण्यपापाधीनः, केवलः स्वरूपाधीनः, मुमुक्षु र्भगवदधीनः, प्रपन्न आचार्य्याधीनः, प्रपत्तिनिष्ठस्तदीयाधीनः, प्रपन्नत्वं नाम दुःखं निवर्तय मा वा मम निवर्तकान्तरं नास्ति कृपामवलंब्य स्थित इत्यवस्थानं मुमुक्षुत्वं नाम मम परमाकाशप्राप्तिः कदा, तदीयगोष्ठीं कदा प्राप्नुयाम् आह्वानसमयोऽद्यापि नागतः वैकुण्ठं द्रष्टुं मम मनश्चिन्तयति तव दासो भूत्वा-इतः परमपिभ्रमामीत्यवस्थानं दावनलपरिवृत्तानां निस्सरण-

मार्गशून्यानां मृगाणामिव[५७] तापत्रयात्मकसंसारानुभव[५८][५९]-भीतानां मुमुक्षूणामाचार्यपुरस्कारेण[६०][६१] प्रपत्त्यनुष्ठानप्रकार[६२] उच्यते[६३] ॥

अर्थ- (बद्धः) बद्धजीव (अविद्याधीनः) अविद्याके अधीन होता है। (शास्त्री) शास्त्रीपुरुष (पुण्यपापाधीनः) पुण्य और पापके अधीन होता है। (केवलः) केवल जीव (स्वरूपाधीनः) स्वरूपके अधीन होता है। (मुमुक्षुः) मुमुक्षुजीव (भगवदधीनः) भगवान्‌के अधीन होता है। (प्रपन्नः) प्रपन्नजन (आचार्य्याधीनः) आचार्यके अधीन होता है। (प्रपत्तिनिष्ठः) प्रपत्तिनिष्ठ पुरुष (तदीयाधीनः) तदीय भागवतके अधीन होता है। (प्रपन्नत्वम्) प्रपन्नत्व (नाम) माने (दुःखम्) दुःखको (निवर्त्तय) दूर कीजिये (वा) अथवा (मा) मत दुःख को दूर कीजिये (मम) मेरा (निवर्तकान्तरम्) दूसरा दुःख को दूर करनेवाला (न) नहीं (अस्ति) है (कृपाम्) कृपाको (अवलम्ब्य) अवलंबनकर (स्थितः) मैं स्थित हूँ (इति) इस प्रकारके (अवस्थानम्) अवस्थान करना है। (मुमुक्षुत्वम्) मुमुक्षुत्व (नाम) माने (मम) मेरा (परमाकाशप्राप्तिः) परमाकाशकी प्राप्ति (कदा) कब होगी (तदीयगोष्ठीम्) तदीय भागवत की गोष्ठी को (कदा) कब (प्राप्नुयाम्) प्राप्त करूँगा। (आह्वानसमयः) बुलानेका समय (अद्य) आज (अपि) भी (न) नहीं (आगतः) आया है। (वैकुण्ठम्) वैकुण्ठ को (द्रष्टुम्) देखनेके लिये (मम) मेरा (मनः) मन (चिन्तयति) चिन्तवन करता है। (तव) आपका (दासः) सेवक (भूत्वा) होकर (इतः) इससे (परम्) परे (अपि) भी (भ्रमामि) भ्रमण करता हूँ (इति) इस प्रकारके (अवस्थानम्) अवस्थान करना है। (दावानलपरिवृत्तानाम्) दावानल द्वारा चारो तरफसे घेरे हुए (निस्सरणमार्गशून्यानाम्) निकलनेके मार्ग से रहित (मृगाणाम्) मृगोंके (इव) समान (तापत्रयात्मकसंसारानुभवभीतानाम्) दैहिक १, दैविक २, भौतिक ३, तापत्रयात्मक संसार के अनुभव करने से डरे हुए (मुमुक्षूणाम्) मुमुक्षु जीवों के (आचार्यपुरस्कारेण) आचार्यके पुरस्कारसे (प्रपत्त्यनुष्ठानप्रकारः) प्रपत्ति के अनुष्ठान के प्रकार को (उच्यते) कहते हैं। यहाँ पर पहला प्रश्न यह होता है कि बद्ध किसको कहते हैं? इस प्रश्न उत्तर लिखा है कि

॥ बद्धा नाम पाञ्चभौतिकेऽनित्ये सुखदुःखानुभवपरिकर आत्मविश्लेषे दर्शन-स्पर्शनायोग्योऽशुद्धास्पदोऽज्ञानान्यथाज्ञानविपरीतज्ञानजनको देह एवात्मेति शब्दादि-विषयानुभवजनितस्वदेहपोषणमेव पुरुषार्थ इति शब्दादिविषयलाभौपयिकतया वर्णाश्रमधर्मान् विनाश्यासेव्यसेवांकृत्वा भूतहिंसां कृत्वा परदारपरद्रव्यापहारं कृत्वा

संसारवर्द्धका भगवद्विमुखाश्चेतनाः ॥ अर्थपञ्च० सू० ११ ॥

बद्ध माने पाञ्चभौतिक अनित्य तथा सुख दुःख के अनुभव का साधन आत्माके विश्लेष होने पर देखने और छूने के अयोग्य अशुद्धिके स्थान अज्ञान तथा अन्यथा ज्ञान और विपरीत ज्ञानका जनक देह ही आत्मा है ऐसा समझकर शब्दादिक विषय के अनुभव से उत्पन्न अपने देह को पुष्ट करना ही पुरुषार्थ है। इस प्रकारके शब्दादिक विषय के लाभ के कारण से अपने वर्ण और आश्रम के धर्मों को विनाश कर नहीं सेवा करने योग्य की सेवा कर तथा जीवोंको मारकर और परायी स्त्री तथा पराये धन को अपहरण कर संसार को बढ़ाने वाले श्रीमन्नारायण भगवान्से विमुख चेतन हैं॥ ११ ॥ इस प्रकार के पहले प्रश्न का उत्तर होनेपर दूसरा प्रश्न होता है कि केवल किसको कहते है ? इस प्रश्न का उत्तर लिखा है कि-

केवलोनाम-एकाकी-अत्यन्तक्षुत्पिपासाभ्यां पीडितो भक्ष्याभक्ष्यविवेककर्तुमशक्तः स्वदेहं स्वयमेव भक्षित्वा प्रसन्नो भवति, तथा संसारदावाग्निना तप्तः सन् संसारदुःखनिवृत्त्यर्थं शास्त्रजन्यज्ञानेन प्रकृत्यात्मविवेकं कृत्वा प्रकृते र्दुःखाश्रयत्वं हेयपदार्थसमूहत्वं रूपाकारमात्मानः प्रकृतेः परत्वं स्वयं प्रकाशत्वं स्वतः सुखित्वनित्यत्वाप्राकृतत्वस्वरूपमाकारं चानुसन्धाय पूर्वं स्वेनानुभूतदुःखाधिक्येनैत-दल्परस आसक्तो ज्ञानानन्दमयपरमात्मविवेकं कर्तुमशक्तः-एतदात्मप्राप्तिसाधनभूतज्ञान-योगनिष्ठो योगफलमात्मानुभवमात्रमेव पुरुषार्थत्वेनानुभूय पश्चात्संसारसंबन्ध-भगवत्प्राप्तिरहितः यावदात्म भाव्यशरीरी सञ्चरन् कश्चित् ॥ अर्थपं० सू० १२ ॥

केवल माने अकेला अत्यन्त भूख और प्यास से पीडित भक्ष्य और अभक्ष्य के विचार करनेके लिये असमर्थ अपने देह को अपने ही खाकर प्रसन्न होता है वैसे ही संसार दावानलसे संतप्त हुए संसार के दुःख की निवृत्तिके लिये शास्त्रसे उत्पन्न ज्ञानसे प्रकृति और पुरुष को विचार कर प्रकृति के दुःख के आश्रय तथा हेय पदार्थ के समूह रूप आकार को और पुरुषके प्रकृति से परे स्वयंप्रकाश अपने से सुखानन्द नित्य और अप्राकृत स्वरूप आकार को अनुसंधान कर पहले अपने से अधिक दुःखके अनुभव करने से इस जीव स्वरूप के अनुभव रूप अल्पसुख में आसक्तज्ञान और आनन्दमय परमात्मा के विचार करने के लिये असमर्थ इस जीवात्मा की प्राप्ति में साधनभूत ज्ञानयोग में निष्ठ पुरुष सांख्ययोगका फल जीवात्मा के अनुभव मात्र ही है ऐसी पुरुषार्थता से अनुभव कर पीछे से संसार के संबन्धसे और भगवत्प्राप्ति से रहित सर्वदा केवल अपनी आत्मा को अनुभव करता हुआ बिना शरीरके विचरता हुआ कोई जीव है॥ १२ ॥ खमिति ॥

मू०—श्रीविभीषणो रावणं प्रति "प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली" इत्यवदत्, तथा-आचार्यः मुमुक्षुं प्रत्यमुमात्मानं भगवच्चरणयोः समर्पयेति वदति श्रीविभीषणेनोक्ता भगवच्चरणावाश्रय रामो रक्षितेति वार्ता यथा प्रहस्तादिवाक्यदोषदूषितं रावणहृदयं नारोहति तथा आचार्य्योक्ता वार्ता प्राकृतसहवासदोषदूषितस्य मुमुक्षो र्हृदयं नारोहति श्रीविभीषणो यथा स्वामिचरणावाश्रयितुमागतः "वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह" इति महाराजोक्तं वचनं श्रुत्वा हृष्टोऽतिष्ठत् तथा मुमुक्षुरपि ज्ञानाधिकोक्तक्रूरवार्त्तां श्रुत्वा प्रीतो भवति श्रीविभीषणो-भगवच्चरणावाश्रयितुं "परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च" इति पूर्वपरिग्रहमत्यजत् तथा मुमुक्षुरपि भगवद्विषयविरुद्धदेशान् त्यजति श्रीविभीषणोभगवच्चरणावाश्रयितुं "खस्थ एव व्यतिष्ठत" इत्युक्तप्रकारेण निरालम्बोऽतिष्ठत् तथा मुमुक्षुरपि भगवन्तमाश्रयितुम् उपायान्तरशून्यस्तिष्ठति श्रीविभीषणोभगवच्चरणावाश्रयितुं "त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः" इति यथानुपादेयान् त्यक्त्वा समागतस्तथा मुमुक्षुरपि भगवच्चरणावाश्रयितुं विरोधिनस्त्यजति श्रीविभीषणो भगवच्चरणावाश्रयितुम् "आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः" इति यथा भगवदधिष्ठितदेशं प्रीत्या गतस्तथा मुमुक्षुरपि भगवदधिष्ठितदिव्यदेशं प्राप्नोति श्रीविभीषणो भगवच्चरणा-

१४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८
वाश्रयितुं ''निवेदयत मां क्षिप्रम्'' इति ''आनयैनं हरि-
१४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७
श्रेष्ठ'' इति च पुरुषकारं पुरस्कारमकरोत् तथायमपि
१५८ १५९ १६० १६१ १६२
पुरुषकारं पुरस्करोति श्रीविभीषणे-एकस्मिन् शरणागते
१६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९
यथा तन्मन्त्रिणामपि फलप्राप्तिरभवत् तथा मुमुक्षोर्भग-
१७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६
वच्चरणयोराचार्यकृतप्रपत्तिरेवालं श्रीविभीषण यथा स्वामी
१७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२
''ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य तद्धरीश्वरेणाभिहितं नरे-
१८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९
श्वरः। विभीषणेनाशु जगाम सङ्गमं पतत्रिराजेन यथा
१९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५
पुरन्दरः'' इत्युक्तप्रकारेण महाराजं पुरस्कृत्य यथा विभी-
१९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२
षणमङ्गीचकार तथा मुमुक्षुमाचार्यं पुरस्कृत्य भगवानङ्गी-
२०३
करोति ॥

अर्थ-(श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण ने (रावणम्) रावणके (प्रति) प्रति (प्रदीयताम्) दे दीजिये (दाशरथाय) दाशरथनन्दन श्रीरामजीके लिये (मैथिली) सीताजी को (इति) इस प्रकारके (अवदत्) कहा है (तथा) वैसे ही (आचार्यः) आचार्य (मुमुक्षुम्) मुमुक्षु जीवके (प्रति) प्रति (अमुम्) इस (आत्मानम्) अपनी आत्मा को (भगवच्चरणयोः) श्रीमन्नारायण भगवान्के चरणारविन्दोंमें (समर्पय) समर्पण करो (इति) इस प्रकार के (वदति) कहते हैं। (श्रीविभीषणेन) श्रीविभीषणसे (उक्ता) कही हुई (भगवच्चरणौ) भगवान् श्रीरामजी के श्रीचरणोंको (आश्रय) आश्रयण करो (रामः) श्रीरामजी (रक्षिता) रक्षा करनेवाले हैं (इति) इस प्रकार की (वार्ता) वार्ता (यथा) जैसे (प्रहस्तादिवाक्यदोषदूषितम्) प्रहस्त और आदि शब्द से दुर्मुख वज्रदंष्ट्र निकुंभ आदि राक्षसों के वाक्य के दोष से दूषित (रावणहृदयम्) रावणके हृदय में (न) नहीं (आरोहति) असर की है। (तथा) वैसे ही (आचार्योक्ता) आचार्यसे कही हुई (वार्ता) वार्ता (प्राकृतसहवासदोषदूषितस्य) प्राकृतजनके सहवासके दोष से दूषित (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुष के (हृदयम्) हृदयमें (न) नहीं (आरोहति) असर करती है। (श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण (यथा) जैसे (स्वामिचरणौ) स्वामी श्रीरामजी के चरणारविन्दोंको (आश्रयितुम्) आश्रयण करनेके लिये (आगतः) आ गये। और (तीव्रेण) तीव्र (दण्डेन) दण्डसे (सचिवैः) मंत्रियों के (सह) साथ (एषः) इस विभीषणको (वध्यताम्) मारिये (इति) इस प्रकारके (महाराजोक्तम्) महाराज सुग्रीवके कहे हुए (वचनम्) वचनको (श्रुत्वा)

सुनकर (हृष्टः) हृष्ट विभीषण (अतिष्ठत्) ठहरे थे। (तथा) वैसे ही (मुमुक्षुः) मुमुक्षु पुरुष (अपि) भी (ज्ञानाधिकोक्तक्रूरवार्ताम्) अधिक ज्ञानवाले पुरुषसे कही हुई क्रूरवार्ताको (श्रुत्वा) सुनकर (प्रीतः) प्रसन्न (भवति) होता है। (श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण (भगवच्चरणौ) भगवान् श्रीरामजीके चरणारविन्दोंको (आश्रयितुम्) आश्रयण करनेके लिये (मया) मैंने (लंका) लंकापुरी को (परित्यक्ता) परित्याग कर दिया (च) और (मित्राणि) मित्रोंको परित्याग कर दिया (च) और (धनानि) धनोंको परित्यागकर दिया (इति) इस प्रकारके (पूर्वपरिग्रहम्) पहलेके परिग्रहको (अत्यजत्) त्याग कर दिये हैं। (तथा) वैसे ही (मुमुक्षुः) मुमुक्षु पुरुष (अपि) भी (भगवद्विषयविरुद्धदेशान्) भगवद्विषय से विरुद्ध देशोंको (त्यजति) त्याग करता है। (श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण (भगवच्चरणौ) भगवान् श्रीरामजीके श्रीचरणोंको (आश्रयितुम्) आश्रयण करने के लिये (खस्थः) आकाशमें स्थित (एव) निश्चय करके (व्यतिष्ठत) ठहरे (इति) इस प्रकारके (उक्तप्रकारेण) वाल्मीकीय रामायणमें कहे हुए प्रकार से (निरालम्बः) बिना अवलंब के (अतिष्ठत्) ठहरे। (तथा) वैसे ही (मुमुक्षुः) मुमुक्षु पुरुष (अपि) भी (भगवन्तम्) श्रीमन्नारायण भगवान्को (आश्रयितुम्) आश्रयण करनेके लिये (उपायान्तरशून्यः) अन्य उपायोंसे रहित (तिष्ठति) ठहरता है। (श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण (भगवच्चरणौ) भगवान् श्रीरामजीके श्रीचरणोंको (आश्रयितुम्) आश्रयण करनेके लिये (पुत्रान्) पुत्रों को (च) और (दारान्) स्त्रियों को (च) और चकार से धनादिक को (त्यक्त्वा) छोड़कर (राघवम्) श्रीरामजीकी (शरणम्) शरणमें (गतः) प्राप्त हूँ (इति) इस प्रकार के (यथा) जैसे (अनुपादेयान्) नहीं ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (त्यक्त्वा) छोड़कर (समागतः) प्राप्त हुआ है। (तथा) वैसे ही (ममुक्षुः) मुमुक्ष पुरुष (अपि) भी (भगवच्चरणौ) भगवान्के चरणारविन्दों को (आश्रयितुम्) आश्रयण करने के लिये (विरोधिनः) विरोधियोंको (त्यजति) त्याग करता है। (श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण (भगवच्चरणौ) भगवान् श्रीरामजी के श्रीचरणोंको (आश्रयितुम्) आश्रयण करने के लिये (यत्र) जहाँपर (सलक्ष्मणः) लक्ष्मणजीके सहित (रामः) श्रीरामजी थे, वहाँ पर (मुहूर्तेन) एक मुहूर्त करके (आजगाम) आ गये (इति) इस प्रकार के (यथा) जैसे (भगवदधिष्ठितदिव्यदेशम्) भगवान् श्रीरामजी से अधिष्ठित देश को (प्रीत्या) प्रीतिसे (गतः) प्राप्त किये हैं। (तथा) वैसे ही (मुमुक्षुः) मुमुक्षु पुरुष (अपि) भी (भगवदधिष्ठितदिव्यदेशम्) भगवान्से अधिष्ठित श्रीरङ्ग आदि दिव्य देशको (प्राप्नोति) प्राप्त करता है। (श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण (भगवच्चरणौ) भगवान् श्रीराम जी के श्रीचरणारविन्दों को (आश्रयितुम्) आश्रयण करने के लिये (माम्) मुझको (क्षिप्रम्) शीघ्र (निवेदयत) आप सब निवेदन कीजिये (इति) इस प्रकारके कहने पर (हरिश्रेष्ठ) हे वानरोंमें श्रेष्ठ

सुग्रीव ! (एनम्) इस विभीषणको (आनय) लाओ (इति) इसप्रकार के (च) भी (पुरुषकारम्) पुरुस्कारको (पुरस्कारम्) पुरस्कार (अकरोत्) किये हैं। (तथा) वैसे ही (अयम्) यह मुमुक्षु पुरुष (अपि) भी (पुरुषकारम्) भगवान् के आश्रमयण करने के समय में पुरुषकार को (पुरस्करोति) पुरस्कार करता है। (श्रीविभीषणे) श्रीविभीषणके (एकस्मिन्) एक (शरणागते) शरणमें आने पर (यथा) जैसे (तन्मंत्रिणाम्) उस विभीषणके चार मंत्रियों के (अपि) भी (फलप्राप्तिः) शरणागति का फल श्रीराम प्राप्ति (अभवत्) हुई है। (तथा) वैसे ही (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुषके (भगवच्चरणयोः) भगवान्के चरणारविन्दोंमें (आचार्यकृतप्रपत्तिः) आचार्यसे की हुई प्रपत्ति (एव) निश्चय करके (अलम्) पर्याप्त है। (श्रीविभीषणम्) श्रीविभीषणजीको (यथा) जैसे (स्वामी) श्रीरामभद्रजी (ततः) उसके बाद (तु) तो (नरेश्वरः) मनुजपति स्वामी (तद्धरीश्वरेण) उस कपिपति से (अभिहितम्) कहे हुए (सुग्रीववचः) सुग्रीवके वचनको (निशम्य) सुनकर (विभीषणेन) श्रीविभीषणके साथ (आशु) शीघ्र (समागमम्) समागम को (जगाम) प्राप्त किये (यथा) जैसे (पुरन्दरः) इन्द्र ने (पतत्रिराजेन) गरुड़के साथ समागम को प्राप्त किया। (इति) इस प्रकारके (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकारसे (महाराजम्) महाराज सुग्रीवको (पुरस्कृत्य) पुरस्कारकर (यथा) जैसे (विभीषणम्) श्रीविभीषणको (अङ्गीचकार) स्वीकार किये हैं (तथा) वैसे ही (मुमुक्षुम्) मुमुक्षु पुरुषको (आचार्य्यम्) आचार्यको (पुरस्कृत्य) पुरस्कारकर (भगवान्) श्रीमन्नारायण भगवान् (अङ्गीकरोति) स्वीकार करते हैं। इस वार्तामें **॥ प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥** यह वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड का प्रतीक है, इससे समस्तश्लोकको लिखकर अर्थ लिखता हूँ कि-

॥ पुरा शरत्सूर्य्यमरीचिसन्निभान्नवाग्रपुंखान्सुदृढान्नृपात्मजः। सृजत्यमोघान्विशिखान्वधाय ते प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ वा० रा० युद्ध० सर्ग० ९, श्लो० २१ ॥ त्यजाशु कोपं सुखधर्मनाशनं भजस्व धर्मं रतिकीर्तिवर्धनम्। प्रसीद जीवेम सपुत्रबान्धवाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी शरत् कालके सूर्यकी किरण के समान नये अग्रभागमें पुंखवाले अत्यन्त मजबूत अमोघ बाणोंको जबतक तूझे मारनेके लिये नहीं छोड़ते हैं, उसके पहले ही श्रीरामजीके लिये श्रीसीताजी को दे दो ॥ २१ ॥ सुख और धर्मके नाश करनेवाले क्रोध को तुम शीघ्र छोड़ दो, तथा रति और कीर्तिको बढ़ाने वाले धर्मको सेवन करो, प्रसन्न हो जाओ, हम सब पुत्र और बन्धुओंके साथ जीयें, इसलिये श्रीरामजी के लिये श्रीसीता जी को दे दो ॥ २२ ॥ और भी लिखा है कि-

॥ यावन्न लङ्कां समभिद्रवन्ति बलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः। दंष्ट्रायुधाश्चैव

नखायुधाश्च प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ वा० रा० यु० ६, सर्ग १४, श्लो० ३ ॥ यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा रामेरिता राक्षसपुङ्गवानाम् । वज्रोपमा वायुसमानवेगाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ४ ॥

दाँत और नख आयुध हैं जिन सबोंके ऐसे बलीमुख पर्वत कूट के समान वानर और भालू जबतक लंका नहीं आते हैं, उसके पूर्व श्रीरामजी के लिये श्रीसीताजीको दे दो ॥ ३ ॥ श्रीरामजी से छोड़े हुए वे वज्रके समान और पवन के तुल्य वेगवाले बाण जबतक राक्षस पुङ्गवोंके नहीं ग्रहण करते हैं, तबतक यानी उसके पहले श्रीरामजीके लिये श्रीसीताजी को दे दो ॥ ४ ॥ इसके बाद इस वार्तामें **॥ वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह ॥** यह प्रतीक है, इससे इस सम्पूर्णश्लोक को लिखकर इसका अर्थ मैं लिखता हूँ कि-

॥ वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह । रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥ वा० रा० यु० ६, स० १७, श्लो० २९ ॥

चारों मंत्रियों के साथ तीव्र दण्ड से इस विभीषणका वध कीजिये, क्योंकि निश्चय करके यह विभीषण नृशंस रावण का छोटा भाई है ॥ २९ ॥ इसके बाद इस वार्तामें **॥ परित्यक्ता मया लंका मित्राणि च धनानि च ॥** यह प्रतीक है, इससे इस समस्तश्लोकको लिखकर इसका अर्थ मैं लिखता हूँ कि-

॥ भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः । परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥ वा० रा० यु० ६, सर्ग० १९, श्लो० ५ ॥

सब जीवोंके शरण्य आपकी शरणमें मैं विभीषण आया हूँ, और मैंने लङ्कापुरीको तथा मित्रोंको और धनों को परित्याग कर दिया ॥ ५ ॥ इसके बाद इस वार्ता में **॥ खस्थ एव व्यतिष्ठन्त ॥** यह प्रतीक है, इस सम्पूर्णश्लोक को लिखकर इसक अर्थ लिखता हूँ कि-

॥ तेषां सम्भाषमाणानामन्योन्यं स विभीषणः । उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठन्त ॥ वा० रा० यु० ६, स० १७, श्लो० १० ॥

उन बानरों के आपस में भाषण करते हुए वह श्रीविभीषण समुद्रके उत्तर तीरको पाकर निश्चय करके आकाश में स्थित ठहर गये ॥ १० ॥ इसके बाद इस वार्तामें **॥ त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥** यह प्रतीक है, इससे इस समस्तश्लोक को लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि-

॥ सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः । त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥ वा० रा० यु० स० १७, श्लो० १६ ॥

मैं उस रावण से कठोर वचन सुनकर और नौकर के तरह अपमानित होकर पुत्रों को और

दारा को छोड़कर श्रीरामजीकी शरणमें आया हूँ ॥ १६ ॥ इसके बाद इस वार्तामें ॥ **आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः** ॥ यह प्रतीक है, इससे इस सम्पूर्ण श्लोक को लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः । आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ वा० रा० यु० ६, सं० १७, श्लो० १ ॥

मैं जाता हूँ तुम अपनी रक्षा करो, इस प्रकार के कठोर वाक्य को कहकर रावण का छोटा भाई विभीषण जहाँपर श्रीलक्ष्मणजी के साथ श्रीरामजी ठहरे थे वहाँपर मुहूर्त मात्र करके आ गया ॥ १॥ इसके बाद इस वार्तामें ॥ **निवेदयत मां क्षिप्रम्** ॥ यह प्रतीक है, इससे इस समस्त लोक को लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने । निवेदयत मां क्षिप्रं विभीषणमुपस्थित् ॥ वा० रा० यु० ६, स० १७, श्लो० १७ ॥

सब लोक के शरण्य महात्मा श्रीरामजीसे उपस्थित मुझ विभीषणको शीघ्र निवेदन कीजिये ॥ १७ ॥ इसके बाद इस वार्तामें ॥ **आनयैनं हरिश्रेष्ठ** ॥ यह प्रतीक है, इससे सम्पूर्ण लोकको लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया । विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥ वा० रा० यु० ६, स० १८, श्लो ३४ ॥

हे वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव ! इस विभीषण को मेरे पास लाओ, मैंने उसके लिये अभय प्रदान किया है, विभीषण हो अथवा यदि स्वयं रावण भी हो तो उसको मेरे पास लाओ ॥ ३४ ॥ इसके बाद वार्तामें यह श्लोक है ॥

॥ ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य तद्धरीश्वरेणाभिहितं नरेश्वरः । विभीषणेनाशु जगाम सङ्गमं पतत्रिराजेन यथा पुरन्दरः ॥ वा० रा० यु० ६, सं० १८, श्लो० ३९ ॥

उसके बाद तो श्रीरामजी उस कपीशसे कहे हुए सुग्रीवके वचनको सुनकर जैसे इन्द्र ने गरुड़ के साथ संगम किया वैसे ही श्रीरामजी ने विभीषणके साथ समागम किया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार से सबका अर्थ हो जाने पर तो यह प्रश्न होता है कि कौन सी बात प्रहस्त आदि राक्षसों ने कही है कि जिससे श्रीविभीषणसे कही हुई वार्ता ने रावण के हृदय में असर नहीं की है। इस प्रश्नका उत्तर देखिये, वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि–

॥ ततो नीलाम्बुदप्रख्यः प्रहस्तो नाम राक्षसः । अब्रवीत्तानुलिर्वाक्यं शूरः सेनापतिस्तदा ॥ वा० रा० यु० ६, स० ८, श्लो० १ ॥ देवदानवगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः । सर्वे धर्षयितुं

शक्याः किं पुनर्मानवौरणे ॥ २ ॥ सर्वे प्रमत्ता विश्वस्ता वंचिताः स्म हनूमता। नहि मे जीवितो गच्छेज्जीवन्स वनगोचरः ॥ ३ ॥ सर्वां सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम्। करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मां भवान् ॥ ४ ॥ रक्षां चैव विधास्यामि वानराद्रजनीश्वर। नागमिष्यति ते दुःखं किञ्चिदात्मापराधजम् ॥ ५ ॥

उसके बाद नील मेघके समान सेनापति शूर प्रहस्त नामक राक्षस ने हाथ जोड़कर रावणसे वाक्य को कहा कि ॥ १ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी, साँप इन सबोंको रणमें घर्षण करने के लिये हम सब समर्थ हैं, फिर मनुष्य जो राम और लक्ष्मण हैं इनके विषय में क्या कहना है ॥ २ ॥ विश्वास और प्रमाद से युक्त हम सब हनुमानसे ठगे गये, अब निश्चय करके जीता हुआ मेरे सामने से वह वानर नहीं जा सकता है ॥ ३ ॥ शैल वन और कानन सहित समुद्र पर्यन्त समस्त भूमिको मैं बिना वानर के करता हूँ आप मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ४ ॥ ऐ रजनीश्वर ! वानर से मैं रक्षा करूँगा, और आत्माके अपराध से उत्पन्न कुछ भी दुःख तेरे को नहीं प्राप्त होवेगा ॥ ५ ॥ और भी कहा है कि-

॥ अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम्। कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रधर्षिता ॥ वा० रा० यु० ६, स० ९, श्लो० ६ ॥

आज लक्ष्मण के सहित रामको तथा सुग्रीवको हम सब वध करेंगे, और कृपण हनूमानको मारेंगे जो कि लङ्कापुरी को घर्षण किया है ॥ ६ ॥ और भी प्रहस्त ने कहा है कि-

॥ न नोभयं विद्म न दैवतेभ्यो नदानवेभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥ वा० रा० यु० ६, स० १४, श्लो० ७ ॥ न यक्षगन्धर्वमहोरगेभ्यो भयं न संख्ये पतगोरगेभ्यः। कथं नु रामाद्भविता भयं नो नरेन्द्र पुत्रात्समरे कदाचित् ॥ ८ ॥

हम सबोंको भय कभी भी देवताओं से अथवा दानवोंसे भी नहीं हो सकता है ॥ ७ ॥ और संग्राममें यक्ष से या गन्धर्व से या बड़े भारी-भारी अजगरों से तथा पक्षियों से और साँपोंसे हम सबों को भय नहीं हो सकता है तो दशरथ राजाके पुत्र रामचन्द्रसे संग्राममें हम सबों को भय कैसे हो सकता है ॥ ८ ॥ और दुर्मुख वज्रदंष्ट्र निकुम्भ वाल्मीकीय रामायणके युद्धकाण्ड के आठवें सर्गमें अपने अपने वीर्य की श्लाघा करते हुए कहते हैं कि अकेले ही हम सब राम की सब सेना को पराजित कर सकते हैं। और वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के नौवें सर्गमें निकुम्भ, रभस, सूर्यशत्रु सुप्तघ्न, यज्ञघ्न, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, इन्द्रजित्, प्रहस्त विरुपाक्ष, वज्रदंष्ट्र, धुम्राक्ष, अतिकाय, आदि राक्षसों ने कहा है कि राम को जीतना हम सबों के लिये

लीला साध्य है । इस प्रकार के वाक्योंको प्रहस्त आदि राक्षसोंने कहा है ।। शमिति ।।



मू०–एवमङ्गीकृतस्य प्रपन्नस्य संसारमण्डलस्थितिं जानकी रावणभवने-अशोकवनिकायां स्थित्वा प्रादर्शयत्, जानक्या रावणसम्बन्ध इव श्रीवैष्णवानां देहसम्बन्धः-जानक्या एकाक्ष्येककर्णादिवत् श्रीवैष्णवानाम् अहङ्कारममकारौ जानक्या भगवच्चरणविश्लेषहेतु र्मारीचो यथा तथा श्रीवैष्णवानां विषयप्रावण्यं जानक्यास्तर्जनभर्त्सनादिकत्रीराक्षसीम्बन्ध इव श्रीवैष्णवानां पुत्रमित्रादिसम्बन्धः, जानक्या हनुमद्दर्शनवत् श्रीवैष्णवानामाचार्य्यदर्शनं जानक्या हनुमत्कृतरामगुणानुवादवत् श्रीवैष्णवानां दिव्यसूरिप्रबन्धः जानक्या अङ्गुलयकागमनवत् श्रीवैष्णवानामाचार्य्यप्रसादितगुरुपरम्परा जानक्या अङ्गुलीयकवत् श्रीवैष्णवानां श्रीमन्त्रः जानकी-अङ्गुलीयकं दृष्ट्वा तेनाङ्गुलीं स्मृत्वा भुजालिङ्गनादिकं स्मृत्वा यथात्मानमधात्, तथा श्रीवैष्णवआचार्यप्रसादितश्रीमन्त्रार्थानुसन्धानेनात्मानं दधाति, जानक्या श्रीबालस्वामिविषये-उक्त्वा वार्त्ता स्वामिचरणविश्लेषहेतुरभवत्, तथा श्रीवैष्णवानां भागवतापचारः "क्षिपामि" "न सहामि" इत्युक्तप्रकारेण भगवद्विश्लेषहेतुर्भवति यथा जानकीं विरोधीभूतान् रावणादीन्निरस्यअयोध्यां प्रापयत्, तथा श्रीवैष्णवं प्रकृतिसम्बन्धं सवासनं दूरीकृत्य भगवान् परपदं प्रापय्य नित्यमुक्तैः सह कैङ्कर्य्यं स्वीकरोति, एतद्दशार्थाननुष्ठानपर्यन्तं जानतः श्रीवैष्णवस्य

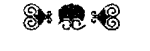
१०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८
वासस्थानमेव परमपदं भगवद्विषयेऽपराधकर्त्ता जन्मान्तरे
१०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४
योग्यो भवति, श्रीवैष्णवविषयेऽपराधकर्त्ता जन्मान्तरेऽपि
११५ ११६ ११७
योग्यो न भवति ॥ २४७ ॥

अर्थ-(एवम्) इस प्रकार के (अङ्गीकृतस्य) स्वीकार किये हुए (प्रपन्नस्य) प्रपन्नजनके (संसारमण्डलस्थितिम्) संसार मंडल की स्थितिको (जानकी) श्रीसीताजी (रावणभवने) रावण के मकानमें (अशोकवनिकायाम्) अशोक वनिकामें (स्थित्वा) रहकर (प्रदर्शयत्) प्रकर्षरूपसे दिखाई हैं। (जानक्याः) श्रीसीताजी के (रावणसंबन्धः) रावण के संबन्धके (इव) सामान (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवोंके (देहसम्बन्धः) शरीरका संबन्ध है। (जानक्याः) श्रीसीता जी के (भगवच्चरणविश्लेषहेतुः) भगवान् श्रीरामजीके चरणारविन्द के विश्लेषमें कारण (यथा) जैसे (मारीचः) मारीच राक्षस है (तथा) वैसे ही (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवोंके (विषयप्रावण्यम्) विषयकी प्रवणता है। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (तर्जनभर्त्सनादिकर्त्रीराक्षसीसंबन्धः) तर्जन और भर्त्सन आदिक करने वाली राक्षसियोंके संबन्धके (इव) समान (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवोंके (पुत्रमित्रादिसंबन्धः) पुत्र और मित्र आदिक का संबन्ध है। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (हनुमद्दर्शवत्) हनुमान्‌जीके दर्शन के समान (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों के (आचार्यदर्शनम्) आचार्य का दर्शन है। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (हनूमत्कृतरामगुणानुवादवत्) हनुमान्‌जीसे किये हुए श्रीरामजीके गुणानुवादके तुल्य (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवोंके (दिव्यसूरिप्रबन्धः) दिव्यसूरियोंका प्रबन्ध है। (जानक्याः) श्रीसीताजीके (अङ्गुलीयकागमनवत्) अङ्गूठीके आगमन के समान (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवोंके (आचार्यप्रसादितगुरुपरम्परा) आचार्य से प्रसादित गुरु परम्परा है। (जानक्याः) श्रीसीताजी की (अङ्गुलीयकवत्) अङ्गूठीके समान (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवोंके (श्रीमन्त्रः) मूलमन्त्र है। (जानकी) श्रीसीताजी ने (अङ्गुलीयकम्) अङ्गूठीको (दृष्ट्वा) देखकर (तेन) उस अङ्गूठीके दर्शनसे (अङ्गुलीम्) श्रीरामजीकी अङ्गुलीको (स्मृत्वा) स्मरणकर (भुजालिङ्गनादिकम्) दोनों भुजाओं करके आलिंगन आदिको (स्मृत्वा) स्मरणकर (यथा) जैसे (आत्मानम्) अपनी आत्मा को (अधात्) धारण किया है (तथा) वैसे ही (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (आचार्य्यप्रसादितश्रीमंत्रार्थानुसन्धानेन) आचार्य से प्रसादित मूलमंत्र के अर्थको अनुसन्धान करनेसे (आत्मानम्) अपनी आत्माको (दधाति) धारण करता है। (जानक्या) श्रीसीताजीसे (श्रीबालस्वामिविषये) श्रीलक्ष्मणजीके

विषयमें (उक्ता) अरण्यकाण्डके पैंतालीसवें सर्गमें मर्म वचनयुक्त कही हुई (वार्ता) वार्ता (स्वामिचरणविश्लेषहेतुः) श्रीरामजीके चरणारविन्दके विश्लेषमें कारण (अभवत्) हुई है (तथा) वैसे ही (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवोंके (भागवतापचारः) भागवतापचार है (क्षिपामि) फेंकता हूँ (न) नहीं (सहामि) सहता हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकारसे (भगवद्विश्लेषहेतुः) भगवान्के विश्लेषमें कारण (भवति) होता है। (यथा) जैसे (जानकीम्) श्रीसीताजी को (विरोधीभूतान्) विरोधी बने हुए (रावणादीन्) रावण कुंभकर्ण आदि को (निरस्य) मारकर (अयोध्याम्) श्रीअयोध्यापुरी में (प्रापयत्) प्राप्त कराये हैं (तथा) वैसे ही (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव को (प्रकृतिसंबन्धम्) प्रकृति के संबन्ध (सवासनम्) वासना के सहित (दूरीकृत्य) दूरकर (भगवान्) श्रीमन्नारायण भगवान् (परमपदम्) परम पद को (प्रापय्य) प्राप्त कराकर (नित्यमुक्तैः) नित्य अनन्त गरुड़ विष्वक्सेनजी और मुक्त शुक शौनकादिक जीवों के (सह) साथ (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य को (स्वीकरोति) स्वीकार करते हैं। (एतद्दश) इन पूर्वोक्त दस (अर्थान्) अर्थों को (अनुष्ठानपर्यन्तम्) अनुष्ठान पर्यन्त (जानतः) जाननेवाले (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव का (वासस्थानम्) निवासस्थान (एव) निश्चय करके (परमपदम्) परमपद त्रिपाद्विभूति है। (भगवद्विषये) भगवान् के विषय में (अपराधकर्त्ता) अपराध करनेवाला (जन्मान्तरे) दूसरे जन्म में (योग्यः) योग्य (भवति) होता है। और (श्रीवैष्णवविषये) श्रीवैष्णव के विषय में (अपराधकर्त्ता) अपराध करनेवाला पुरुष (जन्मान्तरे) दूसरे जन्म में (अपि) भी (योग्यः) योग्य (न) नहीं (भवति) होता है। इस वार्ता में **॥ क्षिपामि ॥** यह प्रतीक है, इससे इस श्लोक को संपूर्ण लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ।

॥ तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ भगवद्गी० अ० १६, श्लो० १९ ॥

मैं संसार में द्वेष करनेवाले उन क्रूर नराधमों को आसुरी योनि में निश्चय करके हमेशा फेंकता हूँ॥१९॥ इस प्रकार का इसका अर्थ है। और **॥ न सहामि ॥** इस प्रतीक का अर्थ पहले मैं लिख चूका हूँ। इस दो सौ सैंतालीसवीं वार्ता में छः सौ तेईस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२४७॥



अब आण्डालाचार्य्यजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ आण्डालोक्ता वार्ता ॥

मू०–आण्डालवार्ता-आचार्य्यविषयापराधी चतुर्ग्रामवासी च कृतार्थो जातः, भगवद्विषयापराधी शिशुपालश्च तथा जातः, भागवतविषयापराधी कश्चन तथा जात इति न शृणुमः ॥२४८॥

॥ रामानुजाचार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- चतुष्टयसहस्रान्ते वत्सराणां कलौ युगे।
शेषो रामानुजो भूत्वा भूम्यामवतरिष्यति ॥१९६॥

(आण्डालवार्ता) आण्डालाचार्यजी की वार्ता है कि (आचार्यविषयापराधी) आचार्य के विषय में अपराध करनेवाले (चतुर्ग्रामवासी) चतुर्ग्रामवासी (कृतार्थः) कृतार्थ (जातः) हो गये हैं। (च) और (भगवद्विषयापराधी) भगवान् के विषय में अपराध करनेवाला (शिशुपालः) शिशुपाल राजा (कृतार्थः) कृतार्थ (तथा) वैसे ही (जातः) हो गया है। (च) और (भागवतविषयापराधी) भागवत के विषय में अपराध करनेवाला (कश्चन) कोई भी (तथा) वैसे ही (जातः) कृतार्थ हुआ है (इति) इस प्रकार के (न) नहीं (शृणुमः) हम सबों ने सुना है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि शिशुपाल ने भगवान् के विषय में कौनसा अपराध किया है और कैसे कृतार्थ हुआ है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत में लिखा है कि–

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम्। सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्सम्मतोर्हणे ॥ श्रीमद्भा० स्कं० १०, अध्या० ७४, श्लो० ३२ ॥ तपोविद्याव्रतधराञ्ज्ञानविध्वस्तकल्मषान्। परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैश्च पूजितान् ॥३३॥ सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः। यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥३४॥ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः। स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥३५॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम्। वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥३६॥

पात्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ आप सब बालक सहदेव की कही हुई बात को मत मानिये, ऐ सब सभासद ! कृष्ण की पूजा करने में आप सब मत सम्मत हो जाइये ॥३२॥ तपस्या तथा विद्या और व्रत को धारण करनेवाले तथा ज्ञान से पाप को दूर करनेवाले

ब्रह्म में निष्ठा रखनेवाले तथा लोकपालों से पूजित श्रेष्ठ ऋषियों की ।।३३।। नहीं पूजा करके कुलपांसन गोपालकृष्ण, जैसे कौआ देवता के भाग पुरोडाश को नहीं प्राप्त करता है वैसे ही कैसे यज्ञ में पूजा को प्राप्त कर सकता है ।।३४।। वर्ण तथा आश्रम और कुल से हीन सब धर्मों से बहिष्कृत स्वच्छन्दवर्ती गुणों से रहित यह कृष्ण पूजा को कैसे प्राप्त कर सकता है ।।३५।। और ययाति राजा ने इन सबों के कुल को शाप दिया है और सज्जनों से बहिष्कृत तथा हमेशा वृथा पान में रत यह कृष्ण पूजा को कैसे प्राप्त कर सकता है ।।३६।। इत्यादिक बहुत सा कुवाच्य सभा के बीच में कहा है तौभी अन्त में शिशुपाल कृतार्थ हो गया है क्योंकि वहीं लिखा है कि–

।। चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् । पश्यतां सर्वभूतानामुल्केवभुवि खाच्च्युता ।। श्रीमद्भा० स्कं० १०, अ० ७४, श्लो० ४५ ।।

जैसे आकाश से गिरी हुई उल्का पृथ्वी में लीन हो जाती है वैसे ही सम्पूर्ण जीवों के देखते ही शिशुपाल के देह से निकली हुई ज्योति श्रीवासुदेव भगवान् में प्रवेश कर गई ।।४५।। इस दो सौ अड़तालीसवीं वार्ता में अट्ठारह पद हैं। इति आण्डालोक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।२४८।।

अब वेदान्ती स्वामीजी के और कलिवैरिदास स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

।। अथ यतिकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ।।

मू०-कलिवैरिदासः-वेदान्तिनमवतारााणां को हेतुरिति पप्रच्छ, स चेश्वरः भागवतापचारासहिष्णुरवतीर्य्यातिमानुषचेष्टितान्यकरोदित्यवोचत्, पुरुषकारभूतायां लक्ष्म्यां प्रपत्त्युपकारकर्तरि-आचार्य्ये च हस्तौ गृहीत्वा प्राप्यस्थलं प्रापयतोः प्रतिबन्धक एव भवति प्रपन्नविषयापचारः ।।२४९।।

अर्थ-(कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजी से (अवताराणाम्) श्रीमन्नारायण के अवतार लेने का (कः) कौन (हेतुः) कारण है (इति) इस प्रकार के (पप्रच्छ) पूछा है। (च) और (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने (भागवतापचारासहिष्णुः) भागवतापचार को नहीं सहने के शीलवाले (ईश्वरः)

परमात्मा ने (अवतीर्य्य) भूतलपर अवतार लेकर (अतिमानुषचेष्टितानि) अतिमानुष चरित्र को (अकरोत्) किया है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। (पुरुषकारभूतायाम्) इस चेतन की पुरुषकारभूता (लक्ष्म्याम्) लक्ष्मीदेवीजी के विषय में (च) और (प्रपत्त्युपकारकर्तरि) प्रपत्ति में उपकार करनेवाले (आचार्ये) आचार्य में (हस्तौ) हाथों को (गृहीत्वा) ग्रहणकर (प्राप्यस्थलम्) प्राप्य त्रिपाद्विभूतिस्थल को (प्रापयतोः) प्राप्त करानेवालों के (प्रतिबन्धकः) प्रतिबन्धक (एव) निश्चय करके (प्रपन्नविषयापचारः) प्रपन्नों के विषय में अपराध ही (भवति) होता है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि भगवत्प्राप्ति में लक्ष्मीदेवीजी पुरुषकारभूत हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न का उत्तर भगवच्छास्त्रमें लिखा है कि–

॥ मत्प्राप्तिं प्रति जन्तूनां संसारे पततामधः। लक्ष्मीः पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभिः ॥ ममापि च मतं ह्येतन्नान्यथा लक्षणं भवेत्। अहं मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपतिः स्वयंम् ॥ लक्ष्मीः पुरुषकारेण वल्लभा प्राप्तियोगिनी। एतस्याश्च विशेषोऽयं निगमान्तेषु शब्द्यते ॥ आकिञ्चन्यैकशरणाः केचिद्भाग्याधिकाः पुनः। मत्पादाम्भोरुहद्वन्द्वं प्रपद्य प्रीतमानसाः ॥ लक्ष्मीं पुरुषकारेण वृतवन्तो वरानन। मत्क्षमां प्राप्य सेनेश प्राप्य प्रापकमेव माम् ॥ लब्ध्वा कृतार्थाः प्राप्यन्ते मामेवानन्यमानसाः ॥ भगवच्छा० ॥

संसार में अधःपतित जीवों को हमारी प्राप्ति के लिये महर्षि लोग लक्ष्मीजी को पुरुषकार कहते हैं। हमारा भी यही मत है, इसका अन्य लक्षण नहीं है, स्वयं लक्ष्मीपति मैं अपनी प्राप्ति के लिये उपाय हूँ। मेरी प्रिया लक्ष्मी देवी पुरुषकार करके प्राप्त करानेवाली है। इस लक्ष्मीदेवी का यह वैभव वेदान्त में कहा जाता है। आकिञ्चन्य ही शरण है जिनको ऐसे अधिक भाग्यवाले लोग प्रसन्न मन से मेरे दोनों चरणारविन्दों को पा करके, हे वरानन ! विष्वक्सेन लक्ष्मीजी को पुरुषकार रूप से स्वीकार करके हमारी क्षमा के विषय होकर और हमको ही प्राप्यप्रापक समझते हैं। और अनन्य मानसवाले प्रपन्नजन मुझको पाकर कृतार्थ हो जाते हैं ॥ इस दो सौ उञ्चासवीं वार्ता में उन्नीस पद हैं। इति यतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२४९॥

अथ देवकी देवीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ देवकीदेव्युक्ता वार्त्ता ॥

मू०-देवकी[१]वार्ता "न[२] कश्चिन्नापराध्यति[३][४][५]" इत्येवं[६][७] वदन्ती[८] स्वविषयापराधं[९] सहते[१०], मित्रभावेन[११] वदन्[१२] ईश्वरः[१३]

स्वविषयापराधं[१४] सहते,[१५] भागवतविषयापचारः[१६]-अनयोरपि[१७] शरीरप्राणयोरिव[१८] विश्लेषहेतुर्भवति,[१९] समस्तवेदेषु[२०] समस्त-शास्त्रेषु[२१] समस्तदिव्यसूरिप्रबन्धेषु[२२] समस्ताचार्यवचनेषु[२३] सम्य-गालोचितेष्वपि[२४] कस्यचित्[२५] श्रीवैष्णवस्याचार्य्याभिमान-व्यतिरिक्त[२६] उपायो[२७] नास्ति भागवतापचारव्यतिरिक्तो[२८] विरोधी[२९] नास्तीति[३०] ॥२५०॥

॥ लक्ष्मीस्तुतिः ॥

अर्थ- देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥१९७॥

(देवकीवार्ता) देवकी देवीजी की वार्ता है कि (कश्चित्) कोई (न) नहीं है जो (न) नहीं (अपराध्यति) अपराध किया हो (इति) इस वाक्य को (एवम्) इस प्रकार के (वदन्ती) कहती हुई श्रीसीताजी (स्वविषयापराधम्) अपने विषय में राक्षसियों से किये हुए अपराध को (सहते) सहती हैं। और (मित्रभावेन) मित्र भाव से (वदन्) भगद्गीताको कहते हुए (ईश्वरः) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परमेश्वर (स्वविषयापराधम्) अपने विषय में यशोदा देवी से ओखल में बाँधनारूप अपराध को और भृगु मुनि द्वारा छाती में पैर से ताड़ना रूप अपराध को (सहते) सहते हैं। परन्तु (भागवतविषयापचारः) भागवतों के विषय में किया हुआ अपराध (अनयोः) इन दोनों लक्ष्मी और नारायण भगवान् के (अपि) भी (शरीरप्राणयोः) देह तथा प्राण के (इव) समान (विश्लेषहेतुः) विश्लेष में कारण (भवति) होता है। (समस्तवेदेषु) सम्पूर्ण वेदों में तथा (समस्तशास्त्रेषु) सम्पूर्ण शास्त्रों में और (समस्तदिव्यसूरिप्रबन्धेषु) सम्पूर्ण दिव्य सूरियों के प्रबन्धों में तथा (समस्ताचार्यवचनेषु) सम्पूर्ण आचार्य्यों के वचनों में (सम्यक्) अच्छी तरह से (आलोचितेषु) आलोचना करने पर (अपि) भी (कस्यचित्) किसी भी (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (आचार्य्याभिमानव्यतिरिक्तः) आचार्याभिमान से अन्य (उपायः) भगवत्प्राप्ति में उपाय (न) नहीं (अस्ति) है। और (भागवतापचारव्यतिरिक्तः) भागवतापचार से अन्य (विरोधी) भगवत्प्राप्ति में विरोधी (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार की यह वार्ता है। इस वार्ता में **॥ न कश्चिन्नापराध्यति ॥ वा० रा० यु० ६, स० ११५ श्लो० ४३ ॥** वाँ का यह प्रतीक है, इससे समस्त इस श्लोक को लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ वा० रा० यु० ६, स० ११५ श्लो० ४३ ॥

पापी हों या अच्छे हों या मारने योग्य हों परन्तु आर्य पुरुष को दया करनी ही चाहिये, क्योंकि ऐसा कोई नहीं है जिसने अपराध न किया हो ॥४३॥ इस प्रकार के प्रतीक का अर्थ करने पर तो यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि यशोदा ने श्रीकृष्ण भगवान् को ओखल में बाँधा है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत में लिखा है कि–

॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्। गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ श्रीमद्भा० स्कं० १०, अ० ९, श्लो० १४ ॥

उस अधोक्षज मनुष्य के लिङ्गवाले अव्यक्त श्रीकृष्णभगवान् को अपना पुत्र समझकर यशोदा गोपी ने रस्सी से प्राकृत के समान ओखल में बाँधा ॥१४॥ इस प्रकार के पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर होने पर यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि भृगु मुनि ने विष्णु भगवान् की छाती पर पैर से मारा है ? इस प्रश्न का उत्तर भी श्रीमद्भागवत में लिखा है कि–

॥ शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ॥ श्रीमद्भा० स्कं० १०, अ० ८९, श्लो० ८ ॥

श्रीदेवीजी की गोद में सोते हुए नारायण भगवान् की छाती पर भृगुमुनि ने पैर से मारा ॥८॥ इस दो सौ पचासवीं वार्ता में चालीस पद हैं। इति देवकीदेव्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२५०॥

अब श्रीभाष्यकार की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०-भाष्यकारेणान्तिमदशायामुक्तावार्ता भाष्यकारैः स्वमनसि-अत्यार्तियुक्तैर्विचार्य्य श्रीरङ्गनाथं प्रणम्य संसारे-अरुचिर्जातेति साङ्गप्रपत्तिः कृता, इदानीं किमिदमिति श्रीरङ्गनाथस्तमपृच्छत्, स च कालातिक्रमो जात इत्यवदत्, कालनिर्वाहकोऽहं त्वां किञ्चित् कालमत्रैवावस्थाप्य

३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५
त्वया लोकान्वशीकर्तुमैच्छम्, अथ तव किमपेक्षित-
४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४
मित्यपृच्छत्, स च शीघ्रं चरणयोः प्रापणीय इत्यवोचत्,
५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२
श्रीरङ्गनाथ इतश्चतुर्थदिवसे तथैव कुर्यामित्यवोचत्,
६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८
भाष्यकारः मम प्राप्योदेशो मत्संम्बन्धिसम्बन्धिनामपि
६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७
प्राप्यो भवेदित्युक्त्वा मठं गत्वा तदानीं तत्रस्थान् सर्वान्
७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४
श्रीवैष्णवानाहूय कदाप्यनुक्तानप्यर्थविशेषान् उपदिदेश,
८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१
तानर्थान् श्रुत्वातिशङ्कमाना विज्ञापयामासुः, भाष्यकारश्च
९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००
तदानीमेव ज्ञाने प्रमादो भवेदिति विचार्य-इतश्चतुर्थदिवसे
१०१ १०२ १०३ १०४
श्रीरङ्गनाथचरणौ प्राप्स्यामीत्यवोचत् ॥२५१॥

॥ यतीन्द्रस्तुतिः ॥

अर्थ- यतीन्द्रः पूर्णकृपया शास्त्रसारतमांस्तदा ।
शिष्येभ्यश्चोपदिश्यार्थन् सर्वेभ्यो मुदमाप सः ॥ १९८ ॥

(भाष्यकारेण) श्रीभाष्यकारसे (अन्तिमदशायाम्) अन्तिम समयमें (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (भ यकारैः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (स्वमनसि) अपने मनमें (अत्यार्तियुक्तैः) अत्यन्त आर्तिसे युक्त (विचार्य्य) विचारकर (श्रीरङ्गनाथम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान्को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम कर (संसारे) संसारमें (अरुचिः) अरुचि (जाता) उत्पन्न हो गई है (इति) इस प्रकारकी (साङ्गप्रपत्तिः) अङ्ग सहित भगवत्की प्रपत्ति (कृता) उन्होंने की । (इदानीम्) इस समयमें (इदम्) यह (किम्) क्या किये हैं इति इस प्रकारके (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् ने (तम्) उस श्रीभाष्यकारसे (अपृच्छत्) पूछा । (च) और (सः) वह श्रीभाष्यकार (कालातिक्रमः) कालका अतिक्रमण (जातः) हो गया है (इति) इस प्रकारके (अवदत्) बोले । तब श्रीरङ्गनाथ भगवान ने कहा कि (कालनिर्वाहकः) कालका निर्वाहक (अहम्) मैंने (त्वाम्) तुमको (किञ्चित्) कुछ (कालम्) काल (अत्र) इस लीला विभूतिमें (एव) निश्चय करके (अवस्थाप्य) रखकर (त्वया) तेरे द्वारा (लोकान्) लोकोंको (वशीकर्तुम्) वशमें करनेके लिये (ऐच्छम्) इच्छा की है (अथ) अब (तव) तुझे (किम्) क्या (अपेक्षितम्) है (इति) इस प्रकारके (अपृच्छत्) पूछा । (च) और (सः) वह श्रीभाष्यकार (शीघ्रम्) शीघ्र (चरणयोः) आपके दोनों चरणारविन्दोंमें

(प्रापणीयः) प्राप्त करने योग्य मैं हूँ (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले। (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (इतः) आजके (चतुर्थदिवसे) चौथे दिन (तथा) वैसे ही (एव) निश्चय करके (कुर्याम्) मैं करूँगा (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले। (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (मम) मेरा (प्राप्यः) प्राप्य (देशः) देश (मत्संबन्धिनाम्) मेरे संबन्धियोंके संबन्धियों को (अपि) भी (प्राप्यः) प्राप्य (भवेत्) होवे (इति) इस प्रकारके (उक्त्वा) कहकर (मठम्) मठमें (गत्वा) जाकर (तदानीम्) उस समय में (तत्रस्थान्) वहाँपर रहनेवाले (सर्वान्) सब (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवोंको (आहूय) बुलाकर (कदापि) कभी भी (अनुक्तान्) नहीं कहे हुए (अपि) भी (अर्थविशेषान्) अर्थ विशेषोंको (उपदिदेश) उपदेश किये। (तान्) उन (अर्थान्) अर्थोंको (श्रुत्वा) सुनकर (अतिशङ्कमानाः) अत्यन्त शङ्कमान श्रीवैष्णव सबों ने (विज्ञापयामासुः) विज्ञापन किया। (च) और (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार (तदानीम्) उस मरण के समय में (एव) निश्चय करके (ज्ञाने) ज्ञानमें (प्रमादः) प्रमाद (भवेत्) हो जायेगा (इति) इस प्रकारके (विचार्य) विचारकर मैंने कहा है (इतः) आजके (चतुर्थदिवसे) चौथे दिन (श्रीरङ्गनाथचरणौ) श्रीरङ्गनाथ भगवान्के दोनों चरणारविन्दोंको (प्राप्स्यामि) मैं प्राप्त करूँगा (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले। इस दो सौ एकावनवीं वार्तामें एक सौ चार पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २५१ ॥

अब रामानुजाचार्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–तदा–एतद्विश्लेषे स्वात्मत्यागं कुर्याम इति स्थितान् ज्ञात्वा यामुनाचार्यचरणशपथं कारयित्वा मयि गच्छति–आत्मत्यागं ये कुर्वन्ति तेषां मया सह सम्बन्धो नास्ति–इत्यवोचत्, ते च तच्छ्रुत्वातिशोकार्ताः–अस्माक–मितः परं किं कर्तव्यमित्यपृच्छन् तदा सकलेषु वेदेषु सकलेषु शास्त्रेषु सकलदिव्यसूरिदिव्यप्रबन्धेषु सकलाचार्य्य–प्रबन्धेषु च विचारितेष्वयमर्थः प्रतीयते अधिकारिणो द्वयं विना मन्त्रो नास्ति मिथुनेन विना वस्तु नास्ति

मिथुनकैङ्कर्येण[५८] विना[५९] पुरुषार्थो[६०] नास्ति[६१], आचार्याभिमाननेन[६२] विना[६३] मोक्षो[६४] नास्ति[६५], भागवतापचारेण[६६] विना[६७] विरोधी[६८] नास्ति[६९] ॥ २५२ ॥[७०][७१][७२]

॥ रामानुजार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- सर्वदेशदिशाकालेष्वव्याहतपराक्रमा ।

रामानुजार्य्यदिव्याज्ञा वर्द्धतामभिवर्द्धताम् ॥ १९९ ॥

(तदा) तब (एतद्विश्लेषे) इस भाष्यकारके वियोग होनेपर (स्वात्मत्यागम्) अपनी आत्मा के त्याग (कुर्याम) हम सब करेंगे (इति) इस प्रकारके (स्थितान्) दृढ़ स्थित उन श्रीवैष्णवोंको (ज्ञात्वा) जानकर (यामुनाचार्यचरणशपथम्) यामुनाचार्य स्वामीजी के श्रीचरणोंके शपथ (कारयित्वा) करवाकर (मयि) मुझे (गच्छति) परमपद जानेपर (ये) जो लोग (आत्मत्यागम्) अपने शरीरका त्याग (कुर्वन्ति) करेंगे (तेषाम्) उन वैष्णवोंको (मया) मेरे (सह) साथ (सम्बन्धः) सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) बोले। (च) और (ते) वे श्रीवैष्णव सब (तत्) श्रीभाष्यकारके उस वाक्यको (श्रुत्वा) सुनकर (अतिशोकार्ताः) अत्यन्त शोकसे पीड़ित (अस्माकम्) हम सबोंके (इतः) इसके (परम्) बाद (किम्) क्या (कर्तव्यम्) करने योग्य है (इति) इस प्रकारके (पृच्छन्) वे श्रीवैष्णव सब श्रीभाष्यकारसे पूछे। (तदा) तब (सकलेषु) समस्त (शास्त्रेषु) शास्त्रोंमें तथा (सकलदिव्यसूरिदिव्यप्रबन्धेषु) समस्त दिव्यसूरियोंके दिव्यप्रबन्धोंमें (च) और (सकलाचार्यप्रबन्धेषु) समस्त आचार्योंके प्रबन्धोंमें (विचारितेषु) विचार करनेपर (अयम्) यह (अर्थः) (प्रतीयते) प्रतीत होता है कि (अधिकारिणः) मोक्षाधिकारी पुरुषको (द्वयम्) द्वयमन्त्रके (विना) बिना (मन्त्रः) दूसरा मन्त्र (न) नहीं (अस्ति) है। और (मिथुनेन) लक्ष्मी तथा नारायण इन दोनोंके (विना) बिना (वस्तु) अन्यवस्तु मोक्षाधिकारी पुरुषकी (न) नहीं (अस्ति) है। और (मिथुनकैङ्कर्येण) लक्ष्मी तथा नारायण इन दोनोंके कैङ्कर्यके (विना) बिना (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ मोक्षाधिकारी पुरुषको (न) नहीं (अस्ति) है। तथा (आचार्याभिमानेन) आचार्याभिमानके (विना) बिना मोक्षधिकारी पुरुषको (मोक्षः) मोक्ष (न) नहीं (अस्ति) है। और (भागवतापचारेण) भागवतापचारके (विना) बिना (विरोधी) मोक्षाधिकारी पुरुषका दूसरा विरोधी (न) नहीं (अस्ति) है। इस दो सौ बावनवीं वार्ता में बहत्तर पद हैं। इति रामानुजाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २५२ ॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–भागवतापचाराः बहुधाः, तत्र द्वादश प्रधानाः, ते हि जन्मनिरूपणं शरीरनिरूपणं पाकनिरूपणम् आश्रम–निरूपणम् अवयवनिरूपणम् आलस्यनिरूपणम् वासनिरू–पणम् बन्धुनिरूपणम् प्रकाशनिरूपणम् प्रकारनिरूपणं वर्त्त–ननिरूपणं दोषनिरूपणम्, तत्र जन्मनिरूपणं नाम ''शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा। वीक्षते जातिसामान्यात्स याति नरकं नरः'' ''न शूद्राः भगवद्भक्ताः विप्रा भागवताः स्मृताः। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ताः जनार्दने'' ''यः पश्यति शुभाचारं वैष्णवं वीतकल्मषम्। स वै यस्मिन् कुले जातः प्रणमेद्दण्डवद्भुवि'' ''किमप्यत्रा–भिजायन्ते योगिनः सर्वयोनिषु। प्रत्यक्षितात्मनाथानां नैषां चिन्त्यं कुलादिकम्'' इत्यादिषु पुराणेषु बहुधा निषिद्धं वैष्णवानां जन्मनिरूपणम् ॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ- सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम्।
रामानुजार्यपादाब्जभक्तिमान्यो नरो भुवि ॥ २०० ॥

(भागवतापचाराः) भागवतापचार (बहुधाः) बहुत प्रकारके होते हैं (तत्र) उस भागवतापचारमें (द्वादश) बारह ठो अपराध (प्रधानाः) प्रधान हैं। (हि) निश्चय करके (ते) वे प्रधान बारह ठो भागवतापचार ये अधोलिखित हैं। (जन्मनिरूपणम्) जन्म निरूपण करना १, (शरीरनिरूपणम्) शरीर निरूपण करना २, (पाकनिरूपणम्) पाक निरूपण करना ३, (आश्रमनिरूपणम्) आश्रम निरूपण करना ४, (अवयवनिरूपणम्) अवयव निरूपण करना ५, (आलस्यनिरूपणम्) आलस्य निरूपण करना ६, (वासनिरूपणम्) वासनिरूपण करना ७, (बन्धुनिरूपणम्) बन्धु

निरूपण करना ८, (प्रकाशनिरूपणम्) प्रकाशनिरूपण करना ९, (प्रकारनिरूपणम्) प्रकार का निरूपण करना १०, (वर्त्तननिरूपणम्) वर्त्तननिरूपण करना ११, और (दोषनिरूपणम्) दोष निरूपण करना १२, ये बारह ठो भागवतापचार प्रधान हैं। (तत्र) उनमें (जन्मनिरूपणम्) जन्मनिरूपण (नाम) माने (शूद्रम्) शूद्र (वा) अथवा (निषादम्) निषाद (तथा) और (श्वपचम्) श्वपच (मद्भक्तम्) मेरे भक्तको (जातिसामान्यात्) जाति सामान्यसे (वीक्षते) जो देखता है (सः) वह (नरः) मनुष्य (नरकम्) नरकमें (याति) जाता है। (भगवद्भक्ताः) भगवद्भक्त शूद्रके यहाँ जन्म लेनेपर भी (शूद्राः) शूद्र (न) नहीं कहे जाते हैं (विप्राः) विप्र (भागवताः) भागवत (स्मृताः) कहे जाते हैं (सर्ववर्णेषु) सब वर्णोमें (ते) वे ही (शूद्राः) शूद्र हैं (हि) निश्चय करके (ये) जो लोग (जनार्दने) जर्नादनके विषयमें (अभक्ताः) भक्त नहीं हैं। (यः) जो कोई पुरुष (वीतकल्मषम्) पाप रहित (शुभाचारम्) शुभ आचरणवाले (वैष्णवम्) श्रीवैष्णवको (पश्यति) देखता है तो वह पुरुष (वै) निश्चय करके (सः) वह वैष्णव (यस्मिन्) जिस (कुले) कुलमें (जातः) उत्पन्न भये हों उनको (भुवि) पृथवीमें दण्डवत्) लाठीके समान गिरकर (प्रणमेत्) साष्टाङ्ग प्रणाम करे। (अत्र) इस विषयमें (किम्) क्या कहना है (योगिनः) योगी लोग (अपि) भी (सर्वयोनिषु) सब योनियोंमें (अभिजायन्ते) अच्छी तरहसे जन्म लेते हैं (प्रत्यक्षितात्मनाथानाम्) प्रत्यक्ष अपनी आत्मा के स्वामी (एषाम्) इन योगियोंके (कुलादिकम्) कुल और आदि शब्दसे ग्राम तथा नाम आदिक (न) नहीं (चिन्त्यम्) चिन्तवन करने योग्य है। (इत्यादिषु) इत्यादिक (पुराणेषु) पुराणों में (बहुधा) बहुत प्रकारके (वैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों के (जन्मनिरूपणम्) जन्म निरूपण (निषिद्धम्) निषिद्ध है। इस वार्तामें "इत्यादिषु" इस पदमें आदि शब्दसे अधोलिखित प्रमाणोंको भी जानना चाहिये। **॥ अर्चावतारोपादानं वैष्णवोत्पत्तिचिन्तनम्। मातृयोनिपरीक्षायास्तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥ स्कन्दपु०** ॥ आर्चावतार भगवान्के उपादान द्रव्य और श्रीवैष्णवों की उत्पत्ति का चिन्तन इन दोनोंको अपनी माताकी योनि की परीक्षा के समान विद्वान् लोग कहते हैं ॥ और भी लिखा है कि ॥ **श्वपचोऽपि महीपाल विष्णु भक्तो द्विजाधिकः। विष्णुभक्तिविहीनस्तु यतिश्च श्वपचाधमः** ॥ हे राजन्! विष्णु भगवान् का भक्त श्वपच जातिवाला भी द्विजोंसे श्रेष्ठ है, और विष्णु भगवान्की भक्तिसे रहित संन्यासी भीश्वपच से नीच है ॥ और महाभारतमें लिखा है कि ॥ **मद्भक्तं शूद्रसामान्यादवमन्यन्ते ये नराः। नरकेष्वेव तिष्ठन्ति वर्षकोटीर्नराधमाः ॥ महाभा०॥** जो मनुष्य हमारे भक्त को शूद्र जातिके समान समझकर अपमान करते हैं वे नीच मनुष्य करोड़ों वर्षोंतक नरकमें रहते हैं ॥ और भी लिखा है कि ॥ **चण्डालमपि मद्भक्तं नावमन्येत बुद्धिमान्। अवमानात्पतत्येव रौरवे नरके हि सः ॥ महाभा०** ॥ बुद्धिमान् पुरुष चण्डाल भी हमारे भक्तको अपमान

न करे, अपमान करनेसे वह निश्चय करके रौरव नरकमें गिरता है ।। और भार्गव पुराण में लिखा है कि ।। **दूषयेद्भगवद्भक्तं यस्तुवाक्यैर्नराधमः । मूको भवति जन्मानि सहस्राणि शतानि च ।। भार्गवपु०** ।। जो अधम मनुष्य वाक्यसे भगवान्‌के भक्तको दूषता है वह मनुष्य सौ हजार जन्म गूँगा होता है ।। और वामनपुराण में लिखा है कि ।। **निन्दां कुर्वन्ति ये भूता वैष्णवानां महात्मनाम् । पतन्ति पितृभिः सार्धं महारौरवसंज्ञकम् ।। वामनपु०** ।। जो जीव वैष्णव महात्माओं की निन्दा करते हैं वे लोग अपने पितरोंके साथ महारौरव नाम के नरक में गिरते हैं ।। शमिति ।।

मू०-शरीरनिरूपणं[१] नाम[२] पुरुषशरीरं[३] स्त्रीशरीरं[४] शेषस्य[५] सर्पशरीरं[६] जटायुर्गरुडयोः[७] पक्षिशरीरं[८] गजेन्द्रहनुमन्महाराजानां[९] मृगशरीरं[१०] प्रह्लादविभीषणमहाबलिप्रभृतीनां[११] राक्षसशरीरमितिरीत्या[१२] देवतिर्य्यङ्मनुष्यस्थावरात्मकचतुर्विधशरीरेषु[१३] भगवद्भक्ता[१४] यादृशशरीरं[१५] गृह्णन्ति[१६] तच्छरीरनिरूपणम्[१७], पाकनिरूपणं[१८] नाम[१९] षड्भावविकारात्मकबालयौवनवार्द्धकाद्यवस्थाननिरूपणम्[२०], आश्रमनिरूपणं[२१] नाम[२२] ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थादिषु[२३]-अस्यायमाश्रम[२४] इति[२५] रीत्याश्रमनिरूपणम्[२६], अवयवनिरूपणं[२७] नाम[२८] श्रीविग्रहे[२९]-अवयवेषु[३०] वा[३१] कश्चन[३२] दोषोऽस्ति[३३], चेत्[३४] ज्ञानमेवास्य[३५] सर्वावयवपूर्तिरित्यविचारः[३६], आलस्य[३७] निरूपणं[३८] नाम[३९] प्रपन्नः[४०] स्वशरीरोपेक्षया[४१] हेयतया[४२] तिष्ठति[४३] चेत्[४४] कृत्सामकृत्वा[४५] तद्विग्रह[४६] एव[४७] परमभोग्य[४८] इत्यविचारः[४९], वासनिरूपणं[५०] नाम[५१] श्रीरङ्गवेङ्कटगिरिकाञ्चीप्रभृतिभ्य[५२] आगताः[५३] श्रीवैष्णवा[५४] यथा-आद्रियन्ते[५५] तथैव[५६] कस्मिंश्चित्[५७] कुग्रामे[५८] वर्तमानाः[५९] श्रीवैष्णवाश्च[६०] तद्वासस्थलमेव[६१] दिव्यदेश[६२] इति-उद्दिश्य[६३] प्रतिपत्त्या-आदर्त्तव्याः-तदकरणं[६४] बन्धुनिरूपणं[६५] नाम[६६] स्वस्य[६७] प्रकृतिबन्धुषु[६८] कश्चन[६९] श्रीवैष्णवोऽस्ति[७०] चेत्[७१] सः[७२] स्वामीति[७३]

९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९
तस्मिन्नुद्देश्यप्रपत्त्यकरणं प्रकाशनिरूपणं नाम–आचार्य्यान्
१०० १०१ १०२
सिंहासनस्थान् आचार्य्यकैङ्कर्य्यकर्तॄन् उपायशून्यतया
१०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११०
व्यावर्त्ततया स्थितांश्च दृष्ट्वा–एकरीत्या इमे रक्षका इत्य–
१११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६
विचारः, प्रकारनिरूपणं नाम-आरामकर्तॄन् प्रपन्नान्, चन्द-
११७ ११८
नादिकैङ्कर्य्यकर्तॄन्, प्रपन्नान्, अन्यविधपरिचारकर्तॄन्, प्रप–
११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७
न्नान्, किञ्चिदकृत्वा तूष्णीं स्थितांश्च प्रपन्नान् दृष्ट्वा–एकरीत्या
१२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३
तेषूद्देश्यप्रतिपत्त्यभावः, वर्तननिरूपणं नाम श्रीवैष्णवान्
१३४ १३५ १३६ १३७ १३८
शरीरयात्रार्थं प्रकृतिवश्यादिवद् व्यवहारं कृषिमायुध-
१३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५
धारणादिकं कुर्वतो दृष्ट्वा–अयमेतत्करोतीति निरूपणम्,दोष-
१४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१
निरूपणं नाम-श्रीवैष्णवाः स्वशरीरभोगार्थं व्यापारं कुर्वन्ति
१५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६०
चेत् ''सा शता भारती पुण्या द्रौपदी च पतिव्रता। तद्धवाः
१६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६
पाण्डवाः धन्याः प्रसन्ने पुरुषोत्तमे'' इत्यादिवत् त्रिविधकर-
१६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३
णेषु विशेषज्ञाः-अनुष्ठातारो न भवन्तीति दोषनिरूपणमिति
१७४
द्वादशापचाराः ॥ २५३ ॥

अर्थ- (शरीरनिरूपणम्) शरीर निरूपण (नाम) माने (पुरुषशरीरम्) पुरुषका शरीर है। (स्त्रीशरीरम्) स्त्री का शरीर है। (शेषस्य) शेष भगवान्का (सर्पशरीरम्) साँपका शरीर है। (जटायुर्गरुडयोः) गृध्रराज जटायु का और खगनायक गरुड़का (पक्षिशरीरम्) पक्षी का देह है। (गजेन्द्रहनुमन्महाराजानाम्) गजराज तथा हनुमान् और महाराज सुग्रीवके (मृगशरीरम्) मृगका शरीर है। अर्थात् गजेन्द्रके हाथी का शरीर है, और हनुमान्जीका तथा सुग्रीव महाराजका वानरका शरीर है। (प्रह्लादविभीषणमहाबलिप्रभृतीनाम्) प्रह्लाद तथा विभीषण और महाबलि आदिक के (राक्षसशरीरम्) राक्षस का देह है (इति) इस प्रकारकी (रीत्या) रीतिसे (देवतिर्य्यङ्मनुष्यस्थावरात्मकचतुर्विधशरीरेषु) देवता १, तिर्यक् २, मनुष्य ३, स्थावरात्मक४, चार प्रकार के शरीर में (भगवद्भक्ताः) भगवान् के भक्तजन (यादृशशरीरम्) जैसे शरीर को (गृह्णन्ति) ग्रहण करते हैं (तच्छरीरनिरूपणम्) उस शरीर को निरूपण करना है २। (पाकनिरूपणम्) पाकनिरूपण (नाम) माने

(षड्भावविकारात्मकबालयौवनवार्द्धकाद्यवस्थानिरूपणम्) अस्ति १, जायते २, वर्धते ३, विपरिणमति ४, अपक्षीयते ५, नश्यति ६, इन छः स्वभावयुक्त अथवा भूख १, प्यास २, शोक ३, मोह ४, जरा ५, मृत्यु ६, ये छः स्वभावयुक्त अथवा त्वक् १, मांस २, शोणित ३, अस्थि ४, स्नायु ५, मज्जा ६, इन छः वस्तुओं से बना हुआ विकारात्मक बाल तथा यौवन और वार्द्धक आदिक अवस्थान को निरूपण करना है ३। (आश्रमनिरूपणम्) आश्रम निरूपण (नाम) माने (ब्रह्मचर्य्यगृहस्थवानप्रस्थादिषु) ब्रह्मचर्य १, गृहस्थ २, वानप्रस्थ ३, और आदि शब्द से संन्यास ४, आश्रम में (अस्य) इस भागवत का (अयम्) यह (आश्रमः) आश्रम है (इति) इस प्रकार की (रीत्या) रीति से (आश्रमनिरूपणम्) आश्रम को निरूपण करना है ४। (अवयवनिरूपणम्) अवयवनिरूपण (नाम) माने (श्रीविग्रहे) भागवतों के श्रीविग्रह में (वा) अथवा (अवयवेषु) अवयवों में (कश्चन) कोई (दोषः) दोष यदि (अस्ति) है (चेत्) तो (ज्ञानम्) ज्ञान ही (एव) निश्चय करके (अस्य) इस भागवत के (सर्वावयपूर्तिः) सब अवयवों की पूर्ति है (इति) इस प्रकार के (अविचारः) विचार नहीं करना है ५। (आलस्यनिरूपणम्) आलस्य निरूपण (नाम) माने (प्रपन्नः) प्रपन्नजन (स्वशरीरोपेक्षया) अपने शरीर को उपेक्षा से (हेयतया) हेयता करके यदि (तिष्ठति) ठहरता है (चेत्) तो (कुत्साम्) निन्दा को (अकृत्वा) नहीं करके (तद्विग्रहः) उस भागवत के श्रीविग्रह (एव) निश्चय करके (परमभोग्यः) सबसे श्रेष्ठ भोग करने योग्य पदार्थ है (इति) इस प्रकार के (अविचारः) विचार नहीं करना है ६। (वासनिरूपणम्) वासनिरूपण (नाम) माने (श्रीरङ्गवेङ्कटगिरिकाञ्चीप्रभृतिभ्यः) श्रीरङ्गक्षेत्र तथा वेङ्कटाचल और कञ्चीपुरी तथा प्रभृति शब्द से यादवाद्रि आदिक एक सौ आठ दिव्यदेशों से (आगताः) आये हुए (श्रीवष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (यथा) जैसे (आद्रियन्ते) आदर किये जाते हैं (तथा) वैसे ही (एव) निश्चय करके (कस्मिंश्चित्) किसी भी (कुग्रामे) बुरे गाँव में (वर्तमानाः) ठहरे हुए (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव हैं (च) और (तद्वासस्थलम्) उन श्रीवैष्णवों के निवास स्थान (एव) निश्चय करके (दिव्यदेशः) दिव्यदेश है (इति) इस प्रकार के (उद्दिश्य) उद्देश्यकर (प्रतिपत्त्या) प्रतिपत्ति से (आदर्त्तव्याः) आदर करने योग्य हैं (तदकरणम्) कुग्राम में रहनेवाले श्रीवैष्णवों का आदर नहीं करना है ७। (बन्धुनिरूपणम्) बन्धुनिरूपण (नाम) माने (स्वस्य) अपने (प्रकृतिबन्धुषु) प्राकृत बन्धुओं में (कश्चन) कोई भी पुरुष यदि (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (अस्ति) है (चेत्) तो (सः) वह श्रीवैष्णव (स्वामी) स्वामी है, (इति) इस प्रकार के (तस्मिन्) उस श्रीवैष्णव में (उद्दिश्य) उद्देश्य कर (प्रपत्त्यकरणम्) प्रपत्ति नहीं करना है ८। (प्रकाशनिरूपणम्) प्रकाश निरूपण (नाम) माने (आचार्य्यान्) आचार्यों को (सिंहासनस्थान्) सिंहासनपर स्थित (च) और

(आचार्य्यकैंकर्यकर्तृन्) आचार्यों के कैंङ्कर्य्य करनेवालों को (उपायशून्यतया) उपाय से रहित होने से तथा (व्यावर्त्ततया) व्यावर्त्तता करके (स्थितान्) स्थित (दृष्ट्वा) देखकर (एकरीत्या) एक रीति से (इमे) ये श्रीवैष्णव (रक्षकाः) रक्षक हैं (इति) इस प्रकार का (अविचारः) विचार नहीं करना है ९ । (प्रकारनिरूपणम्) प्रकारनिरूपण (नाम) माने (आरामकर्तृन्) बगीचा लगानेवाले (प्रपन्नान्) प्रपन्नों को और (चन्दनादिकैङ्कर्यकर्तृन्) चन्दन तथा आदि शब्द से फूल और तुलसी के कैंङ्कर्य करनेवाले (प्रपन्नान्) प्रपन्नों को तथा (अन्यविधपरिचारकर्तृन्) अन्य प्रकार के झाड़ू सिञ्चन आदि कैङ्कर्य करनेवाले (प्रपन्नान्) प्रपन्नों को (च) और (किञ्चित्) कुछ भी कैंङ्कर्य्य (अकृत्वा) नहीं करके (तूष्णीम्) चुपचाप (स्थितान्) स्थित (प्रपन्नों को (दृष्ट्वा) देखकर (एकरीत्या) एक रीति से (तेषु) उन श्रीवैष्णवों के विषय में (उद्देश्य) उद्देश्यकर (प्रतिपत्त्यभावः) प्रतिपत्ति का अभाव होना है १० । (वर्तननिरूपणम्) वर्तननिरूपण (नाम) माने (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (शरीरयात्रार्थम्) शरीर के निर्वाह के लिये (प्रकृतिवश्यादिवत्) प्रकृतिवश्य आदिक के समान (व्यवहारम्) व्यवहार को (तथा (कृषिम्) खेती को और (आयुधधारणादिकम्) हथियार धारण तथा आदि शब्द से कलाकौशल वैद्यक आदिक को (कुर्वतः) करते हुए (दृष्ट्वा) देखकर (अयम्) यह श्रीवैष्णव (एतत्) इस कर्म को (करोति) करता है (इति) इस प्रकार का (निरूपणम्) निरूपण करना है ११ । (दोषनिरूपणम्) दोष निरूपण (नाम) माने (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (स्वशरीरभोगार्थम्) अपने शरीर के भोग के लिये (व्यापारम्) व्यापार को यदि (कुर्वन्ति) करते हैं (चेत्) तो (सा) वह (शता) शत (भारती) भारती देवी (पुण्या) पवित्र है (च) और (द्रौपदी) द्रुपद सुता (पतिव्रता) पतिव्रता है और (तद्भवाः) द्रौपदी के पति युधिष्ठिरादिक (पाण्डवाः) पाँचो पाण्डव (पुरुषोत्तमे) पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के (प्रसन्ने) प्रसन्न होने पर (धन्याः) धन्य हैं (इत्यादिवत्) इत्यादिक वाक्य के समान (त्रिविधकरणेषु) तीन प्रकार के करणों में (विशेषज्ञाः) विशेष जाननेवाले (अनुष्ठातारः) अनुष्ठान करनेवाले (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं (इति) इस प्रकार का (दोषनिरूपणम्) दोष निरूपण है १२ । (इति) इस प्रकार के (द्वादशापचाराः) प्रधान भागवतापचार बारह प्रकार का होता है । इस दो सौ तिरपनवीं वार्ता में दो सौ इक्यावन पद हैं । इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२५३॥

अब यतिराज स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यतिराजोक्ता वार्त्ता ॥

मू०–श्रीवैष्णवः[१] स्वयं[२] श्रीवैष्णवदोषान्[३] न[४] पश्येत्[५], दृष्ट्वा[६]

मनसा विचार्य वाचा वदति चेत् मातुः कनकमृग''मान-
ये'' ति भगवन्तं प्रेषितवत्या योऽपचारः सम्भवेत् तथाहि
कन्दर्पकोटिलावण्यं पञ्चोपनिषन्मयदिव्यविग्रहमनुभूय
शब्दादिविषयप्रावण्येन स्ववर्णाभासमृगमपेक्ष्य भगवतः
प्रेषणात् परमभागवतं लक्ष्मणं प्रति पुरुषवाक्यकथनाच्च
राक्षसाधीना जाता भागवतापचारस्य प्रायश्चित्तं नास्ति,
''मद्भक्तं श्वपचं वापि निन्दां कुर्वन्ति ये नराः। पद्मकोटि-
शतेनापि न सहामि कदाचन'' इत्युक्तम्, एवं द्वादशभा-
गवतापचाराः प्रत्येकं बहुविधाः, एतदपराधानां स्वयं करणं
स्वोद्देश्य आचार्योऽपि करोति चेत् नियमातिरिक्तं रहसि
बोधयेदित्युक्तप्रकारेण-एकान्ते नियम्य ततो व्यावर्तनं
विनावस्थितिः, तादृशापराधान् कुर्वतां परतन्त्राणां दण्डेना-
व्यावर्तनं श्रीवैष्णवेषु परस्परमपराधं कुर्वत्सु तत्पादौ गृहीत्वा
स्वस्य यावच्छक्ति तन्निवर्तनाकरणं तेष्वनिवर्तमानेषु भगव-
द्विषये शरणागत्यकरणं श्रीवैष्णवैरेकान्ते कृतस्य प्रकाशनम्,
अपराधक्षमापणकृत्सु भागवतापचारमकरोदिति चिन्तनं
च, एतदपराधानां सर्वेषामपि कारणम् अवश्यं परिहारार्थं
नियमाः द्वादश ज्ञातव्याः, ते च-आहारनियमः, न्याहार-
नियमः, अन्ननियमः, भोजननियमः, स्माननियमः, स्वरूप-
नियमः, उपायनियमः, उपेयनियमः, वासनियमः, भोग-
नियमः, आचारनियमः, संसर्गनियमश्च ॥

॥ यतीश्वरस्तुतिः ॥

अर्थ- अर्चावतीर्णस्य यतीश्वरस्य श्रीभूतपुर्यां जगतां हितार्थम्।
ममाद्भुतं तं महिमानमाद्यं जानाति सम्यक् स पुमान् कृतार्थः ॥ २०१ ॥

(श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (स्वयम्) अपने (श्रीवैष्णवदोषान्) श्रीवैष्णवों के दोषों को (न) नहीं (पश्येत्) देखे। (दृष्ट्वा) देखकर (मनसा) मनसे (विचार्य) विचार कर यदि (वाचा) वाणी से (वदति) कहता है (चेत्) तो (मातुः) जगज्जननी श्रीसीताजी के (कनकमृगम्) सोने के मृग को (आनय) लाईये (इति) इस प्रकार के कहकर (भगवन्तम्) भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को (प्रेषितवत्याः) भेजनेवालीका (यः) जो (अपचारः) अपराध हुआ है, वह अपराध (सम्भवेत्) अच्छी तरह से हो जायेगा। (तथाहि) उसी को दिखाते हैं कि (कन्दर्पकोटिलावण्यम्) करोड़ कामदेव के समान सुन्दर (क्षीपनिषन्मयदिव्यविग्रहम्) क्षीपनिषन्मय दिव्य मङ्गलमय विग्रह को (अनुभूय) अनुभव कर (शब्दादिविषयप्रावण्येन) शब्द रूप रस गन्ध आदिक विषय की प्रवणता से (स्ववर्णाभासमृगम्) अपने वर्ण के समान आभासवाले मृग की (अपेक्ष्य) अपेक्षाकर (भगवतः) भगवान् श्रीरामजी के (प्रेषणात्) भेजने से (च) और (परमभागवतम्) परम भागवत (लक्ष्मणम्) श्रीलक्ष्मण के (प्रति) प्रति (परुषवाक्यकथनात्) परुष मर्मभेदन करनेवाले वाक्य के कहने से (राक्षसाधीना) रावण राक्षस के अधीन (जाता) हो गई हैं। (भागवतापचारस्य) भागवतापचार के (प्रायश्चित्तम्) श्रुति स्मृति इतिहास पुराण आदिक में प्रायश्चित (न) नहीं (अस्ति) है। (ये) जो (नराः) मनुष्य (मद्भक्तम्) मेरे भक्त (श्वपचम्) श्वपच को (अपि) भी (वा) अथवा यवन को (निन्दाम्) निन्दा (कुर्वन्ति) करते हैं (पद्मकोटिशतेन) करोड़ों पद्म शत वर्षों तक (अपि) भी (कदाचन) कभी भी (न) नहीं (सहामि) मैं सहन करता हूँ। (इति) इस प्रकार के (उक्तम्) वराह पुराण में भगवान् ने कहा है (एवम्) इस प्रकार के (द्वादशभागवतापचाराः) बारह ठो प्रधान भागवतापचार हैं (प्रत्येकम्) ये प्रत्येक भागवतापचार (बहुविधाः) बहुत प्रकार के होते हैं (एतदपराधानाम्) इन पूर्वोक्त भागवतापचारों के (स्वयम्) अपने ही (करणम्) करना। और (स्वोद्देश्य) अपना उद्देश्य (आचार्य्यः) आचार्य (अपि) भी यदि (करोति) भागवतापचार करते हैं, (चेत्) तो (नियमातिरिक्तम्) नियम से अतिरिक्त (रहसि) एकान्त में (बोधयेत्) बोधन करावे (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (एकान्ते) एकान्त में (नियम्य) नियमन कर (ततः) उसके बाद (व्यावर्तनम्) व्यावर्तन के (विना) बिना (अवस्थितिः) अवस्थिति करना है। तथा (तादृशापराधान्) तादृश अपराधों को (कुर्वताम्) करनेवाले (परतन्त्राणाम्) परतन्त्र जीवों के (दण्डेन) दण्ड से (अव्यावर्तनम्) नहीं व्यावर्तन करना है। और (श्रीवैष्णवेषु) श्रीवैष्णवों के (परस्परम्) आपस में (अपराधम्) अपराध को (कुर्वत्सु) करने पर (तत्पादौ) उन श्रीवैष्णवों के दोनों श्रीचरणों को (गृहीत्वा) पकड़कर (स्वस्य) अपनी (यावत्) जितनी (शक्ति) शक्ति हो उतना तक (तन्निवर्तनाकरणम्) श्रीवैष्णवों के आपस में

अपराध को निवृत्त नहीं करना है। तथा (तेषु) उन श्रीवैष्णवों के आपस के विरोध से (अनिवर्तमानेषु) नहीं निवृत्त होने पर (भगवद्विषये) भगवान् श्रीमन्नारायण के विषय में (शरणागत्यकरणम्) शरणागति नहीं करना है। और (श्रीवैष्णवै:) श्रीवैष्णवों से (एकान्ते) एकान्त में (कृतस्य) किये हुए अपचार का (प्रकाशनम्) प्रकाश करना है। (च) और (अपराधक्षमापणकृत्सु) आपराध क्षमापण करनेवालों में (भागवतापचारम्) भागवतापचार को (अकरोत्) किये हैं (इति) इस प्रकार के (चिन्तनम्) स्मरण करना है। (एतदपराधानाम्) इन पूर्वोक्त अपराधों के और (सर्वेषाम्) समस्त अपराधों के (अपि) भी (कारणम्) कारण को (अवश्यम्) जरूर (परिहारार्थम्) परिहार करने के लिये (नियम:) नियम (द्वादश) बारह ठो (ज्ञातव्या:) जानने योग्य हैं। (च) और (ते) वे नियम ये अधोलिखित हैं। (आहारनियम:) आहारनियम १, (न्याहारनियम:) न्याहारनियम २, (अन्ननियम:) अन्ननियम ३, (भोजननियम:) भोजन नियम ४, (स्माननियम:) स्माननियम ५, (स्वरूपनियम:) स्वरूपनियम ६, (उपायनियम:) उपायनियम ७, (उपेयनियम:) उपेयनियम ८, (वासनियम:) वासनियम ९, (भोगनियम:) भोगनियम १०, (आचारनियम:) आचारनियम ११, (च) और (संसर्गनियम:) संसर्गनियम १२। ये बारह ठो नियम जानने योग्य हैं। इस वार्ता में ॥ **आनय** ॥ यह वाल्मीकीय रामायण के अरण्यकाण्डका प्रतीक है, इससे सम्पूर्ण इस श्लोक को लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मन:। आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥ वा० रा० अर० ३, स० ४३, श्लो० १० ॥

हे आर्यपुत्र स्वामिन्! यह सोने का सुन्दर मृग मेरे मन को हरण कर रहा है। इससे हे आजानुभुजावाले भगवान्! इस सुन्दर सोने के मृग को आप यहाँ पर लाईये, हम सबों के क्रीड़ा करने की लिये यह सोने का मृग होगा ॥१०॥ इस प्रकार के श्रीसीताजी ने प्रभु रामभद्रजी को हुकुम दी है। यह भी एक प्रकार का अपराध ही है ॥ शुभमिति ॥



मू०– आहारनियमो[१] नाम भागवतान्नस्यैव[२] सेवनं[३] न्याहारनियमो[४] नाम भगवदालयेषु[५] नन्दनवनेषु[६] स्वाचार्यसञ्चरण[७] स्थलेषु-अन्येषु[८] च विलक्षणस्थलेषु[९]-अकृत्वा[१०], अन्यस्थलेषु[११] देहकृत्यं[१२] कुर्यात्[१३], अन्ननियमो[१४] नाम प्राकृतविषये[१५] दास्यं[१६] कृत्वा[१७] अर्थार्जनस्याभाव:[१८] स्रक्चन्दनादि[१९]भगवदभिमत-[२०]

द्रव्याणि भगवते दत्वा-अर्थार्जनस्याभावः अनुकूलपीडने-
नार्थार्जनस्याभावः स्वरक्षणार्थं स्वशरीरश्रमेण-अनुकूलस्नेहेन
प्राप्तद्रव्यस्य मधुकरवृत्त्या प्राप्तस्य च स्वीकारः भोजन-
नियमो नाम-एवं सम्पादितं द्रव्यं भगवद्भागवतविषये
समर्प्य प्रसादप्रतिपत्त्या क्षुन्निवृत्तिमात्रार्थं देहधारणार्थं च
पुरुषार्थबुद्ध्या तस्य स्वीकारः, स्माननियमो नाम पापविमो-
चनहेतुत्वम् प्रयोजनान्तरहेतुत्वं पुण्यनिमित्तत्वम् अधि-
कारसम्पत्त्यर्थं शरीरमालिन्यनिवृत्त्यर्थत्वम् चानभिसन्धाय
पतिव्रतायाः भर्तृभोगार्थस्नानवत् भगवद्भागवतसमाराध-
नार्थत्वप्रतिपत्त्या स्नानस्य च करणं स्वरूपनियमो नाम
तदीय-शेषत्वम्, उपायनियमो नाम-अनन्यसाधनत्वम्
उपेयनियमो नाम-अनन्यप्रयोजनत्वं वासनियमो नाम-
अनन्यप्रयोजनानां भागवतानां गृहेषु वाह्याङ्गणेषु-एकत्राव-
स्थितिः, भोगनियमो नाम तेषां भागवतानां सर्वेषु व्या-
पारेषु भोग्यत्वप्रतिपत्तिः, आचारनियमो नाम-अर्थकामा-
भिमाननिमित्तम् श्रीवैष्णवहृदयेषु-आचार्य्यहृदये च
कालुष्यानापादनं संसर्गनियमो नाम सात्विकाङ्गकृतदेशेषु
वर्तनम् एतेषु नियमेषु सत्सु पूर्वोक्ताः अपराधाः नाक्रा-
मन्ति ॥ २५४ ॥

अर्थ–(आहारनियमः) आहार (नाम) माने (भागवतान्नस्य) भागवतोंके अन्नका (एव) निश्चय करके (सेवनम्) सेवन करना है १, । (न्याहारनियमः) न्याहारनियम (नाम) माने (भगवदालयेषु) भगवान्के मन्दिरोंमें तथा (नन्दनवनेषु) नन्दन वनों में तथा (स्वाचार्यसंचरणस्थलेषु) अपने आचार्यके संचरण स्थलों में (च) और (अन्येषु) अन्य (विलक्षणस्थलेषु) विलक्षण स्थलोंमें (अकृत्वा) देहका कृत्य नहीं कर

(अन्यस्थलेषु) अन्य स्थलोंमें (देहकृत्यम्) शरीरके कृत्यको (कुर्यात्) करे २, । (अन्ननियमः) अन्न नियम (नाम) माने (प्राकृतविषये) प्रकृति संबन्धी विषयमें (दास्यम्) दासताको (कृत्वा) करके (अर्थार्जनस्य) द्रव्योपार्जन का (अभावः) अभाव होना है तथा (स्रक्चन्दनादिभगवद-भिमतद्रव्याणि) माला, चन्दन, फूल, नैवेद्य आदि भगवान्के अभिमत द्रव्योंको (भगवते) श्रीमन्नारायण भगवानके लिये (दत्वा) देकर (अर्थार्जनस्य) द्रव्योपार्जन का (अभावः) अभाव होना है तथा (अनुकूलपीडनेन) अनुकूलोंकी पीड़ा करनेसे (अर्थार्जनस्य) द्रव्योपार्जनका (अभावः) अभाव होना है (च) और (स्वरक्षणार्थम्) अपनी रक्षा करने के लिये (स्वशरीरश्रमेण) अपने शरीरके परिश्रम तथा (अनुकूलस्नेहेन) अनुकूल स्नेहसे (प्राप्तद्रव्यस्य) प्राप्त द्रव्यके (मधुकरवृत्त्या) भ्रमरकी वृत्तिसे और (प्राप्तस्य) प्राप्त पदार्थ का भी (स्वीकारः) स्वीकार करना है ३। (भोजननियमः) भोजन नियम (नाम) माने (एवम्) इस प्रकारके (संपादितम्) संपादन किये हुए (द्रव्यम्) द्रव्यको (भगवद्भागवतविषये) भगवान् और भागवतोंके विषयमें (समर्प्य) समर्पण कर (प्रसादप्रतिपत्त्या) प्रसादकी प्रतिपत्तिसे (क्षुन्निवृत्तिमात्रार्थम्) भूखकी निवृत्ति मात्र के लिये (च) और (देहधारणार्थम्) शरीरको धारण करने के लिये (पुरुषार्थबुद्ध्या) पुरुषार्थकी बुद्धिसे (तस्य) उस भोज़नका (स्वीकारः) स्वीकार करना है ४। (स्नानियमः) स्नान नियम (नाम) माने (पापविमोचनहेतुत्वम्) पापके छुटकानेमें कारण तथा (प्रयोजनान्तरहेतुत्वम्) प्रयोजनान्तरमें कारण तथा (पुण्यनिमित्तत्वम्) पुण्यमें निमित्त तथा (अधिकारसंपत्त्यर्थम्) अधिकारकी संपत्तिके लिये (च) और (शरीरमालिन्यनिवृत्त्यर्थत्वम्) शरीरकी मलिनता निवृत्तिके लिये (अनभिसन्धाय) नहीं अनुसन्धान कर (पतिव्रतायाः) पतिव्रता स्त्रीके (भर्तृभोगार्थस्नानवत्) पतिके भोग करनेके लिये स्नान करनेके समान (भगवद्भागवतसमाराधनार्थत्वप्रतिपत्त्या) भगवान्के और भागवतों के अच्छी तरह से आराधन करनेके लिये प्रतिपात्ति करके (स्नानस्य) स्नानका (च) भी (करणम्) करना है ५। (स्वरूपनियमः) स्वरूपका नियम (नाम) माने (अनन्यसाधनत्वम्) अनन्योपायता है ७। (उपयनियमः) उपेयनियम (नाम) माने (अनन्यप्रयोजनत्वम्) अनन्य प्रयोजनता है ८। (वासनियमः) वास नियम (नाम) माने (अनन्यप्रयोजनानाम्) अनन्य प्रयोजनवाले (भागवतानाम्) भागवतों के (गृहेषु) घरोंमें और (बाह्याङ्गणेषु) बाहर आँगनोंमें (एकत्र) एक स्थानमें (अवस्थितिः) अवस्थिति करना है ९। (भोगनियमः) भोगनियम (नाम) माने (तेषाम्) उन (भागवतानाम्) भागवतोंके (सर्वेषु) सम्पूर्ण (व्यापारेषु) व्यापारोंमें (भोग्यत्वप्रतिपत्तिः) भोग्यताकी प्रतिपत्ति करना है १०(आचारनियमः) आचारनियम (नाम) माने (अर्थकामाभिमाननिमित्तम्) अर्थ तथा काम और अभिमानके निमित्त (श्रीवैष्णवहृदयेषु) श्रीवैष्णवोंके हृदयों में (च)

और (आचार्यहृदये) आचार्य के हृदय में (कालुष्यानापादनम्) कालुष्य नहीं आपादन करना है ११। (संसर्गनियमः) संसर्गनियम (नाम) माने (सात्विकाङ्गीकृतदेशेषु) सात्विकजनों करके अङ्गीकृत देशों में (वर्तनम्) रहना है १२। (एतेषु) इन बारह ठो (नियमेषु) नियमों के (सत्सु) रहनेपर (पूर्वोक्ताः) पहले कहे हुए (अपराधाः) बारह प्रधान भागवतापचार और अन्य भी अपराध (न) नहीं (आक्रामन्ति) आक्रमण करते हैं। "आक्रामन्ति" यहाँ पर **॥ क्रमः परस्मैपदेषु ॥ व्या० अ० ७, पा० ३, सू० ७६ ॥** इस सूत्र से दीर्घ हुआ है। इस दो सौ चौवनवीं वार्ता में दो सौ बयालीस पद हैं। इति यतिराजोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२५४॥

अब कुलनाथाचार्य्यस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कुलनाथोक्ता वार्ता ॥

मू०–अस्मदाचार्याः श्रीवैष्णवान् पश्यन्ति चेत्, आत्मवत् प्रकृतिमन्त इत्यनुसन्धानरूप अवद्ययुक्ता न भवन्ति, श्रीमदधिपतयः कान्तिमद्रत्नानि भूदेवाः स्वच्छा महापुरुषाः, महातपसः लघुमहामनुष्याः-अस्मदुपकारकाः तच्चिह्नानि कुलनाथ इति ॥२५५॥

॥ कुलशेखरस्वामिस्तुतिः ॥

अर्थ- घुष्यते यस्य नगरे रङ्गयात्रा दिने दिने।
तमहं शिरसा वन्दे राजानं कुलशेखरम् ॥ २०२ ॥

(अस्मदाचार्याः) हम सबों के आचार्य सब (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को यदि (पश्यन्ति) देखते हैं (चेत्) तो (आत्मवत्) अपनी आत्मा के समान देखते हैं। और (प्रकृतिमन्तः) प्रकृतिवाले (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धानरूपे) अनुसन्धान के रूप में (अवद्ययुक्ताः) निन्दा से युक्त (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं। (श्रीमदधिपतयः) श्रीवाले अधिपति सब हैं। तथा (कान्तिमद्रत्नानि) कान्तिवाले रत्न सब हैं। और (भूदेवाः) पृथ्वी में देवता (स्वच्छाः) स्वच्छ (महापुरुषाः) महापुरुष लोग हैं। तथा (महातपसः) महान् तपस्या से (लघुमहामनुष्याः) छोटे और बड़े मनुष्य सब (अस्मदुपकारकाः) हम सबों के उपकारक हैं। और (तच्चिह्नानि) उन महापुरुषों के चिह्न सब भी हम सबों के उपकारक हैं (इति) इस प्रकार के (कुलनाथः) कुलनाथ

स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ पचपनवीं वार्ता में बाईस पद हैं। इति कुलनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२५५॥

अब दिव्य सूरियों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दिव्यसूरिवार्ता ॥

मू०-दिव्यसूरिभिः श्रीवैष्णवानां नामकरणात् तेषु स्वसदृशमनुष्यत्वप्रतिपत्तिरपचारः, शरीरं पीडयित्वा प्राणेन स्नेहकरणवत् नाराणि पीडयित्वा नारायणेन प्रीतिकरणं पृथिव्यां भग्नायां पर्वते भग्ने पतति समुद्रे वेलामतिक्रामति यथा प्रतिक्रिया नास्ति तथा श्रीवैष्णवहृदये कलुषिते प्रतिक्रिया नास्ति ॥२५६॥

॥ कासारसूरिस्तुतिः ॥

अर्थ- काञ्च्यां सरसि हेमाब्जे जातं कासारयोगिनम्।
कलये यः श्रियः पत्युरविन्दमकल्पयत् ॥ २०३ ॥

(दिव्यसूरिभिः) दिव्य सूरियों से (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों के (नामकरणात्) नाम करने से (तेषु) उन श्रीवैष्णवों में (स्वसदृशमनुष्यत्वप्रतिपत्तिः) अपने समान मनुष्यत्व प्रतिपत्ति करना (अपचारः) भागवतापचार है। (शरीरम्) देह को (पीडयित्वा) पीडितकर (प्राणेन) प्राण के साथ (स्नेहकरणवत्) स्नेह करने के समान (नाराणि) नित्य वस्तुओं को (पीडयित्वा) पीडितकर (नारायणेन) नारायण भगवान् के साथ (प्रीतिकरणम्) प्रीति करना है (पृथिव्याम्) पृथ्वी (भग्नायाम्) भग्न होने पर (पर्वते) पहाड़ के (भग्ने) टूटने पर तो (समुद्रे) समुद्र में (पतति) गिरता है और (वेलाम्) वेला को (अतिक्रामति) अतिक्रमण करता है तो (यथा) जैसे (प्रतिक्रिया) प्रतिक्रिया (न) नहीं (अस्ति) है (तथा) वैसे ही (श्रीवैष्णवहृदये) श्रीवैष्णव के हृदय (कलुषिते) कलुषित होने पर (प्रतिक्रिया) प्रतिक्रिया (न) नहीं (अस्ति) है। इस वार्ता में बत्तीस पद हैं। इति दिव्यसूरिगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥२५६॥

अब एक श्रीवैष्णव की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीवैष्णवोक्ता वार्त्ता ॥

मू०-श्रीरङ्गे[१] भगवन्तं[२] सेवमानौ[३]-अन्यान्यविश्लेष-[४]भीरू-अभवतां[५] तत्रैको[६] रागद्वेषयुक्तः[७] श्रीकृष्णपादं[८] प्रणम्य[९] अन्यस्य[१०] दोषान्[११] अवदत्[१२], पार्श्वस्थाः[१३] तदयुक्तमित्यवदन्[१४], कृष्णपाद[१५] अयं[१६] वदतु[१७] यमस्तु[१८] "परिहर"[१९] इत्यवोचत्[२०], जानकी[२१] "न[२२] कश्चिन्नापराध्यति"[२३] इत्यवोचत्[२४], ईश्वरः[२५] "सम्यग्व्यवसितः"[२६] इत्यवोचत्[२७], दिव्यसूरयः[२८] "तदीयाः[२९] कीदृशपापयुक्ता[३०] अपि"[३१] इत्यवोचन्[३२], एवं सति[३३] तस्य[३४] दोषमेतं[३५] विना-अन्यो[३६] न[३७] वदतीत्यवोचत्[३८] ॥२५७॥

॥ भूतयोगिस्तुतिः ॥

अर्थ- मल्लीपुरवराधीशं माधवीकुसुमोद्भवम्।
भूतं नमामि यो विष्णोर्ज्ञानदीपमकल्पयत् ॥ २०४ ॥

(श्रीरङ्गे) श्रीरङ्गक्षेत्र में (भगवन्तम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् की (सेवमानौ) सेवा करते हुए दो ठो (अन्योन्यविश्लेषभीरू) आपस के वियोग से डरनेवाले (अभवताम्) हो गये। (तत्र) उनमें (एकः) एकने (रागद्वेषयुक्तः) राग और द्वेष से युक्त (श्रीकृष्णपादम्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणामकर (अन्यस्य) दूसरे श्रीवैष्णव के (दोषान्) दोषों को (अवदत्) कहा। तब वहाँ पर (पार्श्वस्थाः) पार्श्व में स्थित सज्जन लोग (तत्) उस पुरुष का वह कहा हुआ वाक्य (अयुक्तम्) ठीक नहीं है (इति) इस प्रकार के (अवदन्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी से बोले। और एक प्रपन्न (कृष्णपाद) हे कृष्णपाद स्वामिन्! (अयम्) यह रागद्वेष युक्त पुरुष (वदतु) कहे (तु) लेकिन (यमः) यमराज ने तो (परिहर) छोड़ देना (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) अपने दूतों से विष्णुपुराण में कहा है। तथा (जानकी) श्रीसीतादेवीजी ने (न) नहीं (कश्चित्) कोई भी है (न) नहीं (अपराध्यति) जो अपराध किया हो (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) वाल्मीकिय रामायण में कहा है। और (ईश्वरः) परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने (सम्यक्) अच्छे प्रकार के (व्यवसितः) वह व्यवसित है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) अर्जुन से कहा है। और (दिव्यसूरयः) दिव्यसूरि लोग (तदीयाः) तदीय प्रपन्नजन

सब (कीदृशपापयुक्ताः) किसी प्रकार के पाप से युक्त हैं तो (अपि) भी (इति) इस प्रकार के (अवोचन्) अपने अपने प्रबन्धों में कहे हैं। (एवम्) इस प्रकार के ग्रन्थों में (सति) वाक्य रहने पर (तस्य) उस भागवत के (दोषम्) दोष को (एतम्) इस राग द्वेषयुक्त पुरुष को (विना) बराकर (अन्यः) दूसरा कोई भी (न) नहीं (वदति) कहता है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्ता में **॥ परिहर ॥** यह विषणु-पुराण का प्रतीक है इससे सम्पूर्ण श्लोक को लिखकर यहाँ पर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं जपति यमः किल तस्य कर्णमूले। परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम् ॥ विष्णुपु० ॥

यमराज ने फाँस हाथ में लिये हुए अपने दूतों को देखकर धीरे से कान के मूल में कहा कि मधुसूदन के भक्तों को छोड़ देना क्योंकि श्रीवैष्णवों से अन्य मनुष्यों का मैं स्वामी हूँ ॥ इस प्रकार के पहले प्रतीक का अर्थ लिखकर अब दूसरा प्रतीक जो **॥ न कश्चिन्नापराध्यति ॥** यह है, इसको समस्त लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा। कार्यं कारुण्यमार्य्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥ वा० रा० युद्ध० ६, स० ११५, श्लो० ४३ ॥

पापी हों या अच्छे हों या मारने योग्य हों परन्तु आर्यपुरुष को दया करनी ही चाहिये, क्योंकि ऐसा कोई नहीं है जिसने अपराध न किया हो ॥४३॥ इस प्रकार के दूसरे प्रतीक का अर्थ लिखकर अब जो अन्तिम तीसरा प्रतीक **॥ सम्यग्व्यवसितः ॥** यह है इसको समग्र लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ भगवद्गी० अ० ९, श्लो० ३० ॥

यदि कोई अत्यन्त दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को भजता है, वह निश्चय करके साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है ॥३०॥ इस प्रकार का इसका अर्थ है। इस दो सौ सत्तावनवीं वार्ता में पचपन पद हैं। इति श्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२५७॥

अब सोमशियाण्डान् महात्मा के प्रति अप्यलि स्वामीजी की कही हुई वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ अप्यल्युक्ता वार्त्ता ॥

मू०–सोमशियाण्डान् इत्यस्य-अप्यल्युक्ता वार्ता ननु भवान् ज्ञानवृद्धो वयोवृद्धः शीलवृद्धश्च श्रीभाष्यस्य दिव्यप्रबन्धस्य च निर्वाहकः, अतः सर्वप्रकारेण भवान् महान् तद्यपि-उत्तरीयाञ्चले भागवतापचारनिमित्तमेकां ग्रन्थि कुर्विति, ईश्वरः स्वविषये कर्तव्योऽपराध एव नास्तीति सहते, भागवतापचारम् एतच्चापलकृतमिति सहते, असह्यापचारम् कथमपि न सहते, तमपि सदाचार्य आरोपयति चेत् सहते कस्यचिद् भागवतशेषत्वं स्वरूपं भागवतप्रसाद उपायः भागवतकैङ्कर्य्यमुपेयं भागवतापचारो विरोधी, औपाधिकभागवतविषये रागः, निरुपाधिकभागवतविषये द्वेषश्च स्थिरीभूतो द्वेषः ॥२५८॥

॥ महायोगिस्तुतिः ॥

अर्थ- कूपे रक्तोत्पले जातं महदाह्वयमाश्रये ।
पद्मारमणपादाब्जप्रेमभ्रान्त्या मनोज्ञया ।
भ्रान्तयोगीति विख्यातं मुनिं वन्दे गुणाम्बुधिम् ॥ २०५ ॥

(सोमशियाण्डान्) सोमशियाण्डान् (इति) इस प्रकार के नामवाले (अस्य) इस महात्मा के प्रति (अप्यल्युक्ता) अप्यलि नामवाले महात्मा करके कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (ननु) निश्चय करे (भवान्) आप (ज्ञानवृद्धः) ज्ञानवृद्ध हैं तथा (वयोवृद्धः) वयोवृद्ध हैं (च) और (शीलवृद्धः) शीलवृद्ध हैं। (च) और (श्रीभाष्यस्य) श्रीभाष्यके तथा (दिव्यप्रबन्धस्य) दिव्य प्रबन्ध का (निर्वाहकः) निर्वाहक आप हैं। (अतः) इस कारण से (सर्वप्रकारेण) सब प्रकार करके (भवान्) आप (महान्) महान् हैं (तद्यपि) तौभी (उत्तरीयाञ्चले) चादर के आञ्चल में (भागवतापचारनिमित्तम्) भागवतों के अपचार के निमित्त (एकाम्) एक (ग्रन्थिम्) गाँठ को (कुरु) कर लीजिये (इति) इस प्रकार के कहे हैं। और (ईश्वरः) परमेश्वर (स्वविषये) अपने विषय में (कर्तव्यः) करने योग्य (अपराधः) अपराध (एव) निश्चय करके (न) नहीं (अस्ति) है (इति)

इस कारण से (सहते) सहते हैं। (भागवतापचारम्) भागवतापचार को (एतच्चापलकृतम्) इस चेतन की चपलता से किया हुआ है (इति) इस कारण से (सहते) सहते हैं। और (असह्यापचारम्) असह्यापचार को (कथम्) किसी प्रकार से (अपि) भी (न) नहीं (सहते) सहते हैं। (तम्) उस असह्यापचार को (अपि) भी (सदाचार्यः) सदाचार्य यदि (आरोपयति) आरोपण कराते हैं (चेत्) तो (सहते) परमेश्वर सहते हैं। "आरोपयति" यहाँ पर **॥ रुहः पोऽन्यतरस्याम् ॥ व्या० अ० ७, पा० ३, सू० ४३ ॥** इस सूत्र से पकार हुआ है। (कस्यचित्) किसी प्रपन्नजन के (भागवतशेषत्वम्) भागवत की शेषता (स्वरूपम्) स्वरूप है। तथा (भागवतप्रसादः) भागवतों की प्रसन्नता (उपायः) उपाय है। और (भागवतकैङ्कर्यम्) भागवतों का कैङ्कर्य (उपेयम्) उपेय है। तथा (भागवतापचारः) भागवतों का अपचार (विरोधी) स्वरूपप्राप्ति का विरोधी है। (औपाधिकभागवतविषये) औपाधिक भागवत के विषय में (रागः) राग (च) और (निरुपाधिकभागवतविषये) उपाधि से रहित भागवत के विषय में (द्वेषः) द्वेष होता है और (द्वेषः) द्वेष (स्थिरीभूतः) स्थिर हुआ है। यहाँ पर पहला प्रश्न यह होता है कि भागवतापचार किसको कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीवचनभूषण में लिखा है कि **॥ भागवतापचारो नामाहङ्कारार्थकामहेतुना श्रीवैष्णवेषु क्रियमाणो विरोधः ॥ श्रीवचन० सू० ३२४ ॥** भागवतापचार माने अहङ्कार से अर्थ और काम के कारण श्रीवैष्णवों में किया हुआ विरोध है ॥३२४॥ इस प्रकार के पहले प्रश्न का उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि असह्यापचार किसको कहते हैं ? अस प्रश्न का भी उत्तर लिखा है कि–

॥ असह्यापचारो नाम निर्निबन्धनम् भगवद्भागवतविषय अत्युक्तावसहमानतया स्थितिः, आचार्यापचारः, तद्भक्तापचारश्च ॥ श्रीवच० सू० ३२५ ॥

असह्यापचार माने बिना कारण के भगवान् और भागवत के विषय में इस प्रकार की कही हुई वार्ता को नहीं सहते हुए स्थिति करना तथा आचार्यापचार करना और आचार्य के भक्तों का अपचार करना है ॥३२५॥ इस प्रकार के दूसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो तीसरा प्रश्न होता है कि राग किसको कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर योगशास्त्र में लिखा है कि **॥ सुखानुशयी रागः ॥ योग० अ० १, पा० २, सू० ७ ॥** सुखानुशयी को राग कहते हैं ॥७॥ इस प्रकार के तीसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो अन्तिम चौथा प्रश्न होता है कि द्वेष किसको कहते हैं ? इस प्रश्न का भी उत्तर लिखा है कि **॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥ यो० अ० १, पा० २, सू० ८ ॥** दुःखानुशयी को द्वेष कहते हैं ॥८॥ इस प्रकार के पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर है। इस दो सौ अण्ठावनवीं वार्ता में छियासठ पद हैं। इति अप्पल्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२५८॥

अब पुल्लैवरदरपेलुमाल दासजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पुल्लैवरदरपेलुमालदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–पुल्लैवरदरपेलुमालदासवार्ता–ईश्वरः क्रुध्यति, विस्मरति, सहते, निरूपयति, प्रयोजनान्तरपरान् दृष्ट्वा-अस्मद्रक्षकत्वापहारीति क्रुध्यति, स्वविषये-अपचारान् विस्मरति, आज्ञातिलङ्घनं सहते, भागवतापचारं निरूपयति ॥२५९॥

॥ भक्तिसारस्तुतिः ॥

अर्थ- तुलालग्ने भक्तिसारो मघायां गुरुवासरे ।
कनकांग्यां भार्गवस्य यज्ञे चक्रांशतो महान् ॥ २०६ ॥

(पुल्लैवरदरपेलुमालदासवार्ता) पुल्लैवरदरपेलुमालदासजी की वार्ता है कि (ईश्वरः) परमेश्वर (क्रुष्यति) क्रोध करते हैं। तथा (विस्मरति) भूल जाते हैं ॥ और (सहते) सहते हैं। तथा (निरूपयति) निरूपण करते हैं। (प्रयोजनान्तरपरान्) प्रयोजनान्तर परक मनुष्यों को (दृष्ट्वा) देखकर (अस्मद्रक्षकत्वापहारी) हमारे रक्षकत्व को अपहरण करनेवाला है (इति) इस प्रकार के समझकर (क्रुध्यति) क्रोध करते हैं। और (स्वविषये) अपने विषय में (अपचारान्) किये हुए अपचारों को (विस्मरति) भूल जाते हैं। तथा (आज्ञातिलङ्घनम्) आज्ञा के अत्यन्त उल्लङ्घन को (सहते) सहते हैं। और (भागवतापचारम्) भागवतों के अपचार को (निरूपयति) निरूपण करते हैं। इस दो सौ उनसठवीं वार्ता में अट्ठारह पद हैं। इति पुल्लैवरदरपेलुमालदासोक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥२५९॥

अब नडाधुरआल्वारस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ नडाधुरआल्वारोक्ता वार्ता ॥

मू०–नडाधुरआल्वारः-एकस्य श्रीवैष्णवस्य हस्तं गृहीत्वा गच्छति तदोत्तरवीथ्यां कस्मिंश्चिन्नीचकुले जातं श्रीवैष्णवं समीपे-आगच्छन्तं दृष्ट्वा तद्धस्तावलम्बनभूतः श्रीवैष्णवः तज्जातिनिरूपणं कृत्वा दूरतो गच्छेत्यवोचत्,

आल्वारः[२४] तच्छ्रुत्वा[२५] मूर्छामगमत्[२६], निवृत्तमूर्छं[२७] तं[२८] किमेतदिति[२९] पार्श्वस्थाः[३०] श्रीवैष्णवाः[३१] अपृच्छन्[३२], स[३३] च-एतत्कुले[३४] जातः[३५] उभयकावेरीमध्ये[३६] वर्तमानो[३७] महानुभावोऽयं[३८] किं[३९] चाण्डालः[४०] चिरकालमात्मापहारं[४१] कृत्वा[४२] संचरन्[४३], अहं[४४] खलु[४५] चाण्डाल[४६] इत्यवोचत्[४७] ॥२६०॥

॥ कणिकृष्णस्तुतिः ॥

अर्थ- कणिकृष्णः स बालोऽथ भक्तिसारार्द्रवीक्षणात्।
जग्राह सकलां विद्यास्ततोभूद्भगवत्कविः ॥२०७॥

(नडाधुरआल्वारः) नडाधुरआल्वार स्वामीजी के (एकस्य) एक (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (हस्तम्) हाथ को (गृहीत्वा) पकड़कर (गच्छति) जाने के समय में (तदा) तब (उत्तरवीथ्याम्) उत्तरकोवीथीमें (कस्मिंश्चित्) किसी (नीचकुले) नीच चाण्डाल के कुल में (जातम्) उत्पन्न (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव को (समीपे) पास में (आगच्छन्तम्) आते हुए (दृष्ट्वा) देखकर (तद्धस्तावलम्बनभूतः) उस नडाधुरआल्वार स्वामीजी के हाथ का अवलम्बन बना हुआ (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (तज्जातिनिरूपणम्) उस भागवत के जाति-निरूपण को (कृत्वा) करके (दूरतः) दूरसे (गच्छ) चले जा (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। उसके बाद (आल्वारः) नडाधुरआल्वार स्वामीजी ने (तत्) उस श्रीवैष्णव की बात को (श्रुत्वा) सुनकर (मूर्छाम्) मूर्छा को (अगमत्) प्राप्त किया। इसके बाद (निवृत्तमूर्छम्) मूर्छा छूटनेपर (तम्) उस नडाधुरआल्वार स्वामीजी से (एतत्) यह (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (पार्श्वस्थाः) बगल में स्थित (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (अपृच्छान्) पूछे हैं। (च) और तब (सः) वह नडाधुरआल्वार स्वामीजी (एतत्कुले) इस भागवतकुल में (जातः) उत्पन्न (उभयकावेरीमध्ये) दोनों कावेरी के बीच में (वर्तमानः) वर्तमान (अयम्) यह (महानुभावः) महानुभाव श्रीवैष्णव (किम्) क्या (चाण्डालः) चाण्डाल हैं अर्थात् चाण्डाल नहीं हैं भागवत हैं। (चिरकालम्) बहुत दिनों तक (आत्मापहारम्) आत्मा का अपहरण (कृत्वा) कर (संचरन्) अच्छी तरह से घूमता हुआ (अहम्) मैं (खलु) निश्चय करके (चाण्डालः) चाण्डाल हूँ (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस दो सौ साठवीं वार्ता में पचपन पद हैं। इति नडाधुरआल्वारोक्तवार्ता- व्याख्यानम् ॥२६०॥

अब आन्ध्रपूर्णस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ आन्ध्रपूर्णवार्ता ॥

मू०–श्रीवैष्णवस्य-उचितमन्नं त्रिविधम्, अनुचितं च त्रिविधम्, तत्रानुचितं नाम-अनुकूलपीडया जीवनं प्रतिकूल-विषये सापेक्षया जीवनं साधनान्तरबुद्ध्या कैङ्कर्य्यं कृत्वा जीवनं च, तत्रानुकूलपीडा नाम-सर्वेश्वरस्य मर्मस्थले यष्ट्या ताडनम् ''मम प्राणा हि पाण्डवाः'' ''ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'' ''नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना'' इत्युक्तत्वात् अस्मिन्नर्थे-आन्ध्रपूर्णस्य वार्ता ॥२६१॥

॥ आन्ध्रपूर्णस्तुतिः ॥

अर्थ- आन्ध्रपूर्णो यतीन्द्रस्य पादतीर्थं सुपावनम्।
कृपया स्थापयामास शालग्रामे निधिं यथा ॥२०८॥

(श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (उचितम्) उचित (अन्नम्) अन्न (त्रिविधम्) तीन प्रकार के होते हैं। (च) और श्रीवैष्णव के (अनुचितम्) अनुचित भी (त्रिविधम्) तीन प्रकार के होते हैं। (तत्र) उनमें (अनुचितम्) अनुचित (नाम) माने (अनुकूलपीडया) अनुकूलों की पीडा से (जीवनम्) जीना है १, तथा (प्रतिकूलविषये) प्रतिकूल विषय में (सापेक्षया) अपेक्षा के सहित (जीवनम्) जीना है २, (च) और (साधनान्तरबुद्ध्या) उपायान्तर की बुद्धि से (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य को (कृत्वा) करके (जीवनम्) जीना है ३, (तत्र) उसमें (अनुकूलपीडा) अनुकूल पीडा (नाम) माने (सर्वेश्वरस्य) सबके स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् के (मर्मस्थले) मर्मस्थल में (यष्ट्या) लाठी से (ताडनम्) ताडन करना है। (हि) निश्चय करके (मम) मेरे (प्राणाः) प्राण (पाण्डवाः) पाण्डव युधिष्ठिर आदिक हैं। (ज्ञानी) ज्ञानी पुरुष (तु) तो (आत्मा) मेरी आत्मा है, (एव) निश्चय करके (मे) यह मेरा (मतम्) मत है। (अहम्) मैं (मद्भक्तैः) अपने भक्त (साधुभिः) साधुओं के (विना) बिना (आत्मानम्) अपनी आत्मा को (न) नहीं (आशासे) चाहता हूँ। (इति) इस प्रकार के (उक्तत्वात्) कहने से (अस्मिन्) इस (अर्थे) अर्थ में (आन्ध्रपूर्णस्य) आन्ध्रपूर्ण स्वामीजी की (वार्ता) यह वार्ता है। इस वार्ता में ॥ **ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्** ॥ यह प्रतीक है इससे सम्पूर्ण

श्लोक को लिखकर यहाँ पर इसका अर्थ लिखता हूँ।

॥ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ भगवद्गी० अ० ७, श्लो० १८ ॥

आर्त जिज्ञासु अर्थार्थी और ज्ञानी ये सब ही उदार हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष तो मेरी आत्मा है, निश्चय करके यह मेरा मत है, युक्तात्मा, अच्छे प्रकार से स्थित वह ज्ञानीपुरुष, अनुत्तमा गति मुझको प्राप्त करता है ॥१८॥ इस दो सौ एकसठवीं वार्ता में पचास पद हैं। इत्यान्ध्रपूर्णवार्ताव्याख्यानम् ॥२६१॥



अब वानमामले आण्डान स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ वानमामलेआण्डानोक्ता वार्ता ॥

मू०–भगवदपचारः भगवद्विग्रहेऽनिष्टचिन्तनं भागवतापचारः तन्नयनयोर्यष्ट्योल्लेखनम् "ये प्रपन्नाः महात्मान स्ते मे नयनसम्पदः" इति प्रमाणमिति वानमामलेआण्डानवार्ता ॥२६२॥

॥ कुलशेखरस्तुतिः ॥

अर्थ- कुम्भे पुनर्वसुजातं केरलेकोलिपट्टणे।
कौस्तुभांशं धराधीशं कुलशेखरमाश्रये ॥ २०९ ॥

(भगवदपचारः) भगवदपचार (भगवद्विग्रहे) भगवान् के विग्रह में (अनिष्टचिन्तनम्) अनिष्ट चिन्तन करना है। और (भागवतापचारः) भागवतापचार (तन्नयनयोः) श्रीमन्नारायण भगवान् के दोनों श्रीनेत्रों में (यष्ट्या) लाठी से (उल्लेखनम्) उल्लेखन करना है। (ये) जो (प्रपन्नाः) प्रपन्न (महात्मानः) महात्मा हैं (ते) वे (मे) मेरे (नयनसम्पदः) नेत्र संपत्ति हैं। (इति) इस प्रकार का (प्रमाणम्) शब्द प्रमाण है (इति) इस प्रकार के (वानमामलेआण्डानवार्ता) वानमामलेआण्डान स्वामीजी की वार्ता है। इस वार्ता में सत्तरह पद हैं। इति वानमामलेआण्डानोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२६२॥

अब वकुलाभरणस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ वकुलाभरणोक्ता वार्ता ॥

मू०–सात्विकपीडनं[१] मिथुनकौस्तुभे[२] करीषोल्लेखन[३]-मिति[४] वकुलाभरणः[५] ॥२६३॥

॥ वकुलाभरणस्तुतिः ॥

अर्थ- वकुलाभरणं वन्दे जगदाभरणं मुनिम् ।
यः श्रुतेरुत्तरं भागं चक्रे द्राविडभाषया ॥ २१० ॥

(सात्विकपीडनम्) सात्विक पुरुषों को पीडित करना (मिथुनकौस्तुभे) श्रीमन्नारायण के कौस्तुभमणिपर (करीषोल्लेखनम्) करीष का उल्लेखन करना है (इति) इस प्रकार के (वकुलाभरणः) श्रीशठकोप स्वामीजी ने कहा है । इस वार्ता में पाँच पद हैं । इति वकुलाभरणोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२६३॥

अब सोमयाजी श्रीवैष्णव के और तेवारी आण्डान् महात्मा की कही हुई वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ तेवारीआण्डान्गदिता वार्ता ॥

मू०–सोमयाजी[१] तेवारीआण्डान्[२] प्रति[३]-ईश्वरस्य[४] अत्रा[५]-वतारे[६] को[७] हेतुरित्यवोचत्[८], स[९] च[१०] भागवतापचारासहिष्णु[११]-तेत्यवोचत्[१२], तस्माच्छ्रीवैष्णवपीडनमीश्वरो[१३] न[१४] सहते[१५], प्रतिकूलविषये[१६] सापेक्षता[१७] नाम[१८] राजमहिष्या[१९] राजसन्निधौ[२०] क्षुद्रसमीपेऽवस्थानम्[२१] ॥२६४॥

॥ तेवारिनाथस्तुतिः ॥

अर्थ- ततः श्रीरङ्गनगरे कश्चित्तेवारिनामकः ।
शिष्यो बभूव वेदान्तिन्यामुनार्य्यस्य विश्रुतः ॥२११॥

(सोमयाजी) सोमयज्ञ करनेवाले कोई श्रीवैष्णव (तेवारीआण्डान्प्रति) तेवारी आण्डान् स्वामीजी के प्रति (ईश्वरस्य) परमेश्वर की (अत्र) इस लीला विभूतिपर (अवतारे) अवतार लेने में (कः) क्या (हेतुः) कारण है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। (च) और (सः) तब वह तेवारी आण्डान् स्वामीजी

(भागवतापचारासहिष्णुता) भागवतापचार को नहीं सहना ही अवतार में कारण है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। (तस्मात्) उस कारण से (श्रीवैष्णवपीडनम्) श्रीवैष्णवों की पीड़ा को (ईश्वरः) परमेश्वर (न) नहीं (सहते) सहते हैं। (प्रतिकूलविषये) प्रतिकूल विषय में (सापेक्षता) सापेक्षता (नाम) माने (राजमहिष्याः) राजा की कृताभिषेका रानी के (राजसन्निधौ) राजा की सन्निधि में (क्षुद्रसमीपे) किसी छोटे के पास में (अवस्थानम्) स्थिति करना है। इस दो सौ चौसठवीं वार्ता में सताईस पद हैं। इति तेवारीआण्डान् गदितवार्ताव्याख्यानम् ॥२६४॥

अब त्रिभुवनवीरदेवके और पराशरभट्टार्यस्वामीजी के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भट्टार्य्यत्रिभुवनवीरदेवोक्ता वार्ता ॥

मू०–त्रिभुवनवीरदेवो भट्टार्य्यस्याभिजात्यं दृष्ट्वा भवान् एकदा-अस्मत्समीपे-आगच्छत्विति प्रार्थितवान्, तच्छ्रुत्वा-अत्र शयानो न ददाति, त्वद्द्वारम् विना गतिरस्ति किमित्यवोचत् ॥२६५॥

॥ श्रीविष्णुचित्तस्तुतिः ॥

अर्थ- ज्येष्ठे स्वातिभवं विष्णो रथांशं धन्विसत्पुरे।
प्रपद्ये श्वशुरं विष्णोर्विष्णुचित्तं पुरःशिखम् ॥२१२॥

(त्रिभुवनवीरदेवः) त्रिभुवन वीरदेवजी ने (भट्टार्यस्य) पराशर भट्टाचार्य स्वामीजी के (अभिजात्यम्) अभिजात्य को (दृष्ट्वा) देखकर (भवान्) आप (एकदा) एक समय में (अस्मत्समीपे) मेरे पास (आगच्छतु) आइये (इति) इस प्रकार की (प्रर्थितवान्) प्रार्थना की। तब (तत्) त्रिभुवन वीरदेवजीकी उस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (अत्र) यहाँपर (शयानः) सोते हुए (न) नहीं (ददाति) देते हैं। (त्वद्द्वारम्) आप के द्वार के (विना) बिना (गतिः) गति (अस्ति) है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) पराशर भट्टाचार्य्य स्वामीजी ने कहा। इस दो सौ पैंसठवीं वार्ता में तेईस पद हैं। इति भट्टार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२६५॥

अब कन्दाडयाण्डान् स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कन्दाडयाण्डान्गदिता वार्ता ॥

मू०-अस्मिन्नर्थे कन्दाडयाण्डान् वेदान्तिनम् प्रति-न्यस्तभरस्य वस्त्राद्यर्थं प्रतिकूलविषये अपेक्षा, स्वभर्तुः सकाशाज्जीवनम् लभमानायाः-अधिकव्ययाद्यर्थं परभर्तुः स्वीकारवत् इत्यवोचत् ॥२६६॥

॥ भक्ताङ्घ्रिरेणुस्तुतिः ॥

अर्थ- चोलक्षितौ धनुषि मासि महेन्द्रतारे प्रादुर्बभूव मुरभिद्वनमालिकांशः ।
रङ्गेशकेलिमुखमूर्ध्वशिखम् द्विजेन्द्रं भक्ताङ्घ्रिरेणुमनघं सगुणं प्रपद्ये ॥२१३॥

(अस्मिन्) इस पूर्वोक्त (अर्थे) अर्थ के विषय में (कन्दाडयाण्डान्) कन्दाडयाण्डान् स्वामीजी (वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजी के (प्रति) प्रति (न्यस्तभरस्य) भगवान् में सम्पूर्ण भार समर्पण करनेवाले पुरुष के (वस्त्राद्यर्थम्) वस्त्र और आदि शब्द से भोजन तथा भूषण आदिके लिये (प्रतिकूलविषये) प्रतिकूल विषय में (अपेक्षा) जो अपेक्षा है वह (स्वभर्तुः) अपने पति के (सकाशात्) साथ से (जीवनम्) अपने जीवन को (लभमानायाः) लाभ करती हुई स्त्री के (अधिकव्ययाद्यर्थम्) अधिक खर्चा और विषय आदि के लिये (परभर्तुः) दूसरे पति के (स्वीकारवत्) स्वीकार के समान है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस वार्ता में अट्ठारह पद हैं। इति कन्दाडयाण्डान्गदितवार्ताव्याख्यानम् ॥२६६॥

अब कान्दाडयाण्डान् स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कन्दाडयाण्डान्गदिता वार्ता ॥

मू०-साधनबुद्ध्या कैङ्कर्य्यं नाम कैङ्कर्य्यस्वीकर्तुः भृति-दानम् विना कैङ्कर्य्यं कृत्वा भृत्यपेक्षणम् अस्मिन्नर्थे कन्दा-डयाण्डान् गोपालपतिं प्रति कैङ्कर्य्यं कृत्वा फलमपेक्षते चेत्, सर्वजनसमक्षम् एकेन परिणीता स्त्री रात्रौ स्वभर्तृ-संश्लेषं कृत्वा प्रभाते भृत्यपेक्षया भर्तारं रुन्धेच्चेत् तद्वद्भव-तीत्यवोचत्, स च कैङ्कर्य्यकर्तुर्जीवनम् नापेक्षितम् कि-

४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५०
मित्यपृच्छत् कश्चित् खनित्रादिकम् निर्माय तेन कार्यंकरोति
५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७
तदा तन्मुखभङ्गादौ जाते कार्य्यकर्तैव लोहादिना तत्
५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७
पूरयति न तु स्वयमेव किञ्चित् करोति, एवमेतेन कैङ्कर्य्यं
६८ ६९ ७० ७१ ७२
स्वीकुर्वन् स्वयमेव जीवनम् ददाति ॥

अर्थ–(साधनबुद्ध्या) उपाय बुद्धिसे (कैङ्कर्यम्) कैङ्कर्य (नाम) माने (कैङ्कर्यस्वीकर्तुः) कैङ्कर्य स्वीकार करनेवाले के (भृतिदानम्) भृति देने के (विना) बिना (कैङ्कर्यम्) कैङ्कर्य को (कृत्वा) करके (भृत्यपेक्षणम्) सेवाकी मजूरी की अपेक्षा करना है। (अस्मिन्) इस पूर्वोक्त (अर्थे) अर्थ के विषय में (कन्दाडयाण्डान्) कन्दाडयाण्डान् स्वामीजी (गोपालपतिम्) गोपाल पति के (प्रति) प्रति (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य को (कृत्वा) करके (फलम्) सेवा के फल को यदि (अपेक्षते) चाहते हैं (चेत्) तो (सर्वजनसमक्षम्) सब मनुष्यों के सामने (एकेन) एक किसी पुरुष से (परिणीता) विवाही हुई (स्त्री) स्त्री (रात्रौ) रात्रि में (स्वभर्तृसंश्लेषम्) अपने पति के साथ अच्छी तरह से आलिङ्गन (कृत्वा) कर (प्रभाते) सबेरे में (भृत्यपेक्षया) सेवा की मजदूरी की चाहना से (भर्तारम्) यदि अपने पति को (रुन्धेत्) रोकती है (चेत्) तो जैसा दोष होता है (तद्वत्) वैसा ही (भवति) उपाय बुद्धि से कैङ्कर्य करने से दोष होता है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहें हैं। (च) और (सः) वह (कैङ्कर्य्यकर्तुः) कैङ्कर्य करनेवाले का (जीवनम्) जीवन (न) नहीं (अपेक्षितम्) अपेक्षित है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। तब वह कन्दाडयाण्डान् स्वामीजी ने कहा है कि (कश्चित्) कोई पुरुष (खनित्रादिकम्) खनती कुदाल आदिको (निर्माय) बनाकर (तेन) उस खनती आदि से (कार्य्यम्) कार्य को (करोति) करता है, (तदा) तब (तन्मुखभङ्गादौ) उस खनती आदि के मुख भङ्गादिक (जाते) होने पर (कार्यकर्ता) कार्य को करनेवाला (एव) निश्चय करके (लोहादिना) लोहा आदि से (तत्) उस खनती आदि के मुखभङ्ग को (पूरयति) पूरण करता है। वह खनती आदिक (तु) तो (स्वयम्) अपने से (एव) निश्चय करके (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं (करोति) करता है। (एवम्) इस प्रकार के (एतेन) इस चेतन के द्वारा (कैङ्कर्य्यम्) भगवान् का कैङ्कर्य्य (स्वीकुर्वन्) स्वीकार करने पर (स्वयम्) वह श्रीमन्नारायण भगवान् अपने ही (एव) निश्चय करके (जीवनम्) चेतन के जीवन को (ददाति) देते हैं। "ददाति" यहाँ पर ॥ **जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ व्या० अ० २, पा० ४, सू० ७५ ॥** इस सूत्र से श्लु और **॥ श्लौ ॥ व्या० अ० ६, पा० १, सू० १० ॥** इस सूत्र से द्वित्व हुआ है ।खमिति॥

मू०–उचितान्नं[१] नाम[२]-अनुकूलैः[३]रादरेण[४] दत्तं[५] शिष्येण[६] स्वरूपसिद्ध्यर्थं[७] दत्तं[८] मुष्ट्या[९] गृहीतं[१०] चेति,[११] अनुकूलैः[१२]रादरेण[१३] दत्तं[१४] तद्धस्तेन[१५] दत्तं[१६] शिष्येण[१७] दत्तं[१८] ज्ञातिभिर्दत्तं[१९] मुष्ट्या[२०] गृहीतं[२१] तु[२२] जातिभ्यः[२३] स्वप्रार्थनया[२४] गृहीतं[२५] तर्हि[२६] तल्लाभालाभाभ्यां[२७] प्रीतिविषादौ[२८] न[२९] भवतः[३०] किमिति[३१] चेत्,[३२] लाभ-एकमुष्ट्या[३३]-अलाभश्चैकमुष्ट्या[३४]-इति[३५] तदानीमुच्चार्य्यमाण[३६]-भगवन्नाम्ना साम्यतः[३७] भोजनविरोधी[३८] नाम[३९]-आदरेण[४०] कश्चिद[४१] भोजनं[४२] दातुमुद्युक्ते[४३] सति[४४] भोक्त्रा[४५]-आहारसौष्ठवनिरूपणम्[४६] अस्येदमलमिति[४७] दात्रा[४८] चिन्तनं[४९] च,[५०] भोग्यविरोधी[५१] नाम[५२] दत्वा[५३] लेखनकरणं[५४] स्वरूपानुरूपभोजनं[५५] नाम[५६] ख्यात्यर्थं[५७] पूजार्थं[५८] वा-अदत्तस्याहं[५९] ददामीत्यहङ्काररहितस्य[६०] भोजनम्[६१] ॥२६७॥

अर्थ–(उचितान्नम्) उचित अन्न (नाम) माने (अनुकूलैः) अनुकूल जीवों से (आदरेण) आदर करके (दत्तम्) दिया हुआ १, तथा (शिष्येण) शिष्य से (स्वरूपसिद्ध्यर्थम्) स्वरूप सिद्धि के लिये (दत्तम्) दिया हुआ २, (च) और (मुष्ट्या) मुट्ठी से (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ ३, (इति) इस प्रकार का उचितान्न होता है। (अनुकूलैः) अनुकूल पुरुषों से (आदरेण) आदर करके (दत्तम्) दिया हुआ (तद्धस्तेन) उनके हाथ से (दत्तम्) दिया हुआ है, तथा (शिष्येण) शिष्य से (दत्तम्) दिया हुआ (ज्ञातिभिः) ज्ञातियों से (दत्तम्) दिया हुआ है। और (मुष्ट्या) मुट्ठी से (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ (तु) तो (ज्ञातिभिः) जातिवालों से (स्वप्रार्थनया) अपनी प्रार्थना से (गृहीतम्) ग्रहण किया हुआ है। (तर्हि) तब तो (तल्लाभालाभाभ्याम्) उस उचितान्न के लाभ से और नहीं लाभ होने से (प्रीतिविषादौ) प्रीति और विषाद अर्थात् लाभ से प्रीति और अलाभ से विषाद (न) नहीं (भवतः) होते हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के यदि कहिये (चेत्) तो इस विषय में श्रवण किजिये। (लाभः) लाभ (एकमुष्ट्या) एक मुट्ठी से (च) और (अलाभः) अलाभ (एकमुष्ट्या) एक मुठी से (इति) इस प्रकार के (तदानीम्) उस समय में

(उच्चार्यमाणभगवन्नाम्ना) उच्चारण किये हुए श्रीमन्नारायण भगवान् के नाम द्वारा (साम्यत:) समता होने से है। (भोजनविरोधी) भोजन विरोधी (नाम) माने (आदरेण) आदर से (कश्चित्) किसी पुरुष के (भोजनम्) भोजन को (दातुम्) देने के लिये (उद्युक्ते) तैयार होने (सति) पर तो (भोक्त्रा) भोजन करनेवाले करके (आहारसौष्ठवनिरूपणम्) आहार सुन्दर है कि नहीं, इस प्रकार का निरूपण करना है। (च) और (अस्य इस पुरुष के (इदम्) यह अन्न (अलम्) पर्याप्त है (इति) इस प्रकार के (दात्रा) देनेवाले करके (चिन्तनम्) चिन्तन करना है। (भोग्यविरोधी) भोग्यविरोधी (नाम) माने (दत्वा) देकर (लेखनकरणम्) लिखना है। (स्वरूपानुरूपभोजनम्) स्वरूप के अनुरूपभोजन (नाम) माने (ख्यात्यर्थम्) प्रसिद्धि के लिये (वा) अथवा (पूजार्थम्) पूजा के लिये (अदत्तस्य) नहीं दिये हुए को (अहम्) मैं (ददामि) देता हूँ (इति) इस प्रकार के (अहङ्काररहितस्य) अहङ्कार से रहित का (भोजनम्) भोजन है। इस दो सौ सरसठवीं वार्ता में एक सौ अड़तालीस पद हैं। इति कन्दाडयाण्डनगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥२६७॥

अब श्रीकृष्णपादस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–भाष्यकारे[१] श्रीवेङ्कटगिरिं[२] गच्छति[३]-उत्तरनलूर[४] ग्रामं[५] प्रविवेश[६], तत्र[७] वानमामलदास[८] इति[९] कश्चन[१०] गोपाल: श्रीवैष्णवो[११] दुग्धं[१२] सम्यक्[१३] पक्वं[१४] कृत्वा[१५] समर्पयत्[१६], तस्य[१७] भाष्यकारोऽतिप्रीत्या[१८] बुभुजे[१९] पुनर्भाष्यकारे[२०]-आगच्छति[२१] दुग्धं[२२] परिपक्वं[२३] समर्पयत्[२४], तच्च[२५] भुञ्जानं[२६] भाष्यकारमिदं[२७] समीचीनमिति[२८] पप्रच्छ[२९], तवाभिसन्धिरेतादृशी[३०] किमित्यु-क्त्वा[३१]-एकदिनमुपवासमकरोत्[३२], कश्चिच्छ्रीवैष्णवं[३३] भोजयिता[३४] कश्चिच्छ्रीवैष्णव:[३५]-तदा[३६] दुखाभिमानगर्वरहितोभयप्रीतियुक्तो[३७] भवेदिति[३८] श्रीकृष्णपादवार्ता[३९] ॥२६८॥

अर्थ–(भाष्यकारे) श्रीभाष्यकार के (श्रीवेङ्कटगिरिम्) श्रीवेङ्कटाचलको (गच्छति) जाने के समय में (उत्तरनलूरग्रामम्) उत्तर नलूर गाँव में (प्रविवेश) श्रीभाष्यकार ने

प्रवेश किया। (तत्र) उस उत्तर नलूर गाँव में (वानमामलदासः) वानमामलदास (इति) इस प्रकार के नामवाले (कश्चन) किसी (गोपालः) गोप (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णवने (दुग्धम्) दूध को (सम्यक्) अच्छी तरह से (पक्वम्) परिपक्व (कृत्वा) कर (समर्पयत्) समर्पण किया। और (तस्य) उस वानमामलदासजी गोपाल के समर्पण किये हुए दूध को (श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार ने (अतिप्रीत्या) अत्यन्त प्रीति से (बुभुजे) भोजन किया। इसके बाद (पुनः) फिर से उस उत्तरनलूर गाँव में (श्रीभाष्यकारे) श्रीभाष्यकार के (आगच्छति) आने पर उस वानमामलदास श्रीवैष्णवने (परिपक्वम्) परिपक्व (दुग्धम्) दूध को (भुञ्जानम्) भोजन करनेवाले (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार को (इदम्) यह दूध (समीचीनम्) अच्छा है (इति) इस प्रकार के (पप्रच्छ) वानमामलदासजी ने पूछा है। तब श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने (तव) तेरी (अभिसन्धिः) अभिसन्धि (एतादृशी) इस प्रकार की है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (एकदिनम्) एक दिन (उपवासम्) उपवास को (अकरोत्) किया है। इससे (कश्चित्) कोई भी (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (तदा) तब (दुःखाभिमानगर्वरहितोभयप्रीतियुक्तः) दुःख तथा अभिमान और गर्व से रहित हो करके दोनों भोजन करनेवाला तथा भोजन करानेवाला प्रीति से युक्त (भवेत्) होवे (इति) इस प्रकार की (श्रीकृष्णपादवार्ता) श्रीकृष्णपादस्वामीजी की वार्ता है। इस दो सौ अड़सठवीं वार्ता में तिरपन पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२६८॥

अब दिव्यसूरियों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दिव्यसूरिवार्ता ॥

मू०–विषयप्रावण्ये[१] गणिकास्पर्शो[२] विधवास्पर्शापेक्षया[३] यागसमानः[४], विधवास्पर्शो[५] ब्राह्मणीस्पर्शापेक्षया[६] यागसमानः[७], ब्राह्मणीस्पर्शो[८] मातृस्पर्शापेक्षया[९] यागसमानः[१०], मातृस्पर्शो[११] वैष्णवीस्पर्शापेक्षया[१२] यागसमानः[१३], देहः[१४] समूहं[१५] न[१६] सहते[१७], स्वरूपमसहायं[१८] न[१९] तिष्ठति[२०], भगवद्विषयस्य[२१] प्रकाशः[२२] समुदायश्च[२३] मृग्यो[२४] भवति[२५], विषयस्पर्शो[२६] द्विविधोऽविलक्षणो[२७] विलक्षणश्चेति[२८], अविलक्षणविषयस्पर्शो[२९] देववने[३०] जलकार्य्यवत्[३१] प्रायश्चित्तसाध्यः[३२], विलक्षणविषयस्पर्शः[३३] श्रीनन्दनवने[३४] जल-

कार्य्यवत् यावदात्मभावि नरकहेतुः, भगवदनुभवनिष्ठस्य विषयानुभवेऽन्वयो नास्ति, अमुमर्थं दिव्यसूरयो बहुषु स्थलेष्ववदन् ॥२६९॥

॥ दिव्यसूरिस्तुतिः ॥

अर्थ- वकुलालङ्कृतम् श्रीमच्छठकोपपदद्वयम्।
अस्मत्कुलधनं भोग्यमस्तु मे मूर्ध्नि भूषणम् ॥२१४॥

(विषयप्रावण्ये) विषय में अत्यन्त प्रवणता होने पर (गणिकास्पर्शः) वेश्या का स्पर्श (विधवास्पर्शापेक्षया) विधवा स्त्री के स्पर्श की अपेक्षा से (यागसमानः) यज्ञ के समान है। तथा (विधवास्पर्शः) विधवा स्त्री का स्पर्श (ब्राह्मणीस्पर्शापेक्षया) ब्राह्मण की स्त्री के स्पर्श की अपेक्षा से (यागसमानः) यज्ञ के तुल्य है। और (ब्राह्मणीस्पर्शः) ब्राह्मण की स्त्री का स्पर्श (मातृस्पर्शापेक्षया) अपनी माता के स्पर्श की अपेक्षा से (यागसमानः) यज्ञ के तुल्य है। और (मातृस्पर्शः) अपनी माता का स्पर्श (वैष्णवीस्पर्शापेक्षया) वैष्णवी के स्पर्श की अपेक्षा से (यागसमानः) यज्ञ के समान है। (देहः) शरीर (समूहम्) समूहको (न) नहीं (सहते) सहता है। और (स्वरूपम्) स्वस्वरूप (असहायम्) बिना ब्रह्म की सहायता के (न) नहीं (तिष्ठति) ठहरता है। (भगवद्विषयस्य) भगवद्विषय के (प्रकाशः) प्रकाश (च) और (समुदायः) समुदाय (मृग्यः) ढूढ़ने योग्य (भवति) होता है। (विषयस्पर्शः) विषय का स्पर्श (द्विविधः) दो प्रकार का होता है (अविलक्षणः) एक अविलक्षण विषय-स्पर्श १, (च) और (विलक्षणः) दूसरा विलक्षण विषय-स्पर्श २, (इति) ये दो हैं। उनमें (अविलक्षणविषयस्पर्शः) अविलक्षण विषय स्पर्श (देववने) देववन में (जलकार्य्यवत्) जल के कार्य्य के समान (प्रायश्चित्तसाध्यः) प्रायश्चित द्वारा साध्य है। और (विलक्षणविषयस्पर्शः) विलक्षण विषय स्पर्श (श्रीनन्दनवने) श्रीनन्दनवन में (जलकार्य्यवत्) जल के कार्य्य के समान (यावत्) जबतक (आत्मभावि) आत्माकी सत्ता रहेगी, तबतक (नरकहेतुः) नरक में कारण होता है। (भगवदनुभवनिष्ठस्य) भगवान् के अनुभव में निष्ठ पुरुष के (विषयानुभवे) विषय के अनुभव में (अन्वयः) सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है। (अमुम्) इस पूर्वोक्त (अर्थम्) अर्थ को (दिव्यसूरयः) दिव्यसूरिशठकोपस्वामीजी वगैरह ने (बहुषु) बहुत से (स्थलेषु) स्थलों में (अवदन्) कहा है। प्रपन्नों को विषय सर्वदा परित्याग करना चाहिये क्योंकि लिखा है कि- **॥ विषस्य विषयाणां च दूरमत्यन्तमन्तरम्। उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि ॥** विष और विषयों के बीच में अब अत्यन्त दूर अन्तर है क्योंकि विष

खाने पर मारता है, और विषय तो स्मरण से भी मारता है ।। और भी लिखा है कि–

॥ आस्वाद्य दहनज्वालामुदन्या शमनं यथा । तथा विषयसंसर्गात् सुखचिन्ता शरीरिणः ॥ विषयाणां तु संसर्गाद्यो बिभर्ति सुखं नरः । नृत्यतः फणिनश्छायां विश्रामायाश्रयेत सः ॥

आगकी ज्वाला को चखकर जैसे प्यास को शान्त कर लेना है, वैसे ही विषय के संसर्ग से मनुष्य को सुख पाने की इच्छा है । विषयों के संसर्ग से जो मनुष्य सुख पाता है, वह नाचनेवाले साँप की छाया को विश्राम के लिये आश्रयण करता है । इस कारण से विषय सर्वदा परित्याग करने योग्य है । इस दो सौ उनहत्तरवीं वार्ता में चौवन पद हैं । इति दिव्यसूरिवार्ताव्याख्यानम् ।।२६९।।

अब अक्वरैच्चडियार् स्वामीजी की कही हुई वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ अक्वरैच्चडियार्वार्ता ॥

मू०–अक्वरैच्चडियारित्यनेन मध्याह्ने क्षुधार्तः श्रीवैष्णवः-आगतश्चेद्यथा क्षुन्निवृत्तिं कारयित्वा प्रसाद्यते तथा प्रकृतिर्बाधत इति कश्चन श्रीवैष्णव आगतश्चेत्, तद्बाधां निवर्तयित्व. सः प्रसादनीयो न भवेत्, किमिति पृष्टः ॥२७०॥

॥ मुनिवाहनस्तुतिः ॥

अर्थ- कार्तिके रोहिणीजातं श्रीपाणं निचुलापुरे ।
श्रीवत्सांशं गायकेन्द्रम् मुनिवाहनमाश्रये ॥२१५॥

(अक्वरैच्चडियार) अक्वरैच्चडियार (इति) इस प्रकार के नामवाला (अनेन) माहात्मा (मध्याह्ने) मध्याह्न समय में (क्षुधा) भूख से (आर्तः) पीडित (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव यदि (आगतः) आ गया हो (चेत्) तो (यथा) जैसे (क्षुन्निवृत्तिम्) भूख की निवृति को (कारयित्वा) करवाकर (प्रसाद्यते) प्रसन्न करवाता है (तथा) वैसे ही (प्रकृतिः) माया (वाधते) बाधती है (इति) इस कारण से (कश्चन) कोई भी (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव यदि (आगतः) आया हो (चेत्) तो (तद्बाधाम्) उस प्रकृति की बाधा को (निवर्तयित्वा) दूर करवाकर (सः) वह आया हुआ श्रीवैष्णव

(प्रसादनीयः) प्रसन्न करने योग्य (न) नहीं (भवेत्) होगा (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (पृष्टः) पूछे हैं। इस दो सौ सत्तरवीं वार्ता में तीस पद हैं। इति अक्वरैच्चडियार्वार्ताव्याख्यानम् ॥२७०॥

अब श्रीकलिवैरिदास स्वामीजी महाराज की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीकलिवैरिदासः-ननु बहुकालं कृतेन तपसा जातः पुत्र उन्मत्तः गलोद्बन्धनार्थं रज्जुं देहि गलच्छेदनार्थ-मसिं देहीति याचते चेत्, तच्छरीरनाशभीत्या न दीयते तावान्न भवति किन्तु श्रीवैष्णवस्वरूपनाश इत्यवोचत्, श्रीवैष्णवस्य विषयप्रावण्यं दशधाविरोधि-स्वानर्थः, परानर्थः, भगवन्निग्रहः, भागवतनिग्रहः, आचार्य्यनिग्रहः, विरोधि-वर्द्धकम्, स्वरूपविरोधि, उपायविरोधि, उपेयविरोधि, देशा-न्तराभावः, देवतान्तरपरस्य कालान्तरेण वा भागवतत्व-योग्यतास्ति विषयपरस्य नरकातिरिक्तम् नास्ति, मुमुक्षो-र्विषयप्रावण्यं देवतान्तरभजनम् च तुल्यं ताम्बूलचन्दना-दिभि र्माराधनापेक्षया-अर्ककुसुमादिभिः रुद्राराधनस्य विशेषो नास्ति शौचापेक्षस्य स्नानवद्विषयप्रवणस्य भग-वत्परत्वम्, शवपरस्य शवो मृग्यस्तदलाभे धनमपि मृग्यं वैष्णवस्योभयमपि न मृग्यमपि तु सौरभमेव मृग्यं तच्च सौरभम् श्रीरङ्गनाथो वेङ्कटेशश्च विषयपरस्य भगवदनुभवे-ऽन्वयो नास्ति ॥

अर्थ–(श्रीकलिवैरिदासः) श्रीकलिवैरिदास स्वामीजी (ननु) निश्चय करके (बहुकालम्) बहुत समयतक (तपसा) तपस्या के (कृतेन) करने से (जातः) उत्पन्न

हुआ (उन्मत्तः) पगला (पुत्रः) पुत्र गलोद्बन्धनार्थम्) अपने गलेको बान्धने के लिये (रज्जुम्) रस्सी को (देहि) दो अथवा (गलच्छेदनार्थम्) गले को काटने के लिये (असिम्) तलवार को (देहि) दो (इति) इस प्रकार के यदि (याचते) याचना करता है (चेत्) तो (तच्छरीरनाशभीत्या) उस पुत्र के शरीर के नाश के भय से (न) नहीं रस्सी और तलवार को (दीयते) देता है। (तावान्) उतना ही (न) नहीं (भवति) होता है। (किन्तु) लेकिन (श्रीवैष्णवस्वरूपनाशः) श्रीवैष्णव का स्वरूपनाश होता है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (विषयप्रावण्यम्) विषय की प्रवणता (दशधा) दस प्रकार के (विरोधि) विरोधी होते हैं। उसी को दिखाते हैं कि (स्वानर्थः) अपना अनर्थ १, (परानर्थः) पर का अनर्थ २, (भगवन्निग्रहः) भगवान् का निग्रह ३, (भागवतनिग्रहः) भागवत का निग्रह ४, (आचार्य्यनिग्रहः) आचार्य का निग्रह ५, (विरोधिवर्द्धकम्) विरोधियों का बढ़ना ६, (स्वरूपविरोधि) स्वस्वरूप का विरोधी ७, (उपायविरोधि) साधन का विरोधी ८, (उपेयविरोधि) उपेय का विरोधी ९, (देशान्तराभावः) और देशान्तर का अभाव १०। ये दस प्रकार के विरोधी होते हैं। और (देवातान्तरपरस्य) श्रीमन्नारायण से अन्य देवता परक मनुष्य के (कालान्तरेण) कालान्तर से (भागवतत्वयोग्यता) भागवतत्वकी योग्यता (अस्ति) है। (वा) अथवा (विषयपरस्य) विषयपरक मनुष्य के (नरकातिरिक्तम्) नरक से अतिरिक्त (फलम्) फल (न) नहीं (अस्ति) है। (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुष के (विषयप्रावण्यम्) विषय की प्रवणता (च) और (देवतान्तरभजनम्) श्रीमन्नारायण से अन्य देवताओं का भजन (तुल्यम्) ये दोनों तुल्य हैं। (ताम्बूलचन्दनादिभिः) पान चन्दन और आदि शब्द से फूलमाला आदि से (माराधनापेक्षया) कामदेव की आराधना की अपेक्षा से (अर्ककुसुमादिभिः) एकवन के फूल तथा आदि शब्द से धतूर मन्दार आदि से (रुद्राराधनस्य) रुद्र की आराधना के (विशेषः) विशेष (न) नहीं (अस्ति) है। (शौचापेक्षस्य) शौच की अपेक्षा के (स्नानवत्) स्नान के समान (विषयप्रवणस्य) विषय में प्रवण पुरुष के (भगवत्परत्वम्) भगवान् का परत्व है। (शवपरस्य) शवपरक पुरुष के (शवः) शव (मृग्यः) ढूढ़ने योग्य है। अर्थात् स्त्रीपरक पुरुष के स्त्री खोजने योग्य है (तदलाभे) स्त्री के लाभ नहीं होने पर (धनम्) द्रव्य (अपि) भी (मृग्यम्) खोजने योग्य है। (वैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (उभयम्) स्त्री और धन ये दोनों (अपि) भी (न) नहीं (मृग्यम्) खोजने योग्य हैं। (अपि) लेकिन (तु) तो (सौरभम्) सौरभ (एव) ही निश्चय करके (मृग्यम्) खोजने योग्य हैं। (च) और (तत्) वह (सौरभम्) सौरभ (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरंगनाथ भगवान् (च) और वेङ्कटेशः) वेङ्कटेश भगवान् हैं। (विषयपरस्य) विषय में आसक्त मनुष्य के (भगवदनुभवे) भगवान् के अनुभव में

(अन्वयः) सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है ॥ शमिति ॥



मू०–विषयप्रावण्ये जाते भागवतापचारो भवति, तस्मिन् सत्याचार्य्याभिमानो नश्यति, तस्मिन्नष्टे सति दुर्गममार्गः क्रूरनरकश्च फलति, विषयप्रावण्ये नष्टे भागवतापचारो निवर्तते, तस्मिन्निवृते-आचार्य्याभिमानो जायते, तस्मिन् सति- अर्चिरादिमार्गः परमपदम् च फलम् भवति, मुमुक्षोर्देवतान्तरप्रावण्यमर्थप्रावण्यं विषयप्रावण्यम् च मोक्षविरोधी· तत्राद्ये सत्यपि कदाचिन्मोक्षयोग्यता भवेत्, चरमे सति कदापि योग्यता नास्ति ॥२७१॥

अर्थ-(विषयप्रावण्ये) विषय में प्रवणता (जाते) उत्पन्न होने पर (भागवतापचारः) भागवतापचार (भवति) होता है। (तस्मिन्) उस भागवतापचार के (सति) उत्पन्न होने पर (आचार्य्याभिमानः) आचार्याभिमान (नश्यति) नष्ट होता है। और (तस्मिन्) उस आचार्याभिमान के (नष्टे) नाश (सति) होने पर (दुर्गममार्गः) दुर्गममार्ग (च) और (क्रूरनरकः) क्रूरनरक (फलति) फलता है। (विषयप्रावण्ये) विषय की प्रवणता के (नष्टे) नाश होनेपर (भागवतापचारः) भागवतापचार (निवर्तते) निवृत्त हो जाता है। तथा (तस्मिन्) उस भागवतापचार के (निवृत्ते) निवृत होने पर (आचार्य्याभिमानः) आचार्याभिमान (जायते) उत्पन्न होता है। तथा (तस्मिन्) उस आचार्याभिमान के (सति) उत्पन्न होने पर (अर्चिरादिमार्गः) अर्चिरादिमार्ग (च) और (परमपदम्) परम पद (फलम्) फल (भवति) प्राप्त होता है। (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुष के (देवतान्तरप्रावण्यम्) श्रीमन्नारायण से अन्य देवताओं की प्रवणता तथा (अर्थप्रावण्यम्) अर्थ की प्रवणता (च) और (विषयप्रावण्यम्) विषय की प्रवणता (मोक्षविरोधी) मोक्ष के विरोधी हैं। (तत्र) उस पूर्वोक्त तीन विरोधियों में (आद्ये) पहला देवतान्तरप्रावण्य मोक्ष विरोधी के (सति) होने पर (अपि) भी (कदाचित्) कदाचित समय पाकर के (मोक्षयोग्यता) मोक्ष की योग्यता (भवेत्) हो जाय। लेकिन (चरमे) अन्तिम तीसरे विषय प्रावण्य मोक्ष विरोधी के (सति) होने पर (कदापि) कभी भी (योग्यता) मोक्ष की योग्यता (न) नहीं (अस्ति) है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि अर्चिरादि मार्ग का वर्णन किस प्रकार से लिखा हुआ है ? इस प्रश्न का उत्तर

देखिये लिखा हुआ है कि–

॥ अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासांस्तान्मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः ॥ छान्दोग्यो० प्रपा० ४, अध्या० ४, खं० १५, श्रु० ५ ॥ स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥६॥

जो शव्य को करता है वह अर्चिरादि मार्ग को नहीं प्राप्त करता है, ब्रह्मवेत्ता अर्चि को प्राप्त करता है, अर्चि से दिनको तथा दिन से आपूर्यमाण शुक्ल पक्ष को और आपूर्यमाण शुक्लपक्षसे छः महीने उत्तरायण को प्राप्त करता है तथा उत्तरायण से संवत्सर को और संवत्सर से सूर्य को तथा सूर्य से चन्द्र को और चन्द्रमासे बिजलीको इसके बाद विद्युत्पुरुष अमानवको प्राप्त कराता है ॥५॥ और वह अमानव पुरुष इस चेतनको ब्रह्म प्राप्त कराता है यही देवपथ या ब्रह्मपथ है। इस अर्चिरादि मार्ग से जानेवाले फिर से मृत्येलोक नहीं आते हैं ॥६॥ और वेदान्तदर्शन में भी लिखा है कि–**अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ॥ वेदा० अ० ४, पा० ३, सू० १ ॥** अर्चिरादि मार्ग के द्वारा उसकी प्रसिद्धि होने से ॥१॥ **वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ॥ वे० अ० ४, पा० ३, सू० ६ ॥** वैद्युत पुरुष के द्वारा ही ब्रह्म प्राप्त होता है, ऐसी श्रुति होने से ॥६॥ और भगवद्गीता में भी लिखा है कि **॥ अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥भगवद्गी० अ० ८, श्लो० २४ ॥** ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, और दिन का अभिमानी देवता है, तथा शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है, और उत्तरायण के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगिजन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गये हुए ब्रह्म को प्राप्त करते हैं ॥२४॥ ग्रन्थविस्तार के भय से यहाँ पर अधिक मैं नहीं लिखता हूँ जिसको अधिक जानना हो वह **"कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्"** **"अर्चिरादिः"** और **"प्रमेयशेखरः"** इत्यादि ग्रन्थ को देख ले। इस दो सौ ईकहत्तरवीं वार्ता में एक सौ चौवालीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२७१॥

अब तिरुवेलुंदूराल् नाम की एक स्त्री की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ तिरुवेलुंदूराल्गदिता वार्ता ॥

मू०–[१]तिरुवेलुंदूरालिति [२][३]काचन [४]नारी [५]सम्यग्वार्तां [६][७]श्रोतुं [८]चोलदिवाकरपादावाश्रिता, [९][१०]स [११]च [१२]तां [१३]प्रति [१४]प्रकृति-

मानिव[१५] काश्चन[१६] वार्ता[१७] अवदत्[१८], सा[१९] च[२०] तद्वार्ताः[२१] श्रुत्वा[२२] बाह्य-भीत्यान्तः[२३] प्रविष्टां[२४] मां[२५] शूलमारोपयसीत्यवदत्[२६], स[२७] च[२८] परीक्षामकरवमित्युक्त्वा[२९] रहस्यार्थानुपदिदेश[३०] ॥२७२॥[३१][३२][३३][३४][३५][३६][३७][३८]

॥ गोदादेवीस्तुतिः ॥

अर्थ- आषाढे पूर्वपक्षे च चतुर्थ्यां भौमवासरे।
मध्याह्ने पूर्वाफाल्गुन्यां तुलालग्ने शुभे दिने।
लक्ष्म्यंशाल्लोकरक्षार्थं गोदा भूम्यास्ततोऽजनि ॥२१६॥

(तिरुवेलुंदूराल्) तिरुवेलुंदूराल् (इति) इस प्रकार के नामवाली (काचन) किसी (नारी) स्त्री ने (सम्यक्) अच्छे प्रकार की (वार्ताम्) वार्ता को (श्रोतुम्) सुनने के लिये (चोलदिवाकरपादौ) चोलदिवाकर स्वामीजी के दोनों श्रीचरणों को (आश्रिता) आश्रयण किया। (च) और (सः) उस चोलदिवाकर स्वामीजी ने (ताम्) उस तिरुवेलुंदूराल् स्त्री के (प्रति) प्रति (प्रकृतिमान्) प्रकृतिवाले के (इव) समान (काश्चन) किसी (वार्ताः) वार्ता को (अवदत्) कहा है। (च) और (सा) वह तिरुवेलुंदूराल् स्त्री (तद्वार्ताः) उस चोलदिवाकर स्वामीजी की वार्ता को (श्रुत्वा) सुनकर (बाह्यभीत्या) बाहर के भय से (अन्तःप्रविष्टाम्) भीतर में बैठी हुई (माम्) मुझको (शूलम्) शूल (आरोपयसि) आरोपण करते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोली है। (च) और (सः) उस चोलदिवाकर स्वामीजी ने (परीक्षाम्) तेरी परीक्षा (अकरवम्) मैंने की है (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (रहस्यार्थान्) रहस्य अर्थों को (उपदिदेश) उपदेश किया है। इस दो सौ बहत्तरवीं वार्ता में अड़तीस पद हैं। इति तिरुवेलुंदूराल्गदितवार्ताव्याख्यानम् ॥२७२॥

अब कुरुकाधिनाथपतिजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कुरुकाधिनाथपत्युक्ता वार्ता ॥

मू०–विद्युद्भीतानामशनिसन्मुखेऽवस्थापनवत्[१] संसारभीतानां[२] देहवश्यताकरणं[३] वेषद्रष्टु[४] विषयप्रवणस्य[५] भगवद्विषयेऽन्वयो[६] नास्ति[७], भगवद्विषयेऽन्वितस्य[८] विषयान्तरेऽन्वयो[९] नास्तीति[१०], कुरुकाधिनाथपतिः[११] ॥२७३॥[१२][१३][१४][१५][१६][१७][१८][१९]

॥ शठरिपुस्तुतिः ॥

अर्थ—आदौ कलेर्हि कुरुकापुरि पाण्ड्यदेशे वैशाखमासि मघवानलभेंशजातम्।
सेनापतेः पदजकारिगृहेऽवतीर्णं श्रीशास्पदं शठरिपुं शरणं प्रपद्ये ॥२१७॥

(विद्युद्भीतानाम्) बिजली से डरे हुए के (अशनिसन्मुखे) अशनि के सामने में (अवस्थापनवत्) रखने के तुल्य (संसारभीतानाम्) संसार से डरे हुए जनों के (देहवश्यताकरणम्) शरीर को वश में करना है। (वेषद्रष्टुः) वेष को देखनेवाला (विषयप्रवणस्य) विषय में आसक्त मनुष्य का (भगवद्विषये) भगवान् के विषय में (अन्वयः) अन्वय (न) नहीं (अस्ति) होता है। और (भगवद्विषये) भगवान् के विषय में (अन्वितस्य) अन्वित मनुष्य का (विषयान्तरे) भगवद्विषय से अन्य विषय में (अन्वयः) सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार के (कुरुकाधिनाथपतिः) कुरुकाधिनाथपति स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ तिहत्तरवीं वार्ता में उन्नीस पद हैं। इति कुरुकाधिनाथपत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२७३॥

अब अम्मंगिआचार्य्य के प्रति परमाचार्य्यजी की वार्ता को कहते हैं कि—

॥ अथ परमाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०—अम्मङ्गि[१]आचार्य्यं प्रति[२] परमाचार्य्य[३]वार्ता त्वद्[४]बाल्य[५]मदृष्ट्वा भगवद्विषय[६७]मवोचं विभूतिः[८] कथं[९] भविष्यति[१०] न[११] जानीमः[१२] ॥२७४॥

॥ यतीन्द्रस्तुतिः ॥

अर्थ- विना यतीन्द्रपादाब्जान्नान्योपायो हि विद्यते।
तस्माद्यतीन्द्रपादाब्जं रक्षकं निखिलात्मनाम् ॥२१८॥

(अम्मङ्गिआचार्य्यम्) अम्मङ्गि आचार्य्य के (प्रति) परमाचार्य्यवार्ता परमाचार्यजीकी वार्ता है कि (त्वद्बाल्यम्) तेरी बाल्यावस्था को (अदृष्ट्वा) नहीं देखकर (भगवद्विषयम्) भगवद्विषय को (अवोचम्) मैंने कहा है (विभूतिः) विभूति (कथम्) कैसे (भविष्यति) होवेगी (न) इस बात को नहीं (जानीमः) हम सब जानते हैं ॥ **जानीमः** ॥ यहाँ पर ॥ **क्र्यादिभ्यः श्ना** ॥ **व्या० अ० ३, पा० १, सू० ८१** ॥ इस सूत्र से श्नाप्रत्यय तथा ॥ **ज्ञाजनो र्जा** ॥ **व्या० अ० ७, पा० ३, सू० ७९** ॥ इस सूत्र से जादेश और ॥ **ई हल्यघोः** ॥ **व्या० अ० ६, पा० ४, सू० ११३** ॥ इस सूत्र से ईकार हुआ है।

इस वार्ता में बारह पद हैं। इति परमाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।२७४।।

अब शोमाशियाण्डानाचार्य्यजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ शोमाशियाण्डानार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–देहमादृत्य सञ्चारमकुर्वन् स्वरूपमादृत्य सञ्चरेति शोमाशियाण्डान् ।।२७५।।

॥ परकालस्तुतिः ॥

अर्थ- कार्तिके कृत्तिकाजातं चतुष्कविशिखामणिम् ।
षट्प्रबन्धकृतं शार्ङ्गमूर्तिं कलिहरं श्रये ॥२१९॥

(देहम्) शरीर को (आदृत्य) आदरकर (सञ्चारम्) सञ्चार को (अकुर्वन्) नहीं करते हुए (स्वरूपम्) अपने स्वरूप को (आदृत्य) आदरकर (सञ्चर) सञ्चार करो (इति) इस प्रकार के (शोमाशियाण्डान्) शोमाशियाण्डान् स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में नौ पद हैं। इति शोमाशियाण्डानार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।२७५।।

अब फिर से शोमाशियाण्डान् स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ शोमाशियाण्डानार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीवैष्णवस्य विषयप्रावण्यम् स्वरूपमनुसन्दधतः स्वसत्तामनुसन्दधतः सम्बन्धमनुसन्दधतः शरीरमनुसन्दधतश्च न घटते-इत्यवोचत् ।।२७६।।

अर्थ-(श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (विषयप्रावण्यम्) विषय की प्रवणता (स्वरूपम्) स्वरूप को (अनुसन्दधतः) अनुसन्धान करने से तथा (स्वसत्ताम्) आत्मा की सत्ता को (अनुसन्दधतः) अनुसन्धान करने से तथा (सम्बन्धम्) सम्बन्ध को (अनुसन्दधतः) अनुसन्धान करने से (च) और (शरीरम्) भगवान् के शरीर को (अनुसन्दधतः) अनुसन्धान करने से (न) नहीं (घटते) होती है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) शामाशियाण्डान् स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ छिहत्तरवीं वार्ता में पन्द्रह पद हैं। इति शोमाशियाण्डानार्योक्तावार्ताव्याख्यानम् ।।२७६।।

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–अन्तर्यामी[१] सन्[२] सत्तामरक्षः[३], लयावसरे[४] करणान्यदाः[५], तैर्व्यभिचारमकर्तुमाचार्य्यमुखेनाज्ञापयः[६], रूपनामान्यदाः[७], विषयप्रावण्यपरनिन्दैकयात्रया[८] वाचा[९] द्वयोच्चारणमकारयः[१०], एवं त्वदाहितोऽतिशयः[११] सर्वोऽपि[१२] यथा किञ्चित्करो[१३] भवति तथा प्रकृतिरुन्मज्जति[१४] तथापि[१५] शरीरारम्भकम्[१६] कर्म[१७] दूरीकृत्याधिकारि[१८] सम्पदमापादितवान्[१९] इति[२०] कृष्णपादानुसन्धानम्[२१] ॥२७७॥

अर्थ–परमात्मा ने (अन्तर्यामी) अन्तर्यामी (सन्) होकर (सत्ताम्) जीवकी सत्ता को (अरक्षः) रक्षा किया है। तथा (करणानि) शरीर और इन्द्रियों को (लयावसरे) प्रलय के समय में (अदाः) दिया है। और (तैः) उन इन्द्रियों के द्वारा (व्यभिचारम्) व्यभिचार को (अकर्तुम्) नहीं करने के लिये (आचार्यमुखेन) आचार्य के मुख से (अज्ञापयः) ज्ञापन कराया है। तथा (रूपनामानि) रूप को और नाम को (अदाः) दिया है। और (विषयप्रावण्यपरनिन्दैकयात्रया) विषयासक्ति परक निन्दा से एक यात्रावाली (वाचा) वाणी से (द्वयोच्चारणम्) द्वयमन्त्र का उच्चारण (अकारयः) करवाया है। (एवम्) इस प्रकार से (त्वदाहितः) तेरे द्वारा धारण किया हुआ (अतिशयः) अतिशय (सर्वः) सब (अपि) भी (यथा) जैसे (किञ्चित्करः) कुछ भी करनेवाला (भवति) होता है (तथा) वैसे ही (प्रकृतिः) प्रकृति (उन्मज्जति) उन्मज्जित होती है। (तथापि) तौभी (शरीरारम्भकम्) देह को आरम्भ करनेवाले (कर्म) कर्म को (दूरीकृत्य) दूरकर (अधिकारिसंपदम्) अधिकारी पुरुष की संपत्ति को (आपादितवान्) प्राप्त किये हैं (इति) इस प्रकार के (कृष्णपादानुसंधानम्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी का अनुसंधान है। इस दो सौ सतहत्तरवीं वार्ता में सैंतीस पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२७७॥

❁

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–अन्तर्यामी सन् सत्तामरक्षः, अद्वेषप्रभृतीनात्मगुणानुत्पादितवान्, आचार्यचरणाभ्यां योजितवान्, संसारसम्बन्धम् दूरीकृतवान्, सर्वापराधम् क्षान्तवान्, अर्चिरादिमार्गं परमपदम् गुणानुभवम् च दत्वा यावदात्मभावि कैङ्कर्य्यं च स्वीकृतवान्, सर्वस्वामिना सर्वेश्वरेण त्वया कृत उपकारो वाचामगोचर इति कलिवैरिदासस्यानुसन्धानम् ॥२७८॥

अर्थ–(अन्तर्यामी) अन्तर्यामी (सन्) होते हुए (सत्ताम्) आत्मा की सत्ता को (अरक्षः) रक्षा किये हैं। और (अद्वेषप्रभृतीन्) अद्वेष आदि (आत्मगुणान्) आत्मा के गुणों को (उत्पादितवान्) उत्पन्न किये हैं। तथा (आचार्य्यचरणाभ्याम्) आचार्य के दोनों श्रीचरणों से (योजितवान्) संयोग कराये हैं। और (संसारसम्बन्धम्) संसार के सम्बन्ध को (दूरीकृतवान्) दूर कर दिये हैं। (सर्वापराधम्) सब अपराध को (क्षान्तवान्) सह लिये हैं। और (अर्चिरादिमार्गम्) अर्चिः आदि मार्ग को तथा (परमपदम्) परमपद को (च) और (गुणानुभवम्) गुणों के अनुभव को (दत्वा) देकर (यावत्) जब तक (आत्मभावि) आत्मा की सत्ता है तबतक (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्यको (च) भी (स्वीकृतवान्) स्वीकार किये हैं। और (सर्वस्वामिना) सबका स्वामी (सर्वेश्वरेण) सबका ईश्वर (त्वया) तुझसे (कृतः) किया हुआ (उपकारः) उपकार (वाचाम्) वाणी का (अगोचरः) विषय नहीं है। (इति) इस प्रकार का (कलिवैरिदासस्य) कलिवैरिदास स्वामीजी का अनुसन्धान है। इस दो सौ अठत्तरवीं वार्ता में तैंतीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२७८॥

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–अनन्यप्रयोजनविरहात् प्रीतेर्न विषयः, आर्तप्रपत्तिविरहात् कृपायाः पात्रं न भवामि, अप्रामादिकत्वात्

११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
क्षमायाः पात्रं न भवामि, उपकारक इति प्रीतोऽभवः,
१९ २० २१२२ २३ २४ २५२६
अनन्य इति कृपामकरोः, अवर्जनीय इति क्षमामकरोः,
२७ २८
इति कृष्णपादः ॥२७९॥

अर्थ–(अनन्यप्रयोजनविरहात्) अनन्य प्रयोजन के विरह से (प्रीतेः) प्रीतिका (विषयः) विषय (न) नहीं मैं हूँ। और (आर्तप्रपत्तिविरहात्) आर्त प्रपत्ति के विरह से (कृपायाः) कृपा का (पात्रम्) पात्र (न) नहीं (भवामि) मैं होता हूँ। (अप्रामादिकत्वात्) प्रामादिक नहीं होने से (क्षमायाः) क्षमा का (पात्रम्) पात्र (न) नहीं (भवामि) मैं होता हूँ। (उपकारकः) उपकार करनेवाले तुम (इति) इस प्रकार के (प्रीतः) प्रसन्न (अभवः) हुए हो। (अनन्यः) अनन्य तुम (इति) इस प्रकार की (कृपाम्) दया को (अकरोः) किये हो। (अवर्जनीयः) नहीं वर्जने योग्य तुम (इति) इस प्रकार की (क्षमाम्) क्षमा को (अकरोः) किये हो। (इति) इस प्रकार से (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ उन्यासिवीं वार्ता में अट्ठाईस पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२७९॥

अब भट्टारक स्वामीजी के प्रति गोविन्दाचार्य स्वामीजी की कही हुई वार्ता है कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्योक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४
मू०–श्रीवैष्णवैः प्रशंस्यमानः श्रीवैष्णवः-आचार्य-
५ ६ ७ ८ ९ १०
वैभवप्रकारोऽयं स्वामिभिः क्रियमाणस्यानुयोगो नास्ति,
११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
एतैः प्रियमाणत्वात् एतैरुक्ता आकारा भवेयुरित्यनुसन्द-
१९ २० २१ २२ २३ २४
धतः-अस्याधिकारिणः संसारिभिः परिभवे क्रियमाणे चतु-
२५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१
र्धानुसन्धानमावश्यकम्, तच्च दासस्य जातः परिभवः
३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९
स्वामिनः खल्विति तदुपर्यारोप्य दान्तो भवेत्, एतत्कृतः
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६
परिभवो देहस्पर्श्युतात्मस्पर्शीति विविच्यात्माज्ञानस्वरूपत्वा-
४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२
देतत्परिभवोक्तेर्न विषयः, अतो देहपरिभवविषयः-अस्य
५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६०
सर्वाशुचिपात्रत्वादस्य सर्वेऽपि दोषा अनेनवक्तुमशक्त्या

६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८
इत्यतिप्रीतो भवेत्, अस्मिन्देहे वासनयोपादेयबुद्धिं
६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५
कुर्वाणा वयमेतस्य हेयतामस्य परिभवोक्त्या स्मारिता
७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१
इति तद्विषय उपकारस्मृतिं कुर्वीत कस्यचिद्वैष्णवस्य
८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९
प्रकृतिं निन्दति चेदेतद्विषय ईश्वरोऽनर्थं चिन्तयेदिति
९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००
कृपां कृत्वा यथास्यानर्थो न भवेत्तथेश्वरं शरणं गच्छेत् ॥

अर्थ–(श्रीवैष्णवैः) श्रीवैष्णवों से (प्रशंस्यमानः) प्रशंस्यमान (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (आचार्यवैभवप्रकारः) आचार्य के वैभव प्रकार (अयम्) यह (स्वामिभिः) स्वामियों से (क्रियमाणस्य) क्रियमाण के (अनुयोगः) अनुयोग (न) नहीं (अस्ति) है। (एतैः) इन सबों से (प्रीयमाणत्वात्) प्रीयमाण होने से (एतैः) इन सबों से (उक्ताः) कहे हुए (आकाराः) आकार (भवेयुः) होंगे (इति) इस प्रकार के (अनुसन्दधतः) अनुसन्धान करते हुए (अस्य) इस (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (संसारिभिः) संसारी जीवों से (परिभवे) अनादर (क्रियमाणे) करनेपर (चतुर्धा) चार प्रकार के (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना (आवश्यकम्) आश्यक है। (च) और (तत्) वह अनुसन्धान (दासस्य) सेवक का (जातः) भया हुआ (परिभवः) अनादर (खलु) निश्चय करके (स्वामिनः) स्वामीका है (इति) इस प्रकार के (तदुपरि) स्वामी के ऊपर (आरोप्य) आरोपण कर (दान्तः) दान्त (भवेत्) हो जावे। (एतत्कृतः) इससे किया हुआ (परिभवः) अनादर (देहस्पर्शी) शरीर को स्पर्श करनेवाला है (उत) या (आत्मस्पर्शी) आत्मा को स्पर्श करनेवाला है (इति) इस प्रकार के (विविच्य) विचारकर (आत्माज्ञानस्वरूपत्वात्) आत्मा के अज्ञान के स्वरूप होने से (एतत्) यह (परिभवोक्तेः) अनादर की उक्ति होने से (विषयः) विषय (न) नहीं है। (अतः) इस कारण से (देहपरिभवविषयः) देह के अनादर का विषय है। (अस्य) इस शरीर के (सर्वाशुचिपात्रत्वात्) सब अशुचि के पात्र होने से (अस्य) इसका (सर्वे) सब (दोषाः) दोष (अपि) भी (अनेन) इस करिके (वक्तुम्) कहने के लिये (अशक्याः) असमर्थ हैं (इति) इस प्रकार के (अतिप्रीतः) अत्यन्त प्रसन्न (भवेत्) हो जाय। (अस्मिन्) इस (देहे) देह में (वासनया) वासना से (उपादेयबुद्धिम्) उपादेय बुद्धि को (कुर्वाणाः) करते हुए (वयम्) हम सब (एतस्य) इसकी (हेयताम्) हेयता को (अस्य) इसके (परिभवोक्त्या) अनादर की उक्ति से (स्मारिताः) स्मरण कराये गये हैं (इति) इस प्रकार के (तद्विषये) उसके विषय में (उपकारस्मृतिम्) उपकार की स्मृति को (कुर्वीत) करे। (कस्यचित्) किसी भी (वैष्णवस्य) वैष्णव के यदि (प्रकृतिम्) स्वभाव की (निन्दति) निन्दा करता है (चेत्) तो (एतद्विषये) इसके

विषय में (ईश्वरः) परमेश्वर (अनर्थम्) अनर्थ को (चिन्तयेत्) चिन्तन करेंगे (इति) इस प्रकार की (कृपाम्) कृपा को (कृत्वा) करके (यथा) जैसे (अस्य) इस जनका (अनर्थः) अनर्थ (न) नहीं (भवेत्) होवे (तथा) वैसे (ईश्वरम्) परमेश्वर की (शरणम्) शरण को (गच्छेत्) प्राप्त करें ॥ शमिति ॥



मू०–वैष्णवेन[१] परिभवे[२] क्रियमाणेऽयं[३] कण्ठादुपरि[४] अङ्गीकारमकृत्वा[५] सहृदयमङ्गीकृत्य[६] शिक्षास्वरूपोक्ति-[७] र्वदति[८], अनेनैतद्दासभूतम्[९] स्वरूपमुज्जीवितमिति[१०] कृतार्थो[११] भवेत्[१२], श्रीवैष्णवेन[१३] स्तोत्रे[१४] क्रियमाणे[१५] विद्यमानानेवास्मद्गुणा-[१६] नयं[१७] वदतीति[१८] न प्रहृष्येत्[१९], असतो[२०] गुणानारोपयतीति[२१] न क्रुध्येत्[२२], क्रोधविषयस्य[२३] मम[२४] प्रीत्या[२५] निर्हेतुकम्[२६] प्रसन्नत्वा[२७] देतदुक्ता[२८] गुणाः[२९] पूर्वमसन्तोऽपि[३०] इतः[३१] परमेतत्प्रसादेन[३२] भवेयुरिति[३३] विश्वसेत्[३४], संसारिणा[३५] स्तोत्रे[३६] क्रियमाणे[३७] दास-[३८] विषयस्य[३९] स्तोत्रस्य[४०] नाथः[४१] खलु[४२] प्रसन्नो[४३] भवेदिति[४४] नैच्य-[४५] मनुसन्धाय[४६] शान्तो[४७] भवेत्[४८], एतत्कृता[४९] स्तुति[५०] र्देहस्पर्शिनी[५१] चेदेते[५२] गुणा[५३] देहस्य[५४] न[५५] सन्ति[५६] स्ववासनया[५७] भ्रान्तः[५८], एते[५९] गुणा[६०] आत्मस्पर्शिन[६१] इति[६२] तिष्ठेत्[६३], भट्टार्य्यं[६४] प्रति[६५] गोविन्दाचार्योक्ता[६६] वार्ता[६७] ॥२८०॥

अर्थ–(वैष्णवेन) श्रीवैष्णव से (परिभवे) अनादर (क्रियमाणे) करनेपर (अयम्) यह (कण्ठात्) कण्ठ स्थान से (उपरि) ऊपर में (अङ्गीकारम्) अङ्गीकार को (अकृत्वा) नहीं करके (सहृदयम्) हृदय के सहित (अङ्गीकृत्य) अङ्गीकार कर (शिक्षास्वरूपोक्तिः) शिक्षा के स्वरूप की उक्ति (वदति) कहती है। (अनेन) इस करके (एतद्दासभूतम्) इसका दासभूत (स्वरूपम्) आत्मा का स्वरूप (उज्जीवितम्) उज्जीवित होता है (इति) इस प्रकार से (कृतार्थः) कृतार्थ (भवेत्) हो जायेगा। (श्रीवैष्णवेन) श्रीवैष्णव से (स्तोत्रे) स्तोत्र (क्रियमाणे) करने पर (विद्यमानान्) विद्यमान (एव) निश्चय करके (अस्मद्गुणान्) हमारे गुणों को (अयम्) यह (वदति)

कहता है (इति) इस प्रकार के (न) नहीं (प्रहृष्येत्) प्रसन्न होवे। और (असतः) नहीं रहनेवाले (गुणान्) गुणों को (आरोपयति) आरोपण करता है (इति) इस प्रकार के (न) नहीं (क्रुध्येत्) क्रोध करे। (क्रोधविषयस्य) क्रोध के विषय से (मम) मेरी (प्रीत्या) प्रीति से (निर्हेतुक) बिना हेतु के (प्रसन्नत्वात्) प्रसन्न होने से (एतदुक्ताः) इससे कहे हुए (गुणाः) गुण सब (पूर्वम्) पहले (असन्तः) नहीं रहते हुए (अपि) भी (इतः) इसके (परम्) बाद (एतत्प्रसादेन) इनके प्रसाद से (भवेयुः) हो जायेंगे। (इति) इस प्रकार के (विश्वसेत्) विश्वास करे। (संसारिणा) संसारी जीव करके (स्तोत्रे) स्तोत्र (क्रियमाणे) करने पर (दासविषयस्य) सेवक के विषय के (स्तोत्रस्य) स्तोत्र का (नाथः) स्वामी (खलु) निश्चय करके (प्रसन्नः) प्रसन्न (भवेत्) हो जायेंगे (इति) इस प्रकार के (नैच्यम्) नीचता को (अनुसन्धाय) अनुसन्धान कर (शान्तः) शान्त (भवेत्) हो जाय। (एतत्कृता) इससे की हुई (स्तुतिः) स्तुति (देहस्पर्शिनी) देह को स्पर्श करनेवाली यदि (चेत्) हो तो (एते) ये सब (गुणाः) गुण (देहस्य) देह के (न) नहीं (सन्ति) हैं। (स्ववासनया) अपनी वासना से (भ्रान्तः) भ्रान्त पुरुष (एते) ये सब (गुणाः) गुण (आत्मस्पर्शिनः) आत्मा को स्पर्श करनेवाले हैं, (इति) इस प्रकार के (तिष्ठेत्) ठहरे। (भट्टार्यम्) भट्टारक स्वामीजी के (प्रति) प्रति (गोविन्दाचार्य्योक्ता) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की कही हुई (वार्ता) वार्ता है। इस दो सौ अस्सी की वार्ता में एक सौ छियासी पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८०॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी के और भट्टारक स्वामीजी के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्य्यभट्टारकोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
मू०–भवान् कदापि देहसम्बन्धं प्रति न क्लिश्यति,
७ ८ ९ १० ११ १२ १३
तत्र कारणं भगवति दाढ्र्यानुसन्धानं वा स्वस्मिन्नुत
१४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
दाढ्र्यानुसन्धानमिति गोविन्दार्य्योऽपृच्छत्, ममोभयमपि
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धो देहानुबन्धिव्यापारप्रयुक्त एवेति
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७
भट्टार्य्योऽवदत्, तच्छ्रुत्वा गोविन्दार्य्यः कृतार्थो भूत्वा त्वयैवं
३८ ३९ ४० ४१
न वक्तव्यं कूरेशोदरसम्बन्धेन-अन्तरङ्गार्थपर्यालोचनोप-
४२ ४३
योग्याकारवान् भाष्यकारापादितज्ञानवान् तत्कृपाप्रयुक्ता-

स्मत्सम्बन्धवान् भवान् एवं कथं वदति, एतयोरेकत्र दार्ढ्यं वदेति सम्यगपृच्छत्, भट्टार्य्यः मत्स्वरूपस्य दार्ढ्यं स्वत्वमेव अन्यदस्य चेतनस्य दार्ढ्यं यदि तदा परमचेतनस्य दार्ढ्यमेव न स्यात्, अतस्तच्चिन्तनप्रयुक्तानन्दानुभवजनितदार्ढ्यमेव स्यादित्यवदत्, गोविन्दार्य्यश्च तच्छ्रुत्वा सम्यगावेदितं विषयस्पर्शजनितानन्दापेक्षया तद्विषयानन्दादरातिशयोऽपेक्षितः, अतः शरीरसम्बन्धानुसन्धानेन क्लिश्यतु भवानित्यवदत्, भट्टार्य्यश्च क्लेशहेतुं प्रकृतिमनुसन्धाय शोचितुमारेभे गोविन्दार्य्यश्च-उक्तिः फलितेति पिप्रिये ॥२८१॥

अर्थ–(भवान्) आप (कदापि) कभी भी (देहसम्बन्धम्) देह के सम्बन्ध के (प्रति) प्रति (न) नहीं (क्लिश्यति) क्लेश करते हैं (तत्र) उसमें (कारणम्) कारण (भगवति) श्रीमन्नारायण भगवान् में (दार्ढ्यानुसन्धानम्) दार्ढ्यानुसन्धान करना है (वा) अथवा (स्वस्मिन्) अपनी आत्मा में (उत) युक्ति से (दार्ढ्यानुसन्धानम्) दार्ढ्यानुसन्धान करना है (इति) इस प्रकार से (गोविन्दार्य्यः) गोविन्दाचार्य स्वामीजी ने (अपृच्छत्) भट्टारक स्वामीजी से पूछा है। (मम) मेरा (उभयम्) दोनों (अपि) भी (न) नहीं (अस्ति) है। अर्थात् न तो मेरा भगवान् में ही दार्ढ्यानुसन्धान है। न तो अपनी आत्मा में ही दार्ढ्यानुसन्धान मेरा है। क्योंकि (सर्वः) सब (अपि) भी (सम्बन्धः) सम्बन्ध (देहानुबन्धिव्यापारप्रयुक्तः) देह के अनुबन्धी व्यापार करके प्रयुक्त है (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकार के (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी (अवदत्) गोविन्दाचार्य स्वामीजी से बोले। (तत्) भट्टारक स्वामीजी की उस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (गोविन्दाचार्य्यः) गोविन्दाचार्य स्वामीजी (कृतार्थः) कृतार्थ (भूत्वा) होकर (त्वया) तुमको (एवम्) इस प्रकार के (न) नहीं (वक्तव्यम्) कहने योग्य है (कूरेशोदरसम्बन्धेन) कूरेश स्वामीजी के पुत्र होने से (अन्तरङ्गार्थपर्यालोचनोपयोग्याकारवान्) अन्तरङ्ग अर्थ के उपयोगी पर्यालोचन करने योग्य आकारवाले तुम हो तथा (भाष्यकारापादितज्ञानवान्) श्रीभाष्यकार से आपादित ज्ञानवाले तुम हो और (तत्कृपाप्रयुक्तास्मत्सम्बन्धवान्) उस श्रीभाष्यकार की कृपा से प्रयुक्त मेरे सम्बन्धवाले तुम हो तो (एवम्) इस प्रकार के (कथम्) कैसे (वदति)

कहते हो (एतयोः) पूर्वोक्त दोनों में (एकत्र) एक में (दार्ढ्यम्) दार्ढ्य को (वद) तुम कहो (इति) इस प्रकार के (सम्यक्) अच्छी तरह (अपृच्छत्) भट्टारक स्वामीजी से पूछे हैं। तब (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी (मत्स्वरूपस्य) मेरे स्वरूप के (दार्ढ्यम्) दार्ढ्य (स्वत्वम्) स्वत्व (एव) निश्चय करके है। (अन्यत्) दूसरा (अस्य) इस (चेतनस्य) चेतन का (दार्ढ्यम्) दार्ढ्य (यदि) यदि हो (तदा) तब (परमचेतनस्य) पुरुषोत्तम भगवान् के (दार्ढ्यम्) दार्ढ्य (एव) निश्चय करके (न) नहीं (स्यात्) होवेगा। (अतः) इस कारण से (तच्चिन्तनप्रयुक्तानन्दानुभवजनितदार्ढ्यम्) उस श्रीमन्नारायण भगवान् के स्मरण से प्रयुक्त आनन्द के अनुभव से उत्पन्न दार्ढ्य (एव) निश्चय करके (स्यात्) होवेगा (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। (च) और (गोविन्दाचार्य्यः) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी (तत्) उस भट्टारक स्वामीजी की कही हुई बात को (श्रुत्वा) सुनकर (सम्यक्) अच्छी तरह के (आवेदितम्) आवेदन किये हैं। (विषयस्पर्शजनितानन्दापेक्षया) विषय के स्पर्श से उत्पन्न हुआ जो आनन्द उसकी अपेक्षा से (तद्विषयानन्दादरातिशयः) भगवद्विषय के आनन्द के आदर के अतिशय (अपेक्षितः) अपेक्षित है। (अतः) इस कारण से (शरीरसम्बन्धानुसन्धानेन) देह के सम्बन्ध अनुसन्धान करने से (क्लिश्यतु) क्लेश को कीजिये (भवान्) आप (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले। (च) और (भट्टार्य्यः) पराशर भट्टाचार्य्य स्वामीजी ने (क्लेशहेतुम्) क्लेश के कारण (प्रकृतिम्) प्रकृति को (अनुसन्धाय) अनुसन्धानकर (शोचितुम्) शोच करने के लिये (आरेभे) प्रारम्भ किया। (च) और (गोविन्दार्य्यः) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी (उक्तिः) मेरी वाणी (फलिता) फलीभूत हुई (इति) इस प्रकार के (पिप्रिये) अनुसन्धानकर अत्यन्त संतुष्ट हो गये। इस दो सौ ईकासिवीं वार्ता में एक सौ चार पद हैं। इति गोविन्दार्य्यभट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८१॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अज्ञस्य[१] गुणः[२] ज्ञानिनो[३] गुणहानिश्च[४] न[५] विश्वस-[६]नीयौ[७] कस्याश्चिन्मूलिकायाः[८] स्पर्शेन[९]-अयः[१०] स्वर्णं[११] भवति[१२] भगवत्स्पर्शे[१३] सति[१४] संसारो[१५] निवर्तत[१६] इति[१७] कैमुत्यसिद्धं[१८] द्वार-[१९]शेषिविषये[२०] विनीतः[२१] प्रधानशेषिविषयेऽविनीतः[२२] फलं[२३] न[२४] प्राप[२५], कस्यचिदधिकारिणः[२६] पारतन्त्र्यं[२७] व्यवसायो[२८] वृत्तिश्चापे-[२९]

३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८
क्षिताः, पौरुष्यमारोप्य पारतन्त्र्यमनाशयत्, व्यापार-
३९ ४० ४१ ४२ ४३
मारोप्य व्यवसायमनाशयत्, विषयान्तरानुवृत्त्या वृत्ति-
४४ ४५ ४६ ४७
मनाशयत्, आत्मसाक्षात्कारज्ञानानुत्पत्त्या देहाभिमानो न
४८ ४९ ५० ५१
नश्यति भगवत्साक्षाकारज्ञानानुत्पत्त्या स्वस्वातन्त्र्यं न
५२ ५३ ५४
निवर्तते भगवद्भोग्यताविषयसाक्षात्कारानुत्पत्त्या विषयप्रावण्यं
५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२
न निवर्तते स्वामी स्वं पुरस्करोति स्वं विनियोगं पुरस्करोति
६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९
विनियोगः प्रीतिं प्रीतिरुपायं परस्वरूपं पुरस्कृत्य स्थितः
७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६
स्वस्वरूपं न जानाति स्वस्वरूपं पुरस्कृत्य स्थितौ जीवनं
७७ ७८
न जानाति ॥२८२॥

॥ गोविन्दाचार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- संन्यासं देहि देहीति प्रार्थयामास भूरिशः ।
प्रार्थितस्तेन बहुधा गोविन्देन यतीश्वरः ॥२२०॥

(अज्ञस्य) अज्ञानी पुरुष के (गुणः) गुण (च) और (ज्ञानिनः) ज्ञानी पुरुष के (गुणहानिः) गुण की हानि (न) नहीं (विश्वसनीयौ) विश्वास करने योग्य है। (कस्याश्चित्) किसी भी (मूलिकायाः) मूलिकाके (स्पर्शेन) स्पर्शसे (अयः) लोहा (स्वर्णम्) सोना (भवति) होता है तो (भगवत्स्पर्शे) भगवान् के स्पर्श (सति) होने पर (संसारः) संसार (निवर्तते) निवृत्त होता है (इति) इस प्रकार से (कैमुत्यसिद्धम्) कैमुत्य न्याय से सिद्ध है। (द्वारशेषिविषये) द्वारशेषी के विषय में (विनीतः) अत्यन्त नम्र और (प्रधानशेषिविषये) प्रधानशेषीके विषयमें (अविनीतः) नम्रता रहित पुरुष ने (फलम्) फल को (न) नहीं (प्राप) प्राप्त किया है। (कस्यचित्) किसी भी (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष की (पारतन्त्र्यम्) परतन्त्रता तथा (व्यवसायः) व्यवसाय (च) और (वृत्तिः) वृत्ति (अपेक्षिताः) अपेक्षित हैं। (पौरुष्यम्) पौरुष्य को (आरोप्य) आरोपण कर (पारतन्त्र्यम्) परतन्त्रता को (अनाशयत्) नाश करवा दिया है। तथा (व्यापारम्) व्यापार को (आरोप्य) आरोपण कर (व्यवसायम्) व्यवसाय को (अनाशयत्) नाश करवा दिया है। (विषयान्तरानुवृत्त्या) विषयान्तरों की अनुवृत्ति से (वृत्तिम्) वृत्ति को (अनाशयत्) नाश करवा दिया है। (आत्मसाक्षात्कारज्ञानानुत्पत्या) आत्मा के साक्षात्कार ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होने से

(देहाभिमान:) देह का अभिमान (न) नहीं (नश्यति) नष्ट होता है। (भगवत्साक्षात्कारज्ञानानुत्पत्त्या) भगवान् के साक्षात्कार ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होने से (स्वस्वातन्त्र्यम्) अपनी स्वतन्त्रता (न) नहीं (निवर्तते) निवृत्त होती है। और (भगवद्भोग्यताविषयसाक्षात्कारानुत्पत्त्या) भगवद्भोग्यता विषय के साक्षात्कार की उत्पत्ति नहीं होने से (विषयप्रावण्यम्) विषय की प्रवणता (न) नहीं (निवर्तते) निवृत्त होती है। (स्वामी) श्रीमन्नारायण भगवान् (स्वम्) आत्मा को (पुरस्करोति) पुरस्कार करते हैं। (स्वम्) आत्मा (विनियोगम्) विनियोग को (पुरस्करोति) पुरस्कार करती है। (विनियोग:) विनियोग (प्रीतिम्) प्रीति को पुरस्कार करता है। और (प्रीति:) प्रीति (उपायम्) उपाय को पुरस्कार करती है। (परस्वरूपम्) परस्वरूप को (पुरस्कृत्य) पुरस्कार कर (स्थित:) ठहरा हुआ (स्वस्वरूपम्) स्वस्वरूप को (न) नहीं (जानाति) जानता है। और (स्वस्वरूपम्) स्वस्वरूप को (पुरस्कृत्य) पुरस्कार कर (स्थित:) ठहरा हुआ पुरुष (जीवनम्) जीवन को (न) नहीं (जानाति) जानता है। इस दो सौ बयासिवीं वार्ता में अठहत्तर पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८२॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–भाष्यकार: श्रीकृष्णपुरं गच्छन् अमङ्गि आचार्य्यं गत्वा आगच्छामीत्यवदत्, स च भाष्यकारं प्रति-अग्नि-ज्वालां मा स्पृश, क्रूरविषं मा भुङ्क्ष्व, अशुचिपादेन मा स्पृश, अबलाभि: सङ्गतिं मा कुरु, आस्तिकै: सङ्गम्य गच्छेत्य-वदत्, एतद्व्याख्या भाष्यकारोक्ता ॥२८३॥

॥ श्रीलक्ष्मणार्यस्तुति: ॥

अर्थ- कूराधिपायाथ स दापयित्वा श्रीलक्ष्मणार्यो वरदेन नेत्रे।
अवाप्तकाम: पुनरेव रङ्गं विवेश विख्यातयशा: कृतार्थ: ॥२२१॥

(भाष्यकार:) श्रीभाष्यकार स्वामीजी ने (श्रीकृष्णपुरम्) श्रीकृष्णपुर में (गच्छन्) जाते हुए (अमङ्गिआचार्य्यम्) अमङ्गि आचार्य के यहाँ (गत्वा) जाकर (आगच्छामि) मैं आता हूँ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। (च) और (स:) वह अमङ्गि

आचार्य (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार के (प्रति) प्रति (अग्निज्वालाम्) आग की ज्वाला को (मा) मत (स्पृशः) स्पर्श करो, (क्रूरविषम्) क्रूर विष को (मा) मत (भुङ्क्ष्व) भोजन करो, (अशुचिपादेन) अपवित्र पैर से (मा) मत (स्पृश) स्पर्श करो (अबलाभिः) स्त्रियों के साथ (सङ्गतिम्) सङ्गति (मा) मत (कुरु) करो, (आस्तिकैः) आस्तिक पुरुषों के साथ (सङ्गम्य) सङ्गम करके (गच्छ) चले जाओ, (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं (एतद्व्याख्या) यह व्याख्या (भाष्यकारोक्ता) श्रीभाष्यकार स्वामीजी की कही हुई है। इस दो सौ तिरासिंवीं वार्ता में बत्तीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८३॥



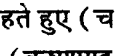
अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–अग्निज्वाला[१] विरोधिनः[२] सर्पाग्निवत्[३] ते[४] च[५] वाह्य-कुदृष्टयः[६], क्रूरविषं[७] प्रच्छन्नविरोधिनः[८] लिकुचफलकर्पूरवत्[९] ते[१०] च[११] रूपनामधारिणः[१२]-अन्तः[१३] प्रविश्य[१४] भिन्नप्रकृतयः[१५] स्थिता[१६] अशुचिरिति[१७] विरोधिनः[१८], ते[१९] च[२०] काष्ठलोष्ठादिसदृशाः[२१], ते[२२] च[२३] शरीरैकतत्पराः[२४] संसारिणः[२५], अबलेति[२६] अनुकूलाः[२७] कन्यकावत्[२८], ते[२९] च[३०] त्याज्योपादेयानभिज्ञाः[३१]-आस्तिका[३२] इत्यनुभोक्तारः[३३], कामिनीवत्[३४], ते[३५] च[३६] पूर्णाधिकारिणः[३७] शङ्कमानाः[३८] श्रीकोशत-स्कराः[३९] भित्तावन्तर्धाय[४०] शृण्वन्तो[४१] मुधा[४२] नेत्राश्रूणि[४३] मोचन्तः-उचितमुचितमिति[४४] वदन्तश्च[४५] नोपादेयाः[४६], इति[४७] कृष्ण-पादः[४८] ॥२८४॥

अर्थ–(अग्निज्वालाः) आगकी ज्वाला (विरोधिनः) विरोधी हैं (सर्पाग्निवत्) साँप तथा आग के समान (च) और (ते) वे विरोधी सब (बाह्यकुदृष्टयः) बाहर की बुरी दृष्टियाँ हैं। (क्रूरविषम्) क्रूर विष (प्रच्छन्नविरोधिनः) प्रच्छन्न विरोधी हैं (लिकुचफलकर्पूरवत्) नीबू के फल और कर्पूर के समान (च) और (ते) वे विरोधी प्रच्छन्न (रूपनामधारिणः) रूप तथा नाम को धारण करनेवाले (अन्तः) भीतर में

(प्रविश्य) पैठकर (भिन्नप्रकृतयः) भिन्न प्रकृतिवाले (स्थिताः) स्थित हैं। (अशुचिः) अपवित्र (इति) इस प्रकार के (विरोधिनः) विरोधी सब हैं (च) और (ते) वे विरोधी सब (काष्ठलोष्ठादिसदृशाः) काठ तथा ढेले आदिके समान हैं (च) और (ते) वे काठ ढेले आदिके समान विरोधी सब (शरीरैकतत्पराः) केवल अपने शरीर में तत्पर (संसारिणः) संसारी जीव हैं। (अबला) अबला (इति) इस प्रकार के (अनुकूलाः) अनुकूल सब हैं (कन्यकावत्) कन्यका के समान हैं (च) और (ते) वे अनुकूल सब (त्याज्योपादेयानभिज्ञाः) त्याज्य तथा उपादेय के अनभिज्ञ हैं। (आस्तिकाः) आस्तिक (इति) इस प्रकार के (अनुभोक्तारः) अनुभोक्ता सब हैं (कामिनीवत्) तथा कामिनी के समान हैं (च) और (ते) वे अनुभोक्ता सब (पूर्णाधिकारिणः) पूर्ण अधिकार वाले (शङ्कमानाः) शङ्का करते हुए (श्रीकोशतस्कराः) श्रीकोशके चोर सब (भित्तौ) भीत में (अन्तर्धाय) छिपकर (शृण्वन्तः) सुनते हुए (मुधा) व्यर्थ (नेत्राश्रूणि) आँख से आँसुओं को (मोचन्तः) गिराते हुए (उचितम्) उचित है (उचितम्) उचित है (इति) इस प्रकार के (वदन्तः) कहते हुए (च) भी (न) नहीं (उपादेयाः) ग्रहण करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार के (कृष्णपादः) कृष्णपादस्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ चौरासिवीं वार्ता में सन्तावन पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८४॥



अब कृष्णपादस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

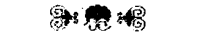
॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–मुमुक्षोः प्रपन्नस्य पञ्चकोटयस्त्याज्याः, तिस्रः कोटयः उपादेयाः, तत्कथमिति चेत् पतिव्रतायाः स्त्रियो यथा पञ्च कोटयस्त्याज्याः, तिस्रः कोटयः-उपादेयाः-तस्याः त्याज्याः-कन्यका, वेश्या, वेश्यापरतन्त्राः, कस्यचिद्धस्तं दत्वा-अन्यत्र गताः, अन्तः स्थित्वा मोहयन्त्यः, उपादेयाः-माता-पितरौ भर्तुरवर्जनीयाः बान्धवाः स्वसदृशाः पतिव्रताः-अस्य त्याज्याः संसारिणः देवतान्तराणि देवतान्तरपरतन्त्राः दर्शने प्रविश्य दर्शनान्तरे प्रवृत्ताः रूपनामानि धृत्वा-अन्तः प्र-विश्य-अनन्यप्रयोजनवत् स्वात्मानमभिनयन्तः-उपादेयाः-

५९ ६० ६१ ६२ ६३
आचार्य्याः श्रीवैष्णवाः सब्रह्मचारिणः केनचिच्छ्रीवैष्णवेन
६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९
सह वासकरणसमये तस्य गुणदोषौ निरूपणीयौ, तन्निरूपणं
७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८
च स्तोतुं निन्दितुं च न भवति, किन्तु उपादातुं हातुं
७९८० ८१
चेति कृष्णपादः ॥ २८५ ॥

अर्थ- (मुमुक्षोः) मोक्षकी इच्छा करनेवाले (प्रपन्नस्य) प्रपन्नजनके (पञ्च) पाँच (कोटयः) कोटि (त्याज्याः) त्याग करने योग्य हैं। तथा (तिस्रः) तीन (कोटयः) कोटि (उपादेयाः) ग्रहण करने योग्य हैं। (तत्) वह (कथम्) कैसे हैं (इति) इस प्रकारके यदि कहो (चेत्) तो सुनो (पतिव्रतायाः) पतिव्रता (स्त्रियः) स्त्रीके (यथा) जैसे (पञ्च) पाँच (कोटयः) कोटि (त्याज्याः) त्याग करने योग्य हैं। और (तिस्रः) तीन (कोटयः) कोटि (उपादेयाः) ग्रहण करने योग्य हैं। (तस्याः) उस पतिव्रताके (त्याज्याः) त्याग करने योग्य ये अधोलिखित हैं। (कन्यका) कन्यका १, (वेश्या) वेश्या २, (वेश्यापरतन्त्राः) वेश्याके अधीन रहनेवाली ३, तथा (कस्यचित्) किसी भी पुरुष के (हस्तम्) हाथ को (दत्वा) देकर (अन्यत्र) दूसरे के यहाँ (गताः) चली गयी हुई ४, और (अन्तः) भीतर में (स्थित्वा) रहकर (मोहयन्त्यः) मोह कराती हुई ५, ये पाँच पतिव्रता स्त्री के त्याग करने योग्य हैं और (उपादेयाः) पतिव्रता के ग्रहण करने योग्य ये अधोलिखित हैं। (भर्तुः) पति के (मातापितरौ) माता तथा पिता अर्थात् सास ससुर १, तथा (अवर्जनीयाः) नहीं वर्जने योग्य (बान्धवाः) पति के बान्धव गण २, और (स्वसदृशाः) अपने समान (पतिव्रताः) पतिव्रता सब ३, ये तीन पतिव्रता स्त्री के ग्रहण करने योग्य हैं। (अस्य) इस मुमुक्षु प्रपन्न के (त्याज्याः) त्याग करने योग्य ये अधोलिखित हैं। (संसारिणः) संसारी जीव १, (देवतान्तराणि) ब्रह्मादिक देवतान्तर २, (देवतान्तरपरतन्त्राः) देवतान्तर परतन्त्र जीव ३, तथा (दर्शने) दर्शन में (प्रविश्य) पैठकर (दर्शनान्तरे) दर्शनान्तर में (प्रवृत्ताः) प्रवृत्त जीव ४, और (रूपनामानि) रूप तथा नामों को (धृत्वा) धारणकर (अन्तः) भीतर में (प्रविश्य) पैठकर (अनन्यप्रयोजनवत्) अनन्य प्रयोजन के समान (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (अभिनयन्तः) चारो तरफ से प्राप्त करनेवाले जीव ५, ये पाँच मुमुक्षु प्रपन्न के त्याग करने योग्य हैं। और (उपादेयाः) मुमुक्षु प्रपन्न के ग्रहण करने योग्य ये अधोलिखित हैं। (आचार्य्याः) आचार्य्य सब १, (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब २, और (सब्रह्मचारिणः) समान ब्रह्मचारी सब ३, ये तीन मुमुक्षु प्रपन्न के ग्रहण करने योग्य हैं। (केनचित्) किसी भी (श्रीवैष्णवेन) श्रीवैष्णव के (सह) साथ (वासकरणसमये) निवास करने समय में (तस्य) उस श्रीवैष्णव के (गुणदोषौ) गुण और दोष

(निरूपणीयौ) निरूपण करने योग्य हैं। (च) और (तन्निरूपणम्) श्रीवैष्णव के गुण तथा दोष का निरूपण (स्तोतुम्) स्तुति करने के लिये (च) और (निन्दितुम्) निन्दा करने के लिये (न) नहीं (भवति) होता है (किन्तु) लेकिन वह निरूपण (उपादातुम्) गुण को ग्रहण करने के लिये (च) और (हातुम्) दोष को परित्याग करने के लिये है (इति) इस प्रकार के (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ पचासिवीं वार्ता में ईक्यासी पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८५॥



अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कलिवैरिदासवार्ता-त्याज्यविषयः-उदासीनविषयः, अनुग्रहविषयः, अनुभवविषयश्च ॥२८६॥

अर्थ–(कलिवैरिदासवार्ता) कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता है कि विषय चार प्रकार के होते हैं (त्याज्यविषयः) त्याग करने योग्य विषय १, (उदासीनविषयः) उदासीनविषय २, (अनुग्रहविषयः) अनुग्रहविषय ३, (च) और (अनुभवविषयः) अनुभवविषय ४, इस दो सौ छियासवीं वार्ता में छः पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८६॥



अथ दाशरथी स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–ते च नास्तिकनास्तिकाः, आस्तिकनास्तिकाः, नास्तिकास्तिकाः, आस्तिकास्तिकाश्च, नास्तिकनास्तिकाः-अन्तर्बहिश्च शुद्धनास्तिकाः, आस्तिकनास्तिकाः-बहिरास्तिक-सदृशाः-अन्तर्नास्तिकाः, नास्तिकास्तिकाः बहिर्नास्तिक-सदृशाः-अन्तर आस्तिकाः, आस्तिकास्तिकाः-बहिरन्तश्चास्तिका इति दाशरथिना वरदार्य्यं प्रत्युक्ता वार्ता ॥२८७॥

अर्थ–(च) और (ते) वे चार प्रकार के ये अधोलिखित हैं (नास्तिकनास्तिकाः)

नास्तिक नास्तिक १, (आस्तिकनास्तिका:) आस्तिकनास्तिक २, (नास्तिकास्तिका:) नास्तिकास्तिक ३, (च) और (आस्तिकास्तिका:) आस्तिकास्तिक ४, उनमें (नास्तिकनास्तिका:) नास्तिकनास्तिक माने (अन्त:) भीतर (च) और (बहि:) बाहर (शुद्धनास्तिका:) शुद्ध नास्तिक होना है। (आस्तिकनास्तिका:) आस्तिकनास्तिक माने (बहि:) बाहर (आस्तिकसदृशा:) आस्तिक के समान और (अन्त:) भीतर (नास्तिका:) नास्तिक होना है। (नास्तिकास्तिका:) नास्तिकास्तिक माने (बहि:) बाहर (नास्तिकसदृशा:) नास्तिक के समान (अन्तरे) भीतर में (आस्तिका:) आस्तिक होना है। और (आस्तिकास्तिका:) आस्तिकास्तिक माने (बहि:) बाहर (च) और (अन्त:) भीतर (आस्तिका:) आस्तिक होना है। (इति) इस प्रकार के (दाशरथिना) दाशरथि स्वामीजी से (वरदार्य्यम्) वरदार्य्य स्वामीजी के (प्रति) प्रति (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है। नास्तिक के विषय में मनुस्मृति में लिखा है कि **॥ योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्य्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ मनु० अ० २, श्लो० ११ ॥**

जो वेद और आप्तपुरुषों के शास्त्रों को तर्क से अपमान करता है, उस वेद निन्दक नास्तिक को जाति पंक्ति और देश से बाहर निकाल देना चाहिये ॥११॥ और आस्तिक नास्तिक के विषय में लोकाचार्य्य स्वामीजी ने कहा है कि– **॥ केवलनास्तिको वशीकर्तुं शक्यः, आस्तिकनास्तिकः कदापि वशीकर्तुं न शक्यते ॥ श्रीवचन सू०, २०४॥**

केवल नास्तिक को वश कर सकते हैं परन्तु आस्तिकनास्तिक को कभी भी वश नहीं कर सकते हैं ॥२०४॥ इस दो सौ सताईसवीं वार्ता में तैंतीस पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८७॥

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–तस्कराश्चतुर्विधाः सदा त्याज्याः, ते च-आत्मापहारिणः, विभूत्यापहारिणः, गुणवत्वापहारिणः, परत्वापहारिणश्च, आत्मापहारिणः-वक्षस्थलस्थकौस्तुभतस्कराः स्वतन्त्रा-इति यावत् विभूत्यापहारिणः-एकायनाः, गुणवत्वापहारिणो

मायावादिनः[२०], परत्वापहारिणः[२१]-रुद्रपरत्वप्रमाणनिष्ठाः[२२], एतेषा[२३]-मज्ञानमन्यथाज्ञानं[२४] विपरीतज्ञानं[२५] चाधिकं[२६] स्वरूपनाशकैः[२७] सह[२८] सङ्गतिरनर्थः[२९], स्वरूपवर्द्धकैरसङ्गतिरनर्थः[३०], असत्सङ्गति-रनर्थे[३१] पर्य्यवस्यति[३२], सत्सङ्गतिः[३३] सदा[३४] कर्तव्येति[३५] कृष्ण-पादः[३६] ॥२८८॥

अर्थ–(तस्कराः) चोर (चतुर्विधाः) चार प्रकार के (सदा) हमेशा (त्याज्याः) त्याग करने योग्य हैं। (च) और (ते) वे चार प्रकार के चोर ये अधोलिखित हैं। (आत्मापहारिणः) आत्मा को अपहरण करनेवाले १, (विभूत्यापहारिणः) विभूति को अच्छी तरह से अपहरण करनेवाले २, (गुणवत्वापहारिणः) गुणवत्व को अपहरण करनेवाले ३, (च) और (परत्वापहारिणः) परत्व को अपहरण करनेवाले (वक्षस्थलस्थकौस्तुभतस्कराः) भगवान् के वक्षस्थल में स्थित कौस्तुभ मणि को चुरानेवाले चोर हैं (स्वतन्त्राः) जो अपने को स्वतन्त्र (इति) इस प्रकार के (यावत्) जब तक मानते हैं। (विभूत्यापहारिणः) विभूति को अच्छी तरह से अपहरण करनेवाले (एकायनाः) एकायन हैं। (गुणत्वापहारिणः) गुणत्व को अपहरण करनेवाले (मायावादिनः) मायावादी लोग हैं। और (परत्वापहारिणः) परत्व को अपहरण करनेवाले (रुद्रपरत्वप्रमाणनिष्ठाः) रुद्रपरत्व प्रमाण में निष्ठ हैं। (एतेषाम्) इन पूर्वोक्त आत्मापहारी, विभूत्यापहारी, गुणवत्वापहारी, और परत्वापहारियों के (अज्ञानम्) अज्ञान तथा (अन्यथाज्ञानम्) अन्यथा ज्ञान (च) और (विपरीतज्ञानम्) विपरीत ज्ञान (अधिकम्) अधिक होता है। (स्वरूपनाशकैः) स्वरूप को नाश करनेवालों के (सह) साथ (सङ्गतिः) सङ्गति (अनर्थः) अनर्थ करनेवाली होती है, और (स्वरूपवर्द्धकैः) स्वरूप को बढ़ानेवालों के साथ (असङ्गतिः) असङ्गति (अनर्थः) अनर्थ करनेवाली होती है। (असत्सङ्गतिः) असज्जनों की सङ्गति (अनर्थे) बुरे कर्म में (पर्य्यवस्यति) लगाती है। इस कारण से (सत्सङ्गतिः) सज्जनों की सङ्गति (सदा) हमेशा (कर्तव्या) करने योग्य है (इति) इस प्रकार के (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। आत्मापहार के विषय में मनुस्मृति में लिखा है कि–

॥ योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते। स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥ मनु० अध्या० ४, श्लो० २५५॥

जो दूसरा होता हुआ सज्जनों में अपने को दूसरा कहता है वह आत्मापहारक लोक में सबसे बड़ा पाप करनेवाला चोर है ॥२२५॥ इस वार्ता में तैंतालीस पद हैं।

इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८८॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीभाष्यकारः[१] ब्रह्मोत्सवावभृथस्नानं[२] कृत्वा[३]-आगमनसमये[४] भगवन्तं[५] सेवमानः[६] धनुर्धरहस्तमवलब्या[७]-[८]गच्छन्[९] किमिदमिति[१०] कैश्चित्[११]पृष्टः[१२], उत्तमकुले[१३] जनित्वा[१४] नीच-वृत्तिं[१५] कुर्म[१६] इति[१७] सर्वेषामभिमानोऽस्ति[१८] स[१९] दोषोऽस्य[२०] नास्ती-त्यवदत्[२१] ॥२८९॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ-यतिक्षोणीनाथः कनकतटिनी मज्जनमुखाद्यहः कृत्यं कृत्वा करधृतधनुर्दास असकृत्। असूयाग्रस्तानामपि विशदयंस्तच्छुभगुणान् धनुर्दासं व्यासाद्यधिकृतमतिं स व्यतनुत ॥२२२॥

(श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (ब्रह्मोत्सवावभृथस्नानम्) चैत्र महीने में ब्रह्मोत्सव के समय अवभृथ स्नान (कृत्वा) करके (आगमनसमये) आने के समय में (भगवन्तम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् की (सेवमानः) सेवा करते हुए (धनुर्धरहस्तम्) धनुर्धरदासजी के हाथ को (अवलम्ब्य) अवलम्बन कर (आगच्छन्) आते हुए (इदम्) यह (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (कैश्चित्) कुछ श्रीवैष्णवों ने (पृष्टः) पूछा। तब श्रीभाष्यकार स्वामीजी (उत्तमकुले) श्रेष्ठकुल में (जनित्वा) जन्म लेकर (नीचवृत्तिम्) नीच काम को (कुर्मः) करें ॥ **कुर्मः** ॥ यहाँ पर ॥ **नित्यं करोतेः** ॥ **व्या० अ० ६, पा० ४, सू० १०८** ॥ इस सूत्र से उकार का लोप हुआ है। (इति) इस प्रकार के (सर्वेषाम्) सब जीवों के (अभिमानः) अभिमान (अस्ति) है। (सः) वह अभिमानरूप (दोषः) दोष (अस्य) इस धनुर्धरदास का (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। इस दो सौ नवासिवीं वार्ता में उन्तीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२८९॥

अब वेदान्ती स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यत्युक्ता वार्ता ॥

मू०–भट्टार्य्यः स्नात्वा-आगच्छन् कस्यचित्सम्मुख-
मागतस्य शैवस्य शरीरादुत्थितस्य भस्मनः स्वशरीरे स्पर्शं
शङ्कमानः पुनः स्नात्वा-आगत्य अन्तरप्रविश्य एव गृहद्वारं
स्थित्वा स्वमातरमाहूय-अस्य प्रायश्चित्तं वदेत्यपृच्छत्, सा
च चिरकालं विचिन्त्य श्रीपादतीर्थं प्राशयेत्यवदत्, भट्टा-
र्य्यश्च-इदमुचितं किमित्यपृच्छत्, सा च प्राणनाशसमये
सम्बन्धमपि त्यक्त्वा प्राणः संरक्षणीय इत्यवदत्, भट्टार्य्यश्च
तथैव कृत्वा प्रीतोऽभवत्, सा च अयं न सम्मन्यते-इति
मत्वा-अन्यैर्भट्टार्य्यचरणौ प्रक्षालयित्वा स्वयं तच्छ्रीपादतीर्थं
स्वीचकारेति वेदान्त्यवदत् ॥२९०॥

अर्थ–(भट्टार्य्यः) पराशर भट्टाचार्य्य स्वामीजी (स्नात्वा) स्नानकर (आगच्छन्) आते हुए (सम्मुखम्) सामने में (आगतस्य) आये हुए (कस्यचित्) किसी (शैवस्य) शैव के (शरीरात्) देह से (उत्थितस्य) उड़े हुए (भस्मनः) भस्म के (स्वशरीरे) अपने शरीर में (स्पर्शम्) स्पर्श की (शङ्कमानः) शङ्का करते हुए (पुनः) फिर से (स्नात्वा) स्नान करके (आगत्य) आकर (अन्तः) मठ के भीतर (अप्रविश्य) नहीं पैठकर (एव) निश्चय करके (गृहद्वारम्) गृह के द्वार पर (स्थित्वा) ठहरकर (स्वमातरम्) अपनी आण्डाला नाम की माँ को (आहूय) बुलाकर (अस्य) शैव के देह से ऊड़े हुये भस्म के मेरे देह में स्पर्श की इस शङ्का के (प्रायश्चित्तम्) प्रायश्चित को (वद) कहो (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे। (च) और इसके बाद (सा) उस आण्डाला देवी ने (चिरकालम्) बहुत देर तक (विचिन्त्य) विचारकर (श्रीपादतीर्थम्) श्रीपाद तीर्थ को (प्राशय) भोजन कर लो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। (च) और (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी ने (इदम्) यह (उचितम्) उचित है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और (सा) उस आण्डाला देवीजी ने (प्राणनाशसमये) प्राण के नाश समय में (सम्बन्धम्) सम्बन्ध को (अपि) भी (त्यक्त्वा) छोड़कर (प्राणः) प्राण (संरक्षणीयः) अच्छी तरह से रक्षा करने योग्य है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। (च)

और (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी (तथा) जैसा माँ ने कहा था वैसा (एव) निश्चय (कृत्वा) करके (प्रीतः) प्रसन्न (अभवत्) हो गये हैं। (च) और (सा) वह आण्डाला देवीजी (अयम्) यह पराशरभट्टाचार्य्य (न) नहीं (सम्मन्यते) अच्छे प्रकार से मानते हैं (इति) इस प्रकार के (मत्वा) मानकर (अन्यैः) दूसरे श्रीवैष्णवों से (भट्टार्य्यचरणौ) भट्टारक स्वामीजी के दोनों चरणारविन्दों को (प्रक्षाल्य) प्रक्षालन कराकर (स्वयम्) अपने ही (तच्छ्रीपादतीर्थम्) भट्टारक स्वामीजी के श्रीपादतीर्थ को (स्वीचकार) स्वीकार कर लिये (इति) इस प्रकार के (वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। इस दो सौ नब्बे की वार्ता में छिहत्तर पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९०॥

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–इति[१] कृष्णपादोऽवदत्[२], भगवच्छेषत्वं[३] भगवच्छेषवृत्तिश्च[४] सर्वसाधारणं[५] भागवतशेषत्वं[६] भागवतशेषवृत्तिश्च[७] परमैकान्तिनोऽसाधारणम्[८] ॥२९१॥

अर्थ–(इति) इस प्रकार के (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है कि (भगवच्छेषत्वम्) भगवान् की शेषता (च) और (भगवच्छेषवृत्तिः) भगवान् की शेषवृत्ति (सर्वसाधारणम्) सब जीवों के साधारण हैं। तथा (भागवतशेषत्वम्) भागवतों की शेषता (च) और (भावगतशेषवृत्तिः) भागवतों की शेषवृत्ति (परमैकान्तिनः) परमैकान्ती पुरुषों को भी (असाधारणम्) साधारण नहीं है। यह कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता है। इस वार्ता में बारह पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९१॥

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–भागवतवैभवकथनसमये[१] केनचिद्भगवद्विषये[२] प्रस्तावितेऽ[३] विशेषकथनसमये[४] कथं[५] सामान्यः[६] प्रस्तावः[७] इति[८] कृष्णपादोऽवदत्[९] ॥२९२॥

अर्थ–(भागवतवैभवकथनसमये) भागवतों के वैभव कहने के समय में (केनचित्) किसी श्रीवैष्णव द्वारा (भगवद्विषये) भगवान् का विषय (प्रस्तावित) प्रस्ताव करने पर (विशेषकथनसमये) विशेष भागवतों के वैभव कहने के समय में (कथम्) कैसे (सामान्यः) सामान्य भगवद्विषय का (प्रस्तावः) प्रस्ताव हो सकता है (इति) इस प्रकार के (कृष्णपादः) कृष्णपादस्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। इस वार्ता में ग्यारह पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९२॥

अब कलिवैरिदासस्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–[१]मद्भक्तविश्लेषे [२]सत्तावन्तो [३]मद्विषये [४]शत्रव [५]इति [६]हि [७]भगवद्वाक्यं [८]शब्दादिविषयप्रावण्यस्य [९]पुनरङ्[१०]कुरनिवृत्तिः, [११]भागवतविषये [१२]प्रावण्यं [१३]च [१४]वैष्णवलक्षणमिति [१५]कलिवैरि-[१६]दासः ॥२९३॥

अर्थ–(मद्भक्तविश्लेषे) मेरे भक्त के वियोग होने पर (सत्तावन्तः) जो सत्तावाले पुरुष हैं वे (मद्विषये) मेरे विषय में (शत्रवः) शत्रु हैं (इति) इस प्रकार के (हि) निश्चय करके (भगवद्वाक्यम्) भगवान् का वाक्य है। (शब्दादिविषयप्रावण्यस्य) शब्दादि विषयों में आसक्त पुरुष के (पुनः) फिर से (अङ्कुरनिवृत्तिः) भगवत् के प्रेमाङ्कुर की निवृत्ति होती है। (च) और (भागवतविषये) भागवतों के विषय में (प्रावण्यम्) प्रवणता (वैष्णवलक्षणम्) वैष्णव का लक्षण है, (इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि भगवद्भक्त कितने प्रकार के होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर भगवद्गीता में लिखा है कि–

॥ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ भगवद्गी० अ० ५ श्लो० १६॥

हे भरत वंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्मवाले संकट निवारण के लिये भजनेवाला आर्त १, तथा भगवत् को यथार्थ रूप से जानने की इच्छा से भजनेवाला जिज्ञासु २, और सांसारिक पदार्थों के लिये भजनेवाला अर्थार्थी ३, तथा ज्ञानवाला ज्ञानी ४, ये चार प्रकार के भक्तजन मुझे भजते हैं ॥१६॥ इस दो सौ तिरानबे की वार्ता में सोलह पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९३॥

अब कलिवैरिदासस्वामीजी के और सौम्यजामातृ मुनिजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदाससौम्यजामातृमुन्युक्ता वार्ता ॥

मू०–कश्चिदतिव्यसनाक्रान्तः कश्चिच्छ्रीवैष्णवं ममै-
तद्व्यसनं निवर्तयेत्यपेक्षते, स च तमनुगृह्णाति, तदनु-
ग्रहेण तस्य व्यसनं निवर्तते, इदं किं भगवच्छक्त्या-उत
वैष्णवशक्त्येति पश्चात्सौम्यजामातृमुनिः कलिवैरिदास-
मपृच्छत्, स च भगवच्छक्त्येत्यवोचत्, तर्हि भगवानेव कुतो
नापेक्षित इत्यपृच्छत्, कलिवैरिदासः भगवत्प्रसादनं दुःशक-
मित्यवोचत्, वैष्णवप्रतिज्ञामीश्वरः सफलयति, किमिति
चेत्, अस्तमनात्पूर्वं जयद्रथं वधिष्यामीत्यर्जुनकृतां प्रतिज्ञां
सर्वेश्वरः सिद्धार्थमकरोदित्यवोचत् ॥२९४॥

॥ सौम्यजामातृमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ- अशिश्रियंस्तदा सर्वे वैष्णवा वीतकल्मषाः ।
मदत्रयविनिर्मुक्ताः सौम्यजामातरं मुनिम् ॥२२३॥

(कश्चित्) कोई (अतिव्यसनाक्रान्तः) अत्यन्त दुःख से पीड़ित पुरुष (कश्चित्) किसी (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव से (मम) मेरे (एतत्) इस (व्यसनम्) दुःख को (निवर्तय) दूर कीजिये (इति) इस प्रकार की (अपेक्षते) अपेक्षा किये हैं। (च) और (सः) वह श्रीवैष्णव (तम्) उस दुःखी पुरुष को (अनुगृह्णाति) अनुग्रह किये हैं। और (तदनुग्रहेण) उस श्रीवैष्णव के अनुग्रह से (तस्य) उस दुःखी पुरुष का (व्यसनम्) दुःख (निवर्तते) निवृत्त हो जाता है। (पश्चात्) इसके बाद (इदम्) यह दुःख निवृत्त (किम्) क्या (भगवच्छक्त्या) भगवान् की शक्ति से हुआ है (उत) या (वैष्णवशक्त्या) श्रीवैष्णव की शक्ति से हुआ है (इति) इस प्रकार के (सौम्यजामातृमुनिः) सौम्यजामातृमुनिस्वामीजी ने (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजी से (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और (सः) उस कलिवैरिदास स्वामीजी

ने (भगवच्छक्त्या) भगवान् की शक्ति से दु:ख निवृत्त हुआ है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। (तर्हि) तब तो (भगवान्) भगवान् (एव) निश्चय करके (कुत:) किस कारण से (न) नहीं (अपेक्षित:) अपेक्षा किये गये हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) सौम्यजामातृमुनि स्वामी ने पूछा है। तब (कलिवैरिदास:) कलिवैरिदास स्वामीजी (भगवत्प्रसादनम्) भगवान् को प्रसन्न करना (दु:शकम्) दु:शक है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। (वैष्णवप्रतिज्ञाम्) श्रीवैष्णव की प्रतिज्ञा को (ईश्वर:) श्रीमन्नारायण भगवान् (सफलयति) सफल करते हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के यदि कहो (चेत्) तो सुनो (अस्तमनात्) सूर्य्यास्त होने से (पूर्वम्) पहले (जयद्रथम्) जयद्रथ वीर को (वधिष्यामि) मैं मारूँगा (इति) इस प्रकार के (अर्जुनकृताम्) महाभारत में अर्जुन से की हुई (प्रतिज्ञाम्) प्रतिज्ञा को (सर्वेश्वर:) सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने (सिद्धार्थम्) सिद्धार्थ (अकरोत्) किया है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ चौरानबे की वार्ता में चौंसट पद हैं। इति कलिवैरिदाससौम्यजामातृमुन्युक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥२९४॥

अब पुल्लैप्रपन्नजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पुल्लैप्रपन्नोक्ता वार्ता ॥

मू०–पुल्लैप्रपन्नं ज्वरपीडितं द्रष्टुं पुल्लकलियरदास: चक्रपाणि: पुल्लार उभौ तद्गृहमागतौ, तदा-उत्तमनम्बी अशक्त: क्लिश्यतीति श्रुत्वा पुल्लैप्रपन्न: वर्तमानरोगशान्ति-रस्त्वित्यवोचत्, तौ भवानेवं क्लिश्यन् कथमन्यमनुगृह्णाति कथं वा रोगशान्ति र्भविष्यतीत्यपृच्छतां स च रावणभवने स्थिताया राक्षसीभिरत्यन्तं क्लिश्यमानाया: "शीतो भव हनूमत: इति न फलितं किमित्यवोचत् ॥२९५॥

॥ कासारयोगिस्तुति: ॥

अर्थ- तुलामासे शुक्लपक्षे ह्याष्टम्यां कुजवासरे।
कासारयोगी सञ्ज्ञे शङ्खांशेन महाद्युति: ॥२२४॥

(ज्वरपीडितम्) ज्वर से पीडित (पुल्लैप्रपन्नम्) पुल्लैप्रपन्न स्वामीजी को (द्रष्टुम्) देखने के लिये (पुल्लकलियरदासः) पुल्लकलियरदास स्वामीजी और (चक्रपाणिः) चक्रपाणि (पुल्लारः) पुल्लारदास स्वामीजी (उभौ) ये दोनों महात्मा (तद्गृहम्) पुल्लैप्रपन्न स्वामीजी के घर पर (आगतौ) चले आये। (तदा) तब (उत्तमनम्बी) उत्तमनम्बी नाम के महात्मा (अशक्तः) असमर्थ होकर (क्लिश्यति) क्लेश पाते हैं (इति) इस प्रकार के (श्रुत्वा) सुनकर (पुल्लैप्रपन्नः) पुल्लैप्रपन्न स्वामीजी ने (वर्तमानरोगशान्तिः) वर्तमान रोग की शान्ति (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। इसके बाद (तौ) पुल्लकलियरदास स्वामीजी और चक्रपाणि पुल्लार स्वामीजी ये दोनों (भवान्) आप (एवम्) इस प्रकार के (क्लिश्यन्) ज्वर की पीड़ा से क्लेश सहते हुए (कथम्) कैसे (अन्यम्) अन्य उत्तमनबी महात्मा को (अनुगृह्णाति) अनुग्रह करते हैं। (वा) अथवा (कथम्) कैसे (रोगशान्तिः) आपके ज्वर रोग की शान्ति (भविष्यति) होवेगी (इति) इस प्रकार के (अपृच्छताम्) पूछे हैं। (च) और (सः) पुल्लैप्रपन्न स्वामीजी (रावणभवने) रावण के भवन में (स्थितायाः) ठहरी हुई और (राक्षसीभिः) एकाक्षि आदि राक्षसियों से (अत्यन्तम्) अत्यन्त (क्लिश्यमानायाः) क्लेश पाती हुई श्रीसीता देवीजी के (शीतः) शीतल (भव) हो जा (हनूमतः) हनुमान् के विषय में हे अग्ने! (इति) प्रकार का कहा हुआ वाक्य (किम्) क्या (न) नहीं (फलितम्) फलीभूत हुआ है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्ता में **॥ शीतो भव हनूमतः ॥ वा० रा० सुं० ५, स० ५३, श्लो० २७ ॥** का प्रतीक है इससे यहाँ पर समस्त श्लोक को लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि **॥ यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतोभव हनूमतः। ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिणशिखोऽनलः ॥ वा० रा० सुं० ५, स० ५३, श्लो० २७॥**

यदि एक पत्नीत्व हो तो हे अग्ने! हनुमान् के विषय में तुम शीतल हो जाओ, ऐसा श्रीसीताजी के कहने के बाद तीक्ष्ण ज्वालावाली अग्नि प्रदक्षिण शिखा से युक्त अव्यग्र हो शीतल हो गयी ॥२७॥ इस दो सौ पञ्चानबे की वार्ता में उच्छास पद हैं। इति पुल्लैप्रपन्नोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९५॥

अब अनन्तार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ अनन्तार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अनन्तार्य्यः रुजाविष्ट इति श्रुत्वा परामृष्टुं श्री-वेङ्कटनायक आगत्य तद्द्वारि-अतिष्ठत्, अनन्तार्य्यस्तूष्णी-

१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१
मस्वपत्, श्रीवेङ्कटनाथः मय्यग्रे तिष्ठति त्वं कथं स्वपिषीत्य-
२२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०
पृच्छत्, स च श्रीवैष्णवे-आगते-अहं तूष्णीं स्वपिमि चेत्,
३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९
दोषः इत्यवोचत्, तर्हि त्वामितो निष्कासयामीति भगवान-
४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८
वोचत्, स च भवान् किञ्चित् पूर्वमागतः, अहमिदानी-
४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५
मागतः, उभावपि श्रीवेङ्कटाद्रिमाश्रितावित्यवोचत् ॥२९६॥

॥ अनन्तार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- यूयं वयं च शेषाद्रेरस्य तुल्यास्ततो ध्रुवम्।
मां निर्वासयितुं देव ! कथं शक्तो भवान् भवेत् ॥२२५॥

(अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (रुजा) रोग से (आविष्टः) युक्त हैं (इति) इस प्रकार के (श्रुत्वा) सुनकर (परामृष्टुम्) आपस में सङ्ग करने के लिये (वेङ्कटनायकः) वेङ्कटेश भगवान् (आगत्य) आकर (तद्द्वारि) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के द्वार पर (अतिष्ठत्) ठहर गये। और (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (तूष्णीम्) चुपचाप (अस्वपत्) सो गये। तब (श्रीवेङ्कटनाथः) श्रीवेङ्कटेश भगवान् (मयि) मुझे (अग्रे) सामने (तिष्ठति) रहने पर (त्वम्) तुम (कथम्) कैसे (स्वपिषि) सोते हो "स्वपिषि" यहाँ पर ॥ **रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ व्या० अ० ७, पा० २, सू० ७६ ॥** इस सूत्र से इट् हुआ है। (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (सः) वह अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (श्रीवैष्णवे) श्रीवैष्णव के (आगते) आनेपर (अहम्) मैं यदि (तूष्णीम्) चुपचाप (स्वपिमि) सोता हूँ (चेत्) तो (दोषः) दोष होगा (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। तर्हि) तब तो (त्वाम्) तुमको (इतः) इस वेङ्कटाचल से (निष्कासयामि) बाहर निकलवा दूँगा (इति) इस प्रकार के (भगवान्) वेङ्कटेश भगवान् ने (अवोचत्) कहा है। (च) और (सः) वह अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (भवान्) आप (किञ्चित्) कुछ (पूर्वम्) पहले (आगतः) यहाँ पर आश्रित वात्सल्य से आये हैं। और (अहम्) मैं (इदानीम्) इस समय में (आगतः) यहाँ पर आचार्य की आज्ञा से आया हूँ। (उभौ) आप और मैं ये दोनों (अपि) भी (श्रीवेङ्कटाद्रिम्) श्रीवेङ्कटाचलको (आश्रितौ) आश्रयण किये हैं (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस दो सौ छियानबे की वार्ता में पैंसठ पद हैं। इत्यनन्तार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९६॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–सर्वेश्वरस्य गोप्या बन्धनं महाराजस्य-अन्तःपुरे मालाबन्धनवदिति त्रिषु वस्तुषु भगवद्वस्तु वर्द्धते, श्रीशेषस्याङ्के गरुडस्य पृष्ठे विष्वक्सेनस्य वेत्रस्याधश्च देवीभिर्भगवति लीलारसमनुभवति, जगन्निर्वहणं विस्मरिष्यतीति नियन्तुं विष्वक्सेन आगच्छति, तदानीं देव्योऽन्तः प्रविशन्तीति हि व्यवस्थितिः, स्वस्वरूपस्य सीमा भागवतमुखोल्लास इति कलिवैरिदासः ॥२९७॥

अर्थ–(सर्वेश्वरस्य) सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के (गोप्या) गोपी यशोदा द्वारा (बन्धनम्) बाँधना (महाराजस्य) महाराजा के (अन्तःपुरे) रनिवास में (मालाबन्धनवत्) माला बाँधने के समान है (इति) इस प्रकार से (त्रिषु) तीन (वस्तुषु) वस्तुओं में (भगवद्वस्तु) भगवद्वस्तु (वर्द्धते) बढ़ती है, (श्रीशेषस्य) श्रीशेष भगवान् के (अङ्के) अङ्क में तथा (गरुडस्य) गरुड़ भगवान् के (पृष्ठे) पीठपर (च) और (विष्वक्सेनस्य) विष्वक्सेन भगवान् के (वेत्रस्य) वेत के (अधः) नीचे में (देवीभिः) भूआदिक देवियों के साथ (भगवति) श्रीमन्नारायण भगवान् में (लीलारसम्) लीला रस को (अनुभवति) अनुभव करता है। (जगन्निर्वहणम्) संसार के निर्वाह को (विस्मरिष्यति) भूल जायेंगे (इति) इस कारण से (नियन्तुम्) नियमन करने के लिये (विष्वक्सेनः) विष्वक्सेन भगवान् (आगच्छति) आते हैं। (तदानीम्) उस समय में (देव्यः) भू आदि देवियाँ (अन्तः) भीतर में (प्रविशन्ति) पैठ जाती हैं (इति) इस प्रकार के (हि) निश्चय करके (व्यवस्थितिः) व्यवस्थिति है। (स्वस्वरूपस्य) स्वस्वरूप की (सीमा) सीमा (भागवतमुखोल्लासः) भागवतों के मुख की प्रसन्नता है, (इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि यशोदा ने श्रीकृष्ण भगवान् को बाँधा है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत में लिखा है कि–

॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्। गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥ श्रीमद्भा० स्कं० १०, अ० ९, श्लो० १४ ॥

मनुष्य रूपवाले उस श्रीकृष्ण भगवान् को यशोदा गोपी ने अपना पुत्र समझकर जैसे प्राकृत लड़के को कोई बाँधे वैसे रस्सी से ओखल में बाँध दिया ॥१४॥ इस

दो सौ सन्तानवे की वार्ता में इकतालीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम ॥२९७॥

अब दाशरथि स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–कैकेय्या भगवदपचारे सति पुत्र इति भागवत-स्नेहसत्वान्मुक्तिरभूत्, चक्रवर्तिनो भगवत्स्नेहे सति मुक्ति-र्नाभूत्, अम्मङ्गीयाल्वान् द्विशतयोजनत आगत्य भट्टार्य्य-पादौ प्रणम्य "नैडमाल्" दशकस्यार्थं वद इत्यपैक्षत, भट्टा-र्य्यश्च भगवतो ज्ञानं तस्यार्द्धपूर्तिः, तदीयज्ञानं तस्य पूर्ति-रित्यवोचत्, स च बहुश्रुत्वा-अहं विस्मरामीति तमेवार्थं धारकत्वेनानुसन्दधानः-अगच्छत्, भागवतशेषत्वविधुरं भगवच्छेषत्वं देहात्माभिमानवत् क्रूरमिति दाशरथिः ॥२९८॥

अर्थ–(कैकेय्या) कैकेयी द्वारा (भगवदपचारे) भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के विषय में चौदह वर्ष दण्डकारण्य में निवास करना रूप वर की याचनारूप भगवदपचार (सति) होने पर भी (पुत्रः) पुत्र भरत हैं (इति) इस प्रकार से समझकर (भागवतस्नेहसत्वात्) भागवत श्रीभरत सूरि में प्रेम होने से (मुक्तिः) कैकेयी की मुक्ति (अभूत्) हो गई है। और (चक्रवर्तिनः) चक्रवर्ती दशरथजी महाराज के (भगवत्स्नेहे) भगवान् श्रीरामजीमें प्रेम (सति) होनेपर भी (मुक्तिः) मुक्ति (न) नहीं (अभूत्) हुई है। और (अम्मङ्गीयाल्वान्) अम्मङ्गीयाल्वान् स्वामीजी ने (द्विशतयोजनतः) दो सौ योजन से (आगत्य) आकर (भट्टार्य्यपादौ) भट्टारक स्वामीजी के श्रीचरणों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणामकर (नैडमाल्) नैडमाल् (दशकस्य) दशक के (अर्थम्) अर्थ को (वद) कहिये (इति) इस प्रकार की (अपैक्षत) चाहना की। (च) और (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी ने (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (ज्ञानम्) ज्ञान (तस्य) उस श्रीमन्नारायण भगवान् की (अर्द्धपूर्तिः) आधी पूर्ति है। और (तदीयज्ञानम्) भागवतों का ज्ञान (तस्य) उस श्रीमन्नारायण भगवान् की (पूर्तिः) समग्र पूर्ति है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। (च) और (सः) वह अम्मङ्गीयाल्वान् स्वामीजी (बहु) बहुत (श्रुत्वा) सुनकर (अहम्) मैं (विस्मरामि) भूल जाऊँगा (इति) इस

प्रकार से कहकर (तम्) उस नैडमाल् दशक से कहे हुए (अर्थम्) अर्थ को (एव) निश्चय करके (धारकत्वेन) धारकतया (अनुसन्दधानः) अनुसन्धान करते हुए (अगच्छत्) चले गये। भागवतशेषत्वविधुरम्) भागवतों की शेषता से रहित (भगवच्छेषत्वम्) भगवान् की शेषता (देहात्माभिमानवत्) देह में आत्मा के अभिमान के समान (क्रूरम्) अत्यन्त क्रूर है (इति) इस प्रकार से (दाशरथिः) दाशरथी स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में पहला प्रश्न यह होता है कि कैकेयी ने भगवान् श्रीरामजी के विषय में कौन सा अपचार किया है ? इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि–

॥ पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत । विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥ वा० रा० बाल० १, स० १, श्लो० २२ ॥

पहले के वरदान के द्वारा कैकेयी देवी ने श्रीरामजी को वनवास और भरतजीके अभिषेकरूप वर को माँगा ॥२२॥ और भी लिखा है कि–

॥ नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ॥ वा० रा० अयो० २, स० ११, श्लो० २६ ॥ चीराजिनधनो धीरो रामो भवतु तापसः । भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम् ॥२७॥

चौदह वर्ष दण्डकारण्य को आश्रयण करते हुए ॥२६॥ चीरवल्कल को धारण करते हुए धीर श्रीरामजी तापस हो जायँ और आज ही श्रीभरतजी निष्कंटक यौवराज्य को सेवन करें ॥२७॥ इस प्रकार के पहले प्रश्न का उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि कैकेयी की मुक्ति हुई है ? इस प्रश्न का उत्तर यह लिखा है कि–

॥ अन्वियाय सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी । धर्मं कृत्वा बहुविधं त्रिदिवे पर्यवस्थिता ॥ वा० रा० उत्त० ७, स० ९९, श्लो० १५ ॥

सुमित्रा तथा कौशल्या और यशस्विनी कैकेयी ने बहुत प्रकार के धर्म को करके मोक्ष स्थान को प्राप्त किया ॥१५॥ इस प्रकार के दूसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो तीसरा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि श्रीरामजी में श्रीदशरथजी का स्नेह था ? इस प्रश्न का उत्तर देखिये, लिखा है कि इतना अत्यन्त श्रीरामजी में चक्रवर्ती महाराज का स्नेह था कि श्रीमान् रामजी के वन में जाने पर अपने प्राण को श्री दशरथजी महाराज ने परित्याग कर दिया है **॥ राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् ॥ वा० रा० बाल० १, स० १, श्लो० ३३ ॥** श्रीदशरथ महाराज श्रीरामजी का विलाप करते हुए स्वर्गलोक में चले गये ॥३३॥ और भी लिखा है कि–

॥ तथा तु दीनः कथयन्नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः । गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ॥ वा० रा० अयो० २, स० ६४, श्लो० ७८॥

इस प्रकार के दीन प्रिय पुत्र श्रीरामजी के वन में जाने से आतुर श्रीदशरथ महाराज अत्यन्त दुःख से पिड़ित उदार दर्शनवाले ने आधी रात बीत जाने पर तब प्राण को परित्याग कर दिया ।।७८।। इस प्रकार के तीसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो अन्तिम चौथा प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि चक्रवर्ती महाराज की मुक्ति न होकर स्वर्ग हुआ है ? इस प्रश्न का उत्तर लिखा है कि–

॥ एष राजा दशरथो विमानस्थः पिता तव । काकुत्स्थ मानुषे लोके गुरुस्तव महायशाः ॥ वा० रा० यु० ६, स० १२१, श्लो० ७ ॥ इन्द्रलोकं गतः श्रीमांस्त्वया पुत्रेण ताडितः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥८॥

हे श्रीरामभद्र ! विमान में स्थित यह दशरथ राजा आपके पिता हैं, मनुष्यलोक में बड़े यशस्वी यह आपके श्रेष्ठ जनक हैं ।।७।। आपके वियोग से पीड़ित इस श्रीमान् महाराज ने इन्द्रलोक को प्राप्त किया है इससे आप अपने भाई श्रीलक्ष्मण के साथ इनको साष्टाङ्ग प्रणाम कीजिये ।।८।। और भी लिखा है कि ॥ इन्द्रलोकं विमानेन ययौदशरथो नृपः ॥ वा० रा० यु० ६, स० १२१, श्लो० ३६ ॥ श्रीदशरथ महाराज विमान से इन्द्रलोक में चले गये ।।३६।। इस दो सौ अट्ठानवे की वार्ता में चौवन पद हैं ।। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।२९८।।

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–परकालस्य तदीयविषयवृत्तप्रतिपादकं ''पूर्णस्य समीचीनकुसुमौ मस्तके धृत्वा प्रणम्य'' इत्यादि पाशुरं श्रुत्वा, अयम् ईषत् प्रीतिमान् जात इति ज्ञात्वा, आगत्य त्वदपेक्षितं दास्यामीति स्वचरणकमलौ तन्मस्तके स्थापयितुमुद्युक्तोऽभूत्, स च स्वहस्तेन दूरीकृत्य तव तत्कालोन्मिषत्स्पृहणीयचरणौ मन्मस्तकं कथमाक्रामतः, त्वच्चरणौ

३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५
प्रणमन्तः खल्वत्र तिष्ठन्तीत्यवोचत्, तच्छ्रुत्वेश्वरो लज्जाविष्ट-
४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४
स्तवाहम् अन्तर्यामीत्यवोचत्, स च भगवतश्चरणौ प्रण-
५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३
मन्तो मम मनसि वर्तन्ते तर्ह्यहमर्चावतारः सुलभोऽतिष्ठम्,
६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९
स्थलशायिनमनुसंदधता मनसा युक्ता मम कुलदेवताः,
७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७
ते कीदृशाः पुष्पैः सह जलं समर्पयन्तः पुण्यपुरुषा नित्य-
७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५
सूरिभिः श्रेष्ठाः, एतदेव तेषां स्वरूपं नेत्राभ्यां द्रष्टुं मनसा-
८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२
अनुसंधातुं चाहमपेक्षितः, भगवन्तो दासान् दृष्टवतो
९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००
मम मनो नेत्रे च गर्वितं भवति ''सर्वगन्धः सर्वरसः''
१०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६
इत्युक्तप्रकारेण तव रसायनसेवया-अहमपेक्षितः ॥

॥ परकालस्तुतिः ॥

अर्थ- समजायत तव पादजप्रमुखेकश्चननीलनायकः ।
पुरुषोत्तमकार्मुकांशजः स्फुरिते कार्तिककृत्तिकोडुनि ॥२२६॥

(परकालस्य) परकाल स्वामीजी के (तदीयविषयवृत्तप्रतिपादकम्) भागवतविषय के वृत्त को प्रतिपादन करनेवाला (पूर्णस्य) पूर्ण के (समीचीनकुसुमौ) अच्छे फूलों को (मस्तके) माथे पर (धृत्वा) धारण कर (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम कर (इत्यादि) इत्यादि (पाशुरम्) पाशुर को (श्रुत्वा) सुनकर (अयम्) यह जन (ईषत्) थोड़ा (प्रीतिमान्) प्रीतिवाला (जातः) उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकार के (ज्ञात्वा) जानकर (आगत्य) आकर (त्वदपेक्षितम्) तेरे अपेक्षित को (दास्यामि) दूँगा (इति) इस प्रकार के (स्वचरणकमलौ) अपने चरणारविन्दों को (तन्मस्तके) उसके माथे पर (स्थापयितुम्) स्थापन करने के लिये (उद्युक्तः) तैयार (अभूत्) हो गये हैं। (च) और (सः) वह (स्वहस्तेन) अपने हाथ से (दूरीकृत्य) दूरकर (तव) तेरा (तत्कालोन्मिषत्स्पृहणीयचरणकमलौ) उस समय के उन्मेष से स्पृहा करने योग्य दोनों चरणारविन्द (मन्मस्तकम्) मेरे मस्तक को (कथम्) कैसे (आक्रामतः) आक्रमण करते हैं। (त्वच्चरणौ) आपके दोनों चरणों को (प्रणमन्तः) साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए (खलु) निश्चय करके (अत्र) यहाँ पर (तिष्ठन्ति) ठहरते हैं (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। (तत्) उस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (ईश्वरः) परमेश्वर (लज्जाविष्टः) लज्जा से युक्त होकर के (तव) तेरा (अहम्) मैं (अन्तर्यामी) अन्तर्यामी

हूँ (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। (च) और (सः) उसने कहा है कि (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (चरणौ) श्रीचरणों को (प्रणमन्तः) साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए भागवत लोग (मम) मेरे (मनसि) मन में (वर्तन्ते) वर्तमान हैं। (तर्हि) तब तो (अहम्) मैं (अर्चावतारः) अर्चावतार रूप से (सुलभः) सब जीवों के सुलभ (अतिष्ठम्) ठहरा हूँ। (स्थलशायिनम्) भूमिपर सोनेवाले को (अनुसंदधता) अनुसंधान करनेवाला (मनसा) मन से (युक्ताः) युक्त (मम) मेरे (कुलदेवताः) कुलदेवता हैं। (ते) वे सब (कीदृशाः) किस प्रकार के हैं (पुष्पैः) फूलों के (सह) साथ (जलम्) जल को (समर्पयन्तः) समर्पण करते हुए (पुण्यपुरुषाः) पुण्य पुरुष सब (नित्यसूरिभिः) नित्य सूरियों करके (श्रेष्ठाः) श्रेष्ठ हैं (एतत्) यही (एव) निश्चय करके (तेषाम्) इन सबों का (स्वरूपम्) स्वरूप है। (नेत्राभ्याम्) दोनों आँखों से (द्रष्टुम्) देखने के लिये (च) और (मनसा) मनसे (अनुसंदधातुम्) अनुसंधान करने के लिये (अहम्) मैं (अपेक्षितः) अपेक्षित हूँ। (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (दासान्) दासों को (दृष्टवतः) देखनेवालों को (मम) मेरा (मनः) मन (च) और (नेत्रे) दोनों आँख (गर्वितम्) गर्वित (भवति) होते हैं। (सर्वगन्धः) सब गन्ध हैं और (सर्वरसः) सब रस हैं (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (तव) आपके (रसायनसेवया) रसायन की सेवा से (अहम्) मैं (अपेक्षितः) अपेक्षित हूँ।।शुभमिति।।



मू०–भगवन्तं चिन्तयन्तो मम मनसो मधुवद् भोग्य-
भूताः, तर्हि-उपायोपेयभूतोऽहमपेक्षितः-उपायस्य पूर्व-
भाविनः, उपेयस्य सीमाभूताः, अत्र स्थितिकाले सल्लाप-
सहायाः महापुरुषस्य नामान्यधीयन्तो महान्तः-तर्हि
प्रथमं मम दास इति कथमागतः, त्वच्छ्रीमदष्टाक्षरं ज्ञात्वा
मयात्वद्दासदास्यं प्राप्तम्, एवमीश्वरः पराङ्कुशस्योक्तिप्रति-
वचनेनात्यन्तप्रीतः पुनस्तद्धृदयं शोधितुं प्रथमं मत्प्रीत्यर्थ-
मागत्य-अनन्तरं मद्दासविषये कथं सङ्क्रान्तमित्यपृच्छत्,
स च राजपुरुष इतिवत् कश्चित् स्तोतुं ग्रामं वनं ध्वजं च

६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२
यथा वा स्तौति, तथा पूर्वमहमवोचं तदीयविषय एव
७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२
उद्देश्य इत्यवोचत्, तर्हि विभज्य कथं वदसीत्यपृच्छत्, स
८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९०
च भर्तु र्देहस्यादरेण पतिव्रताया अपराधो जायते चेत्,
९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७
दिव्यमङ्गलविग्रहमादृतवतो ममापराधो भवेत् इति स्वस्य
९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४
तदीयविषये वर्तमानां प्रीतिमवोचत्, ईश्वरस्तच्छ्रुत्वा
१०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२
अतीव प्रमुदितः-अनेनाहं पराजित इति तद्विषये
११३
व्यामुमोह ॥

अर्थ–(भगवन्तम्) श्रीमन्नारायण भगवान् को (चिन्तयन्तः) चिन्तन करनेवाले (मम) मेरे (मनसः) मनके (मधुवत्) मधु के समान (भोग्यभूताः) भोग करने योग्य हुए हैं। (तर्हि) तब तो (उपायोपेयभूतः) उपाय और उपेय दोनों भया हुआ (अहम्) मैं (अपेक्षितः) अपेक्षित हूँ। (उपायस्य) उपाय के (पूर्वभाविनः) पूर्वभावी (उपेयस्य) उपेय की (सीमाः) सीमा (भूताः) भये हुये हैं। (अत्र) यहाँ पर (स्थितिकाले) स्थिति के समय में (सल्लापसहायाः) सज्जनों का भाषण सहाय है। और (महापुरुषस्य) महापुरुष के (नामानि) नामों को (अधीयन्तः) स्मरण करते हुए (महान्तः) महत् पुरुष लोग हैं। (तर्हि) तब तो (प्रथमम्) पहले (मम) मेरा (दासः) दास (इति) इस प्रकार से होकर (कथम्) कैसे (आगतः) आये हो। (त्वत्) आप से (श्रीमत्) शोभायुक्त (अष्टाक्षरम्) अष्टाक्षर मन्त्र को (ज्ञात्वा) जानकर (मया) मुझसे (त्वद्दासदास्यम्) आपके दासों की दासता (प्राप्तम्) प्राप्त हुई है। (एवम्) इस प्रकार के (ईश्वरः) परमेश्वर (पराङ्कुशस्य) पराङ्कुश स्वामीजी के (उक्तिप्रतिवचनेन) कहे हुए प्रतिवचन से (अत्यन्तप्रीतः) अत्यन्त प्रसन्न (पुनः) फिर से (तद्धृदयम्) पराङ्कुश मुनि स्वामीजी के हृदय को (शोधितुम्) शोधन करने के लिये (प्रथमम्) पहले (मत्प्रीत्यर्थम्) मेरी प्रीति के लिये (आगत्य) आकर (अनन्तरम्) इसके बाद (मद्दासविषये) मेरे दासों के विषय में (कथम्) कैसे (सङ्क्रान्तम्) अच्छे प्रकार से आसक्त हो गये हो (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (सः) वह पराङ्कुश मुनि स्वामीजी (राजपुरुषः) राजा के पुरुष हो (इतिवत्) इसके समान है। (वा) अथवा (कञ्चित्) किसी पुरुष को (स्तोतुम्) स्तुति करने के लिये (ग्रामम्) गाँव को तथा (वनम्) वन को (च) और (ध्वजम्) ध्वजा को (यथा) जैसे (स्तौति) स्तुति करता है (तथा) वैसे ही (पूर्वम्) पहले (अहम्) मैंने (अवोचम्) भगवद्विषय को कहा हूँ। **"स्तौति"** यहाँ पर **॥ उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ व्या० अ० ७, पा०**

३, सू० ८९ ॥ इस सूत्र से वृद्धि हुई है । (तदीयविषयः) भागवतों का विषय (एव) निश्चय करके (उद्देश्यः) मेरा उद्देश्य है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं । (तर्हि) तब तो (विभज्य) विभाग करके (कथम्) कैसे (वदसि) कहते हो (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) श्रीमन्नारायण भगवान् ने पूछा है । (च) और (सः) वह पराङ्कुश मुनि स्वामीजी (भर्तुः) पति के (देहस्य) देह के (आदरेण) आदर करने से (पतिव्रतायाः) पतिव्रता स्त्री को यदि (अपराधः) अपराध (जायते) उत्पन्न होवे (चेत्) तो (दिव्यमङ्गलविग्रहम्) दिव्यमङ्गल विग्रह को (आदृतवतः) आदर करनेवाले (मम) मुझको (अपराधः) अपराध (भवेत्) होगा (इति) इस प्रकार के (स्वस्य) अपनी (तदीयविषये) भागवतों के विषय में (वर्तमानाम्) वर्तमान (प्रीतिम्) प्रीति को (अवोचत्) कहे हैं । (ईश्वरः) परमेश्वर भगवान् (तत्) उस पराङ्कुश मुनिकी बात को (श्रुत्वा) सुनकर (अति) अत्यन्त (प्रमुदितः) प्रसन्न हुए के (इव) समान (अनेन) इस पराङ्कुश मुनि द्वारा (अहम्) मैं (पराजितः) पराजित हो गया (इति) इस प्रकार के (तद्विषये) उस दिव्यसूरिपराङ्कुशमुनिस्वामीजी के विषय में (व्यामुमोह) अत्यन्त मोहित हो गये हैं ।।खमिति।।

❁

मू०–कञ्चिद्देशविशेषं गत्वा-अनुभवस्य सात्म्यार्थ-मुपकारस्मृत्यर्थं प्रपत्तिकरणसमये परमपदगमनसमये विषह्रदोऽयमिति संसारिणो नावगाहेरन् इति तदवगाह-नार्थम् अनेन संसारिण उज्जीवयितुं प्रपन्नशरीरस्य सर्वे-श्वराभिमतत्वात् अस्मिन् देशे भगवदनुभवस्यापूर्वत्वात् एतदनुमत्या च एतच्छरीरावसाने मोक्षो भवति गतकाल-स्यानुतापः-आगामीकालस्यासहनं च वैष्णवत्वमिति कलिवैरिदासः ॥२९९॥

अर्थ–(कञ्चित्) किसी भी (देशविशेषम्) देश विशेष को (गत्वा) पाकर (अनुभवस्य) अनुभव के (सात्म्यार्थम्) सात्म्य के लिये और (उपकारस्मृत्यर्थम्) उपकार को स्मरण करने के लिये (प्रपत्तिकरणसमये) प्रपत्ति करने के समय में और (परमपदगमनसमये) परमपद जाने के समय में (अयम्) वह (विषह्रदः) विषका तालाब है (इति) इस प्रकार के समझकर (संसारिणः) संसारी जीव (न) नहीं

(अवगाहेरन्) अवगाहन करेंगे, (इति) इस कारण से (तदवगाहनार्थम्) उसमें अवगाहन करने के लिये (अनेन) इस अवगाहन करके (संसारिणः) संसारी जीवों को (उज्जीवयितुम्) उज्जीवन करने के लिये (प्रपन्नशरीरस्य) प्रपन्न के शरीर के (सर्वेश्वराभिमतत्वात्) सर्वेश्वर के अभिमत होने से (अस्मिन्) इस (देशे) देश में (भगवदनुभवस्य) भगवान् के अनुभव के (अपूर्वत्वात्) अपूर्व होने से (च) और (एतदनुमत्या) इसकी अनुमति से (एतच्छरीरावसाने) इस शरीर के अभाव होने पर (मोक्षः) मोक्ष (भवति) होता है। तथा (गतकालस्य) बीते हुए समय का (अनुतापः) पश्चात् ताप करना (च) और (आगामीकालस्य) आने वाले समय का (असहनम्) नहीं सहन करना (वैष्णवत्वम्) वैष्णवता है (इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। इस दो सौ निनाबेकी वार्ता में दो सौ सत्तावन पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९९॥

अब वेदान्ती स्वामीजी के और कलिवैरिदास स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यतिकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कलिवैरिदासः श्रीवेदान्तिनं स्वस्य वैष्णवत्वं जातमिति कस्यामवस्थायां जातायां जानीयात्-इत्यपृच्छत्, स च कस्मिंश्चिच्छ्रीवैष्णवे स्वपुत्रदारादिष्वेव वा स्नेहो जातश्चेत्, श्रीवैष्णवैः क्रूरवाक्ये-उक्ते स्वहृदये भोग्यता बुद्धिर्जाता चेत्, परदारपरद्रव्येषु-आशा नास्ति चेत्, एकान्तीति जानीयात्, स्वदारद्रव्येषु-आशा नश्यति चेत्, परमैकान्तीति जानीयात्, इत्यवोचत् ॥३००॥

अर्थ–(कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (श्रीवेदान्तिनम्) श्रीवेदान्तीस्वामीजी से (स्वस्य) अपने को (वैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता (जातम्) उत्पन्न हुई है (इति) यह (कस्याम्) किस (अवस्थायाम्) अवस्था के (जातायाम्) उत्पन्न होने पर (जानीयात्) जाना जायगा (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और (सः) उस वेदान्ती स्वामीजी ने (कस्मिंश्चित्) किसी भी (श्रीवैष्णवे) श्रीवैष्णव के विषय में (स्वपुत्रदारादिषु) अपने पुत्र स्त्री भाई आदि सम्बन्धियों में (एव) निश्चय

करके (वा) यदि (स्नेहः) स्नेह (जातः) उत्पन्न हो गया हो (चेत्) तो (श्रीवैष्णवैः) श्रीवैष्णवों से (क्रूरवाक्ये) क्रूरवाक्य (उक्ते) कहने पर (स्वहृदये) अपने हृदय में (भोग्यता) भोग्यता (बुद्धिः) बुद्धि (जाता) उत्पन्न हुई हो (चेत्) तो (परदारपरद्रव्येषु) दूसरे की स्त्री में और दूसरे के धन में यदि (आशा) आशा (न) नहीं (अस्ति) है (चेत्) तो (एकान्ती) एकान्ती (इति) इस प्रकार से (जानीयात्) समझना चाहिये। और (स्वदारद्रव्येषु) अपनी स्त्री में और अपने धन में यदि (आशा) आशा (नश्यति) नष्ट हो जाती है (चेत्) तो (परमैकान्ती) परमैकान्ती (इति) इस प्रकार के (जानीयात्) समझना चाहिये (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस तीन सौ की वार्ता में अड़तालीस पद हैं। इति यतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३००॥

अब हेमाम्बाजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ हेमाम्बोक्ता वार्ता ॥

मू०–हेमाम्बोक्ता वार्ता श्रीवैष्णवस्य-आचार्य्यप्रसादितगुरुपरम्परा वैदेह्या हनुमद्दत्ताङ्गुलीयकवत् ॥३०१॥

॥ हेमाम्बास्तुतिः ॥

अर्थ– हेमाम्बा किञ्चिदुन्मील्यनेत्रे श्रीवैष्णवप्रिया।
दृष्ट्वा श्रीवैष्णवान् सर्वान् हरतो भूषणानि तान्।
निमील्य लोचने भूयस्तूष्णीं तस्थौ पतिव्रता ॥२२७॥

(हेमाम्बोक्ता) हेमाम्बा देवीजी की कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (आचार्य्यप्रसादितगुरुपरम्परा) आचार्य्यों से प्रसादित गुरुपरम्परा (वैदेह्याः) श्रीसीतादेवीजी के (हनुमद्दत्ताङ्गुलीयकवत्) हनुमानजी से दी हुई अँगूठी के समान है। इस तीन सौ एक की वार्ता में छः पद हैं। इति हेमाम्बोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०१॥

अब पराशरभट्टाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भट्टार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–भट्टार्यः स्वशिष्यं कञ्चिच्छ्रीवैष्णवं त्वमन्तार्य्यचरणौ प्रणम्य श्रीवैष्णवलक्षणं पृष्ट्वा-आगच्छेत्य

वदत् ॥३०२॥

अर्थ–(भट्टार्य्यः) भट्टारकस्वामीजी (स्वशिष्यम्) अपने शिष्य (कञ्चित्) किसी (श्रीवैष्णवम्) श्रीवैष्णव से (त्वम्) तुम (अनन्तार्य्यचरणौ) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के श्रीचरणों में (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (श्रीवैष्णवलक्षणम्) श्रीवैष्णव के लक्षण को (पृष्ट्वा) पूछकर (आगच्छ) चले आना (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। इस वार्ता में बारह पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०२॥

अब अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के और भट्टारकस्वामीजी के शिष्य के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथानन्तार्य्य-भट्टारकशिष्योक्ता वार्ता ॥

मू०–स चानन्तार्य्यसमीपं गतः, तत्र तद्दिने श्रीवैष्णवा बहवोऽभुञ्जत, स च स्वस्य स्थलालाभात् श्रीवैष्णवभोजनपर्यन्तं तूष्णीमतिष्ठत्, अनन्तार्य्यस्तं दृष्ट्वा भवान् नाभुङ्क्त, चिरं विश्रान्त इत्युक्त्वा तेन साकमन्तर्भुक्त्वा कुतो भवानागतः, इत्यपृच्छत्, स च भट्टार्य्यः-अनन्तार्य्यसमीपे श्रीवैष्णवलक्षणं पृष्ट्वा-आगच्छेति प्रेषितवान्, अनन्तार्य्यः बकवत् कुक्कुटवत् लवणवद्वैष्णवत्वमित्यवदत्, परसमृद्धिसहत्वं परसमृद्धिसमत्वं परसमृद्धिप्रयोजनत्वं परसमृद्ध्येकप्रयोजनत्वं श्रीवैष्णवो भवति, निवृत्तसंसाराशः-संजातपरमपदाश इति अस्यावश्यमपेक्षितानि शरीरस्य-अन्यैरनाक्रमणं शरीरसम्बन्धिषु-आशानभिवृद्धिः, शरीरमाद्रियमाणैरसङ्गतिः, लोकाक्रोशाद् व्यावृत्तिः, शरीरपालनार्थमसेव्यसेवाया निवृत्तिः, संसारिविषये कथमपिरुचिनिवृत्तिः, कृन्तमस्तकविषये मस्तकच्छेदनदोषेण कपालं हस्ते धृत्वा

८६ ८७ ८८ ८९
सञ्चरमाणे-एतदपकृष्टचन्द्रादित्यविषये चानुपायत्वप्रति-
९० ९१ ९२ ९३
पत्तिः, एतच्छरीरिणः-एतत्स्वामिनो भगवतः कैङ्कर्य्यकरणं
९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१
भगवानेवोपाय इति शरणागताः स्वस्यात्मान इत्यनु-
१०२ १०३ १०४ १०५ १०६
संधानम्, एतद्विषये विहारादिष्वपि दुर्वाक्याकथनम्, एत-
१०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३
द्विषयदुर्वाक्यं वदद्भिः सङ्गतौ स्वश्रोत्रे पिधायान्यत्र गमनं
११४ ११५ ११६ ११७ ११८
भगवन्मन्दिरे तद्द्वारि चोच्छिष्टाकरणं तन्मन्दिराद्यभिमुखं
११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४
पादप्रसारणाद्यकरणम् आपत्कालेऽपि कदाचित्सम्भवे-अनर्थो
१२५ १२६ १२७ १२८ १२९
जात इत्यनुतापश्चेति ॥३०३॥

अर्थ–(च) और (सः) वह भट्टारक स्वामीजी के शिष्य (अनन्तार्य्यसमीपम्) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के पास में (गतः) चले गये। और (तत्र) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के उस स्थान में (तद्दिने) उस दिन (बहवः) बहुत से (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (अभुञ्जत) भोजन किये। (च) और (सः) वह भट्टारक स्वामीजी के शिष्य (स्वस्य) अपने के (स्थलालाभात्) स्थल के लाभ नहीं होने से (श्रीवैष्णवभोजनपर्यन्तम्) श्रीवैष्णवों के भोजन समाप्ति पर्यन्त (तूष्णीम्) चुपचाप (अतिष्ठत्) ठहर गये। इसके बाद (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य स्वामीजी (तम्) उस भट्टारक स्वामीजी के शिष्य को (दृष्ट्वा) देखकर (भवान्) आप (न) नहीं (अभुङ्क्त) भोजन किये हैं (चिरम्) बहुत देर से (विश्रान्तः) विश्राम किये हैं (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (तेन) उस भट्टारक स्वामीजी के शिष्य के (साकम्) साथ (अन्तः) पर्दे के भीतर (भुक्त्वा) भोजनकर (कुतः) कहाँ से (भवान्) आप (आगतः) आये हैं (इति) इस प्रकार (अपृच्छत्) पूछे। (च) और (सः) भट्टारक स्वामीजी के शिष्य ने कहा कि (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी ने (अनन्तार्य्यसमीपे) अनन्ताचार्य स्वामीजी के समीप में (श्रीवैष्णवलक्षणम्) श्रीवैष्णवों के लक्षण को (पृष्ट्वा) पूछकर (आगच्छ) चले आना (इति) इस प्रकार के कहकर (प्रेषितवान्) मुझको भेजा है। तब (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी ने (वकवत्) बकुला पक्षी के समान (कुक्कुटवत्) मुर्ग्गा पक्षी के समान और (लवणवत्) रामरस के समान (वैष्णवत्वम्) वैष्णवता है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा। और (परसमृद्धिसहत्वम्) दूसरे की समृद्धि को सहना (परसमृद्धिसमत्वम्) दूसरे की समृद्धि में समता रखना (परसमृद्धिप्रयोजनत्वम्) दूसरे की समृद्धि में प्रयोजनता और (परसमृद्ध्येकप्रयोजनत्वम्)

दूसरे की समृद्धि में एक प्रयोजनता ही (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (भवति) होता है। तथा (निवृत्तसंसाराशः) संसार की आशा से रहित और (संजातपरमपदाशः) परमपदकी आशा से युक्त (इति) इस प्रकार से श्रीवैष्णव होता है। (अस्य) इस श्रीवैष्णव को (अवश्यम्) जरूर (अपेक्षितानि) अपेक्षित ये अधोलिखित हैं। (शरीरस्य) देह के (अन्यैः) दूसरे देवतान्तरादिकों से (अनाक्रमणम्) आक्रमण नहीं होना। तथा (शरीरसम्बन्धिषु) देह के सम्बन्धियों में (आशानभिवृद्धिः) आशा की वृद्धि नहीं करना। और (शरीरम्) देह को (आद्रियमाणैः) आदर करनेवालों से (असङ्गतिः) सङ्गति नहीं करना। तथा (लोकाक्रोशात्) लोक की निन्दा से (व्यावृत्तिः) रहित होना। और (शरीरपालनार्थम्) देह की रक्षा करने के लिये (असेव्यसेवायाः) नहीं सेवा करने योग्य मुस्लमान और ईसाई आदि की सेवा का (निवृत्तिः) परित्याग करना। तथा (संसारविषये) संसारी जीवों के विषय में (कथम्) किसी प्रकार से (अपि) भी (रुचिनिवृत्तिः) प्रीति की निवृत्ति करना है। (कृन्तमस्तकविषये) शिवजी के द्वारा पाँचवाँ शिर काटा गया है जिसके ऐसे ब्रह्मा के विषय में (मस्तकच्छेदनदोषेण) सिर के कटना रूप दोष से। और (कपालम्) ब्रह्माजी के काटे हुए पाँचवें सिर के कपाल को (हस्ते) हाथ में (धृत्वा) धारणकर (संचरमाणे) भ्रमण करनेवाले शिवजी के विषय में ब्रह्महत्या रूप दोष से (च) और (एतदपकृष्टचन्द्रादित्यविषये) ब्रह्मा तथा शिव इन दोनों से अपकृष्ट चन्द्रमा और सूर्य्य के विषय में (अनुपायत्वप्रतिपत्तिः) उपायता की प्रतिपत्ति नहीं करना, (एतच्छरीरिणः) इन सबों के शरीरी (एतत्स्वामिनः) इन सबों के स्वामी (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् का (कैंकर्य्यकरणम्) कैंकर्य्य करना। और (भगवान्) श्रीमन्नारायण भगवान् (एव) निश्चय करके (उपायः) भगवत्प्राप्ति में उपाय हैं (इति) इस प्रकार के (शरणागताः) शरण में आये हुए (स्वस्य) अपनी (आत्मानः) आत्मा हैं (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना। (एतद्विषये) इस भगवत् के विषय में (विहारादिषु) विहार आदि में (अपि) भी (दुर्वाक्याकथनम्) दुर्वाक्य को नहीं कहना। (एतद्विषयदुर्वाक्यम्) इस भगवद्विषय में दुर्वाक्य को (वदद्भिः) कहनेवालों से (सङ्गतौ) संगति होनेपर (स्वश्रोत्रे) अपने दोनों कानों को (पिधाय) बन्दकर (अन्यत्र) दूसरी जगहपर (गमनम्) चला जाना। (भगवन्मन्दिरे) भगवान के मन्दिर में (च) और (तद्द्वारि) भगवान् के मन्दिर के द्वार पर (उच्छिष्टाकरणम्) जूठा नहीं करना। तन्मन्दिराद्यभिमुखम्) भगवान् के मन्दिर आदि के सामने (पादप्रसारणाद्यकरणम्) पैर प्रसारण आदि नहीं करना। और आदि शब्द से अधोवायु विमोक्षण नहीं करना, रोदन नहीं करना, शोर नहीं करना, हास्य नहीं करना। (आपत्काले) आपत्ति के समय में (अपि) भी (कदाचित्) कभी (संभवे) सम्भव कुछ होने पर (अनर्थः) अनर्थ (जातः) उत्पन्न हुआ है (इति)

इस प्रकार के (अनुतापः) पीछे से ताप करना (च) भी है (इति) इस प्रकार के अनन्ताचार्य्य स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि ब्रह्मा के पाँचवें सिर को शिवजी ने काटा है और शिवजी के हाथ में ब्रह्मा का पाँचवाँ कपाल सट गया है ? इस प्रश्न का उत्तर भारतसार के आदि पर्व में लिखा है कि–

तदा चैकेन वक्त्रेण निःसृतः खरवत् स्वरः। दुर्विनीतं च विज्ञाय हेत्वर्थं ब्राह्मणस्य च ॥ भार० आदिप० अ० ३, श्लो० १० ॥ त्रोटितं तत्करे लग्नं रुद्रेण पञ्चमं शिरः। न पपात धरादेशे ब्रह्मभालं करे स्थितम् ॥११॥

ब्रह्माजी जब शिवजी की स्तुति करने लगे तब ब्रह्माजी के एक मुख से गदहे के स्वर के समान शब्द निकला, तो ब्रह्मा को उद्धत जानकर उपदेश देने के लिये ॥१०॥ ब्रह्मा के पाँचवें सिर को शिवजी ने काट लिया तब कटा हुआ वह ब्रह्मा का शिर शिवजी के हाथ में सट गया पृथ्वी पर नहीं गिरा ॥११॥ इस तीन सौ तीसरी वार्ता में एक सौ उन्तीस पद हैं। इत्यनन्तार्य्यभट्टारकशिष्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०३॥

अब पराशरभट्टाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथभट्टारकोक्तावार्ता ॥

मू०–भट्टार्य्यं कश्चिद् देवतान्तराणि श्रीवैष्णवाः कुतो नानुवर्तन्ते इत्यपृच्छत्, स च प्रमाणविरोधे हि सन्देहो भवति, अत्र च प्रमाणविरोधाभावात्सन्देहो नास्तीत्यवदत्, अयमर्थः सत्वप्रचुरान् रजस्तमःप्रचुरा अनुवर्तन्ते, सत्वप्रचुरा रजस्तमःप्रचुरान् नानुवर्तन्ते, इति ॥३०४॥

अर्थ–(भट्टार्यम्) भट्टारक स्वामीजी से (कश्चित्) किसी पुरुष ने (देवतान्तराणि) रुद्र आदि देवतान्तरों को (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (कुतः) किस कारण से (न) नहीं (अनुवर्तन्ते) अनुवर्तन करते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सः) उस भट्टारक स्वामीजी ने (प्रमाणविरोधे) प्रमाण में विरोध होने पर (हि) निश्चय करके (सन्देहः) सन्देह (भवति) होता है। (च) और (अत्र) इस विषय में (प्रमाणविरोधाभावात्) प्रमाण के विरोध का अभाव होने से (सन्देहः) सन्देह (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा। (अयम्)

यह (अर्थः) अर्थ (सत्वप्रचुरान्) सत्वगुण प्रचुरों को (रजस्तमःप्रचुराः) रजोगुण तमोगुण प्रचुरवाले (अनुवर्तन्ते) अनुवर्तन करते हैं। (सत्वप्रचुराः) सत्वप्रचुरवाले (रजस्तमःप्रचुरान्) रजोगुण तमोगुण प्रचुरों को (न) नहीं (अनुवर्तन्ते) अनुवर्तन करते हैं (इति) इस प्रकार के भट्टारक स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ चार की वार्ता में बत्तीस पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०४॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी और किसी पुरुष के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं—

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
मू०—कलिवैरिदासं कश्चिद्भगवन्तं विना देवतान्तराणि न भजनीयानीति वदन्तो भवन्तो नित्यनैमित्तिकादिषु-
१२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
अग्नीन्द्रादीन् कथं भजन्ते, आलये न कथमित्यपृच्छत्, स
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८
चाग्निहोत्रादिषु-अग्निमुपासते, न श्मशाने-अग्निमित्य-
२९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६
वदत्, अयमाशयः-उभयत्र विशेषोऽस्ति, नित्यादिषु भग-
३७ ३८ ३९
वत्प्रकारबुद्ध्या क्रियमाणस्योपासनस्य भगवदुपासनत्वेन
४० ४१ ४२ ४३
विधानात् आलयप्रतिष्ठायां परापरव्यत्ययकृद्भिः-तामस-
४४ ४५
पुरुषैः वेदविरुद्धागममन्त्रप्रक्रियया देवतान्तराणां प्रति-
४६ ४७ ४८ ४९ ५०
ष्ठितत्वात् तत्र भगवत्प्रकारबुद्ध्या-उपासनाविध्यभावात्
५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६
देवान्तरवर्गेषु दूरतो वर्जनीयत्वं रुद्रस्य सत्त्वतत्वानां च-
५७ ५८ ५९ ६०
अत्यन्तविरोधितमः प्राचुर्य्यात् नित्यादिष्विव-आलयेषु
६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६६७ ६८
भगवत्प्रकारबुद्ध्या-उपासनमुचितं किमिति चेन्न, तथो-
६९ ७० ७१ ७२
पासनविध्यभावात् त्याज्यतया ज्ञातव्याः, भगवद्व्यतिरिक्त-
७३ ७४ ७५ ७६
विषयाः, स्वीकारस्य-उपादेयतया ज्ञातव्यो भगवद्विषयः,
७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२
त्यागस्य च विषयो न भवतीति ॥३०५॥

अर्थ–(कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजी से (कश्चित्) किसी पुरुष ने (भगवन्तम्) श्रीमन्नारायण भगवान् के (विना) बिना (देवतान्तराणि) अन्य रुद्रादिक देवता (न) नहीं (भजनीयानि) भजन करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार के (वदन्तः) कहनेवाले (भवन्तः) आप सब (नित्यनैमित्तिकादिषु) नित्य कर्म में तथा नैमित्तिक कर्म में और आदि शब्द से काम्यकर्म में (अग्नीन्द्रादीन्) अग्नि तथा इन्द्र आदिक देवताओं को (कथम्) कैसे (भजन्ते) भजन करते हैं। और (आलये) देवालय में (कथम्) किस कारण से (न) अग्नि और इन्द्र आदिक देवताओं को नहीं भजन करते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और तब (सः) उस कलिवैरिदास स्वामीजी ने (अग्निहोत्रादिषु) अग्निहोत्रादिक कर्मों में (अग्निम्) अग्नि की (उपासते) सब लोग उपासना करते हैं। (श्मशाने) श्मशान में (अग्निम्) अग्नि की (न) नहीं उपासना करते हैं (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। (अयम्) इस कथन का यह (आशयः) अभिप्राय है कि (उभयत्र) नित्यनैमित्तिकादिक कर्मों में जो अग्नि तथा इन्द्र आदिक देवताओं की उपासना की जाती है उसमें और उन उन देवताओं के मन्दिरों में जो अग्नि और इन्द्र आदिक देवताओं की उपासना की जाती है इन दोनों में (विशेषः) विशेष (अस्ति) है (नित्यादिषु) नित्य नैमित्तिकादिक कर्मों में (भगवत्प्रकारबुद्ध्या) भगवान् के प्रकार की बुद्धि से (क्रियमाणस्य) की हुई (उपासनस्य) उपासना के (भगवदुपासनत्वेन) भगवान् के उपासनत्व द्वारा (विधानात्) विधान होने से (आलयप्रतिष्ठायाम्) देवालय की प्रतिष्ठा में (परापरव्यत्ययकृद्भिः) पर और अपर के व्यत्यय करनेवाले (तामसपुरुषैः) तामस पुरुषों द्वारा (वेदविरुद्धागममन्त्रप्रक्रियया) वेद से विरुद्ध आगम के मन्त्र की प्रक्रिया से (देवतान्तराणाम्) रुद्र आदिक देवतान्तरों की (प्रतिष्ठितत्वात्) प्रतिष्ठा होने से (तत्र) उन देवतान्तरों में (भगवत्प्रकारबुद्ध्या) भगवान् के प्रकार की बुद्धि से (उपासनाविध्यभावात्) उपासना की विधि के अभाव होने से (देवतान्तरवर्गेषु) देवतान्तरों के संघ में (दूरतः) दूर से (वर्जनीयत्वम्) वर्जने योग्य (रुद्रस्य) रुद्र के है (च) और क्योंकि (सत्त्वतत्वानाम्) सत्त्व तत्वों के (अत्यन्तविरोधि) अत्यन्त विरोध करनेवाला (तमःप्राचुर्य्यात्) तमोगुण के रुद्र में अधिक होने से (नित्यादिषु) नित्य और नैमित्तिकादिक कर्मों में अग्नि आदिक देवताओं के (इव) समान (आलयेषु) देवालयों में (भगवत्प्रकारबुद्ध्या) भगवान् के प्रकार की बुद्धि से (उपासनम्) देवतान्तरों की उपासना करना (उचितम्) उचित है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (चेत्) यदि कहो तो (न) नहीं हो सकता है (तथा) उस प्रकार के (उपासनविध्यभावात्) उपासना की विधि के अभाव होने से (त्याज्यतया) त्याज्यत्वेन (ज्ञातव्याः) जानने योग्य (भगवद्व्यतिरिक्तविषयाः) भगवान् से अन्य विषय हैं।

(स्वीकारस्य) स्वीकार के (उपादेयतया) उपादेयता करके (ज्ञातव्यः) जानने योग्य (भगवद्विषयः) भगवद्विषय है (च) और (त्यागस्य) त्याग का (विषयः) विषय भगवद्विषय (न) नहीं (भवति) होता है (इति) इस प्रकार का कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। वस्तुतः नित्यादि कर्मों में जो अग्नि आदिक शब्द आया है वह श्रीमन्नारायण भगवान् का ही वाचक है क्योंकि लिखा है कि

॥ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋग्वे० २, ३, २२ ॥

ब्राह्मण सब एक श्रीमन्नारायण भगवान् को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, यम, वायु आदिक बहुत प्रकार के कहते हैं ॥२२॥ और भी लिखा है कि– **॥ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् ॥ श्वेताश्व० अ० ६, मं० १८ ॥** जो श्रीमन्नारायण भगवान् सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं ॥१८॥ और कैवल्योपनिषद् में लिखा है कि–

॥ स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरःपरमः स्वराट्। स एव विष्णुः स प्राणः स कालोग्निः स चन्द्रमा ॥ कैवल्य० खं० १, श्रु० ८ ॥

वह श्रीमन्नारायण भगवान् ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, परब्रह्म, विष्णु, प्राण, काल, अग्नि और चन्द्रमा हैं ॥८॥ और लिखा है कि **॥ शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् ॥ नारायण० श्रु० २ ॥** शुद्ध देव एक नारायण हैं दूसरा कोई भी नहीं है ॥२॥ और भी लिखा है कि–

॥ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः। तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ यजु० अ० ३२, मं० १ ॥

वह श्रीमन्नारायण भगवान् ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, जल और प्रजापति हैं ॥१॥ इस तीन सौ पाँचवीं वार्ता में बयालीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०५॥

अब आल्कुण्डवल्लियति स्वामीजी की वार्ता कहते हैं कि–

॥ अथ आल्कुण्डवल्लियत्युक्ता वार्ता ॥

मू०–"तीर्थस्य लोकमाक्रान्तचरणयोः पुष्पमाला" मिति पाशुरे प्रस्तुतं देवतान्तरभजनम्, अर्जुनस्य रुद्रविषये– एकास्त्रलाभार्थं भगवन्नियोगेनागतं श्रीवैष्णवत्वं त्रिविधम्,

१६ १७ १८ १९ २० २१ २२
सत्कारयोग्यं सहवासयोग्यं सदानुभवयोग्यं चेति सत्कार-
२३ २४
योग्याः रूपनामप्रधानाः, रूपनामोच्चारणप्रधानाः, अभि-
२५ २६ २७ २८ २९
रुचिप्रधनाश्च, सहवासयोग्या ज्ञानप्रधानाः, अनुष्ठानप्रधानाः
३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
अङ्गीकारप्रधानाश्च, सदानुभवयोग्याः, आर्तिप्रधानाः, अभि-
३६ ३७ ३८ ३९
निवेशप्रधानाः, अभिरुचिप्रधानाश्चेति, आल्कुण्डवल्लि-
यतिः ॥३०६॥

॥ कासारयोगिस्तुतिः ॥

अर्थ- हेमाब्जिनीहेमसरोजगर्भाच्छीपाञ्जनयोजनि तत्र योगी ।
तारे हरे राश्वयुजाख्यमासे समस्तजीवावनकर्महेतुः ॥३२८॥

(तीर्थस्य) तीर्थ के (लोकम्) लोक को (आक्रान्तचरणयोः) आक्रमण करने वाले श्रीचरणों के (पुष्पमालाम्) फूल की माला को (इति) इस प्रकार के (पाशुरे) पाशुर में (देवतान्तरभजनम्) देवतान्तरों का भजन (प्रस्तुतम्) प्रस्तुत है । (अर्जुनस्य) अर्जुन के (रुद्रविषये) रुद्रदेव के विषय में (एकास्त्रलाभार्थम्) एक प्रधान पशुपति अस्त्र के प्राप्त होने के लिये (भगवन्नियोगेन) व्यासरूपधारी श्रीमन्नारायण भगवान् के नियोग से (आगतम्) देवतान्तर का भजन आया है । (श्रीवैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता (त्रिविधम्) तीन प्रकार की है । (सत्कारयोग्यम्) सत्कार करने योग्य १, तथा (सहवासयोग्यम्) सहवास करने योग्य २, (च) और (सदा) हमेशा (अनुभवयोग्यम्) अनुभव करने योग्य ३, है (इति) इस प्रकार श्रीवैष्णवता तीन प्रकार से होती है । (सत्कारयोग्याः) सत्कार करने योग्य (रूपनामप्रधानाः) रूप और नाम प्रधानवाले होते हैं १ । तथा (रूपनामोच्चारणप्रधानाः) रूप और नाम को उच्चारण प्रधानवाले होते हैं २ । (च) और (अभिरुचिप्रधानाः) अभिरुचि प्रधानवाले होते हैं ३ । (सहवासयोग्याः) सहवास करने योग्य (ज्ञानप्रधानाः) ज्ञान प्रधान होनेवाले होते हैं १ । तथा (अनुष्ठानप्रधानाः) आचरण प्रधानवाले होते हैं २, (च) और (अङ्गीकारप्रधानाः) अङ्गीकार प्रधानवाले होते हैं ३, (सदा) हमेशा (अनुभवयोग्याः) अनुभव करने योग्य (आर्तिप्रधानाः) आर्ति प्रधानवाले होते हैं १, तथा (अभिनिवेशप्रधानाः) अभिनिवेश प्रधानवाले होते हैं २, (च) और (अभिरुचिप्रधानाः) अभिरुचि प्रधानवाले होते हैं ३, (इति) इस प्रकार के (आल्कुण्डवल्लियतिः) आल्कुण्डवल्लियति स्वामीजी ने कहा है । इस तीन सौ छब्बीसवीं बातों में उन्तालीस पद हैं । इति आल्कुण्डवल्लियतियुक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०६॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीवैष्णवो नाम तत्त्वज्ञाननिष्ठः तत्त्वज्ञान माचार्य्यविषयीकारलभ्यम्, आचार्य्यविषयीकारश्च तत्त्वं मया ज्ञातव्यमित्यभिनिवेशातिशयपूर्वकभजनलभ्यः, अस्या इच्छाया निदानंभगवद्विषये-अद्वेषः, तादृशाद्वेषस्य कारणं भगवत्कटाक्षः भगवत्कटाक्षस्य को हेतुरिति चेत्, अस्य संसारिणोऽनादिकालं भगवद्द्वेषदूषितत्वात् तेन निरूपणीयः कोऽपि हेतु र्नास्ति, अतो भगवतो निर्हेतुकः कटाक्ष स्तर्ही-श्वरस्य वैषम्यनैर्घृण्ये प्रसज्येते-इति चेन्न, चेतनेन अज्ञा-तानामन्यपरवृत्तिषु जातानां केषाञ्चित्सुकृतानां निरूपणा-द्वैषम्यनैर्घृण्याप्रसक्तेः, नन्वेतादृशसुकृतहेतुकत्वात्कथं निर्हे-तुकत्वं कटाक्षस्येति चेन्न, प्रच्युतं विस्मृतं च पदार्थ-मादायागत्य कश्चिदर्पयति चेत्, अस्माकं वस्तु दत्तवानय-मिति कृतज्ञो नानुसंदधाति, तथा स्वेनाज्ञातस्य भगवता निरूपणात् कृतज्ञस्यास्याधिकारिणोऽभिसन्ध्या निर्हेतुक-इत्युच्यते, एतस्य यादृच्छिकसुकृतहेतुः सौहार्दम्, ननु तस्य सौहार्दस्य भगवतः सदा सर्वात्मविषयस्य सत्वात् कदाचित् कस्यचिद्यादृच्छिकसुकृतं कथमुत्पादयतीति चेन्न, बहुकालमनुभूतस्य कस्यचित्पापस्य विरामे-इदं सौहार्द-मस्य यादृच्छिकसुकृतस्य कारणं भवति, यथा जपाकु-सुमच्छाया पदार्थेषु बहुषु सत्स्वपि स्फटिके प्रतिफलति, तथा निष्पापे स्वच्छे अधिकारिणि सौहार्दं फलतीति कलि-

१३७
वैरिदासः ॥३०७॥

अर्थ–(श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (नाम) माने (तत्त्वज्ञाननिष्ठः) ब्रह्म जीव माया इन तीन तत्त्वों के ज्ञान में निष्ठ होना है। तथा (तत्त्वज्ञानम्) ब्रह्म जीव माया इन तत्त्वों का ज्ञान (आचार्यविषयीकारलभ्यम्) आचार्य्य के विषयीकार से लाभ होने योग्य है। (च) और (आचार्य्यविषयीकारः) आचार्य का विषयीकार (तत्त्वम्) ब्रह्म जीव माया ये तत्त्व (मया) मुझसे (ज्ञातव्यम्) जानने योग्य हैं (इति) इस प्रकार के (अभिनिवेशातिशयपूर्वकभजनलभ्यः) अत्यन्त अभिनिवेशपूर्वक भजन से लाभ होने योग्य है। (अस्याः) इस (इच्छायाः) इच्छा के (निदानम्) कारण (भगवद्विषये) भगवान् के विषय में (अद्वेषः) द्वेष नहीं करना है। और (तादृशाद्वेषस्य) भगवान् का द्वेष नहीं करने का (कारणम्) कारण (भगवत्कटाक्षः) श्रीमन्नारायण भगवान का कटाक्ष है। (भगवत्कटाक्षस्य) श्रीमन्नारायण भगवान् के कटाक्ष का (कः) कौन (हेतुः) कारण है (इति) इस प्रकार के (चेत्) यदि कहो तो सुनो (अस्य) इस (संसारिणः) संसारी जीव के (अनादिकालम्) अनादि काल तक (भगवद्द्वेषदूषित्वात्) भगवान् के द्वेष से दूषित होने से (तेन) उस करके (निरूपणीयः) निरूपण करने योग्य (कः) कोई (अपि) भी (हेतुः) कारण (न) नहीं (अस्ति) है (अतः) इस कारण से (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (निर्हेतुकः) बिना कारण के (कटाक्षः) कटाक्ष होता है। (तर्हि) तब तो (ईश्वरस्य) परमेश्वर के (वैषम्यनैर्घृण्ये) विषमता और निर्घृणता ये दो दोष (प्रसज्येते) लगेंगे (इति) इस प्रकार के (चेत्) यदि कहो तो (न) दोष नहीं लगेंगे (चेतनेन) चेतन जीव करके (अज्ञातानाम्) नहीं जाने हुए के और (अन्यपरवृत्तिषु) अन्यपरक वृत्तियों में (जातानाम्) उत्पन्न भये हुए (केषाञ्चित्) किसी भी (सुकृतानाम्) सुकृतों के (निरूपणात्) निरूपण होने से (वैषम्यनैर्घृण्याप्रसक्तेः) विषमता और निर्घृणता इन दोनों दोषों की प्रसक्ति नहीं होने से (ननु) निश्चय करके (एतादृशसुकृतहेतुकत्वात्) इस प्रकार के सुकृत के कारण से (कथम्) कैसे (निर्हेतुकत्वम्) बिना कारण के (कटाक्षस्य) भगवत्कटाक्ष का होना है (इति) इस प्रकार के (चेत्) यदि कहो तो (न) नहीं हो सकता है क्योंकि (प्रच्युतम्) गिरे हुए (च) और (विस्मृतम्) विस्मृत हुए (पदार्थम्) पदार्थ को (आदाय) लेकर (आगत्य) आ करके यदि (कश्चित्) कोई भी पुरुष (अर्पयति) समर्पण करता है (चेत्) तो (अस्माकम्) हम सबों के (वस्तु) पदार्थ को (अयम्) इसने (दत्तवान्) दिया है (इति) इस प्रकार के (कृतज्ञः) कृतज्ञ पुरुष (न) नहीं (अनुसंदधाति) अनुसंधान करता है (तथा) वैसे ही (स्वेन) अपने से (अज्ञातस्य) नहीं जानी हुई वस्तु के (भगवता) श्रीमन्नारायण भगवान् से (निरूपणात्) निरूपण होने से (कृतज्ञस्य) कृतज्ञ

(अस्य) इस (अधिकारिण:) अधिकारी के (अभिसन्ध्या) अच्छे प्रकार का ध्यान (निर्हेतुक:) बिना कारण का है (इति) इस प्रकार से (उच्यते) कहा जाता है। (एतस्य) इसके (यादृच्छिकसुकृतहेतु:) यादृच्छिक सुकृत का कारण (सौहार्दम्) सुहृदता है। (ननु) निश्चय करके (तस्य) उस (सौहार्दस्य) सुहृदता के (भगवत:) श्रीमन्नारायण भगवान् का (सदा) हमेशा (सर्वात्मविषयस्य) सब की आत्मा के विषय के (सत्वात्) होने से (कदाचित्) कभी भी (कस्यचित्) किसी के (यादृच्छिकसुकृतम्) यादृच्छिक सुकृत को (कथम्) कैसे (उत्पादयति) उत्पन्न करता है, (इति) इस प्रकार के (चेत्) यदि कहो तो (न) नहीं हो सकता है, (बहुकालम्) बहुत समय तक (अनुभूतस्य) अनुभव किये हुए (कस्यचित्) किसी भी (पापस्य) पापके (विरामे) विराम होने पर (इदम्) यह (सौहार्दम्) सुहृदता (अस्य) इसके (यादृच्छिकसुकृतस्य) यादृच्छिक सुकृतका (कारणम्) कारण (भवति) होता है। (यथा) जैसे (जपाकुसुमच्छाया) ओड़हुल नाम के लाल फूल की छाया (बहुषु) बहुत से (पदार्थेषु) पदार्थों के (सत्सु) रहनेपर (अपि) भी (स्फटिके) स्फटिक के ऊपर ही (प्रतिफलति) दिखाई पड़ती है, (तथा) वैसे ही (निष्पापे) बिना पाप के (स्वच्छे) निर्मल (अधिकारिणि) अधिकारी के विषय में (सौहार्दम्) सुहृदता (फलति) फलीभूत होती है (इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदास:) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ सातवीं वार्ता में एक सौ सैंतिस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्त्ताव्याख्यानम् ॥३२७॥



अब वेदान्ती स्वामीजी के और कलिवैरिदास स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यतिकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–कश्चित्[१] स्वात्मानं[२] वैष्णवत्वेन[३] कीदृशज्ञानोत्पत्तौ[४] जानीयात्[५] इति वेदान्तिनं[६] कलिवैरिदासोऽपृच्छत्[७], स च[८] भगवद्भागवतविषयेषु-उच्छ्राये[९] दृष्टे[१०] मनसि[११] कालुष्यानुत्पत्तौ[१२]-स्वात्मानं[१३] वैष्णवं[१४] जानीयात्[१५], कालुष्योत्पत्तौ[१६] मम[१७] भगवता[१८] सम्बन्धो[१९] नास्ति[२०], किं[२१] सम्बन्धज्ञानं[२२] वा[२३] न[२४] जातमित्यनुतपे-दित्यवोचत्[२५] ॥३०८॥

अर्थ–(कश्चित्) कोई भी पुरुष (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (वैष्णवत्वेन) श्रीवैष्णवता करके (कीदृशज्ञानोत्पत्तौ) किस प्रकार के ज्ञान उत्पन्न होने पर (जानीयात्) जानेगा (इति) इस प्रकार के (वेदान्तिनम्) वेदान्ती स्वामीजी से (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सः) वह वेदान्ती स्वामीजी (भगवद्भावतविषयेषु) भगवत् और भागवत के विषय में (उच्छ्राये) वृद्धि (दृष्टे) देखनेपर (मनसि) अपने मन में (कालुष्यानुत्पत्तौ) कलुषता के नहीं उत्पन्न होने पर (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (वैष्णवम्) श्रीवैष्णव (जानीयात्) जाने। (कालुष्योत्पत्तौ) और अपने मन में कलुषता के उत्पन्न होने पर (मम) मेरा (भगवता) श्रीमन्नारायण भगवान् के साथ (सम्बन्धः) सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है (किम्) क्या (वा) अथवा (सम्बन्धज्ञानम्) भगवत् के सम्बन्ध का ज्ञान (न) नहीं (जातम्) उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकार के (अनुतपेत्) पीछे से ताप करे (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस तीन सौ आठवीं वार्ता में चौंतीस पद हैं। इति यतिकलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०८॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–दृष्टस्य[१] जिह्वाप्रसारणाभावः[२], अदृष्टस्य[३] हस्तप्रसारणाभावश्च[४], वैष्णवलक्षणमिति[५] कलिवैरिदासः[६] ॥३०९॥

अर्थ–(दृष्टस्य) देखे हुये पदार्थ के (जिह्वाप्रसारणाभावः) जीभ के फैलाने का अभाव होना (च) और (अदृष्टस्य) नहीं देखे हुए पदार्थ के (हस्तप्रसारणाभावः) हाथ फैलाने का अभाव होना (वैष्णवलक्षणम्) वैष्णव का लक्षण है (इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में आठ पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३०९॥

अब श्रीकृष्णपाद स्वामीजी के और एक श्रीवैष्णव के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीकृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीकृष्णपादं[१] कश्चिच्छ्रीवैष्णवः[२] श्रीवैष्णवत्वं[३] नाम[४] [५]

सर्वोपायशून्यत्वमुतेतरविषये विरक्तिरित्यपृच्छत्, उत सिद्धोपायस्वीकारः, उत भगवत्प्रेम इत्यपृच्छत्, स च सर्वोपायशून्यत्वं संसारिसाधारणमितरविषयेविरक्तिः क्षपणसाधारणं सिद्धोपायस्वीकारः केवलसाधारणः, भगवत्प्रेम एकायनसाधारणः, अत एतावन्न भवति, किन्त्वेतत्सहितः-भगवदनन्यार्हशेषत्वज्ञानजनितो दान्तिविशेषः, स च परपरिभवे निर्दोषत्वानुसन्धानं निर्भरत्वानुसन्धानमुपकारस्मृतिश्चेत्यवोचत् ॥३१०॥

अर्थ–(श्रीकृष्णपादम्) श्रीकृष्णपाद स्वामीजी से (कश्चित्) किसी (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव ने (श्रीवैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवत्व (नाम) माने (सर्वोपायशून्यत्वम्) सब उपायों से रहित होना है १, (उत) या (इतरविषये) भगवान् से अतिरिक्त विषय में (विरक्तिः) विरक्ति होना है २, (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा है। और (उत) या (सिद्धोपायस्वीकारः) सिद्ध साधन का स्वीकार करना है ३, (उत) या (भगवत्प्रेमः) भगवान् में प्रेम करना है ४, (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा है। (च) और (सः) वह कृष्णपाद स्वामीजी (सर्वोपायशून्यत्वम्) सब उपायों से रहित होना (संसारिसाधारणम्) संसारी जीवों को साधारण है। तथा (इतरविषये) भगवान् से अतिरिक्त विषय में (विरक्तिः) विरक्ति होना (क्षपणसाधारणम्) क्षपणों को साधारण है। और (सिद्धोपायस्वीकारः) सिद्ध साधन का स्वीकार करना (केवलसाधारणः) केवलों को साधारण है। और (भगवत्प्रेमः) भगवान् में प्रेम करना (एकायनसाधारणः) एकायनों को साधारण है। (अतः) इस कथन से (एतावत्) इतना ही (न) नहीं (भवति) होता है (किन्तु) लेकिन (एतत्सहितः) इन सबों के सहित (भगवदनन्यार्हशेषत्वज्ञानजनितः) भगवान् के अनन्यार्ह शेष के ज्ञान से उत्पन्न हुआ (दान्तिविशेषः) दान्तिविशेष है। (च) और (सः) वह दान्तिविशेष (परपरिभवे) दूसरे के अनादर करने पर (निर्दोषत्वानुसन्धानम्) दोष रहित अनुसन्धान करना तथा (निर्भरत्वानुसन्धानम्) निर्भरता को अनुसन्धान करना (च) और (उपकारस्मृतिः) उपकारको स्मरण करना (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। इस तीन सौ दसवीं वार्ता में पैंतालिस पद हैं। इति श्रीकृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३१०॥

अब तिरिनगरिपुल्लै स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ तिरिनगरिपुल्लैगदिता वार्ता ॥

मू०–श्रीवैष्णवत्वम्-नाम रूपप्राधान्यम्, चिह्नप्राधान्यं मुक्तिप्राधान्यं क्रियाप्राधान्यं सम्बन्धविशेषप्राधान्यं ध्यान-प्राधान्यमित्येतेष्वेकमपि न भवति, किन्तु भागवतप्राधान्य-मेव प्राधानं चतुर्भि ज्ञातं वैष्णवत्वं न वैष्णवत्वं किन्तु नारायणेन ज्ञातं वैष्णवत्वमेव वैष्णवत्वं लोको नगरञ्च यथा जानीयात्, तथा नमो नारायणायेत्यनेन भवितव्यं लोकेन वैष्णव इति त्याज्यः, नगरेण वैष्णव इति स्वीकार्य्यः, लोकः संसारः, नगरं परमपदमभिमतदिव्यदेशाः ज्ञाना-धिकाः श्रीवैष्णवाश्चेति तिरिनगरिपुल्लैः ॥३११॥

॥ भक्तिसारस्तुतिः ॥

अर्थ- सा गर्भमाधत्त मुनेश्च पत्नी सुदर्शनांशेन तदानुविष्टम् ।
पपात गर्भो भुवि पौषमासे मघाभिधाने महनीयसारे ॥२२९॥

(श्रीवैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता (नाम) माने (रूपप्राधान्यम्) रूप की प्रधानता १, (चिह्नप्राधान्यम्) चिह्न की प्रधानता २, (उक्तिप्राधान्यम्) उक्तिकी प्रधानता ३, (क्रियाप्राधान्यम्) क्रिया की प्रधानता ४, (सम्बन्धविशेषप्राधान्यम्) सम्बन्ध विशेष की प्रधानता ५, और (ध्यानप्राधान्यम्) ध्यान की प्रधानता ६, (इति) इस प्रकार के (एतेषु) इन पूर्वोक्त छः प्राधान्यों में (एकम्) एक (अपि) भी (न) प्रधान नहीं (भवति) होता है। (किन्तु) लेकिन (भागवतप्राधान्यम्) भागवतों की प्रधानता (एव) निश्चय करके (प्रधानम्) प्रधान है। (चतुर्भिः) चारों से (ज्ञातम्) जानी हुई (वैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता (न) नहीं (वैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता है। (किन्तु) लेकिन (नारायणेन) श्रीमन्नारायण भगवान् से (ज्ञातम्) जानी हुई (वैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता (एव) निश्चय करके (वैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता है। (लोकः) लोक (च) और (नगरम्) नगर (यथा) जैसे (जानीयात्) जान लेवें (तथा) वैसे (नारायणाय) नारायण भगवान् के लिये (नमः) साष्टाङ्ग प्रणाम हो (इति) इस प्रकार के (अनेन) इस चेतन करके (भवितव्यम्) होने योग्य है। (लोकेन) लोक से (वैष्णवः) श्रीवैष्णव

(इति) इस प्रकार से (त्याज्यः) त्याग करने योग्य है। और (नगरेण) नगर से (वैष्णवः) श्रीवैष्णव (इति) इस प्रकार से (स्वीकार्य्यः) स्वीकार करने योग्य है। (लोकः) लोक (संसारः) संसार है। और (नगरम्) नगर (परमपदम्) परमपद स्थान है। तथा (अभिमतदिव्यदेशाः) भगवत् के अभिमत दिव्यदेश (ज्ञानाधिकाः) अधिक ज्ञानवाले हैं (च) और (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब हैं (इति) इस प्रकार के (तिरिनगरिपुल्लैः) तिरिनगरि पुल्लै स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ ग्यारहवीं वार्ता में अट्ठावन पद हैं। इति तिरिनगरि पुल्लैगदितावार्ताव्याख्यानम् ॥३११॥

अब दिव्यसूरि स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दिव्यसूरिवार्ता ॥

मू०–दिव्यसूरिः दिव्यसूक्त्यन्वयवतः श्रीवैष्णवान् स्वात्मत्वेन जानाति, आचार्य्यपाशुरान्वयवतः श्रीवैष्णवान् स्वसत्तात्वेन जानाति, उभयान्वयरहितः श्रीवैष्णव इति न निश्चेयः श्रीवैष्णवा इति-एतेषां कथं नामेति पृष्टः ॥३१२॥

॥ दिव्यसूरिस्तुतिः ॥

अर्थ- शिष्यायाथ तथोपदिश्य कवये लोकावनार्थं भरं तस्मैतान्मधुराय वेदसदृशान्मोक्षैकहेतून्परान्। पञ्चत्रिंशदुदारकीर्तिरवनौ स्थित्वा च वै वत्सरान् भेजे विष्णुपदं निरन्तरसुखं श्रीकारिसूनुर्महान् ॥२३०॥

(दिव्यसूरिः) दिव्यसूरि स्वामीजी (दिव्यसूक्त्यन्वयवतः) दिव्य सूक्तियों के सम्बन्धवाले (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (स्वात्मत्वेन) अपनी आत्मता करके (जानाति) जानते हैं। और (आचार्य्यंपाशुरान्वयवतः) आचार्यों की सूक्तियों के सम्बन्धवाले (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (स्वसत्तात्वेन) अपनी सत्तात्व करके (जानाति) जानते हैं। (उभयान्वयरहितः) दिव्यसूरियों की दिव्य सूक्तियों के सम्बन्ध से रहित और आचार्यों की सूक्तियों के सम्बन्ध से रहित (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव है (इति) इस प्रकार के (न) नहीं (निश्चेयः) निश्चय करने योग्य है, (एतेषाम्) दिव्यसूरि और आचार्यों की सूक्तियों के सम्बन्ध से रहित इन सबों के (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (इति) इस प्रकार का (कथम्) कैसे (नाम) नाम हो सकता है (इति) इस प्रकार के (पृष्टः) कुछ लोग पूछे हैं। इस तीन सौ बारहवीं वार्ता में इक्कीस पद हैं। इति

दिव्यसूरिवार्ताव्याख्यानम् ॥३१२॥

अब कोइलवल्लाल्लाचार्य्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कोइलवल्लाल्लार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–कोइलवल्लाल्लाः[१] श्रीमत्पुत्रत्वात्[२] श्रीमतः[३] पितृत्वात्[४] श्रीपुरुषकारत्वात्[५] श्रीमद्वैभवाभिज्ञत्वाच्च[६][७] श्रीमत्पदप्राप्तेः[८] श्रीवैष्णवा[९][१०] इति-एतेषां[११] निरूपकं[१२] नामेत्यवोचन्[१३][१४][१५] ॥३१३॥

॥ चतुष्कविस्तुतिः ॥

अर्थ- अष्टोत्तरसहस्रेभ्यो वैष्णवेभ्यो मुदान्वितः ।
षड्रसोपेतमशनं प्रददौ प्रतिवासरम् ॥२३१॥

(कोइलवल्लाल्लाः) कोइलवल्लाल्ल स्वामीजी (श्रीमत्पुत्रत्वात्) श्रीमान् के पुत्र होनेसे तथा (श्रीमतः) श्रीवाले भगवान् के (पितृत्वात्) इस चेतन के पिता होने से तथा (श्रीपुरुषकारत्वात्) श्रीदेवी के पुरुषकार होने से (च) और (श्रीमद्वैभवाभिज्ञत्वात्) श्रीवालेके वैभव को अच्छे प्रकार के जानने से तथा (श्रीमत्पदप्राप्तेः) श्रीमान् के श्रीचरणों के प्राप्त होने से (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (इति) इस प्रकार के (एतेषाम्) इन सब चेतनों का (निरूपकम्) निरूपण करनेवाला (नाम) नाम है, (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस तीन सौ तेरहवीं वार्ता में पन्द्रह पद हैं। इति कोइलवल्लाल्लार्य्योक्तव्याख्यानम् ॥३१३॥

अब कोइलवल्लाल्लाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कोइलवल्लाल्लार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीवैष्णवस्य[१] दिनचरितं[२] गुरुपरम्परा[३] श्रीमन्त्रस्य[४] विशदानुसन्धानभूतस्य[५] द्वयस्यानुसन्धानं[६][७] द्वयनिष्ठैः[८] श्रीवैष्णवैः[९][१०] सहवासकरणम्[११], अहङ्कारग्रस्तैः[१२] संसारिभिरसङ्गतिः[१३][१४], सात्विकसमाचारव्यतिरिक्तलौकिकवृत्तेभ्यः[१५] साक्षान्निवृत्तिः[१६][१७], उद्देश्येषु[१८] श्रीवैष्णवेषु[१९]-अनौदासीन्यं[२०] त्याज्यानां[२१] संसारिणां[२२]

दृष्टार्थमननुवर्त्तनं भगवद्भागवतविषयेष्वनुकूलवृत्तेः देह-यात्राशेषाकरणं स्तुतिनिन्दास्वविकृतत्वं स्वदोषदर्शनं स्व-प्रशंसाकरणं स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तिपूर्वकं भगवत्पारतन्त्र्यकाष्ठा-भूतं भागवतपारतन्त्र्यमित्यनुसन्धानमेतानर्थाननुसन्धाय विद्यमानांशस्यानभिमानम् आसुरप्रकृतीनामदृष्टवार्त्तायाअकथनं साधुपरिग्रहः सदाचार्य्यप्रसादश्च स्वरूपवर्द्धक-इति निश्चयः, विद्यमानांशस्य-उपायभूतः सर्वेश्वर इति तत्रोपकारस्मृतिः, अविद्यमानांशस्यानुतापपूर्वक ईश्वरविषये प्रार्थना, एतदर्थनिष्ठायां स्वस्य जातायामेतन्निष्ठा रहितानधिकारिणं मनसानुपेक्ष्य भगवत्प्रभावनिरूपणेन तदादरः "निर्दोषं विद्धि तं जन्तुं प्रभावात्परमात्मनः" एतदर्थनिष्ठा च भगवत्प्रसादेन सिध्यति, न तु प्रायश्चित्तादिना, अत्र प्रमाणमक्रूरमालाकारादीन् परमभागवतान् कृत्वेति-एते अर्थाः-अधिकारिणोऽपेक्षिताः, न तु परोपदेशार्थमध्येतव्याः ॥३१४॥

अर्थ–(श्रीवैष्णवस्य) श्रीवैष्णव के (दिनचरितम्) दिन का चरित (गुरुपरम्परा) गुरु परम्परा का अनुसंधान करना है १, तथा (श्रीमन्त्रस्य) मूलमन्त्र के (विशदानुसन्धानभूतस्य) विशद रूप से अनुसंधान भए हुए (द्वयस्य) द्वयमंत्र का (अनुसंधानम्) अनुसंधान करनो है २, और (द्वयनिष्ठैः) द्वयमन्त्र में निष्ठा रखनेवाले (श्रीवैष्णवैः) श्रीवैष्णवों के (सह) साथ (वासकरणम्) निवास करना है ३, तथा (अहङ्कारग्रस्तैः) अहङ्कार से ग्रस्त (संसारिभिः) संसारी जीवों से (असङ्गतिः) सङ्गति नहीं करना है ४, और (सात्विकसमाचारव्यतिरिक्तलौकिकवृत्तेभ्यः) सात्विक अच्छे प्रकार के आचार से अतिरिक्त लौकिक आचरणों से (साक्षात्) साक्षात् (निवृत्तिः) निवृत्ति करना है ५, तथा (उद्देश्येषु) उद्देश्य (श्रीवैष्णवेषु) श्रीवैष्णवों के विषय में (अनौदासीन्यम्) उदासीनता नहीं करना है ६, और (त्याज्यानाम्) त्याग करने योग्य

(संसारिणाम्) संसारी जीवों के (दृष्टार्थम्) देखे हुए अर्थ को (अननुवर्तनम्) नहीं अनुवर्तन करना है ७, तथा (भगवद्भागवतविषयेषु) भगवान् के और भागवतों के विषयों में (अनुकूलवृत्तेः) अनुकूल वृत्ति से (देहयात्राशेषाकरणम्) देह यात्रा से शेष व्यवहार को नहीं करना है, और (स्तुतिनिन्दासु) स्तुति तथा निन्दाओं में (अविकृतत्वम्) विकार को नहीं प्राप्त करना है ९, तथा (स्वदोषदर्शनम्) अपने में दोष को दर्शन करना है १०, और (स्वप्रशंसाकरणम्) अपनी प्रशंसा अपने से नहीं करना है ११, तथा (स्वस्वातन्त्र्यनिवृत्तिपूर्वकम्) अपनी स्वतन्त्रता के निवृत्तिपूर्वक (भगवत्पारतन्त्र्यकाष्ठाभूतम्) भगवत् की परतन्त्रता के काष्ठाभूत (भागवतपारतन्त्र्यम्) भागवतों की परतन्त्रता है (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना है १२। (एतान्) इन पूर्वोक्त बारह (अर्थान्) अर्थों को (अनुसंधाय) अनुसंधानकर (विद्यमानांशस्य) विद्यमान अंशका (अनभिमानम्) अभिमान नहीं करना। तथा (आसुरप्रकृतीनाम्) आसुर स्वभाववालों की (अदृष्टवार्तायाः) अदृष्ट वार्ता का (अकथनम्) कथन नहीं करना। तथा (साधुपरिग्रहः) साधुओं को परिग्रह करना (च) और (सदाचार्य्यप्रसादः) सदाचार्यों को प्रसन्न करना (स्वरूपवर्द्धकः) स्वरूप को बढ़ानेवाला है (इति) इस प्रकार के (निश्चयः) निश्चय करना। और (विद्यमानांशस्य) विद्यमान अंश के (उपायभूतः) उपायभूत (सर्वेश्वरः) सबका ईश्वर परमात्मा है (इति) इस प्रकार के (तत्र) उस सर्वेश्वर के विषय में (उपकारस्मृतिः) उपकार को स्मरण करना। तथा (अविद्यमानांशस्य) अविद्यमान अंश के (अनुतापपूर्वकईश्वरविषये) अनुताप पूर्वक परमेश्वर के विषय में (प्रार्थना) प्रार्थना करना (एतदर्थनिष्ठायाम्) इस अर्थ की निष्ठा (स्वस्य) अपनी आत्मा के (जातायाम्) उत्पन्न होने पर (एतन्निष्ठारहितानधिकारिणम्) इस अर्थ की निष्ठा से रहित अनधिकारी को (मनसा) मन से (अनुपेक्ष्य) नहीं उपेक्षाकर (भगवत्प्रभावनिरूपणेन) श्रीमन्नारायण भगवान् के प्रभाव निरूपण करने से (तदादरः) उसका आदर करना। (परमात्मनः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (प्रभावात्) प्रभाव से (तम्) उस (जन्तुम्) जन्तु को (निर्दोषम्) बिना दोष के (विद्धि) तुम जानो (च) और (एतदर्थनिष्ठा) इस अर्थ की निष्ठा (भगवत्प्रसादेन) भगवान् की प्रसन्नता से (सिध्यति) सिद्ध होती है। (तु) परन्तु (प्रायश्चित्तादिना) प्रायश्चित्त आदि से (न) नहीं इस अर्थ की निष्ठा सिद्ध होती है। (अत्र) इस विषय में (प्रमाणम्) प्रमाण यह अधोलिखित है (अक्रूरमालाकारादीन्) अक्रूरजी तथा मालाकार आदि (परमभागवतान्) श्रेष्ठ भागवतों को (कृत्वा) करके (इति) इस प्रकार के (एते) ये पूर्वोक्त (अर्थाः) अर्थ (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (अपेक्षिताः) अपेक्षित हैं। (तु) परन्तु (परोपदेशार्थम्) दूसरे के उपदेश देने के लिये (न) नहीं (अध्येतव्याः) ये पूर्वोक्त अर्थ अध्ययन करने योग्य हैं। इस तीन सौ चौदहवीं वार्ता में चौरानबे पद

हैं। इति कोइलवल्लाल्लार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३१४॥

अब वेदान्ती स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यत्युक्ता वार्ता ॥

मू०–भगवति[१] वीथ्याम्[२] आगच्छति[३] प्रणमितुं[४] बहिः[५] निष्क्रान्तः[६] वेदान्ती[७] स्वदेहे[८]–ऊर्ध्वपुण्ड्राण्यदृष्ट्वा[९] भर्तुरग्रतः[१०] माङ्गल्यसूत्रं[११] विना[१२]–आगता[१३] स्त्री[१४]-इव[१५] वर्ते[१६], श्रीमृदमानयेत्य[१७]-वोचत्[१८] ॥३१५॥

अर्थ–(भगवति) श्रीमन्नारायण भगवान् के (वीथ्याम्) वीथि में (आगच्छति) आनेपर (प्रणमितुम्) साष्टाङ्ग प्रणाम करने के लिये (बहिः) बाहर (वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी (निष्क्रान्तः) निकले। और वह वेदान्ती स्वामीजी (स्वदेहे) अपने देह में (ऊर्ध्वपुंड्राणि) ऊर्ध्वपुड्रों को (अदृष्ट्वा) नहीं देखकर (भर्तुः) पति के (अग्रतः) सामने (माङ्गल्यसूत्रम्) माङ्गल्य सूत्र के (विना) बिना (आगता) आई हुई (स्त्री) स्त्री के (इव) समान (वर्ते) वर्तमान हूँ इससे (श्रीमृदम्) श्रीचूर्ण को और सफेद मिट्टी को (आनय) तुम लाओ (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि ऊर्ध्वपुंड्र धारण करना कहाँ पर ग्रन्थों में लिखा है। इस प्रश्न का उत्तर नीचे मैं लिखता हूँ, कृपा करके सज्जन लोग अवलोकन करें।

॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रमालिखेत् तस्माद्द्विरेखं भवति न पुरागमनमेति ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामेति ॥ सामवेदश्रु०॥

ऊर्ध्वपुंड्र को करे उससे द्विरेख होता है, फिर से जन्म नहीं लेता है और ब्रह्म के सायुज्य तथा सलोकता को प्राप्त करता है, और कृष्णयजुर्वेद में लिखा है कि–

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारि विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा। स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदिस्थं परात्परं यं महतो महान्तम् ॥ कृष्णयजुर्वेदश्रु० ॥

जो महात्मा चक्रधारण करके और ऊर्ध्वपुंड्र करके स्वर से या मन्त्र से हमेशा सबसे श्रेष्ठ हृदय में स्थित विष्णु भगवान् का ध्यान करता है वह सबसे श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है ॥ और अथर्वणोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्ये च्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् भवति ॥

जो पुरुष श्रीमन्नारायण भगवान् के पैर के समान अपने कल्याण के लिये मध्य में छिद्रयुक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करता है वह पुरुष परब्रह्मका प्रिय होता है और पुण्यवाला होता है ।। तथा महोपनिषद् में लिखा है कि–

॥ धृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमेशितारं नारायणं सांख्ययोगाभिगम्यम् । ज्ञात्वा विमुच्येतनरःसमस्तैः संसारपाशैरिह चैति विष्णुम् ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करके मनुष्य सांख्ययोग द्वारा जानने योग्य सबके स्वामी नारायण को जानकर यहाँ पर समस्त संसार के पाश से छूट जाता है और अन्त में विष्णु भगवान् को प्राप्त करता है ।। और वसिष्ठ स्मृति में लिखा है कि–

॥ नासिकामूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत् । अङ्गुलं पार्श्वमेकं तु ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य लक्षणम् ॥ नाक के मूल से प्रारम्भ करके केशपर्यन्त एक अङ्गुल चौड़ा ऊर्ध्वपुण्ड्र का लक्षण है ।। तथा सनत्कुमार-संहिता में लिखा है कि– **ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा धार्य्यं सच्छिद्रं सौम्यमेव च । तदलंकरणार्थाय हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥ सनत्कु० ॥** सफेद मिट्टी से बीच में छेद युक्त सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करे और उसको सुशोभित करने के लिये हल्दी के श्रीचूर्ण को मध्य में धारण करे ।। और ईश्वर-संहिता में लिखा है कि ॥ **सान्तरालोर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये श्रीशस्य धामनि । हरिद्रासारसंभूतरजसा धारयेच्छ्रियम् ॥** अन्तराल सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र के बीच में हल्दी से बने हुए श्रीचूर्ण को धारण करे ।। तथा अग्निपुराण में लिखा है कि- ॥ **धारयेद्विधिना सम्यगूर्ध्वपुण्ड्रं प्रयत्नतः ॥ अग्निपु० ॥** विधि से अच्छे प्रकार के ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करे ।। तथा ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि ॥ **ब्राह्मणस्योर्ध्वपुण्ड्रं तु ॥ ब्रह्माण्ड० ॥** ब्राह्मण का तो ऊर्ध्वपुण्ड्र करना चाहिये ।। और ब्रह्मरात्र में लिखा है कि ॥ **प्रणवेनैव मंत्रेण मृदा वै मामनुस्मरन् । ललाटे धारयेन्नित्यं मम सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मरा० ॥** जो पुरुष निश्चय करके मुझको स्मरण करता हुआ प्रणव मन्त्र से सफेद मिट्टी करके ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र को नित्य धारण करेगा वह मेरे सायुज्य मोक्ष को प्राप्त करेगा । इन पूर्वोक्त श्रुति स्मृति संहिता और पुराण आदिक ग्रन्थों में स्पष्ट ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने को लिखा है । इस तीन सौ पन्द्रहवीं वार्ता में बाईस पद हैं । इति यत्युक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥३१५॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–स्वरूपज्ञानवतः[१]-आशरीरविश्लेषं[२] महाभय[३] महा-

विश्वासयोरनुवर्तने कारणं स्वपरस्वरूपावलोकनम् उभयोर्महत्वं नाम स्वस्वरूपानुसन्धाने संसारे वर्तमानत्वेन स्वानुसन्धानप्रयुक्तम् अत्र वर्तमानत्वेऽपि भगवदनुसन्धाने परमपदस्थत्वेन स्वानुसन्धानप्रयुक्तं च स्वरूपवैशद्यमुपाये दार्ढ्यमुपेये त्वरा चाधिकारिकृत्यमिति कलिवैरिदासः ॥३१६॥

अर्थ–(स्वरूपज्ञानवतः) स्वरूप के ज्ञानवाले के (आशरीरविश्लेषम्) शरीर के वियोग से लेकर (महाभयमहाविश्वासयोः) बड़े भारी डर के और बड़े भारी विश्वास के (अनुवर्तने) अनुवर्तन करने में (कारणम्) कारण (स्वपरस्वरूपावलोकनम्) स्वस्वरूप और परस्वरूप को अवलोकन करना है। (उभयोः) दोनों के (महत्वम्) महत्व (नाम) माने (स्वस्वरूपानुसन्धाने) स्वस्वरूप को अनुसन्धान करनेवाले (संसारे) संसार में (वर्तमानत्वेन) वर्तमानता करके (स्वानुसन्धानप्रयुक्तम्) अपने अनुसन्धान से प्रयोग किया हुआ है। (च) और (अत्र) यहाँ पर (वर्तमानत्वे) वर्तमान रहनेपर (अपि) भी (भगवदनुसन्धाने) भगवान् के अनुसन्धान करने में (परमपदस्थत्वेन) परमपद में स्थित होने से (स्वानुसन्धानप्रयुक्तम्) अपने अनुसन्धान से प्रयोग किया हुआ है। और (स्वरूपवैशद्यम्) स्वरूप की विशदता तथा (उपाये) उपाय में (दार्ढ्यम्) दृढ़ता (च) और (उपेये) उपेय में (त्वरा) त्वरा (अधिकारिकृत्यम्) अधिकारियों का कृत्य है (इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ सोलहवीं वार्ता में तीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३१६॥

अब श्रीवैष्णवकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

मू०–सम्भाषणसम्बन्धो भोजनसम्बन्धोऽदृष्टसम्बन्धो दृष्टसम्बन्धश्च निरूप्य कर्तव्यः, स्वकृतप्रणामस्य क्लेशनं स्वसत्तां विनाश्यापि प्रणामस्वीकारकरणं चाधिकारिकृत्यं

पश्चिमदेशे त्रयो मिलित्वा श्रीरामायणमध्यैयत, कश्चन तेष्वेकमाहूय त्वयात्र को वा-अर्थः प्रतिपन्न इत्यपृच्छत्, स च चक्रवर्तिकुमारेण पितृवचनपरिपालनकरणात् मातापितृशुश्रूषा धर्म इति मया ज्ञात इत्यवोचत्, स च त्वमेतत्कुर्वित्युक्त्वा द्वितीयं तथैवापृच्छत्, स च चक्रवर्तिकुमाररूपेण शरीरपरिग्रहे कृतेऽपि शरीरसम्बन्धोऽतीवक्रूरः, तस्मादेतच्छरीरनिवृत्त्युपायः परिचिन्तनीय इत्यवोचत्, स च त्वमेतद्विमोचनोपायं कुर्वित्युक्त्वा तृतीयमपि तथैवापृच्छत्, स चास्मदुपायैः न किञ्चित् सिध्यति, रावणोऽपि तं विहाय नातिष्ठत्, अतश्चक्रवर्तिकुमारस्य कृपां विना जीवनोपायो नास्तीत्यवोचत्, स च तर्हि त्वं यावदायुषं श्रीरामायणं परिचयेत्यवोचत् ॥३१७॥

॥ श्रीरामायणस्तुतिः ॥

अर्थ- वेदवेद्ये परे पुंसिजाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥२३२॥

(सम्भाषणसम्बन्धः) सम्भाषण का सम्बन्ध १, तथा (भोजनसम्बन्धः) भोजन का सम्बन्ध २, और (अदृष्टसम्बन्धः) अदृष्टका सम्बन्ध ३, (च) और (दृष्टसम्बन्धः) दृष्ट सम्बन्ध ४, (निरूप्य) निरूपण करके (कर्तव्यः) पूर्वोक्त चार सम्बन्ध करने योग्य हैं। तथा (स्वकृतप्रणामस्य) अपने किये हुए साष्टाङ्ग प्रणाम के (क्लेशनम्) क्लेश करना (च) और (स्वसत्ताम्) अपनी सत्ता को (विनाशय) विनाशकर (अपि) भी (प्रणामस्वीकारकरणम्) साष्टाङ्ग प्रणाम को स्वीकार करना (अधिकारिकृत्यम्) अधिकारियों का कृत्य है। (पश्चिमदेशे) पश्चिम देश में (त्रयः) तीन पुरुष (मिलित्वा) मिलकर (श्रीरामायणम्) श्रीवाल्मीकीय रामायण को (अध्यैयत) अध्ययन करते थे। (कश्चन) तब कोई सज्जन (तेषु) उन तीनों में से (एकम्) एक पुरुष को (आहूय) बुलाकर (त्वया) तुम (अत्र) इस वाल्मीकीय रामायण में (कः) कौन (वा) सा (अर्थः) अर्थ (प्रतिपन्नः) निश्चय किये हो (इति)

इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं (च) और (सः) वह (चक्रवर्तिकुमारेण) चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज के कुमार श्रीरामचन्द्रजी करके (पितृवचनपरिपालनकरणात्) पिता के वाक्य को अच्छे प्रकार से पालन करने से (मातापितृशुश्रूषा) माता और पिता की सेवा करना (धर्मः) धर्म है (इति) इस प्रकार के (मया) मैं (ज्ञातः) वाल्मीकीय रामायण में निश्चय करके समझा हूँ (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। (च) और (सः) वह पूछनेवाला (त्वम्) तुम (एतत्) इस माता और पिता की सेवा रूप कर्म को (कुरु) करो (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा) कहकर (द्वितीयम्) दूसरे पुरुष को बुलाकर (तथा) वैसे ही (एव) निश्चय करके अर्थात् तुम इस वाल्मीकीय रामायण में कौन सा अर्थ निश्चय किये हो इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (सः) उस दूसरे पुरुष ने (चक्रवर्तिकुमाररूपेण) चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज के कुमाररूप से (शरीरपरिग्रहे) शरीर को अच्छी तरह से धारण (कृते) करने पर (अपि) भी (शरीरसम्बन्धः) देह का सम्बन्ध (अति) अत्यन्त (क्रूरः) क्रूर के (इव) समान है (तस्मात्) उस कारण से (एतच्छरीरनिवृत्युपायः) इस प्राकृत देह की निवृत्ति का उपाय (परिचिन्तनीयः) अच्छे प्रकार से चिन्तवन करने योग्य है, इस प्रकार के वाल्मीकीय रामायण में मैं निश्चय करके समझा हूँ (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। (च) और (सः) वह पूछनेवाला (त्वम्) तुम (एतद्विमोचनोपायम्) इस प्राकृत देह के विमोचन करने का उपाय को (कुरु) करो (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा) कहकर (तृतीयम्) तीसरे पुरुष को (अपि) भी बुलाकर (तथा) वैसे ही (एव) निश्चय करके अर्थात् तुम इस वाल्मीकीय रामायण में कौन सा अर्थ निश्चय किये हो (अपृच्छत्) इस प्रकार से पूछे हैं। (च) और (सः) उस तीसरे पुरुष ने (अस्मदुपायैः) हम सबों के साधनों से (न) नहीं (किञ्चित्) कुछ भी (सिध्यति) सिद्ध हो सकता है। (रावणः) रावण (अपि) भी (तम्) उसको (विहाय) छोड़कर (न) नहीं (अतिष्ठत्) ठहरा था। (अतः) इस कारण से (चक्रवर्तिकुमारस्य) चक्रवर्ती श्रीदशरथ जी महाराज के कुमार श्रीरामचन्द्रजी की (कृपाम्) कृपा के (विना) बिना (जीवनोपायः) जीवन के उपाय (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा है। (च) और (सः) उस पूछनेवाले ने (तर्हि) तब तो (त्वम्) तुम (यावत्) जबतक (आयुषम्) आयु रहे, तब तक (श्रीरामायणम्) श्रीवाल्मीकीय रामयण को (परिचय) अच्छे प्रकार से विचार करो (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा है। अब यहाँ पर कुछ लोग कहते हैं कि श्रीरामावतार का वेद में वर्णन नहीं आया है। इस विषय में यह कहना है कि वेद में श्रीरामावतार का वर्णन स्पष्ट किया गया है कृपया सज्जन लोग अधोलिखित प्रमाणों को अवलोकन करें।

॥ भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णोरभिराममस्थात् ॥ सामवे० उत्तरार्चि० १५, अ० २, ख० १, सू० ३ ॥

भजन करने योग्य रामभद्र सीता सहित सज्जित होकर दण्डकारण्य को आये, तब अङ्गुली को अर्थात् सीताजी के हाथ को पकड़ने के लिये रावण राम के परोक्ष में आया, तब रावण के मारने के पीछे अच्छे चिह्नों से दीप्तिमान् वर्णों से उपलक्षित द्युलोक की साधनभूत श्रीरामकी स्त्री सहित अग्निदेव राम के सामने उपस्थित हुए अर्थात् श्रीसीता शुद्ध हैं यह कहकर श्रीसीताजी को उन्होंने समर्पण किया ॥३॥ **इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु ॥ ऋग्वे० मं० ३।८।९ ॥** श्रीरामजी श्रीसीताजी को ग्रहण करें और जनक राजा उस श्रीसीताजी को दान करें ॥९॥ और रावण के भी विषय में लिखा है कि–

॥ ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपौ स चकार रसंविषम् ॥ अथर्व० ४।६।२।१ ॥

पहले दस सिर दसमुखवाला एक ब्राह्मण उत्पन्न हुआ, उसने देवता आदिक से लेकर सोम को पिया और उसने ही रस को विष किया ॥१॥ इन पूर्वोक्त मन्त्रों में स्पष्टतया सीता और रावण का वर्णन आया। ग्रन्थ के विस्तारभय से अधिक प्रमाण मैं नहीं लिखता हूँ। इस तीन सौ सत्तरहवीं वार्ता में एक सौ बारह पद हैं। इति श्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३१७॥

अब श्रीभाष्यकार के और गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारगोविन्दाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–वीरसुन्दराद्धीत्या गोविन्दार्य्यशिष्या जगन्नाथ-ब्रह्मराजस्य वेश्या मठमागत्यातिष्ठत्, तद्विषये वीरसुन्दरोक्त-वार्त्तां श्रुत्वा भयेन भाष्यकारः–एतामितो निष्काषयेति गोविन्दाचार्य्यमवोचत्, गोविन्दाचार्य्यश्च भयार्त्तायाः एतस्या रक्षणे धर्मः स्वयमेव रक्षेत्, सर्वेश्वरो रक्षक इति–आस्त्री-बालं प्रसिद्धिः, स एव रक्षक इति–अवधारणं ज्ञातुं खल्वा-

४१ ४२ ४३ ४४
चार्य्यसेवा क्रियत इति विज्ञापयामास ॥३१८॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ- सदारमादाय हरिं कृतार्थं सम्पत्सुतं साधुनृपार्चितांघ्रिः ।
स यादवाद्रिं सहसा प्रतस्थे रामस्त्वयोध्यां हि यथा कृतार्थः ॥२३३॥

(वीरसुन्दरात्) वीरसुन्दरजी से (भीत्या) डर करके (गोविन्दाचार्य्यशिष्या) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की चेली (जगन्नाथब्रह्मराजस्य) जगन्नाथ ब्रह्मराज की (वेश्या) वेश्या (मठम्) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी के मठ में (आगत्य) आकर (अतिष्ठत्) ठहर गयी (तद्विषये) उस वेश्या के विषय में (वीरसुन्दरोक्तवार्ताम्) वीर सुन्दरजी से कही हुई वार्ता को (श्रुत्वा) सुनकर (भयेन) डर से (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (एताम्) इस वेश्या को (इतः) इस मठ से (निष्काषय) निकाल दो (इति) इस प्रकार के (गोविन्दाचार्य्यम्) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी से (अवोचत्) बोले । (च) और (गोविन्दाचार्य्यः) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी (भयार्तायाः) भय से दुःखी (एतस्याः) शरण में आई हुई इस वेश्या की (रक्षणे) रक्षा करने में (धर्मः) धर्म (स्वयम्) अपने से (एव) निश्चय करके (रक्षेत्) रक्षा करेगा । (सर्वेश्वरः) सबका स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् (रक्षकः) रक्षक हैं (इति) इस प्रकार के (आस्त्रीबालम्) स्त्री से लेकर बालक पर्यन्त (प्रसिद्धिः) प्रसिद्धि है । और (सः) वह श्रीमन्नारायण भगवान् (एव) निश्चय करके (रक्षकः) रक्षक हैं (इति) इस प्रकार के (अवधारणम्) निश्चय को (ज्ञातुम्) जानने के लिये (खलु) निश्चय करके (आचार्यसेवा) आचार्य की सेवा (क्रियते) मैं करता हूँ (इति) इस प्रकार के (विज्ञापयामास) विज्ञापन किये हैं । इस तीन सौ अट्ठारहवीं वार्ता में चौव्वालीस पद हैं । इति श्रीभाष्यकार गोविन्दाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३१८॥

अब भट्टार्य और वल्लवराज के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ भट्टार्य्यवल्लवराजोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३
मू०–वीरशिखामणि वल्लवराजः भट्टार्य्यं राजकार्य्या–
४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
क्रान्तत्वात् श्रीवैष्णवाननुवृत्य सम्यग् वार्तां श्रोतुमव–
११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
काशो नास्ति दासस्योपायभूतार्थो वक्तव्य इत्यपृच्छत्, स
१९ २० २१ २२ २३ २४ २५
च समुद्रवेलाभूमिमनुसन्धत्स्वेत्यवोचत्, वल्लवराजश्च तदर्था–

२६ २७ २८ २९ ३० ३१
ज्ञानेन हस्तौ पीडयन् स्थितः समुद्रवेलायां कस्मिंश्चि-
३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७
दमृतसमुद्र इव तिष्ठति दक्षिणकूले सवासनस्य नीचस्य
३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४
रावणस्य स्थितौ सत्यां वानराणां महती सेना जाग्रती
४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५०
भगवन्तं रक्षति तदा प्रकृतिमत्वात् अत्यन्तपरिश्रान्ता सा
५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९
अस्वपत् तदा भगवाननुजश्च पृष्ठे तूणीरौ बध्वा धनुषि-
६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६
आरोपितबाणौ केचन अण्डजाः अण्डानीव महतीं सेनां
६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२
संचरन्तौ प्राकारभित्ती-इव-अरक्षतां तस्य चक्रवर्तिकुमारस्य
७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८०
सचापो हस्तः शरणमिति सुखं तिष्ठेत्यवोचत् ॥३१९॥

अर्थ–(वीरशिखामणिः) वीर शिखामणि (वल्लवराजः) वल्लवराजजी (भट्टार्य्यम्) पराशरभट्टाचार्य्य स्वामीजी से (राजकार्याक्रान्तत्वात्) राज के कार्य्य से आक्रान्त होने से (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (अनुवृत्य) अनुवर्तन करके (सम्यक्) अच्छी तरह की (वार्ताम्) वार्ता को (श्रोतुम्) सुनने के लिये (अवकाशः) अवकाश (न) नहीं (अस्ति) है। (दासस्य) दास के (उपायभूतार्थः) उपाय भूत अर्थ (वक्तव्यः) श्रीमान् द्वारा कहने योग्य है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे। (च) और (सः) वह भट्टारक स्वामीजी (समुद्रवेलाभूमिम्) समुद्र के किनार के भूमि को (अनुसन्धत्स्व) तुम अनुसन्धान करो (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। (च) और (वल्लवराजः) वीर शिखामणि वल्लवराज (तदर्थाज्ञानेन) भट्टारक स्वामीजी से कही हुई उस वार्ता के अर्थ को नहीं जानने से (हस्तौ) अपने दोनों हाथों को (पीडयन्) पीड़ित करते हुए (स्थितः) ठहर गये। तब भट्टारक स्वामीजी (समुद्रवेलायाम्) समुद्र के किनारे पर (कस्मिंश्चित्) किसी पुरुष के (अमृतसमुद्रः) अमृत के समुद्र के (इव) समान (तिष्ठति) ठहरने पर (दक्षिणकूले) दक्षिण तटपर (सवासनस्य) वासना के सहित (नीचस्य) नीच राक्षस (रावणस्य) रावण की (स्थितौ) स्थिति (सत्याम्) रहनेपर (वानराणाम्) वानरों की (महती) बड़ी भारी (सेना) सेना (जाग्रती) जागती हुई (भगवन्तम्) भगवान् श्रीरामचन्द्रकी (रक्षति) जब रक्षा की (तदा) तब (प्रकृतिमत्वात्) प्रकृतिवाली होने के कारण से (अत्यन्तपरिश्रान्ता) अत्यन्त थकी हुई (सा) वह वानरों की सेना (अस्वपत्) सो गई। (तदा) तब (भगवान्) भगवान् श्रीरामचन्द्र जी (च) और (अनुजः) छोटा भाई श्रीलक्ष्मणजी ने (पृष्ठे) पीठपर (तूणीरौ) तूणीरों को (बध्वा) बान्धकर और (धनुषि) धनुष पर (आरोपितबाणौ)

बाण को चढ़ाये हुए वे दोनों स्वामी और बालस्वामीजी (केचन) कोई (अण्डजा:) पक्षी (अण्डानि) अपने अण्डे को जैसे सेवे उस के (इव) समान (महतीम्) बड़ी भारी (सेनाम्) सेना में (संचरन्तौ) अच्छी प्रकार से घूमते हुए (प्राकारभित्ती) खाईं के जैसे दो भीत हो उसके (इव) समान (अरक्षताम्) वानरों की महती सेना की रक्षा की है। (तस्य) उस (चक्रवर्तिकुमारस्य) चक्रवर्ती दशरथजी महाराज के कुमार श्रीरामजी के (सचाप:) धनुष के सहित (हस्त:) हाथ (शरणम्) शरण है (इति) इस प्रकार के (सुखम्) आनन्द से (तिष्ठ) तुम ठहरो (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। इस तीन सौ उन्नीसवीं वार्ता में अस्सी पद हैं। इति भट्टार्य्यवल्लवराजोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३१९॥

अब कन्दाडयाण्डान् स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कन्दाडयाण्डानार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–दानरहस्यप्रकारः स्वपतोऽस्मान् रक्षन् जाग्रतोऽपि रक्षतीति कन्दाडयाण्डान् ॥३२०॥

॥ कुलशेखरस्तुतिः ॥

अर्थ– वर्षे पराभवे मासे कुंभे वै शुक्लपक्षके।
श्रीमत्पुनर्वसूतारे दशम्यां गुरुवासरे।
कौस्तुभांशेन संजज्ञे महात्मा कुलशेखरः ॥२३४॥

(दानरहस्यप्रकार:) रक्षा करने के रहस्य के प्रकार को कहते हैं कि (स्वपत:) सोते हुए (अस्मान्) हम सबों की (रक्षन्) रक्षा करते हुए श्रीमन्नारायण भगवान् (जाग्रत:) जागते हुए (अपि) भी (रक्षति) रक्षा करते हैं (इति) इस प्रकार के (कन्दाडयाण्डान्) कन्दाडयाण्डान् स्वामीजी ने कहा है। इति कन्दाडयाण्डानार्य्योक्तावार्ताव्याख्यानम् ॥३२०॥

अब कटकत्तु पुल्लयैकटकस्थ ब्राह्मण के और एक पुरुष के संवादरूप वार्त्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कटकत्तुपुल्लयैकटकस्थोक्ता वार्ता ॥

मू०–कटकत्तुपुल्लयैकटकस्थः कश्चन ब्राह्मणस्तव देह-

यात्रा[६] कथं[७] भवती[८]त्यपृच्छत्[९], स[१०] च[११] स्वरक्षणार्थं[१२] ग्रीष्मकाले[१३] स्वस्वेदपातं[१४] कृषिं[१५] कुर्वन्तस्तव[१६] रक्षकः[१७] सर्वेश्वरः[१८] न्यस्तभरं[१९] शयने[२०] तिष्ठन्तं[२१] मां[२२] रक्षतीति[२३] कैमुत्यसिद्धमित्यवदत्[२४] ॥३२१॥

॥ कुलशेखरस्तुतिः ॥

अर्थ- कुलस्य शेखरो यस्मात्कुलशेखर इत्ययम्।

दृढव्रतो महातेजाश्चकारकुलभूषणः ॥२३५॥

(कटकत्तुपुल्लयैकटकस्थः) कटकत्तुपुल्लयैकटकमें रहनेवाला (कश्चन) कोई (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (तव) तेरी (देहयात्रा) देह की यात्रा (कथम्) कैसे (भवति) होती है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) किसी एक पुरुष से पूछा। (च) और (सः) वह एक पुरुष (स्वरक्षणार्थम्) अपनी रक्षा करने के लिये (ग्रीष्मकाले) ग्रीष्म ऋतु के समय में (स्वस्वेदपातम्) अपने देह से पसीने को गिराते हुए (कृषिम्) कृषि को (कुर्वन्तः) करते रहते हैं। (तव) तेरा (रक्षकः) रक्षक (सर्वेश्वरः) सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् हैं (न्यस्तभरम्) समस्त भार को भगवान् में समर्पण करनेवाला (शयने) शयन में (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुए (माम्) मुझको (रक्षति) वे श्रीमन्नारायण भगवान् रक्षा करते हैं (इति) इस प्रकार के (कैमुत्यसिद्धम्) कैमुत्य न्याय सिद्ध है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। इस तीन सौ एक्कीसवीं वार्ता में अठाईस पद हैं। इति कटकत्तुपुल्लयैकटकस्थोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३२१॥

अब किसी एक ब्राह्मण के और श्रीयाच्चानाचार्य्यजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीयाच्चानाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०-कश्चन[१] ब्राह्मणः[२] कुतश्चिद्[३] उच्चस्थानात्[४] स्खलित्वाधः[५] पतितः[६], तत्रागतं[७] श्रीयाच्चानाचार्य्यं[८] नन्वीश्वरो[९] मामपातयत्[१०] पश्येत्यवदत्[११], स[१२] च[१३] स्वकर्मणाहमपतम्[१४], ईश्वरो[१५] मामुद्धारेति[१६] चिन्तयेत्यवदत्[१७] ॥३२२॥

॥ भक्तिसारस्तुतिः ॥

अर्थ- संवत्सराणां त्रिशतं सहस्त्रद्वितयं च सः ।
सुखेन न्यवसद्योगी कुम्भकोणे महायशाः ॥२३६॥

(कश्चन) कोई (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (कुतश्चित्) किसी (उच्चस्थानात्) ऊचे स्थान से (स्खलित्वा) गिरकर (अधः) नीचे (पतितः) गिर गया । और (तत्र) उस स्थान पर (आगतम्) आये हुए (श्रीयाच्चानाचार्य्यम्) श्रीयाच्चानाचार्य्य स्वामीजी से (ननु) निश्चय करके (ईश्वरः) परमेश्वर भगवान् (माम्) मुझको (अपातयत्) ऊँचे स्थान से नीचे गिराये हैं (पश्य) इसको तुम देखो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं । (च) और (सः) उस श्रीयाच्चानाचार्य स्वामीजी ने (स्वकर्मणा) अपने कर्म से (अहम्) मैं (अपतम्) गिर गया हूँ (ईश्वरः) सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् ने (माम्) मुझको (उद्धार) उद्धार किया है (इति) इस प्रकार का (चितन्य) चिन्तन करो (इति) इस प्रक्रार से (अवदत्) कहा है । इस तीन सौ बाईसवीं वार्ता में उन्तीस पद हैं । इति श्रीयाच्चानाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३२२ ॥



अब श्रीयाच्चान् स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीयाच्चान्गदिता वार्ता ॥

मू०-एकदा श्रीवीथ्यां भट्टार्य्यः श्रीवैष्णवाश्च सङ्गी-
भूय भगवद्गुणानन्ववदन् तदैकः श्रीवैष्णवः-अस्मत्कृतं
सुकृतं पश्यत, एवं सत्यपि फलं प्राप्नुम इत्यवोचत्, तदा
श्रीयाच्चान् उत्थाय बहुकालमीश्वर एव रक्षक इति
शिक्षिताः, इदानीं कश्चित्सुकृतदेवो जात इत्यवोचत् सर्वे-
श्वरो रक्षक इत्यवस्थितिर्न स्वरूपं सर्वेश्वरो रक्ष्य इत्यव-
स्थितिश्च न स्वरूपं तथाहि रक्षक इत्यवस्थितिः-अनन्यार्ह-
शेषत्वविरुद्धा रक्ष्य इत्यवस्थितिः स्वस्वामिसम्बन्धविरुद्धा
ईश्वरः सापेक्षः लक्ष्म्याचार्यौ सापेक्षनिरपेक्षौ ॥ ३२३ ॥

॥ श्रीवैष्णवस्तुतिः ॥

अर्थ- षष्ठिवर्षसहस्राणि विष्णोराराधने फलम् ।
सकृद्वैष्णवपूजायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ २३७ ॥

(एकदा) एक समय में (श्रीवीथ्याम्) श्रीवीथिमें (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी (च) और (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (सङ्घीभूय) एकत्र होकर (भगवद्गुणान्) श्रीमन्नारायण भगवान्के वात्सल्य आदि गुणों को (अन्वदन्) कहा। (तदा) तब (एकः) एक (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव (अस्मत्कृतम्) मुझसे किये हुए (सुकृतम्) सुकृत को (पश्यत) तुम सब देखो (एवम्) इस प्रकारके (सति) रहने पर (अपि) भी (फलम्) फलको (प्राप्नुमः) हम सब प्राप्त करते हैं "**प्राप्नुमः**" यहाँ पर ॥ **स्वादिभ्यः श्नुः ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ७१ ॥** इस सूत्र से श्नु प्रत्यय हुआ है। (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। (तदा) तब (श्रीयाञ्चान्) श्रीयाञ्चान् स्वामीजी (उत्थाय) उठकर (बहुकालम्) बहुत समय तक (ईश्वरः) परमेश्वर (एव) निश्चय करके (रक्षकः) रक्षक हैं (इति) इस प्रकार की (शिक्षिताः) सब वेदोंसे हम सब शिक्षा पाये हैं (इदानीम्) इस समयमें (कश्चित्) कोई (सुकृतदेवः) सुकृत देव (जातः) उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकारके (अवोचत्) कहे हैं। (सर्वेश्वरः) सबके स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् (रक्षकः) रक्षक हैं (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति (न) नहीं (स्वरूपम्) स्वरूप है। (च) और (सर्वेश्वरः) अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीमन्नारायण भगवान् (रक्ष्यः) रक्ष्य हैं (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति (न) नहीं (स्वरूपम्) स्वरूप है। (तथाहि) उसी को देखते हैं कि (रक्षकः) श्रीमन्नारायण भगवान् रक्षक हैं (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति (अनन्यार्हशेषत्वविरुद्धा) अनन्यार्ह शेषत्व के विरुद्ध है। और (रक्ष्यः) श्रीमन्नारायण भगवान् रक्ष्य हैं (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति (स्वस्वामिसम्बन्धविरुद्धा) अपने स्वामी के सम्बन्ध के विरुद्ध है। और (ईश्वरः) श्रीमन्नारायण भगवान् (सापेक्षः) अपेक्षा सहित हैं। तथा (लक्ष्म्याचार्य्यौ) लक्ष्मी देवीजी और आचार्य्यजी (सापेक्षनिरपेक्षौ) अपेक्षा सहित तथा अपेक्षा रहित हैं। इस तीन सौ तेईसवीं वार्ता में बासठ पद हैं। इति श्रीयाञ्चानार्य्यगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३२३ ॥

अब कूरेश स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कूरेशोक्ता वार्ता ॥

मू०-कूरेशकाले[१] श्रीवैष्णवैः[२] सन्ध्यावन्दनं[३] कर्तुं[४] श्री-

५ ६ ७ ८ ९ १० ११
वैष्णवैः सह कूरेशो गच्छति मध्ये-उभौ श्रीवैष्णवौ दिव्य-
१२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
सूक्त्यर्थं शृण्वन्तौ स्थितौ, तत्र कूरेशश्च तमर्थं शृण्वन्
२१ २२ २३ २४ २५ २६
स्थितः, सहागतः श्रीवैष्णवाः-अनुष्ठानकालोऽतिक्राम-
२७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३
तीत्यवदन्, स च सन्ध्यावन्दनवैकल्ये प्रायश्चित्तं कर्तुं
३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४०
शक्यते भगवदनुभववैकल्ये तन्नास्तीत्यवदत् ॥ ३२४ ॥

अर्थ-(कूरेशकाले) कूरेश स्वामीजी के समय में (श्रीवैष्णवैः) श्रीवैष्णवों करके (सन्ध्यावन्दनम्) सन्ध्या वन्दन (कर्तुम्) करने के लिये (श्रीवैष्णवैः) श्रीवैष्णवों के (सह) साथ (कूरेशः) कूरेश स्वामी (गच्छति) जाते हैं। (मध्ये) बीच में (उभौ) दो (श्रीवैष्णवौ) श्रीवैष्णव (दिव्यसूक्त्यर्थम्) दिव्य सूक्तिके अर्थ को (शृण्वन्तौ) सुनते हुए (स्थितौ) ठहर गए। (च) और (तत्र) वहीं पर (कूरेशः) कूरेश स्वामीजी (तम्) उस (अर्थात्) दिव्य सूक्तिके अर्थको (शृण्वन्) सुनते हुए (स्थितः) ठहर गए। तब (सह) साथ में (आगतः) आये हुए (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (अनुष्ठानकालः) संध्यावन्दन करनेका समय (अतिक्रामति) बीत रहा है (इति) इस प्रकार के (अवदन्) कहे हैं। (च) और (सः) वह कूरेश स्वामीजी (सन्ध्यावन्दनवैकल्ये) सन्ध्या वन्दन के वैकल्य होने पर (प्रायश्चित्तम्) प्रायश्चित्त को (कर्तुम्) करने के लिये (शक्यते) समर्थ हो सकता है। और (भगवदनुभववैकल्ये) श्रीमन्नारायण भगवान्के अनुभव के वैकल्य होने पर (तत्) वह प्रायश्चित्त (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। अब यहाँपर यह प्रश्न होता है कि सन्ध्या वन्दन का कौन सा काल है ? इस प्रश्न का उत्तर हारीत स्मृति में लिखा है कि-

॥ पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि। गायत्रीमभ्यसेत्तावद्या-वदादित्यदर्शनम् ॥ हारीत स्मृ० अ० ४, श्लो० १८ ॥ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्याञ्च यथाविधि। गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारणि पश्यति ॥ १९ ॥

भली भाँति से तारा दीखते हों उस समय प्रातः कालके सन्ध्या वन्दन करे, और जबतक सूर्योदय न हो जाय तबतक गायत्री को जपता रहे ॥ १८ ॥ और सायंकाल में सूर्यास्त के पहले से सन्ध्यावन्दन प्रारम्भ करे, जबतक तारों का दर्शन न हो तबतक गायत्री को जपे ॥ १९ ॥ यहाँ पर सन्ध्यावन्दन की विधि ग्रन्थ के विस्तारभय से मैं नहीं लिखता हूँ, जिसको जानना हो वह मेरे बनाये हुए "**यतीन्द्रधर्ममार्तण्डः**" नामके ग्रन्थमें देख ले। इस तीन सौ चौबीसवीं वार्तामें चालीस पद हैं। इति कूरेशोक्तावार्ताव्याख्यानम् ॥ ३२४॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकार-वार्ता ॥

मू०–दाशरथिना सहस्रगीतावधीयमानायां भाष्यकारस्तत्रागत्य, एकस्य पाशुरस्यार्थमनुसन्धाय मुमोह ॥ ३२५ ॥

॥ श्रीभाष्यकारस्तुतिः॥

अर्थ- गत्वा तु पीठं स हि शारदायः श्रीभाष्यकारेत्यभिधानमाप्य ।
तद्देशभूपार्चितपादपद्मो गङ्गामगान्निर्जितशत्रुवर्गः ॥ २३८ ॥

(दाशरथिना) दाशरथि स्वामीजी से (सहस्रगीतौ) सहस्रगीति (अधीयमानायाम्) पढ़नेके समय में (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (तत्र) उस स्थान पर (आगत्य) आ करके (एकस्य) सहस्रगीति के एक (पाशुरस्य) पाशुरके (अर्थम्) अर्थ को (अनुसन्धाय) अनुसन्धानकर (मुमोह) मोहित हो गये। इस वार्तामें ग्यारह पद हैं। इति श्रीभाष्यकारवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३२५ ॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–दिव्यसूरिभिः मडलग्रहणं व्रतानुष्ठानं दूतप्रेषणं च स्वाम्यसह्यं कृतं स्वरूपविरुद्धं किं न भवतीति गोविन्दाचार्य्यं प्रति श्रीवैष्णवा अपृच्छन्, गोविन्दाचार्य्यश्च ते किं कुर्युः, ज्ञानं यथा निमज्जति तथा तत्सौन्दर्य्यं करोति चेत्, एतत्सर्वं तत्सौन्दर्य्यदोषः, तथाहि चक्रवर्ती मद्वचनात्पूर्वमेव भवन्तः सर्वे रामाभिषेकमपेक्षन्ते, तत्र हेतुर्मद्दोषः किमित्यपृच्छत्,ते च पौराः वयं किं कुर्मः ''बहवो नृप ! कल्याणगुणाः सन्ति सुतस्य ते'' ''गुणान् गुणवतो देव ! देवकल्पस्य धीमतः'' इत्युक्तप्रकारेण एतादृशं पुत्रं जनयतस्तवैव दोष इत्यवोचन ॥ ३२६ ॥

अर्थ-(दिव्यसूरिभिः) दिव्यसूरियों द्वारा (मडलग्रहणम्) मडल ग्रहण तथा (व्रतानुष्ठनम्) व्रत का अनुष्ठान करना (च) और (दूतप्रेषणम्) दूतोंको भेजना (स्वाम्यसह्यम्) स्वामी के नहीं सहने योग्य (कृतम्) किया गया है। सो (किम्) क्या (स्वरूपविरुद्धम्) स्वरूपसे विरुद्ध (न) नहीं (भवति) होता है, (इति) इस प्रकार के (गोविन्दाचार्य्यम्) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी के (प्रति) प्रति (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (अपृच्छन्) पूछा। (च) और तब (गोविन्दाचार्य्यः) गोविन्दाचार्य स्वामीजी ने कहा है कि (ते) मडल ग्रहण व्रतानुष्ठान आदि वे सब (किम्) क्या (कुर्युः) करेंगे। (यथा) जैसे (ज्ञानम्) ज्ञानको (निमज्जति) डुबाता है (तथा) वैसे ही (तत्) वह मडल ग्रहणादि (सौन्दर्य्यम्) सुन्दरताको (करोति) करता है (चेत्) यदि तो (एतत्) यह (सर्वम्) सब (तत्सौन्दर्य्यदोषः) उस सौन्दर्य के दोष हैं (तथाहि) उसीको दिखाते हैं कि (चक्रवर्ती) श्रीदशरथजी महाराज ने (मद्वचनात्) मेरे वचन से (पूर्वम्) पहले ही (एव) निश्चय करके (भवन्तः) आप (सर्वे) सब (रामाभिषेकम्) श्रीरामभद्रके अभिषेक की (अपेक्षन्ते) अपेक्षा करते हैं (तत्र) उसमें (हेतुः) कारण (मद्दोषः) मेरा दोष है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछा। तब (ते) वे मंत्री सब (च) और (पौराः) अयोध्यापुरीके रहनेवाले सब जन (वयम्) हम सब (किम्) क्या (कुर्मः) करें। (नृप!) हे मनुज रक्षक श्रीदशरथजी महाराज! (ते) आपके (सुतस्य) पुत्र श्रीरामभद्रजीके (बहवः) बहुत से (कल्याणगुणाः) कल्याण गुण (सन्ति) हैं। "**सन्ति**" यहाँ पर ॥ **श्नसोरल्लोपः ॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० १११** ॥ इस सूत्र से अकार का लोप हुआ है। (देव!) हे नरदेव! (देवकल्पस्य) देवता के समान (धीमतः) धीमान् (गुणवतः) गुणवाले पुत्र के (गुणान्) मङ्गलमय गुणों को (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) वाल्मीकीय रामायण में कहे हुए प्रकार से (एतादृशम्) इस प्रकार के (पुत्रम्) पुत्र रामभद्रको (जनयतः) प्रकट करनेवाले (तव) आपका (एव) निश्चय करके (दोषः) दोष है अर्थात् नहीं है (इति) इस प्रकार के (अवोचन्) कहे हैं। इस वार्ता में ॥ **बहवो नृप कल्याणगुणाः सन्ति सुतस्य ते ॥ वाल्मी० रा० अयो० २, स० २, श्लो० २६** ॥ यह और **गुणान् गुणवतो देव देवकल्पस्य धीमतः ॥ वा० रा० अयो० २, स० २, श्लो० २७** ॥ यह, ये दो प्रतीक हैं, इससे सम्पूर्ण इन श्लोकों को लिखकर यहाँ पर अर्थ लिखता हूँ कि-

॥ **ते तमूचुर्महात्मानः पौरजानपदैः सह। बहवो नृप कल्याणगुणाः सन्ति सुतस्य ते ॥ वा० रा० अयो० २, स० २, श्लो० २६** ॥ उन महात्मा सबों ने अयोध्यापुरी में रहनेवाले जनपदों के साथ उस दशरथजी महाराज से कहा कि हे नृप! तेरे पुत्र

रामभद्र के बहुत से कल्याण गुण हैं ।। २६ ।।

गुणान् गुणवतो देव ! देवकल्पस्य धीमतः । प्रियानानन्दनान्कृत्स्नान्प्र-वक्ष्यामोऽद्य ताञ्छृणु ॥ वा० रा० अयो० २ स० २ श्लो० २७ ॥

हे नरदेव ! देवता के समान बुद्धिमान् गुणवाले श्रीरामभद्र के प्रिय आनन्दादिक समस्त गुणों को हम सब कहेंगे, उन सब गुणों को तुम सुनो ।। २७ ।। इस तीन सौ छब्बीसवीं वार्ता में चौहत्तर पद हैं । इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ।। ३२६ ।।

अब शोमासियाण्डान् स्वामीजी की वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ शोमासियाण्डानार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०-शोमासियाण्डान्[१] अकलंनाट्टाल्वानकाले[२] दुग्धत-स्करे[३] कस्मिंश्चिद्गोपे[४] ताडिते[५] तच्छ्रुत्वा[६] मुमोहेति[७] प्रसिद्धिः[८], सर्वेश्वरो[९] यथा[१०] कृष्णरूपेणावततार[११] तथा वेदाश्च[१२] सहस्र-गीतिरूपेणावतेरुः[१३] ॥ ३२७ ॥

॥ श्रीकृष्णस्तुतिः ॥

अर्थ- प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ।

ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥ २३९ ॥

(शोमासियाण्डान्) शोमासियाण्डान् स्वामीजी (अकलंनाट्टाल्वानकाले) अकलंनाट्टाल्वानस्वामीजी के समय में (दुग्धतस्करे) दूध के चोर (कस्मिंश्चित्) किसी (गोपे) अहिर के (ताडिते) ताड़न करने पर (तत्) उस ताड़न को (श्रुत्वा) सुनकर (मुमोह) मोहित हो गये (इति) इस प्रकार की (प्रसिद्धिः) प्रसिद्धि है । (सर्वेश्वरः) सबके स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् (यथा) जैसे (कृष्णरूपेण) श्रीकृष्णरूप से (अवततार) अवतार लिये हैं । (तथा) वैसे ही (वेदाः) वेद (च) भी (सहस्रगीतिरूपेण) सहस्रगीतिरूपसे (अवतेरुः) अवतार लिये हैं । "अवतेरुः" यहाँपर ।। **तृफलभजत्रपश्च ॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० १२२ ॥** इस सूत्र से एकार और अभ्यास लोप हुआ है । अब यहाँ पर कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि वेद में कृष्णवतार लेना कहीं पर भी नहीं लिखा है । इस विषय में यह कहना है कि जो वेद नहीं पढ़ा है वह जो चाहे सो कहे परन्तु वेदाध्ययन करनेवाले जानते हैं कि वेद में श्रीकृष्णावतार लेनेको स्पष्ट लिखा है।।

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम् । यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसी दुदूतः ॥ ऋ० मं० ४, सू० ७, अ० १, मं० ९ ॥

हे भूमन् ! आपका जो सत्यानन्द चिन्मात्ररूप है तथा रुद्र रूपसे तीनपुर को नाश करनेवाला या स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर को ग्रसनेवाला रूप तुरीयात्मा उस कृष्ण भारूप को हम प्राप्त होवें जिस आपके स्वरूप को एक ही अर्चि अर्थात् ज्वालावत् अंश मात्र जीव अनेक देहों में भोक्ता रूपसे वर्तमान हैं और जो कृष्णभाव को निगडग्रस्त देवकी गर्भरूप से धारण करती हुई, हे भूमन् ! आप प्रसिद्ध ही गर्भ से प्रादुर्भूत होकर माता के पास से पृथक् हुए ॥ ९ ॥ और भी लिखा है कि **॥ एतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाच ॥ छान्दो० प्र० ३, अ० ३, खं० १७, मं० ६ ॥** यह उपदेश घोर आङ्गिरस ने देवकी के पुत्र श्रीकृष्णजी से कहकर मुझसे कहा ॥ ६ ॥ और भी ऋक्परिशिष्ट में लिखा है कि-

॥ कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः । यमुनह्रदे ह सो जातो यो नारायणवाहनः ॥

काली नामक नाग नौहजार हाथियों का बलवाला निश्चय करके यमुना के कुण्ड में नारायण श्रीकृष्ण का वाहन हुआ अर्थात् श्रीकृष्ण ने उसको नाथा ॥ इससे स्पष्ट श्रीकृष्णवतार लेना साबित होता है । इस तीनसौ सत्ताईसवीं वार्ता में बीस पद हैं । इति शोमासियाण्डानार्योक्तावार्ताव्याख्यानम् ॥ ३२७ ॥

अब महापूर्ण स्वामीजी आदि महानुभावों की वार्ता को कहते हैं ।

॥ अथ महापूर्णादिवार्ता ॥

मू०-महापूर्णः श्रीगोष्ठीपूर्णः श्रीमालाकारश्च श्रीचन्द्रपुष्करणीतीरे श्रीपुन्नागवृक्षस्याधः स्थित्वा स्वाचार्य्यस्य यामुनाचार्य्यस्यावस्थितिं तदुक्ताः समीचीनवार्ताश्च स्मृत्वानुभवन्तोऽतीव हृष्टा आनन्दमग्ना अतिष्ठन्, श्रीरङ्गश्रीमान् बलिं दातुं निर्गत्यागतः, तदा तेषां समाधिभङ्गो जातः, तदनन्तरं तत उत्थाय प्रणम्य समाधिभञ्जक आगतः, इतः परं यत्र श्रीबलिमूर्तिर्न निर्गच्छति तत्र वसाम इति प्रतिज्ञामकुर्वन् ॥ ३२८ ॥

॥ यामुनाचार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- श्रीरङ्गपुर्य्यां श्रितशिष्यसङ्घः श्रीयामुनार्य्यः प्रथितप्रभावः ।
अव्याहतं विष्णुमतं जगत्यां प्रवर्तयामास जितारिवर्गः ॥ २४० ॥

(महापूर्णः) महापूर्ण स्वामीजी तथा (गोष्ठीपूर्णः) श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजी (च) और (श्रीमालाकारः) श्रीमालाकार स्वामीजी (श्रीचन्द्रपुष्करणीतीरे) श्रीचन्द्रपुष्पकरणी के तट पर (श्रीपुन्नागवृक्षस्य) श्रीपुन्नागवृक्ष के (अधः) नीचे (स्थित्वा) ठहर कर (स्वाचार्य्यस्य) अपने आचार्य (यामुनाचार्य्यस्य) यमुनाचार्य्य स्वामीजी की (अवस्थितिम्) अवस्थितिको (च) और (तदुक्ताः) यामुनाचार्य्य स्वामीजी से कही हुई (समीचीनवार्ताः) समीचीन वार्त्ताओं को (स्मृत्वा) स्मरण करके (अनुभवन्तः) यामुनमुनि की सूक्तियों का अनुभव करते हुए (अति) अत्यन्त (हृष्टाः) हृष्टके (इव) समान (आनन्दमग्नाः) आनन्द में मग्न (अतिष्ठन्) ठहर गये। और जब (श्रीरङ्ग श्रीमान्) श्रीरङ्गनाथ भगवान्की श्रीवाले (बलिम्) बलिको (दातुम्) देने के लिये (निर्गत्य) भीतर के प्रकोटे से निकल कर (आगतः) आ गये (तदा) तब (तेषाम्) उन महानुभवों का (समाधिभङ्गः) समाधिभङ्ग (जातः) हो गया (तदनन्तरम्) इसके बाद समाधि टूटने पर (ततः) इस पुन्नागवृक्ष के नीचे से (उत्थाय) ऊठकर (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम कर (समाधिभञ्जकः) समाधि भङ्ग करनेवाला (आगतः) यहाँ पर आ गया, इसी कारणसे (इतः) इस स्थान से (परम्) दूसरे स्थान पर (यत्र) जहाँ परकी (श्रीबलिमूर्तिः) श्रीबलि करने के लिये मूर्ति (न) नहीं (निर्गच्छति) जाती है (तत्र) उस स्थान पर (वसामः) हम सब वास करें (इति) इस प्रकार की (प्रतिज्ञाम्) प्रतिज्ञा को (अकुर्वन्) महापूर्ण स्वामीजी वगैरह ने कर लिया। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि समाधि किसको कहते हैं। इस प्रश्न का उत्तर यह लिखा है कि ॥ **तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ यो० अ० १, पा० सू० ३,** ॥ स्वरूप शून्य के समान केवल उसी अर्थ का निर्भास होना, इसी को समाधि कहते हैं ॥ ३ ॥ और योगतत्त्वोपनिषद् में लिखा है कि ॥ **समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ॥ योगत० मं० १०७ ॥** जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को समाधि कहते हैं ॥ १०७ ॥ और योगचूडामण्युपनिषद् में लिखा है कि ॥ **ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥ योगचू० श्रु० ११२ ॥** बारह ध्यान को समाधि कहते हैं ॥ ११२ ॥ और वह समाधि ॥

दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात् । वायुं निरुध्य मेधावी जीवन्मुक्तो भवत्ययम् ॥ योगत० मं० १०६ ॥

मेधावी पुरुष बारह दिन वायु को सर्वदा रोकने से समाधि को प्राप्त करता है, और वह जीवन्मुक्त होता है ॥ १०६ ॥ इस विषय में जिसको विशेष जानना हो वह मेरे बनाये हुए "वैदिक

योग-संग्रहः'' नामके ग्रन्थ को देख ले। इस तीन सौ अट्ठाईसवीं वार्त्ता में सैंतालीस पद हैं। इति महापूर्णादिवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३२८ ॥

अब भट्टारक स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ भट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०-अन्तर्यामिणमवदित्वा-अर्चावतारेऽभिनिवेशो नाम-एकान्ते भर्तारं परिहरन्ती लोके श्लाघ्यमाना पतिव्रतेवशयनगृहेऽन्धकाराक्रान्ते श्रीवीथ्यां सुन्दरदीपारोपणवत् शयनगृहे तिष्ठति श्रीवीथीं शोधित्वालङ्करणवच्च भवति, शास्त्रविरुद्धेषु दुर्विषयेष्वासक्तिः, शास्त्राविरुद्धेषु सदाचारादिषु विरक्तिः, शास्त्रविहितेषु स्वरूपानुरूपेष्वर्चावतारेष्वसक्तिः, एतत् त्रयमपि स्वरूपयाथात्म्यज्ञानुकूलानां नित्यप्रवृत्तीनां विरुद्धाः, कस्यचिद्वैष्णवस्य वस्तव्यभूमिः ज्ञानार्थमाचार्य्यस्य सन्निधिः, तत्राशक्तौ विलक्षणस्य कस्यचित्सन्निधिः, तत्राप्यशक्तौ मौनेन कुत्रचिद्भगवन्मन्दिराङ्गणे यावच्छक्तिकैंकर्य्यं कृत्वा वर्तमानमावश्यकं नंवितिरुवलुतिवलनाडदासस्य तिरुनरैयूररैयरित्यस्य च भट्टारकोक्ता वार्त्ता अभिमतदेशेषु मिथ्यैव वा प्रविश्य संचारः-अन्तिमदशायां कार्य्यकरो भवति, भगवतो दुर्लभः तत्प्राप्तेरनर्ध्योपायः अञ्जलिमुद्रैव ''अञ्जलिः परमा मुद्रा'' इत्युक्तप्रकारेण एतन्मुद्रया अनाद्यपराधो नश्यति सर्वोऽप्यर्थः प्राप्यते ॥ ३२९ ॥

अर्थ-(अन्तर्यामिणम्) अन्तर्यामी भगवान्को (अविदित्वा) नहीं जानकर (अर्चावतारे) अर्चावतार भगवान्में (अभिनिवेशः) अभिनिवेश (नाम) माने (एकान्ते)

एकान्त में (भर्तारम्) अपने पतिको (परिहरन्ती) परित्याग करती हुई (लोके) इस लोक में (श्लाघ्यमाना) श्लाघाप्राप्त करती हुई (पतिव्रता) पतिव्रता स्त्री के (इव) समान (शयनगृहे) और शयन करने के घर में (अन्धकाराक्रान्ते) अन्धकार से आक्रान्त रहने पर (श्रीवीथ्याम्) श्रीवीथी में (सुन्दरदीपारोपणवत्) सुन्दर दीप आरोपण करने के समान (च) और (शयनगृहे) शयन करने के घर में (तिष्ठति) कूड़ा कचरा रहने पर (श्रीवीथीम्) श्रीवीथीको (शोधित्वा) शुद्धकर (अलङ्करणवत्) अलंकार करने के समान (भवति) होता है। (शास्त्रविरुद्धेषु) शास्त्र से विरुद्ध (दुर्विषयेषु) दुष्ट मद्य मांस आदि विषयों में (आसक्तिः) आसक्ति करना १, तथा (शास्त्राविरुद्धेषु) शास्त्र से अविरुद्ध (सदाचारादिषु) सदाचार आदिकों में (विरक्तिः) विरक्ति करना २, और (शास्त्रविहितेषु) शास्त्रसे विहित (स्वरूपानुरूपेषु) अपने स्वरूप के अनुरूप (अर्चारवतारेषु) अर्चारवतार भगवान् में (असक्तिः) सक्ति नहीं करना ३, (एतत्) ये पूर्वोक्त (त्रयम्) तीनों (अपि) भी (स्वरूपयाथात्म्यज्ञानानुकूलानाम्) स्वरूप के यथार्थ ज्ञान के अनुकूलों के और (नित्यप्रवृत्तीनाम्) नित्य प्रवृत्तियों के (विरुद्धाः) विरुद्ध हैं। (कस्यचित्) किसी भी (वैष्णवस्य) श्रीवैष्णवके (वस्तव्यभूमिः) वास करने योग्य भूमि (ज्ञानार्थम्) ज्ञान के लिये (आचार्य्यस्य सन्निधिः) आचार्य्य की सन्निधि है। तथा (तत्र) इस आचार्य्य की सन्निधि में वास करने में (अशक्तौ) असमर्थ होने पर (विलक्षणस्य) विलक्षण (कस्यचित्) किसी भी भागवतकी (सन्निधिः) सन्निधि है। और (तत्र) इस विलक्षण भागवत की सन्निधि में वास करने में (अपि) भी (अशक्तौ) असमर्थ होने पर (मौनेन) मौन धारण करके (कुत्रचित्) किसी भी (भगवन्मन्दिराङ्गणे) भगवान् के मन्दिर के आँगन में (यावत्) जितनी (शक्ति) शक्ति हो उतना (कैंकर्य्यम्) कैंकर्य्यको (कृत्वा) करके (वर्तमानम्) ठहरना (आवश्यकम्) आवश्यक है। (नंवितिरुवलुतिवलनाडदासस्य) नंवितिरुवलुतिवलनाडदास स्वामी जी के (च) और (तिरुनरैयूररैयर्) तिरु नरैयूररैयर् (इति) इस प्रकार के (अस्य) नाम वाले इस महात्मा की (भट्टारकोक्ता) भट्टारक स्वामीजी की कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (वा) अथवा (अभिमतदेशेषु) अभिमत दिव्य देशों में (मिथ्या) मिथ्या (एव) निश्चय करके (प्रविश्य) प्रवेश कर (संचारः) संचार करना (अन्तिमदशायाम्) अन्तिम अवस्था में (कार्य्यकरः) कार्य करने वाला (भवति) होता है। (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान्के (दुर्लभः) दुर्लभ (तत्प्राप्तेः) उस श्रीमन्नारायण भगवान्की प्राप्ति के (अनर्घ्योपायः) अनर्घ्य उपाय (अञ्जलिमुद्रा) अंजलि मुद्रा (एव) निश्चय करके है। (अञ्जलिः) अंजलि (परमा) सबसे श्रेष्ठ (मुद्रा) मुद्रा है (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (एतन्मुद्रया) इस अंजलि मुद्रा करके (अनाद्यपराधः) अनादिकाल का किया हुआ अपराध (नश्यति) नष्ट होता है, और

(सर्वः) सब पदार्थ (अपि) भी (प्राप्यते) प्राप्त होता है। अंजलि के विषय में यामुनाचार्य्य स्वामीजी ने भी कहा है कि-

॥ त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचिद्यथा तथा वापि सकृत्कृतोऽञ्जलिः। तदैव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ॥ आलव० श्लो० ३१

आपके चरणारविन्द को उद्देश्य करके किसी काल में भी कोई पुरुष किसी प्रकार से यदि एक बार अंजलि मुद्रा को कर लेता है तो उसी समय में निश्चय करके अशुभ कर्मों को संपूर्ण आप चुरा लेता है, और शुभ कर्मों को आप बढ़ा देते हैं जिससे कि यह चेतन कभी नहीं शुभ कर्मसे रहित होता है ॥ ३१ ॥ इस तीन सौ उन्तालीसवीं वार्ता में छानबे पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ २३९ ॥

अब अनन्ताचार्य्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ अनन्तवार्ता ॥

मू०-अनन्तार्य्यः कोशलराज्यगमनसमये कुत्रचित्-प्रदेशे बद्धं भगवत्प्रसादं भोक्तुमानय तदा तस्मिन्नानीते तत्र पिपीलिकां दृष्ट्वा-अत्यन्तं भीतः सन् "भगवतः श्रीशेषाद्रौ कोऽपि जन्तुर्भवेयम्" इत्युक्तं दिव्यसूरिणा तेषु केचन एता भवेयुः, अत एतद् गृहीत्वा वेङ्कटाद्रावावस्थाप्य-आगच्छतेत्यवदत्, अनन्तार्य्यस्त्रीन्संवत्सरान् वातपीडितो-ऽतिष्ठत्, तदा श्रीपादस्नेहिनः श्रीवेङ्कटनायकः किं करोती-त्युपालभन् स च श्रीवेङ्कटनायको हितं न करोतीत्य-वदन्, अनन्तार्य्ये श्रीनन्दनवनस्य मृदं वहति कश्चन बाल आगत्य तत्पिटिकामादातुमुद्युक्तवान्, तदानन्तार्य्यः एतस्याः-त्यागे मम परिश्रमो भवेत्, परिग्रहे तव परिश्रमो भवेदित्यवोचत्, स च परिश्रमो न भवेदिति तां पिटिका-मादद, अनन्तार्य्यस्तर्हि मम जीवनं किमिति विरुणत्सि

९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७
अभिमतिश्चेत्त्वमपि-एकया पिटिकया मृदं वहस्वेत्यवदत्,
१०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३
अनन्तार्य्यं श्रीनन्दनवने श्रीमण्डपे स्थित्वा मालां कुर्वन्तं
११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९
श्रीवेङ्कटेशः समाह्वयत्, अनन्तार्य्यस्तदा तूष्णीं स्थितः-
१२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६
मालां निर्माय-अनन्तरं मन्दिरमगच्छत्, वेङ्कटेशः मया
१२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७
आहूतः कुतो नागत इत्यपृच्छत्, स च त्वया किं कार्य्यं
१३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३
मालतीमुकुले विकासमाने-इत्यवोचत्, श्रीवेङ्कटेशस्तर्हि
१४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३
त्वमितो गच्छेति वदामि चेत्, त्वया किं कर्तव्यमित्य
१५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३
पृच्छत्, स च भवानिदानीमत्रागतः, अयं देशो भवदा-
१६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७०
श्रितानां खल्वित्यवोचत्, अनन्तार्य्यः मालां कृत्वा-आदाय
१७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६
मन्दिरं प्रविश्य, एकत्र स्थित्वा मालायामपेक्षितायां
१७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३
तिरस्करणीं दूरीकृत्य मालां दत्वा हस्तमाच्छादयतीति
१८४
प्रसिद्धम् ॥ ३३०॥

॥ अनन्तार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- अनन्तार्यो ययौ धीमान् कौशलं प्रति सत्वरम्।
तदन्नं भोक्तुकामः सन् गत्वाध्वानं महत्तरम् ॥ २४१॥

(अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी ने (कोशलराज्यगमनसमये) कोशलके राज्य में जाने के समय में (कुत्रचित्) किसी (प्रदेशे) प्रदेश में (बद्धम्) बाँधे हुए (भगवत्प्रसादम्) भगवान् के प्रसाद को (भोक्तुम्) भोजन करने के लिये (आनय) लाओ, इस प्रकार से कहा। (तदा) तब (तस्मिन्) उस भगवान् के प्रसाद को (आनीते) ले आने पर (तत्र) उस भगवान् के प्रसाद में (पिपीलिकाम्) चिंटी को (दृष्ट्वा) देखकर (अत्यन्तम्) अत्यन्त (भीतः) डरे (सन्) हुए (भगवतः) वेङ्कटेश भगवान्के (श्रीशेषाद्रौ) श्रीवेङ्कटाचल पर (कः) कोई (अपि) भी (जन्तुः) जीव (भवेयम्) मैं हो जाऊँ (इति) इस प्रकार के (दिव्यसूरिणा) दिव्य सूरियों से (उक्तम्) कहा गया है। इससे (तेषु) उन दिव्यसूरियों में (केचन) कोई दिव्यसूरि (एताः) ये पिपीलिका रूपवाले (भवेयुः) होवेंगे। (अतः) इस कारण से (एतत्) इस चिंटी युक्त भगवान् के प्रसाद को (गृहीत्वा) लेकर (वेङ्कटाद्रौ) वेंकटाचल पर (अवस्थाप्य)

रखकर (आगच्छत) चले आवो (इति) इस प्रकारके (अवदत्) श्रीवैष्णवों से कहे हैं। (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (त्रीन्) तीन (संवत्सरान्) संवत्सर (वातपीडितः) वातरोग से पीड़ित (अतिष्ठत्) ठहर गये। (तदा) तब (श्रीपादस्नेहिनः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के श्रीपादतीर्थ के स्नेही सब (श्रीवेङ्कटनायकः) श्रीवेङ्कटेश भगवान् (किम्) क्या (करोति) करते हैं (इति) इस प्रकार के (उपालभन्) उपालभन करते हुए (च) और (सः) वह (श्रीवेङ्कटनायकः) श्रीवेङ्कटेश भगवान् (हितम्) श्रीअनन्ताचार्य्य स्वामीजी के वातरोग को अच्छा (न) नहीं (करोति) करते हैं (इति) इस प्रकारके (अवदन्) कहे हैं। (अनन्तार्य्ये) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के (श्रीनन्दनवनस्य) श्रीनन्दन वन की (मृदम्) मिट्टी को (वहति) ढ़ोने के समय में (कश्चन) कोई (बालः) बालक (आगत्य) आकर (तत्पिटिकाम्) उस अनन्ताचार्य्य स्वामीजी की पिटिका को (आदातुम्) ग्रहण करने के लिये (उद्युक्तवान्) तैयार हुआ। (तदा) तब (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामी (एतस्याः) इस पिटिका के (त्यागे) त्याग करने पर (मम) मुझे (परिश्रमः) परिश्रम (भवेत्) होगा। और (परिग्रहे) इस पिटिका को ग्रहण करने पर (तव) तुझे (परिश्रमः) परिश्रम (भवेत्) होगा, (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। (च) और (सः) वह बालक (परिश्रमः) परिश्रम (न) नहीं (भवेत्) होगा (इति) इस प्रकार से कहकर (ताम्) उस अनन्ताचार्य्य स्वामी जी की मिट्टी ढोने की (पिटिकाम्) पिटिका को (आददे) ग्रहण कर लिया। (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (तर्हि) तब तो (मम) मेरे (जीवनम्) जीवन को (किम्) क्यों (इति) इस प्रकार के (विरुणत्सि) विशेष रूप से रोकते हो (अभिमतिः) यदि आपकी अच्छे प्रकार की इच्छा है (चेत्:) तो (त्वम्) तुम (अपि) भी (एकया) एक (पिटिकया) पिटिका से (मृदम्) मिट्टी को (वहस्व) ढोओ (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। (अनन्तार्य्यम्) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी को (श्रीनन्दनवने) श्रीनन्दन वन में (श्रीमण्डपे) श्रीमण्डप में (स्थित्वा) स्थित होकर (मालाम्) मालाको (कुर्वन्तम्) करते हुए (श्रीवेङ्कटेशः) श्रीवेंकटेश भगवान् ने (समाह्वयत्) अच्छी तरह से बुलाया। (तदा) तब (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य स्वामी जी (तूष्णीम्) चुपचाप (स्थितः) स्थित रह गये। (मालाम्) मालाको (निर्माय) बनाकर (अनन्तरम्) इसके बाद अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (मन्दिरम्) श्रीवेङ्कटेश भगवान् के मन्दिर में (अगच्छत्) गये। और (वेङ्कटेशः) श्रीवेङ्कटेश भगवान् (मया) मैंने (आहूतः) बुलाया तो (कुतः) किस कारणसे (न) नहीं (आगतः) तुम आये (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे। (च) और (सः) वह अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (त्वया) तुझसे (किम्) क्या (कार्य्यम्) कार्य्य है (मालतीमुकुले) मालती के मुकुल (विकासमाने) विकासमान रहने पर (इति) इस प्रकारसे (अवोचत्) कहे हैं।

(वेङ्कटेशः) श्रीवेङ्कटेश भगवान् (तर्हि) तब तो (त्वाम्) तुमको (इतः) इस वेङ्कटाचल से (गच्छ) चले जाओ (इति) इस प्रकार के (वदामि) मैं कहूँगा (चेत्) तो (त्वया) तुम (किम्) क्या (कर्तव्यम्) करोगे (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे। (च) और (सः) वह अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (भवान्) आप (इदानीम्) इस समय में (अत्र) इस वेङ्कटाचल पर (आगतः) आये हैं। और (अयम्) यह (देशः) देश (खलु) निश्चय करके (भवदाश्रितानाम्) आपके आश्रित जनों का है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (मालाम्) माला को (कृत्वा) बनाकर (आदाय) और लेकर (मन्दिरम्) श्रीवेङ्कटेश भगवान् के मन्दिर में (प्रविश्य) पैठकर (एकत्र) एक स्थान पर (स्थित्वा) ठहरकर (मालायाम्) माला (अपेक्षितायाम्) अपेक्षित होनेपर (तिरस्करणीम्) पर्दाको (दूरीकृत्य) दूर करके (मालाम्) माला को (दत्त्वा) देकर (हस्तम्) हाथ को (आछादयति) आछादन करता है (इति) इस प्रकार से (प्रसिद्धम्) प्रसिद्ध है। इस तीन सौ तीसवीं वार्ता में एक सौ चौरासी पद हैं। इत्यनन्ताचार्य्यवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३० ॥

अब श्रीविभीषणकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीविभीषणवार्ता ॥

मू०-श्रीविभीष्णः-ऐश्वर्य्यार्थी, उत-अनन्यप्रयोजन इति चेत्, अस्मदादयः प्रपन्ना अपि शरीरावसानपर्यन्तं स्त्र्यन्नपानादिभिः सह वर्तामहे तथा-अनन्यप्रयोजनोऽपि-अधिकारावसानपर्यन्तम् ऐश्वर्य्यानुभवं करोति ॥ ३३१॥

अर्थ-(श्रीविभीषणः) विभीषण सूरि (ऐश्वर्य्यार्थी) ऐश्वर्य्यार्थी (उत) अथवा (अनन्यप्रयोजनः) अनन्य प्रयोजन है (इति) इस प्रकार से (चेत्) यदि कहो तो सुनो (अस्मदादयः) हम सब (प्रपन्नाः) प्रपन्न (अपि) भी (शरीरावसानपर्यन्तम्) शरीर के अवसान पर्यन्त (स्त्र्यन्नपानादिभिः) स्त्री तथा अन्न और पान आदिकों के (सह) साथ (वर्तामहे) वर्तन करते हैं (तथा) वैसे ही (अनन्यप्रयोजनः) अनन्य प्रयोजन पुरुष (अपि) भी (अधिकारावसानपर्यन्तम्) अधिकार के अवसान पर्यन्त (ऐश्वर्य्यानुभवम्) ऐश्वर्यके अनुभव को (करोति) करता है। इस तीन सौ ईक्कतीसवीं वार्ता में उन्नीस पद हैं। इति श्रीविभीषणसूरिवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३१ ॥

अब कन्दाडयाण्डानाचार्य्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ कन्दाडयाण्डानाय्योक्ता वार्ता ॥

मू०-ईश्वरः कांश्चिद् च्छतेति वदति, कांश्चिदागच्छतेति वदति, कांश्चित्तिष्ठतेति प्रयोजनान्तरपरान् फलं दत्वा गच्छतेति वदति, कर्मज्ञाननिष्ठान् कर्मनाशानन्तरमागच्छतेति वदति, अनन्यप्रयोजनान् अत्रैव तिष्ठतेति वदति, अस्मिन्देशे एकोऽनन्यप्रयोजनो नास्तीति जानीमः, किमस्ति चेत्-तत्र पश्यामः प्राप्यं प्रापकश्च-ईश्वर एवेत्युक्तौ विश्वसन्तो न सन्ति, विश्वासकरणेऽपि, कृतज्ञा न सन्ति, कृतज्ञसत्वेऽपि कैङ्कर्य्यविरसम्भवति एतत्त्रयाणां मेलनेऽपि रागद्वेषोपहतत्वात् भागवतकैंकर्य्यं नानुमन्यन्ते, तदङ्गीकारेऽपि-आचार्य्यदेहयात्रां दृष्ट्वा दोषं चिन्तयन्ति तस्याभावेऽपि स्वात्मानं शुद्धं मन्यन्ते तस्माद्भगवद्गुणकथनस्य तच्छ्रवणस्य चाधिकारी नास्तीति कन्दाडयाण्डान् ॥ ३३२ ॥

॥ भक्तिसारस्तुतिः ॥

अर्थ- मध्ये कलिद्वापरयोः सहस्त्रवर्षाणि सप्तैव विहृत्य भूमौ ।
सौदर्शनीं मूर्तिमुपागतं च तं भक्तिसारं शरणं प्रपद्ये ॥ २४२ ॥

(ईश्वरः) सर्वेश्वर भगवान् (कांश्चित्) कुछ पुरुषों को (गच्छत) चले जाओ (इति) इस प्रकार से (वदति) कहते हैं। तथा (कांश्चित्) कुछ पुरुषोंको (आगच्छत) चले आवो (इति) इस प्रकार से (वदति) कहते हैं। और (कांश्चित्) कुछ पुरुषों को (तिष्ठत) ठहरो (इति) इस प्रकार से (वदति) कहते हैं। (प्रयोजनान्तरपरान्) प्रयोजनान्तर परक पुरुषों को (फलम्) इष्ट फल को (दत्वा) देकर (गच्छत) चले जाव (इति) इस प्रकार के (वदति) श्रीमन्नारायण भगवान् कहते हैं। तथा (कर्मज्ञाननिष्ठान्) कर्म ज्ञान में निष्ठपुरुषों को (कर्मनाशानन्तरम्) कर्म के नाश होने के बाद (आगच्छत) चले

आवो (इति) इस प्रकार से (वदति) भगवान् कहते हैं। और (अनन्यप्रयोजनान्) अनन्य प्रयोजन वाले पुरुषों को (अत्र) यहाँ पर ही (एव) निश्चय करके (तिष्ठत) ठहरो (इति) इस प्रकारसे (वदति) श्रीमन्नारायण भगवान् कहते हैं। (अस्मिन्) इस (देशे) देशमें (एकः) एक पुरुष भी (अनन्यप्रयोजनः) अनन्य प्रयोजन (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार से (जानीमः) हम सब जानते हैं। (किम्) क्या (अस्ति) अनन्य प्रयोजन पुरुष है (चेत्) यदि तो (तत्र) वहाँपर (पश्यामः) हम सब देखते हैं। (प्राप्यम्) प्राप्य वस्तु (च) और (प्रापकः) प्रापकवस्तु ये दोनों (ईश्वरः) श्रीमन्नारायण भगवान् हैं (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकार से (उक्तौ) कहने पर (विश्वसन्तः) विश्वास करनेवाले (न) नहीं (सन्ति) हैं। और (विश्वासकरणे) विश्वास करने पर (अपि) भी (कृतज्ञाः) कृतज्ञ (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं। तथा (कृतज्ञसत्वे) कृतज्ञ होने पर (अपि) भी (कैङ्कर्य्यविरसम्) कैकर्य्य में विरस (भवति) होता है। (एतत्त्रयाणाम्) इन पूर्वोक्ततीनों के (मेलने) सम्मेलन करने पर (अपि) भी (रागद्वेषोपहतत्वात्) राग और द्वेष से उपहत होने से (भागवतकैङ्कर्य्यम्) भागवतोंके कैंकर्य्य को (न) नहीं (अनुमन्यन्ते) मानते हैं। और (तदङ्गीकारे) भागवतों के कैंकर्य्य को स्वीकार करने पर (अपि) भी (आचार्य्यदेहयात्राम्) आचार्य्य के देह की यात्रा को (दृष्ट्वा) देखकर (दोषम्) दोषको (चिन्तयन्ति) चिन्तन करते हैं। (तस्य) उस आचार्य्य के दोष चिन्तन के (अभावे) अभाव होने पर (अपि) भी (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (शुद्धम्) शुद्ध (मन्यते) मानते हैं। (तस्मात्) उस कारण से (भगवद्गुणकथनस्य) श्रीमन्नारायण भगवान् के दिव्यगुणों को कहने से (च) और (तच्छ्रवणस्य) श्रीमन्नारायण भगवान् के दिव्यगुणों को सुनने से (अधिकारी) अधिकारी (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार के (कन्दाडयाण्डान्) कन्दाडयाण्डान् स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ बत्तीसवीं वार्ता में नवासी पद हैं। इति कन्दाडयाण्डानार्य्योक्तावार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३२ ॥

अब भट्टारक स्वामीजी के प्रति आचार्य्य से कही हुई वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ आचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०-आचार्य्येण भट्टार्य्यं प्रति श्रीसरस्वतीगृहे-उक्ता वार्ता श्रीमालाकारोक्ता वार्ता भगवद्विषयं वदाम इत्युक्तौ संसारेऽधिकारी नास्ति, तथाहि-एकं पूगीफलं भूमौ प्रक्षिप्य तदङ्कुरपर्य्यन्तं शिरसा जलं प्रक्षिप्य तत्सर्वत

२८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४
आच्छाद्य तस्य षोडशवर्षपर्यन्तं रक्षणे कृते-अन्ततः-एकं
३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३
पूगीफलं प्राप्यते, तद्वन्न भवतीदम्, त्याज्यो हेयः संसारः
४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९
प्राप्यं विलक्षणं परमपदम्, एतन्निदानतया-एकां वार्तां
५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७
वदत्याचार्य्ये कदाचिदपि कृतज्ञा न भवन्ति, एतादृशसंसा-
५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६
रिणां वयं किं वदाम इत्युक्त्वातीव विषण्णोऽभवत् ॥ ३३३ ॥

॥ आचार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- इहामुत्र च शिष्यस्य रक्षको गुरुरेव हि ।
तस्मादाचार्य्यविषये कर्तव्या यावदायुषम् ॥ २४३ ॥

(आचार्य्येण) आचार्य्यसे (भट्टार्य्यम्) भट्टारक स्वामीजी के (प्रति) प्रति (श्रीसरस्वतीगृहे) श्रीसरस्वती देवीजी के गृह में (उक्ता) कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि यह (श्रीमालाकारोक्ता) श्रीमालाकार स्वामीजी से कही हुई (वार्ता) वार्ता है कि (भगवद्विषयम्) भगवद्विषय को (वदामः) हम सब कहते हैं (इति) इस प्रकार से (उक्तौ) कहने पर (संसारे) संसार में (अधिकारी) अधिकारी पुरुष (न) नहीं (अस्ति) है (तथाहि) उसी को दिखाते हैं कि (एकम्) एक (पूगीफलम्) कसैली को (भूमौ) पृथ्वी में (प्रक्षिप्य) बोकर (तदङ्कुरपर्यन्तम्) उस कसैली के अंकुर निकलने समय तक (शिरसा) शिर से (जलम्) जलको (प्रक्षिप्य) ढोकर उस स्थान पर डालकर (तत्) उस कसैली के अङ्कुर को (सर्वतः) चारो तरफ से (आच्छाद्य) घेर कर (तस्य) उस कसैली के अङ्कुर के (षोडशवर्षपर्यन्तम्) सोलह वर्ष पर्यन्त (रक्षणे) रक्षा (कृते) करने पर (अन्ततः) अन्त में (एकम्) एक (पूगीफलम्) कसैली का फल (प्राप्यते) प्राप्त होता है (तद्वत्) उसके समान (इदम्) यह (न) नहीं (भवति) होता है। (त्याज्यः) त्याग करने योग्य (हेयः) हेय (संसारः) संसार है। और (प्राप्यम्) प्राप्त करने योग्य (विलक्षणम्) सबसे विलक्षण (परमपदम्) परम पद है। (एतन्निदानतया) इस पूर्वोक्त के कारण रूप से (एकाम्) एक (वार्ताम्) वार्ता को (आचार्य्ये) आचार्य्य के (वदति) कहने पर (कदाचित्) कभी (अपि) भी (कृतज्ञाः) कृतज्ञ (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं। (एतादृशससारिणाम्) इस प्रकारसे संसारी जीवों से (वयम्) हम सब (किम्) क्या (वदामः) कहते हैं (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा) कहकर (अति) अत्यन्त के (इव) समान (विष्णः) विषण्ण (अभवत्) हो गये। इसी तीनसौ तैंतीसवीं वार्ता में छियासठ पद हैं। इत्याचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३३ ॥

अब श्रीवैष्णव के और कलिवैरिदास स्वामीजीके प्रश्नोत्तर रूप वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीवैष्णवकलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०-अवतारस्य कः प्रकार इति कलिवैरिदासं श्रीवैष्णवा अपृच्छन्, स च देहः पाण्डुरः, जिह्वा च नीरसा वर्तते, अधिकारिणोऽलाभात् देहः पाण्डुरः, तल्लाभे च प्रयोजनान्तरपरत्वात् केशदुष्टांन्नमिति जिह्वा शुष्यतीत्यवोचत् ॥ ३३४ ॥

अर्थ-(अवतारस्य) नारायण भगवान् के अवतार का (कः) कौन सा (प्रकारः) प्रकार है (इति) इस प्रकार से (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजी से (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सबों ने (अपृच्छन्) पूछा। (च) और (सः) वह कलिवैरिदास स्वामीजी (देहः) शरीर (पाण्डुरः) पाण्डुर है (च) और (जिह्वा) जीभ (नीरसा) नीरस (वर्तते) है। (अधिकारिणः) अधिकारी को (अलाभात्) लाभ नहीं होने से (देहः) शरीर (पाण्डुरः) पाण्डुर हुआ है। (च) और (तल्लाभे) अधिकारी के प्राप्त होने पर भी (प्रयोजनान्तरपरत्वात्) प्रयोजनान्तर परक होने से (केशदुष्टान्नम्) केश से दुष्ट अन्न है (इति) इस कारण से (जिह्वा) जीभ (शुष्यति) सुखती है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। इस तीनसौ चौंतीसवीं वार्तामें अट्ठाईस पद हैं। इति श्रीवैष्णवदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३४ ॥

अब यामुनाचार्य्य स्वामीजीकी वार्ताको कहते हैं कि-

॥ अथ यामुनाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०-श्रीयामुनाचार्य्यः-भगवन्तं सेवितुम् अन्तः प्रविशन् तत्र काञ्चन अनन्यप्रयोजनवत् स्त्रवदश्रुनेत्रां रुदन्तीं प्रदक्षिणं कुर्वाणां दृष्ट्वा-अन्तरप्रविश्य बहिरेव स्थित्वा प्रयोजनान्तरपरा बहिर्निर्गता किमित्यपृच्छत्, तत्रत्या एतन्निदानं किमित्यपच्छन, स च भगवत्सन्निधा-

३३ ३४ ३५ ३६ ३७
वपि प्रयोजनान्तरपरैः सह सङ्गतिरधिकारविरोधिनी
३८ ३९ ४० ४१
फलविरोधिनीचेत्यवदत् ॥ ३३५ ॥

॥ यामुनाचार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- स्तोत्ररत्नं चतुःश्लोकीं वेदप्रामाण्यमेव च ।
सिद्धित्रयं च वेदान्तिश् श्रीगीतासंग्रहं महान् ।
यामुनो लोकरक्षार्थमकरोद् ग्रन्थपञ्चकम् ॥ २४४ ॥

(श्रीयामुनाचार्य्यः) श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी (भगवन्तम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् को (सेवितुम्) सेवा करने के लिये (अन्तः) भीतर में (प्रविशन्) पैठते हुए (तत्र) उस सन्निधि के पास में (काञ्चन) किसी स्त्री को (अनन्यप्रयोजनवत्) अनन्य प्रयोजन के समान (स्रवदश्रुनेत्राम्) आँख से लोर टपकाती हुई (रुदन्तीम्) रोती हुई और (प्रदक्षिणम्) प्रदक्षिण को (कुर्वाणाम्) करती हुई उसको (दृष्ट्वा) देखकर (अन्तः) भीतर में (अप्रविश्य) नहीं पैठकर (बहिः) बाहर में (एव) निश्चय करके (स्थित्वा) उहरकर (प्रयोजनान्तरपरा) प्रयोजनापरा स्त्री (बहिः) बाहर (निर्गता) निकल गई (किम्) क्या (इति) इस प्रकार से (अपृच्छन्) पूछे। (च) और (सः) वह यामुनाचार्य्य स्वामीजी (भगवत्सन्निधौ) भगवान्की सन्निधि में (अपि) भी (प्रयोजनान्तरपरैः) प्रयोजनान्तरपरक मनुष्यों के (सह) साथ (सङ्गतिः) सङ्गति (अधिकारविरोधिनी) अधिकारी की विरोधिनी है (च) और (फलविरोधिनी) फल की विरोधिनी है (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहे हैं। इस तीन सौ पैंतिसवीं वार्ता में ईकतालीस पद है। इति यामुनाचार्य्योक्तावार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३५ ॥

अब पुनः यामुनाचार्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ यामुनाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

१ २ ३
मू०-देहात्मविवेकः, आत्मपरमात्मविवेकः, पुरुषार्था-
४ ५
पुरुषार्थविवेकः, विरोधाविरोधविवेकः, उपायानुपायविवेकः,
६ ७ ८
वैष्णवावैष्णवविवेकः, दुष्करादुष्करविवेकः, आचरानाचार-
९ १० ११ १२
विवेकः, शिष्याचार्य्यविवेकश्च, अधिकारिणोऽपेक्षिताः, मुमु-
१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९
क्षोः प्रपन्नस्याधिकारिणो ज्ञातव्याश्चत्वारोऽर्थाः प्राप्यविषयः

प्रापकविषयः आचार्य्यविषयः भोजनविषयश्च, प्राप्यविषयः-
शरीरनिवृत्तिपूर्वकम् अर्चिरादिमार्गेण गत्वा परमपदं प्राप्य
तत्र भगवदनुभवप्रीत्या क्रियमाणं कैङ्कर्य्यं तत्राध्यवसायो
नाम कैङ्कर्य्यव्यतिरिक्तेषु धर्मार्थकामेषु मोक्षे च कैवल्ये
पुरुषार्थान्तरेषु मनसोऽगमनं कैङ्कर्य्यमेव परमप्राप्यमित्य-
वस्थानम्, प्रापकविषयश्च सौलभ्यादिगुणविशिष्टो विग्रह-
विशिष्टः ईश्वरः, तत्राध्यवसायो नाम लक्ष्मीपुरुषकारपूर्वकः
स एवोपाय इत्यध्यवस्य-एतदुपायान्तरेषु कर्मज्ञानभक्तिष्व-
प्रवृत्तिः, आचार्य्यविषयो नाम-एतदुपायस्वीकर्त्रा-आशरीरा-
वसानं मनोवाक्कायैरानुकूल्येनाश्रितः, तत्राध्यवसायो नाम-
अभिमतदिव्यदेशेषु-अर्चावतारप्रेमवत्सु श्रीवैष्णवेषु च
त्रिविधकरणैः प्रातिकूल्यनिवृत्तिः, एवमवस्थितौ ख्याति-
लाभपूजार्थं भगवत्प्राप्तिसाधनत्वेन वा-अप्रतिपद्य स्वयं
प्रयोजनप्रतिपत्तिः, भोजनविषयोनाम-न्यायार्जितद्रव्येण
देहधारणार्हेण जीवनं तत्राध्यवसायो नाम-अनुकूलपीडया
प्रतिकूलसमीपेऽपेक्षया वा भगवद्द्रव्येण वा जीवनमकृत्वा
शरीरपरिश्रमेण सम्पादितेन-अयाचितद्रव्येण वा देहयात्रा-
करणम् ॥ ३३६ ॥

॥ यामुनाचार्य-स्तुतिः ॥

अर्थ- पंचविंशतिसंयुक्तं वत्सराणां शतं गतम्।
त्यक्ताभिलाषो मेदिन्यां यातु कामः परं पदम् ॥ २४५ ॥

(देहात्मविवेकः) देह और आत्मा का विवेक १, (आत्मपरमात्मविवेकः) जीवात्मा तथा परमात्मा का विवेक २, (पुरुषार्थापुरुषार्थविवेकः) पुरुषार्थ और अपुरुषार्थ का विवेक ३, (विरोधाविरोधविवेकः) विरोध तथा अविरोध का विवेक

४, (उपायानुपायविवेकः) उपाय और अनुपाय का विवेक ५, (वैष्णवावैष्णविवेकः) वैष्णव तथा अवैष्णव का विवेक ६, (दुष्करादुष्करविवेकः) दुष्कर तथा अदुष्कर का विवेक ७, (आचारानाचारविवेकः) आचार और अनाचार का विवेक ८, (च) और (शिष्याचार्य्यविवेकः) शिष्य तथा आचार्य्य का विवेक ९, ये पूर्वोक्त विवेक (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष से (अपेक्षिताः) अपेक्षित हैं। (मुमुक्षोः) मोक्ष की इच्छा वाले (प्रपन्नस्य) प्रपन्न (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (ज्ञातव्याः) जानने योग्य (चत्वारः) चार (अर्थाः) अर्थ हैं। (प्राप्यविषयः) प्राप्यविषय १, और (प्रापकविषयः) प्रापकविषय २, तथा (आचार्य्यविषयः) आचार्य्य-विषय ३, (च) और (भोजनविषयः) भोजन विषय ४, ये चार अर्थ हैं। उनमें (प्राप्यविषयः) प्राप्यविषय माने (शरीरनिवृत्तिपूर्वकम्) देह की निवृत्ति पूर्वक (अर्चिरादिमार्गेण) अर्चिरादिमार्ग से (गत्वा) जाकर (परमपदम्) परमपद को (प्राप्य) पाकर (तत्र) वहाँ पर (भगवदनुभवप्रीत्या) भगवान्के अनुभव की प्रीति से (क्रियमाणम्) क्रियमाण (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य है। तथा (तत्र) उस पूर्वोक्तक्रियमाण कैङ्कर्य्य में (अध्यवसायः) अध्यवसाय (नाम) माने (कैङ्कर्य्यव्यतिरिक्तेषु) कैङ्कर्य्य से अन्य (धर्मार्थकामेषु) धर्म और अर्थ तथा कामों में (च) और (मोक्षे) मोक्ष में तथा (कैवल्ये) कैवल्य में और (पुरुषार्थान्तरेषु) अन्यपुरुषार्थों में (मनसः) मनका (अगमनम्) नहीं जाना है, और (कैङ्कर्य्यम्) भगवत् का कैङ्कर्य्य (एव) निश्चय करके (परमप्राप्यम्) परमप्राप्य है, (इति) इस प्रकार से (अवस्थानम्) अवस्थिति करना है १, (च) और (प्रापकविषयः) प्रापक विषय माने (सौलभ्यादिगुणविशिष्टः) सौलभ्य वात्सल्य सौशील्य आदि दिव्य गुणों से युक्त (विग्रहविशिष्टः) मङ्गलमय दिव्य विग्रह से युक्त (ईश्वरः) श्रीमन्नारायण भगवान् हैं। और (तत्र) उस पूर्वोक्त विग्रह विशिष्ट सर्वेश्वर में (अध्यवसायः) अध्यवसाय (नाम) माने (लक्ष्मीपुरुषकारपूर्वकः) लक्ष्मी देवीजी के पुरुषकार पूर्वक (सः) वह सर्वेश्वर भगवान् (एव) निश्चय करके (उपायः) उपाय हैं (इति) इस प्रकार से (अध्यवस्य) अध्यवसाय करके (एतदुपायान्तरेषु) इसके उपायान्तर (कर्मज्ञानभक्तिषु) कर्म तथा ज्ञान और भक्ति में (अप्रवृत्तिः) प्रवृत्ति नहीं करना है २, तथा (आचार्य्यविषयः) आचार्य्य विषय (नाम) माने (एतदुपायस्वीकर्त्रा) इसके उपाय को स्वीकार करनेवाले पुरुष द्वारा (आशरीरावसानम्) देह की समाप्ति पर्यन्त (मनोवाक्कायैः) मन तथा वाणी और शरीर द्वारा (आनुकूल्येन) अनुकूलता से (आश्रितः) आश्रयण करना है। और (तत्र) उस पूर्वोक्त में (अध्यवसायः) अध्यवसाय (नाम) माने (अभिमतदिव्यदेशेषु) अभिमत श्रीरङ्ग आदि दिव्य देशों में (च) और (अर्चावतारप्रेमवत्सु) अर्चावतार भगवान्में प्रेम करने वाले (श्रीवैष्णवेषु) श्रीवैष्णवों में (त्रिविधकरणैः) तीन प्रकार के मन वाणी और शरीररूप करणों से

(प्रातिकूल्यनिवृत्तिः) प्रतिकूलता की निवृत्ति करना है और (एवम्) इस प्रकार की (अवस्थितौ) अवस्थिति में (ख्यातिलाभपूजार्थम्) ख्याति होने के लिये तथा लाभ होने के लिए और पूजा होनेके लिये (भगवत्प्राप्तिसाधनत्वेन) भगवान् की प्राप्ति में उपायता करके (वा) अथवा (स्वयम्) अपनेसे (अप्रतिपद्य) नहीं प्राप्त कर (प्रयोजनप्रतिपत्तिः) प्रयोजन की प्रतिपत्ति करना है ३,। और (भोजनविषयः) भोजन विषय (नाम) माने (देवधारणार्हेण) देह धारण करने योग्य (न्यायार्जितद्रव्येण) न्याय से अर्जन किये हुए द्रव्यसे (जीवनम्) जीवन करना है। और (तत्र) उस पूर्वोक्त जीवन में (अध्यवसायः) अध्यवसाय (नाम) माने (अनुकूलपीडया) अनुकूलों की पीड़ा से (वा) अथवा (प्रतिकूलसमीपे) प्रतिकूलों के समीप में (अपेक्षया) अपेक्षा करके (वा) अथवा (भगवद्द्रव्येण) भगवान् के द्रव्य से (जीवनम्) जीवनको (अकृत्वा) नहीं करके (शरीरपरिश्रमेण) देह के परिश्रम से (सम्पादितेन) संपादन करके (वा) अथवा (अयाचितद्रव्येण) अयाचित द्रव्य से (देहयात्राकरणम्) देह की यात्रा करना है ४, इस तीन सौ छत्तीसवीं वार्त्ता में एक सौ ग्यारह पद हैं। इति यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३६ ॥

❁

अब कलिवैरिदास स्वामी जी के और उनके शिष्योंके संपादरूप वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०-कलिवैरिदासशिष्यावुभौ श्रीवैष्णवौ-अन्योन्यं स्पर्द्धन्तौ परस्परं गृहीत्वा-आगतौ, अत्र को हेतुरिति कलिवैरिदासोऽपृच्छत्, एतावत् कालं सेवया प्राप्तोऽयमर्थ-इति प्रदर्शयितुमागताविति अवदताम्, कलिवैरिदासः दुष्टस्य गर्वितस्य समीपं गच्छतं मत्समीपे किमित्यागच्छथ-इत्यवदत् ॥ ३३७ ॥

अर्थ-(कलिवैरिदासशिष्यौ) कलिवैरिदास स्वामीजी के शिष्य (उभौ) दो (श्रीवैष्णवौ) श्रीवैष्णव (अन्योन्यम्) आपस में (स्पर्द्धन्तौ) स्पर्द्धा करते हुए (परस्परम्) आपस में (गृहीत्वा) पकड़ कर (आगतौ) कलिवैरिदास स्वामीजी की सन्निधि में आ गये। तब (अत्र) इस विषय में (कः) क्या (हेतुः) कारण है, (इति)

इस प्रकार से (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (अपृच्छत्) अपने शिष्यों से पूछा। (एतावत्) इतना (कालम्) समय तक (सेवया) सेवा करने से (अयम्) यह (अर्थः) अर्थ (प्राप्तः) हम दोनों से प्राप्त हुआ है (इति) इसी कारण से इस अर्थ को (प्रदर्शयितुम्) दिखाने के लिये (आगतौ) आपकी सन्निधि में हम दोनों आये हैं (इति) इस प्रकार से (अवदताम्) वे दोनों शिष्य बोले। तब (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी (गर्वितस्य) गर्वित (दुष्टस्य) दुष्टपुरुष के (समीपम्) समीप में (गच्छतम्) तुम दोनों चले जाओ (मत्समीपे) मेरे पास में (किम्) क्यों (इति) इस प्रकार से (आगच्छथः) तुम दोनों आये हो (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहे हैं। इस तीन सौ सैंतीसवीं वार्ता में छत्तीस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३३७॥

अब कलिवैरिदास स्वामी जी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०-सर्पास्यगतमण्डूकस्यार्तध्वनिं श्रुत्वा कूरेशो मुमोहेति कलिवैरिदासोऽवदत् ॥ ३३८ ॥

अर्थ-(सर्पास्यगतमण्डूकस्य) साँप के मुख में गये बेंग के (आर्तध्वनिम्) आर्त्तशब्दको (श्रुत्वा) सुनकर (कूरेशः) कूरेश स्वामीजी (मुमोह) मोहित हो गये हैं (इति) इस प्रकार से (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामी जी ने (अवदत्) कहा है। इस तीन सौ अड़तीसवीं वार्ता में आठ पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३८ ॥

अब पुल्लैत्रिविरिधिस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ पुल्लैत्रिविरिध्युक्ता वार्ता ॥

मू०-अनेन परदुःखासहिष्णुत्वं परसमृद्ध्यैकप्रयोजनत्वं वैष्णवस्य स्वभाव इत्युक्तं पुल्लैत्रिविरिधिना ॥ ३३९ ॥

॥ भक्तिसारस्तुतिः ॥

अर्थ- स तस्मै भक्तिसाराय विष्वक्सेनकृपावशात् ।
तापादि पञ्चसंस्कारांश्चकार महदाह्वयः ॥ २४६ ॥

(अनेन) इस वाक्य करके (परदुःखासहिष्णुत्वम्) दूसरे के दुःख की असहिष्णुता और (परसमृद्ध्या) परब्रह्मकी समृद्धि से (एकप्रयोजनत्वम्) एक प्रयोजनता (वैष्णवस्य) श्रीवैष्णवका (स्वभावः) स्वभाव है (इति) इस प्रकार से (पुल्लैत्रिविरिधिना) पुल्लैत्रिविरिधि स्वामीजी से (उक्तम्) कहा गया है। इति पुल्लैत्रिविरिध्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३३९ ॥

अब श्रीवैष्णवों की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ श्रीवैष्णववार्ता ॥

मू०-इरयेन इत्यस्यान्तिमदशायाम् एकः क्लेशो जातः पार्श्वस्थाः श्रीवैष्णवाः-अन्योन्यं मुखमपश्यन्, एतज्ज्ञात्वा श्रीवैष्णवाः संसारिदुःखस्य क्लिश्यामः, तेभ्योऽस्माकम् अल्प एव विशेषः, क्रियमाणः-एकः प्रणामः-एका प्रपत्तिश्च, त्याज्यः संसारः प्राप्यं परमभोग्यम् एतदज्ञात्वा-अधः पतन्तीति क्लेशो जात इत्यवोचन्, तेऽपि कृतार्था बभूवुः ॥ ३४० ॥

अर्थ-(इरयेनः) इरयेन (इति) इस प्रकार के नाम वाले (अस्य) इस महात्मा के (अन्तिमदशायाम्) अन्तिम समय में (एकः) एक प्रधान (क्लेशः) क्लेश (जातः) उत्पन्न हुआ। (पार्श्वस्थाः) बगल में स्थित (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (अन्योन्यम्) आपस में (मुखम्) मुख को (अपश्यन्) देखे। (एतत्) इस वृतान्त को (ज्ञात्वा) जानकर (श्रीवैष्णवाः) अन्य श्रीवैष्णव सब (संसारिदुःखस्य) संसारी जीवके दुःख के (क्लिश्यामः) हम सब क्लेश पाते हैं। (तेभ्यः) इन सब संसारी जीवों से (अस्माकम्) हम सब श्रीवैष्णवों के (अल्पः) थोड़ा सा (एव) निश्चय करके (विशेषः) विशेष होता है। जैसे कि (क्रियमाणः) क्रियमाण (एकः) एक (प्रणामः) साष्टाङ्ग प्रणाम (च) और (एका) एक (प्रपत्तिः) प्रपत्ति है। (त्याज्यः) त्याग करने योग्य (संसारः) संसार है। और (प्राप्यम्) प्राप्य (परमभोग्यम्) परम भोग्य है।

(एतत्) इस वस्तु को (अज्ञात्वा) नहीं जानकर (अधः) नीचे (पतन्ति) ये जीव गिरते हैं (इति) इस कारण से (क्लेशः) क्लेश (जातः) उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकार से (अवोचन्) कहे हैं, और (ते) वे श्रीवैष्णव (अपि) भी (कृतार्थाः) कृतार्थ (बभूवुः) हो गये हैं। इस तीन सौ चालीसवीं वार्ता में पैंतालीस पद हैं। इति श्रीवैष्णववार्ताव्याख्यानम् ॥ ३४० ॥

अब आण्डाला देवीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ आण्डालोक्ता वार्ता ॥

मू०-वीरसुन्दरब्रह्मण्यकाले श्रीभट्टार्य्ये गोष्ठीनगरे-अवस्थिते सति वीरसुन्दरो मृत इति पुल्लैपुल्लैयाल्वान् आण्डालां प्रत्यवदत्, सा चातीव दुःखिता जाता, श्रीरङ्ग-वासस्य विरोधी मृत इत्युक्तौ कः क्लेश इत्यपृच्छत्, सा च भट्टारकविरोधेन-अदृष्टभ्रष्टोऽपि किञ्चित्कालं दृष्टसुख-मनुभविष्यतीति स्थिता वयं ततोऽपि भ्रष्ट इति क्लेशो जात इत्यवोचत् ॥ ३४१ ॥

अर्थ-(वीरसुन्दरब्रह्मण्यकाले) वीरसुन्दर ब्रह्मण्य के समय में (श्रीभट्टार्य्ये) श्रीभट्टारक स्वामीजी के (गोष्ठीनगरे) गोष्ठी नगर में (अवस्थिते) अवस्थित (सति) रहने पर (वीरसुन्दरः) वीरसुन्दरजी (मृतः) मर गये (इति) इस प्रकार से (पुल्लैपुल्लैयाल्वान्) पुल्लैपुल्लैयाल्वान् स्वामीजी ने (आण्डालाम्) आण्डाला देवीजी के (प्रति) प्रति (अवदत्) कहा। (च) और (सा) वह आण्डाला देवीजी (अति) अत्यन्त (दुःखिता) दुःखी के (इव) समान (जाता) हो गई। तब (श्रीरङ्गवासस्य) श्रीरङ्गजी के निवास का (विरोधी) विरोधी पुरुष (मृतः) मर गया (इति) इस प्रकार से (उक्तौ) कहने पर (कः) क्या (क्लेशः) क्लेश है (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) आण्डाला देवी जी से पुल्लैपुल्लैयाल्वान् स्वामीजी ने पूछा। (च) और (सा) वह आण्डाला देवी जी (भट्टारकविरोधेन) भट्टारक के विरोध से (अदृष्टभ्रष्टः) अदृष्ट से भ्रष्ट (अपि) भी (किञ्चित्) कुछ (कालम्) समय तक (दृष्टसुखम्) दृष्टसुख को (अनुभविष्यति) अनुभव करेगा (इति) इस कारणसे (वयम्) हम सब (स्थिताः)

ठहरी थीं। (ततः) उस दृष्टसुख से (अपि) भी (भ्रष्टः) भ्रष्ट हो गया (इति) इस कारण से (क्लेशः) क्लेश (जातः) उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) आण्डाला देवजी ने कहा है। इस तीन सौ ईकतालीसवीं वार्ता में सैंतालीस पद हैं। इति आण्डालोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३४१ ॥

अब कृष्णपाद स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कृष्णपादोक्तवार्ता ॥

मू०-कलिवैरिदासहृदये-अपेक्षानुवृत्तिमनपेक्षानुवृत्तिञ्च कृष्णपादोऽवदत्, अपेक्षानुवृत्तिः-अहङ्कारनिरसनेऽविवेकनिरसने च, अनपेक्षानुवृत्तिः-आत्मज्ञाने-आत्मलाभे भगवल्लाभे च, आत्मज्ञानं नाम साधनभूतात्मसाक्षात्कारः, आत्मलाभो नाम तत्प्रतिबन्धकनिवृत्तिः, भगवल्लाभो नाम स्वयत्नसाध्यस्वगतो भगवदनुभवः ॥ ३४२ ॥

अर्थ-(कलिवैरिदासहृदये) कलिवैरिदास स्वामीजीके हृदय में (अपेक्षानुवृत्तिम्) अपेक्षा की अनुवृत्तिको (च) और (अनपेक्षानुवृत्तिम्) अनपेक्षाकी अनुवृत्ति को (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है। (अपेक्षानुवृत्तिः) अपेक्षा की अनुवृत्ति (अहङ्कारनिरसने) अहङ्कार के निरसन में (च) और (अविवेकनिरसने) अविवेक के निरसन में होती है। और (अनपेक्षानुवृत्तिः) अनपेक्षा की अनुवृत्ति (आत्मज्ञाने) आत्मज्ञानमें तथा (आत्मलाभे) आत्मलाभ में (च) और (भगवल्लाभे) भगवान् के लाभ में होती है। उसमें (आत्मज्ञानम्) आत्मज्ञान (नाम) माने (साधनभूतात्मसाक्षात्कारः) उपायभूत आत्माका साक्षात्कार करना है। तथा (आत्मलाभः) आत्मलाभ (नाम) माने (तत्प्रतिबन्धकनिवृत्तिः) उस आत्मलाभ के प्रतिबन्धक की निवृत्ति होना है। और (भगवल्लाभः) भगवल्लाभ (नाम) माने (स्वयत्नसाध्यस्वगतः) अपने उपाय से साध्य अपने से प्राप्त (भगवदनुभवः) भगवान्का अनुभव है। इस तीन सौ बयालीसवीं वार्ता में पचीस पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३४२ ॥

॥ अथ श्रीभाष्यकारगोविन्दार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रीभाष्यकारः[१] गोविन्दार्य्यम्प्रति[२] हे गोविन्द![३] सर्वेश्वरः[४] सुलभ[५] इति[६] बहुप्रकारेण[७] मयोक्त[८] इत्यवोचत्[९], स[१०] चैवं[११] सुलभश्चेत्[१२], अनेनास्माकं[१३] किं[१४] प्रयोजनमिति[१५] सर्वेषामपेक्षायाः[१६] मूलं[१७] भवतीत्यवोचत्[१८], स[१९] चैवं[२०] भूतं[२१] भगवन्तं[२२] द्रष्टुमाशा[२३] तवैवास्तीत्यवोचत्[२४] ॥ ३४३ ॥

॥ भाष्यकारस्तुतिः ॥

अर्थ-श्रीभाष्यं विरच्य लोकविदितं श्रीरङ्गिणः शासनादाचन्द्रार्कमखण्डितं महदिदं संस्थाप्य भूमण्डले। दुःखं प्राथमिकं व्यपोह्य महतो यद्यामुनार्यस्य तद्विख्यातामलदिव्यकीर्तिरतुलं भेजे प्रमोदं परम् ॥ २४७ ॥

(श्रीभाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी (गोविन्दार्य्यम्) गोविन्दाचार्य स्वामीजी के (प्रति) प्रति (हे गोविन्द) हे गोविन्द ! (सर्वेश्वरः) सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् (सुलभः) सुलभ हैं (इति) इस प्रकार से (बहुप्रकारेण) बहुत प्रकार से (मया) मुझसे (उक्तः) कहा गया है (इति) इस प्रकारसे (अवोचत्) बोले। (च) और तब (सः) वह गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी (एवम्) इस प्रकार से यदि (सुलभः) सर्वेश्वर सुलभ हैं (चेत्) तो (अनेन) इससे (अस्माकम्) हम सबों का (किम्) क्या (प्रयोजनम्) प्रयोजन है (इति) इस प्रकार से (सर्वेषाम्) सब (अपेक्षायाः) अपेक्षाओं का (मूलम्) कारण (भवति) होता है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) बोले। (च) और इसके बाद (सः) वह श्रीभष्यकार स्वामीजी (एवम्) इस प्रकार से (भूतम्) सुलभ भये हुए (भगवन्तम्) श्रीमन्नारायण भगवान् को (द्रष्टुम्) देखने के लिये (तब) तेरी (आशा) आशा (एव) निश्चय करके (अस्ति) है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) बोले हैं। इस तीन सौ तैंतालीसवीं वार्ता में चालीस पद हैं। इति श्रीभाष्यकारगोविन्दार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३४३ ॥

अब राममिश्र स्वामीजी और यामुनाचार्य स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ राममिश्रयामुनाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–"सौलभ्यस्वभावः अमर्य्यादः बह्ववतारः" इति पाशुरप्रस्तावे-एवं गुणवतः साक्षात्कारस्योपायो नास्ति किमिति राममिश्रं यामुनाचार्य्योऽपृच्छत्, स च मम शेषत्वानुसन्धनमेवालं तवापेक्षास्ति चेत्, अप्यनसमीपं गच्छेत्यवोचत् ॥ ३४४ ॥

॥ राममिश्रस्तुतिः ॥

अर्थ- सौगन्धकुल्या नगरे कस्मिंश्चिद् द्विजवेश्मनि ।
विरोधवत्सरे माघे मासे वै शुक्लपक्षके ॥ २४८ ॥
चतुर्दश्यां मघायां च सञ्ज्ञे सौम्यवासरे ।
अंशेन कुमुदाक्षस्य राममिश्रो महायशाः ॥ २४९ ॥

(सौलभ्यस्वभावः) सौलभ्य गुणसे युक्त स्वभाववाला (अमर्य्यादः) प्राकृतमर्यादा से रहित (बह्ववतारः) बहुत अवतार है (इति) इस प्रकारसे (पाशुरप्रस्तावे) पाशुर के प्रस्तावकाल में (एवम्) इस प्रकार के (गुणवतः) दिव्यगुण वालों के (साक्षात्कारस्य) साक्षात्कार का (उपायः) उपाय (न) नहीं (अस्ति) है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार से (राममिश्रम्) राममिश्र स्वामीजीसे (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य्य स्वामीजी ने (अपृच्छत्) पूछा (च) और (सः) वह राममिश्र स्वामीजी ने (मम) मेरा (शेषत्वानुसन्धानम्) शेषत्वका अनुसन्धान करना (एव) निश्चय करके (अलम्) पर्याप्त है (तव) तेरी (अपेक्षा) अपेक्षा (अस्ति) यदि है (चेत्) तो (अप्यनसमीपम्) अप्यन स्वामीजी के समीप में (गच्छ) तुम चले जाओ (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। इस तीन सौ चौवालिसवीं वार्ता में तीस पद हैं। इति राममिश्रयामुनाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३४४ ॥

अब यामुनाचार्य्य स्वामीजीकी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ यामुनाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–यामुनाचार्य्ये तत्र गच्छति सति-अप्यनः काल-नियममकरोत्, यामुनाचार्य्यश्चानन्तपुरं गत्वा तत्कालं

१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९
स्मृत्वा-इदानीमप्यनसमीपं प्राप्तुम् अस्माकमेकं पुष्पविमानं
२० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०
नास्तीत्यक्लिश्यत्, ई श्वर अहमेवमकरवं शेषत्वज्ञानमेवाल-
३१ ३२ ३३
मित्येवावोचत् ॥ ३४५ ॥

॥ यामुनाचार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ- अर्द्धराज्यं ददौ राजा यामुनाय विपश्चिते ।
विवादसमये दत्तं भार्य्यया चोदितस्तदा ॥ २५० ॥

(यामुनाचार्य्ये) यामुनाचार्य्य स्वामीजी के (तत्र) अप्यन स्वामीजीके समीप में (गच्छति) चले जाने (सति) पर तो (अप्यनः) अप्यन स्वामीजी (कालनियमम्) काल के नियम को अर्थात् मरण को (अकरोत्) कर गये। तब (च) और (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य्य स्वामीजी (अनन्तपुरम्) अनन्तपुरमें (गत्वा) जाकर (तत्कालम्) अप्यन स्वामीजी के मरण को (स्मृत्वा) स्मरण कर (इदानीम्) इस समय में (अप्यनसमीपम्) अप्यन स्वामीजी के समीप में (प्राप्तुम्) जाने के लिये (अस्माकम्) हम सबों को (एकम्) एक (पुष्पविमानम्) पुष्पविमान (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार से (अक्लिश्यत्) क्लेश किये हैं। और (ईश्वरे) सर्वेश्वर के विषय में (अहम्) मैंने (एवम्) इस प्रकार से (अकरवम्) किया है (शेषत्वज्ञानम्) शेषत्व का ज्ञा (एव) निश्चय करके (अवोचत्) यामुनाचार्य्य स्वामीजी ने कहा है। इस तीन २ पैंतालिसवीं वार्ता में तैंतीस पद हैं। इति यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३४५ ॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी के और एक श्रीवैष्णवके संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४
मू०- कलिवैरिदासम् एकः श्रीवैष्णवः-उपायभूता-
५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
मेकां वार्त्तां वदेत्यपृच्छत्, स च मुमुक्षोरधिकारिणोऽनु-
१४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
सन्धेयं स्वरूपं परतन्त्रम् विरोधि प्रबलं पुरुषार्थोऽनन्यसाध्यः,
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७
परिहार्य्यं देवतान्तरभजनं भागवतापचारश्चेत्यवोचत्, ज्ञानस्य

विषयः[२८]-आचार्य्यगुणः[२९], अज्ञानस्य विषयः[३०]-आचार्य्यदोषः[३१], शक्तेर्विषयः[३२]-आचार्य्यकैङ्कर्य्यम्[३३], अशक्तेर्विषयो[३४] निषिद्धानुष्ठानम्[३५] ॥ ३४६ ॥

अर्थ- (कलिवैरिदासम्) कलिवैरिदास स्वामीजी से (एकः) एक (श्रीवैष्णवः) श्रीवैष्णव ने (उपायभूताम्) इस चेतन के उपायभूत (एकाम्) एक (वार्ताम्) वार्ता को (वद) तुम कहो (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत) पूछा है। (च) और (सः) वह कलिवैरिदासस्वामीजी (मुमुक्षोः) मोक्ष की इच्छा करने वाले (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (अनुसन्धेयम्) अनुसन्धान करने योग्य ये अधोलिखित हैं (स्वरूपम्) स्वस्वरूप (परतन्त्रम्) परतन्त्र है। (विरोधि) विरोधिस्वरूप (प्रबलम्) प्रबल है। (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ (अनन्यसाध्यः) अनन्यसाध्य है। (देवतान्तरभजनम्) देवतान्तरों का भजन (परिहार्य्यम्) परित्याग करने योग्य है। (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं। और भी कहे हैं कि (ज्ञानस्य) ज्ञानका (विषयः) विषय (आचार्य्यगुणः) आचार्य्य के गुण हैं। (अज्ञानस्य) अज्ञानका (विषयः) विषय (आचार्य्यदोषः) आचार्य के दोष हैं (शक्तेः) शक्ति का (विषयः) विषय (आचार्य्यकैङ्कर्य्यम्) आचार्य्य के कैंङ्कर्य हैं। और (अशक्तेः) अशक्ति का (विषयः) विषय (निषिद्धानुष्ठानम्) निषिद्धानुष्ठान है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि निषिद्धानुष्ठान कितने प्रकार के होते हैं और वे कौन कौन से हैं? इस प्रश्न का उत्तर श्रीवचनभूषण में लिखा है कि-**निषिद्धानुष्ठानं चतुर्विधम् ॥ श्रीवच० सू० ३१९ ॥** निषिद्धानुष्ठान चार प्रकार के होते हैं ॥ ३१९ ॥ **तन्नाकृत्यकरणं भगवदपचारो भागवतापचारोऽसह्यापचारश्च ॥ सू० ३२० ॥** वह निषिद्धानुष्ठान अकृत्यकरण १, और भगवदपचार २, तथा भागवतापचार ३, और असह्यापचार है ४, ॥ ३२० ॥ **अकृत्यकरणं नाम-परहिंसा परस्तोत्रं परदारपरिग्रहः परद्रव्यापहारोऽसत्यकथनमभक्ष्य-भक्षणमेतत्प्रभृति ॥ ३२१ ॥** अकृत्यकरण माने पर हिंसा, परस्तोत्र, अन्य की स्त्रीको ग्रहण करना, दूसरे के द्रव्य को ले लेना, झूठ बोलना, और नहीं भोजन करने योग्य को भोजन करना, इत्यादि हैं ॥ ३२१ ॥ **भगवदपचारो नाम देवतान्तरैस्तुल्यतयेश्वरस्य चिन्तनं रामकृष्णाद्यवतारेषु मनुष्यसजातीयत्वबुद्धिः, वर्णाश्रमविपरीतोपचारः, अर्चावतार-उपादाननिरूपणम् आत्मापहारः, भगवद्द्रव्यापहार एतत्प्रभृति ॥ ३२२ ॥** भगवदपचार माने अन्य देवताओं के समान ईश्वर को चिन्तन करना, और श्रीरामकृष्णादि अवतारों में मनुष्य जाति की बुद्धि करना, तथा अपने वर्णाश्रम धर्म से विरुद्ध आचरण करना, और अर्चावतार का उपादान निरूपण करना तथा आत्मापहार करना, और

भगवद्द्रव्य को अपहरण करना, इत्यादिक है ॥ ३२२ ॥ **भगवद्द्रव्यस्य स्वयमपहारोऽपहर्तृणां सहकारित्वं तेभ्यो याचितमयाचितं वा परिग्रहश्चभगवतोऽनिष्टः ॥ ३२३** भगवान् के द्रव्य को अपने चुरा लेना, या चुरानेवालों की सहायता करना, अथवा उन चुरानेवालों से माँग कर या बिनामाँगे हुए ले लेना, यह भगवान् का इष्ट नहीं है ॥ ३२३ ॥ **भागवतापचारो नामाहङ्कारार्थकामहेतुना श्रीवैष्णवेषु क्रियमाणो विरोधः ॥ ३२४ ॥** भागवतापचार माने अहंकार से अर्थ और काम के कारण श्रीवैष्णवों में किया हुआ विरोध है ॥ ३२४ ॥ **असह्यापचारो नाम निर्निबन्धनं भगवद्भागवतविषय इत्युक्तावसहमानतया स्थितिः, आचार्य्यापचारः तद्भक्तापचारश्च ॥ श्रीवच० सू० ३२५ ॥** असह्यापचार माने बिना कारण के भगवद् भागवतकी कही हुई वार्ता को नहीं सहते हुए स्थिति करना और आचार्य्यापचार तथा आचार्य के भक्तों का अपचार करना है ॥ ३२५ ॥ इस तीन सौ छियालीसवीं वार्ता में अड़तीस पद हैं । इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ३४६ ॥

अब यतिराजपुल्लैर्दासजी के और कृष्णपाद स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादयतिराजपुल्लैर्दासोक्ता वार्ता ॥

मू०–नंविल्लैत्रिवल्लरैतेनगुल्ल् शोलैदासस्य गृहं गत्वा तद्गृहे-ऐश्वर्य्यं दृष्ट्वा प्रीतोऽभवेत्, अत्र को हेतुरिति यति-राजपुल्लैर्दासः कृष्णपादमपृच्छत्, स चैतत्संसारसुखं त्रिविधम्, एतत्सुखं स्वस्येति स्वस्य भगवतश्चेति भगवत-एवेत्यनुसन्धीयमानं स्वस्येत्यनुसन्धीयमानं नरकानुभव-सदृशं स्वस्य भगवतश्चेति स्वर्गाद्यनुभवसदृशं भगवत-एवेति परमपदानुभवसदृशमित्यवोचत् ॥३४७॥

अर्थ–(नंविल्लैत्रिवल्लरैतेनगुल्ल्) नंविल्लैत्रिवल्लरैतेनगुल्ल्महात्माजी (शोलैदासस्य) शोलैदासजी के (गृहम्) घर में (गत्वा) जाकर (तद्गृहे) उस शोलैदासजी के घर में (ऐश्वर्य्यम्) ऐश्वर्य को (दृष्ट्वा) देखकर (प्रीतः) प्रसन्न (अभवत्) हो गये । तब (अत्र) इस प्रसन्नता में (कः) क्या (हेतुः) कारण है (इति) इस प्रकार के (यतिराजपुल्लैर्दास) यतिराज पुल्लैर्दासजी ने (कृष्णपादम्) कृष्णपाद स्वामीजी से

(अपृच्छत्) पूछा। (च) और तब (सः) वह कृष्णपाद स्वामीजी (एतत्) यह (संसारसुखम्) संसार के सुख (त्रिविधम्) तीन प्रकार के होते हैं। (एतत्) यह (सुखम्) संसार के सुख (स्वस्य) अपनी आत्मा के (इति) इस प्रकार के होते हैं १, तथा (स्वस्य) अपनी आत्मा के (च) और (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (इति) इस प्रकार के होते हैं २, और (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकार का (अनुसन्धीयमानम्) अनुसंधीयमान होता है ३, (स्वस्य) अपनी आत्मा के केवल (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धीयमानम्) अनुसंधीयमानसुख (नरकानुभवसदृशम्) नरक के अनुभव के समान है। तथा (स्वस्य) अपनी आत्मा के (च) और (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (इति) इस प्रकार के अनुसंधीयमान सुख (स्वर्गाद्यनुभवसदृशम्) स्वर्ग आदि के अनुभव के सदृश है। और (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् को (एव) निश्चय करके केवल (इति) इस प्रकार के अनुसंधीयमानसुख (परमपदानुभवसदृशम्) परम पद अनुभव के समान है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। इस तीन सौ सैंतालिसवीं वार्ता में अड़तालीस पद हैं। इति कृष्णपादयतिराजपुल्लैर्दासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३४७॥

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०-स्वाभाविकशेषत्वं[१] विहाय[२]-औपाधिकपौरुषस्यारोपण[४]-मात्रमिति[५] कृष्णपादः[६] ॥३४८॥

अर्थ–(स्वाभाविकशेषत्वम्) स्वाभाविक शेषत्व को (विहाय) छोड़कर (औपाधिकपौरुषस्य) औपाधिक पौरुष का (आरोपणमात्रम्) आरोपण मात्र है (इति) इस प्रकार के (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में छः पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३४८॥

अब नड्विल्तिरिवीधिपुल्लै स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ नडविल्तिरिवीधिपुल्लैगदिता वार्ता ॥

मू०-अन्तःसाङ्कर्य्यं[१] ज्ञानसाङ्कर्य्यं[२] कालसाङ्कर्य्यं[३] देश[४]-साङ्कर्य्यं भोग्यसाङ्कर्य्यं[५] चैत्येतानि[६] त्याज्यानि[७], नडविल[८]

तिरिवीधिपुल्लै[११] संसारिदोषं स्वशक्त्या[१२] न[१३] पश्येत्[१४], सात्विक-दोषं[१५] तच्छक्त्या[१६] न[१७] पश्येत्[१८], वद्धलोके[१९] विलक्षणज्ञानस्य[२०] विच्छेदं[२१] विनावस्थानम्[२२] औषधबलेनाग्निधारणवत्[२३], अज्ञ-स्याविद्यासम्बन्धनिवृत्तिपूर्वकाप्राकृतदेशप्रवेशे[२४] त्वरापेक्षया[२५]-अविद्यासम्बन्ध[२६] आर्त्तिश्चात्यन्तापेक्षितेत्यवदत्[२७] ॥३४९॥[२८]

॥ भक्तिसारस्तुतिः ॥

अर्थ– ततो गुहान्तराविष्टो भक्तिसारो महायशाः ।

अष्टाङ्गेनैव योगेन कञ्चित्कालं व्यतिष्ठत ॥२५१॥

(अन्तःसाङ्कर्य्यम्) भीतर की सङ्करता अर्थात् आत्मा स्वतन्त्र और परतन्त्र दोनों है यह अन्तः साङ्कर्य्य १, तथा (ज्ञानसाङ्कर्य्यम्) ज्ञान की सङ्करता अर्थात् परमात्मा निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों हैं यह ज्ञानसाङ्कर्य्य २, और (कालसाङ्कर्य्यम्) काल की सङ्करता अर्थात् प्रपत्ति में काल की अपेक्षा है और नहीं अपेक्षा है यह काल साङ्कर्य्य ३, तथा (देशसाङ्कर्य्यम्) देश की सङ्करता अर्थात् प्रपत्ति में पुण्य देश की अपेक्षा है और नहीं अपेक्षा भी है यह देश साङ्कर्य्य ४, (च) और (भोग्यसाङ्कर्य्यम्) भोग्य की सङ्करता अर्थात् स्वार्थ और परार्थ दोनों हैं यह भोग्य साङ्कर्य ५, (इति) इस प्रकार के (एतानि) ये पाँच साङ्कर्य्य (त्याज्यानि) त्याग करने योग्य हैं। (नडविल्तिरिवीधिपुल्लै) नडविल्तिरिवीधिपुल्लै स्वामीजी (संसारिदोषम्) संसारी जीवों के दोष को (स्वशक्त्या) अपनी आत्मा की शक्ति से (न) नहीं (पश्येत्) देखे। और (सात्विकदोषम्) सात्विक पुरुषों के दोष को (तच्छक्त्या) उस परकी शक्ति से (न) नहीं (पश्येत्) देखे। (बद्धलोके) बद्धलोक में (विलक्षणज्ञानस्य) विलक्षण ज्ञान के (विच्छेदम्) विच्छेद (विना) बिना (अवस्थानम्) अवस्थान करना (औषधबलेन) औषध के बल से (अग्निधारणवत्) अग्नि धारण के समान है। और (अज्ञस्य) अज्ञानी संसारी जीव के (अविद्यासम्बन्धनिवृत्तिपूर्वकाप्राकृतदेशप्रवेशे) अविद्या के सम्बन्ध निवृत्तिपूर्वक अप्राकृत देश के प्रवेश में (त्वरापेक्षया) त्वरा की अपेक्षा से (अविद्यासम्बन्धे) अविद्या के सम्बन्ध में (आर्तिः) आर्ति (च) भी (अत्यन्तापेक्षिता) अत्यन्त अपेक्षित है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) बोले हैं। इस तीन सौ उञ्चासवीं वार्ता में चौंतीस पद हैं। इति नडविल्तिरिवीधिपुल्लैगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥३४९॥

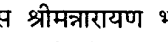
अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०–कृष्णपादवार्ता सिद्धोपायस्य प्रपन्नस्य पञ्च-स्पर्शाः परिहार्य्याः, ते च सर्वस्पर्शः, मायावादस्पर्शः, एकाँ-यनस्पर्शः, उपायान्तरस्पर्शः, विषयान्तरस्पर्शश्च, एते पञ्च पञ्चभिरनुसन्धानैः गच्छन्ति, भगवतः सर्वस्मात्परत्वस्या-नुसन्धानेन सर्वस्पर्शो नश्यति, समस्तकल्याणगुणानुसन्धा-नेन मायावादिस्पर्शः, श्रियः पतित्वानुसन्धानेनैकायनस्पर्शः, उपायपूर्त्यनुसन्धानेनोपायान्तरस्पर्शः, दिव्यमङ्गलविग्रहा-नुसन्धानेन विषयान्तरस्पर्शः, मुमुक्षोः प्रपन्नस्य सर्वप्रकारक-रक्षकस्य सर्वेश्वरस्यानादिकालार्जितपापनिवर्तकायाः श्रीमहालक्ष्म्याः महोपकारस्याचार्य्यस्योद्देश्यानां श्री-वैष्णवानां त्याज्यानां संसारिणां स्वशरीरस्य शरीरसम्ब-न्धिनां च वक्ष्यमाणरीत्यानुसन्धानं कार्य्यं देहात्माभिमान-निवृत्तेः देहव्यतिरिक्तस्यात्मनोऽनन्यार्हशेषत्वस्य शेष-भूतस्य स्वरक्षणाप्राप्तिहेतुपारतन्त्र्यसीमाया एवं पर-तन्त्रस्य स्वरूपप्रयुक्तपुरुषार्थसिद्धेः-एतत्पुरुषार्थस्य विरो-धिनोरहङ्कारममकारयो र्निवृत्तेश्चायमेवोपाय इति सर्वे-श्वरानुसन्धानम्, एवं रक्षकस्येश्वरस्य दुर्निवारस्वातन्त्र्यं निवार्य्य एतदधिकारिणोऽपराधं तद्धृदयाविषयं कृत्वा तच्छीलादि स्वभावान् उद्बोध्य रक्षतीति महालक्ष्म्यनु-सन्धानम्, एतन्मिथुने न सह दुस्त्यजं सम्बन्धमेतत्सम्ब-न्धानुरूपं स्वरूपानुरूपं ज्ञानं च वर्द्धयति, इत्याचार्य्यानु-सन्धानम् ॥

अर्थ–(कृष्णपादवार्ता) कृष्णपाद स्वामीजीकी वार्ता है कि (सिद्धोपायस्य) सिद्ध उपायवाले (प्रपन्नस्य) प्रपन्नजन के (पञ्च) पाँच (स्पर्शाः) स्पर्श (परिहार्य्याः) परित्याग करने योग्य हैं। (च) और (ते) वे पाँच स्पर्श ये अधोलिखित हैं (सर्वस्पर्शः) सर्व स्पर्श १, (मायावादस्पर्शः) मायावाद स्पर्श २, (एकायनस्पर्शः) एकायन स्पर्श ३, (उपायान्तरस्पर्शः) उपायान्तर स्पर्श ४, (च) और (विषयान्तरस्पर्शः) विषयान्तर स्पर्श ५, (एते) ये पूर्वोक्त (पञ्च) पाँच स्पर्श (पञ्चभिः) पाँच वस्तुओं के (अनुसन्धानैः) अनुसंधान करने से (गच्छन्ति) दूर चले जाते हैं। (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (सर्वस्मात्) सबसे (परत्वस्य) परत्व के (अनुसन्धानेन) अनुसंधान करने से (सर्वस्पर्शः) सर्वस्पर्श (नश्यति) नष्ट होता है १, और (समस्तकल्याणगुणानुसन्धानेन) सम्पूर्ण कल्याण गुणों को अनुसंधान करने से (मायावादिस्पर्शः) मायावादिस्पर्श नष्ट होता है २, तथा (श्रियः) श्रीदेवीजी के (पतित्वानुसन्धानेन) पतित्व के अनुसंधान करने से (एकायनस्पर्शः) एकायन स्पर्श नष्ट होता है ३, और (उपायपूर्त्यनुसन्धानेन) उपाय की पूर्ति को अनुसंधान करने से (उपायान्तरस्पर्शः) उपायान्तर स्पर्श नष्ट होता है ४, तथा (दिव्यमङ्गलविग्रहानुसन्धानेन) दिव्यमङ्गल विग्रह को अनुसन्धान करने से (विषयान्तरस्पर्शः) विषयान्तर स्पर्श नष्ट होता है ५, और (मुमुक्षोः) मोक्ष की इच्छा करनेवाले मुमुक्षु (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जन के (सर्वप्रकाररक्षकस्य) सब प्रकार से रक्षक (सर्वेश्वरस्य) सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् के और (अनादिकालार्जितपापनिवर्तकायाः) अनादिकाल से ईकट्ठा किये हुए पाप को दूर करनेवाली (श्रीमहालक्ष्म्याः) श्रीमहालक्ष्मी देवीजी के तथा (महोपकारस्य) महान् उपकार करनेवाले (आचार्य्यस्य) आचार्य्य के और (उद्देश्यानाम्) उद्देश्य (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों के तथा (त्याज्यानाम्) त्याग करने योग्य (संसारिणाम्) संसारी जीवों के तथा (स्वशरीरस्य) अपने देह के (च) और (शरीरसम्बन्धिनाम्) देह के सम्बन्धियों की (वक्ष्यमाणरीत्या) वक्ष्यमाण रीति से (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान (कार्य्यम्) करने योग्य है। (देहात्माभिमाननिवृत्तेः) देह में आत्मा के अभिमान की निवृत्ति होने से (देहव्यतिरिक्तस्य) शरीर से अन्य (आत्मनः) आत्मा के (अनन्यार्हशेषत्वस्य) अनन्यार्ह शेषत्व के (शेषभूतस्य) शेष भूत के (स्वरक्षणाप्राप्तिहेतुपारतन्त्र्यसीमायाः) अपनी रक्षा की अप्राप्ति के हेतु के पारतन्त्र्य की सीमा के (एवम्) इस प्रकार के (परतन्त्रस्य) परतन्त्र के (स्वरूपप्रयुक्तपुरुषार्थसिद्धेः) स्वरूप प्रयुक्त पुरुषार्थ की सिद्धि होने से (एतत्पुरुषार्थस्य) इस पूर्वोक्त पुरुषार्थ के (विरोधिनो) विरोधी (अहङ्कारममकारयोः) अहङ्कार तथा ममकार की (निवृत्तेः) निवृत्ति होने से (अयम्) यही (एव) निश्चय करके (उपायः) उपाय है (इति) इस प्रकार से (सर्वेश्वरानुसन्धानम्) सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् का अनुसन्धान है। (च) और (एवम्) इस प्रकार से (रक्षकस्य) रक्षक (ईश्वरस्य)

सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् के (दुर्निवारस्वातन्त्र्यम्) दुर्निवार स्वातन्त्र्य को (निवार्य्य) निवारण कर (एतदधिकारिणः) इस अधिकारी के (अपराधम्) अपराध को (तद्धृदयाविषयम्) उस श्रीमन्नारायण भगवान् के हृदय का अविषय (कृत्वा) करके (तच्छीलादिस्वभावान्) उस श्रीमन्नारायण भगवान् के वात्सल्य सौशील्य पतितपावनत्व आश्रितशरण्य आदि स्वभावों को (उद्बोध्य) उद्बोधन करके (रक्षति) रक्षा करती है (इति) इस प्रकार से (महालक्ष्म्यनुसन्धानम्) महालक्ष्मी देवीजी का अनुसन्धान है। तथा (एतन्मिथुनेन) इन महालक्ष्मी और नारायण दोनों के (सह) साथ (दुस्त्यजम्) दुस्त्यज (सम्बन्धम्) सम्बन्ध को (च) और (एतत्सम्बन्धानुरूपम्) इस सम्बन्ध के अनुरूप तथा (स्वरूपानुरूपम्) स्वरूप के अनुरूप (ज्ञानम्) ज्ञान को (वर्द्धयति) बढ़ाता है (इति) इस प्रकार से (आचार्य्यानुसन्धानम्) आचार्य्य का अनुसन्धान है ॥ शमिति ॥[1]



मू०– सहवासयोग्याः प्राप्यान्तर्गता इति श्रीवैष्णवानुसन्धानं भगवदनुभवविरोधिनः भगवत्संश्लेषविरोधिन इति च संसारिणामनुसन्धानं भगवद्ज्ञानविरोधी, विपरीतज्ञानजनकं स्वस्मिन् भोग्यताबुद्धिजनकश्चेति स्वदेहानुसन्धानं भगवत्प्रावण्यविरोधिनः-अर्थकामाभिवर्द्धका इति च शरीरसम्बन्धिनामनुसन्धानं न्यायार्जितद्रव्येण क्षुन्निवृत्तिमात्रपर्य्याप्तो भवेत्, एतादृशात्मगुणानामाचार्य्यकटाक्षेण भगवदङ्गीकारेण च जायमानत्वात् आचार्य्यविषये कृतज्ञता भगवद्विषये रक्षकत्वप्रतिपत्तिश्च सर्वदानुवर्तनीया, करणत्रयेणापि भगवद्भागवतविषयेषु स्वरूपप्राप्तं कैङ्कर्यं कर्तव्यम्, उपकारकस्याचार्यस्य सदृशसत्कारालाभात् मम दुष्टं मनोनिवर्तितवतस्तव किङ्कर्य्यामित्यनुसन्धानं कर्तव्यमिति रामानुजसम्बन्धिनां मुमुक्षूणां कालक्षेपः परमपदप्राप्तिसाधनमीश्वरकृपेति प्रतिपत्तिरप्रच्युतिः-अनादिका-

लवासितपापनिवृत्तिसाधनं श्रीमहालक्ष्म्याः विशेषकटाक्ष इति प्रतिपत्तिः, एतदर्थमुपदिशत आचार्य्यस्य प्रत्युपकार-निरपेक्षा-अबाधितोपकारस्मृतिः, एतदर्थयुक्तश्रीवैष्णवान् प्रति स्वस्य शिष्यत्वानुसन्धानं देवतान्तरस्पर्शस्य दूरतो वर्जनम्, उद्देश्यानां श्रीवैष्णवानां त्याज्यार्थकामहेतुकमनः-कालुष्यं विना-अनुवर्तनम्, एतदधिकारिणः शरीरपातपर्य्यन्तं स्वरूपानुरूपं कृत्यं भगवद्भागवतविषयेषु क्रियमाणस्या-नुकूलवृत्तेरविच्छेदः, महालक्ष्म्याः-आचार्य्यादुद्देश्येभ्यश्च श्रीवैष्णवेभ्यो व्यतिरिक्तेषु निःस्पृहता ॥

अर्थ–(सहवासयोग्याः) सहवास के योग्य (प्राप्यान्तर्गताः) और प्राप्य वस्तु के अन्तर्गत हैं (इति) इस प्रकार से (श्रीवैष्णवानुसन्धानम्) श्रीवैष्णवों का अनुसन्धान है। तथा (भगवदनुभवविरोधिनः) श्रीमन्नारायण भगवान् के अनुभव के विरोधी (च) और (भगवत्संश्लेषविरोधिनः) भगवान् के संश्लेष के विरोधी हैं (इति) इस प्रकार से (संसारिणाम्) संसारियों का (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान है। और (भगवद्ज्ञानविरोधी) श्रीमन्नारायण भगवान् के ज्ञान का विरोधी तथा (विपरीतज्ञानजनकम्) विपरीत ज्ञान का जनक (च) और (स्वस्मिन्) अपने में (भोग्यताबुद्धिजनकम्) भोग्यताबुद्धि का जनक है (इति) इस प्रकार से (स्वदेहानुसन्धानम्) अपने देह का अनुसन्धान है। और (भगवत्प्रावण्यविरोधिनः) श्रीमन्नारायण भगवान् की प्रवणता के विरोधी (च) और (अर्थकामाभिवर्द्धकाः) अर्थ तथा कामके बढ़ानेवाले हैं (इति) इस प्रकार से (शरीरसम्बन्धिनाम्) देह के सम्बन्धियों का (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान है। (न्यायार्जितद्रव्येण) न्याय से अर्जन किये हुए द्रव्य द्वारा (क्षुत्निवृत्तिमात्रपर्य्याप्तः) भूख की निवृत्तिमात्र पर्याप्त (भवेत्) होगा। (एतादृशात्मगुणानाम्) इस प्रकार से आत्मा के गुणों के (आचार्य्यकटाक्षेण) आचार्य के कटाक्ष से (च) और (भगवदङ्गीकारेण) श्रीमन्नारायण भगवान् के स्वीकार करने से (जायमानत्वात्) उत्पन्न होने के कारण (आचार्य्यविषये) आचार्य के विषय में (कृतज्ञता) कृतज्ञता (च) और (भगवद्विषये) श्रीमन्नारायण भगवान् के विषय में (रक्षकत्वप्रतिपत्तिः) रक्षकता की प्रतिपत्ति (सर्वदा) हमेशा (अनुवर्तनीया) अनुवर्तन करनेयोग्य हैं। और (करणत्रयेण) मन वाणी शरीर इन तीनों करणों से (अपि) भी (भगवद्भागवतविषयेषु) भगवान् तथा भागवतों के

विषयों में (स्वरूपप्राप्तम्) स्वरूप से प्राप्त (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य (कर्तव्यम्) करने योग्य है। तथा (उपकारकस्य) उपकार करनेवाले (आचार्य्यस्य) आचार्य के (सदृशसत्कारालाभात्) समान सत्कार के नहीं लाभ होने से (मम) मेरे (दुष्टम्) दुष्ट (मनः) मनको (निवर्तितवतः) विषय से हटानेवाले (तव) आप को (किम्) क्या (कुर्य्याम्) हम करें (इति) इस प्रकार से (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान (कर्तव्यम्) करने योग्य है (इति) इस प्रकार से (रामानुजसम्बन्धिनाम्) रामानुजाचार्य स्वामीजी के सम्बन्धी (मुमुक्षूणाम्) मुमुक्षु पुरुषों का (कालक्षेपः) कालक्षेप है। और (परमपदप्राप्तिसाधनम्) परमपद प्राप्ति का उपाय (ईश्वरकृपा) श्रीमन्नारायण भगवान् की कृपा है (इति) इस प्रकार से (प्रतिपत्तिः) प्रतिपत्ति करना और (अप्रच्युतिः) च्युति नहीं करना है। तथा (अनादिकालवासितपापनिवृत्तिसाधनम्) अनादिकाल से वासित पाप की निवृत्ति का उपाय (श्रीमहालक्ष्म्याः) श्रीमहालक्ष्मी देवीजी का (विशेषकटाक्षः) विशेष कटाक्ष है (इति) इस प्रकार से (प्रतिपत्तिः) प्रतिपत्ति करना है। और (एतत्) इस पूर्वोक्त (अर्थम्) अर्थ को (उपदिशतः) उपदेश देनेवाले (आचार्य्यस्य) आचार्य के (प्रत्युपकारनिरपेक्षा) प्रत्युपकार की अपेक्षा नहीं करते हुए (अबाधितोपकारस्मृतिः) अबाधित उपकार को स्मरण करना है। और (एतदर्थयुक्तश्रीवैष्णवान्) इस पूर्वोक्त अर्थ से युक्त श्रीवैष्णवों के (प्रति) प्रति (स्वस्य) अपना (शिष्यत्वानुसन्धानम्) शिष्यत्व अनुसन्धान करना। और (देवतान्तरस्पर्शस्य) देवतान्तरों के स्पर्श का (दूरतः) दूर से (वर्जनम्) परित्याग करना। तथा (उद्देश्यानाम्) उद्देश्य (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों के (त्याज्यार्थकामहेतुकमनःकालुष्यम्) त्याग करने योग्य अर्थ और काम के कारण मन की कलुषता को (विना) बराकर (अनुवर्तनम्) अनुवर्तन करना। तथा (एतदधिकारिणः) इस अधिकारी पुरुष के (शरीरपातपर्य्यन्तम्) देह के पतन समय तक (स्वरूपानुरूपम्) स्वरूप के अनुरूप (कृत्यम्) कृत्य है। (भगवद्भागवतविषयेषु) श्रीमन्नारायण भगवान् के और भागवतों के विषयों में (क्रियमाणस्य) क्रियमाण कैङ्कर्य्य के (अनुकूलवृत्तेः) अनुकूल वृत्ति से (अविच्छेदः) विच्छेद नहीं होना। और (महालक्ष्म्याः) महालक्ष्मी देवीजी से तथा (आचार्य्यात्) आचार्य से (च) और चकार करके नारायण भगवान् से तथा (उद्देश्येभ्यः) उद्देश्य (श्रीवैष्णवेभ्यः) श्रीवैष्णवों से (व्यतिरिक्तेषु) अन्य विषयों में (निःस्पृहता) स्पृहारहित हो जाना ॥ खमिति ॥

मू०– विषयस्य[१] स्वरूपानुरूपत्वेऽपि[२]-आर्तेरुद्वेलत्वेऽपि[३]-उपायस्य[४] प्रबलत्वेऽपि[५] स्वशक्तेरधिकारत्वेऽपि[६] स्वरूपानुरूपो-[७]

पायेन विना न गच्छाम इत्यध्यवसायं वदति ''तत्तस्य सदृशं भवेत्'' इति आचार्य्यविषयीकार उत श्रीवैष्णवाङ्गीकारः, आहोस्विद्भगवद्विषयकैङ्कर्य्यं किं वा स्वानुसन्धानं संसारनिवृत्तेः परमपदप्राप्ते र्हेतुरिति चेन्नैतच्चतुष्टयमपि अनिष्टनिवृत्तेरिष्टप्राप्तेश्च हेतुरीश्वरकृपैवेति प्रतिपत्तेरविच्छेदः, आचार्य्यविषयीकारो ज्ञानं निवर्त्त्य वैषद्यमापादयति, श्रीवैष्णवाङ्गीकारः सात्विकसत्कारमापादयति, भगवद्भागवतकैङ्कर्य्यं स्वानुसन्धानं च कालक्षेपः, रक्षकेण रक्षणमन्यद्वाराकृतं चेत्, तत् स्वामित्वस्यावद्यं शेषभूतेन शेषवृत्तिः-अन्यद्वाराकारिता चेत्, तच्छेषत्वस्यावद्यं भवेत्, अवद्यकारणमुभयोरपि-उभयस्वरूपत्वम् ॥ ३५० ॥

अर्थ–(विषयस्य) विषय के (स्वरूपानुरूपत्वे) स्वरूप के अनुरूप होने पर (अपि) भी और (आर्तेः) आर्ति के (उद्वेलत्वे) उद्वेल होने पर (अपि) भी तथा (उपायस्य) उपाय के (प्रबलत्वे) प्रबल होने पर (अपि) भी। और (स्वशक्तेः) अपनी शक्ति के (अधिकारत्वे) अधिकार होने पर (अपि) भी (स्वरूपानुरूपोपायेन) स्वरूप के अनुरूप उपाय के (विना) बिना (न) नहीं (गच्छामः) हम सब जाते हैं (इति) इस प्रकार के (अध्यवसायम्) अध्यवसायको (वदति) कहते हैं (तत्) वह (तस्य) उसके (सदृशम्) समान (भवेत्) होगा (इति) इस प्रकार से है। (आचार्य्यविषयीकारः) आचार्य के विषयीकार १, (उत) या (श्रीवैष्णवाङ्गीकारः) श्रीवैष्णवाङ्गीकार २, (आहोस्वित्) अथवा (भगवद्विषयकैङ्कर्य्यम्) भगवद्विषय कैङ्कर्य्य ३, (वा) या (किम्) क्या (स्वानुसन्धानम्) अपनी आत्मा को अनुसन्धान करना ४, (संसारनिवृत्तेः) संसारनिवृत्ति के और (परमपदप्राप्तेः) परमपद प्राप्ति के (हेतुः) कारण हैं (इति) इस प्रकार से (चेत्) यदि कहो तो (न) नहीं (एतत्) यह पूर्वोक्त (चतुष्टयम्) चारो (अपि) भी (अनिष्टनिवृत्तेः) अनिष्टनिवृत्ति के (च) और (इष्टप्राप्तेः) इष्ट प्राप्ति के (हेतुः) कारण हैं। (ईश्वरकृपा) श्रीमन्नारायण भगवान् की कृपा (एव) निश्चय करके है (इति) इस प्रकार से (प्रतिपत्तेः) प्रतिपत्ति के (अविच्छेदः) विच्छेद नहीं होना है। (आचार्य्यविषयीकारः) आचार्य विषयीकार (ज्ञानम्) ज्ञान को (निवर्त्य)

निवर्तनकरके (वैषद्यम्) वैषद्य को (आपादयति) आपादन करता है। और (श्रीवैष्णवाङ्गीकारः) श्रीवैष्णवाङ्गीकार (सात्विकसत्कारम्) सात्विक सत्कार को (आपादयति) आपादन करता है। तथा (भगवद्भागवतकैङ्कर्य्यम्) भगवद्भागवत विषय कैङ्कर्य्य (च) और (स्वानुसन्धानम्) स्वानुसन्धान (कालक्षेपः) कालक्षेप होता है। (रक्षकेण) रक्षक से (रक्षणम्) रक्षण (अन्यद्वाराकृतम्) दूसरे द्वारा किया गया हो यदि (चेत्) तो (तत्) वह (स्वामित्वस्य) स्वामित्वका (अवद्यम्) अवद्य है। और (शेषभूतेन) शेषभूत से (शेषवृत्तिः) शेषकी वृत्ति (अन्यद्वाराकारिता) दूसरे के द्वारा कराई गयी (चेत्) यदि तो (तच्छेषत्वस्य) उस शेषत्व का (अवद्यम्) अवद्य (भवेत्) होगा। (अवद्यकारणम्) अवद्य का कारण (उभयोः) उन दोनों के (अपि) भी (उभयस्वरूपम्) दोनों स्वरूप हैं। इस वार्ता में **॥ तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥ वा० रा० सुं० ५, स० ३७, श्लो० ६४ ॥** का यह प्रतीक है, इससे समस्त श्लोक को लिखकर यहाँ पर अर्थ लिखता हूँ कि–

यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्। मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत्॥ वा० रा० सुं० ५, स० ३७, श्लो० ६४।

यदि श्रीरामजी इस लङ्का में राक्षसों के साथ रावण को मारकर यहाँ से मुझको लेकर जायेंगे तो वह उनके समान होगा ॥६४॥ इस तीन सौ पचासवीं वार्ता में दो सौ ईकासी पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३५०॥

अब भट्टारक स्वामीजी के और एक प्रपन्न के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भट्टार्य्यप्रपन्नोक्ता वार्ता ॥

मू०– भट्टार्य्यः[१] प्रपन्नम्[२] आहूय[३] त्वां[४] सर्वे[५] प्रपन्ना[६] इति[७] वदन्ति[८], प्रपन्नस्य[९] किं[१०] लक्षणमित्यपृच्छत्[११], स[१२] च[१३]-अर्द्धरात्रौ[१४]-एकाकिनि[१५] मार्गं[१६] गच्छति[१७] दुष्टमृगोद्घोषेणाक्रान्तेऽति[१८] गहने[१९] वने[२०] गाढान्धकारे[२१] विद्युदशनिघोषमण्डिते[२२]-अतिभयङ्करावस्थायामपि[२३] नामोच्चारणाकरणं[२४] प्रपन्नलक्षणमित्यवोचत्[२५] ॥३५१॥

अर्थ–(भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी (प्रपन्नम्) एक प्रपन्न को (आहूय) बुलाकर

(त्वाम्) तुमको (सर्वे) सबलोग (प्रपन्नाः) प्रपन्न (इति) ऐसा (वदन्ति) कहते हैं। तो (प्रपन्नस्य) प्रपन्न का (किम्) क्या (लक्षणम्) लक्षण है (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे। (च) और (सः) वह प्रपन्न (अर्द्धरात्रौ) आधीरात में (एकाकिनि) अकेले (मार्गम्) रास्ता (गच्छति) चलने समय में (दुष्टमृगोद्घोषेण) दुष्ट मृग के शब्द से (आक्रान्ते) आक्रान्त होने पर और (अति) अत्यन्त (गहने) सघन (वने) वन में (गाढान्धकारे) गाढ़ अन्धकार होने पर (विद्युदशनिघोषमण्डिते) बिजली के अशनि के शब्द से मण्डित (अतिभयङ्करावस्थायाम्) अत्यन्त भयङ्कर अवस्था में (अपि) भी (नामोच्चारणाकरणम्) रक्षा की बुद्धि से नाम उच्चारण नहीं करना (प्रपन्नलक्षणम्) प्रपन्न का लक्षण है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्ता में बत्तीस पद हैं। इति भट्टार्य्यप्रपन्नोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३५१॥

अब अनन्ताचार्य्य स्वामीजी के और एक श्रीवैष्णव के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ अनन्तार्य्यश्रीवैष्णवोक्ता वार्ता ॥

मू०– श्रीवेङ्कटयात्रार्थं गच्छति वने-एकदिननिवेशने स्नातुं गच्छतः पादे सर्पोऽदशत्, स्नेहिनः कुत्र विषस्पर्शो-जात इत्यपृच्छन्, स चात्र गुल्म इत्यवदत्, ते च लज्जिता अभवन्, तच्छ्रुत्वा-अनन्तार्य्यः वेङ्कटाद्रिमागतं प्रपन्नं भवान् किं विचार्य्य विषं नावातारयदित्यपृच्छत्, प्रपन्नश्च दष्टसर्पो वलवांश्चेद्विरजां स्नात्वा श्रीवैकुण्ठनाथं सेवे सन्दशतः सर्पादयं वलवांश्चेत् स्वामिपुष्करण्यां स्नात्वा श्रीवेङ्कटनाथं सेवे, इति निश्चित्य नावातारयमित्यवोचत् ॥३५२॥

अर्थ–(श्रीवेङ्कटयात्रार्थम्) श्रीवेङ्कटाचल की यात्रा करने के लिये (वने) वन में (गच्छति) जाने पर (एकदिननिवेशने) एकदिन निवेशन होने पर (स्नातुम्) स्नान करने के लिये (गच्छतः) जाते हुए किसी प्रपन्न के (पादे) पैर में (सर्पः) साँप (अदशत्) काट खाया। "अदशत्" यहाँ पर ॥ **दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० २५** ॥ इस सूत्र से नलोप हुआ है। तब (स्नेहिनः) प्रेमी सब (कुत्र)

किस स्थान पर (विषस्पर्शः) साँप के काटने के विष का स्पर्श (जातः) उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकार से (अपृच्छन्) उस प्रपन्न से पूछे हैं। (च) और (सः) उस प्रपन्न ने (अत्र) इस (गुल्मे) गुल्मस्थानपर साँप काटने के विषका स्पर्श उत्पन्न हुआ है (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहा। (च) और तब (ते) वे स्नेही सब (लज्जिताः) लज्जित (अभवन्) हो गये। (तत्) उस वृत्तान्त को (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य स्वामीजी (श्रुत्वा) सुनकर (वेङ्कटाद्रिम्) श्रीवेङ्कटाचलपर (आगतम्) आये हुए (प्रपन्नम्) उस प्रपन्न से (भवान्) आप (किम्) क्या (विचार्य्य) विचार कर (विषम्) साँप के विष को (न) नहीं (अवातारयत्) ऊतरवाये हैं। (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (प्रपन्नः) वह प्रपन्न (दष्टसर्पः) दष्टसर्प यदि (बलवान्) बलवान् है (चेत्) तो (विरजां) विरजा में (स्नात्वा) स्नान कर (श्रीवैकुण्ठनाथम्) श्रीवैकुण्ठेनाथ भगवान् को (सेवे) मैं सेवन करूँगा। और (सन्दशतः) यदि डँसनेवाले (सर्पात्) साँप से (अयम्) यह जन (बलवान्) बलवान् है (चेत्) तो (स्वामिपुष्करण्याम्) स्वामी की पुष्करणी में (स्नात्वा) स्नान कर (श्रीवेङ्कटनाथम्) श्रीवेङ्कटेश भगवान् को (सेवे) सेवन करूँगा (इति) इस प्रकार से (निश्चित्य) निश्चय करके (न) नहीं (अवातारयम्) साँप के विष को मैंने ऊतरवाया है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा है। इस तीन सौ बावनवीं वार्ता में चौंसठ पद हैं। इत्यनन्तार्य्यश्रीवैष्णवोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३५२॥

अब श्रीरङ्गनाथ भगवान् के और भट्टारक स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रङ्गनाथभट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०– एकदा विशेषदिवसे महामण्डपे श्रीरङ्गनाथे श्रीरङ्गनायक्याम् च तिरस्करणीं कृत्वा, एकान्ते तिष्ठतो-भट्टार्य्यश्चरणौ प्रणेतुं तिरस्करण्यन्तः प्रविवेश, श्रीरङ्गनाथः कोपितः निष्काशयेत्यवदत्, स च निष्काशितः, पुनश्च त-माहूयतेत्यवोचत्, स चाहूतः चरणौ प्रणनाम, तदा त-प्रति रङ्गनाथः मया यदा निष्काशय इत्युक्तस्तदा त्वम् आवां कथमनुसंहितवानित्यपृच्छत्, स च सर्वेश्वरः

५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२
सर्वेश्वरीति चानुसंहितवानित्यवदत्, पूर्वं कथमनुसंहित-
६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२
वानित्यपृच्छत्, स च पूर्वं कूरेशः-आण्डाला चेत्यनुसंहितवा
७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८०
नित्यवोचत्, ततः श्रीरङ्गनाथो मया शापित इतः परं
८१ ८२ ८३ ८४ ८५
तथैवानुसन्धत्स्व, इत्यवोचत् ॥३५३॥

॥ भट्टार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ– गोविन्दराजसरसीरुहषट्पदाय रामानुजार्य्यकरुणामृतवर्द्धिताय ।
कूरेशवंशतिलकाय महात्मकाय श्रीभट्टदेशिकवराय नमोनमस्ते ॥२५२॥

(एकदा) एक समय (विशेषदिवसे) विशेष के दिन (महामण्डपे) बड़े मण्डप में (श्रीरङ्गनाथे) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (च) और (रङ्गनायक्याम्) श्रीरंगनायकी अम्बा के (तिरस्करणीम्) पर्दा (कृत्वा) करके (एकान्ते) एकान्त में (तिष्ठतोः) ठहरने पर (भट्टार्य्यः) भट्टारक स्वामीजी (चरणौ) युगल श्रीसरकार के श्रीचरणों को (प्रणेतुम्) प्राप्त करने के लिये (तिरस्करण्यन्तः) पर्दे के भीतर (प्रविवेश) पैठ गये। तब (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (कोपितः) खिसिया करके (निष्काशय) इस भट्टारक को यहाँ से बाहर निकाल दो (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहे हैं। (च) और तब (सः) वह भट्टारक स्वामीजी (निष्काशितः) बाहर निकाल दिये गये। (च) और (पुनः) फिर से (तम्) उस भट्टारक को (आहूय) तुम सब बुलाओ (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् ने कहा। (च) और (आहूतः) बुलाये हुए (सः) भट्टारक स्वामीजी ने (चरणौ) युगल श्रीसरकार के श्रीचरणों में (प्रणनाम) साष्टाङ्ग प्रणाम किया। (तदा) तब (तम्) उस भट्टारक स्वामीजी के (प्रति) प्रति (रङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (मया) मैंने (यदा) जब (निष्काशय) इस भट्टारक को यहाँ से बाहर निकाल दो (इति) इस प्रकार से (उक्तः) कहा (तदा) तब (त्वम्) तुम (आवाम्) हम दोनों को (कथम्) कैसा (अनुसंहितवान्) अनुसन्धान किये हो (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और तब (सः) वह भट्टारक स्वामीजी (सर्वेश्वरः) आपको सर्वेश्वर (च) और (सर्वेश्वरी) इस जगज्जननी को सर्वेश्वरी (इति) इस प्रकार से (अनुसंहितवान्) मैं अनुसन्धान किया हूँ (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहे हैं। तब श्रीरङ्गनाथ भगवान् (पूर्वम्) निकालने से पहले (कथम्) कैसा (अनुसंहितवान्) अनुसन्धान किये हो (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) भट्टारक स्वामीजी से पूछे हैं। (च) और तब (सः) वह भट्टारक स्वामीजी (पूर्वम्) बाहर निकालने से पहले (कूरेशः) कूरेश स्वामीजी (च) और (आण्डाला)

आण्डालादेवीजी (इति) इस प्रकार से (अनुसंहितवान्) अनुसन्धान किया हूँ (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। (ततः) उसके बाद (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (मया) मुझसे (शापितः) तुम शापित हो (इतः) इसके (परम्) बाद (तथा) वैसा ही (एव) निश्चय करके (अनुसन्धत्स्व) तुम अनुसन्धान करो (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। इस तीन सौ तीरपनवीं वार्ता में पचासी पद हैं। इति रङ्गनाथभट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३५३॥

अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०– वैष्णवत्वं नाम वैषम्यज्ञानं तच्च तारतम्यज्ञानं गुरूणां सद्गुरोश्च विद्यमानस्य तारतम्यस्य मन्त्रान्तराणां मन्त्ररत्नस्य च देवतान्तराणां परदैवतस्य च देहस्यात्मनश्च-उपासकस्य प्रपन्नस्य च साधनान्तरस्य सिद्धसाधनस्य च परत्वस्यार्चावतारस्य च संसारिणां वैष्णवानां च-आत्मानमीश्वरस्य च पुरुषार्थान्तराणां परमपुरुषार्थस्य च विद्यमानस्य तारतम्यस्य ज्ञानं तच्च गुरवः संसारप्रवर्तकाः-अज्ञानप्रदाः सद्गुरुः संसारनिवर्तकः, ज्ञानप्रद इति ज्ञानं देवतान्तराण्यज्ञान्यशक्तानि परदैवतं सर्वज्ञं सर्वशक्तिचेति ज्ञानमन्त्रान्तराणि प्रयोजनान्तरप्रवर्तकानि स्वातन्त्र्यप्रवर्तकानि मन्त्ररत्नं पुरुषार्थप्रवर्तकं पारतन्त्र्यप्रकाशकं चेति ज्ञानं देहो जडः परिणामी-आत्मा ज्ञानानन्दमयः-एकरूप-इति ज्ञानम् उपासकस्यानुकूल्यस्य सङ्कल्पः, प्रातिकूल्यस्य वर्जनं चापेक्षितं प्रपन्नस्यापराधानामालय इत्यध्यवसायः, आकिञ्चन्यं चापेक्षितमितिज्ञानं साधनान्तराणि साध्यानि सापायानि सिद्धसाधनं सिद्धं निरपायमितिज्ञानं परत्वं

१०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९
स्वतन्त्रं दुर्लभम् अर्चावतारः सुलभः, आश्रितपराधीन इति
११० १११ ११२ ११३ ११४
ज्ञानं संसारिणोऽनाचारप्रवर्तकाः दुर्मानप्रवर्तकाः श्रीवैष्णवा
११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२०
आचारप्रवर्तकाः दुर्माननिवर्तका इति ज्ञानम् आत्मा व्याप्यः
१२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८
शेषः, ईश्वरो व्यापकश्शेषीति ज्ञानं पुरुषार्थान्तरमल्प-
१२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६
मस्थिरं परमपुरुषार्थो नित्यो निरतिशय इति ज्ञानम्, एतदेव
१३७ १३८ १३९
वैषम्यज्ञानमित्युच्यते ॥

अर्थ–(वैष्णवत्वम्) श्रीवैष्णवता (नाम) माने (वैषम्यज्ञानम्) वैषम्यज्ञान है। (च) और (तत्) वह वैषम्यज्ञान (तारतम्यज्ञानम्) तारतम्यज्ञान है। (गुरूणाम्) गुरुओं के (च) और (सद्गुरोः) सद्गुरु के (विद्यमानस्य) विद्यमान (तारतम्यस्य) तारतम्य के, तथा (मन्त्रान्तराणाम्) मन्त्रान्तरों के (च) और (मन्त्ररत्नस्य) मन्त्र रत्न के, (देवतान्तराणाम्) तथा देवतान्तरों के (च) और (परदैवतस्य) परदैवत श्रीमन्नारायण भगवान् के, तथा (देहस्य) देह के (च) और (आत्मनः) आत्मा के, तथा (उपासकस्य) उपासक के (च) और (प्रपन्नस्य) प्रपन्न का, तथा (साधनान्तरस्य) उपायान्तर का (च) और (सिद्धसाधनस्य) सिद्धोपाय का, तथा (परत्वस्य) परत्व का (च) और (अर्चावतारस्य) अर्चावतार भगवान् का, तथा (संसारिणाम्) संसारी जीवों का (च) और (वैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों का, तथा (आत्मानाम्) जीवात्माओं का (च) और (ईश्वरस्य) सर्वेश्वर का, तथा (पुरुषार्थान्तराणाम्) पुरुषार्थान्तरों का (च) और (परमपुरुषार्थस्य) परम पुरुषार्थ का (विद्यमानस्य) विद्यमान (तारतम्यस्य) तारतम्य का (ज्ञानम्) ज्ञान है। (च) और (तत्) वह ज्ञान यह है कि (गुरवः) गुरु सब (संसारप्रवर्तकाः) संसार प्रवर्तक और (अज्ञानप्रदाः) अज्ञान प्रद हैं। तथा (सद्गुरुः) सद्गुरु (संसारनिवर्तकः) संसार निवर्तक और (ज्ञानप्रदः) ज्ञानप्रद हैं (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (देवतान्तराणि) ब्रह्मा आदि देवतान्तर सब (अज्ञानि) अज्ञ और (अशक्तानि) अशक्त हैं। तथा (परदैवतम्) परदैवत श्रीमन्नारायण भगवान् (सर्वज्ञम्) सर्वज्ञ (च) और (सर्वशक्ति) सर्वशक्तिमान् हैं (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (मन्त्रान्तराणि) मन्त्रान्तर सब (प्रयोजनान्तरप्रवर्तकानि) प्रयोजनान्तर प्रवर्तक और (स्वातन्त्र्यप्रवर्तकानि) स्वातन्त्र्य प्रवर्तक हैं। तथा (मन्त्ररत्नम्) द्वयमन्त्र (पुरुषार्थप्रवर्तकम्) पुरुषार्थ प्रवर्तक (च) और (पारतन्त्र्यप्रकाशकम्) पारतन्त्र्य प्रकाशक है (इति) इस प्रकार का (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (देहः) शरीर (जडः) जड़ और (परिणामी) परिणामवाला है। और

(आत्मा) आत्मा (ज्ञानानन्दमयः) ज्ञानानन्दमय तथा (एकरूपः) एकरूप है (इति) इस प्रकार का (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (उपासकस्य) उपासक के (आनुकूल्यस्य) अनुकूलताका (सङ्कल्पः) सङ्कल्प करना (च) और (प्रातिकूल्यस्य) प्रतिकूलता की-(वर्जनम्) वर्जना (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। तथा (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जन के (अपराधानाम्) अपराधों के (आलयः) स्थान मैं हूँ (इति) इस प्रकार से (अध्यवसायः) अध्यवसाय करना (च) और (आकिञ्चन्यम्) अकिञ्चनता (अपेक्षितम्) अपेक्षित है, (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (साधनान्तराणि) साधनान्तर (साध्यानि) साध्य और (सापापानि) अच्छे प्रकार के पापसहित हैं। और (सिद्धसाधनम्) सिद्धोपाय (सिद्धम्) सिद्ध तथा (निरपायम्) अपायरहित है (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (परत्वम्) परब्रह्म (स्वतन्त्रम्) स्वतन्त्र और (दुर्लभम्) दुर्लभ हैं। और (अर्चावतारः) अर्चावतार भगवान् (सुलभः) सुलभ तथा (आश्रितपराधीनः) आश्रित पराधीन हैं (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (संसारिणः) संसारी जीव (अनाचारप्रवर्तकाः) अनाचार प्रवर्त्तक और (दुर्मानप्रवर्तकाः) दुर्मान प्रवर्त्तक हैं। और (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (आचारप्रवर्तकाः) आचार प्रवर्तक तथा (दुर्माननिवर्तकाः) दुर्मान निवर्तक हैं (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (आत्मा) जीवात्मा (व्याप्यः) व्याप्य और (शेषः) शेष है। और (ईश्वरः) सर्वेश्वर (व्यापकः) व्यापक (शेषी) और शेषी हैं (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) ज्ञान है। तथा (पुरुषार्थान्तरम्) पुरुषार्थान्तर (अल्पम्) अल्प और (अस्थिरम्) अस्थिर है। और (परमपुरुषार्थः) परमपुरुषार्थ (नित्यः) नित्य तथा (निरतिशयः) अतिशय रहित है (इति) इस प्रकार का (ज्ञानम्) ज्ञान है (एतत्) यह पूर्वोक्त ज्ञान (एव) निश्चय करके (वैषम्यज्ञानम्) वैषम्य ज्ञान है (इति) इस प्रकार से (उच्यते) कहते हैं॥ शमिति॥



मू०- स्वरूपानुकूलं[१] रक्षकत्वं[२] शेषत्वं[३] सेवा[४], सहवासः[५], कालक्षेपः[६], स्थितिः[७] परिग्रहो[८] भोजनमध्यवसायः[९], अपेक्षा[१०]-इत्येते[११] दशार्थाः[१२]-अधिकारिणोऽवश्यं[१३] ज्ञातव्याः[१४], स्वरूपानुकूलं[१५] रक्षकत्वं[१६] नाम[१७]-देशरक्षकः[१८], देहरक्षकः[१९], पदार्थरक्षकः[२०] पौरुषर-क्षक[२१]-इत्युक्तरक्षकत्वं[२२] विहाय देशनिवर्तको[२३] देहनिवर्तको[२४] विषय-निवर्तकः[२५] पापनिवर्तक[२६] इत्यनुसन्धीयमानं[२७] रक्षकत्वं[२८] स्वरूपा-

नुकूलं शेषत्वं नाम-इतरशेषः गृहशेषः पितृशेषो देवतान्तर-
शेष इत्युक्तं शेषत्वं विना सर्वेश्वर एव धारको व्यापकः,
शरीरी शेषीत्यनुसन्धीयमानं शेषत्वं स्वरूपानुकूला सेवा
नाम-चेतनान्तरसेवा, दृष्टप्रयोजनार्था भगवत्सेवा इत्युक्तां
सेवां विना स्वरूपप्रयुक्तसेवा, स्वरूपानुकूलः सहवासो नाम-
विषयार्थासङ्गतिः, द्रव्यार्जनार्था सङ्गतिः, परहिंसार्था सङ्गतिः
कालक्षेपार्था सङ्गतिरित्युक्तसहवासं विना संसारे-अरु-
च्युत्पत्यर्थं भगवद्विषये रुच्युत्पादनार्थं स्वरूपवैशद्योत्पादनार्थ-
माचारप्रवृत्त्यर्थं च क्रियमाणः सात्त्विकैः सहवासः स्वरूपा-
नुकूलः कालक्षेपो नाम-इतरेभ्यो व्यावर्तक इत्यनुसन्धीय-
मानेन भगवद्गुणानुभवेन कालक्षेपं विना स्वयं प्रयोजनेन
तेन कालक्षेपः, स च स्वरूपधारकः, भोग्यभूत इत्यनु-
सन्धीयमानः ॥

अर्थ–(स्वरूपानुकूलम्) स्वरूप के अनुकूल (रक्षकत्वम्) रक्षकता १, और (शेषत्वम्) शेषता २, तथा (सेवा) सेवा ३, और (सहवासः) सहवास ४, तथा (कालक्षेपः) कालक्षेप ५, और (स्थितिः) स्थिति ६, तथा (परिग्रहः) परिग्रह और (भोजनम्) भोजन ८, तथा (अध्यवसायः) अध्यवसाय ९, और (अपेक्षा) अपेक्षा १०, (इति) इस प्रकार के (एते) ये (दश) दस (अर्थाः) अर्थ (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (अवश्यम्) जरूर (ज्ञातव्याः) जानने योग्य हैं। (स्वरूपानुकूलम्) स्वरूप के अनुकूल (रक्षकत्वम्) रक्षकत्व (नाम) माने (देशरक्षकः) देशका रक्षक और (देहरक्षकः) देह रक्षक तथा (पदार्थरक्षकः) पदार्थ का रक्षक और (पौरुषरक्षकः) पौरुष रक्षक (इति) इस प्रकार के (उक्तरक्षकत्वम्) कहे हुए रक्षकत्व को (विहाय) छोड़कर (देशनिवर्तकः) देशका निवर्तक और (देहनिवर्तकः) शरीर का निवर्तक तथा (विषयनिवर्तकः) विषय का निवर्तक और (पापनिवर्तकः) पाप का निवर्तक (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धीयमानम्) अनुसन्धीयमान (रक्षकत्वम्) रक्षकत्व हैं। (स्वरूपानुकूलम्) स्वरूप के अनुकूल (शेषत्वम्) शेषत्व (नाम) माने (इतरशेषः)

अन्यका शेष और (गृहशेषः) घर का शेष तथा (पितृशेषः) पिता का शेष और (देवतान्तरशेषः) देवतान्तरों का शेष (इति) इस प्रकार के (उक्तम्) कहे हुए (शेषत्वम्) शेषत्व को (विना) छोड़कर (सर्वेश्वरः) सर्वेश्वर भगवान् (एव) निश्चय करके (धारकः) धारक और (व्यापकः) व्यापक तथा (शरीरी) शरीरी और (शेषी) शेषी हैं, (इति) इस प्रकार से (अनुसन्धीयमानम्) अनुसन्धीयमान (शेषत्वम्) शेषत्व है। (स्वरूपानुकूला) स्वरूप के अनुकूल (सेवा) सेवा (नाम) माने (चेतनान्तरसेवा) चेतनान्तरों की सेवा और (दृष्टप्रयोजनार्था) दृष्ट प्रयोजन के लिये (भगवत्सेवा) श्रीमन्नारायण भगवान् की सेवा (इति) इस प्रकार से (उक्ताम्) कही हुई (सेवाम्) सेवा को (विना) छोड़कर (स्वरूपप्रयुक्तसेवा) स्वरूप से प्रयुक्त सेवा है। (स्वरूपानुकूलः) स्वरूप के अनुकूल (सहवासः) सहवास (नाम) माने (विषयार्था) विषय के लिये (सङ्गतिः) सङ्गति और (द्रव्यार्जनार्था) द्रव्य अर्जन करने के लिये (सङ्गतिः) सङ्गति तथा (परहिंसार्था) दूसरे जीव की हिंसा करने के लिये (सङ्गतिः) सङ्गति और (कालक्षेपार्था) कालक्षेप के लिये (सङ्गतिः) सङ्गति करना (इति) इस प्रकार के (उक्तसहवासम्) कहे हुए सहवास को (विना) छोड़कर (संसारे) संसार में (अरुच्युत्पत्यर्थम्) अप्रीति उत्पन्न होने के लिये और (भगवद्विषये) भगवद्विषय में (रुच्युत्पादनार्थम्) रुचि उत्पादन करने के लिये तथा (स्वरूपवैशद्योत्पादनार्थम्) स्वरूप के वैशद्य उत्पादन करने के लिये (च) और (आचारप्रवृत्त्यर्थम्) आचार में प्रवृत्ति होने के लिये (क्रियमाणः) किया हुआ (सात्त्विकैः) सात्त्विक पुरुषों से (सहवासः) सहवास है। (स्वरूपानुरूपः) स्वरूप के अनुरूप (कालक्षेपः) कालक्षेप (नाम) माने (इतरेभ्यः) इतरों से (व्यावर्तकः) व्यावर्तक है (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धीयमानेन) अनुसन्धीयमान (भगवद्गुणानुभवेन) श्रीमन्नारायण भगवान् के गुणों को अनुभव से (कालक्षेपम्) कालक्षेप को (विना) छोड़कर (स्वयम्) अपने से (तेन) उस (प्रयोजनेन) प्रयोजन करके (कालक्षेपः) कालक्षेप है (च) और (सः) वह कालक्षेप (स्वरूपधारकः) स्वरूप का धारक तथा (भोग्यभूतः) भोग्यभूत है (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धीयमानः) अनुसन्धीयमान है ॥ खमिति ।



मू०– स्वरूपानुकूलो[१] वासो[२] नाम[३] द्रव्यार्जनस्यानुकूले-[४][५]
अत्रत्यभयनिवृत्तिहेतुः[६], स्वजात्यविश्लेषहेतुः[७], पुण्यक्षेत्रवासः[८]
योग्यतापादक[९] इत्युक्तं[१०] वासं[११] विना[१२] देशे[१३] प्रेमोत्पत्तिहेतुः[१४][१५],
देशिकनित्यसेवाहेतुः[१६], देशस्थैः[१७] सात्त्विकैः[१८] सह[१९] सङ्गतिहेतुः[२०],

विपरीतास्पर्शहेतुरित्यनुसन्धीयमानो वासः, स्वरूपानुकूलः परिग्रहो नाम-अनुकूलेभ्यो निर्बन्धेन स्वीकारं प्रतिकूलेभ्योऽपेक्षाया स्वीकारं स्वरूपप्रयुक्तस्य विषयोपयुक्ततया स्वीकारं भगवद्द्रव्यस्य स्वीकारं विना कृषिं कृत्वा मुष्टिं याचयित्वा प्राप्तस्य शिष्यप्रीत्या समर्पितस्य सात्त्विकैः कृपया दत्तस्य परिग्रहः, स्वरूपानुकूलं भोजनं नाम-ख्यातिपूजादिप्रयोजनान्तरपरेण दतमहं ददामीत्यभिमानिना दतं भोजनं विना-अनन्यप्रयोजनेन दतं भोजनम्, स्वरूपानुकूलोऽध्यवसायो नाम-क्षुद्रपुरुषार्थप्रदत्वाध्यवसायं विना स्वरूपविरोधिनिवृत्तिपूर्वकपरमपुरुषार्थप्रदत्वाध्यवसायः, स्वरूपानुकूलापेक्षा नाम-पुत्रपश्वन्नादिपदार्थविषयिणीं स्वर्गाद्यैश्वर्य्यविषयिणीं कैवल्यपुरुषार्थविषयिणीं स्वार्थभगवदनुभवविषयिणीं चापेक्षां विना महावैकुण्ठविषयिणी तद्दाससमुदायान्तर्भावविषयिणी-अविछन्नकैङ्कर्य्यविषयिणी चापेक्षा, इति कृष्णपादः ॥३५४॥

अर्थ–(स्वरूपानुकूलः) स्वरूप के अनुकूल (वासः) स्थिति (नाम) माने (द्रव्यार्जनस्य) द्रव्य के अर्जन के (अनुकूले) अनुकूल में (अत्रत्यभयनिवृत्तिहेतुः) यहाँ पर रहनेवालों के भय की निवृत्ति का कारण और (स्वजात्यविश्लेषहेतुः) स्वजात्य के विश्लेष का कारण तथा (पुण्यक्षेत्रवासः) पवित्र क्षेत्र में निवास और (योग्यतापादकः) योग्यता का आपादक (इति) इस प्रकार से (उक्तम्) कही हुई (वासम्) स्थिति को (विना) छोड़कर (देशे) देश में (प्रेमोत्पत्तिहेतुः) प्रेम की उत्पत्ति का कारण और (देशिकनित्यसेवाहेतुः) आचार्य्य की नित्य सेवा का कारण तथा (देशस्थैः) देशमें स्थित (सात्त्विकैः) सात्त्विक पुरुषों के (सह) साथ (सङ्गतिहेतुः) सङ्गति में कारण (विपरीतास्पर्शहेतुः) और विपरीत नहीं स्पर्श करने में कारण (इति) इस से (अनुसन्धीयमानः) अनुसन्धीयमान (वासः) स्थिति है। (स्वरूपानुकूलः)

स्वरूप के अनुकूल (परिग्रहः) परिग्रह (नाम) माने (अनुकूलेभ्यः) अनुकूल पुरुषों से (निर्बन्धेन) निर्बन्ध करके (स्वीकारम्) स्वीकार करना और (प्रतिकूलेभ्यः) प्रतिकूलों से (अपेक्षया) अपेक्षा करके (स्वीकारम्) स्वीकार करना तथा (स्वरूपप्रयुक्तस्य) स्वरूप प्रयुक्त के (विषयोपयुक्ततया) विषय की उपयुक्तता से (स्वीकारम्) स्वीकार करना और (भगवद्द्रव्यस्य) श्रीमन्नारायण भगवान् के द्रव्य को (स्वीकारम्) स्वीकार को (विना) छोड़कर (कृषिम्) कृषि को (कृत्वा) करके (मुष्टिम्) एक मुट्ठी की (याचयित्वा) याचना करके (प्राप्तस्य) प्राप्त के और (शिष्यप्रीत्या) शिष्य प्रीति से (समर्पितस्य) समर्पण की हुई वस्तु को तथा (सात्त्विकैः) सात्त्विकों से और (कृपया) कृपा करके (दतस्य) दी हुई वस्तु का (परिग्रहः) परिग्रह है। (स्वरूपानुकूलम्) स्वरूप के अनुकूल (भोजनम्) भोजन (नाम) माने (ख्यातिपूजादिप्रयोजनान्तरपरेण) नाम और पूजा आदि अन्य प्रयोजन परक पुरुष से (दतम्) दिये हुए भोजन को (अहम्) मैं (ददामि) देता हूँ (इति) इस प्रकार से (अभिमानिना) अभिमानी पुरुष से (दतम्) दिये हुए (भोजनम्) भोजन को (विना) छोड़कर (अनन्यप्रयोजनेन) अनन्य प्रयोजन से (दतम्) दिया हुआ (भोजनम्) भोजन है। (स्वरूपानुकूलः) स्वरूप के अनुकूल (अध्यवसायः) अध्यवसाय (नाम) माने (क्षुद्रपुरुषार्थप्रदत्वाध्यवसायम्) छोटे पुरुषार्थ को प्रकर्षरूप से देनेवाले अध्यवसाय को (विना) छोड़कर (स्वरूपविरोधिनिवृत्ति- पूर्वकपरमपुरुषार्थप्रदत्वाध्यवसायः) स्वरूप के विरोधी की निवृत्ति पूर्वक परम पुरुषार्थ को अच्छे प्रकार से देनेवाले का अध्यावसाय है। (स्वरूपानुकूला) स्वरूप के अनुकूल (अपेक्षा) अपेक्षा (नाम) माने (पुत्रपश्वन्नादिपदार्थविषयिणीम्) पुत्रपशु अन्न आदि पदार्थ को विषय करनेवाली और (स्वर्गाद्यैश्वर्य्यविषयिणीम्) स्वर्ग आदि ऐश्वर्य्य को विषय करनेवाली तथा (कैवल्यपुरुषार्थविषयिणीम्) कैवल्य पुरुषार्थ को विषय करनेवाली (च) और (स्वार्थभगवदनुभवविषयिणीम्) अपने लिये भगवान् के अनुभव को विषय करनेवाली (अपेक्षाम्) अपेक्षा को (विना) छोड़कर (महावैकुण्ठविषयिणी) महा वैकुण्ठको विषय करनेवाली और (तद्दाससमुदयान्तर्भावविषयिणी) उसके दास के समुदाय के भीतर के भाव को विषय करनेवाली (च) और (अविच्छिन्नकैङ्कर्य्यविषयिणी) विच्छेद रहित कैङ्कर्य्य को विषय करनेवाली (अपेक्षा) अपेक्षा है (इति) इस प्रकार से (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ चौवनवीं वार्ता में तीन सौ सैंतीस पद हैं। इति कृष्णपादोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३५४॥



अब कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०– वैशद्यं[१] निश्चयः[२] चातुर्य्यमानन्द[३] इति[४] चत्वा[५]-रोऽधिकारिणोऽवश्यमपेक्षिताः[६], वैषद्यं[७] नाम-तत्त्वत्रयविषयकं[८] ज्ञानं[९] प्राप्यप्रापकविषयकं[१०] ज्ञानं[११] च[१२] निश्चयः[१३]-उपायाध्यवसायः[१४], चातुर्य्यं[१५] मनसा[१६] निश्चितादन्यस्य[१७] वाचा[१८] कथनं[१९] तच्च[२०] संसारे[२१]-ऽवस्थितिसमये[२२] प्रकृतिसम्बन्धानुचिन्तनं[२३] स्वगृहे[२४] राजपुरुष[२५]-आगत्य[२६] बाधते[२७] चेत्[२८], स्वस्य[२९] तत्र[३०] वासाशया[३१]-अन्यत्र[३२] न[३३] गच्छति[३४], राजपुरुषोऽन्यत्र[३५] गमनं[३६] नानुमन्यते[३७], अतो[३८] हृदयेन[३९] राजपुरुष[४०]-निवृत्तिं[४१] प्रार्थयमानोऽपि[४२] बहिः[४३] प्रीत्या[४४] राजपुरुषेण[४५] सह[४६] यथा[४७]-सल्लापं[४८] करोति[४९], तथा[५०] प्रकृतिबन्धूनामपि[५१] नारायणसृष्टत्वात्[५२] तद्विषये[५३] यथा[५४] परगता[५५] नारी[५६] ''पद्मपत्रमिवाम्भसा''[५७] इत्युक्त[५८]-प्रकारेणावस्थितिः[५९], आनन्दो[६०] नाम-उद्देश्योक्तवार्तायाः[६१] अनु[६२]-सरणम् ॥

अर्थ–(वैशद्यम्) वैशद्य १, और (निश्चयः) निश्चय २, तथा (चातुर्य्यम्) चातुर्य ३, और (आनन्दः) आनन्द ४, (इति) ये (चत्वारः) चार (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (अवश्यम्) जरूर (अपेक्षिताः) अपेक्षित हैं। (वैशद्यम्) वैशद्य (नाम) माने (तत्त्वत्रयविषयकम्) ब्रह्मतत्व और जीव तत्त्व तथा मायातत्त्व इन तीन तत्त्वविषयक (ज्ञानम्) ज्ञान है (च) और (प्राप्यप्रापकविषयकम्) साध्य तथा साधन विषयक (ज्ञानम्) ज्ञान है। (निश्चयः) निश्चय माने (उपायाध्यवसायः) उपाय का अध्यवसाय करना है। (चातुर्य्यम्) चातुर्य माने (मनसा) मन करके (निश्चितान्) निश्चय की हुई वस्तु से (अन्यस्य) दूसरी वस्तु को (वाचा) वाणी से (कथनम्) कहना (च) और (तत्) वह कथन (संसारे) संसार में (अवस्थितिसमये) रहने के समय में (प्रकृतिसम्बन्धानुचिन्तनम्) प्रकृति के सम्बन्ध को अनुचिन्तन करना (स्वगृहे) अपने घर में (राजपुरुषः) राजा के पुरुष सिपाही (आगत्य) आकर यदि (बाधते) बाधा करते हैं (चेत्) तो (स्वस्य) अपने (तत्र) उस घर में (वासाशया) निवास की आशा से (अन्यत्र) दूसरे स्थान पर (न) नहीं (गच्छति) जाता है और (राजपुरुषः) राजा

का पुरुष (अन्यत्र) दूसरे स्थान पर (गमनम्) गमन की (न) नहीं (अनुमन्यते) अनुमति करता है (अतः) इस कारण से (हृदयेन) हृदय से (राजपुरुषनिवृत्तिम्) राजा के पुरुष की निवृत्ति की (प्रार्थयमानः) प्रार्थना करते हुए (अपि) भी (वहिः) बाहर में (प्रीत्या) प्रीति से (राजपुरुषेण) राजा के पुरुष के (सह) साथ (यथा) जैसे (सल्लापम्) सुन्दर भाषण (करोति) करता है (तथा) वैसे ही (प्रकृतिबन्धूनाम्) प्रकृतिसम्बन्धी बन्धुओं की (अपि) भी (नारायणसृष्टत्वात्) भगवान् से सृष्टि होने से (तद्विषये) उसके विषय में (यथा) जैसे (परगता) दूसरे से प्राप्त (नारी) स्त्री हो वैसे है और (अम्भसा) जल से (पद्मपत्रम्) कमल के पत्ते के (इव) समान (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (अवस्थितिः) अवस्थिति करना है। (आनन्दः) आनन्द (नाम) माने (उद्देश्योक्तवार्तायाः) उद्देश्य से कही हुई वार्ता का (अनुसरणम्) अनुसरण करना है। इस वार्ता में **॥ पद्मपत्रमिवाम्भसा। भगवद्गी० अ० ५, श्लो० १० ॥** का यह प्रतीक है, इससे सम्पूर्ण श्लोक को यहाँ पर लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि–

॥ ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ भगवद्गी० अ० ५, श्लो० १० ॥

जो पुरुष ब्रह्म में कर्मों को समर्पण करके और सङ्ग को छोड़कर कर्मों को करता है, वह जल से कमल के पत्र के समान पाप से लिप्त नहीं होता है ॥१०॥ शमिति ॥



मू०– भगवत्सन्निधौ-अपराधानामालयोऽकिञ्चन इत्यनुसन्दधीत, आचार्य्यसन्निधौ-अज्ञतामार्तिज्ञानुसन्दधीत, श्रीवैष्णवसन्निधौ स्वशेषत्वपारतन्त्र्येऽनुसंदधीत, संसारिमध्ये स्वभोग्यं पूर्तिज्ञानुसन्दधीत, ''अमार्यादः क्षुद्रः'' कस्यचिदधिकारिणः, त्याज्यमुपादेयमिति च द्विविधं प्रकृतिः प्राकृतानि भगवद्भागवताश्च त्याज्यं त्याज्यत्वप्रतिपत्तिः, उपादेयमुपादेयत्वप्रतिपत्तिः, त्याज्यत्वं नाम-अप्राप्ताविभिनिवेशाभावः, प्राप्तौ प्रीत्यभावः, कस्याश्चित्पतिव्रतायाः पातिव्रत्यहानिः स्त्रीत्वहानिः बन्धुहानिरिति त्रिविधहानिः-

परिहार्य्याः, एवमधिकारिणोऽपि त्रिविधहानिः परिहार्य्याः, अस्य पातिव्रत्यहानि र्नाम-इष्टार्थमितरानुवर्तनं स्त्रीत्वहानि-र्नाम-ईश्वरसमीपे दृष्टार्थापेक्षा, बन्धुहानि र्नाम-श्रीवैष्णवान् प्रति दृष्टानुपपत्तिकथनम्, अधिकारिणो रूपं नाम-उक्ति-वृत्तिर्बुद्धिरिति पञ्चापेक्षिताः, तत्र बुद्धिरेव प्रधानं तदभावे-अन्यत्सर्वमसत्कल्पम्, अतएव दिव्यसूरिणस्तत्रैव व्यवसिताः, तत्प्रमाणं दिव्यप्रबन्धेषु बहुशो द्रष्टव्यं मृण्मि-श्रोदकं पात्रे पूरयित्वा तत्र कतके घर्षिते सति मृत्तिका-अधस्तिष्ठति, उदकं स्वच्छमुपरि तिष्ठति, तथा ज्ञानमिश्र-शरीरे वर्तमानमात्मानं महोपकारक आचार्य्यः श्रीमन्त्ररूपक-तकघर्षणेन स्वच्छं कृत्वा, एवं विशदमात्मानं पात्रान्तरे सङ्क्रमनपर्यन्तं यत्किञ्चित्स्पर्शमात्रेण कलुषितो भवेदिति निरन्तरं रक्षति, अतस्तत्कटाक्षविषये वर्तमानं स्वरूप-मित्यवोचत् ॥३५५॥

अर्थ–(भगवत्सन्निधौ) भगवान् की सन्निधि में (अपराधानाम्) अपराधों का (आलयः) स्थान और (अकिञ्चनः) अकिञ्चन मैं हूँ (इति) इस प्रकार के (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। तथा (आचार्य्यसन्निधौ) आचार्य्य की सन्निधि में (अज्ञताम्) अज्ञता को (च) और (आर्तिम्) आर्तिको (अनुसन्दधीत) अपने में अनुसन्धान करे। और (श्रीवैष्णवसन्निधौ) श्रीवष्णव की सन्निधि में (स्वशेषत्वपारतन्त्र्ये) अपनी शेषता को तथा परतन्त्रता को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। तथा (संसारिमध्ये) संसारियों के मध्य में (स्वभोग्यम्) अपने भोग्य को (च) और (पूर्तिम्) पूर्ति को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। (अमर्य्यादः) मर्यादा से रहित और (क्षुद्रः) अत्यन्त तुच्छ मैं हूँ। इस प्रकार के (कस्यचित्) किसी भी (अधिकारिणः) अधिकारी के अनुसन्धान करने योग्य है। (त्याज्यम्) त्याग करने योग्य (च) और (उपादेयम्) ग्रहण करने योग्य (इति) ये दोनों (द्विविधम्) दो प्रकार के होते हैं। उनमें त्याग करने योग्य (प्रकृतिः) प्रकृति और (प्राकृतानि) प्राकृत पदार्थ हैं। (च) और ग्रहण करने

योग्य (भगवद्भागवता:) भगवान् और भागवत हैं। (त्याज्यम्) त्याग करने योग्य और (त्याज्यत्वप्रतिपत्ति:) त्याग करने योग्य की प्रतिपत्ति तथा (उपादेयम्) ग्रहण करने योग्य (उपादेयत्वप्रतिपत्ति:) और ग्रहण करने योग्य की प्रतिपत्ति है। (त्याज्यत्वम्) त्याज्यत्व (नाम) माने (अप्राप्तौ) अप्राप्ति में (अभिनिवेशाभाव:) अभिनिवेश का अभाव होना है, और (प्राप्तौ) प्राप्ति में (प्रीत्यभाव:) प्रीति का अभाव होना है। (कस्याश्चित्) किसी भी (पतिव्रताया:) पतिव्रता स्त्री के (पातिव्रत्यहानि:) पातिव्रत्य धर्म की हानि १, (स्त्रीत्वहानि:) तथा स्त्रीत्व की हानि २, और (बन्धुहानि:) बन्धुओं की हानि ३, (इति) इस प्रकार से (त्रिविधहानि:) तीन प्रकार की हानि (परिहार्य्या:) परित्याग करने योग्य हैं। (एवम्) इसी प्रकार से (अधिकारिण:) अधिकारी पुरुष से (अपि) भी (त्रिविधहानि:) तीन प्रकार की हानि अर्थात् पातिव्रत्यहानि १, तथा स्त्रीत्व हानि २, और बन्धु हानि ३, (परिहार्य्या:) परित्याग करने योग्य हैं। (अस्य) इस अधिकारी पुरुष की (पातिव्रत्यहानि:) पातिव्रत्यहानि (नाम) माने इष्टार्थम्) इष्ट अर्थ के लिये (इतरानुवर्तनम्) इतरों का अनुवर्तन करना है। और (स्त्रीत्वहानि:) स्त्रीत्वहानि (नाम) माने (ईश्वरसमीपे) परमेश्वर के समीप में (दृष्टार्थापेक्षा) देखे हुए अर्थ की अपेक्षा करना है। तथा (बन्धुहानि:) बन्धुहानि (नाम) माने (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों के (प्रति) प्रति (दृष्टानुपपत्तिकथनम्) दृष्ट की अनुपपत्ति को कहना है। और (अधिकारिण:) अधिकारी पुरुष को (रूपम्) रूप १, और (नाम) नाम २, तथा (उक्ति:) उक्ति ३, और (वृत्ति:) वृत्ति, ४ तथा (बुद्धि:) बुद्धि ५, (इति) इस प्रकार के (पञ्च) ये पाँच ठो (अपेक्षिता:) अपेक्षित हैं। (तत्र) उन पाँचों में (बुद्धि:) बुद्धि (एव) निश्चय करके (प्रधानम्) प्रधान है और (तदभावे) उस बुद्धि के अभाव होने पर (अन्यत्) और (सर्वम्) सब अर्थात् रूप नाम उक्ति वृत्ति ये सब (असत्कल्पम्) नहीं रहने के समान हैं। (अत:) इसी कारण से (एव) निश्चय करके (दिव्यसूरिण:) दिव्यसूरि पराङ्कुश मुनि प्रभृति (तत्र) उस बुद्धि में (एव) निश्चय करके (व्यवसिता:) व्यवसित हैं। (तत्) वह (प्रमाणम्) प्रमाण (दिव्यप्रबन्धेषु) दिव्य प्रबन्धों में (बहुश:) बहुत प्रकार से (द्रष्टव्यम्) देखने योग्य है। (मृण्मिश्रोदकम्) मिट्टी मिले हुए जल को (पात्रे) पात्र में (पूरयित्वा) भरकर (तत्र) उस जल में (कतके) निर्मली के (घर्षिते) घिसने (सति) पर (मृत्तिका) मिट्टी (अध:) नीचे में (तिष्ठति) बैठ जाती है। और (उदकम्) जल (स्वच्छम्) निर्मल (उपरि) ऊपर में (तिष्ठति) रहता है। (तथा) वैसे ही (अज्ञानमिश्रशरीरे) अज्ञान युक्त देह में (वर्तमानम्) ठहरे हुए (आत्मानम्) आत्मा को (महोपकारक:) बड़ा उपकारक (आचार्य्य:) सदाचार्य (श्रीमन्त्ररूपकतकघर्षणेन) श्रीमन्त्र रूप निर्मली के घिसने से (स्वच्छम्) अत्यन्त निर्मल (कृत्वा) करके (एवम्) इस प्रकार के

(विशदम्) निर्मल (आत्मानम्) आत्मा को (पात्रान्तरे) दूसरे पात्र में (सङ्क्रमनपर्य्यन्तम्) सङ्क्रमन समयपर्यन्त (यत्) जो (किञ्चित्) कुछ भी (स्पर्शमात्रेण) स्पर्श मात्र से (कलुषितः) कलुषित (भवेत्) होता है तो (इति) इस प्रकार से (निरन्तरं) हमेशा (रक्षति) रक्षा करते हैं (अतः) इस कारण से (तत्कटाक्षविषये) उस आचार्य्य के नेत्र के विषय में (वर्तमानम्) वर्तमान रहना (स्वरूपम्) स्वरूप है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्ता में ॥ **अमर्य्यादः क्षुद्रः ॥ आलवन्दा श्लो० ६५ ॥** **वाँ** का प्रतीक है, इससे संपूर्ण श्लोक को यहाँ पर लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ कि– **अमर्य्यादः क्षुद्रश्चलमतिरसूयाप्रसवभूः कृतघ्नो दुर्मानी स्मरपरवशो वञ्चनपरः। नृशंसः पापिष्ठः कथमहमितो दुःखजलधेरपारादुत्तीर्णस्तव परिचरेयं चरणयोः ॥ आल० श्लो० ६५ ॥**

मर्यादा से रहित, अत्यन्त तुच्छ, चञ्चलमतिवाला, गुणों में दोष आरोपण का स्थान, तथा कृतघ्न, बड़ा भारी अहङ्कारी, कामदेवरूपी शत्रु के वश में रहनेवाला दूसरे को ठगने में अत्यन्त रत, नृशंस, अत्यन्त पापी, मैं किस प्रकार से इस संसार दुःख-जलधि से पार हो करके आप के दोनों चरणारविन्दों की सेवा करूँगा ॥६५॥ इस तीन सौ पचपनवीं वार्ता में दो सौ चौदह पद हैं। इति कृष्णपादोक्तावार्ताव्याख्यानम् ॥३५५॥

अत्र कृष्णपाद स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कृष्णपादोक्ता वार्ता ॥

मू०– ईश्वरस्य त्रयः-आकाराः परत्वं सौलभ्यं सौन्दर्य्यं चैतत् त्रयमपि "नित्यसूरिश्रेष्ठः" "उदार-द्वारकाधिपतिः" "मणिवर्णः" इत्यादिभिरनुसन्धीत, चेतनस्य पर्वत्रयमस्ति, तच्च "तीर्थं विना-अन्योपायो नास्ति" "तीर्थस्यैवाहम्" "इति प्रणम्य शङ्खचक्रा" वित्यादिभिरनुसन्दधीत, अनादिकर्मप्रवाहेण चतुर्विधशरीरेषु प्रविश्य, चतुर्दशभुवनेषु सञ्चरन्तमीश्वरः स्वं प्रापयितुं त्रिविधशरीराणि दूरीकृत्य मनुष्यजन्मनि प्रवेश्य करणत्रयेण कालत्रयेण कर्मत्रयमन्वयं कृत्वा-अचित्त्रयविलक्षणं गुणत्रयेण

क्षुद्रम् आशात्रयेण व्याकुलम् अपराधत्रयं कुर्वन्तमीषणा-
त्रययुक्तं तत्त्वत्रये ज्ञानाभावात्तापत्रयेण तप्तम् अमुं देवता-
त्रयस्य शेषी महिषीत्रयस्य वल्लभः, आत्मत्रयनाथः, परि-
च्छेदत्रयरहितः, त्रिविधकारणभूतः, श्रीमानवलोक्य विरो-
धित्रयं दूरीकर्तुं सुकृतत्रयेण योजयित्वा लोकत्रयमुपेक्ष-
यित्वा, आनुकूल्यत्रयमुत्पाद्य, अनुवर्तनत्रयार्हं कृत्वा, अधि-
कारित्रयमप्याचार्य्योपदेश्येन मन्त्रत्रयेण दोषं दूरीकृत्य,
पदत्रयं ज्ञापयित्वा, ज्ञानत्रयं स्थापयित्वा, शङ्कात्रयं विनाश्य,
आकारत्रयवन्तं कृत्वा, पर्वत्रययुक्तं कृत्वा, लोकत्रयमुपेक्ष-
यित्वा, पदत्रये-आरोप्य, साम्यत्रयमुत्पाद्य, दोषत्रयरहितं
भोगमनुभावयति ॥

अर्थ–(ईश्वरस्य) सर्वेश्वर के (त्रयः) तीन (आकाराः) आकार हैं, वे ये अधोलिखित हैं (परत्वम्) परत्व १, तथा (सौलभ्यम्) सौलभ्य २, (च) और (सौन्दर्य्यम्) सौन्दर्य ३ है। (एतत्) ये पूर्वोक्त (त्रयम्) तीनों आकारों को (अपि) भी (नित्यसूरिश्रेष्ठः) नित्य सूरियों में श्रेष्ठ और (उदारद्वारकाधिपतिः) उदार द्वारका के अधिपति तथा (मणिवर्णः) मणिवर्ण (इत्यादिभिः) इत्यादि वाक्यों से (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। और (चेतनस्य) चेतन के (पर्वत्रयम्) स्वरूप विरोधी निवृत्ति १, साधन विरोधी निवृत्ति २, प्राप्यविरोधी निवृत्ति ३, ये तीन पर्व (अस्ति) हैं। (च) और (तत्) उस पूर्वोक्त तीन पर्व को (तीर्थम्) तीर्थ के (विना) बिना (अन्योपायः) अन्य उपाय (न) नहीं (अस्ति) है। (तीर्थस्य) तीर्थ के (एव) निश्चय करके (अहम्) मैं हूँ। (इति) इस प्रकार से (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (शङ्खचक्रौ) शङ्ख और चक्र (इत्यादिभिः) इत्यादिक वाक्यों से (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। (अनादिकर्मप्रवाहेण) अनादि कर्म के प्रवाह से (चतुर्विधशरीरेषु) अण्डज १, पिण्डज २, ऊष्मज ३, स्थावर ४। इन चार प्रकार के शरीरों में (प्रविश्य) प्रवेश करके (चतुर्दशभुवनेषु) भूलोक १, अन्तरिक्षलोक २, स्वर्लोक ३, महर्लोक ४, जनलोक ५, तपोलोक ६, सत्यलोक ७, महातल ८, रसातल ९, अतल १०, सुतल ११, वितल १२, तलातल १३, और पाताल १४, इन चौदह भुवनों में (सञ्चरन्तम्)

भ्रमण करते हुए (चेतनम्) चेतन को (ईश्वरः) परमेश्वर भगवान् (स्वम्) अपने को (प्रापयितुम्) प्राप्त कराने के लिये (त्रिविधशरीराणि) तीन प्रकार के शरीरों को अर्थात् देवता के देह को १, तिर्यक् के देह को २, और स्थावर के देह को ३, (दूरीकृत्य) दूर करके (मनुष्यजन्मनि) मनुष्य की योनि में (प्रवेश्य) प्रवेश करा करके (करणत्रयेण) मन १, वाणी २, और शरीर ३, इन तीन करणों से और (कालत्रयेण) भूत १, भविष्य २, वर्तमान ३, इन तीन कालों से (कर्मत्रयम्) कायिक १, वाचिक २, और मानसिक ३, इन तीन कर्मों से (अन्वयम्) सम्बन्ध (कृत्वा) करके (अचित्त्रयविलक्षणम्) व्यक्त १, अव्यक्त २, और काल ३, इन तीन अचितों से विलक्षण और (गुणत्रयेण) सत्त्व १, रजः २, और तम ३, इन तीन गुणों से (क्षुद्रम्) अत्यन्त तुच्छ तथा (आशात्रयेण) अहङ्कारप्रावण्य १, अर्थप्रावण्य २, विषयप्रवण्य ३, इन तीन आशाओं से (व्याकुलम्) व्याकुल और (अपराधत्रयम्) भगवदपचार १, भागवतापचार २, असह्यापचार ३, इन तीन अपराधों को (कुर्वन्तम्) करते हुए (ईषणात्रययुक्तम्) वित्तेषणा १, पुत्रेषणा २, दारेषणा ३, इन तीन ईषणाओं से युक्त (तत्त्वत्रये) चित्तत्त्व १, अचित्तत्त्व २, ईश्वरतत्त्व ३, इन तीन तत्त्वों में (ज्ञानाभावात्) ज्ञान के अभाव होने से (तापत्रयेण) आध्यात्मिक १, आधिभौतिक २, आधिदैविक ३, इन तीन तापों से (तप्तम्) तपे हुए (अमुम्) इस चेतन को (देवतात्रयस्य) इन्द्र १, रुद्र २, ब्रह्मा ३, इन तीन देवताओं के (शेषी) शेषी और (महिषीत्रयस्य) श्रीदेवी १, भूमिदेवी २, और नीलादेवी ३, इन तीन महारानियों के (वल्लभः) स्वामीपति तथा (आत्मत्रयनाथः) बद्धजीव १, मुक्तजीव २, नित्यजीव ३, इन तीन जीवात्माओं के मालिक और (परिच्छेदत्रयरहितः) देश परिच्छेद १, कालपरिच्छेद २, वस्तु परिच्छेद ३, इन तीन परिच्छेदों से रहित तथा (त्रिविधकारणभूतः) निमित्तकारण १, उपादानकारण २, सहकारीकारण ३, ये तीन प्रकार के कारण भये हुए (श्रीमान्) श्रीमान् नारायण भगवान् (अवलोक्य) देख करके (विरोधित्रयम्) स्वस्वातन्त्र्य १, अन्यशेषत्व २, देहात्माभिमान ३, इन तीन विरोधियों को (दूरीकर्तुम्) दूर करने के लिये (सुकृतत्रयेण) आनुषङ्गिक १, प्रासङ्गिक २, यादृच्छिक ३, इन तीन सुकृतों से (योजयित्वा) संयोग कराकर (लोकत्रयम्) भूमि १, अन्तरिक्ष २, स्वर्ग ३, इन तीन लोकों को (उपेक्षयित्वा) उपेक्षा कराकर (आनकूल्यत्रयम्) अद्वेष १, आभिमुख्य २, सत्सम्भाषण ३, इन तीन आनुकूल्य को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर (अनुवर्तनत्रयार्हम्) शरीरानुवर्तन १, अर्थानुवर्तन २, प्राणानुवर्तन ३, इन तीन अनुवर्तन के योग्य (कृत्वा) करके (अधिकारित्रयम्) अज्ञ १, ज्ञानाधिक २, भक्तिपरवश ३, इन तीन अधिकारियों को (अपि) भी (आचर्य्योपदेश्येन) आचार्य्य के उपदेश देने योग्य (मन्त्रत्रयेण) शास्त्ररुचि परिगृहीत १, आचार्य्य-रुचिपरिगृहीत २, शरण्यरुचिपरीगृहीत ३, इन तीन मन्त्रों से

(दोषम्) दोष को (दूरीकृत्य) दूर हटाकर (पदत्रयम्) शेषत्वान्तर निवृत्ति १, उपायान्तर निवृत्ति २, प्रयोजनान्तर निवृत्ति ३, इन तीन पदों को (ज्ञापयित्वा) ज्ञापन कराकर (ज्ञानत्रयम्) स्वज्ञान १, प्राप्यज्ञान २, प्रापकज्ञान ३, इन तीन ज्ञानों को (स्थापयित्वा) स्थापना कराकर (शङ्कात्रयम्) विरोधिभूयस्त्वज्ञानप्रयुक्ता १, प्राप्यगौरवज्ञानप्रयुक्ता २, उपालघुत्वज्ञानप्रयुक्ता ३, इन तीन शङ्काओं को (विनाश्य) विनाश करके (आकारत्रयवन्तम्) ईश्वर को परत्व १, सौलभ्य २, सौन्दर्य्य ३, इन तीन आकार वाले (कृत्वा) करके और (पर्वत्रययुक्तम्) स्वरूपविरोधी निवृत्ति १, साधनविरोधी निवृत्ति २, प्राप्यविरोधी निवृत्ति ३, इन तीन पर्वों से युक्त (कृत्वा) करके (लोकत्रयम्) भूमि १, अन्तरिक्ष २, स्वर्ग ३, इन तीन लोकों को (उपेक्षयित्वा) उपेक्षा कराकर (पदत्रये) त्रिपाद्विभूतिरूपपदत्रय में (आरोप्य) आरोपण कराकर और (साम्यत्रयम्) रूपसाम्य १, गुणसाम्य २, भोगसाम्य ३, इन तीन साम्यों को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर (दोषत्रयरहितम्) अल्पत्व १, अस्थिरत्व २, अभोग्यत्व ३, इन तीन दोषों से रहित (भोगम्) भोग को (अनुभावयति) अनुभव करवाता है। इस वार्ता में पहला प्रश्न होता है कि चार प्रकार के शरीर होते हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न का उत्तर मनुस्मृति में लिखा है कि–

॥ पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतो दतः। रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ मनु० अ० १, श्लो० ४३ ॥

पशु, मृग और व्याल तथा दोनों तरफ दाँतवाले जानवर और राक्षस, पिशाच तथा मनुष्य से सब जरायुज हैं ॥ ४३ ॥

॥ अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः। यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ मनु० अ० १, श्लो० ४४ ॥

पक्षी, सर्प, ग्राह, मछली, कछुआ इस प्रकार के और भी जल में होनेवाले शङ्ख आदि ये सब अण्डज हैं ॥४४॥

॥ स्वेदजं दंशमशकं यूकाभक्षिकमत्कुणम्। ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ मनु० अ० १, श्लो० ४५ ॥

डंस, मच्छर, यूक, मक्खी, खटमल ये सब स्वेदज हैं, और भी इसी प्रकार के अन्य जीव ऊष्मा से उत्पन्न होते हैं ॥४५॥ **उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ॥ मनु० अ० १, श्लो० ४६ ॥**

बीज और शाखा से उत्पन्न होनेवाले सब स्थावर उद्भिज हैं ॥४६॥ इस प्रकार से पहले प्रश्न का उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि चौदह भुवन हैं इसमें

क्या प्रमाण हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देखिये ॥ **भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ योग० अ० १, पा० ३, सू० २४ ॥** सूर्य के संयम करने से भुवन का ज्ञान होता है ॥२५॥ इस सूत्र के व्यासभाष्य में लिखा है कि ॥

तस्य प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येवं भूर्लोको मेरुपृष्ठदारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्रतारा विचित्रोऽन्तरिक्षलोकस्ततः परः स्वर्लोकः पञ्चविधो माहेन्द्रस्तृतीयलोकश्चतुर्थः प्राजापात्यो महर्लोकस्त्रिविधोब्राह्यः तद्यथा जनलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति ॥व्यासभा०॥

उस भुवन का विस्तार सात लोक है, अवीचि नाम के स्थल से लेकर सुमेरु पर्वत की पीठ तक भूलोक है, और सुमेरुकी पीठ से लेकर ध्रुवपर्यन्त नक्षत्रादि करके विचित्र अन्तरिक्ष लोक है २, तथा उससे परे पाँच प्रकार के स्वर्गलोक हैं ३, और तृतीय माहेन्द्रलोक है, तथा प्रजापति का चौथा महर्लोक है ४, और तीन प्रकार के ब्राह्मलोक हैं जनलोक ५, तपोलोक ६, और सत्यलोक ७, इस प्रकार के ये सात भुवन हैं। और भी वहाँ ही लिखा है कि ॥ **ततो महातलरसातलातलसुतलवितलतलातल पातालाख्यानि सप्त ॥ व्यासभा० ॥** इसके बाद महातल १, रसातल २, अतल ३ सुतल ४, वितल ५, तलातल ६, पाताल ७, नामवाले सातभुवन हैं। इस प्रकार से दूसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो तीसरा प्रश्न होता है कि तीन गुण होते हैं इसमें क्या प्रमाण हैं ? इस प्रश्न का उत्तर वराहोपनिषद् में लिखा है कि ॥ **सत्त्वरजस्तमांसि च गुणत्रयम् ॥ वरा० अ० १, श्रु० १ ॥** सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन गुण हैं ॥११॥ इस प्रकार से तीसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो चौथा प्रश्न होता है कि ईषणा तीन हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न का उत्तर बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है कि ॥ **ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्य्यं चरन्ति ॥ वृह० अ० ३, ब्रा० ५, श्रु० १ ॥** ब्राह्मण, पुत्र की इच्छा वित्त की इच्छा स्त्री आदि लोककी इच्छा को त्याग कर भिक्षा को करते हैं ॥१॥ इस प्रकार के चौथे प्रश्न का उत्तर होने पर तो पाँचवा प्रश्न होता है कि तीन प्रकार के अधिकारी होते हैं, इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न का उत्तर **"जितं ते"** व्याख्यान के उपोद्धात में कहा गया है कि

॥ अविद्यातो देवे परिवृढतया वा विदितया स्वभक्तेर्भूम्ना वा जगति गतिमन्यामविदुषाम् । गतिर्गम्यश्चासौ हरिरिति जितं ताह्वयमनो रहस्यं व्याजह्रे स खलु भगवान् शौनकमुनिः ॥ जितंतेव्या० ॥

अज्ञ अधिकारी अज्ञान से परमात्मा की प्रपत्ति करते हैं। तथा सर्वज्ञ अधिकारी ज्ञानाधिक्यसे परमात्मा की प्रपत्ति करते हैं। और भक्ति परवश अधिकारी अपनी भक्ति

की अधिकता से परमात्मा की प्रपत्ति करते हैं। ये तीनों अधिकारी संसार में और कोई उपाय नहीं जानते हैं। इन तीनों के भगवान् ही उपाय और उपेय हैं। ऐसा जितं ते स्तोत्र के रहस्य को निश्चय करके शौनक मुनि ने व्याख्यान किया है ।। और भी देखिये, लक्ष्मीतन्त्र में लिखा है कि–

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम्। इदं तितीर्षतां पारमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ लक्ष्मीतं० ॥

वह प्रपत्ति अज्ञ अधिकारियों का उपाय है, तथा यह प्रपत्ति ज्ञानी अधिकारियों का भी उपाय है, और यह प्रपत्ति संसार सागर से पार होने की इच्छावाले जो भगवदनुभव में त्वरावाले परवश अधिकारी हैं, उनका भी उपाय है ।। खमिति ।।

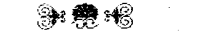


मू०– शरीरत्रयं देवतिर्य्यक्स्थावररूपम्, करणत्रयं मनोवाक्कायाः, कालत्रयं भूतभविष्यद्वर्तमानाः, कर्मत्रयं मानसिककायिकवाचिकानि, मानसिकं च परसमृद्ध्यसहत्वं परानर्थचिन्तनं परदोषप्रतिपत्तिः, स्वयात्रानिरूपणं च, वाचिकं नाम-महादोषकथनं स्वस्यापि विस्मृतिर्यथा स्यात्तथा कथनम्, इतरचरित्रकथनमनृतभाषणं च, कायिक नाम-परहिंसा परदारपरिग्रहः परद्रव्यापहारश्च, अचित्त्रयं व्यक्तमव्यक्तं कालश्च, गुणत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि, आशात्रयम् अहङ्कारार्थविषयप्रावण्यम्, अपराधत्रयं भगवदपचारो भागवतापचारोऽसह्यापचारश्च, ईषणात्रयम् अर्थेषणा पुत्रेषणा दारेषणा च, तत्त्वत्रयं चिदचितावीश्वरश्च, तापत्रयमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकं च, देवतात्रयमिन्द्रो रुद्रो ब्रह्मा च, महिषीत्रयं श्रीर्भूमिः नीला च, आत्मात्रयं बद्धो मुक्तो नित्यश्च, परिच्छेदत्रयं देशतः कालतो वस्तुतः-परिच्छेदः, कारणत्रयं निमित्तमुपादानं सहकारि च, अव-

लोकनं[८९] सौहार्दः, विरोधित्रयं[९०] स्वस्वातन्त्र्यमन्यशेषत्वं[९१] देहात्माभिमानश्च[९२], सुकृतत्रयम्[९३] आनुषङ्गिकं[९४] प्रासङ्गिकं[९५] यादृच्छिकं[९६] च[९७], आनुकूल्यत्रयमद्वेषः[९८]-आभिमुख्यं[९९] सत्सम्भाषणं[१००] च[१०१], अनुवर्तनत्रयं[१०२] शरीरार्थप्राणानां[१०३] सद्गुरुभ्यो[१०४] निवेदनम्[१०५] ॥[१०६]

अर्थ–(शरीरत्रयम्) शरीर तीन (देवतिर्य्यक्स्थावररूपम्) देवता का १, तथा तिर्य्यक् का २, और स्थावर का ३, (करणत्रयम्) तीन करण (मनोवाक्कायाः) मन १, वाणी २, और शरीर है ३, (कालत्रयम्) तीन काल (भूतभविष्यद्वर्तमानाः) भूत १, तथा भविष्य २, और वर्तमान है ३, (कर्मत्रयम्) तीन कर्म (मानसिककायिकवाचिकानि) मानसिक १, तथा कायिक २, और वाचिक है ३, (च) और उनमें (मानसिकम्) मानसिक कर्म (परसमृद्ध्यसहनम्) दूसरे की समृद्धि को नहीं सहना और (परानर्थचिन्तनम्) दूसरे के अनर्थ को चिन्तन करना, तथा (परदोषप्रत्तिपतिः) दूसरे के दोष की प्रतिपत्ति करना। (च) और (स्वयात्रानिरूपणम्) अपनी यात्रा का निरूपण करना है। तथा (वाचिकम्) वाचिककर्म (नाम) माने (महादोषकथनम्) बड़े भारी दोष को कहना और (स्वस्य) अपने (अपि) भी (विस्मृतिः) विस्मरण (यथा) जैसे (स्यात्) होजाय (तथा) वैसे (कथनम्) कहना तथा (इतरचरित्रकथनम्) भगवान् से अन्य के चरित्र को कहना (च) और (अनृतभाषणम्) झूठा बोलना है। तथा (कायिकम्) कायिक कर्म (नाम) माने (परहिंसा) दूसरे को मारना तथा (परदारपरिग्रहः) दूसरे की स्त्री को ले लेना (च) और (परद्रव्यापहारः) दूसरे के द्रव्य को अपहरण कर लेना है। (अचित्त्रयम्) तीन अचित् (व्यक्तम्) व्यक्त १, तथा (अव्यक्तम्) अव्यक्त २, (च) और (कालः) काल है ३, (गुणत्रयम्) तीन गुण (सत्त्वरजस्तमांसि) सत्त्वगुण १, तथा रजोगुण २, और तमोगुण है ३, (आशात्रयम्) तीन आशाएँ (अहङ्कारार्थविषयप्रावण्यम्) अहङ्कार प्रावण्य १, तथा अर्थ प्रावण्य २, और विषयप्रावण्य है ३, (अपराधत्रयम्) तीन अपराध (भगवदपचारः) भगवदपचार १, तथा (भागवतापचारः) भागवतापचार २, (च) और (असह्यापचारः) नहीं सहन करने योग्य अपचार हैं ३,। (ईषणात्रयम्) तीन ईषणा (अर्थेषणा) द्रव्य की इच्छा १, तथा (पुत्रेषणा) पुत्र की इच्छा २, (च) और (दारेषणा) स्त्री की इच्छा है ३, (तत्वत्रयम्) तीन तत्त्व (चिदचितौ) चित्तत्व १, तथा अचित्तत्व २, (च) और (ईश्वरः) ईश्वर तत्व है ३, (तापत्रयम्) तीन ताप (आध्यात्मिकम्) आध्यात्मिक १, तथा (आधिभौतिकम्) आधिभौतिक २, (च) और (आधिदैविकम्) आधिदैविक है ३। (देवतात्रयम्) तीन देवता (इन्द्रः) इन्द्र देवता १, तथा (रुद्रः) रुद्रदेवता २,

(च) और (ब्रह्मा) ब्रह्मा देवता है ३, (महिषीत्रयम्) भगवान् की तीन महारानियाँ (श्रीः) श्रीदेवीजी १, तथा (भूमिः) भूमिदेवीजी २, (च) और (नीला) नीलादेवीजी हैं ३, (आत्मात्रयम्) तीन आत्मा (बद्धः) बद्धात्मा १, तथा (मुक्तः) मुक्तात्मा २, (च) और (नित्यः) नित्यात्मा है ३, (परिच्छेदत्रयम्) तीन परिच्छेद (देशतः) देश से परिच्छेद १, तथा (कालतः) काल से परिच्छेद २, और (वस्तुतः) वस्तु से (परिच्छेदः) परिच्छेद है ३, (कारणत्रयम्) तीन कारण (निमित्तम्) निमित्तकारण १, तथा (उपादानम्) उपादान कारण २, (च) और (सहकारि) सहकारी कारण है ३, और (अवलोकनम्) अवलोकन (सौहार्दः) सौहार्द है। (विरोधित्रयम्) तीन विरोधी (स्वस्वातन्त्र्यम्) अपने में स्वातन्त्र्य १, तथा (अन्यशेषत्वम्) अन्य की शेषता २, (च) और (देहात्माभिमानः) देह में आत्मा का अभिमान है ३, (सुकृतत्रयम्) तीन सुकृत (आनुषङ्गिकम्) आनुषङ्गिक १, तथा (प्रासङ्गिकम्) प्रासङ्गिक २, (च) और (यादृच्छिकम्) यादृच्छिक है ३, (आनुकूल्यत्रयम्) तीन आनुकूल्य (अद्वेषः) किसी के साथ द्वेष नहीं करना १, तथा (आभिमुख्यम्) अभिमुखता ३, (च) और (सत्सम्भाषणम्) सज्जनों से सम्भाषण करना है ३। (अनुवर्तनत्रयम्) तीन अनुवर्तन (शरीरार्थप्राणानाम्) शरीर को तथा अर्थ को और प्राणों को (सद्गुरुभ्यः) सद्गुरुओं के लिये (निवेदनम्) निवेदन करना है ।।शमिति ।।



मू०- अधिकारित्रयं बहुश्रुताः ब्राह्मणाः वृद्धाश्च, मन्त्रत्रयं शास्त्ररुचिपरिगृहीतः, आचार्य्यरुचिपरिगृहीतः शरण्यरुचिपरिगृहीतश्च, पदत्रयं शेषत्वान्तरनिवृत्तिमुपायान्तर-निवृत्तिं प्रयोजनान्तरनिवृत्तिं च ज्ञापयत् पदं, ज्ञानत्रयं स्वज्ञानं प्राप्यज्ञानं प्रापकज्ञानं च, शङ्कात्रयं विरोधिभूयस्त्व-ज्ञानप्रयुक्ता, प्राप्यगौरवज्ञानप्रयुक्ता, उपायलघुत्वज्ञानप्रयुक्ता च, आकारत्रयम् ईश्वरस्य परत्वं सौलभ्यं सौन्दर्य्यं च, पर्वत्रयं स्वरूपविरोधिनिवृत्तिः साधनविरोधिनिवृत्तिः प्राप्य-विरोधिनिवृत्तिश्च, लोकत्रयं भूमिरन्तरिक्षः स्वर्गं च, पदत्रयं त्रिपाद्विभूतिः, साम्यत्रयं रूपसाम्यं गुणसाम्यं भोगसाम्यं

५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७
च, दोषत्रयमल्पत्वमस्थिरत्वमभोग्यत्वं च, सङ्गं विनाश्य
५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४
सूक्ष्मत्रयं निवर्त्य, विरजां तारयित्वा, प्राप्तिमुत्पाद्य, रूपप्राप्ति
६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२
मुत्पाद्य, समप्राप्तिमुत्पाद्य, सायुज्यमुत्पाद्य, ज्ञानमुत्पाद्य, बल-
७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८०
मुत्पाद्य, ऐश्वर्य्यमुत्पाद्य, वीर्य्यमुत्पाद्य, शक्तिमुत्पाद्य, तेज-
८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७
उत्पाद्य, विग्रहानुभवं दत्वा, कैङ्कर्य्यं कारयित्वा, एतत् कैङ्कर्य्यं
८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५
दृष्ट्वा, स प्रीणाति चेत्, तत्प्रीतिं दृष्ट्वा जायमाना प्रीतिः
९६ ९७ ९८
शेषत्वप्रयोजनमिति कृष्णपादः ॥३५६॥

अर्थ–(अधिकारित्रयम्) तीन अधिकारी (बहुश्रुताः) बहुश्रुत अज्ञ अधिकारी १, तथा (ब्राह्मणाः) ब्रह्मवेत्ता ज्ञानाधिक अधिकारी २, (च) और (वृद्धाः) वृद्ध भक्ति परवश अधिकारी है ३। (मन्त्रत्रयम्) तीन मन्त्र (शास्त्ररुचिपरिगृहीतः) शास्त्रकी रुचि से परिगृहीत मन्त्र १, तथा (आचार्य्यरुचिपरिगृहीत) आचार्य की रुचि से परिगृहीत मन्त्र २, (च) और (शरण्यरुचिपरिगृहीतः) शरण्यकी रुचि से परिगृहीत हैं ३। (पदत्रयम्) तीन पद (शेषत्वान्तरनिवृत्तिम्) शेषत्वान्तरनिवृत्तिको तथा (उपायान्तरनिवृत्तिम्) उपायान्तर निवृत्ति को (च) और (प्रयोजनान्तरनिवृत्तिम्) प्रयोजनान्तर निवृत्ति को (ज्ञापयत्) ज्ञापन करने वाला (पदम्) पद है। (ज्ञानत्रयम्) तीन ज्ञान (स्वज्ञानम्) अपना ज्ञान १, तथा (प्राप्यज्ञानम्) प्राप्यज्ञान २ औ (प्रापकज्ञानम्) प्रापक ज्ञान है ३। (च) और (शङ्कात्रयम्) तीन शङ्का (विरोधिभूयस्त्वज्ञानप्रयुक्ता) विरोधि-भूयस्त्वज्ञान प्रयुक्ता शङ्का १, तथा (प्राप्यगौरवज्ञानप्रयुक्ता) प्राप्यगौरवज्ञान प्रयुक्ता शङ्का २, (च) और (उपायलघुत्वज्ञानप्रयुक्ता) उपायलघुत्वज्ञान प्रयुक्ता शङ्का है ३। (आकारत्रयम्) तीन आकार (ईश्वरस्य) ईश्वर के (परत्वम्) परत्व १, तथा (सौलभ्यम्) सौलभ्य २, (च) और (सौन्दर्य्यम्) सौन्दर्य्य हैं ३। (पर्वत्रयम्) तीन पर्व (स्वरूपविरोधिनिवृत्तिः) स्वरूप विरोधिनिवृत्ति १, तथा (साधनविरोधिनिवृत्तिः) साधन विरोधिनिवृत्ति २, (च) और (प्राप्यविरोधिनिवृत्तिः) प्राप्य विरोधिनिवृत्ति हैं ३,। (लोकत्रयम्) तीन लोक (भूमिः) भूमि १, तथा (अन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष २, (च) और (स्वर्गम्) स्वर्गलोक है ३,। (पदत्रयम्) तीन पद (त्रिपाद्विभूतिः) त्रिपाद्विभूति है। (साम्यत्रयम्) तीन समता (रूपसाम्यम्) रूप की समता १, तथा (गुणसाम्यम्) गुण की समता २, (च) और (भोगसाम्यम्) भोग की समता है ३,। (दोषत्रयम्) तीन दोष (अल्पत्वम्) अल्पत्व १, तथा (अस्थिरत्वम्) अस्थिरत्व २, (च) और (अभोग्यत्वम्) अभोग्यत्व है ३,। (सङ्गम्) सङ्ग को (विनाश्य) विनाश कराकर

(सूक्ष्मत्रयम्) कर्म की वासना तथा रुचि और प्रकृति सम्बन्धरूप तीन सूक्ष्मों को (निवर्त्य) दूर करके (विरजाम्) विरजा नदी को (तारयित्वा) पार कराकर (प्राप्तिम्) प्राप्ति को (उत्पाद्य) उत्पन्न करा कर और (रूपप्राप्तिम्) रूप की प्राप्ति को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर तथा (समप्राप्तिम्) समकी प्राप्ति को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर और (सायुज्यम्) सायुज्य को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर तथा (ज्ञानम्) ज्ञान को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर और (बलम्) बल को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर तथा (ऐश्वर्य्यम्) ऐश्वर्य्य को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर और (वीर्य्यम्) वीर्य को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर तथा (शक्तिम्) शक्ति को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर और (तेजः) तेज को (उत्पाद्य) उत्पन्न कराकर (विग्रहानुभवम्) विग्रह के अनुभव को (दत्वा) देकर (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य को (कारयित्वा) कराकर (एतत्) इस (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य को (दृष्ट्वा) देखकर (सः) वह यदि (प्रीणाति) सन्तुष्ट होता है (चेत्) तो (तत्प्रीतिम्) उसकी प्रीति को (दृष्ट्वा) देख कर (जायमाना) उत्पन्न हुई (प्रीतिः) प्रीति (शेषत्वप्रयोजनम्) शेषत्व का प्रयोजन है (इति) इस प्रकार से (कृष्णपादः) कृष्णपाद स्वामीजी ने कहा है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है, कि विरजा नदी का कहाँ पर वर्णन आया है ? इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि ॥ **यशसा विरजां वायं नदी प्रापन्नवानयं जिगीष्यतीति ॥ कौषीतकिब्रा० अ० १, श्रु० ३, ॥** यह चेतन यश से विरजा नदी को प्राप्त किया और बारंबार जीतने की इच्छा करता है ॥३॥ और भी त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् में लिखा है कि ॥ **उपर्य्युपरि गत्वा विरजानदीं प्राप्य तत्र स्नात्वा ॥ त्रिपाद्वि० अध्या० ५ ॥** ऊपर ऊपर लोकों में जाकर विरजा नदी को पाकर उस नदी में स्नान कर ॥५॥ और पराशरीय धर्मशास्त्र के उत्तरखण्ड में लिखा है कि ॥ **तत्र संवाहिनीं दिव्यां विरजां वेदसम्भवाम् ॥ परा० उत्तरखण्ड० अ० ६, श्लो० १६ ॥** वहाँ पर वेद से उत्पन्न होनेवाली दिव्य विरजा नाम की नदी है ॥१६॥ इस तीनसौ छप्पनवीं वार्ता में तीन सौ तेरह पद हैं। इति कृष्णापादोक्तवार्ता-व्याख्यानम् ॥३५६॥

अब आचार्य्य की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०– श्रियः[१] पतौ[२] कालमेघे[३] सौहार्दं[४] वर्षे[५] कुर्वति[६] कृपाभूमौ[७] जीवौषधावुत्पन्ने[८]-आचार्य्यस्य[९] पितुः[१०] कृपया[११] सङ्गेन[१२] ज्ञानान्मातुः[१३] जातां[१४] जीवात्मानं[१५] कन्यां[१६] रुच्या[१७] जीव-[१८]

नेन वर्द्धयित्वा विवेके परिपाके जाते परमशेषिणः श्रीवैष्णवान् सङ्गीकृत्य सर्वेश्वराय वराय स्वरूपज्ञानधारापूर्वकं ददाति, स च शेषत्वेन वाससा-आवेष्ट्य शेषवृत्तिं माङ्गल्यसूत्रं बध्वा रूपनामभिराभरणैः प्रसाध्य हस्तं गृहीत्वा गत्वा, अध्यवसाये-आसने-उपवेश्य, प्रापकज्ञानाग्निं प्रज्वाल्य-इतरोपायां समिधं प्रक्षिप्य, सिद्धोपायस्वीकारं प्रधानाहुतिं हुत्वा मूलमन्त्रेण जपादिहोमं कृत्वा शास्त्राणि लाजाः प्रक्षिप्य सम्बन्धज्ञानेन पूर्णाहुत्या प्राप्तिप्रतिबन्धकानि निःशेषं विनाश्य निर्भरत्वानुसन्धानं कारयति, पूर्वाचार्य्यान् बन्धून्पुरस्कृत्य मातापितरौ सह स्थित्वा-अमुमर्प्पयतः दिव्यसूरिभिर्वृद्धैर्योजयतः वात्सल्यादिगुणयुक्तईश्वरश्च तादृशाकारो यथा न नश्येत् तथा आलिङ्ग्यारक्षत्, त्वरायां परिपाके-उत्पन्ने स्वयं प्रधानमहिष्या सहान्तः पुरं प्रवेश्य, अनन्तमहानन्दयुक्तैर्दिव्यसूरिभिर्बन्धुभिर्मिलित्वा हर्षप्रकर्षेणादृत्य प्रीतिप्रवाहं शयनमारोप्यविषयवैलक्षण्येन भोगोपकरणेन युक्तः सकलविधकैंकर्य्येणानुभवेन योजयति, अयं चानन्दप्रवाहे निमग्नः नमः जितमिति मङ्गलमिति वदति ॥३५७॥

॥ गुरुस्तुतिः ॥

अर्थ— ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्नाम मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥२५३॥

(श्रियः) लक्ष्मीदेवीजी के (पतौ) पति श्रीमन्नारायण भगवान्रूप (कालमेघे) कालमेघ के (सौहार्दम्) सौहार्दरूप (वर्षे) वर्षा (कुर्वति) करने पर (कृपाभूमौ) कृपारूपी भूमि में (जीवौषधौ) जीवरूप औषध के (उत्पन्ने) उत्पन्न होने पर (आचार्य्यस्य) आचार्यरूप (पितुः)

पिता के (कृपया) कृपारूप (सङ्गेन) सङ्ग से (ज्ञानात्) ज्ञानरूपी (मातुः) माता से (जाताम्) उत्पन्न हुई (जीवात्मानम्) जीवात्मारूपी (कन्याम्) कन्या को (रुच्या) रुचिरूप (जीवनेन) जीवन से (वर्द्धयित्वा) बढ़वाकर (विवेके) विवेकरूप (परिपाके) परिपाक के (जाते) उत्पन्न होने पर (परमशेषिणः) परम शेषीरूप (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (सङ्गीकृत्य) इकट्ठा करके (सर्वेश्वराय) सर्वेश्वररूप (वराय) वर के लिये (स्वरूपज्ञानधारापूर्वकम्) स्वरूपज्ञान धारा-पूर्वक (ददाति) देता है। (च) और (सः) वह (शेषत्वेन) शेषत्वरूप (वाससा) वस्त्र से (आवेष्ट्य) आवेष्टन करके (शेषवृत्तिम्) शेषवृत्तिरूप (माङ्गल्यसूत्रम्) माङ्गल्य सूत्र को (बध्वा) बाँधकर (रूपनामभिः) रूप और नामरूप (आभरणैः) भूषणों से (प्रसाध्य) प्रकर्षरूप से साधन करके (हस्तम्) हाथ को (गृहीत्वा) ग्रहणकर (गत्वा) जाकर के (अध्यवसाये) अध्यावसायरूप (आसने) आसन पर (उपवेश्य) बैठाकर (प्रापकज्ञानाग्निम्) प्रापक ज्ञानाग्नि को (प्रज्वाल्य) लहका कर (इतरोपायाम्) इतरोपायरूप (समिधम्) लकड़ी को (प्रक्षिप्य) उस ज्ञानाग्नि में डालकर (सिद्धोपायस्वीकारम्) सिद्धोपाय के स्वीकाररूप (प्रधानाहुतिम्) प्रधान आहुति को (हुत्वा) हवनकर (मूलमन्त्रेण) मूलमन्त्र से (जपादिहोमम्) जपादि होम को (कृत्वा) करके (शास्त्राणि) शास्त्ररूप (लाजाः) लावा को (प्रक्षिप्य) फेंककर (सम्बन्धज्ञानेन) सम्बन्ध ज्ञानरूप (पूर्णाहुत्या) पूर्णाहुति से (प्राप्तिप्रतिबन्धकानि) प्राप्ति के प्रतिबन्धकों को (निःशेषम्) अच्छे प्रकार से (विनाश्य) विनाशकर (निर्भरत्वानुसन्धानम्) निर्भरत्वानुसन्धान को (कारयति) करवाता है। (पूर्वाचार्य्यान्) पूर्वाचार्य्यरूप (बन्धून्) बन्धुओं को (पुरस्कृत्य) आगे करके (मातापितरौ) माँ और बाप ये दोनों (सह) एक साथ में (स्थित्वा) रहकर (अमुम्) इसको (अर्पयतः) अर्पण करते हैं। और (वृद्धैः) वृद्ध (दिव्यसूरिभिः) दिव्यसूरि पराङ्कुश मुनि आदिकों के साथ (योजयतः) संयोग कराते हैं। (च) और (वात्सल्यादिगुणयुक्तः) वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प आदि दिव्यगुणों से युक्त (ईश्वरः) सर्वेश्वर (तादृशाकारः) वैसा आकार (यथा) जैसे (न) नहीं (नश्येत्) नाश होवे (तथा) वैसे (आलिङ्ग्य) आलिङ्गन करके (अरक्षत्) रक्षा किया है। (त्वरायाम्) त्वरा होनेपर (परिपाके) परिपाक (उत्पन्ने) उत्पन्न होपे पर (स्वयम्) अपने से (प्रधानमहिष्या) प्रधानकृताभिषेका रानी के (सह) साथ (अन्तःपुरम्) अन्तःपुरमें (प्रवेश्य) प्रवेश कराकर (अनन्तमहानन्दयुक्तैः) नहीं अन्त होनेवाले बड़े भारी आनन्द से युक्त (दिव्यसूरिभिः) दिव्यसूरिरूप (बन्धुभिः) बन्धुओं से (मिलित्वा) मिलकर (हर्षप्रकर्षेण) हर्ष के प्रकर्ष से (आदृत्य) आदरकर (प्रीतिप्रवाहम्) प्रीति के प्रवाहरूप (शयनम्) पलङ्कपर (आरोप्य) आरोपण करके (विषयवैलक्षण्येन) विषय की विलक्षणता से और (भोगोपकरणेन) भोगके उपकरण छाता, चँवर आदि वस्तुओं से (युक्तः) संयुक्त श्रीमन्नारायण भगवान् (सकलविधकैङ्कर्य्येण) सब प्रकार के कैङ्कर्य्य से और (अनुभवेन) अनुभव से (योजयति) संयोग कराते हैं (च) और (अयम्) यह आत्मा (आनन्दप्रवाहे) आनन्द के प्रवाह में (निमग्नः) निमग्न (नमः) नमः और (जितम्) जितम् (इति) इस (मङ्गलम्) मङ्गल को (इति) इस

प्रकार से (वदति) कहता है। इस तीन सौ सत्तावनवीं वार्ता में एक सौ चौबीस पद हैं। इत्याचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३५७॥

अब दिव्य सूरियों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दिव्यसूरिगदिता वार्ता ॥

मू०– भगवद्विषयः सर्वकालेषु-अतृप्तामृतं पञ्चविषय-पञ्चकर्मेन्द्रियपञ्चज्ञानेन्द्रियपञ्चभूतमनोऽहंकारमहत्प्रकृतिभि-श्चतुर्विंशतितत्त्वैर्हृदयरूपं मन्दिरं निर्माय माधवं दैवतं षड्विंशं प्रतिष्ठाप्य, अनन्यार्हशेषः, अनन्यशरणः, अनन्य-भोग्यः, ज्ञानानन्दी पञ्चविंशक आत्मा-आराधनं करोति, आराधकानां परत्वं दुष्प्रापं व्यूहो जङ्घालानां प्राप्यः, अवतारस्तत्कालवर्तिनामर्चावतारः, अभिमतदिव्यदेशेषु सदा वसतामस्य सर्वदा सर्वत्र-आश्रयणीयः, अन्तर्यामी एव-मुद्दिश्यैवात्र तिष्ठति, अन्येभ्यः स्थानेभ्यः सोऽतिप्रावण्य-मत्रैव करोति, एवं महिषीभिः सर्वपरिकरैः सह-एतन्मन्दिरे वर्तमानस्यानेनाराधकेन क्रियमाण आराधनप्रकार उच्यते, "ब्राह्मे मुहूर्त्ते-उत्थाय चिन्तयेत्" इत्युक्तप्रकारेण सत्त्वो-त्तरकाल उत्थाय-आत्मनो हितमित्युक्ते ज्ञानघट्टे, अवगाह्य तत्रैवोदकं गृहीत्वा गुरुपरम्परानुसन्धानेन मन्दिरं प्रविश्य, अन्यशेषत्वनिवृत्तिपूर्विकानन्यार्हशेषत्वानुसन्धानेन प्रणम्य, अनन्यशरणत्वानुसन्धानं दीपं प्रज्वाल्य, ज्ञानं दीपं प्रज्वा-ल्येति प्रमाणम्, अनन्यभोग्यत्वानुसन्धानेन संमार्जन्या प्रयोजनान्तराणि संमार्ज्य सम्बन्धानुसन्धानेन पादौ

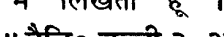
९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३
प्रक्षाल्य प्रीत्या स्नापयित्वा वाचिकस्तोत्रं पीताम्बरं दत्वा,
१०४ १०५ १०६ १०७ १०८
मानसानुसन्धानं चन्दनं समर्प्य, अञ्जलिरूपमाभरणं
१०९ ११० १११ ११२
समर्प्य मानसानुसन्धाने धूपदीपादीनि समर्प्य, भक्ति-
११३ ११४ ११५ ११६
प्रेरितानि नृत्यगीतवाद्यानि कृत्वा कर्तृत्वनिवृत्तिपूर्वकानु-
११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२
सन्धानेन ''अहमन्नम्'' इत्युक्तप्रकारेण भोग्यभूतमात्मान-
१२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३०
मन्नं निवेद्य ''अहमन्नादम्'' इत्युक्तप्रकारेण स्वयमपि
१३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८
भुक्त्वा, भगवतश्चरणौ प्रणमन्तः सर्वदा मम मनसि तिष्ठन्त-
१३९ १४० १४१ १४२
इत्युक्तप्रकारेण-अज्ञातज्ञापकाचार्य्ये कृतज्ञत्वानुसन्धानेन
१४३ १४४
कालं क्षिपति ॥

अर्थ–(भगवद्विषयः) भगवद्विषय (सर्वकालेषु) भूत १, भविष्य २, वर्तमान ३, इन तीनों कालों में (अतृप्तामृतम्) नहीं तृप्त होने योग्य अमृत है। और (पञ्चविषयपञ्चकर्मेन्द्रियपञ्चज्ञानेन्द्रिय- पञ्चभूतमनोऽहङ्कारमहत्प्रकृतिभिः) पाँच विषय शब्द १, रूप २, रस ३, गन्ध ४, स्पर्श ५, और पाँच कर्मेन्द्रिय, वाक् १, पाणि २, पाद ३, पायु ४, उपस्थ ५, तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र १, चक्षुः २, घ्राण ३, रसना ४, त्वचा ५, और पाँच महाभूत पृथ्वी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५, तथा मन १, अहङ्कार २, महत्तत्व ३, और प्रकृति ४, (चतुर्विंशतितत्वैः) इन पूर्वोक्त चौबीस तत्त्वों से (हृदयरूपम्) हृदयरूप (मन्दिरम्) मन्दिर को (निर्माय) बनाकर (षड्विंशम्) छबीसवें (माधवम्) श्रीमन्नारायण (दैवतम्) देवको (प्रतिष्ठाप्य) प्रतिष्ठा करके (अनन्यार्हशेषः) अनन्यार्ह शेष १, तथा (अनन्यशरणः) अनन्य शरण २, और (अनन्यभोग्यः) अनन्य भोग्य ३, (ज्ञानानन्दी) ज्ञान और आनन्दवाला (पञ्चविंशकः) पच्चीसवाँ तत्व (आत्मा) जीवात्मा (आराधनम्) आराधन को (करोति) करती है। (आराधकानाम्) आराधन करनेवाले पुरुषों के (परत्वम्) परब्रह्म (दुष्प्रापम्) दुष्प्राप है। और (व्यूहः) व्यूह ब्रह्म (जङ्गमानाम्) जङ्गमों को (प्राप्यः) प्राप्य है। तथा (अवतारः) रामकृष्ण आदिक अवतार (तत्कालवर्तिनाम्) उस अवतार के समय में रहनेवाले पुरुषों के प्राप्य हैं। और (अर्चावतारः) अर्चावतार भगवान् (अभिमतदिव्यदेशेषु) अभिमत श्रीरङ्गजी आदि दिव्यदेशों में (सदा) हमेशा (वसताम्) निवास करनेवाले पुरुषों के प्राप्य हैं। (अस्य) इस जीवात्मा के (सर्वदा) हमेशा (सर्वत्र) सर्वत्र (आश्रयणीयः) आश्रयण करने योग्य (अन्तर्य्यामी) अन्तर्यामी भगवान् हैं। और

(एवम्) इस प्रकार के (उद्दिश्य) उद्देश्य करके (एव) निश्चय करके (अत्र) इस देह में (तिष्ठति) वह अन्तर्यामी भगवान् ठहरे हैं। तथा (अन्येभ्यः) अन्य (स्थानेभ्यः) स्थानों से (सः) वह अन्तर्यामी भगवान् (अतिप्रावण्यम्) अत्यन्त प्रावण्य को (अत्र) इस देह में (एव) निश्चय करके (करोति) करते हैं। और (एवम्) इसी प्रकार के (महिषीभिः) अपनी लक्ष्मी आदि महिषियों के तथा (सर्वपरिकरैः) सब सेनेश, आदिक परिकरों के (सह) साथ (एतन्मन्दिरे) इस हृदयरूप मन्दिर में (वर्तमानस्य) रहनेवाले अन्तर्यामी भगवान् के (अनेन) इस (आराधकेन) आराधना करनेवाले पुरुष से (क्रियमाणः) क्रियमाण (आराधनप्रकारः) आराधना के प्रकार को (उच्यते) कहते हैं। (ब्राह्मे) ब्राह्म (मुहूर्ते) मुहूर्त में (उत्थाय) उठकर (चिन्तयेत्) चिन्तन करे (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (सत्वोत्तरकाले) सत्वोत्तरकाल में (उत्थाय) उठकर (आत्मनः) अपनी आत्मा के (हितम्) हित को (इति) इस प्रकार के (उक्ते) कहनेपर (ज्ञानघट्टे) ज्ञानघाट में (अवगाह्य) स्नानकर (तत्र) वहाँ पर (एव) निश्चय करके (उदकम्) जल को (गृहीत्वा) लेकर (गुरुपरम्परानुसन्धानेन) गुरुपरम्परा के अनुसन्धान करके (मन्दिरम्) हृदयरूप मन्दिर में (प्रविश्य) पैठकर (अन्यशेषत्वनिवृत्तिपूर्विकानन्यार्हशेषत्वानुसन्धानेन) अन्य के शेषत्व के निवृत्तिपूर्वक अनन्यार्ह शेषत्व के अनुसन्धान करके (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम कर (अनन्यशरणात्वानुसन्धानम्) अनन्य शरणत्व के अनुसन्धानरूप (दीपम्) दीप को (प्रज्वाल्य) जलाकर (इति) इस प्रकार के (प्रमाणम्) प्रमाण है। (अनन्यभोग्यत्वानुसन्धानेन) अनन्य भोग्यत्व के अनुसन्धानरूप (सम्मार्जन्या) झाड़ूसे, (प्रयोजनान्तराणि) प्रयोजनान्तरों को (सम्मार्ज्य) अच्छे प्रकार से साफ करके (सम्बन्धानुसन्धानेन) सम्बन्ध के अनुसन्धान से (पादौ) दोनों श्रीचरणों को (प्रक्षाल्य) धो करके (प्रीत्या) प्रीति से (स्नापयित्वा) स्नान कराकर (वाचिकस्तोत्रम्) वाचिकस्तोत्ररूप (पीताम्बरम्) पीताम्बर को (दत्वा) देकर (मानसानुसन्धानम्) मानसानुसन्धानरूप (चन्दनम्) चन्दन को (समर्प्य) समर्पणकर (अञ्जलिरूपम्) अञ्जलिरूप (आभरणम्) भूषण को (समर्प्य) समर्पणकर (मानसानुसन्धाने) मानसानुसन्धान में (धूपदीपादीनि) धूप, दीप आदि वस्तुओं को (समर्प्य) समर्पण कर (भक्तिप्रेरितानि) भक्ति से प्रेरित (नृत्यगीतवाद्यानि) नाच, गाना, बाजा को (कृत्वा) करके (कर्तृत्वनिवृत्तिपूर्वकानुसन्धानेन) कर्तृत्वनिवृत्तिपूर्वक अनुसन्धान से (अहम्) मैं (अन्नम्) अन्न हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (भोग्यभूतम्) भोग्य भये हुए (आत्मानम्) आत्मारूप (अन्नम्) अन्न को (निवेद्य) निवेदनकर (अहम्) मैं (अन्नादः) अन्न को भक्षण करनेवाला हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (स्वयम्) अपने (अपि) भी (भुक्त्वा) भोजनकर

(भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (चरणौ) दोनों श्रीचरणों को (प्रणमन्तः) साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए और (सर्वदा) हमेशा (मम) मेरे (मनसि) मन में (तिष्ठन्तः) ठहरते हुए (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (अज्ञातज्ञापकाचार्य्ये) अज्ञाततत्त्व को जनानेवाले आचार्य के विषय में (कृतज्ञत्वानुसन्धानेन) कृतज्ञत्व को अनुसन्धान करने से (कालम्) काल को (क्षिपति) बिताता है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि भक्ति कितने प्रकार की है और कौन-कौन सी है ? इस प्रश्न का उत्तर हारीतस्मृति में लिखा है कि **॥ शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं स्मरणं हरेः ॥ तन्नामकीर्तनं चैव तन्निवेदितभोजनम् ॥ तत्पादवन्दनं चैव तत्पादाम्बुनिषेवणम् ॥ एकादश्युपवासश्च तुलस्या अर्चनं हरेः ॥ तदीयानामर्चनं च भक्तिर्नवविधा स्मृता ॥ हारीत स्मृ० ॥** शङ्ख, चक्र ऊर्ध्वपुण्ड्र आदिको धारण करना १, तथा हरिका स्मरण करना २, और विष्णु का नाम सङ्कीर्तन करना ३, तथा विष्णु का भोग लगाया हुआ भोजन करना ४, और श्रीहरि के चरणारविन्दों की वन्दना करना ५, तथा श्रीविष्णु के चरणोदक को सेवन करना ६, और एकादशी को उपवास करना तथा ७, तुलसी से श्रीहरिकी पूजा करना ८, और भागवतों की पूजा करना ९, यह नव प्रकार की भक्ति कही गई है और श्रीमद्भागवत में तो इस प्रकार से लिखा है कि— **॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ श्रीमद्भा० स्कं० ७, अ० ५, श्लो० २३ ॥** श्रीविष्णु की कथा सुनना १, और श्रीहरि का नाम सङ्कीर्तन करना २, तथा श्रीविष्णुका स्मरण करना ३, और श्रीहरि के श्रीपाद सेवन करना ४, तथा विष्णुकी पूजा करना ५, और श्रीहरि की वन्दना करना ६, तथा श्रीमन्नारायण की सेवा करना ७, और श्रीविष्णु की मित्रता करना ८, तथा श्रीहरि में आत्मा को निवेदन करना ९, यही नव प्रकार की भक्ति है ॥२३॥ और पद्मपुराण में तो सोलह प्रकार की भक्ति कही गई है **॥ आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कनं हरेः। धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः ॥ पद्मपु० उत्तर खं० ६, अ० २२४, श्लो० २३ ॥ कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पादसेवनम् ॥ तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनम् ॥२४॥ तदीयानां च सेवा च द्वादशी व्रतनिष्ठितम्। तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥२५॥ भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये ॥२६॥** पहले वैष्णव होना १, तथा शङ्ख चक्र धारण करना २, और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना ३, तथा चकार से भगवत् सम्बन्धी नाम रखवाना ४, और मूलमन्त्र द्वयमन्त्र तथा चरमश्लोक को ग्रहण करना ५, ॥२३॥ श्रीविष्णुका नाम सङ्कीर्तन करना ६, और श्रीहरि के चरित्र को सुनना ७, तथा चकार से विष्णु के दिव्यमङ्गल विग्रह को चिन्तन करना ८, और श्रीहरि की स्तुति करना ९, तथा श्रीविष्णु के श्रीपाद सेवन करना १०, और श्रीहरि के चरणोदक को सेवन करना ११, तथा विष्णु का भोग लगाया

हुआ भोजन करना १२, और चकार से श्रीहरि में आत्मा को निवेदन करना १३, ।।२४।। और भागवतों की सेवा करना १४, तथा द्वादशी व्रत में निष्ठा रखना १५, और तुलसी रोपना १६, देवों के देव शार्ङ्गधनुषधारण करनेवाले श्रीविष्णु भगवान् की ।।२५।। सोलह प्रकार की यह भक्ति संसार के बन्धन को छुड़ाने के लिये है ।।२६।। अब इस वार्ता में जो ॥ **अहमन्नम्** ॥ **तैत्तिरीयोपनि० भृगुव० ३, अनुवा० १०, श्रु० ६** ॥ यह प्रतीक है इससे इसको यहाँपर मैं लिखता हूँ ॥ **अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः ॥ तैत्ति० वल्ली ३, अनु० १०, श्रु० ६** ॥ मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ। मैं अन्न को भोजन करनेवाला हूँ, मैं अन्नको भोजन करनेवाला हूँ, मैं अन्नको भोजन करनेवाला हूँ ।।६।।शमिति।।



मू०– एतेषु[१] चतुर्विंशतितत्त्वेषु[२] पञ्च[३] ग्रामण्यः[४] भवन्ति[५], तैरसङ्गतानामिदमैश्वर्य्यं[६] तैः[७] सङ्गताः[८]-अपहृतनेत्रा[९] भवन्ति[१०], दिव्यसूरयः[११] ज्ञानकालुष्यदशायां[१२] ज्ञानवृद्धिदशायामहङ्कारा-धिक्यदशायामनुवर्तनदशायां[१३] च[१४] मिथुनव्यतिरिक्तं[१५] न जानन्ति[१६], ज्ञानकालुष्यदशायां[१७] कलुषितचित्तः[१८] लक्ष्मीकान्त-इति[१९], आह्वयामीति[२०] वदन्ति[२१], ज्ञानवृद्धिदशायां[२२] लक्ष्मीकान्तस्य चतुर्मुखकपर्दिनोः[२३] शेषिणः[२४] स्वभावं[२५] के[२६] न[२७] जानन्तीति[२८] वदन्ति[२९], अहङ्काराधिक्यदशायां[३०] लक्ष्मीकान्तं[३१] मस्तके[३२] धृत्वतः[३३] किं[३४] वा[३५] पापं[३६] भवेदिति[३७] वदन्ति[३८], अनुवर्तनदशायां[३९] कैङ्कर्य्यं-कुर्वन्ति[४०] लक्ष्मीकान्तस्यैवेति[४१] वदन्ति[४२] ॥३५८॥

अर्थ–(एतेषु) इन पूर्वोक्त (चतुर्विंशतितत्त्वेषु) चौबीस तत्त्वों में (पञ्च) पाँच श्रोत्र १, चक्षु २, घ्राण ३, रसना ४, त्वचा ५, ये ज्ञानेन्द्रियाँ (ग्रामण्यः) ग्रामणी (भवन्ति) होते हैं। (तैः) उन ज्ञानेन्द्रियों से (असङ्गतानाम्) नहीं सङ्गतों के (इदम्) यह (ऐश्वर्य्यम्) ऐश्वर्य है। और (तैः) उन सबों से (सङ्गताः) सङ्गत पुरुष (अपहृतनेत्रा) बिना आँख के (भवन्ति) होते हैं। और (दिव्यसूरयः) दिव्यसूरि सब (ज्ञानकालुष्यदशायाम्) ज्ञान की कलुषता दशा में १, और (ज्ञानवृद्धिदशायाम्) ज्ञानकी वृद्धि दशा में २, तथा (अहङ्काराधिक्यदशायाम्) अहङ्कार की अधिकता दशा में ३,

(च) और (अनुवर्तनदशायाम्) अनुवर्तन दशा में ४, (मिथुनव्यतिरिक्तम्) दोनों लक्ष्मी और नारायण से अन्य को (न) नहीं (जानन्ति) जानते हैं। (ज्ञानकालुष्यदशायाम्) ज्ञानकी कलुषता दशा में (कलुषितचित्तः) कलुषित चित्तवाला मैं (लक्ष्मीकान्त) हे लक्ष्मीकान्त ! (इति) इस प्रकार से (आह्वयामि) बुलाता हूँ (इति) इस प्रकार के (वदन्ति) कहते हैं। और (ज्ञानवृद्धिदशायाम्) ज्ञान की वृद्धि दशा में (लक्ष्मीकान्तस्य) लक्ष्मीकान्त नारायण के और (चतुर्मुखकपर्दिनोः) चार मुखवाले ब्रह्मा के तथा कपर्दी शिव के (शेषिणः) शेषी के (स्वभावम्) स्वभाव को (के) कौनसे पुरुष (न) नहीं (जानन्ति) जानते हैं (इति) इस प्रकार के (वदन्ति) कहते हैं। तथा (अहङ्काराधिक्यदशायाम्) अहङ्कार की अधिकता दशा में (लक्ष्मीकान्तम्) लक्ष्मीकान्त भगवान् को (मस्तके) मस्तकपर (धृतवतः) धारण करनेवालेको (वा) अथवा (किम्) कौन सा (पापम्) पाप (भवेत्) होगा, (इति) इस प्रकार के (वदन्ति) कहते हैं। और (अनुवर्तनदशायाम्) अनुवर्तन दशा में (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य को (कुर्वन्ति) भक्तजन करते हैं (लक्ष्मीकान्तस्य) लक्ष्मीकान्त भगवान् के (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकार के (वदन्ति) दिव्यसूरि सब कहते हैं। इस तीन सौ अट्ठावनवीं वार्ता में दो सौ पद हैं। इति दिव्यसूरिगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥३५८॥



अब परकाल स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

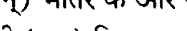
॥ अथ परकालवार्ता ॥

मू०–ईश्वरः[१] परकालं[२] स्वीकर्तुं[३] कं[४] उपायं[५] इति[६] विचार्य्य[७], अस्य[८] विषयान्तरप्रवणत्वात्[९] शास्त्रं[१०] न[११] जीवति[१२], अयं[१३] विषयान्तरप्रस्तावे[१४] विलक्षणाविलक्षणविषयान्[१५] न[१६] निरूपयति[१७], अन्तर्बहिराकारान्[१८] न[१९] जानाति[२०], इदमेवावलंबनमात्मानं[२१] विग्रहविषयं[२२] कृत्वा[२३] अङ्गीकुर्य्यामिति[२४] निश्चित्य[२५] स्वसौन्दर्य्यं[२६] प्रादर्शयत्[२७], स[२८] च[२९] तत्रातिप्रवणः[३०] सन्[३१] अर्चावतारव्यतिरिक्तं[३२] किमपि[३३] नाजानात्[३४] ॥३५९॥

॥ परकालस्तुतिः ॥

अर्थ– प्रत्यक्षमगमत्तस्य परकालस्य सादरम्।
तदा भगवतस्तस्य दिव्यमङ्गलविग्रहम् ॥२५४॥

(ईश्वरः) सर्वेश्वर भगवान् (परकालम्) परकाल स्वामीजी को (स्वीकर्तुम्) स्वीकार करने के लिये (कः) कौन सा (उपायः) उपाय है (इति) इस प्रकार के (विचार्य्य) विचार कर (अस्य) इसके (विषयान्तरप्रवणत्वात्) विषयान्तर में आसक्त होने से (शास्त्रम्) शास्त्र (न) नहीं (जीवति) जीता है। और (अयम्) यह (विषयान्तरप्रस्तावे) विषयान्तर के प्रस्ताव में (विलक्षणाविलक्षणविषयान्) स्वस्त्री और परस्त्री रूप विलक्षण तथा अविलक्षण विषयों को (न) नहीं (निरूपयति) निरूपण करता है। तथा (अन्तर्बहिराकारान्) भीतर के और बाहर के आकारों को (न) नहीं (जानाति) जानता है। (इदम्) यही (एव) निश्चय करके (अवलम्बनम्) अवलम्बन है कि (आत्मानम्) अपनी आत्मा को (विग्रहविषयम्) मङ्गलमय विग्रह के विषय (कृत्वा) करके (अङ्गीकुर्य्याम्) स्वीकार करूँगा (इति) इस प्रकार के (निश्चित्य) निश्चय करके (स्वसौन्दर्य्यम्) अपनी सुन्दरता को (प्रादर्शयत्) दिखाये। (च) और (सः) वह परकाल स्वामी (तत्र) उस भगवान् के मङ्गलमय विग्रह के सौन्दर्य्य में (अतिप्रवणः) अत्यन्त आसक्त (सन्) होते हुए (अर्चावतारव्यतिरिक्तम्) अर्चावतार भगवान् से अन्य (किम्) कुछ (अपि) भी (न) नहीं (अजानात्) जाने। इस तीन सौ उनसठवीं वार्ता में ईकतालीस पद हैं। इति परकालस्वामीवार्ताव्याख्यानम् ॥३५९॥



अब पराङ्कुशमुनि स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पराङ्कुशमुनिवार्ता ॥

मू०–ईश्वरः[१] पराङ्कुशं[२] स्वरूपं[३] प्रादर्श्याङ्गीचकार[४] तस्य[५] सर्वं[६] परत्वे[७], अस्य[८] सर्वमर्चावतारे[९] तथाहि[१०] स[११] नमस्करोति[१२] कृष्णस्य[१३] परव्योम[१४]-अयं[१५] नमस्करोति[१६], कृष्णपुरं[१७] स[१८] दूतं[१९] प्रेषयति[२०], परमपदम्[२१] अयंदूतं[२२] प्रेषयति[२३], कृष्णपुरं[२४] स[२५] मडल्[२६] गृह्णाति[२७], परमाकाशस्थस्य[२८] नित्यसूर्य्युपकारकस्यायं[२९] मडल्[३०] गृह्णाति[३१], संपत्समृद्धकृष्णपुरस्थस्य[३२] स[३३] हस्ताभरणं[३४] त्यजति[३५], परमपदस्थस्य-अयं[३६] हस्ताभरणं[३७] त्यजति[३८], कृष्णपुरस्थस्य[३९] देवनायकस्य[४०] स[४१] चिन्तयति[४२], महावैकुण्ठं[४३] द्रष्टुम्[४४] अयं[४५] चिन्तयति[४६], कृष्णपुरनमस्कृतं[४७] समुद्रवर्णं[४८] स[४९] आद्रियते[५०],

निरवधिकमहानन्दयुक्तै र्नित्यसूरिभिः सङ्गममयमाद्रियते, कृष्णपुरस्थैः सङ्गमं तस्य ज्ञानप्रदो वराहरूप्युपकारक अस्य ज्ञानप्रदो वै पल्लालिमाणनवालः-तस्य शेषी जगत्कारणवस्तु-अस्य शेषी-अर्चावतारः, तस्योपायः श्रीदिव्यसूरिनिर्वाकः-अस्योपायः सिद्धाश्रमस्थः ॥३६०॥

॥ पराङ्कुशमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ– पद्मासनोपविष्टं परपदयुगले निविष्टचैतन्यम् ।
परतत्त्वबोधमुद्रं परमाचार्य्यं पराङ्कुशं वन्दे ॥२५५॥

(ईश्वरः) सर्वेश्वर भगवान् ने (पराङ्कुशम्) पराङ्कुशमुनि स्वामीजी को (स्वरूपम्) स्वरूप को (प्रादर्श्य) अच्छे प्रकार से दिखलाकर (अङ्गीचकार) स्वीकार किया है। (तस्य) उस महानुभाव के (सर्वम्) सब कुछ (परत्वे) परब्रह्म में है और (अस्य) इस महानुभाव का (सर्वम्) सब कुछ (अर्चावतारे) अर्चावतार भगवान् में है (तथाहि) उसी को दिखाते हैं कि (सः) वह (कृष्णस्य) श्रीकृष्ण भगवान् के (परव्योम) परव्योम को (नमस्करोति) नमस्कार करते हैं। और (अयम्) यह (कृष्णपुरम्) कृष्णपुर को (नमस्करोति) नमस्कार करते हैं। (सः) वह (दूतम्) दूतको (परमपदम्) परम पद में (प्रेषयति) भेजते हैं। और (अयम्) यह (दूतम्) दूत को (कृष्णपुरम्) कृष्णपुर में (प्रेषयति) भेजते हैं। (सः) वह (परमाकाशस्यस्य) परम आकाश में स्थित (नित्यसूर्य्युपकारकस्य) नित्यसूरियों के उपकार के (मडल्) मडल् को (गृह्णाति) ग्रहण करते हैं। और (अयम्) यह (सम्पत्समृद्धकृष्णपुरस्थस्य) सम्पत्ति से बढ़े हुए कृष्णपुर में स्थित के (मडल्) मडल् को (गृह्णाति) ग्रहण करते हैं। (सः) वह (परमपदस्थस्य) परमपद में स्थित के (हस्ताभरणम्) हाथ के भूषण को (त्यजति) त्याग करते हैं। और (अयम्) यह (कृष्णपुरस्थस्य) कृष्णपुर में स्थित के (हस्ताभरणम्) हाथ के भूषण को (त्यजति) त्याग करते हैं। (सः) वह (देवनायकस्य) देव नायक भगवान् के (महावैकुण्ठम्) महावैकुण्ठ को (द्रष्टुम्) देखने के लिये (चिन्तयति) चिन्तन करते हैं। और (अयम्) यह (कृष्णपुरनमस्कृतम्) कृष्णपुर में नमस्कृत (समुद्रवर्णम्) समुद्रवर्ण को (चिन्तयति) चिन्तन करते हैं। (सः) वह (निरवधिकमहानन्दयुक्तैः) अवधिरहित महान् आनन्द से युक्त (नित्यसूरिभिः) नित्यसूरियों से (सङ्गमम्) समागम को (आद्रियते) आदर करते हैं। और (अयम्) यह (कृष्णपुरस्थैः) कृष्णपुर में स्थित जनों से (सङ्गमम्) समागम को (आद्रियते)

आदर करते हैं। (तस्य) उसके (ज्ञानप्रदः) ज्ञान को देनेवाले (वराहरूपी) श्रीवराहरूपवाले (उपकारकः) उपकारक हैं। और (अस्य) इसके (ज्ञानप्रदः) ज्ञान को देनेवाले (वै) निश्चय करके (पल्लालिमाणनवालः) पल्लालिमाणनवाल स्वामीजी हैं। (तस्य) उसके (शेषी) शेषी (जगत्कारणवस्तु) संसार का कारण वस्तु है। और (अस्य) इसका (शेषी) शेषी (अर्चावतारः) अर्चावतार भगवान् हैं। (तस्य) उसका (उपायः) उपाय (श्रीदिव्यसूरिनिर्वाहकः) श्रीदिव्य सूरि के निर्वाहक हैं। और (अस्य) इसका (उपायः) उपाय (सिद्धाश्रमस्थः) सिद्धाश्रम में रहनेवाले हैं। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि दूत का लक्षण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर मनुस्मृति में लिखा है कि ॥ **दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्। इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्** ॥ मनु० अ० ७, श्लो० ६३ ॥ दृष्ट और अदृष्ट अर्थ के शास्त्र को जाननेवाला और अभिप्रायसूचक वचन स्वर आदि को तथा देह के रूप को और हाथ आदिकी चेष्टा को जाननेवाला तथा पवित्र और कार्य करने में समर्थ तथा कुलीन को दूत करे ॥६३॥ इस तीन सौ साठवीं वार्ता में ब्यासी पद हैं। इति पराङ्कुशमुनिवार्ताव्याख्यानम् ॥३६०॥

॥ अथ नाथमुन्युक्ता वार्ता ॥

मू०–चरणौ[१] शेषी[२], उपायः[३], उपेयः[४], बाधकः[५], सर्वरक्षक-श्च[६], तथाहि[७] "दुःखनिवर्तकचरणावाश्रये[८]"[९] त्युक्त्वाच्छेषित्व-मुक्तम्[१०], "तव[११] चरणावेवोपाय[१२]"[१३] इत्युक्त्वादुपायत्वमुक्तम्[१४], "स्वामिनश्चरणौ[१५] ममालङ्कार[१६]" इत्युक्त्वादुपेयत्वमुक्तम्[१७], "तव[१८] चरणाभ्यां[१९] नाशितवान्[२०]" इत्युक्त्वाद्बाधकत्वमुक्तम्[२१], "आगच्छच्छकटनाशकपाद[२२]" इत्युक्त्वात्सर्वरक्षकत्वमुक्तम्[२३], एवं दिव्यमङ्गलविग्रहश्च[२४] रुचिजनकः[२५], उपायः[२६], उपेयः[२७], शेषी[२८], बाधकश्च[२९] भवति[३०], एवमधरः[३१], धारकः[३२], शेषी[३३], प्राप्यः[३४], भोग्यो-बाधकश्च[३५] भवति[३६], एवं नेत्रं रक्षकं[३७] शेषी[३८], उपायः[३९], उपेयं[४०], बाधकं[४१] च[४२], एवं श्रीनाम[४३] पावनं[४४] धारकं[४५] भोग्यं[४६] बाधकं[४७] च[४८] श्रीकिरीट-मपि[४९] पावनं[५०] शेषी[५१] रक्षकं[५२] भोग्यं[५३] बाधकं[५४] च[५५], तस्य[५६] स्पृहणीय-

८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६
मात्मवस्तु कथं भवति, मया किं कृतमेकेनाहङ्कारेण किं
९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३
कृतं गोष्पदे वर्षणे, अल्पजन्तुः पिबति, वीराणतटाके वर्षणे
१०४ १०५ १०६ १०७ १०८
लोक उज्जीवतीति नाथमुन्युक्ता वार्ता ॥३६१॥

॥ नाथमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ– कलौ युगे गतेऽब्दानां शोभकृन्नामके ततः ।
संवत्सरे ज्येष्ठमासे राकायां मित्रभे बुधे ॥२५६॥
अंशेन गजवक्रस्य विष्वक्सेनस्य मन्त्रिणः ।
जातो नाथमुनिस्तस्य विप्रस्य सुमहायशाः ॥२५७॥

(चरणौ) श्रीमन्नारायण के युगल चरणारविन्द (शेषी) शेषी तथा (उपायः) उपाय और (उपेयः) उपेय तथा (बाधकः) बाधक (च) और (सर्वरक्षकः) सर्वरक्षक है। (तथाहि) उसी को दिखाते हैं कि (दुःखनिवर्तकचरणौ) दुख को दूर करनेवाले श्रीमन्नारायण भगवान् के युगल चरणारविन्द को (आश्रय) तुम आश्रयण करो (इति) इस प्रकार के (उक्तत्वात्) कहने से (शेषित्वम्) चरण शेषित्व (उक्तम्) कहा गया है। और (तव) आपके (चरणौ) दोनों चरणारविन्द (एव) निश्चय करके (उपायः) उपाय है (इति) इस प्रकार के (उक्तत्वात्) कहने से (उपायत्वम्) चरण उपायत्व (उक्तम्) कहा गया है। तथा (स्वामिनः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (चरणौ) युगल चरणारविन्द (मम) मेरा (अलङ्कारः) भूषण है (इति) इस प्रकार के (उक्तत्वात्) कहने से (उपेयत्वम्) चरण उपेयत्व (उक्तम्) कहा गया है। और (तव) आपके (चरणाभ्याम्) दोनों श्रीचरणों से (नाशितवान्) मैं नाशा गया हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्तत्वात्) कहने से (बाधकत्वम्) चरण बाधकत्व (उक्तम्) कहा गया है। और (शकटनाशकपादः) शकट को नाश करनेवाला पैर (आगच्छत्) आ गया है (इति) इस प्रकार के (उक्तत्वात्) कहने से (सर्वरक्षकत्वम्) चरण सर्वरक्षकत्व (उक्तम्) कहा गया है। (च) और (एवम्) इसी प्रकार के (दिव्यमङ्गलविग्रहः) भगवान् का दिव्यमङ्गल विग्रह भी (रुचिजनकः) प्रीति का जनक तथा (उपायः) उपाय और (उपेयः) उपेय तथा (शेषी) शेषी (च) और (बाधकः) बाधक (भवति) होता है। (एवम्) इसी प्रकार के (अधरः) श्रीमन्नारायण भगवान् का अधर (धारकः) धारक तथा (शेषी) शेषी और (उपायः) उपाय तथा (उपेयम्) उपेय (च) और (बाधकम्) बाधक होता है। और (एवम्) इसी प्रकार से (नेत्रम्) श्रीमन्नारायण भगवान् का नेत्र (रक्षकम्) रक्षक तथा (शेषी) शेषी और (उपायः) उपाय तथा (उपेयम्)

उपेय (च) और (बाधकम्) बाधक होता है तथा (एवम्) इसी प्रकार से (श्रीनाम) भगवान् के श्रीनाम (पावनम्) पवित्र और (धारकम्) धारक तथा (भोग्यम्) भोग्य (च) और (बाधकम्) बाधक होता है। और (श्रीकिरीटम्) श्रीमन्नारायण भगवान् के श्रीकिरीट (अपि) भी (पावनम्) पवित्र तथा (शेषी) शेषी और (रक्षकम्) रक्षक तथा (भोग्यम्) भोग्य (च) और (बाधकम्) बाधक होता है। तथा (तस्य) उस श्रीमन्नारायण भगवान् की (स्पृहणीयम्) स्पृहा करने योग्य (आत्मवस्तु) आत्म वस्तु (कथम्) कैसे (भवति) होती है। (मया) मैंने (किम्) क्या (कृतम्) किया। और (एकेन) एक (अहङ्कारेण) अहङ्कार ने (किम्) क्या (कृतम्) किया। तथा (गोष्पदे) गौ के खुर में (वर्षणे) वर्षा होने पर (अल्पजन्तुः) छोटा जन्तु (पिबति) जल को पीता है। और (वीराणतटाके) वीराणतटाक में (वर्षणे) वर्षा होने पर (लोकः) लोक (उज्जीवति) उज्जीवित होता है (इति) इस प्रकार की (नाथमुन्युक्ता) नाथमुनि स्वामीजी की कही हुई (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ इकसठवीं वार्ता में एक सौ आठ पद हैं। इति नाथमुन्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३६१॥

अब नाथ मुनिस्वामीजी की वार्त्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ नाथमुन्युक्ता वार्ता ॥

मू०–नाथमुनि[१] रम[२] मुमर्थं[३] पुण्डरीकाक्षाय[४] प्राह[५] ॥३६२॥

॥ नाथमुनिस्तुतिः ॥

अर्थ– स तु नाथमुनिः श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः।
तेजस्वी ज्ञानसम्पन्नो विष्णुभक्तिपरायणः ॥२५८॥

(नाथमुनिः) नाथ मुनि स्वामीजी ने (अमुम्) इस (अर्थम्) अर्थ को (पुण्डरीकाक्षाय) पुण्डरीकाक्ष स्वामीजी के लिये (प्राह) कहा है। "प्राह" यहाँ पर **॥ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥ व्या० अ० ३, पा० ६, सू० ८४ ॥** इस सूत्र से आह आदेश हुआ है। इस वार्ता में पाँच पद हैं। इति नाथमुन्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३६२॥

अब पुण्डरीकाक्ष स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ पुण्डरीकाक्षोक्ता वार्ता ॥

मू०–पुण्डरीकाक्षो[१] राममिश्राय[२] प्राह[३] ॥३६३॥

॥ पुण्डरीकाक्षस्तुतिः ॥

अर्थ– तत्रावतारं विदधे विष्वक्सेनांशतो महान् ।
चैत्रमासे पूर्णिमायां पद्माक्षश्चाथ चित्रभे ॥२५९॥

(पुण्डरीकाक्षः) पुण्डरीकाक्ष स्वामीजी ने (राममिश्राय) राममिश्र स्वामीजी के लिये (प्राह) पूर्वोक्त अर्थ को कहा है। इस वार्ता में तीन पद हैं। इति पुण्डरीकाक्षोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३६३॥

॥ अथ राममिश्रोक्ता वार्ता ॥

मू०–[१]राममिश्रो [२]यामुनाचार्य्यस्योपहारी [३]चकार ॥३६४॥

॥ राममिश्रस्तुतिः ॥

अर्थ– श्रीराममिश्रो वेदान्तिन् कैङ्कर्य्याण्यनिशं गुरोः ।
सर्वाणि कुर्वन् सद्भक्त्या द्वादशाब्दान्व्यतिष्ठत ॥२६०॥

(राममिश्रः) राममिश्र स्वामीजी ने (यामुनाचार्य्यस्य) यामुनाचार्य्य स्वामी के (उपहारीचकार) इस अर्थ को उपहार कर दिया है। इस वार्ता में तीन पद हैं। इति राममिश्रोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३६४॥

अब यामुनाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यामुनाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–[१]अयं [२]महानुभावो [३]दर्शने [४]प्रविशति [५]चेदिति [६][७]यामुनाचार्य्यः ॥३६५॥

॥ यामुनाचार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ– निर्गत्य काञ्चीनगरात्सशिष्यः श्रीरङ्गमासाद्य स यामुनार्यः ।
रामानुजस्याभ्युदयं चिकीर्षुस्तत्स्तोत्ररत्नं प्रचकार धीरः ॥२६१॥

(अयम्) यह (महानुभावः) महानुभाव लक्ष्मणाचार्य्य (दर्शने) यदि वैष्णव दर्शन में (प्रविशति) प्रवेश करते हैं (चेत्) तो (इति) इस प्रकार के (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ पैंसठवीं वार्ता में सात पद हैं। इति

यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।३६५।।

अब रामानुजाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

।। अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ।।

मू०–अहमेकलव्य इति रामानुजः ।।३६६।।

।। रामानुजार्य्यस्तुतिः ।।

अर्थ– मालाधरवचः श्रुत्वा यतीन्द्रस्तमथाब्रवीत् ।
यामुनस्यैकलव्योहं द्रोणार्य्यस्य यथा गुरोः ।।२६२।।

(अहम्) मैं (एकलव्यः) एकलव्य हूँ (इति) इस प्रकार के (रामानुजः) रामानुजाचार्य्य स्वामीजी ने कहा है । इस वार्ता में चार पद हैं । इति रामानुजार्य्योक्त-वार्ताव्याख्यानम् ।।३६६।।

अब महापूर्ण स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

।। अथ महापूर्णोक्ता वार्ता ।।

मू०–अस्य परिपाकः-आदावेव ज्ञायते, इति महापूर्णः ।।३६७।।

।। महापूर्णस्तुतिः ।।

अर्थ– पूर्णाचार्य्यो लक्ष्मणार्य्याय सर्वान्संदिश्यार्थानाज्ञया देशिकस्य ।
चक्रे वासं कौतुकात्काञ्चिकायां हस्त्यद्रीशे भक्तिमान्देवराजे ।।२६३।।

(अस्य) इसका (परिपाकः) परिपाक (आदौ) आदि में (एव) निश्चय करके (ज्ञायते) जाना जाता है (इति) इस प्रकार के (महापूर्णः) महापूर्ण स्वामीजी ने कहा है । इस वार्ता में सात पद हैं । इति महापूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।३६७।।

अब मालाकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

।। अथ मालाकारोक्ता वार्ता ।।

मू०–अयमेकोऽवतार इति मालाकारः ।।३६८।।

॥ मालाधरस्तुतिः ॥

अर्थ– मालाधरश्च तत्तस्मै ददन्सम्यक् समास्थितः ।
अवतारं हरेर्मत्वा तदा लक्ष्मणदेशिकम् ॥२६४॥

(अयम्) यह लक्ष्मणाचार्य्य (एकः) एक (अवतारः) अवतार हैं (इति) इस प्रकार के (मालाकारः) मालाकार स्वामीजी ने कहा है । इस वार्ता में पाँच पद हैं । इति मालाकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३६८॥

अब ब्रह्मराक्षस की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ ब्रह्मराक्षसोक्ता वार्ता ॥

मू०–त्वया सह-आगतोऽयं नित्यसूरिष्वेक इति ब्रह्मराक्षसः ॥३६९॥

अर्थ–हे यादव प्रकाश ! (त्वया) तेरे (सह) साथ (आगतः) आये हुए (अयम्) ये लक्ष्मणाचार्य्य (नित्यसूरिषु) नित्य सूरियों में (एकः) एक हैं, (इति) इस प्रकार से (ब्रह्मराक्षसः) ब्रह्मराक्षसने कहा है । इस तीन सौ उनहत्तरवीं वार्ता में आठ पद हैं । इति ब्रह्मराक्षसोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३६९॥

अब दैव वारियाण्डाल् स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दैववारियाण्डाल्गदितावार्ता ॥

मू०–ममानन्तपुरः पुरत आगत इति दैववारियाण्डाल् ॥३७०॥

अर्थ–(मम) मेरे (पुरतः) आगे (अनन्तपुरः) अनन्तपुर (आगतः) आ गया है (इति) इस प्रकार के (दैववारियाण्डाल्) दैववारियाण्डाल् स्वामीजी ने कहा है । इस तीन सौ सत्तरवीं वार्ता में छः पद हैं । इति दैववारियाण्डाल् गदितवार्ता-व्याख्यानम् ॥३७०॥

अब गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोष्ठीपूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०–ग्रामं[१] गत्वा[२], आगच्छामीति[३] गोष्ठीपूर्णः[४] ॥३७१॥

अर्थ–(ग्रामम्) ग्राम (गत्वा) जाकर (आगच्छामि) आता हूँ (इति) इस प्रकार के (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में पाँच पद हैं। इति गोष्ठीपूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७१॥

❁

अब महापूर्ण स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ महापूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०–ईश्वर[१] एव[२] शरणमित्युक्तिं[३] न[४] शृणुमः[५], यामुनाचार्य्य[६] एव[७] शरणमित्युक्तिं[८] च[९] शृणुमः[१०], लोकः[११] किं[१२] करिष्यतीति[१३] महापूर्णः[१४] ॥३७२॥

अर्थ–(ईश्वरः) सर्वेश्वर (एव) निश्चय करके (शरणम्) शरण हैं (इति) इस प्रकार की (उक्तिम्) उक्ति को हम लोग (न) नहीं (शृणुमः) सुनते हैं। (च) और (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य्य स्वामीजी (एव) निश्चय करके (शरणम्) शरण हैं (इति) इस प्रकार की (उक्तिम्) उक्ति को (शृणुमः) हम सब सुनते हैं, (लोकः) संसार (किम्) क्या (करिष्यति) करेगा (इति) इस प्रकार के (महापूर्णः) महापूर्ण स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ बहत्तरवीं वार्ता में उन्नीस पद हैं। इति महापूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७२॥

❁

अब वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ वररङ्गार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–मम[१] सर्वस्वमप्यपहर्तुं[२] त्वमेतत्करोषीति[३] वररङ्गः[४] ॥३७३॥

॥ वररङ्गार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ– वररङ्गः स तं दृष्ट्वा सन्तुष्टो यतिपुङ्गवम्।
अवोचत्प्रहसन् वाक्यं यामुनाचार्यनन्दनः।
गृहीतुं मम सर्वस्वं त्वमित्थं कृतवानसि ॥२६५॥

(मम) मेरे (सर्वस्वम्) सर्वस्व को (अपि) भी (अपहर्तुम्) अपहरण करने के लिये (त्वम्) तुम (एतत्) इस कैङ्कर्य्य को (करोषि) करते हो (इति) इस प्रकार के (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में नव पद हैं। इति वररङ्गाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७३॥

अब अम्मङ्गी आल्वार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ अम्मङ्गीआल्वारगदिता वार्ता ॥

मू०– प्रसारितहस्तादपि सङ्कुचितहस्तः, शरणमिति, अम्मङ्गी ॥३७४॥

अर्थ–(प्रसारितहस्ताद्) पसारे हुए हाँथ से (अपि) भी (सङ्कुचितहस्तः) सङ्कुचित हाथ (शरणम्) शरण हैं (इति) इस प्रकार के (अम्मङ्गी) अम्मङ्गी आल्वार स्वामीजी ने कहा है। इस तीन सौ चौहतरवीं वार्ता में छः पद हैं। इति अम्मंगी–आल्वारगदितवार्ताव्याख्यानम् ॥३७४॥

अब दाशरथि स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–सर्वं बलवतां वश्यमिति दाशरथिः ॥३७५॥

अर्थ–(सर्वम्) सब (बलवताम्) बलवालों के (वश्यम्) अधीन होते हैं, (इति) इस प्रकार के (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजी ने कहा है। इस वार्ता में पाँच पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७५॥

अब भट्टारक स्वामीजी के और गोविन्दाचार्य स्वामीजी के संवाद रूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दार्य्यभट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०–भट्टार्य्यो गोविन्दार्य्यं प्रति श्रीवैष्णवलक्षणमपृच्छत्, स च सकलवेदशास्त्रनिश्चितमर्थं दर्शभिर्वार्ता-

भिरवोचत्[११], अयमर्थः[१२], अस्यादृष्टागमनं[१३] सूचयति[१४], श्रीरङ्ग-
नाथं[१५] महासमुद्रं[१६] शठकोपः[१७] कालमेघः[१८] प्रविश्य[१९] कृपामृतं[२०]
पीत्वा[२१] नाथमुनौ[२२] महामेरावववर्षत्[२३], तच्चामृतं[२४] पूर्वाचार्य्यै-
र्निर्झरैर्निःसृत्य[२५] रामानुजतटाकं[२६] प्राप्य[२७] पूर्वाचार्य्यमार्गेण[२८] निः-
सृत्य[२९] संसारकेदारं[३०] व्याप्नोति[३१], अथ[३२] कुतो[३३] दुःखसागरे[३४] निमग्नं
मनः[३५] प्रकृत्यवसाने[३६], ईश्वरचरणौ[३७] प्राप्नुहि[३८], इतीयं[३९] प्रथमा
वार्ता[४०] ॥३७६॥

अर्थ–(भट्टार्यः) भट्टारक स्वामीजी ने (गोविन्दार्य्यम्) गोविन्दाचार्य स्वामीजी के (प्रति) प्रति (श्रीवैष्णवलक्षणम्) श्रीवैष्णवों के लक्षण (अपृछत्) पूछा। (च) और (सः) उस गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी ने (सकलवेदशास्त्रनिश्चितम्) समस्त वेद और शास्त्र से निश्चय किये हुए (अर्थम्) अर्थको (दशभिः) दस (वार्ताभिः) वार्ताओं से (अवोचत्) कहा है। (अयम्) यह (अर्थः) अर्थ (अस्य) इस चेतन के (अदृष्टागमनम्) अदृष्ट के आगमन को (सूचयति) सूचित करता है। (श्रीरङ्गनाथम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् रूप (महासमुद्रम्) महासागर में (शठकोपः) श्रीशठकोप स्वामीरूप (कालमेघः) कालमेघ (प्रविश्य) प्रवेशकर (कृपामृतम्) कृपारूप अमृत को (पीत्वा) पीकर (नाथमुनौ) नाथमुनिस्वामीरूप (महामेरौ) महामेरुपर (अवर्षत्) कृपामृत वरसाये हैं। (च) और (तत्) वह (अमृतम्) अमृत (पूर्वाचार्य्यैः) पद्माक्ष स्वामी १, और राममिश्र स्वामी २, तथा यामुनाचार्य्य स्वामी ३, और महापूर्णस्वामी (४) रूप (निर्झरैः) झरनों से (निःसृत्य) निकलकर (रामानुजतटाकम्) रामानुजाचार्य स्वामीरूप तालाब को (प्राप्य) पाकर (पूर्वाचार्य्यमार्गेण) पूर्वाचार्य्यों के मार्ग से (निःसृत्य) निकलकर (संसारकेदारम्) संसाररूप खेत में (व्याप्नोति) व्याप्त होता है। (अथ) इसके बाद (कुतः) कहाँ से (दुःखसागरे) दुःखसागर में (निमग्नम्) निमग्न (मनः) मन (प्रकृत्यवसाने) प्रकृति के अवसान समय में (ईश्वरचरणौ) सर्वेश्वर श्रीमन्नारायणभगवान् के चरणारविन्दों को (प्राप्नुहि) तुम प्राप्त करोगे (इति) इस प्रकार की (इयम्) यह (प्रथमा) पहली (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ छिहत्तरवीं वार्ता में ईक्यावन पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७६॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–वीथ्यां तर्हि ते दासः परमपदमगच्छत्, इति वार्तां धनुर्दाससंस्कारस्थले गत्वा-अकथयत्, तद् रामानुजः श्रुत्वा मन्निःक्षेपहतः-इत्याक्रोशेनागतः, तद्ध्वनिं श्रुत्वा-आसूरिरामानुजस्य ध्वनिरिव वर्तते, तमहं जानीया-मित्युक्त्वा रङ्गनाथस्तद्देशमगमत्, भगवदागमनघोषं श्रुत्वा रामानुजोऽभिमुखं गत्वा किमिदं भवान् क्व गच्छति, इत्य-पृच्छत्, श्रीरङ्गनाथः-अस्मत्स्नेहिनौ वयमङ्गीचकृम, त्वं किमर्थं क्लिश्यसीत्यवदत्, रामानुजश्च भवान् मन्दिरं प्रविशत्वित्यवदत्, श्रीरङ्गनाथो मन्दिरं प्रविवेश, अनन्तरं हेमाम्बां कृतोपचारां कृतसंस्कारां विमानमारोप्य, धनुर्दा-ससंस्कारस्थलं प्रापय्य, तदाभरणान्यवतार्य्य, धनुर्दासेन सह शाययित्वा, संस्कृत्य तदाभरणानि जलैः शोधयित्वा, श्रीरङ्गनाथसमीपे प्रेषयामासुः, श्रीरङ्गनाथः श्रीरङ्गनायकी च तदाभरणानि दृष्ट्वा-अस्मत्स्नेहिनौ गतौ, वयमपि-आभ-रणानि न दध्म इत्युक्त्वा शपथमकुरुतामिति द्वितीया वार्ता ॥३७७॥

अर्थ–(तर्हि) तब तो (वीथ्याम्) वीथि में (ते) आपका (दासः) दास (परमपदम्) परम पद को (अगच्छत्) चला गया। (इति) इस प्रकार की (वार्ताम्) वार्ता को (धनुर्दाससंस्कारस्थले) धनुर्दासजी के ब्रह्ममेध संस्कार स्थलपर (गत्वा) जाकर (अकथयत्) किसी ने कहा। (रामानुजः) रामानुजाचार्य्य स्वामीजी (तत्) उस कहे हुए वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (मन्निःक्षेपहतः) मेरे निःक्षेपहत (इति) इस प्रकार के (अक्रोशेन) चिल्लाते हुए (आगतः) आ गये। (तद्ध्वनिं) उस यतिवर के शब्द को (श्रुत्वा) सुनकर (आसूरिरामानुजस्य) आसूरि रामानुजाचार्य्य स्वामीजी के (ध्वनिः) शब्द के (इव) समान (वर्तते) यह शब्द है। (अहम्) मैं (तम्) उनको

(जानीयाम्) जानूँगा (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (रङ्गनाथः) रङ्गनाथ स्वामीजी (तद्देशम्) जिस देश में शब्द होता था उस देश में (अगमत्) चले गये। और (भगवदागमनघोषम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के आने के शब्द को (श्रुत्वा) सुनकर (रामानुजः) रामानुजाचार्य स्वामीजी (अभिमुखम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के सामने (गत्वा) जाकर (इदम्) यह (किम्) क्या (भवान्) आप (क्व) कहाँपर (गच्छति) जाते हैं (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे। तब (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (अस्मत्स्नेहिनौ) अपने स्नेहियों को (वयम्) हम लोग (अङ्गीचकृम) स्वीकार किये हैं। (त्वम्) तुम (किमर्थम्) किसलिये (क्लिश्यसि) क्लेश करते हो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे। (च) और (रामानुजः) रामानुजाचार्य स्वामीजी (भवान्) आप (मन्दिरम्) मन्दिर में (प्रविशतु) पैठ जाइये (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (मन्दिरम्) मन्दिर में (प्रविवेश) पैठ गये। (अनतरम्) इसके बाद (कृतसंस्काराम्) संस्कार की हुई (कृतोपचाराम्) उपचार से युक्त (हेमाम्बाम्) हेमाम्बा देवीजी को (विमानम्) विमान में (आरोप्य) रखकर (धनुर्दाससंस्कारस्थलम्) धनुर्दासजी के ब्रह्ममेध संस्कार की जगहपर (प्रापय्य) प्राप्त कराकर (तदाभरणानि) उस हेमाम्बा के भूषणों को (अवतार्य्य) उतरवाकर (धनुर्दासेन) धनुर्दासजी के (सह) साथ (शाययित्वा) सुला करके (संस्कृत्य) ब्रह्ममेध संस्कार करके (तदाभरणानि) उस हेमाम्बा के भूषणों को (जलैः) जलों से (शोधयित्वा) शुद्ध कराकर (श्रीरङ्गनाथसमीपे) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के पास में (प्रेषयामासुः) प्रपन्न सबों ने भिजवा दिया। (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (च) और (श्रीरङ्गनायकी) श्रीरङ्गनायकी अम्बा (तदाभरणानि) उस हेमाम्बादेवी के भूषणों को (दृष्ट्वा) देखकर (अस्मत्स्नेहिनौ) हमारे दोनों स्नेही धनुर्दासजी और हेमाम्बा देवीजी (गतौ) परमपद को चले गये, इस करण से (वयम्) हम सब (अपि) भी (आभरणानि) भूषणों को (न) नहीं (दध्मः) धारण करेंगे, (इति) इस प्रकार के (उक्त्वा) कहकर (शपथम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् और रङ्गनायकी अम्बा ये दोनों शपथ को (अकुरुताम्) कर लिये (इति) इस प्रकार की (द्वितीया) दूसरी (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ सतहत्तरवीं वार्ता में एक सौ दो पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७७॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
मू०-अथ तत् फलमपि तेनैवेत्यवस्थितिः कार्य्या, सा
११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९
च त्वया विना-अन्येन फलं न गृह्णामीत्यवस्थितिः,
२० २१ २२ २३ २४ २५ २६
त्वत्कैङ्कर्य्यकरणरूपामृतं पिबामीत्यवस्थितिः, अहमपि त्वं
२७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४
मद्वस्त्वपि त्वं मदात्मा त्वदधीनः दास्यमन्यत्र त्यक्त्वा
३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३
त्वच्चरणयोरधः स्थितिः-एव क्षेम इत्यवस्थितिश्च पति-
४४ ४५ ४६ ४७
व्रतायाः स्वभर्तृसंश्लेषालाभेऽपि परमुखानवलोकनमावश्यक-
४८ ४९ ५०
मिति तृतीया वार्ता ॥३७८॥

अर्थ–(अथ) इसके बाद (तत्) वह (फलम्) फल (अपि) भी (तेन) उस श्रीमन्नारायण भगवान् से (एव) निश्चय करके प्राप्त होता है (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति (कार्य्या) करने योग्य है। (च) और (सा) वह अवस्थिति (त्वया) तेरे (विना) बिना (अन्येन) दूसरे से (फलम्) फल को (न) नहीं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति करना है। तथा (त्वत्कैङ्कर्य्यकरणरूपामृतम्) आपके कैंङ्कर्य्य करण रूप अमृत को (पिबामि) मैं पीता हूँ (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति करना है। और (अहम्) मैं (अपि) भी (त्वम्) तेरा हूँ तथा (मद्वस्तु) मेरी चीज (अपि) भी (त्वम्) तेरी ही है। और (मदात्मा) मेरी आत्मा (त्वदधीनः) तेरे अधीन है। (अन्यत्र) आपसे अन्य देवता आदि के विषय में (दास्यम्) दासता को (त्यक्त्वा) छोड़कर (त्वच्चरणयोः) आपके चरणारविन्दों के (अधः) नीचे में (स्थितिः) रहना (एव) निश्चय करके (क्षेमः) कल्याण है (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति करना है। (च) और (पतिव्रतायाः) पतिव्रता स्त्री के (स्वभर्तृसंश्लेषालाभे) अपने पति के आलिङ्गन नहीं लाभ होने पर (अपि) भी (परमुखानवलोकनम्) दूसरे पुरुष के मुख को नहीं देखना (आवश्यकम्) आवश्यक है (इति) इस प्रकार की (तृतीया) तीसरी (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ अठहत्तरवीं वार्ता में पचास पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७८॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–देवतान्तरं भजद्भि लोकै: सहासङ्गतिरपेक्षिता, सा चाचिन्तयत: क्षणमपि न चिन्तयाम:, अचिन्तयन्तं मानुषम् ''अचिन्तयन्तो भोग्यभूता:'' इत्याद्युक्तप्रकारेण ''द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत्। पाण्डवान् द्विषसे राजन् मम प्राणा: हि पाण्डवा:'' इत्युक्तप्रकारेण सर्वशक्तिनाप्यनादृतत्वात् सर्वदा-अस्माभिर्नादरणीयास्ते-इत्यवस्थानमिति चतुर्थी वार्ता ॥३७९॥

अर्थ-(देवतान्तरम्) ब्रह्मा आदि देवतान्तरों को (भजद्भि:) भजन करनेवाले (लोकै:) पुरुषों के (सह) साथ (असंगति:) संगति नहीं करना (अपेक्षिता) अपेक्षित है। (च) और (सा) वह असङ्गति इस प्रकार की है कि (अचिन्तयत:) श्रीमन्नारायण को नहीं चिन्तन करनेवालों को (क्षणम्) एक क्षण (अपि) भी (न) नहीं (चिन्तयाम:) हम चिन्तन करेंगे। और (अचिन्तयन्तम्) भगवान् को नहीं चिन्तन करनेवाले (मानुषम्) मनुष्य को नहीं चिन्तन करेंगे। तथा (अचिन्तयन्त:) नहीं चिन्तन करते हुए (भोग्यभूता:) भोग्यभूत (इत्याद्युक्तप्रकारेण) इत्यादि करके कहे हुए प्रकार से। और (द्विषद्) द्वेषयुक्त (अन्नम्) अन्न (न) नहीं (भोक्तव्यम्) भोजन करने योग्य है। तथा (द्विषन्तम्) द्वेष करने वाले को (एव) निश्चय करके (न) नहीं (भोजयेत्) भोजन करावे। (राजन्) ऐ राजन्! (पाण्डवै:) पाण्डवों से (द्विषसे) तुम द्वेष करते हो और (हि) निश्चय करके (मम) मेरे (प्राणा:) प्राण (पाण्डवा:) पाण्डव हैं। (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (सर्वशक्तिना) सब कुछ करने में समर्थ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से (अपि) भी (अनादृतत्वात्) अनादर होने से (सर्वदा) हमेशा (अस्माभि:) हम सबों से (ते) वे सब (न) नहीं (आदरणीया:) आदर करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार के (अवस्थानम्) अवस्थिति करना है (इति) इस प्रकार के (चतुर्थी) चौथी (वार्ता) वार्ता है। इस वार्ता में अड़तालीस पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३७९॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अभिमतदिव्यदेशेषु वसेत्, अत्र किं प्रमाणम्, "परमसात्त्विकैरधिष्ठितः श्रीरङ्गः" इति "व्यावृतभक्तैराक्रान्तः श्रीरङ्गः" इति वेङ्कटाचले नित्यंवसन्तः" इति "भगवतः स्वर्णपर्वते किमपि भवेयम्" इति प्रमाणम् पुल्लैतिरुनरैईङ्गुरैयरभट्टार्य्यं प्रणम्य ममोपायभूतां वदेत्यपृच्छत्, स च मिथ्यैव वा-अभिमतदिव्यदेशेषु संचरसि चेत्, अन्तिमदशायां कार्यकरो भवति इत्यवदत्, इति पञ्चमी वार्ता ॥३८०॥

अर्थ–(अभिमतदिव्यदेशेषु) अभिमत दिव्य देशों में (वसेत्) निवास करे (अत्र) इस विषय में (किम्) क्या (प्रमाणम्) प्रमाण है। (परमसात्त्विकैः) परम सात्त्विक पुरुषों से (अधिष्ठितः) अधिष्ठत (श्रीरङ्गः) श्रीरङ्गक्षेत्र है (इति) इस प्रकार की सूक्ति प्रमाण है। और (व्यावृतभक्तैः) व्यावृत्त भक्तों से (आक्रान्तः) आक्रान्त (श्रीरङ्गः) श्रीरङ्गक्षेत्र है (इति) इस प्रकार की सूक्ति प्रमाण है। तथा (वेङ्कटाचले) श्रीवेङ्कटाद्रि पर (नित्यम्) हमेशा (वसन्तः) रहते हुए (इति) इस प्रकार की सूक्ति प्रमाण है। और (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (स्वर्णपर्वते) स्वर्ण पर्वत पर (किम्) कुछ (अपि) भी (भवेयम्) मैं हो जाऊँ (इति) इस प्रकार की सूक्ति (प्रमाणम्) प्रमाण है। (वा) अथवा यह अधोलिखित प्रमाण है (पुल्लैतिरुनरैईङ्गुरैयरभट्टार्य्यम्) पुल्लैतिरुनरै ईङ्गुरैयर भट्टाचार्य्यको (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (मम) मेरे (उपायभूताम्) उपायभूत वार्ता को (वद) कहिये (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) किसी भागवत ने पूछा। (च) और (सः) वह पुल्लैतिरुनरै ईङ्गुरैयर भट्टाचार्य्यजी (मिथ्या) व्यर्थ (एव) निश्चय करके (अभिमतदिव्यदेशेषु) यदि अभिमत दिव्य देशों में (सञ्चरसि) भ्रमण करते हो (चेत्) तो (अन्तिमदशायाम्) अन्तिम समय में (कार्य्यकरः) कार्य्य करनेवाला (भवति) होगा (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं (इति) इस प्रकार की (पञ्चमी) पाँचवीं (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ अस्सीवीं वार्ता में सैंतालीस पद हैं। इति गोविन्दार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८०॥

॥ अथ गोविन्दाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–अनुकूलसङ्कल्पत्वमपेक्षितं "सकृदेव प्रपन्नाय" "सकृत्कृतोऽञ्जलिः" "इच्छामात्रमल" मित्यादि इति, षष्ठी-वार्ता ॥३८१॥

अर्थ–(अनुकूलसङ्कल्पत्वम्) अनुकूल सङ्कल्प (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। (सकृत्) एक बार (एव) निश्चय करके (प्रपन्नाय) प्रपन्नजनके लिये (सकृत्) एक बार (कृतः) की हुई (अञ्जलिः) अञ्जलि (इच्छामात्रम्) भगवान् की इच्छामात्र (अलम्) पर्य्याप्त है (इत्यादि) वाक्य हैं (इति) इस प्रकार की (षष्ठी) छठवीं (वार्ता) वार्त्ता है। इस वार्ता में ॥ **सकृदेव प्रपन्नाय** ॥ **वाल्मी० रा० युद्ध० ६, स० १८, श्लो० ३३** ॥ वाँका यह प्रतीक है। और ॥ **सकृत्कृतोऽञ्जलिः** ॥ **आलवन्दा० श्लो० ३१** ॥ वाँका यह प्रतीक है। इससे इन दोनों को लिखकर अर्थ लिखता हूँ ॥ **सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ वा० रा० यु० ६, स० १८, श्लो० ३३** ॥ एक बार भी मैं आपका दास हूँ जो ऐसी याचना करता है उस प्रपन्नजन के लिये सम्पूर्ण जीवों से मैं अभय प्रदान करता हूँ यह मेरा व्रत है ॥३३॥ **त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचिद्यथा तथा वापि सकृत्कृतोऽञ्जलिः। तदैव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ॥ आलवन्दा० श्लो० ३१** ॥ आपके चरण कमल को उद्देश्य करके किसी काल में भी कोई पुरुष जिस किसी प्रकार से भी यदि एक बार हाथ जोड़ लेवे तो उस समय में निश्चय करके चेतन के अशुभ कर्मों को अच्छे प्रकार से सम्पूर्ण आप चुरा लेते हैं और शुभ कर्मों को बढ़ा देते हैं जिससे कि यह चेतन कभी भी नहीं शुभ कर्म से रहित होता है ॥३१॥ इस तीन सौ इक्क्यासिवीं वार्ता में चौदह पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८१॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–प्रातिकूल्यनिवृत्तिरपेक्षिता भगवदपचारभागवतापचारासह्यापचाररूपनानाविधानन्तापचारकारणार्थकाम-निमित्तं भगवद्भागवतविषयेषु विरोधाकारणमिति सप्तमी वार्ता ॥३८२॥

अर्थ–(प्रातिकूल्यनिवृत्तिः) प्रतिकूलता की निवृत्ति प्रपन्नों के लिये (अपेक्षिता) अपेक्षित है। और (भगवदपचारभागवतापचारासह्यापचाररूपनानाविधानन्तापचारकरणार्थकाम निमित्तं) भगवदपचार तथा भागवतापचार और असह्यापचाररूप नाना प्रकार के अनन्त अपचारों का कारण जो अर्थ और काम उनके निमित्त (भगवद्भागवताविषयेषु) भगवान् के विषय में और भागवतों के विषय में (विरोधाकारणम्) विरोध नहीं करना (इति) इस प्रकार की (सप्तमी) सातवीं (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ बेयाकसिवीं वार्ता में आठ पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८२॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–दिव्यसूरियुक्तिभि[१] र्हृदयस्य[२] द्रवीकरणमित्यष्टमी[३] वार्ता[४] ॥३८३॥[५][६]

अर्थ–(दिव्यसूरियुक्तिभिः) दिव्यसूरियों की युक्तियों से (हृदयस्य) हृदय का (द्रवीकरणम्) द्रवीरकण (इति) इस प्रकार के (अष्टमी) आठवीं (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ तिरासिवीं वार्ता में छः पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८३॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–दिव्यसूरियुक्तिभि[१]र्द्रवीभूत[२]मनस्कैः सात्त्विकैः[३] सह[४] वासकरणं[५] नवमी[६] वार्ता[७] ॥३८४॥

अर्थ–(दिव्यसूरियुक्तिभिः) दिव्य सूरियों की युक्तियों से (द्रवीभूतमनस्कैः) द्रवीभूत मनवाले (सात्त्विकैः) सात्त्विक पुरुषों के (सह) साथ (वासकरणम्) निवास करना (नवमी) नौवीं (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ चौरासिवीं वार्ता में सात पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८४॥

अब गोविन्दाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–आचार्य्यविषये कृतं कैङ्कर्य्यं विस्मृत्य अकृतेषु कैङ्कर्य्येषु-आशाकरणम्, आचार्य्यहृदयानुगतोऽनन्तार्य्य एव गोविन्दार्य्य एव-आचार्य्यानादरोऽनर्थ इति मत्वा स्वयं नैच्ययुक्तः कैङ्कर्य्यं कुर्वन्नेवावतिष्ठेत इति दशमी वार्ता ॥३८५॥

अर्थ–(आचार्य्यविषये) आचार्य्य के विषय में (कृतम्) किये हुए (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य को (विस्मृत्य) भूलकर (अकृतेषु) नहीं किये हुए (कैङ्कर्य्ये) कैङ्कर्य के विषय में (आशाकरणम्) आशा करना और (आचार्य्यहृदयानुगतः) आचार्य्य के हृदय का अनुगत (अनन्तार्य्यः) अनन्ताचार्य्य स्वामीजी (एव) निश्चय करके और (गोविन्दार्य्यः) गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी (एव) निश्चय करके हैं। और (आचार्य्यानादरः) आचार्यों का अनादर (अनर्थः) अनर्थ है (इति) इस प्रकार के (मत्वा) मानकर (स्वयम्) अपने (नैच्ययुक्तः) नैच्यानुसन्धान से युक्त हो करके (कैङ्कर्य्यम्) कैङ्कर्य्य को (कुर्वन्) करते हुए (एव) निश्चय करके (अवतिष्ठेत) ठहरे। "अवतिष्ठेत" यहाँ पर ॥ समवप्रविभ्यः स्थः ॥ व्या० अ० १, पा० ३, सू० २२ ॥ इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है। (इति) इस प्रकार की (दशमी) दसवीं (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ पचासिवीं वार्ता में पचीस पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८५॥

अब गोविन्दाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोविन्दार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–दश एताः वार्ताः उक्तवत्या चार्य्ये कृतज्ञो-भवेत्, एताः दश वार्ताः हृदयमनुसन्दधीत एतासु, दशसु एकस्याः-अप्यभावे स्वस्यानुकूल्यमर्द्धं विद्यात्, एवं निश्चिन्वतां वैकुण्ठमहानगरं हस्तगतमिति ॥३८६॥

अर्थ–(दश) दस (एताः) इन पूर्वोक्त (वार्ताः) वार्ताओं को (उक्तवति) कहनेवाले (आचार्य्ये) आचार्य के विषय में (कृतज्ञः) कृतज्ञ (भवेत्) हो जाय। और (एताः) इन पूर्वोक्त (दश) दस (वार्ताः) वार्ताओं को (हृदयम्) अपने हृदय में

(अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। और (एतासु) इन पूर्वोक्त (दशसु) दस वार्ताओं में (एकस्याः) एक वार्ता के (अपि) भी (अभावे) अभाव होने पर (स्वस्य) अपनी (आनुकूल्यम्) अनुकूलता (अर्द्धम्) आधा (विद्यात्) जाने। (एवम्) इस प्रकार के (निश्चिन्वताम्) निश्चय करनेवाले प्रपन्नों के (वैकुण्ठमहानगरम्) वैकुण्ठ महानगर (हस्तगतम्) हाथ में प्राप्त हो जाता है (इति) इस प्रकार की यह वार्ता है। इस तीन सौ छियासिवीं वार्ता में छब्बीस पद हैं। इति गोविन्दाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८६॥

अब वेदान्ती स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यत्युक्ता वार्ता ॥

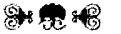
मू०–अज्ञानसमये[१] ज्ञानसमये[२] ज्ञानपाकसमये[३] ज्ञानफलभगवत्प्राप्तिसमये[४] च[५] मातापितरौ[६] रूपनामनी[७] भोजनादयः[८] प्रवृत्तिनिवृत्ती[९] विधिनिषेधौ[१०] देशवासः[११] बन्धुवर्गऐश्वर्य्यादि[१२] प्रार्थना[१३] च[१४] भिन्नभिन्नाः[१५] भवन्ति[१६], प्राथमिकेऽज्ञानसमये[१७] विवेकाभावात्[१८] शरीरमेव[१९] मातापितरौ[२०] जनयतइत्युक्तप्रकारेण[२१] शरीरोत्पादकौ[२२] मातापितरौ[२३] मन्यते[२४] तदुक्ते[२५] प्रवर्तते[२६] निवर्तते[२७] तावनुवृत्य[२८] तत्कृतरूपनामभि[२९] बिभर्ति[३०] तैरादृतं[३१] बन्धुवर्गं[३२] मन्यते[३३], तद्वंश्याभिमानी[३४] तत्कल्पितैश्वर्य्यवान्[३५] संसारवर्द्धकाः[३६] काश्चन[३७] प्रार्थनाः[३८] कुरुते[३९], संसारे मदधिको[४०] नास्ति-इत्यात्मानं[४१] समाधिकदरिद्रं[४२] मत्वा[४३] गर्वितः[४४] सञ्चरति[४५], ज्ञानसमये[४६] केवलपाञ्चभौतिकं[४७] शरीरं[४८] प्रकृतेः[४९] परः[५०] पञ्चविंशकः[५१] स्वस्मै[५२] स्वयं[५३] प्रकाशः[५४], एकरूपो[५५] ज्ञानानन्दैकस्वरूपः[५६]-अच्छेद्योऽदाह्योऽशोष्यः[५७]-नित्यो[५८] जन्ममरणादिरहितः[५९]-आत्मास्ति[६०], वेदशास्त्रे[६१] स्तः[६२], पुण्यपापे[६३] स्तः[६४], वर्णाश्रमाः[६५] सन्ति[६६], पूर्वं[६७] पापविकारेण[६८] भ्रममिति[६९] मत्वा[७०] पूर्वप्रतिपत्तिं[७१] त्यक्त्वा[७२] स[७३] विद्यातस्तं[७४] जनयतीत्युक्तप्रकारेण[७५] वेदशास्त्रे[७६] मातरं

१०० १०१ १०२ १०३ १०४
शास्त्रप्रदं पितरं मत्वा तच्छास्त्रोक्तप्रकारेण भोजनादीन्
१०५ १०६ १०७ १०८ १०९
प्रवृत्तिनिवृत्ती विधिनिषेधौ कुर्वन् वेदशास्त्राभिज्ञान् बन्धून्-
११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८
मत्वा आत्माभिमानिषु मदधिको नास्तीत्यात्मानं समा-
११९ १२० १२१
धिकदरिद्रं मन्वानो गर्वितः सञ्चरति ॥

अर्थ–(अज्ञानसमये) अज्ञान समय में १, और (ज्ञानसमये) ज्ञान समय में २, तथा (ज्ञानपाकसमये) ज्ञान के परिपाक समय में ३, (च) और (ज्ञानफलभगवत्प्राप्तिसमये) ज्ञान का फलभगवत्प्राप्ति के समय में, (मातापितरौ) माता और पिता तथा (रूपनामनी) रूप और नाम तथा (भोजनादयः) भोजन आदि और (प्रवृत्तिनिवृत्ती) प्रवृत्ति तथा निवृत्ति और (विधिनिषेधौ) विधि तथा निषेध और (देशवासः) देश में निवास करना तथा (बन्धुवर्गः) बन्धुओं के वर्ग तथा (ऐश्वर्य्यादि) ऐश्वर्य आदिक (च) और (प्रार्थना) प्रार्थना (भिन्नभिन्नाः) ये अलग अलग (भवन्ति) होते हैं। (प्राथमिके) पहले (अज्ञानसमये) अज्ञान समय में (विवेकाभावात्) विचार के अभाव होने से (शरीरम्) शरीर को (एव) निश्चय करके (मातापितरौ) माता और पिता (जनयतः) उत्पन्न करते हैं (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (शरीरोत्पादकौ) देह को उत्पन्न करनेवाले (मातापितरौ) माता और पिता को (मन्यते) मानते हैं। और (तदुक्ते) उस माता और पिता के कहने पर (प्रवर्तते) यह पुरुष प्रवृत्त होता है तथा (निवर्तते) निवृत्त होता है। और (तौ) उन दोनों माता तथा पिता को (अनुवृत्य) अनुवर्तन करके (तत्कृतरूपनामाभिः) उस माता और पिता से किये हुए रूप तथा नाम से (बिभर्ति) यह धारण करता है। **"बिभर्ति"** यहाँ पर ॥ **भृञामित्** ॥ **व्या० अ० ७ पा० ४, सू ० ७६** ॥ इस सूत्र से इकार हुआ है। (तैः) और उन सबों से (आदृतम्) आदर किये हुए (बन्धुवर्गम्) बन्धु वर्ग को (मन्यते) मानते हैं। तथा (तद्वंश्याभिमानी) उस माता पिता के वंश में अभिमान वाला होता है। और (तत्कल्पितैश्वर्य्यवान्) उस माता तथा पिता से कल्पित ऐश्वर्य वाला होता है। तथा (संसारवर्द्धकाः) संसार को बढ़ाने वाली (काश्चन) कुछ (प्रार्थनाः) प्रार्थनायें (कुरुते) करते हैं। (संसारे) संसार में (मत्) मुझसे (अधिकः) बड़ा (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार की (आत्मानम्) आत्मा को (समाधिकदरिद्रम्) बराबर और अधिक से रहित (मत्वा) मानकर (गर्वितः) अहङ्कार से युक्त हो करके (सञ्चरति) भ्रमण करता है। और (ज्ञानसमये) ज्ञान के समय में (केवलपञ्चभौतिकम्) केवल पृथ्वी जल तेजवायु आकाश इन पाँच भूतों से बना हुआ (शरीरम्) देह है। तथा

(प्रकृतेः) प्रकृति से (परः) परे (पचविंशकः) पचीसवाँ तत्त्व पुरुष (स्वस्मै) अपने लिये (स्वयम्) अपने आप (प्रकाशः) प्रकाश स्वरूप तथा (एकरूपः) एकरूप (ज्ञाननन्दैकस्वरूपः) ज्ञानानन्दैक स्वरूप (अच्छेद्यः) नहीं छेदन करने योग्य (अदाह्यः) नहीं जलाने योग्य (अशोष्यः) नहीं सूखाने योग्य (नित्यः) नित्य और (जन्ममरणादिरहितः) जन्म मरण आदि से रहित (आत्मा) आत्मा (अस्ति) है। और (वेदशास्त्रे) ऋग्वेद १, यजुर्वेद २, साम वेद ३, अथर्ववेद ४, तथा न्यायशास्त्र १, वैशेषिक शास्त्र २, साङ्ख्य शास्त्र ३, योगशास्त्र ४, मीमांसा शास्त्र ५, वेदान्त शास्त्र ६, (स्तः) हैं। "स्तः" यहाँ पर ॥ **॥ श्नसोरल्लोपः ॥ व्या० अ० ६, पा० ४, सू० १११ ॥** इस सूत्र से अकार का लोप हुआ है। (पुण्यपापे) पुण्य और पाप (स्तः) हैं। (वर्णाश्रमाः) ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३, शूद्र ४, ये चारो वर्ण और ब्रह्मचर्याश्रम १, गृहस्थाश्रम २, वानप्रस्थाश्रम ३, संन्यासाश्रम ४, ये चार आश्रम (सन्ति) हैं। (पूर्वम्) पहले (पापविकारेण) पापके विकार से (भ्रमम्) भ्रम को (इति) इस प्रकार से (मत्वा) मानकर (पूर्वप्रतिपत्तिम्) पूर्व प्रतिपत्ति को (त्यक्त्वा) छोड़कर (हि) निश्चय करके (सः) वह आचार्य (विद्यातः) विद्या से (तम्) उस शिष्य को (जनयति) उत्पन्न करते हैं (इति) इस प्रकार से (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (वेदशास्त्रे) वेद और शास्त्र को (मातरम्) माता तथा (शास्त्रप्रदम्) शास्त्र के उपदेश देनेवाले आचार्य को (पितरम्) पिता (मत्वा) मानकर (तच्छास्त्रोक्तप्रकारेण) उस शास्त्र में कहे हुए प्रकार से (भोजनादीन्) भोजन आदि को तथा (प्रवृत्तिनिवृत्ती) प्रवृत्ति और निवृत्ति को तथा (विधिनिषेधौ) विधि और निषेध को (कुर्वन्) करते हुए (वेदशास्त्राभिज्ञान्) वेद और शास्त्र को अच्छे प्रकार से जाननेवालों को (बन्धून्) बन्धु (मत्वा) मानकर (आत्माभिमानिषु) आत्मा के अभिमान करने वालों में (मत्) मुझसे (अधिकः) बड़ा (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार से (आत्मानम्) अपनी आत्मा को (समाधिकदरिद्रम्) बराबर और अधिक से रहित (मन्वानः) मानता हुआ (गर्वितः) अहङ्कार से युक्त हो करके (सञ्चरति) भ्रमण करता है। यहाँ पर यह पहला प्रश्न होता है कि पचीस तत्त्व कौन से हैं ? इस प्रश्न का उत्तर साङ्ख्यशास्त्रमें लिखा है कि **॥ सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्च-तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥ सां० अ० १, सू० ६१ ॥** सत्त्वरजः तमः की साम्यावस्था प्रकृति १, प्रकृति से महत्तत्त्व २, महत्तत्त्व से अहङ्कार ३, अहङ्कार से शब्द ४, स्पर्श ५, गन्ध ६, रस ७, रूप ८, ये पाँच मात्रायें और मन ९, श्रोत्र १०, चक्षुः ११, घ्राण १२, जिह्वा १३, त्वचा १४, वाक् १५, पाणि १६, पाद १७, पायु १८, उपस्थ १९, ये ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय और तन्मात्राओं से पृथ्वी २०, जल २१, तेज २२, वायु २३, आकाश २४, होते हैं

और पुरुष तत्त्व २५, है इस प्रकार के पचीस तत्त्व हैं ।।६१।। इस प्रकार से पहले प्रश्न का उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि आत्मा अच्छेद्य आदि है इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न का उत्तर भगवद्गीता में लिखा है कि ॥ **न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ भगवद्गी० अ० २, श्लो० २० ॥** यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मती है और न तो मरती है अथवा न यह हो करके फिर होनेवाली है क्योंकि यह अजन्मा नित्य शाश्वत और पुरातन है, देह के नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता है ।।२०।। और भी लिखा है कि ॥ **अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥** यह आत्मा छेदन करने योग्य नहीं है और जलाने योग्य नहीं है तथा भिंगोने योग्य नहीं है ओर सूखाने योग्य नहीं है निश्चय करके नित्य सर्वगत स्थाणु अचल और यह सनातन है ।।२४।। इस प्रकार से दूसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तीसरा प्रश्न होता है कि वेद और वर्ण तथा आश्रम चार ही हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि ॥ **चत्वारो वेदाः ॥ महाभाष्य अ० १, पा० १, आह्नि० १ ॥** चार वेद ।।१।। **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम् ॥ भगवद्गी० अ० ४, श्लो० १३ ॥** चार वर्णों को मैंने बनाया ।।१३।। और मनुस्मृति में लिखा है कि ॥ **चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् । भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥ मनुस्मृ० अ० १२, श्लो० ९७ ॥** ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३, शूद्र ४, ये चार वर्ण तथा स्वर्गलोक १, मृत्युलोक २, पाताल लोक ३, ये तीनों लोक और ब्रह्मचर्य्याश्रम १, गृहस्थाश्रम २, वानप्रस्थाश्रम ३, संन्यासाश्रम ४, ये चारों आश्रम और जो कुछ भूत, भविष्य, वर्तमान है सो सब अलग अलग वेद से प्रसिद्ध होते हैं ।।९७।। इस प्रकार के तीसरे प्रश्न का उत्तर होनेपर तो चौथा प्रश्न होता है कि शिष्य का क्या लक्षण है ? इस प्रश्न का उत्तर प्रपन्नामृत में लिखा है कि ॥ **आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान्वैष्णवः शुचिः । गम्भीरश्चतुरो धीरः शिष्य इत्यभिधीयते ॥ प्रपन्नामृ० अ० १०७, श्लो० ४६ ॥** आस्तिक धर्मशील और शीलवाला वैष्णव तथा पवित्र गम्भीर, चतुर और धीर शिष्य ऐसा कहा जाता है ।।४६।। शमिति ।।



मू०–ज्ञानपाकसमये[१] सकलशास्त्राण्यालोड्य[२], आत्मनः[३] स्वातन्त्र्यविनाशकमीश्वरस्वातन्त्र्यमुत्तारकमिति[४] [५] [६] [७] [८] [९] "पतिं विश्वस्य"[१०] "आत्मदास्यं हरेः स्वाम्यम्"[११] इत्यादिप्रमाणैः[१२] [१३] [१४]

निश्चित्य पूर्वाकारान् परित्यज्य तत्त्वत्रयविषयकज्ञानं तत्त्व-
द्वयवैराग्यमेकतत्त्वभक्तिं च प्राप्य तत्त्वहितपुरुषार्थम्
अर्थकामानुपहतं वेदशास्त्रनिदानज्ञं लोकपरिग्रहवन्तमा-
चार्यं समाश्रित्य स्त्रवदश्रुनेत्रः स्वस्य प्राक् स्थितं देहात्मा-
भिमानं केवलात्माभिमानमन्यच्चार्थजातं स्वयमेव साक्षात्
विज्ञापयति, आचार्य्यश्च स्वनिर्हेतुककृपया-अस्य नेत्राश्रु
परिमृज्य-ईश्वरस्वातन्त्र्यस्यात्मपारतन्त्र्यस्य सूचकमस्या-
त्मनः-ईश्वरस्य च दुस्त्यजसम्बन्धस्य च व्यञ्जकम् अष्टसूत्रं
त्रिविभागं माङ्गल्यसूत्रमस्तीति महाश्रीमन्त्रमुपदिशति,
स्वरूपवैशद्यवान् स्वरक्षणाशक्तः-ईश्वरमवलम्ब्य वर्तस्वेति
वदति, अयं च पूर्वाकारान् त्यक्त्वा मातापितरावुत्पत्तिम-
कुरुतां "प्रसवित्री माता उत्पादकः पिता च त्वमुत्पादकः
बन्धुश्चेत्याद्युक्तप्रकारेण श्रीमन्त्रं मातरमाचार्यं पितरं
मत्वा, आचार्याभिमतनामरूपे धृत्वा-आचार्यहृदया-
नुसारेण भोजनादीन् प्रवृत्तिनिवृत्तीविधिनिषेधौ च कुर्वन्
आचार्य्येणादरेणाधिष्ठितो देश एव दिव्यदेशः, आचार्य्य-
हृदयेनसहवासयोग्यतया कल्पिताः परमसत्त्व-
निष्ठाः श्रीवैष्णवा एव बन्धवः, तेषामैश्वर्य्यत्वेनाभिमत-
माचार्य्यकैङ्कर्य्यमेव स्वस्यैश्वर्य्यं तत्कैङ्कर्य्यप्रार्थनैव स्वस्य
देहयात्रेति मत्वा-उत्तमकुलेषु न जातः, मम कर्म ज्ञानादिषु
कोऽप्युपायो नास्ति "लौकिकैर्मनुष्यैः सह सञ्चरामि"
इत्युक्तप्रकारेण स्ववैलक्षण्यमेतद्देशवासासहिष्णुता विल-

१४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३
क्षणदेशगमनेत्वरा च शरीरे ज्ञायेत, तथा निर्मलः मोक्षप्रद-
१५४ १५५
भगवत्प्राप्तिपर्य्यन्तमाचार्यसमीपे तिष्ठति ॥

अर्थ–(ज्ञानपाकसमये) ज्ञान के पाक समय में (सकलशास्त्राणि) सम्पूर्णशास्त्रों को (आलोड्य) आलोडन करके (आत्मनः) आत्मा की (स्वातन्त्र्यविनाशकम्) स्वतन्त्रता को विनाश करनेवाली (ईश्वरस्वातन्त्र्यम्) परमेश्वर की स्वतन्त्रता है और (उत्तारकम्) संसार सागर से पार करनेवाली है (इति) इस प्रकार के कहे हैं। और (विश्वस्य) संसार के (पतिम्) स्वामी को तथा (आत्मदास्यम्) अपनी दासता को और (हरेः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (स्वाम्यम्) स्वामित्व को (इत्यादिप्रमाणैः) इत्यादिक प्रमाणों से (निश्चित्य) निश्चय करके (पूर्वाकारान्) पहले के आकारों को (परित्यज्य) छोड़कर (तत्त्वत्रयविषयकज्ञानम्) ब्रह्मतत्त्व १, जीवतत्त्व २, मायातत्त्व ३, इनतीन तत्त्व को विषय करनेवाले ज्ञानको तथा (तत्त्वद्वयवैराग्यम्) दो तत्वों के वैराग्य को (च) और (एकतत्त्वभक्तिम्) एक ब्रह्मतत्त्वकी भक्ति को (प्राप्य) पाकर के (तत्त्वहितपुरुषार्थज्ञानार्थम्) तत्त्व के हित पुरुषार्थ ज्ञान के लिये (अर्थकामानुपहतम्) अर्थ और कामसे अनुपहत (वेदशास्त्रनिदानज्ञम्) वेद तथा शास्त्र के कारण को जाननेवाला और (लोकपरिग्रहवन्तम्) लोक के परिग्रहवाले (आचार्य्यम्) सदाचार्य को (समाश्रित्य) समाश्रयण करके (स्रवदश्रुनेत्रः) आँख से लोर गिरते हुए पुरुष (स्वस्य) अपने (प्राक्) पहले के (स्थितम्) स्थित (देहात्माभिमानम्) देह में आत्माभिमान को तथा (केवलात्माभिमानम्) केवल आत्माभिमान को (च) और (अन्यत्) अन्यभी (अर्थजातम्) अर्थ के समूह को (स्वयम्) अपने से (एव) निश्चय करके (साक्षात्) साक्षात् (विज्ञापयति) विज्ञापन करता है (च) और (आचार्य्यः) सदाचार्य्य (निर्हेतुककृपया) निर्हेतुक कृपा करके (अस्य) इस प्रपन्नजन के (नेत्राश्रु) आँख के आँसू को (परिमृज्य) शुद्ध करके (ईश्वरस्वातन्त्र्यस्य) सर्वेश्वर की स्वतन्त्रा की और (आत्मपारतंत्र्यस्य) जीवात्मा की परतंत्रता की (सूचकम्) सूचना करनेवाले (अस्य) इस (आत्मनः) जीवात्मा के (च) और (ईश्वरस्य) सर्वेश्वर के (दुस्त्यजसम्बन्धस्य) दुस्तत्यज सम्बन्ध को (व्यञ्जकम्) जनानेवाला (अष्टसूत्रम्) आठ सूतवाला (त्रिविभागम्) तीन विभाग से युक्त (माङ्गल्यसूत्रम्) माङ्गल्य सूत्र (अस्ति) है। अर्थात् ॐ यह पहला सूत और न यह दूसरा सूत मः यह तीसरा सूत तथा ना यह चौथा सूत और रा यह पाँचवाँ सूत तथा 'य' यह छठवाँ सूत और 'णा' यह सातवाँ सूत तथा 'य' यह आठवाँ सूत इस प्रकार के आठ सूत का मूल मन्त्र रूप माङ्गल्य सूत्र है। क्योंकि नारायणोपनिषद् में लिखा है कि ॥ **ओम् इत्येकाक्षरं**

नम इति द्वे अक्षरे नारायणायेति पञ्चाक्षराणि ॥ नारा० श्रु० ३ ॥ ॐ यह एक अक्षर तथा नमः यह दो अक्षर और नारायणाय यह पाँच अक्षर है ।।३।। और मूलमन्त्ररूप माङ्गल्य सूत्र में ॐ यह पहला विभाग है, तथा नमः यह दूसरा विभाग है, और नारायणाय यह तीसरा विभाग है । क्योंकि नारायणोपनिषद् में लिखा है कि **॥ ओम् इत्यग्रे व्याहरेत् नम इति पश्चात् नारायणायेत्युपरिष्टात् ॥ नारा० श्रु० ३ ॥** ॐ यह आगे उच्चारण करे इसके बाद नमः और पीछे नारायणाय यह उच्चारण करे ।।३।। (इति) इस प्रकार के (महाश्रीमन्त्रम्) श्रेष्ठ मूलमन्त्र को (उपदिशति) आचार्य उपदेश देते हैं और (स्वरूपवैशद्यवान्) स्वरूप वैशद्यवाला (स्वरक्षणाशक्तः) अपनी रक्षा करने में असमर्थ (ईश्वरम्) सर्वेश्वर को (अवलम्ब्य) अवलम्बन करके (वर्तस्व) तुम ठहरो (इति) इस प्रकार के (वदति) कहते हैं । (च) और (अयम्) यह (पूर्वाकारान्) पहले के आकारों को (त्यक्त्वा) छोड़कर (मातापितरौ) माता और पिता (उत्पत्तिम्) उत्पत्ति को (अकुरुताम्) किये हैं । (प्रसवित्री) प्रसव करनेवाली (माता) माता (त्वम्) तुम हो (च) और (उत्पादकः) उत्पन्न करनेवाला (पिता) पिता भी तुम हो । (च) और (उत्पादकः) उत्पादक (बन्धुः) बन्धु तुम हो (इत्याद्युक्तप्रकारेण) इत्यादि करके कहे हुए प्रकार से (श्रीमन्त्रम्) मूलमन्त्र को (मातरम्) माता और (आचार्य्यम्) आचार्य को (पितरम्) पिता (मत्वा) मानकर (आचार्याभिमतनामरूपे) आचार्य के अभिमत नाम और रूप को (धृत्वा) धारणकर (आचार्यहृदयानुसारेण) आचार्य के हृदय के अनुसार (भोजनादीन्) भोजन आदि को और (प्रवृत्तिनिवृत्ती) प्रवृत्ति तथा निवृति को (च) और (विधिनिषेधौ) विधि तथा निषेध को (कुर्वन्) करते हुए (आचार्य्येण) आचार्य्य से (आदरेण) आदर करके (अधिष्ठितः) अधिष्ठित (देशः) देश (एव) निश्चय करके (दिव्यदेशः) दिव्यदेश है । और (आचार्य्यहृदयेन) आचार्य के हृदय से (सहवासयोग्यतया) सहवास की योग्यता करके (कल्पिताः) कल्पित (परमसत्त्वेनिष्ठाः) परमसत्त्वगुणमेंनिष्ठ (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव (एव) निश्चय करके (बन्धवः) बन्धु हैं । तथा (तेषाम्) उन श्रीवैष्णवों के (ऐश्वर्य्यत्वेन) ऐश्वर्य्य करके (अभितम्) अभिमत (आचार्य्यकैङ्कर्य्यम्) आचार्य का कैङ्कर्य्य (एव) निश्चय करके (स्वस्य) अपना (ऐश्वर्य्यम्) ऐश्वर्य्य है । (तत्कैङ्कर्य्यप्रार्थना) और आचार्य के कैङ्कर्य्य की प्रार्थना (एव) निश्चय करके (स्वस्य) अपनी (देहयात्रा) देह की यात्रा है (इति) इस प्रकार के (मत्वा) मानकर (उत्तमकुलेषु) श्रेष्ठ कुल में (न) नहीं (जातः) मैं उत्पन्न हुआ हूँ और (मम) मेरा (कर्मज्ञानादिषु) कर्म ज्ञान भक्ति आदि में (कः) कोई (अपि) भी (उपायः) उपाय (न) नहीं (अस्ति) है । (लौकिकैः) लौकिक (मनुष्यैः) मनुष्यों के (सह) साथ (सञ्चरामि) सञ्चार करता हूँ (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (स्ववैलक्षण्यम्) अपनी

विलक्षणता तथा (एतद्देशवासासहिष्णुता) इस देश के निवास में असहिष्णुता (च) और (विलक्षणदेशगमने) विलक्षण देश के गमन में (त्वरा) त्वरा (शरीरे) अपने देह में (ज्ञायेत) जाना जाय (तथा) वैसे (निर्मलः) मल से रहित प्रपन्नजन (मोक्षपदभगवत्प्राप्तिपर्य्यन्तम्) मोक्ष को प्रकर्ष रूप से देनेवाले श्रीमन्नारायण भगवान् की प्राप्तिपर्यन्त (आचार्य्यसमीपे) आचार्य के पास में (तिष्ठति) ठहरता है ।।कमिति।।



मू०–ज्ञानफलभगवत्प्राप्तिसमये पूर्वाकारान् त्यक्त्वा-आचार्य्यबद्धस्वरूपानुबन्धिमङ्गलसूत्रार्थानुसन्धानेन वर्त-मानोऽपि भगवत्स्वरूपतिरोधानकरं विपरीतज्ञानजनकं शरीरसम्बन्धं रुचिवासनाभ्यां सह त्यक्त्वा नद्यां स्नात्वा तीरमारुह्य पतिबन्धुभिरलङ्कृता स्वरूपानुरूपदेशे तद्बन्धु-समूहे प्रविश्य स्वार्थस्वरूपनामभोजनप्रवृत्तिनिवृत्तिविधि-निषेधदेशवासबन्ध्वैश्वर्य्यप्रार्थनारहिता नारीव-अहमन्न-महमन्नमिति वदति "सदा पश्यन्ती" त्युक्तप्रकारेण अनिमेषं पश्यति छायावासत्वमनुगच्छेदित्युक्तप्रकारेण छायावत् परतन्त्रो भवति, अयमर्थः आचार्य्येण विषयीकृ-तस्य मुमुक्षोरन्वहं विचारणीयः, तथाहि काश्चित्कन्यां किञ्चिन्मन्त्रसम्बन्धेन पाणौ गृह्णाति चेत् तस्याः पूर्वावस्थां त्यक्त्वा भर्त्तुरभिमाने वर्तनमावश्यकं किञ्चिन्मन्त्रसम्बन्धेन यज्ञोपवीतं दधतो द्विज इति नाम भवति, यज्ञे दीक्षितस्य पूर्वावस्था निवर्तते, अवभृथस्नानपर्यन्तं यजमानस्वरूपा-नुरूपान्यनुष्ठानानि भवन्ति, संन्यासी पूर्वाकारान् त्यक्त्वा आश्रमोचितान्यनुतिष्ठति, एवं जीवन्मुक्तस्य मुमुक्षोः पूर्वाकाराणां त्यागो भगवत्कैङ्कर्य्यैकनिरतत्वं भगवत्प्राप्तित्वरा

९२ ९३ ९४ ९५
चावश्यकीत्यवोचत् ॥३८७॥

अर्थ--(ज्ञानफलभगवत्प्राप्तिसमये) ज्ञानका फल जो भगवत्प्राप्ति उसके समय में (पूर्वाकारान्) पहले के आकारों को (त्यक्त्वा) छोड़कर (आचार्य्यबद्धस्वरूपानुबन्धिमङ्गलसूत्रार्थानुसन्धानेन) सदाचार्य से बाँधे हुए स्वरूप के अनुबन्धी मङ्गल-सूत्र मूल मन्त्र के अनुसन्धान करने से (वर्तमानः) वर्तमान रहता हुआ (अपि) भी (भगवत्स्वरूपतिरोधानकरम्) भगवान् के स्वरूप में तिरोधान करनेवाले (शरीरसम्बन्धम्) देह के सम्बन्ध को (रुचिवासनाभ्याम्) रुचि और वासना के (सह) साथ (त्यक्त्वा) छोड़कर (नद्याम्) नदी में (स्नात्वा) स्नान करके (तीरम्) नदी के तीर पर (आरुह्य) चढ़कर (पतिबन्धुभिः) पति और बन्धुओं से (अलङ्कृता) सुशोभित (स्वरूपानुरूपदेशे) स्वस्वरूप के अनुरूप देश में (तद्बन्धुसमूहे) उन बन्धुओं के समूह में (प्रविश्य) पैठकर (स्वार्थस्वरूपनामभोजनप्रवृत्तिनिवृत्तिविधिनिषेधदेशवासबन्ध्वैश्वर्य्यप्रार्थनारहिता) अपने लिये स्वरूप तथा नाम और भोजन तथा प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा विधि और निषेध तथा देश और सहवास तथा बन्धु और ऐश्वर्य्य इन सबों की प्रार्थना से रहित (नारी) स्त्री के (इव) समान (अहम्) मैं (अन्नम्) अन्न हूँ (अहम्) मैं (अन्नम्) अन्न हूँ (इति) इस प्रकार से (वदति) कहता है। (सदा) हमेशा (पश्यन्ति) दिव्य सूरिलोग देखते हैं (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (अनिमेषम्) बिना पलक गिराये हुए (पश्यति) देखते हैं। (छायावासत्वम्) छाया की वासता को (अनुगच्छेत्) प्राप्त करे (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (छायावत्) छाया के समान (परतन्त्रः) परतन्त्र (भवति) होता है। (अयम्) यह (अर्थः) अर्थ (आचार्य्येण) आचार्य से (विषयीकृतस्य) विषयीकृत (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुष के (अन्वहम्) रोज रोज (विचारणीयः) विचार करने योग्य है (तथाहि) उसी को दिखाते हैं कि (काश्चित्) किसी (कन्याम्) कन्या को कोई पुरुष (किञ्चिन्मन्त्रसम्बन्धेन) पाणिग्रहण के किसी मन्त्र के सम्बन्ध से (चेत्) यदि (पाणौ) अपने हाथ में (गृह्णाति) ग्रहण करता है तो (तस्याः) उस कन्या को (पूर्वावस्थाम्) पहले की अवस्था को (त्यक्त्वा) छोड़कर (भर्तुः) अपने पति के (अभिमाने) अभिमान में (वर्तनम्) रहना (आवश्यकम्) अत्यन्त जरूरी है। और (किञ्चिन्मन्त्रसम्बन्धेन) किसी उपनयन के मन्त्र के सम्बन्ध से (यज्ञोपवीतम्) जनेऊ को (दधतः) धारण करने से (द्विजः) द्विज (इति) इस प्रकार के (नाम) नाम (भवति) होता है। और (यज्ञे) यज्ञ में (दीक्षितस्य) दीक्षित पुरुष की (पूर्वावस्था) पहले की अवस्था (निवर्तते) निवृत हो जाती है तथा (अवभृथस्नानपर्यन्तम्) यज्ञान्त में अवभृथ स्नान पर्यन्त (यजमानस्वरूपानुरूपाणि) यजमान के स्वरूप के अनुरूप (अनुष्ठानानि)

अनुष्ठान (भवन्ति) होते हैं। और (संन्यासी) संन्यासी (पूर्वाकारान्) पहले के आकारों को (त्यक्त्वा) छोड़कर (आश्रमोचितानि) संन्यासाश्रम के योग्य कर्मों को (अनुतिष्ठति) अनुष्ठान करते हैं (एवम्) इसी प्रकार के (जीवन्मुक्तस्य) जीवन्मुक्त (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुष के (पूर्वाकाराणाम्) पहले के आकारों का (त्यागः) त्याग तथा (भगवत्कैङ्कर्य्यैकनिरतत्वम्) भगवान् के कैङ्कर्य्य में एक निरतता (च) और (भगवत्प्राप्तित्वरा) श्रीमन्नारायण भगवान् की प्राप्ति में त्वरा (आवश्यकी) आवश्यक है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। इस वार्ता में **॥ सदा पश्यन्ति ॥ आरुणिकोपनि० श्रु० ५ ॥** वीं का यह प्रतीक है, इससे सम्पूर्ण इसको यहाँ पर लिखकर इसका अर्थ लिखता हूँ **॥ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ आरुणिकोपनि० श्रु० ५ ॥** उस श्रीविष्णु भगवान् के परम पद को सर्वदा सूरि लोग देखते हैं। दिव में विस्तृत नेत्र के समान उस पद को ब्रह्मवेत्ता विप्र सब क्रोध रहित जागते हुए प्राप्त करते हैं। जो श्रीविष्णु भगवान् का परम पद है ॥५॥ यह श्रुति वराहोपनिषद् के पाँचवें अध्याय के अन्त में और मुक्तिकोपनिषद् के अन्त में भी लिखी हुई है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि वासना किसको कहते हैं और वह कितने प्रकार की कौन कौन सी है ? इन प्रश्नों का उत्तर मुक्तिकोपनिषद् में लिखा है कि; **॥ दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम्। यदा दानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्तिता ॥ मुक्तिको० अध्या० २, श्रु० ५७ ॥** दृढ़ भावना करके पूर्व और पर के विचार को छोड़कर जो पदार्थ को ग्रहण करना है उसी को वासना कहते हैं ॥५७॥ और **॥ वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा। मलिना जन्महेतुः स्याच्छुद्धा जन्मविनाशिनी ॥ मुक्ति० अ० २, श्रु० ६१॥ अज्ञानसुघनाकारा घनाहङ्कारशालिनी। पुनर्जन्मकरी प्रोक्ता मलिना वासना बुधैः। पुनर्जन्माङ्कुरं त्यक्त्वा स्थितिः सम्भृष्टबीजवत् ॥६२॥** वासना दो प्रकार की कही गई है, एक शुद्धा वासना और दूसरी मलिना वासना है उनमें मलिनावासना जन्म के कारण होती है और शुद्धावासना जन्म को नाश करनेवाली है ॥६१॥ अत्यन्त घन अज्ञान के आकारवाली तथा अत्यन्त घन अहङ्कार से शोभित होनेवाली और पुनर्जन्म को करनेवाली मलिना वासना ज्ञानियों से कही गई है और पुनर्जन्म के अङ्कुर को छोड़कर भूँजे हुए बीज के समान स्थिति शुद्धावासना कही गई है ॥६२॥ इस प्रकार के पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर होने पर तो यह प्रश्न होता है कि जीवन्मुक्त किसको कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर वराहोपनिषद् में लिखा है कि **॥ नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मनःप्रभा। यथा प्राप्तस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ वराहो० अध्या० ४, श्रु० २२ ॥ यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते। यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२४॥ यस्य**

नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२५॥ यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२६॥ यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्य्यपि शीतलः। परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२७॥ प्रजहाति यदा कामान्सर्वांश्चित्तगतान्मुने। मयि सर्वात्मके तुष्टः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२८॥ सुख में जिसके मन की प्रभा उदय नहीं होती है और दुःख में अस्त नहीं होती है तथा जो प्राप्त होता है उसी में रहता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२२॥ जो सुषुप्ति में स्थित जागता है और जिसका जाग्रत् नहीं है तथा जिसको बिना वासना का ज्ञान है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२३॥ जो राग, द्वेष और भय आदि के अनुरूप करते हुए भी भीतर में आकाश के समान नहीं ढँकता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२४॥ जिसको अहङ्कृत भाव नहीं होता है और करते हुए तथा नहीं कते हुए जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२५॥ जिससे लोक उद्विग्न नहीं होता है और जो लोक से उद्विग्न नहीं होता है तथा हर्ष अमर्ष और भय से जो रहित हो वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२६॥ जो सम्पूर्ण अर्थों के समूहों में व्यवहार करते हुए भी शीतल रहता है और दूसरे के लिये कार्य करने में पूर्णात्मा के समान रहता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२७॥ हे मुने ! समस्त चित्त में प्राप्त कामनाओं को जो जिस काल में परित्याग कर देता है और सर्वात्मा श्रीमन्नारायण भगवान् में सन्तुष्ट हो जाता है वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२८॥ इस तीन सौ सतासिवीं वार्ता में तीन सौ ईकहत्तर पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८७॥



अब वेदान्ती स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यत्युक्ता वार्ता ॥

मू०–मुमुक्षुः प्रपन्नः स्वात्मानं कारागृहे निगलितं महासमुद्रे पतितमन्धं विषदष्टं चानुसन्दधीत, अयं चानुसन्धानप्रकारः, देहः कारागृहं देहानुबन्धिनो भार्य्यापुत्रादयः, तत्रस्थसमुदायः-अहङ्काराममकारादयः आवरणम्, आशापाशरज्जुः, अविवेकोऽवगुण्ठनमिन्द्रियाण्यनुचारिणः, मनोऽवलम्बनं स्वयं कारागृहबद्धः, ईश्वरो विमोचक इति संसारो

महासमुद्रः, आशा महाजलौघः, मनोविकारो वायुक्षोभः, अनुरागो महावर्त्तः, अहङ्कारममकारादयोग्राहादयः, आध्यात्मिकादयो विचिपरम्पराः, शरीरं भिन्ननौः, तद्रक्षणादयो महाभाराः, स्वयं महासमुद्रे पतितः, ईश्वर उत्तारक इति मनोनेत्रम्, अज्ञानं निमिः, कामः काचः, लोकः कामिनी, उपभोगः पुरुषार्थः, अकृत्यकरणं तारकम्, अज्ञानं स्खलनम्, नरकोऽवटः, स्वयमन्धः, सर्वेश्वरोऽवलम्बनयष्टिरिति, संसारो गुल्मः, शरीरं वल्मीकम्, इन्द्रियाणि विषधराः, तद्विषयो विषं तत्सन्निधिर्दशनम् अनुभवो व्याप्तिः, मोहो मूर्च्छा, स्वयं विषदष्टः, ईश्वरः-औषधमिति प्रपन्नस्वरूपम् अस्मन्मनुष्याणां द्वयव्यतिरिक्तानुन्धानं सर्वं समुद्रघोषायेति यत्युक्तिः ॥३८८॥

अर्थ–(मुमुक्षुः) मोक्ष की इच्छा करनेवाला (प्रपन्नः) प्रपन्नजन (कारागृहे) जेल में (निगलितम्) बँधे हुए और (महासमुद्रे) महासागर में (पतितम्) गिरे हुए तथा (अन्धम्) अन्धे (च) और (विषदष्टम्) विष से डँसे हुए (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। (च) और (अयम्) यह (अनुसन्धानप्रकारः) अनुसन्धान प्रकार है। (देहः) देह (कारागृहम्) जेल है। और (देहानुबन्धिनः) देहानुबन्धी (भार्य्यापुत्रादयः) स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धी हैं। तथा (तत्रस्थसमुदायः) वहाँपर रहनेवालों का समुदाय (अहङ्काराममकारादयः) अहङ्कार और ममकार आदि हैं। और (आवरणम्) आवरण (आशापाशरज्जुः) आशापाशरज्जु है। तथा (अविवेकः) वेविचार (अवगुण्ठनम्) ताला या बेरिया है। और (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ सब (अनुचारिणः) अनुचारी हैं। तथा (मनः) मन (अवलम्बनम्) अवलम्बन है और (स्वयम्) अपने से (कारागृहबद्धः) जीवात्मा जेल में बँधाया है। तथा (ईश्वरः) सर्वेश्वर (विमोचकः) छुड़ानेवाले हैं (इति) इस प्रकार के जेल में बँधी हुई आत्मा को अनुसन्धान करे। और (संसारः) संसार (महासमुद्रः) महासागर है। तथा (आशा) आशा (महाजलौद्यः) बड़ा जल का समूह है। और (मनोविकारः) मनका विकार (वायुक्षोभः) हवा का क्षोभ है। तथा (अनुरागः) अनुराग (महावर्त्तः) बड़ा चकोह है। और (अहङ्काराममकारादयः) अहङ्कार तथा ममकार आदि (ग्राहादयः) घरियाल

बोच आदि हैं। तथा (आध्यात्मिकादयः) आध्यात्मिक आदि (वीचिपरम्पराः) लहरों की परम्परा है। और (शरीरम्) देह (भिन्ननौः) फुटही नौका है। तथा (तद्रक्षणादयः) उस देह की रक्षा आदि (महाभाराः) बड़ाभारी बोझ है। और (स्वयम्) अपने से (महासमुद्रे) महासागर में (पतितः) जीवात्मा गिर गयी है। तथा (ईश्वरः) सर्वेश्वर (उत्तारकः) पार करनेवाले हैं (इति) इस प्रकार के महासागर में गिरी हुई आत्मा को अनुसन्धान करे। और (मनः) मन (नेत्रम्) आँख है। तथा (अज्ञानम्) अज्ञान (निमिः) निमि है। और (कामः) काम (काचः) काच है। तथा (लोकः) संसार (कामिनी) स्त्री है। और (उपभोगः) उपभोग (पुरुषार्थः) पुरुषार्थ है। तथा (अकृत्यकरणम्) नहीं करने योग्यकर्मों को करना (तारकम्) आँख की पुतली है। और (अज्ञानम्) अज्ञान (स्खलनम्) गिरना है। तथा (नरकः) नरक (अवटः) गढ़ा है। और (स्वयम्) अपने से (अन्धः) जीव अन्धा हुआ है। तथा (सर्वेश्वरः) सबका स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् (अवलम्बनयष्टिः) पकड़ने के लिये लाठी हैं (इति) इस प्रकार से अन्धी आत्मा को अनुसन्धान करे। और (संसारः) संसार (गुल्मः) गुल्म है। तथा (शरीरम्) देह (वल्मीकम्) वल्मीक है। और (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ सब (विषधराः) विष को धारण करनेवाली हैं। तथा (तद्विषयः) उन इन्द्रियों के विषय शब्दादि (विषम्) विष है। और (तत्सन्निधिः) उन शब्दादि विषयों की सन्निधि (दशनम्) डँसना है। तथा (अनुभवः) विषयों का अनुभव (व्याप्तिः) व्याप्ति है। और (मोहः) मोह (मूर्च्छा) मूर्च्छा है। तथा (स्वयम्) अपने से (विषदष्टः) जीवात्मा विष से डँसी हुई है। और (ईश्वरः) सर्वेश्वर (औषधम्) औषध हैं (इति) इस प्रकार के विषदष्ट आत्मा को अनुसन्धान करे। (प्रपन्नस्वरूपम्) प्रपन्न का स्वरूप (अस्मन्मनुष्याणाम्) हम सब मनुष्यों के (द्वयव्यतिरिक्तानुसन्धानम्) द्वय मन्त्र से अन्य का अनुसन्धान करना (सर्वम्) सब कुछ (समुद्रघोषाय) समुद्रघोष के लिये हैं (इति) इस प्रकार से (यत्युक्तिः) वेदान्ती स्वामीजी की उक्ति है। इस तीन सौ अठासिवीं वार्ता में एक सौ दो पद हैं। इति यत्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८८॥

अब कलिवैरिदास स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ कलिवैरिदासोक्ता वार्ता ॥

मू०–इति कलिवैरिदासोऽवदत्, प्रपन्नस्य सर्वमप्यपेक्षितं किञ्चिदपि नापेक्षितं भगवत्प्राप्तेरिदं शरीरमेव न विरोधि स्वेन क्रियमाणं सत् कर्मापि विरोध्येव, तथाहि सौन्द-

र्य्यार्थं धृतं कञ्चुकं यथा-आलिङ्गनविरोधि भवति, पूर्वं भूषण-
मनुभाव्यं सम्बन्धो न सम्पाद्यः, अवरोधो निवर्तनीयः, अव-
रोधो नाम भगवत्प्राप्तिविरोधीच्छाप्रभृतयः ॥३८९॥

अर्थ–(इति) इस प्रकार के (कलिवैरिदासः) कलिवैरिदास स्वामीजी ने (अवदत्) कहा है कि (प्रपन्नस्य) प्रपन्नजन का (सर्वम्) सबकुछ (अपि) भी (अपेक्षितम्) अपेक्षित हैं। और (किञ्चित्) कुछ (अपि) भी (न) नहीं (अपेक्षितम्) अपेक्षित है। (भगवत्प्राप्तेः) भगवत्प्राप्ति का (इदम्) यह (शरीरम्) देह (एव) केवल (न) नहीं (विरोधी) विरोधी है। किन्तु (स्वेन) अपने से (क्रियमाणम्) किया हुआ (सत्) अच्छा (कर्म) कर्म (अपि) भी (विरोधी) विरोधी (एव) निश्चय करके है (तथाहि) उसी को दिखाते हैं कि (सौन्दर्य्यार्थम्) सौन्दर्य के लिये (धृतम्) धारण किया हुआ (कञ्चुकम्) कुर्त्ता (तथा) जैसे (आलिङ्गनविरोधि) आलिङ्गन करने में विरोधी (भवति) होता है। (पूर्वम्) पहले (भूषणम्) भूषण (अनुभाव्यम्) अनुभव करने योग्य होता है। और (सम्बन्धः) सम्बन्ध (न) नहीं (सम्पाद्यः) सम्पादन करने योग्य है। तथा (अवरोधः) रुकावट (निवर्तनीयः) हटाने योग्य है। और (अवरोधः) अवरोध (नाम) माने (भगवत्प्राप्तिविरोधीच्छाप्रभृतयः) श्रीमन्नारायण भगवान् की प्राप्ति में विरोध करनेवाली इच्छा आदि हैं। इस तीन सौ नवासिवीं वार्ता में बयालिस पद हैं। इति कलिवैरिदासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३८९॥

अब रामानुजाचार्य्य स्वामीजी के और कूरेश स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–कूरेशः रामानुजं प्रपत्तिः किदृशीत्यपृच्छत्, स
च प्रपत्तिः कर्मादीन् विहाय न तिष्ठति, एकस्मिन् सहस्रं
नास्ति सहस्रे-एकमस्ति गोष्पदे समुद्रो नास्ति समुद्रे
गोष्पदमस्ति, अतः सर्वं प्रपत्तावस्तीत्यवोचत्, तत् कथमिति
चेत्, यथा राजकुमारः कर्पूरनिकरं मुखे प्रक्षिप्य दन्तेन-
चर्वति तथायं द्वयमुच्चरतीति कर्म यथा स तद्रसं

५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२
पिबति तथायं निरन्तरं द्वयार्थमनुसन्दधातीति, ज्ञानं
६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९
यथा तद्रसपानेन स्वात्मानं विस्मरति तथा-अयमपि
७० ७१ ७२ ७३
तदर्थानुसन्धानजनितरसविषयेन स्वात्मानं विस्मरतीति
७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९
भक्तिः, अतः प्रपन्नस्यानुष्ठानं पादोपवर्हणवत् राजकुमारस्य
८० ८१ ८२ ८३ ८४
मुखे निक्षिप्तकर्पूररसवत् प्रपन्नस्य द्वयानुसन्धानं विना
८५ ८६ ८७
देहयात्रा नास्ति ॥३९०॥

॥ रामानुजार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ– कूरेशसहितो धीमान् शारदापीठमभ्यगात् ।
यतीन्द्रो विबुधान् सर्वान् शारदापीठमाश्रितान् ।
शास्त्रवादेन निर्जित्य तोषयामास शारदाम् ॥२६६॥

(कूरेशः) कूरेश स्वामीजी (रामानुजम्) रामानुजाचार्य्य स्वामीजी से (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (कीदृशी) कैसी होती है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (सः) वह रामानुजाचार्य्य स्वामीजी से (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (कर्मादीन्) कर्म तथा ज्ञान और भक्ति को (विहाय) छोड़कर (न) नहीं (तिष्ठति) ठहरती है। (एकस्मिन्) एक में (सहस्रम्) हजार (न) नहीं (अस्ति) है। और (सहस्रे) हजार में (एकम्) एक (अस्ति) है। (गोष्पदे) गौके खुर में (समुद्रः) समुद्र (न) नहीं (अस्ति) है। और (समुद्रे) समुद्र में (गोष्पदम्) गौके खुर (अस्ति) हैं। (अतः) इस कारण से (सर्वम्) सब कुछ कर्म तथा ज्ञान और भक्ति (प्रपत्तौ) प्रपत्ति में (अस्ति) है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। (तत्) वह कर्म तथा ज्ञान और भक्ति (कथम्) कैसे प्रपत्ति में है (इति) इस प्रकार से (चेत्) यदि कहो तो सुनो (यथा) जैसे (राजकुमारः) राजा का पुत्र (कर्पूरनिकरम्) कर्पूर के समूह को (मुखे) मुख में (प्रक्षिप्य) डालकर (दन्तेन) दाँत से (चर्वति) चबाता है (तथा) वैसे (अयम्) यह प्रपत्ति-निष्ठ अधिकारी (द्वयम्) द्वयमन्त्र को (उच्चरति) उच्चारण करता है (इति) इस प्रकार के (कर्म) प्रपत्ति में कर्म है। और (यथा) जैसे (सः) वह राजकुमार (तद्रसम्) कर्पूर निकर के रस को (पिबति) पीता है (तथा) वैसे (अयम्) यह प्रपत्ति-निष्ठ अधिकारी (निरन्तरम्) हमेशा (द्वयार्थम्) द्वयमन्त्र के अर्थ को (अनुसन्दधाति) अनुसंधान करता है (इति) इस प्रकार से (ज्ञानम्) प्रपत्ति में ज्ञान है। और (यथा) जैसे वह राजकुमार (तद्रसपानेन) कर्पूर निकर के रस को पीने

से (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (विस्मरति) भूल जाता है (तथा) वैसे (अयम्) यह प्रपत्तिनिष्ठ अधिकारी (अपि) भी (तदर्थानुसन्धानजनितरसविषयेन) द्वयमन्त्र के अर्थ को अनुसन्धान करने से उत्पन्न जो रस उसके विषय होने से (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (विस्मरति) भूल जाता है (इति) इस प्रकार से (भक्तिः) प्रपत्ति में भक्ति है। (अतः) इस कारण से (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जन के (अनुष्ठानम्) अनुष्ठान (पादोपबर्हणवत्) श्रीपाद के उपबर्हण के समान है। और (राजकुमारस्य) राजा के पुत्र के (मुखे) मुख में (निक्षिप्तकर्पूररसवत्) डाले हुए कर्पूर के रस के समान है। (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जन को (द्वयानुसन्धानम्) द्वयमन्त्र के अनुसन्धान के (विना) बिना (देहयात्रा) शरीर की यात्रा (न) नहीं (अस्ति) है। इस तीन सौ नब्बे की वार्ता में सत्तासी पद हैं। इति रामानुजाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९०॥

अब भट्टारक स्वामीजी के और वेदान्ती स्वामीजी के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ भट्टारकोक्ता वार्ता ॥

मू०–वेदान्ती भट्टार्य्यं प्रपत्तिः ज्ञानविशेषः क्रिया-विशेषो वेत्यपृच्छत्, स च वस्तुविशेष इत्यवदत्, श्रीमन्त्रः क्रीतदुग्धवत् द्वयं स्तन्यदुग्धवत् अस्माकं द्वयं कूलसङ्कुचित-कावेरीवत् तद्घट्टवच्च तिष्ठति परमपदमुद्वेलकावेरी रामकृष्णा-दिविभवः कूलसङ्कुचितकावेरी तत्रावगाहनयोग्यः घट्टश्च श्रीमन्त्रः द्वयं च-एतन्निष्ठेनावलोकनीयः क इति चेत्, श्रीशेषस्याङ्के गरुडस्य पृष्ठे सेनान्यो वेत्रस्याधश्च वर्त-मानः प्राप्यः ॥३९१॥

अर्थ–(वेदान्ती) वेदान्ती स्वामीजी ने (भट्टार्य्यम्) भट्टारक स्वामीजी से (प्रपत्तिः) प्रपत्ति (ज्ञानविशेषः) ज्ञान विशेष है (वा) अथवा (क्रियाविशेषः) क्रिया विशेष है (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछा। (च) और (सः) उस भट्टारक स्वामीजी ने (वस्तुविशेषः) प्रपत्ति वस्तु विशेष है (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। और (श्रीमन्त्रः) मूलमन्त्र (क्रीतदुग्धवत्) खरीदे हुए दूध के समान है। तथा (द्वयम्)

द्वयमन्त्र (स्तन्यदुग्धवत्) माता के स्तन में होनेवाले दूध के समान है। (अस्माकम्) हम सब श्रीवैष्णवों का (द्वयम्) द्वयमन्त्र (कूलसङ्कुचितकावेरीवत्) किनारे में सङ्कुचित कावेरी नदी के समान है (च) और (तद्घट्टवत्) कावेरी नदी के घाट के समान (तिष्ठति) ठहरता है। (परमपदम्) परम पद (उद्वेलकावेरी) उद्वेलकावेरी नदी है। तथा (रामकृष्णादिविभवः) राम कृष्ण आदिक विभव भगवान् (कुलसङ्कुचितकावेरी) किनार सङ्कुचित कावेरी नदी हैं। (तत्र) उस कावेरी नदी में (अवगाहनयोग्यः) स्नान करने योग्य (च) और (घट्टः) घाट (श्रीमन्त्रः) मूलमन्त्र है (च) और (द्वयम्) द्वयमन्त्र है। (एतन्निष्ठेन) इस मूलमन्त्र में और द्वयमन्त्र में निष्ठा करनेवाले पुरुष से (अवलोकनीयः) देखने योग्य (कः) कौन पुरुष है (इति) इस प्रकार से (चेत्) यदि कहो तो सुनो (श्रीशेषस्य) श्रीशेष भगवान् के (अङ्के) अङ्क में और (गरुडस्य) गरुड़ भगवान् की (पृष्ठे) पीठपर (च) और (सेनान्यः) सेनापति विष्वक्सेन भगवान् के (वेत्रस्य) वेंत के (अधः) नीचे में (वर्तमानः) ठहरा हुआ (प्राप्यः) प्राप्त करने योग्य परपुरुष है। इस तीन सौ ईकानबे की वार्ता में उल्लास पद हैं। इति भट्टारकोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९१॥

अब तण्डुनूरुनंवी स्वामीजी के और मरुधनुर्नंवी स्वामीजी के सम्वादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ तण्डुनूरुनम्विमरुधनुर्नंविगदिता वार्ता ॥

मू०–तण्डुनूरुनम्वी स्वान्तिमदशायां मरुधनुर्नंविन-मयमात्मा-ईश्वरमाश्रित्य तीरं प्राप्तुमेकां वार्त्तां वदेत्य-वोचत्, स च भगवतो दुर्लभः, अस्यात्मनः सुलभः, भग-वत्प्राप्तेरनुरूपः-एकाञ्जलिरित्यवोचत्, चोरैः पीडनदशायां परिचितमुखावलोकनवत् विषनिवर्तकगरुडमुद्रावच्चास्माकं पुरस्कारभूता श्रीरस्तीत्यध्यवसायः कर्तव्यः, अस्याधिका-रिणः प्रकृतिसम्बन्धविनाशपर्य्यन्तमनुसन्धेयं किमिति चेत्, ईश्वरो नित्यः, आत्मा च नित्यः, एवमप्येतावत्कालं प्राप्तिर्नाभूदिति क्लेशः, ईश्वरश्चिरकालमप्राप्तिहेतुभूतेन देहेन

६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१
अयं रक्षक इत्यनुसन्धातुमवस्थापितवान् इत्यवस्थितिः,
७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९
एतावत्कालपर्य्यन्तमप्राप्तिहेतुरिदं शरीरम् इतः परमप्य-
८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९
प्राप्तिहेतुर्भवति किमिति भयं प्राप्तिहेतुरस्माभिः कोऽप्युपायो
९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७
न कृतः, अप्राप्तिहेतुरपराधः कृत इति स्वात्मानुसन्धानेन
९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४
भयं तदनुसन्धानेनाभयं च-एतद्द्वयं प्रकृतिसम्बन्ध-
१०५ १०६ १०७ १०८ १०९
नाशपर्यन्तं यस्यानुवर्तते सोऽधिकारी भवति ॥

॥ परकालस्तुतिः ॥

अर्थ–रङ्गं समालोक्य बुधान्तरङ्गं भक्त्या प्रहृष्टः स चतुष्कवीन्द्रः ।
सर्वं हि कैङ्कर्य्यमुदारकीर्तिं विधातुमैच्छद्विविधप्रकारैः ॥२६७॥

(तण्डुनूरुनम्वी) तण्डुनूरुनम्वी स्वामीजी ने (स्वान्तिमदशायाम्) अपनी अन्तिम दशा में (मरुधनुर्नम्विनम्) मरुधनुर्नम्वी स्वामीजी से (अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (ईश्वरम्) सर्वेश्वर को (आश्रित्य) आश्रयण करके (तीरम्) तीर को (प्राप्तुम्) प्राप्त कर लेवे, इस प्रकार की (एकाम्) एक (वार्ताम्) वार्ता को (वद) कहिये (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहा है। (च) और (सः) वह मरुधनुर्नम्वी स्वामीजी (भगवतः) श्रीमन्नारायण भगवान् के (दुर्लभः) दुर्लभ और (अस्य) इस (आत्मनः) जीवात्मा के (सुलभः) सुलभ तथा (भगवत्प्राप्तेः) भगवत् की प्राप्ति के (अनुरूपः) अनुरूप (एका) एक (अञ्जलिः) अञ्जलि है, (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। (चौरैः) चोरों से (पीडनदशायाम्) पीड़ा होने के समय में (परिचितमुखावलोकनवत्) परिचित पुरुष के मुख देखने के समान (च) और (विषनिवर्तकगरुडमुद्रावत्) विष को दूर करनेवाली गरुड़ मुद्रा के समान (अस्माकम्) हम सब प्रपन्नों के (पुरस्कारभूता) पुरस्कारभूत (श्रीः) श्रीदेवीजी (अस्ति) हैं (इति) इस प्रकार से (अध्यवसायः) अध्यवसाय (कर्तव्यः) करने योग्य है। (अस्य) इस प्रपन्न (अधिकारिणः) अधिकारी के (प्रकृतिसम्बन्धविनाशपर्य्यन्तम्) प्रकृति के सम्बन्ध विनाशपर्यन्त (अनुसन्धेयम्) अनुसन्धान करने योग्य (किम्) क्या है (इति) इस कार से (चेत्) यदि कहो तो सुनो (ईश्वरः) सर्वेश्वर (नित्यः) नित्य हैं (च) और (आत्मा) जीवात्मा (नित्यः) नित्य है (एवम्) इस प्रकार से होने पर (अपि) भी (एतावत्) इतना (कालम्) समयतक (प्राप्तिः) भगवान् की प्राप्ति (न) नहीं (अभूत्) हुई है (इति) इस प्रकार का (क्लेशः) क्लेश है। और (ईश्वरः) सर्वेश्वर (चिरकालम्) बहुत समयतक

(अप्राप्तिहेतुभूतेन) भगवान् की अप्राप्ति में कारण भूत (देहेन) देह से (अयम्) यह (रक्षकः) रक्षक हैं (इति) इस प्रकार के (अनुसन्धातुम्) अनुसन्धान करने के लिये (अवस्थापितवान्) अवस्थापित किये हैं (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति है। (एतावत्) इतने (कालपर्यन्तम्) समयपर्यन्त (अप्राप्तिहेतुः) भगवान् की अप्राप्ति में कारण (इदम्) यह (शरीरम्) देह है। (इतः) इसके (परम्) बाद (अपि) भी (अप्राप्तिहेतुः) भगवत् की नहीं प्राप्ति में कारण यह देह (भवति) होता है (किम्) क्या (इति) इस प्रकार से (भयम्) डर होना (प्राप्तिहेतुः) प्राप्ति में कारण है। (अस्माभिः) हम सबों से भगवत् प्राप्ति के लिये (कः) कोई (अपि) भी (उपायः) उपाय (न) नहीं (कृतः) किया गया है। (अप्राप्तिहेतुः) भगवत् की अप्राप्ति में कारण (अपराधः) अपराध (कृतः) हमसे किया गया है। (स्वात्मानुसन्धानेन) अपनी आत्मा को अनुसन्धान करने से (भयम्) डर होता है। (च) और (तदनुसन्धानेन) भगवान् को अनुसन्धान करने से (अभयम्) बिनाडर के होता है। (एतत्) ये पूर्वोक्त (द्वयम्) दोनों (प्रकृतिसम्बन्धनाशपर्य्यन्तम्) प्रकृति के सम्बन्ध विनाश पर्यन्त (यस्य) जिस पुरुष को (अनुवर्तते) रहता है (सः) वह पुरुष (अधिकारी) अधिकारी (भवति) होता है ।।खमिति ।।



मू०–अस्याधिकारिणः-उपायतया कर्तव्यं किञ्चिदपि नास्ति, द्वयस्य पूर्वखण्डानुसन्धाने तृणच्छेदनस्यापि प्राप्ति-र्नास्ति, उत्तरखण्डानुसन्धाने मस्तककण्डूयनस्याप्यवसरो-नास्ति, ज्ञानप्रद आचार्य्यः, ज्ञानवर्द्धकाः श्रीवैष्णवाः, ज्ञान-विषयः सर्वेश्वरः, ज्ञानफलं भगवत्कैङ्कर्य्यम्, तद्भोग्यत्वं भाग-वतकैङ्कर्य्यम् ॥३९२॥

अर्थ–(अस्य) इस (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (उपायतया) साधनता करके (कर्तव्यम्) करने योग्य (किञ्चित्) कुछ (अपि) भी (न) नहीं (अस्ति) है। (द्वयस्य) द्वयमन्त्र के (पूर्वखण्डानुसन्धाने) "श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये" इस पूर्वार्द्ध के अनुसन्धान करने पर (तृणच्छेदनस्य) तृण तोड़ने की (अपि) भी (प्राप्तिः) प्राप्ति (न) नहीं (अस्ति) है। और (उत्तरखण्डानुसन्धाने) द्वयमन्त्र के "श्रीमते नारायणाय नमः" इस उत्तरार्द्ध के अनुसन्धान करने पर (मस्तककण्डूयनस्य)

माथा खुजलाने का (अपि) भी (अवसरः) मौका (न) नहीं (अस्ति) है। (ज्ञानप्रदः) ज्ञान को अच्छे प्रकार से देनेवाले (आचार्य्यः) आचार्य हैं। और (ज्ञानवर्द्धकाः) ज्ञान को बढ़ानेवाले (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब हैं। तथा (ज्ञानविषयः) ज्ञान का विषय (सर्वेश्वरः) सबका मालिक श्रीमन्नारायण भगवान् हैं। और (ज्ञानफलम्) ज्ञान का फल (भगवत्कैङ्कर्य्यम्) भगवान् का कैङ्कर्य है। तथा (तद्भोग्यत्वम्) उसका पराकाष्ठाभूत भोग्य (भागवतकैङ्कर्य्यम्) भागवतों का कैङ्कर्य है। इस तीनसौ बानबे की वार्ता में एक सौ चालीस पद हैं। इति तण्डुनूरुनम्विमरुधनुर्नम्विगदितवार्ता-व्याख्यानम् ॥३९२॥

अब रामानुजाचार्य्य स्वामीजी के और दाशरथि स्वामीजी के संवादरूप वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–रामानुजेन धनुर्दासविषयाः दाशरथिं प्रत्युक्ताः-दश वार्ताः दाशरथिस्तत्पादौ प्रणम्य-अस्माकमस्मत्स्वामिनां च विद्यमानं वैलक्षण्यं वदेत्यपृच्छत्, स च अहमेव तवैतद्वक्तुमुद्युक्तः-इदानीं त्वमप्यपृच्छः, इत्यतीवप्रीतः सकलवेदशास्त्रेष्वितिहासपुराणेषु तत्सारभूतदिव्यसूर्य्युक्तिषु च प्रतिपाद्यं गुह्यमर्थमाभिर्दशभिर्वार्ताभिर्दाशरथिं प्रत्यवोचत्, तत्र प्रथमा वार्ता-अस्माकमस्मत्स्वामिनां च वैलक्षण्यं वयं लोकयात्रार्थं कुर्म इति प्रथमा वार्ता ॥३९३॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– जगत्संरक्षणार्थाय विष्वक्सेनो जगत्पतिः।
जातो रामानुजो भूम्यां भूतपुर्य्यां बभूव सः ॥२६८॥

(रामानुजेन) रामानुजाचार्य स्वामीजी से (धनुर्दासविषयाः) धनुर्दास विषयक (दाशरथिम्) दाशरथि स्वामीजी के (प्रति) प्रति (उक्ताः) कही हुई (दश) दस (वार्ताः) अधोलिखित वार्ताएँ हैं। (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजी (तत्पादौ)

रामानुजाचार्य्य स्वामीजी के दोनों चरणारविन्दों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (अस्माकम्) हम सबों के (च) और (अस्मत्स्वामिनाम्) हम सबों के स्वामी के (विद्यमानम्) विद्यमान (वैलक्षण्यम्) विलक्षणता को (वद) कहिये (इति) इस प्रकार से (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (सः) वह रामानुजाचार्य्य स्वामीजी (अहम्) मैं (एव) निश्चय करके (तव) तुझे (एतत्) इस वस्तु को (वक्तुम्) कहने के लिये (उद्युक्तः) तैयार थे (इदानीम्) इस समय में (त्वम्) तूने (अपि) भी (अपृच्छः) पूछ दिया (इति) इस कारण से (अति) अत्यन्त (प्रीतः) प्रसन्न के (इव) समान (सकलवेदशास्त्रेषु) सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में और (इतिहासपुराणेषु) इतिहास पुराणों में (च) और (तत्सारभूतदिव्यसूर्य्युक्तिषु) उन वेद शास्त्र इतिहास पुराणों के सारभूत दिव्यसूरियों की उक्तियों में (प्रतिपाद्यम्) प्रतिपादन करने योग्य (गुह्यम्) छिपाने योग्य (अर्थम्) अर्थ को (आभिः) इन अधोलिखित (दशभिः) दस (वार्ताभिः) वार्ताओं से (दाशरथिम्) दाशरथि स्वामीजी के (प्रति) प्रति (अवोचत्) कहे हैं। (तत्र) उस दस में (प्रथमा) पहली (वार्ता) वार्ता है कि (अस्माकम्) हम सबों के (च) और (अस्मत्स्वामिनाम्) हम सबों के स्वामियों की (वैलक्षण्यम्) विलक्षणता को (वयम्) हम सब (लोकयात्रार्थम्) लोक की यात्रा के लिये (कुर्मः) करते हैं (इति) इस प्रकार की (प्रथमा) पहली (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ तिरानबे की वार्ता में साठ पद हैं। इति रामानुजाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥२९३॥

अब श्रीभाष्यकार की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–ते[१] लौकिकसङ्गतिं[२] त्यक्त्वा[३] नारायणमवाश्रयन्त[४][५][६] इति द्वितीया[७] वार्ता[८][९] ॥३९४॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– एष रामानुजः श्रीमाँल्लीलामानुषविग्रहः।
प्रधानो नित्यसूरीणामवतीर्णोऽधुना भुवि ॥२६९॥

(ते) वे प्रपन्न सब (लौकिकसङ्गतिम्) लौकिकजनों की सङ्गति को (त्यक्त्वा) छोड़कर (नारायणम्) नारायण भगवान् को (एव) निश्चय करके (आश्रयन्ते) आश्रयण करते हैं (इति) इस प्रकार की (द्वितीया दूसरी (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ चौरानबे की वार्ता में नौ पद हैं। इति रामानुजाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९४॥

अब लक्ष्मणाचार्य्यजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–दिव्यदेशानां श्रीरङ्गवेङ्कटकाञ्चीनां यथा वैलक्षण्यं वयं पूवहस्ता इव-उभयमपि न त्यजामः, ते सारज्ञाः नौस्थाः- इवैकमेवाश्रयन्त इति तृतीया वार्ता ॥३९५॥

॥ रामानुजार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ– यदाचार्य्यपदं नाम जगत्यस्मिन्महत्पदम् ।
तस्मिन्नेव यतिश्रेष्ठे तत्पदं सुप्रतिष्ठितम् ॥२७०॥

(श्रीरङ्गवेङ्कटकाञ्चीनाम्) श्रीरङ्गजी तथा वेङ्कटाद्रि और काँञ्ची इन (दिव्यदेशानाम्) दिव्य देशों के (यथा) जैसे (वैलक्षण्यम्) वैलक्षण्य होवे तैसे (वयम्) हम सब (पूवहस्ताः) तुमड़ी हाथ में लिये हुए के (इव) समान (उभयम्) दोनों को (अपि) भी (न) नहीं (त्यजामः) त्याग करते हैं। और (ते) वे सब (सारज्ञाः) सारको जाननेवाले (नौस्थाः) नौकापर ठहरे हुए पुरुषों के (इव) समान (एकम्) एक को (एव) निश्चय करके (आश्रयन्ते) आश्रयण करते हैं (इति) इस प्रकार की (तृतीया) तीसरी (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ पञ्चानबे की वार्ता में इक्कीस पद हैं। इति रामानुजाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९५॥

अब यतिराजस्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–इतरसूरीणां विष्णुचित्तस्य च यावत्तारतम्यं वयं संसारसमुद्रे वर्षे महामारुते च तत्रत्यलाभच्छेदहर्षाणां च पात्रीभूय तिष्ठामः, तेषामेतत् किञ्चिदपि नास्तीति चतुर्थी वार्ता ॥३९६॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– विना यतीन्द्रपादाब्जान्नान्योपायो हि विद्यते ।
तस्माद्यतीन्द्रपादाब्जं रक्षकं निखिलात्मनाम् ॥२७१॥

(इतरसूरीणाम्) अन्य दिव्य सूरियों के (च) और (विष्णुचित्तस्य) विष्णुचित्त स्वामीजी के (यावत्) जितना (तारतम्यम्) तारतम्य है। (च) और (वयम्) हम सब (संसारसमुद्रे) संसार सागर में तथा (वर्षे) वर्षा में और (महामारुते) बड़ी भारी आन्धी में (तत्रत्यलाभच्छेदहर्षाणाम्) वहाँ पर रहनेवालों के लाभ तथा हानि और हर्ष के (पात्रीभूय) पात्र बनकर (तिष्ठामः) रहते हैं। (च) और (तेषाम्) उस सब सज्जनों का (एतत्) यह पूर्वोक्त (किञ्चित्) कुछ (अपि) भी (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार की (चतुर्थी) चौथी (वार्ता) है। इस तीन सौ छियानबे की वार्ता में तेइस पद हैं। इति रामानुजार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९६॥

अब रामानुजाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्त्ता ॥

मू०–अणोर्महामेरोश्च यावत्तारतम्यं वयं सम्बन्धं कुलगोत्रं सूत्रमनुसरामः, ते सम्बन्धज्ञानानुष्ठानं कुलगोत्रसूत्रमनुसरन्तीति पञ्चमी वार्ता ॥३९७॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– निःश्रेयसफलावाप्त्यै सर्वेषां विदुषामपि।
विना यतीन्द्रपादाब्जादन्योपायो न विद्यते ॥२७२॥

(अणोः) अणुका (च) और (महामेरोः) महामेरु पर्वतका (यावत्) जितना (तारतम्यम्) तारतम्य है। (वयम्) हम सब (सम्बन्धम्) सम्बन्ध को (कुलगोत्रम्) और कुल गोत्र को (सूत्रम्) तथा सूत्र को (अनुसरामः) अनुसरण करते हैं। और (ते) वे सब लोग (सम्बन्धज्ञानानुष्ठानम्) सम्बन्ध ज्ञान के अनुष्ठान को और (कुलगोत्रसूत्रम्) कुलगोत्र सूत्र को (अनुसरन्ति) अनुसरण करते हैं। (इति) इस प्रकार की (पञ्चमी) पाँचवीं (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ सन्तानबे की वार्ता में सत्तरह पद हैं। इति रामानुजार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९७॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–इक्षोः[१] खण्डस्य[२] च[३] यावत्तारतम्यं[४] वयं[५] वेदरूपम्[६]-मिक्षुं[७] चर्वित्वा[८] भग्नदन्ताः[९] भवामः[१०], ते[११] सारूपं[१२] खण्डं[१३] भक्षयित्वा[१४] सुखिनो[१५] भवन्तीति[१६] षष्ठी[१७] वार्ता[१८] ॥३९८॥

॥ रामानुजार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ– ग्रामटिट्टिभकण्ठाग्रे बद्धं तालफलं यथा ।

जानीध्वं लक्ष्मणार्य्यस्य पदमेव हि रक्षकम् ॥२७३॥

(इक्षोः) ईख का (च) और (खण्डस्य) खाँड का (यावत्) जितना (तारतम्यं) तारतम्य है । (वयम्) हम सब (वेदरूपम्) वेदरूप (इक्षुम्) ईंख को (चर्वित्वा) चबा करके (भग्नदन्ताः) बिना दाँत के (भवामः) होते हैं । और (ते) वे लोग (सारूपम्) सारूप (खण्डम्) खाँड़ को (भक्षयित्वा) भक्षण करके (सुखिनः) सुखी (भवन्ति) होते हैं (इति) इस प्रकार की (षष्ठी) छठवीं (वार्ता) वार्ता है । इस तीन सौ अट्ठानबे की वार्ता में बीस पद हैं । इति रामानुजाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९८॥

अब लक्ष्मणाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजाचार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–भूमेः[१] आकाशस्य[२] च[३] यावत्तारतम्यं[४] वयं[५] शरीरेन्द्रिय-क्रौर्य्यम्[६] अनुसन्धाय[७] दुःखीभवामः[८], ते[९] भगवद्गुणाननुसन्धाय[१०] सुखीभवन्तीति[११] सप्तमी[१२] वार्ता[१३] ॥३९९॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– कृतानां सर्वपापानामनिशं करणत्रयैः ।

प्रायश्चित्तं यतीन्द्रस्य पादाब्जस्मरणं ध्रुवम् ॥२७४॥

(भूमेः) पृथ्वीका (च) और (आकाशस्य) आकाश का (यावत्) जितना (तारतम्यम्) तारतम्य है । (वयम्) हम सब (शरीरेन्द्रियक्रौर्य्यम्) देह और इन्द्रियों की क्रूरता को (अनुसन्धाय) अनुसन्धान करके (दुःखी भवामः) दुःखी होते हैं ।

और (ते) वे सब (भगवद्गुणान्) श्रीमन्नारायण भगवान् के वात्सल्यादि गुणों को (अनुसन्धाय) अनुसन्धान करके (सुखीभवन्ति) सुखी होते हैं (इति) इस प्रकार की (सप्तमी) सातवीं (वार्ता) वार्ता है। इस तीन सौ निन्यानबे की वार्ता में सोलह पद हैं। इति रामानुजार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥३९९॥

अब श्रीभाष्यकार स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

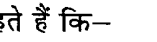
॥ अथ रामानुजार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–रात्रेर्दिनस्य च यावत्तारतम्यं वयं वेदरूपेऽन्धकारे प्रस्खलामः, ते भगवन्नामसहस्रानुसन्धानज्योतिषा सुखं सञ्चरन्तीत्यष्टमी वार्ता ॥४००॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– सत्यं सत्यं पुनः सत्यं यतिराजो जगद्गुरुः ।
स एव सर्वलोकानां समुद्धर्त्ता न संशयः ॥२७५॥

(रात्रेः) रात का (च) और (दिनस्य) दिन का (यावत्) जितना (तारतम्यम्) तारतम्य है। (वयम्) हम सब (वेदरूपे) वेदरूप (अन्धकारे) अन्धकार में (प्रस्खलामः) गिरते हैं। और (ते) वे सब (भगवन्नामसहस्रानुसन्धानज्योतिषा) श्रीमन्नारायण भगवान् के सहस्र नाम के अनुसन्धान के प्रकाश से (सुखम्) सुख को (सञ्चरन्ति) अच्छे प्रकार से प्राप्त करते हैं (इति) इस प्रकार की (अष्टमी) आठवीं (वार्ता) वार्ता है। इस चारसौ की वार्ता में सोलह पद हैं। इति रामानुजार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४००॥



अब लक्ष्मणाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–रत्नस्य पाषाणस्य च यावत्तारतम्यं वयं "मन्त्रमनुसन्दधामि चेत्, हृदय! सुखीभवे" इत्युक्तप्रकारेणानुदिनं मन्त्रमनुचिन्तयामः, ते अन्ते किं फलमिति मन्त्रमनु-

चिन्तयन्तीति नवमी वार्ता ॥४०१॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– हितोपदेशं विदधे सर्वेषां शृण्वतां तदा ।
यद्रामानुजपादाब्जं तदेव शरणं व्रज ॥२७६॥

(रत्नस्य) रत्न का (च) और (पाषाणस्य) पत्थर का (यावत्) जितना (तारतम्यम्) तारतम्य है। (वयम्) हम सब (चेत्) यदि (मन्त्रम्) मन्त्र को (अनुसन्दधामि) अनुसन्धान करते हैं तो (हृदय) हे हृदय ! (सुखीभवे) सुखी मैं होऊँगा (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकारसे (अनुदिनम्) रोज रोज (मन्त्रम्) मन्त्र को (अनुचिन्तयामः) अनुचिन्तन करते हैं। और (ते) वे सब (अन्ते) अन्त में (किम्) क्या (फलम्) फल है (इति) इस प्रकार से (मन्त्रम्) मन्त्र को (अनुचिन्तयन्ति) अनुचिन्तन करते हैं (इति) इस प्रकार की (नवमी) नवमी (वार्ता) वार्ता है। इस चार सौएक की वार्ता में सताईस पद हैं। इति रामानुजार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०१॥

अब रामानुजाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–पतिव्रतायाः परस्त्रियश्च यावत्तारतम्यम् इन्द्रियादीनां शेषभूताः वर्तामहे, ते तस्यैव शेषभूताः, इतरेषां शेषभूताः न भवन्तीत्येतदेव तेषामाधिक्यमिदं चाधिक्यं स्वामिन्यप्यणाचार्य्ये महापूर्णे च द्रष्टव्यमेतदाधिक्यम् तव मम चेतरेषां च नित्यानुसन्धेयमित्यवोचत्, दाशरथिरहमेतावत्कालमपचारमेवाकरवमितः परङ्किंकर्तव्यमित्यपृच्छत्, रामानुजश्च मुमुक्षोरेताः दश वार्ताः हृदयस्थाः चेत्, चरणौ सिध्यत इत्यवोचत् ॥४०२॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– तदेव शरणं मत्वा यतीन्द्रपदपङ्कजम् ।

वर्तस्व सततं वत्स नान्योपायो हि विद्यते ॥२७७॥

(पतिव्रतायाः) पतिव्रता स्त्री का (च) और (परस्त्रियः) पर स्त्री का (यावत्) जितना (तारतम्यम्) तारतम्य है। हम सब (इन्द्रियादीनाम्) इन्द्रिय आदि के (शेषभूताः) शेषभूत (वर्तामहे) वर्तमान हैं। और (ते) वे सब (तस्य) उसके (एव) निश्चय करके (शेषभूताः) शेषभूत हैं। (इतरेषाम्) इतरों के (शेषभूताः) शेषभूत (न) नहीं (भवन्ति) होते हैं (इति) इस प्रकार के कहे हैं। (एतत्) यही (एव) निश्चय करके (तेषाम्) इन सबों की (आधिक्यम्) अधिकता है। (च) और (इदम्) यह (आधिक्यम्) आधिक्य (स्वामिनि) स्वामी में (च) और (अणाचार्य्ये) अणाचार्यजी में तथा (महापूर्णे) महापूर्ण स्वामीजी में (अपि) भी (द्रष्टव्यम्) देखने योग्य है। (एतत्) यह (आधिक्यम्) आधिक्य (तव) तेरा (च) और (मम) मेरा (च) और (इतरेषाम्) अन्य पुरुषों के (नित्यानुसन्धेयम्) हमेशा अनुसन्धान करने योग्य है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। और (दाशरथिः) दाशरथि स्वामीजी (अहम्) मैं (एतावत्) इतना (कालम्) समय तक (अपचारम्) अपचार को (एव) निश्चय करके (अकरवम्) किया हूँ। (इतः) इसके (परम्) बाद (किम्) क्या (कर्तव्यम्) करने योग्य है (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। (च) और (रामानुजः) रामानुजाचार्य स्वामीजी ने (मुमुक्षोः) मुमुक्षु पुरुष की (एताः) ये पूर्वोक्त (दश) दस (वार्ताः) वार्ता (हृदयस्थाः) हृदय में स्थित (चेत्) यदि हो जायें तो (चरणौ) दोनों श्रीचरण (सिध्यतः) सिद्ध हो जाते हैं (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहा है। इस चार सौ दूसरी वार्ता में पैंसठ पद हैं। इति रामानुजार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०२॥

अब दाशरथि स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ दाशरथ्युक्ता वार्ता ॥

मू०–मुमुक्षोः[१] प्रपन्नस्यात्र[२] स्थितिकाले[३] कालक्षेपप्रकारं[४] वदेति[५] भाष्यकारं[६] दाशरथिरवोचत्[७] ॥४०३॥

अर्थ–(मुमुक्षोः) मुमुक्षु (प्रपन्नस्य) प्रपन्न पुरुष की (अत्र) इस लीला विभूति में (स्थितिकाले) रहनेके समय में (कालक्षेपप्रकारम्) कालक्षेप के प्रकार को (वद) कहिये (इति) इस प्रकार से (भाष्यकारम्) श्रीभाष्यकार स्वामीजी से (दाशरथिः)

दाशरथि स्वामीजी ने (अवोचत्) कहा है। इस चार सौ तीन की वार्ता में दस पद हैं। इति दाशरथ्युक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०३॥



अब रामानुजाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्योक्ता वार्ता ॥

मू०–स च गुरुपरम्परापूर्वकं द्वयमनुसन्दधीत, उभयविभूतिनाथस्य श्रियः पतेः सर्वेश्वरस्य महिषीभिर्नित्यसूरिभिश्च सहावस्थितिं प्रकाशयति द्वयं श्रीरङ्गनाथस्य चरणौ सर्वात्मसाधारणौ-अभयहस्तोऽनन्यशरणानां श्रीवैष्णवानामसाधारणः श्रीमुखमण्डलं नित्यसूरीणामसाधारणं प्राप्य परं श्रीमन्त्रं श्रीरङ्गनाथस्य चरणयोरनुसन्दधीत, प्रापकपरं चरमश्लोकमभयहस्तेऽनुसन्दधीत, उभयपरं भोगरूपं द्वयं मुखमण्डलेऽनुसन्दधीत, यथा मत्स्यस्य सर्वोऽप्याकारो जलमयो भवति तथा श्रीमतः सर्वोऽप्याकारः श्रीमयो भवति तस्याः तत्स्वरूपादिनिरूपकत्वात् श्रिञ्-सेवायामित्यादिधात्वर्थप्रकाशकं पुरुषकारत्वपरं श्रीरिति नाम श्रीरङ्गनाथस्य वक्षस्यनुसन्दधीत, मत्पदेन पुरुषकारनित्यत्वमनुसन्दधीत नारायणेत्यनेन आश्रयणसौकर्य्यापादकैर्वात्सल्यादिभिः-आश्रितकार्यापादकैः ज्ञानशक्त्यादिभिश्च गुणैर्युक्त इत्यनुसन्दधीत, चरणाविति श्रीरङ्गनाथस्य चरणावनुसन्दधीत, शरणमिति शरण्यस्य तस्याभयहस्तमनुसन्दधीत, प्रपद्य इति प्रपत्तौ स्वस्यस्वरूपानुरूपं स्वीकारमनुसन्दधीत।

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– हितोपदेशमकरोत्तेषां मोक्षोपलब्धये ।

श्रीरामानुजपादाब्जमेतदेव हि रक्षकम् ॥२७८॥

(च) और (सः) उस रामानुजाचार्य स्वामीजी ने कहा है कि (गुरुपरम्परापूर्वकम्) गुरु-परम्परा पूर्वक (द्वयम्) द्वय मन्त्र को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। और (उभयविभूतिनाथस्य) लीलाविभूति तथा त्रिपाद्विभूति इन दोनों विभूतियों के स्वामी (श्रियः) श्रीदेवीजी के (पतेः) पति (सर्वेश्वरस्य) सर्वेश्वर नारायण भगवान् की (महिषीभिः) स्त्रियों के (च) और (नित्यसूरिभिः) नित्यसूरियों के (सह) साथ (अवस्थितिम्) अवस्थिति को (द्वयम्) द्वयमन्त्र (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है। (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (चरणौ) दोनों चरणारविन्द (सर्वात्मसाधारणौ) सब आत्माओं के साधारण हैं। और (अभयहस्तः) अभय हाथ श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (अनन्यशरणानाम्) अनन्य शरणवाले (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों को (असाधारणः) असाधारण है। तथा (नित्यसूरीणाम्) नित्य सूरियों को (श्रीमुखमण्डलम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् का श्रीमुखमण्डल (असाधारणम्) असाधारण है। और (प्राप्यपरम्) प्राप्यपरक (श्रीमन्त्रम्) मूलमन्त्र को (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (चरणयोः) चरणारविन्दों में (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। तथा (प्रापकपरम्) प्रापक परक (चरमश्लोकम्) चरम श्लोक को (अभयहस्ते) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के अभय हाथ में (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। और (उभयपरम्) प्राप्य तथा प्रापक इन दोनों परक (भोगरूपम्) भोगरूप (द्वयम्) द्वय मन्त्र को (मुखमण्डले) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के मुखमण्डलमें (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। (यथा) जैसे (मत्स्यस्य) मछली के (सर्वः) सब (अपि) भी (आकारः) आकार (जलमयः) जलमय (भवति) होता है। (तथा) वैसे ही (श्रीमतः) श्रीवाले पुरुष के (सर्वः) सब (अपि) भी (आकारः) आकार (श्रीमयः) श्रीमय (भवति) होता है। (तस्याः) उस श्री के (तत्स्वरूपादिनिरूपकत्वात्) उस पुरुष के स्वरूप आदि का निरूपक होन से। और (श्रिञ्सेवायाम्) श्रिञ् सेवायाम् (इत्यादिधात्वर्थप्रकाशकम्) इत्यादि धातु के अर्थ को प्रकाश करनेवाला तथा (पुरुषकारत्वपरम्) पुरुषकारत्वपरक (श्रीः) श्री (इति) इस प्रकार के (नाम) द्वयमन्त्र के पहले पद में स्थित नाम को (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् की (वक्षसि) छाती में (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। तथा (मत्पदेन) द्वय मन्त्र के पहले पद में स्थित मत्पद से (पुरुषकारनित्यत्वम्) पुरुषकार की नित्यता को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। (नारायणेत्यनेन) द्वय मन्त्र के पहले पद में स्थित नारायण इस प्रकार के इस शब्द से (आश्रयणसौकर्य्यापादकैः) आश्रयण

में सौकर्य्य को आपादन करनेवाले (वात्सल्यादिभिः) वात्सल्य सौशील्य सौलभ्य आदिकों से (च) और (आश्रितकार्यापादकैः) आश्रित जनों के कार्य्य को आपादन करनेवाले (ज्ञानशक्त्यादिभिः) ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य आदि (गुणैः) गुणों से (युक्तः) युक्त (इति) इस प्रकार के (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करें ! तथा (चरणौ) द्वय मन्त्र के पहले पद में स्थित चरणौ (इति) इस प्रकार के शब्द से (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (चरणौ) दोनों चरणारविन्दों को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। और (शरणम्) द्वय मन्त्र के दूसरे पद शरणम् (इति) इस प्रकार के इस पद से (शरण्यस्य) शरण्य (तस्य) उस श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (अभयहस्तम्) अभय हाथ को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। तथा (प्रपद्ये) प्रपत्ति करता हूँ (इति) इस प्रकार के द्वय मन्त्र के तीसरे पद में स्थित प्रपद्ये इस शब्द से (प्रपत्तौ) प्रपत्ति में (स्वस्य) अपनी आत्मा के (स्वरूपानुरूपम्) स्वरूप के अनुरूप (स्वीकारम्) स्वीकार को (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे ।।शमिति।



मू०–श्रीमते[१] नारायणेति[२] शब्दाभ्यां[३] द्वाभ्यां[४] स्वामिन्या[५] वल्लभया[६] प्राप्यया[७] भगवत्कैङ्कर्यवर्द्धकया[८] भगवन्मुखोल्लासजनकया[९] तत्प्रीत्यनुभाविकया[१०] महालक्ष्म्या[११] सह[१२] शेषत्वकार्य्यकैङ्कर्य्यं[१३] प्रति[१४] सम्बन्धिनः[१५] तस्य[१६] धारकत्वव्यापकत्वनियन्तृत्वानि[१७] स्वरूपानुगुणज्ञानबलादीनि[१८] तच्छाखाभूतवात्सल्यादीनि[१९] तत्स्वरूपगुणप्रकाशकान्[२०] पञ्चोपनिषण्मयदिव्यविग्रहान्[२१] विग्रहगुणान्[२२] सौन्दर्यसौकुमार्यादीन्[२३] आश्रितविरोधिनिवर्तकान्[२४] शौर्य्यादीन्[२५] दिव्यमङ्गलविग्रहप्रकाशकानि[२६] दिव्याभरणानि[२७] तदनुभवविरोधिनिवर्तकान्[२८] दिव्यायुधान्[२९] एतदनुरूपे[३०] श्रीवैकुण्ठे[३१] दिव्यनगरे[३२] दिव्यमहिषीभिः[३३] परिजनपरिच्छदादिभिश्च[३४] स्वामित्वप्रकाशकतयावस्थिते[३५] सर्वेश्वरेऽनुसन्दधीत[३६], आयेति[३७] तस्य[३८] रस्यत्वाच्छेषित्वात्[३९] स्वस्य[४०] तच्छेषत्वात्सर्वविधशेषवृत्तिः[४१] कुर्यामित्यनुसन्दधीत[४२] "नम[४३] इति[४४]

५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२६३
द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युः ममेति द्व्यक्षरो मृत्यु'' रित्युक्तप्रकारेण
६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७०
म इति षष्ठ्यन्तप्रोक्तविरोधिवर्गं ''त्र्यक्षरं ब्रह्मणः पदं न
७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८
ममेति च शाश्वतम् इत्युक्तप्रकारेण नकारबलेन निषिध्य
७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७
तवैवार्थं मां स्वीकुर्वित्युक्तप्रकारेण स्वार्थताबुद्धिं विना
८८ ८९ ९० ९१ ९२
तदेकार्थतया सर्वविधशेषवृत्तिः स्वीकुर्विति श्रीरङ्गनाथस्य
९३ ९४ ९५
मुखमण्डलं दृष्ट्वानुसन्दधीत ॥४०४॥

अर्थ–(श्रीमते) द्वयमन्त्र के चौथे पद श्रीमते और (नारायण) द्वय मन्त्र के पाँचवे पद में स्थित नारायण (इति) इस प्रकार से (द्वाभ्याम्) श्रीमते और नारायण इन दोनों (शब्दाभ्याम्) शब्दों से (स्वामिन्या) स्वामिनी (वल्लभया) वरदराज भगवान् की वल्लभा (प्राप्यया) प्राप्त करने योग्य (भगवत्कैङ्कर्यवर्द्धकया) श्रीमन्नारायण भगवान् के कैङ्कर्य को बढ़ानेवाली (भगवन्मुखोल्लासजनकया) श्रीमन्नारायण भगवान् के मुखोल्लास को उत्पन्न करनेवाली (तत्प्रीत्यनुभाविकया) उस श्रीमन्नारायण भगवान् की प्रीति को अनुभव करनेवाली (महालक्ष्म्या) महा लक्ष्मी देवीजी के (सह) साथ (शेषत्वकार्यकैङ्कर्यम्) शेषत्व के कार्य कैङ्कर्य के (प्रति) प्रति (तस्य) उस (सम्बन्धिनः) सम्बन्धी के (धारकत्वव्यापकत्वनियन्तृत्वानि) धारकत्व तथा व्यापकत्व और नियन्तृत्व को तथा (स्वरूपानुगुणज्ञानबलादीनि) स्वरूप के अनुगुण ज्ञान बल शक्ति ऐश्वर्य आदि को और (तच्छाखाभूतवात्सल्यदीनि) उसके शाखाभूत वात्सल्य सौशील्य सौलभ्य आदि को तथा (तत्स्वरूपगुणप्रकाशकान्) उस भगवान् के स्वरूप और गुण के प्रकाश करनेवालों को और (पद्मोपनिषन्मयदिव्यविग्रहान्) पद्मोपनिषन्मय दिव्य मङ्गल विग्रहों को तथा (विग्रहगुणान्) मङ्गलमय विग्रह के गुणों को और (सौन्दर्य्यसौकुमार्य्यादीन्) सौन्दर्य तथा सौकुमार्य आदिकों को और (आश्रितविरोधिनिवर्तकान्) आश्रित विरोधियों को दूर करनेवालों को तथा (शौर्यादीन्) शौर्य आदिकों को और (दिव्यमङ्गलविग्रहप्रकाशकानि) दिव्य मङ्गलमय विग्रहको प्रकाशित करनेवाले (दिव्याभरणानि) किरीट आदि दिव्यभूषणों को और (तदनुभवविरोधिनिवर्तकान्) उस भगवान् के अनुभव में विरोध करनेवालों को हटानेवाले (दिव्यायुधान्) दिव्य चक्र आदिक आयुधों को (एतदनुरूपे) इन सबों के अनुरूप (श्रीवैकुण्ठे) श्रीवैकुण्ठ नाम के (दिव्यनगरे) दिव्यनगर में (दिव्यमहिषीभिः) श्रीदेवी भूदेवी और नीला देवी इन दिव्य महिषियों से (च) और (परिजनपरिच्छदादिभिः) परिजन तथा परिच्छदादिकों से तथा (स्वामित्वप्रकाशकतया) स्वामित्व की प्रकाशकता से (अवस्थिते) अवस्थित

(सर्वेश्वरे) सबके स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् में (अनुसन्दधीत्) अनुसन्धान च और (आय) द्वय मन्त्र के पाँचवें पद में स्थित चतुर्थी विभक्ति से बने हुए आय (इति) इस प्रकार के शब्द से (तस्य) उन नारायण भगवान् की (रस्यत्वात्) रस्यता से और (शेषित्वात्) शेषित्व से तथा (स्वस्य) आत्मा के (तच्छेषत्वात्) उस नारायण भगवान की शेषता से (सर्वविधशेषवृत्तीः) सब प्रकार से शेष की वृति को (कुर्याम्) मैं करूँगा (इति) इस प्रकार से (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। और (नमः) द्वय मन्त्र के छठवें पद नमः (इति) इस प्रकार के शब्द से वक्ष्यमाण अर्थ को अनुसन्धान करे। (तु) लेकिन (द्वयक्षरः) द्वय मन्त्र का छठवां पद दो अक्षर का नमः (मृत्युः) काल (भवेत्) हो जायेगा। और (मम) अस्मच्छब्द की षष्ठी विभक्ति का एक वचन मम (इति) इस प्रकार के (द्वयक्षरः) दो अक्षर (मृत्युः) काल हो जायेगा। (इति) इस प्रकार से (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (मः) मः (इति) इस प्रकार से (षष्ठ्यन्तप्रोक्तविरोधिवर्गम्) षष्ठ्यन्त पद से कहे हुए विरोधियों के वर्ग को और (त्र्यक्षरम्) तीन अक्षर (ब्रह्मणः) ब्रह्म का (पदम्) पद है (न) न यह निषेध वाचक एक अक्षर है (च) और (मम) मम यह षष्ठ्यन्त दो अक्षर है (इति) इस प्रकार के (शाश्वतम्) न म म यह तीन अक्षर शाश्वत ब्रह्म का पद है। (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (नकारबलेन) नमः पदमें जो नकार है उसके बलसे (निषिध्य) विरोधिवर्गको निषेध करके (तव) तुम्हारा (एव) निश्चय करके (अर्थम्) अर्थ जो मैं हूँ (माम्) जिस मुझको (स्वीकुरु) तुम स्वीकार करो (इति) इस प्रकार के (उक्तप्रकारेण) कहे हुए प्रकार से (स्वार्थताबुद्धिम्) स्वार्थता बुद्धि के (विना) बिना (तदेकार्थतया) उस नारायण भगवान् की एक अर्थता करके (सर्वविधशेषवृत्तिः) सब प्रकार की शेष की वृत्तियों को (स्वीकुरु) स्वीकार तुम करो (इति) इस प्रकार के (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान के (मुखमण्डलम्) मुख मण्डल को (दृष्ट्वा) देखकर (अनुसन्दधीत) अनुसन्धान करे। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर दिव्य आभरण और दिव्य आयुध भगवान् के वर्णित किये गये हैं ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है कि; ॥ **अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ श्रीमद्भग० अध्या० ११, श्लो० १० ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥११॥** अनेक दिव्य आभरण को और अनेक दिव्य उद्यत आयुधों को अर्जुन ने देखा ॥१०॥ और दिव्य माला को तथा वस्त्र को धारण किये हुए तथा दिव्य गन्धों को लगाये हुए पुरुषोत्तम को देखा ॥११॥ और भी लिखा है कि ॥ **किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिम् सर्वतो दीप्तिमन्तम् ॥ भगवद्गी० अ० ११, श्लो० १७ ॥** किरीटवाले शङ्ख चक्र गदा पद्म को धारण करनेवाले तेज की राशि, चारो तरफ से देदीप्यमान स्वरूप को देखता हूँ ॥१७॥ इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर होने पर

फिर से प्रश्न होता है कि श्रीवैकुण्ठ में श्रीआदिक देवियों से युक्त भगवान् रहते हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि ॥ **वैकुण्ठे तु परे लोके श्रीसहायो जनार्दनः । उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः ॥** पर श्रीवैकुण्ठ लोक में श्रीसहाय परमेश्वर जनार्दन भगवान् भूदेवी और नीला देवी से सेवित हैं ॥ इस चार सौ चार की वार्ता में एक सौ पञ्चानबे पद हैं । इति रामानुजार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०४॥

अब रामानुजार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–मुमुक्षोः प्रपन्नस्यावश्यं ज्ञातव्याश्चत्वारोऽर्थाः, तत्रार्थव्यवसायाश्चत्वारः, ते च प्राप्यं प्राप्यार्थव्यवसायः प्रापकः प्रापकार्थव्यवसायः आचारः आचारार्थव्यवसायः भोजनं भोजनार्थव्यवसायश्च तत्र प्राप्यमविद्याकर्मवासना-रुचिप्रकृतिसम्बन्धनिवृत्तिपूर्वकमर्चिरादिमार्गेण परमपदम्-प्राप्य तत्र परिपूर्णभगवदनुभवजनितप्रीत्या क्रियमाणं कैङ्कर्य्यम् तदर्थव्यवसायः कैङ्कर्य्यव्यतिरिक्तेषु धर्मार्थकामेषु मोक्षे च कैवल्ये पुरुषार्थे-अभोग्यताबुद्धिपूर्वकं कैङ्कर्यमेव परमप्राप्यमित्यध्यवसायः, प्रापको नाम सौलभ्यादिगुण-विशिष्टः विग्रहविशिष्टश्च-ईश्वरः, तदर्थव्यवसायो नाम लक्ष्मीपुरुषकारसापेक्ष इत्यध्यवसायः, आचारः-उपायं स्वीक-र्तुर्यावदायुषं मनोवाक्कायैः स्वरूपानुकूलवृत्तिः, सा च पर-व्यूहविभवादिभ्यरर्चावतारस्य सौलभ्ये-अतिप्रवणानां श्रीवैष्णवानामनुकूलवृत्तिकरणं प्रातिकूल्यनिवृत्तिः, तदर्थ-व्यवसायः पूर्वोक्तानुकूलवृत्तिं प्रातिकूल्यनिवृत्तिं च ख्याति-लाभपूजार्थं दृष्टप्रयोजनार्थं भगवत्प्राप्त्यर्थं वा अकृत्वा-अय-

८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८
माचार एव स्वयं प्रयोजनमित्यध्यवसायः, भोजनं नाम-
८९ ९० ९१ ९२
न्यायार्जितद्रव्येण कुक्षिपूर्तिमकृत्वा क्षुन्निवृत्तिमात्रप्रयोज-
९३ ९४ ९५ ९६
नतया जीवनं तदर्थव्यवसायो नाम-अनुकूलवाधतया प्रति-
९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२
कूलसकाशात् प्राप्तेन द्रव्येण भगवद्द्रव्येण जीवनमनुचितं
१०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०९
न्यायार्जितेनैव देहयात्रा कर्तव्येतिनिश्चयः ॥४०५॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– शृण्वन्तश्च पठन्तश्च यतिराजकथाः शुभाः ।
वर्तध्वमनिशं नित्यं निर्भरा मोक्षसिद्धये ॥२७९॥

(मुमुक्षोः) मोक्ष की इच्छा करनेवाले (प्रपन्नस्य) प्रपन्न जनके (अवश्यम्) जरूर (ज्ञातव्याः) जानने योग्य (चत्वारः) चार (अर्थाः) अर्थ हैं। और (तत्र) उन चारों में (अर्थव्यवसायाः) तत्तत् अर्थ के व्यवसाय भी (चत्वारः) चार हैं। (च) और (ते) वे चार अर्थ तथा अर्थ व्यवसाय ये अधोलिखित हैं। (प्राप्यम्) प्राप्य और (प्राप्यार्थव्यवसायः) प्राप्यार्थ व्यवसाय, (प्रापकः) प्रापक तथा (प्रापकार्थव्यवसायः) प्रापकार्थ व्यवसाय, (आचारः) आचार और (आचारार्थव्यवसायः) आचारार्थ व्यवसाय, (भोजनम्) भोजन तथा (भोजनार्थव्यवसायः) भोजनार्थ व्यवसाय, ये चार हैं। (च) और (तत्र) उनमें (प्राप्यम्) प्राप्य माने (अविद्याकर्मवासनारुचिप्रकृति-सम्बन्धनिवृत्तिपूर्वकम्) अविद्या और कर्म वासना की रुचि तथा प्रकृति के सम्बन्ध की निवृत्ति पूर्वक (अर्चिरादिमार्गेण) अर्चिरादिमार्ग से (परमपदम्) परम पद को (प्राप्य) पा करके (तत्र) उस त्रिपाद्विभूति में (परिपूर्णभगवदनुभवजनितप्रीत्या) परिपूर्ण श्रीमन्नारायण भगवान् को अनुभव करने से उत्पन्न प्रीति करके (क्रियमाणम्) क्रियमाण (कैङ्कर्यम्) कैङ्कर्य है। और (तदर्थव्यवसायः) प्राप्यार्थ व्यवसाय माने (कैङ्कर्य्यव्यतिरिक्तेषु) कैङ्कर्य से अन्य (धर्मार्थकामेषु) धर्म तथा अर्थ और काम में (च) तथा (पुरुषार्थे) पुरुषों से चाहने योग्य (कैवल्ये) कैवल्य (मोक्षे) मोक्ष में (अभोग्यताबुद्धिपूर्वकम्) अभोग्यताबुद्धिपूर्वक (कैङ्कर्यम्) कैङ्कर्य (एव) निश्चय करके (परमप्राप्यम्) सबसे श्रेष्ठ प्राप्त करने योग्य है (इति) इस प्रकार का (अध्यवसायः) अध्यवसाय करना है। (प्रापकः) प्रापक (नाम) माने (सौलभ्यादिगुणविशिष्टः) सौलभ्य वात्सल्य सत्काम सत्य सङ्कल्प आदि दिव्य गुणों से युक्त (च) और (विग्रहविशिष्टः) मङ्गलमय विग्रह से युक्त (ईश्वरः) सर्वेश्वर

श्रीमन्नारायण भगवान् हैं। और (तदर्थव्यवसायः) प्रापकार्थ व्यवसाय (नाम) माने (लक्ष्मीपुरुषकारसापेक्षः) लक्ष्मी देवीजी के पुरुषकारसापेक्ष है (इति) प्रकार का (अध्यवसायः) अध्यावसाय करना है। (आचारः) आचार माने (उपायम्) उपाय को (स्वीकर्तृः) स्वीकार करनेवाले पुरुष की (यावत्) जब तक (आयुषम्) आयु रहे तबतक (मनोवाक्कायैः) मन तथा वाणी और शरीर से (स्वरूपानुकूलवृत्तिः) स्वस्वरूप के अनुकूल वृत्ति रखना है (च) और (सा) वह स्वरूप के अनुकूल वृत्ति (परव्यूहविभवादिभ्यः) परव्यूह विभव अन्तर्यामी भगवान् से (अर्चावतारस्य) अर्चावतार भगवान् के (सौलभ्ये) सौलभ्य गुण में (अतिप्रवणानाम्) अत्यन्त आसक्त (श्रीवैष्णवानाम्) श्रीवैष्णवों के (अनुकूलवृत्तिकरणम्) अनुकूल वृत्ति को करना है और (प्रातिकूल्यनिवृत्तिः) प्रतिकूलता की निवृत्ति करना है। और (तदर्थव्यवसायः) आचारार्थ व्यवसाय माने (पूर्वोक्तानुकूलवृत्तिम्) पूर्वोक्त अनुकूल वृत्ति को (च) और (प्रातिकूल्यनिवृत्तिम्) प्रतिकूलता की निवृत्ति को (ख्यातिलाभपूजार्थम्) प्रसिद्धि के लिये तथा लाभ के लिये और पूजा के लिये तथा (दृष्टप्रयोजनार्थम्) दृष्ट प्रयोजन के लिये (वा) अथवा (भगवत्प्राप्त्यर्थम्) श्रीमन्नारायण भगवान् की प्राप्ति के लिये (अकृत्वा) नहीं करना (अयम्) यह (आचारः) आचार (एव) निश्चय करके (स्वयम्) स्वयं (प्रयोजनम्) प्रयोजन है (इति) इस प्रकार से (अध्यवसायः) अध्यवसाय करना है। (भोजनम्) भोजन (नाम) माने (न्यायार्जितद्रव्येण) न्याय से अर्जन किये हुए द्रव्य से (कुक्षिपूर्तिम्) पेट की पूर्ति को (अकृत्वा) नहीं करके (क्षुन्निवृत्तिमात्रप्रयोजनतया) भूख की निवृत्तिमात्र प्रयोजनता करके (जीवनम्) जीना है। (तदर्थव्यवसायः) भोजनार्थ व्यवसाय (नाम) माने (अनुकूलवाधतया) अनुकूल की वाधता से (प्रतिकूलसकाशात्) प्रतिकूल के साथ से (प्राप्तेन) मिले हुए (द्रव्येण) द्रव्य से और (भगवद्द्रव्येण) भगवान् के द्रव्य से (जीवनम्) जीना (अनुचितम्) अनुचित है इससे (न्यायार्जितेन) न्याय से उपार्जन की हुई वस्तु से (एव) निश्चय करके (देहयात्रा) देह की यात्रा (कर्तव्या) करने योग्य है (इति) इस प्रकार से (निश्चयः) निश्चय करना है। इस चार सौ पाँचवीं वार्ता में एक सौ नव पद हैं। इति रामानुजाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०५॥

अब श्रीभाष्यकार की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीभाष्यकारोक्ता वार्ता ॥

मू०–[१]प्रपन्नकृत्यं [२]स्वरूपे [३]वैशद्यं [४]स्वरक्षणेऽशक्तिः [६]प्राप्ये-

७ ८ ९ १० ११ १२ १३
त्वरा प्रापकेऽध्यवसायः, विरोधिनि भयम्, उद्देश्ये गौरव-
१४ १५ १६ १७ १८ १९
मुपकारके कृतज्ञत्वमुत्तारके प्रतिपत्तिः, स्वरूपवैशद्यं नाम-
२० २१ २२ २३ २४ २५ २६
श्रीकृष्णपुरनाथस्य दासोऽहं नान्योपयुक्त इति निश्चयः,
२७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६
स्वरक्षणेऽशक्तिर्नाम-किमहं कुर्यां को वा-उपाय इत्यव-
३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४
स्थितिः, प्राप्ये त्वरा नाम-महावैकुण्ठं कदा पश्यामीत्य-
४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२
वस्थितिः, प्रापकेऽध्यवसायो नाम-दुःखं निवर्तय मा वा
५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६०
निवर्तकान्तरं नास्तीत्यवस्थानम्, विरोधिनि भयं नाम-सर्प-
६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६
सहितवस्त्रावेष्टितवदवस्थानम्, उद्देश्ये गौरवं नाम-त्वद्दासाः
६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३
लघुमहापुरुषाः मम नाथा इत्यवस्थानम्, उपकारके कृतज्ञत्वं
७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८०
नाम-मम दुष्टं मनो निवर्तितवान् आश्रयणोपयोगि मनो
८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८
दतवान् तवाहं किं कुर्यामित्यवस्थानम्, उत्तारकविषये
८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७
प्रतिपत्तिर्नाम-ममात्मनोऽवलम्बनभूतं त्वद्व्यतिरिक्तं न जाना-
९८ ९९
मीत्यवस्थानम् ॥४०६॥

॥ लक्ष्मणार्य्यस्तुतिः ॥

अर्थ– तस्मादयं लक्ष्मणदेशिकेन्द्रः साक्षाद्धरिर्लोकगुरुर्महात्मा ।
तस्यैव सम्बन्धबलेन तेन मोक्षो हि सिद्धो निखिलात्मकानाम् ॥२८०॥

(प्रपन्नकृत्यम्) प्रपन्न पुरुषों के यह अधोलिखित कृत्य हैं कि (स्वरूपे) अपने स्वरूप में (वैशद्यम्) विशदता, और (स्वरक्षणे) अपनी रक्षा में (अशक्तिः) अशक्ति, तथा (प्राप्ये) प्राप्य वस्तु में (त्वरा) जल्दीबाजी, और (प्रापके) प्रापक में (अध्यवसायः) अध्यवसाय, तथा (विरोधिनि) विरोधी में (भयम्) डरना, और (उद्देश्ये) उद्देश्य में (गौरवम्) गौरव, तथा (उपकारके) उपकार में (कृतज्ञत्वम्) कृतज्ञता, और (उत्तारके) उत्तारक के विषय में (प्रतिपत्तिः) प्रतिपत्ति, ये सब प्रपन्न के कृत्य हैं। उन सबों में (स्वरूपवैशद्यम्) स्वरूप में विशदता (नाम) माने (श्रीकृष्णपुरनाथस्य) श्रीकृष्णपुर के नाथ का (अहम्) मैं (दासः) सेवक हूँ (अन्योपयुक्तः) दूसरे के उपयुक्त (न) नहीं हूँ (इति) इस प्रकार का (निश्चयः)

निश्चय करना है। और (स्वरक्षणे) अपनी रक्षा में (अशक्तिः) अशक्ति (नाम) माने (किम्) क्या (अहम्) मैं (कुर्य्याम्) करूँ (वा) अथवा (कः) क्या (उपायः) उपाय है (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति है: तथा (प्राप्ये) प्राप्य वस्तु में (त्वरा) त्वरा (नाम) माने (महावैकुण्ठम्) महा वैकुण्ठ धाम को (कदा) कब (पश्यामि) मैं देखूँगा (इति) इस प्रकार की (अवस्थितिः) अवस्थिति है। और (प्रापके) प्रापक में (अध्यवसायः) अध्यावसाय (नाम) माने (दुःखम्) मेरे दुःख को (निवर्तय) दूर कीजिये (वा) अथवा (मा) न कीजिये (निवर्तकान्तरम्) मेरे दुःख को दूर करनेवाला दूसरा कोई (न) नहीं (अस्ति) है (इति) इस प्रकार का (अवस्थानम्) अवस्थान है। (विरोधिनि) तथा विरोधी में (भयम्) भय (नाम) माने (सर्पसहितवस्त्रावेष्टितवत्) साँप के सहित वस्त्र से आवेष्टित के समान (अवस्थानम्) रहना है। और (उद्देश्ये) उद्देश्य में (गौरवम्) गौरव (नाम) माने (त्वद्दासाः) आप के दास (लघुमहापुरुषाः) छोटे पुरुष हों या बड़े पुरुष हों वे हरिजन (मम) मेरे (नाथाः) स्वामी हैं (इति) इस प्रकार से (अवस्थानम्) रहना है। तथा (उपकारके) उपकारक में (कृतज्ञत्वम्) कृतज्ञता (नाम) माने (मम) मेरे (दुष्टम्) दुष्ट (मनः) मनको (निवर्तितवान्) दूर किये हो और (आश्रयणोपयोगि) श्रीमन्नारायण को आश्रयण करने योग्य (मनः) मनको (दतवान्) दिये हो (तव) तेरा (अहम्) मैं (किम्) क्या (कुर्याम्) करूँ (इति) इस प्रकार की (अवस्थानम्) अवस्थिति करना है। और (उत्तारकविषये) उत्तारक के विषय में (प्रतिपत्तिः) प्रतिपत्ति (नाम) माने (मम) मेरी (आत्मनः) आत्मा के (अवलम्बनभूतम्) अवलम्बन बने हुए (त्वत्) तुझसे (व्यतिरिक्तम्) अन्य पुरुष को (न) नहीं (जानामि) मैं जानता हूँ (इति) इस प्रकार के (अवस्थानम्) रहना है। इस चारसौ छठवीं वार्ता में निन्याबे पद हैं। इति श्रीभाष्यकारोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०६॥

अब रामानुजाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–श्रियः[१] पतेः[२] सर्वेश्वरस्यात्यन्तपारतन्त्र्यं[३] शेषत्वम्[४]-चात्मनां[५] स्वरूपमिति[६] सदाचार्योपदेशेन[७] सकलवेदसंग्रह[८]-श्रीमदष्टाक्षरप्रथममध्यपदाभ्यां[९] सम्यग्[१०] ज्ञात्वा[११] स्वरक्षणे[१२] शक्तिप्राप्त्योरभावात्[१३] मन्त्ररत्नाभिधानस्य[१४] द्वयस्योत्तरवाक्येन[१५]

प्रतिपादितस्य परमपुरुषार्थस्य सिद्ध्यर्थं पूर्ववाक्येन प्रतिपादितस्य सिद्धोपायस्य श्रीपतेश्चरणावेवोपाय इत्यध्यवस्यतोऽधिकारिणः स्वविशेषणात्सकृत्प्रपत्तेरन्यस्यानपेक्षितत्वात् गीतोपनिषदाचार्य्येण त्याज्यतया-अकर्तव्यंतया विहिताः, कर्मयोगस्तदुपायो ज्ञानयोगस्तदुपायो भक्तियोगश्च, एतेषु सर्वेष्वनुवर्तनीया-आश्रितयोग्यतापादक धर्माश्च "मामेकं शरणं व्रज" इत्युपादेयतया विहिता षडङ्गयुक्ता न्यासविद्याधिकारः, प्रपन्नस्य पूर्वोक्तोपायेषु प्रवृत्तिः स्वरूपविरोधिनी, उपेये निवृत्तिः प्राप्यरुचिविरोधिनी, एतदर्थद्वयस्य दृष्टान्तौ, स्वरक्षणक्षमत्वेऽपि स्वस्वरूपपारतन्त्र्यं पुरस्कृत्य-अशोकवनिकायां स्थिता जानकी भगवता निषिद्धोऽपि स्वसत्ताहानिं प्रदर्श्य-अनुगतो लक्ष्मणश्च द्वयस्य पूर्वखण्डानुसन्धाने स्वरक्षणार्थं तृणप्रक्षेपस्यापि प्राप्तिर्नास्ति, उत्तरखण्डानुसन्धाने मडलग्रहणमकृत्वा-अवस्थितिर्नास्ति ॥

॥ रामानुजार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– उपायोपेयभूतश्च लक्ष्मणार्यो जगद्गुरुः ।
तन्नामोच्चारणादेव सर्वं नश्यति पातकम् ॥२८१॥

(श्रियः) श्रीदेवीजीके (पतेः) पति (सर्वेश्वरस्य) सब के स्वामीनारायण भगवान् के (अत्यन्तपारतन्त्र्यम्) अत्यन्त परतन्त्र (च) और (शेषत्वम्) नारायण भगवान् के शेष (आत्मनाम्) जीवात्माओं के (स्वरूपम्) स्वरूप हैं (इति) इस प्रकार के (सदाचार्य्योपदेशेन) सदाचार्य के उपदेश से (सकलवेदसङ्ग्रहश्रीमदष्टाक्षरप्रथममध्यमपदाभ्याम्) सम्पूर्ण वेद के सङ्ग्रहरूप श्रीमदष्टाक्षर मन्त्र के पहले और दूसरे पदों से (सम्यक्) अच्छी तरह से (ज्ञात्वा) जानकर (स्वरक्षणे) अपनी रक्षा में (शक्तिप्राप्त्योः) शक्ति और प्राप्ति के (अभावात्) अभाव होने से (मन्त्ररत्नाभिधानस्य) मन्त्ररत्न नामवाले (द्वयस्य) द्वयमन्त्र के (उत्तरवाक्येन) "श्रीमते

नारायणाय नमः'' इस उत्तरखण्ड करके (प्रतिपादितस्य) प्रतिपादन किये हुए (परमपुरुषार्थस्य) परम पुरुषार्थ की (सिद्ध्यर्थम्) सिद्धि के लिये और (पूर्ववाक्येन) द्वयमन्त्र के ''**श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये**'' इस पूर्वखण्ड करके (प्रतिपादितस्य) प्रतिपादन किये हुए (सिद्धोपायस्य) सिद्धोपाय स्वरूप (श्रीपतेः) श्रीपति नारायण भगवान् के (चरणौ) दोनों चरणारविन्द (एव) निश्चय करके (उपायः) उपाय हैं (इति) इस प्रकार के (अध्यवस्यतः) निश्चय करनेवाले (अधिकारिणः) अधिकारी पुरुष के (स्वविशेषणात्) अपनी आत्मा के विशेषण होने से और (सकृत्) एकबार (प्रपत्तेः) प्रपत्ति के होने से तथा (अन्यस्य) दूसरे की (अनपेक्षितत्वात्) अपेक्षा नहीं होने से है। और (गीतोपनिषदाचार्य्येण) श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदों के आचार्य से (त्याज्यतया) त्याज्यत्वेन और (अकर्तव्यतया) अकर्तव्यत्वेन (विहिताः) विधान किये गये हैं (कर्मयोगः) कर्मयोग तथा (तदुपायः) कर्मयोग का उपाय (ज्ञानयोगः) ज्ञानयोग (च) और (तदुपायः) ज्ञानयोगका उपाय (भक्तियोगः) भक्तियोग है (च) और (एतेषु) इन (सर्वेषु) सब कर्मादिकों में (अनुवर्तनीयाः) अनुवर्तन करने योग्य (आश्रितयोग्यतापादकधर्माः) आश्रितों की योग्यता को आपादन करनेवाले धर्म हैं (च) और (एकम्) एक (माम्) मुझको (शरणम्) रक्षक (व्रज) जानो (इति) इस प्रकार की (उपादेयतया) उपादेयता करके (विहिता) विधान की हुई (षडङ्गयुक्ता) छः अङ्गों से युक्त (न्यासविद्या) न्यास विद्या (अधिकारः) अधिकार है। और (प्रपन्नस्य) प्रपन्न पुरुष के (पूर्वोक्तोपायेषु) पूर्वोक्त कर्मज्ञानादि उपायों में (प्रवृत्तिः) प्रवृत्ति (स्वरूपविरोधिनी) स्वरूप को बिगाड़नेवाली है तथा (उपेये) उपेय वस्तु में (निवृत्तिः) निवृत्ति (प्राप्यरुचिविरोधिनी) प्राप्य वस्तु की रुचि को बिगाड़नेवाली है (एतदर्थद्वयस्य) इन दोनों अर्थ के (दृष्टान्तौ) ये दोनों दृष्टान्त हैं। (स्वरक्षणक्षमत्वे) अपनी रक्षा करने में समर्थ होने पर भी (अपि) भी (स्वस्वरूपारतन्त्र्यम्) अपने स्वरूप की परतन्त्रता को (पुरस्कृत्य) पुरस्कार करके (अशोकवनिकायाम्) अशोक वनिका में (जानकी) श्रीसीता देवीजी (स्थिता) स्थित हुईं, (च) ओर (भगवता) भगवान् रामभद्र से (निषिद्धः) निषिद्ध (अपि) भी (लक्ष्मणः) बालस्वामीजी (स्वसत्ताहानिम्) अपनी सत्ता की हानि को (प्रदर्श्य) दिखला करके (अनुगतः) पीछे पीछे जङ्गल में चले गये हैं। (द्वयस्य) द्वयमन्त्र के (पूर्वखण्डानुसन्धाने) पूर्वखण्ड के अनुसन्धान करनेपर (स्वरक्षणार्थम्) अपनी रक्षा करने के लिये (तृणप्रक्षेपस्य) घास फेंकने की (अपि) भी (प्राप्तिः) प्राप्ति (न) नहीं (अस्ति) है। तथा द्वय मन्त्र के (उत्तरखण्डानुसन्धाने) उत्तर खण्ड के अनुसन्धान करने पर (मडलग्रहणम्) मडल ग्रहण को (अकृत्वा) नहीं करके (अवस्थितिः) अवस्थिति (न) नहीं (अस्ति) है। इस वार्ता में **॥ मामेकं शरणं व्रज ॥ भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६६ ॥** का प्रतीक है इससे सम्पूर्ण श्लोक

को यहाँ पर लिखता हूँ ॥ **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥** भगवद्गी० अ० १८, श्लो० ६६ ॥ इस चरम श्लोक का अर्थ पहले लिख चुका हूँ ॥ शमिति ॥

❁

मू०–एतत्खण्डद्वयार्थानुसन्धानेन मुमुक्षुत्वाकारविरुद्धानि काम्यकर्माणि सामान्यशास्त्रप्रतिपादितानि प्रायश्चित्तादीनि-अपचारत्रयमेवंविधशास्त्रानुष्ठानानि सर्वाणि लज्जाः पुरस्सरं स्वरूपेण त्यक्त्वा, अनिष्टनिवृत्तिपूर्वकेष्टप्राप्तेः सिद्धोपायं स्वीकृत्य स्वात्मानं दृष्ट्वा निर्भरः सिद्धोपायं श्रियः पतिं दृष्ट्वा निर्भरो निःसंशयः, कालो गच्छति, कर्म नश्यति, परमप्राप्यं समीपमागच्छतीति विचार्य्य स्वस्यागामिफलं दृष्ट्वा हृष्टमना एतत्प्रतिबन्धकेन सह वर्तमानदशायां भगवद्भागवतविषयेषु स्वरूपानुरूपाणि-उपायबुद्ध्या-अहङ्कारममकाराभ्यां च निवृतः स्वयं प्रयोजनानि कैङ्कर्य्याणि करोति यः स मुक्तप्रायः, अखिलजगद्धितानुशासने प्रवृत्तवेदे तदुपबृंहणार्थं प्रवृत्तेषु स्मृतीतिहासपुराणेषु-अविवादं यथा स्यात्तथा प्रसिद्धं सर्वेश्वरस्य सर्वस्वं सर्वात्मनामापद्धनमुपायोपेयबोधकतया द्वयाभिधानं वाक्यद्वयं दशार्थान् प्रतिपादयति, ते चार्थाः-श्रियः पतित्वं नारायणस्य सर्वलोकशरण्यत्वम्, चरणारविन्दयुगलं तस्य प्रापकत्वं तद्विषयश्चेतनगतः, प्रार्थना गर्भो विस्रम्भः, लक्ष्मीतद्वल्लभयोर्निखिलात्मकैङ्कर्य्यप्रदानार्थो नित्यसम्बन्धः कैंकर्य्यप्रतिसम्बन्धिनः-ईश्वरस्य निरतिशयभोग्यत्वं सर्वस्वाम्यं नित्यकैङ्कर्य्यप्रतिबन्धकनिःशेषनिवर्हणं च ॥

अर्थ–(एतत्खण्डद्वयार्थानुसन्धानेन) इस द्वयमन्त्र के दोनों खण्डों के अर्थ को अनुसन्धान करने से (मुमुक्षुत्वाकारविरुद्धानि) मुमुक्षुता के आकार से विरुद्ध (काम्यकर्माणि) "पुत्रेष्ट्या पुत्रकामो यजेत" इत्यादि काम्य कर्मों को और (सामान्यशास्त्रप्रतिपादितानि) सामान्य शास्त्र से कहे हुए (प्रायश्चित्तादीनि) प्रायश्चित्त आदिकों को तथा (अपचारत्रयम्) मन, वाणी, शरीर के तीनों अपचारों को और (एवंविधशास्त्रानुष्ठानानि) इस प्रकार के शास्त्र के अनुष्ठानों को (सर्वाणि) तथा अन्य सबों को (लज्जा:) लज्जा (पुर:सरम्) पूर्वक (स्वरूपेण) स्वरूप से (त्यक्त्वा) छोड़कर (अनिष्टनिवृत्तिपूर्वकेष्टप्राप्ते:) अनिष्ट की निवृत्ति पूर्वक इष्ट की प्राप्ति होने से (सिद्धोपायम्) सिद्धोपाय को (स्वीकृत्य) स्वीकार करके (स्वात्मानम्) अपनी आत्मा को (दृष्ट्वा) देखकर (निर्भर:) निर्भर होकर के (सिद्धोपायम्) सिद्धोपाय (श्रिय:) श्रीदेवीजी के (पतिम्) पति नारायण को (दृष्ट्वा) देखर (निर्भर:) निर्भर हो करके (नि:संशय:) बिना सन्देह के रहता है। और (काल:) काल (गच्छति) बितता है। तथा (कर्म) कर्म (नश्यति) नष्ट होता है। और (परमप्राप्यम्) परम प्राप्य वस्तु (समीपम्) समीप में (आगच्छति) आती है (इति) इस प्रकार से (विचार्य्य) विचार कर (स्वस्य) अपने (आगामि) आनेवाले (फलम्) फल को (दृष्ट्वा) देखकर (हृष्टमना:) प्रसन्न मनवाला होकर के (एतत्प्रतिबन्धकेन) इसके प्रतिबन्धक के (सह) साथ (वर्तमानदशायाम्) वर्तमान दशा में तथा (भगवद्भागवतविषयेषु) भगवान् और भागवतों के विषय में (उपायबुद्ध्या) उपाय बुद्धि से (च) और (अहङ्कारममकाराभ्याम्) अहङ्कार तथा ममकार से (निवृत्त:) रहित होकर के (स्वयम्) अपने ही (स्वरूपानुरूपाणि) अपने स्वरूप के अनुरूप (प्रयोजनानि) प्रयोजन के अनुसार (य:) जो पुरुष (कैङ्कर्य्याणि) कैङ्कर्य्यों को (करोति) करता है (स:) वह पुरुष (मुक्तप्राय:) मुक्त प्राय है। (अखिलजगद्धितानुशासने) सम्पूर्ण संसार के कल्याण के अनुशासन में (प्रवृत्तवेदे) वेद के प्रवृत्त होने पर और (तदुपबृंहणार्थम्) उस वेद के उपबृंहण करने के लिये (स्मृतीतिहासपुराणेषु) मनु आदि स्मृति तथा वाल्मीकीय रामायण आदि इतिहास और विष्णु पाद्म आदि पुराणों के (प्रवृत्तेषु) प्रवृत्त होने पर (यथा) जैसे (अविवादम्) विवाद नहीं (स्यात्) होवें (तथा) वैसे (प्रसिद्धम्) प्रसिद्ध है। (सर्वेश्वरस्य) सब के स्वामी नारायण भगवान् का (सर्वस्वम्) सर्वस्व है, तथा (सर्वात्मनाम्) सब जीवात्माओं के (आपद्धनम्) आपत्तिकाल के धन हैं और (उपायोपेयबोधकतया) उपाय तथा उपेय इन दोनों के बोधक होने से (द्वयाभिधानम्) द्वय मन्त्र नाम है (वाक्यद्वयम्) द्वय मन्त्र के दोनों वाक्य (दश) दस (अर्थान्) अर्थों को (प्रतिपादयति) प्रतिपादन करते हैं (च) और (ते) वे दस (अर्था:)

अर्थ ये अधोलिखित हैं। (श्रियः) श्री देवीजी के (पतित्वम्) पतित्व १, और (नारायणस्य) नारायण भगवान् के (सर्वलोकाशरण्यत्वम्) सब लोक के शरण्यत्व २, तथा (तस्य) उस नारायण भगवान का (चरणारविन्दयुगलम्) दोनों चरणारविन्द (प्रापकत्वम्) प्रापकत्व हैं ३, और (तद्विषयः) उसका विषय (चेतनगतः) चेतन गत है ४, तथा (प्रार्थना) प्रार्थना ५, और (गर्भः) गर्भ (विस्रम्भः) विस्रम्भ है ६, तथा (लक्ष्मीतद्वल्लभयोः) लक्ष्मी और नारायण भगवान् के (निखिलात्मकैङ्कर्य्यप्रदानार्थः) सम्पूर्ण आत्माओं को कैङ्कर्य प्रदान करने के लिये (नित्यसम्बन्धः) नित्यसम्बन्ध ७, और (कैङ्कर्य्यप्रतिसम्बन्धिनः) कैङ्कर्य्य के प्रतिसम्बन्धी (ईश्वरस्य) सर्वेश्वर भगवान् के (नितरतिशयभोग्यत्वम्) अतिशय रहित भोग्यत्व ८, तथा (सर्वस्वाम्यम्) सबके स्वामित्व ९, (च) और (नित्यकैङ्कर्य्यप्रतिबन्धकनिःशेषनिबर्हणम्) नित्य कैङ्कर्य्य के प्रतिबन्धक को शेष रहित निबर्हण १०, ये दस अर्थ हैं। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि कहाँ पर लिखा है कि वेदका उपबृंहण स्मृति तथा इतिहास और पुराणों से होता है? इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि ॥ **प्रायेण पूर्वभागार्थपूरणं धर्मशास्त्रतः** ॥ प्रायः करके धर्मशास्त्र से वेद के पूर्व भाग का अर्थ उपबृंहण होता है ॥ और ॥ **इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥ महाभार० आदिप० १, अ० १, श्लो० ६७॥** इतिहास और पुराणों से वेद को अर्थात् वेद के उत्तर भाग को उपबृंहण करे, अल्पश्रुत से वेद डरता है कि यह मुझको ठगेगा ॥६७॥ इतिहास और पुराण के विषय में जिसको विशेष जानना हो वह श्रीवचनभूषण की मेरी बनाई हुई "चिन्तामणि" टीका को देख ले ओमिति।

मू०–ईदृशार्थप्रतिपादकस्य मन्त्ररत्नस्य विवरणभूताया अपौरुषेयायाः सहस्रगीतेर्दशभिः शतकैः-एतान् अर्थविशेषान् पूर्वाचार्य्या अनुसन्दधते, एवं श्रियः पतित्वप्रमुखानां प्रतिबन्धकनिःशेषनिबर्हणपर्य्यन्तानामुपादेयानामर्थानां प्रतिपादकं वाक्यद्वयं सहस्रगीतिश्च भगवच्चरणार्थिनां प्रपत्त्युपायपराणां कालक्षेपार्थमीश्वरप्रीणनार्थं यावज्जीवमनुसन्धेयम् ॥४०७॥

अर्थ–(ईदृशार्थप्रतिपादकस्य) इस प्रकार के अर्थ को प्रतिपादन करनेवाले

(मन्त्ररत्नस्य) द्वयमन्त्र के (विवरणभूतायाः) विवरण भई हुई (अपौरुषेयायाः) अपौरुषेया (सहस्रगीतेः) सहस्र गीति प्रबन्ध के (दशभिः) दस (शतकैः) शतकों से (एतान्) इन पूर्वोक्त दस (अर्थविशेषान्) विशेष अर्थों को (पूर्वाचार्य्याः) पराङ्कुश मुनि प्रभृति पूर्वाचार्य सब (अनुसन्दधते) अनुसन्धान करते हैं। (एवम्) इस प्रकार से (श्रियः) श्रीदेवीजी के (पतित्वप्रमुखानाम्) स्वामित्व आदिकों के (प्रतिबन्धकनिःशेषनिबर्हणपर्य्यन्तानाम्) प्रतिबन्धक को अच्छे प्रकार से निर्वहणपर्यन्त (उपादेयानाम्) ग्रहण करने योग्य (अर्थानाम्) अर्थों के (प्रतिपादकम्) प्रतिपादक (वाक्यद्वयम्) द्वय मन्त्र के दो वाक्य हैं। (च) और (सहस्रगीतिः) सहस्र गीति प्रबन्ध (भगवच्चरणार्थिनाम्) श्रीमन्नारायण भगवान् के चरणारविन्द को चाहनेवाले (प्रपत्त्युपायपराणाम्) प्रपत्तिरूप साधन में लगे हुए प्रपन्न जनों के (कालक्षेपार्थम्) कालक्षेप करने के लिये और (ईश्वरप्रीणनार्थम्) सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् की प्रीति के लिये (यावज्जीवम्) जब तक जीये तब तक (अनुसन्धेयम्) अनुसन्धान करने योग्य है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि द्वयमन्त्र मन्त्ररत्न है, इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रकार का उत्तर लिखा है कि ॥ **पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रः पदैः षड्भिः समन्वितः। वाक्यद्वयपरं मन्त्रं ज्ञेयं रत्नमनुत्तमम् ॥ हारीत०** ॥ द्वय मन्त्र में पच्चीस अक्षर हैं और छः पद हैं तथा दो खण्ड हैं और सब मन्त्रों से श्रेष्ठ होने से इसका मन्त्र-रत्न नाम है ॥ और पद्मपुराण में लिखा है कि ॥ **द्वयेन मन्त्ररत्नेन मत्प्रियेण भजेत्सदा ॥ पद्म०** ॥ मेरे प्रिय मन्त्र रत्नद्वय मन्त्र से सर्वदा मेरा भजन करे ॥ इस चारसौ सातवीं वार्ता में दो सौ पच्चीस पद हैं। इति रामानुजाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०७॥

अब यामुनाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यामुनाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–यामुनाचार्यस्य शरीरे रुजासमये वररङ्गं पुरस्कृत्य गोष्ठीपूर्णो महापूर्णश्च तच्चरणौ प्रणम्य, आवयोरुपायभूतमेकमर्थं प्रसादयेत्यवदताम्, यामुनाचार्य्यस्तावङ्गीकृत्य युष्माकमुपायभूतोऽयमर्थः श्रीरङ्गमन्दिरमेव युष्माकमाधारः-उपाय इति बुध्यध्वं श्रीरङ्गनाथचरणयोरधस्ताद्वीणाहस्तं सेवमानं योगिवाहनविग्रहं पादादिकेशान्तमनुभवत-

३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८
इत्यवोचत्, ते च वररङ्गप्रभृतयः सूरयस्तथैवेति निश्चयं
४९
चक्रुः ॥४०८॥

॥ यामुनाचार्य्य-स्तुतिः ॥

अर्थ– न वयं कवयस्तु केवलं न वयं केवलतन्त्रपारगाः ।

अपि तु प्रतिवादिवारणप्रकटाटोपविपाटनक्षमाः ॥२८२॥

(यामुनाचार्यस्य) यामुनाचार्य स्वामीजी के (शरीरे) देह में (रुजासमये) रोग होने के समय में (वररङ्गम्) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी को (पुरस्कृत्य) आगे करके (गोष्ठीपूर्णः) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी (च) और (महापूर्णः) महापूर्ण स्वामीजी ने (तच्चरणौ) यामुनाचार्य स्वामीजी के दोनों श्रीचरणों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (आवयोः) हम दोनों के (उपायभूतम्) उपायभूत (एकम्) एक (अर्थम्) अर्थ को (प्रसादय) कहिये (इति) इस प्रकार के (अवदताम्) कहा है । और (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी (तौ) उन दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी को और महापूर्ण स्वामीजी को (अङ्गीकृत्य) स्वीकार करके (युष्माकम्) तुम सबों का (उपायभूतः) साधनभूत (अयम्) यह (अर्थः) अर्थ है कि (श्रीरङ्गमन्दिरम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् का मन्दिर (एव) निश्चय करके (युष्माकम्) तुम सबों का (आधारः) आधार है और (उपायः) उपाय है (इति) इस प्रकार के (बुध्यध्वम्) तुम सब जानो । और (श्रीरङ्गनाथचरणयोः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के दोनों श्रीचरणों के (अधस्तात्) नीचे में (सेवमानम्) सेवा करते हुए (वीणाहस्तम्) वीणा बाजा हाथ में लिये हुए (पादादिकेशान्तम्) पैर से लेकर केश पर्य्यन्त (योगिवाहनविग्रहम्) योगिवाहन स्वामीजी के मङ्गलमय विग्रह को (अनुभवत) तुम सब अनुभव करो (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) बोले हैं । (च) और (ते) वे (वररङ्गप्रभृतयः) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी तथा गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी और महापूर्ण स्वामीजी प्रभृति (सूरयः) सूरि सबों ने (तथा) जैसा यामुनाचार्य स्वामीजी ने कहा था वैसा ही (एव) निश्चय करके (इति) इस प्रकार के (निश्चयम्) निश्चय को (चक्रुः) किया है । इस चार सौ आठवीं वार्त्ता में उच्छ्वास पद हैं । इति यामुनाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०८॥

अब यामुनाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यामुनाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

१ २ ३ ४ ६ ७ ८
मू०–तदा पुनर्यामुनार्य्यः वररङ्गं तावप्याहूय, अत्र

९ १० ११ १२
प्रमाणं श्रीवेङ्कटस्य मर्मवेत्ता कुरुंवरत्तअरत्तनम्वी, श्रीदेव-
१३ १४ १५ १६ १७
राजस्य मर्मवेत्ता काञ्चीपूर्णः, श्रीरङ्गनाथस्य मर्मवेत्ता योगि-
१८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५
वाहनः, तस्य मर्मवेत्ता वररङ्ग इत्येतान् प्रादर्शयत्, अन-
२६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२
न्तरं वररङ्गं दृष्ट्वा त्वं श्रीरङ्गनाथस्य मर्म ज्ञात्वा सेवमानो
३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४०
विग्रह एव ममोपायोपेयाविति वुध्यस्वेत्यवदत् ॥४०९॥

॥ यामुनार्यस्तुतिः ॥

अर्थ—आशैलादद्रिकन्याचरणकिसलयन्यासधन्योपकण्ठादारक्षोनीतसीतामुख-कमलसमुल्लसहेतोश्च सेतोः । आचप्राच्यप्रतीच्यक्षितिधरयुगलादर्कचन्द्रावतंसान्मी-मांसाशास्त्रयुग्मश्रमविमलमना मृग्यतां मादृशोऽन्यः ॥२८३॥

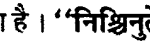
(तदा) तब (पुनः) फिर से (यामुनार्य्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी (वररङ्गम्) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी को और (तौ) वे दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी को तथा महापूर्ण स्वामीजी को (अपि) भी (आहूय) बुलाकर (अत्र) इस विषय में (प्रमाणम्) प्रमाण (श्रीवेङ्कटस्य) श्रीवेङ्कटेश भगवान् के (मर्मवेत्ता) मर्म को जाननेवाले (कुरुंवरत्तअरत्तनम्बी) कुरुंवरत्तअरत्तनम्बी स्वामीजी हैं। और (श्रीदेवराजस्य) श्रीदेवराज भगवान् के (मर्मवेत्ता) मर्म को जाननेवाले (काञ्चीपूर्णः) काञ्चीपूर्ण स्वामीजी हैं। तथा (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (मर्मवेत्ता) मर्म को जाननेवाले (योगिवाहनः) योगिवाहन स्वामीजी हैं। और (तस्य) उसके (मर्मवेत्ता) मर्म को जाननेवाले (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य्यजी हैं (इति) इस प्रकार के (एतान्) इन सबों को (प्रादर्शयत्) प्रकर्षरूप से दिखाये हैं। (अनन्तरम्) इसके बाद (वररङ्गम्) वररङ्गाचार्य्यजी को (दृष्ट्वा) देखकर (त्वम्) तुम (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (मर्म) मर्म को (ज्ञात्वा) जानकर (सेवमानः) सेवमान (विग्रहः) मङ्गलमय विग्रह (एव) निश्चय करके (मम) मेरा (उपायोपेयौ) उपाय और उपेय हैं (इति) इस प्रकार के (बुध्यस्व) जान लो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं। इस चार सौ नौवीं वार्ता में चालीस पद हैं। इति यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४०९॥

अब वररङ्गाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि—

॥ अथ वररङ्गार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–वररङ्गश्च तत्पादौ प्रणम्य भवान् नित्यविभूतौ परमपदनाथं सेवित्वाऽनिमेषदृष्टिः स्थातुं निश्चिनुते किमित्यवदत् ॥४१०॥

अर्थ–(च) और (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य स्वामीजी ने (तत्पादौ) यामुनाचार्य स्वामीजी के दोनों श्रीचरणों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (भवान्) आप (नित्यविभूतौ) नित्यत्रिपाद्विभूति में (परमपदनाथम्) परमपद के स्वामी श्रीमन्नारायण भगवान् की (सेवित्वा) सेवा करके (अनिमेषदृष्टिः) आँख की पलक को नहीं गिराकर देखते हुए (स्थातुम्) ठहरने के लिये (निश्चिनुते) निश्चय करते हैं (किम्) क्या (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहा है। "निश्चिनुते" यहाँ पर ॥ (स्वादिभ्यः श्नुः) व्या० अ० ३, पा० १, सू० ७१॥ इस सूत्र से श्नु हुआ है। इस चार सौ दसवीं वार्ता में चौदह पद हैं। इति वररङ्गार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४१०॥



अब यामुनाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

मू०–यामुनाचार्य्यः त्वं परमसमृद्धिमनुमन्यस्वेत्यवदत्, स च-ओमितिस्थितः यामुनाचार्य्यस्तावाहूय कश्चित् प्रपन्नः भगवदधीनायामात्मयात्रायां कर्माधीनायां देहयात्रायां स्वस्यान्वयोऽस्तीति जानाति चेत्, आत्मसमर्पणं नश्यति, नास्तिकत्वमेव सिद्ध्यति, अत उभयोर्यात्रयोरन्वयो नास्ति, नारायणस्य निरन्तरवेषः फलार्थं नम इत्यनुच्चरतामपि नित्यसूरिलोकं ददातीत्यौदार्य्यविशेषः, नाराणां निरन्तरवेषो नारायण एवास्माकमेव फलं ददातीति, स्वफलार्थं त्वरा च स्वरूपहानिः, ईश्वरो रक्ष्य इत्यनुसन्धानं च स्वरूपहानिः, तथासति-अनन्यार्हशेषत्वस्य स्वस्वामिसम्बन्धस्य चावद्यं भवेदित्यवदत् ॥४११॥

॥ यामुनाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– पूजार्हं पूजयामासुर्यामुनार्य्यं विपश्चितम् ।

तत्रत्या विबुधाः सर्वे ब्राह्मणा राजशासनात् ॥२८४॥

(यामुनार्य्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी ने (त्वम्) हे वररङ्गाचार्य्य ! तुम (परमसमृद्धिम्) बड़ी भारी समृद्धि को (अनुमन्यस्व) मान लो (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है (च) और (सः) वह वररङ्गाचार्यजी (ओम्) अच्छा (इति) इस प्रकार से कहकर (स्थितः) ठहर गये । और (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य्य स्वामीजी (तौ) उन दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी को और महापूर्ण सवामीजी को (आहूय) बुलाकर (कश्चित्) कोई भी (प्रपन्नः) प्रपन्न जन (भगवदधीनायाम्) श्रीमन्नारायण भगवान् के अधीन (आत्मयात्रायाम्) आत्म-यात्रा में और (कर्माधीनायाम्) कर्म के अधीन (देहयात्रायाम्) देह यात्रा में (स्वस्य) अपना (अन्वयः) सम्बन्ध (अस्ति) है (इति) इस प्रकार से यदि (जानाति) जानता है (चेत्) तो (आत्मसमर्पणम्) आत्म-समर्पण (नश्यति) नष्ट हो जाता है और (नास्तिकत्वम्) नास्तिकता (एव) निश्चय करके (सिद्ध्यति) सिद्ध होती है । (अतः) इस कारण से (उभयोः) दोनों आत्मा और देह की (यात्रयोः) यात्राओं में (अन्वयः) अपना सम्बन्ध (न) नहीं (अस्ति) है । (नारायणस्य) नारायण भगवान् का (निरन्तरवेषः) अन्तर रहित वेष (फलार्थम्) फल के लिये (नमः) नमः (इति) इस प्रकार के शब्द को (अनुच्चरताम्) नहीं उच्चारण करनेवालों को (अपि) भी (नित्यसूरिलोकम्) नित्य सूरियों के लोक को (ददाति) देता है (इति) इस प्रकार से (औदार्य्यविशेषः) औदार्य्य विशेष है । और (नाराणाम्) नित्य वस्तुओं के (निरन्तरवेषः) अन्तर रहित वेष (नारायणः) नारायण भगवान् (एव) निश्चय करके (अस्माकम्) हम सबों के (इति) इस प्रकार से (एव) निश्चय करके (फलम्) फल को (ददाति) देते हैं । (च) और (स्वफलार्थम्) अपने फल के लिये (त्वरा) त्वरा (स्वरूपहानिः) स्वरूप की हानि है । (च) और (ईश्वरः) सर्वेश्वर नारायण भगवान् (रक्ष्यः) रक्षा करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार से (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना भी (स्वरूपहानिः) स्वरूप की हानि है । (तथा) वैसे (सति) होने पर (अनन्यार्हशेषत्वस्य) अनन्यार्ह शेषत्व के (च) और (स्वस्वामिसम्बन्धस्य) अपने स्वामी के सम्बन्ध की भी (अवद्यम्) निन्दा (भवेत्) हो जायेगी (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहे हैं । इस चारसौ ग्यारहवीं वार्ता में छिहत्तर पद हैं । इति यामुनाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४११॥

अब गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी की और महापूर्ण स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ गोष्ठीपूर्णमहापूर्णोक्ता वार्ता ॥

मू०–पुनश्च तौ तत्पादौ प्रणम्य, आवयोराश्रयणीयः-
उपायः क इत्यपृच्छताम् ॥४१२॥

अर्थ–(च) और (पुनः) फिर से (तौ) वे दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी तथा महापूर्ण स्वामीजी (तत्पादौ) यानुनाचार्य स्वामीजी के श्रीचरणों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (आवयोः) हम दोनों के (आश्रयणीयः) आश्रयण करने योग्य (उपायः) उपाय (कः) कौन सा है (इति) इस प्रकार से (अपृच्छताम्) पूछे हैं। इस चारसौ बारहवीं वार्त्ता में ग्यारह पद हैं। इति गोष्ठीपूर्णमहापूर्णोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४१२॥

अब यामुनाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यामुनाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–यामुनाचार्य्यः युवां मामध्यवस्थश्रेदिति वदामि
मम स्वरूपहानिः, भगवच्चरणावाश्रयन्तो मम मनसि सदा
तिष्ठन्तीति वर्तेथामित्यवोचत्, तौ तच्छ्रुत्वा व्यामुमुहतुः,
यामुनाचार्य्यः पुनस्तौ दृष्ट्वा युवां मा व्यामुह्यतं युवयोः
श्रीमन्त्रार्थो भोगमण्डपश्चरमश्लोकार्थः पुष्पमण्डपः द्वयार्थ-
स्त्यागमण्डप एतत्प्रमातारः काञ्चीपूर्णप्रभृतय इत्यवो-
चत् ॥४१३॥

॥ यामुनाचार्योस्तुतिः ॥

अर्थ– अर्द्धराज्यं ददौ राजा यामुनाय विपश्चिते।
विवादसमये दत्तं भार्य्यया चोदितस्तदा ॥२८५॥

(यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी (युवाम्) तुम दोनों (माम्) मुझको (अध्यवस्थः) अध्यवसाय करो (इति) इस प्रकार से यदि (वदामि) कहता हूँ (चेत्) तो (मम) मेरे (स्वरूपहानिः) स्वरूप की हानि है। (भगवच्चरणौ) श्रीमन्नारायण भगवान् के चरणारविन्दों को (आश्रयन्तः) आश्रयण करनेवाले

(मम) मेरे (मनसि) मन में (सदा) हमेशा (तिष्ठन्ति) रहते हैं (इति) इस प्रकार से (वर्तेथाम्) तुम दोनों वर्तना (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। (तौ) वे दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी और महापूर्ण स्वामीजी (तत्) यामुनाचार्य स्वामीजी की उस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (व्यामुमुहतुः) विशेषरूप से मोहित हो गये। (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य्य स्वामीजी (पुनः) फिर से (तौ) उन दोनों (गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी को और महापूर्ण स्वामीजी को (दृष्ट्वा) देखकर (युवाम्) तुम दोनों (मा) भत (व्यामुह्यतम्) व्यामोह को प्राप्त करो (युवयोः) तुम दोनों के (श्रीमन्त्रार्थः) मूल मन्त्र का अर्थ (भोगमण्डपः) भोग मण्डप है। तथा (चरमश्लोकार्थः) चरमश्लोक का अर्थ (पुष्पमण्डपः) पुष्प मण्डप है। और (द्वयार्थः) द्वय मन्त्र का अर्थ (त्यागमण्डपः) त्याग मण्डप है। (एतत्प्रमातारः) इसके प्रमाता (काञ्चीपूर्णप्रभृतयः) काञ्चीपूर्ण आदि महानुभाव हैं (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) बोले हैं। इस चार सौ तेरहवीं वार्ता में इकतालीस पद हैं। इति यामुनाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४१३॥



अब वररङ्गाचार्यजी की वार्ता को कहते है कि–

॥ अथ वररङ्गाचार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–एतत्सर्वं श्रुत्वा वररङ्गः भवान् अवतारं परिसमाप्य गच्छति, अत्रत्यकृमिकीटादीनां किमप्यवद्यं जातं चेच्छेदो नास्ति किमित्यपृच्छत् ॥४१४॥

अर्थ–(एतत्) यामुनाचार्य स्वामीजी से कहे हुए इस (सर्वम्) सब वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी (भवान्) आप (अवतारम्) सिंहासनावतार को (परिसमाप्य) अच्छी तरह से समाप्त करके (गच्छति) जाते हैं। (अत्रत्यकृमिकीटादीनाम्) इस लीला विभूति में रहनेवाले कृमि, कीट, पशु, पक्षी आदिकों की (किम्) कुछ (अपि) भी यदि (अवद्यम्) बुराई (जातम्) उत्पन्न होगी (चेत्) तो (छेदः) छेद (न) नहीं (अस्ति) होगा (किम्) क्या (इति) इस प्रकार के (अपृच्छत्) पूछे हैं। इस चार सौ चौदहवीं वार्ता में बीस पद हैं। इति वररङ्गाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४१४॥

अब रङ्गनाथ भगवान् की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रङ्गनाथोक्ता वार्ता ॥

मू०–एतद्वार्त्तां श्रुत्वा तौ यामुनाचार्य्यवियोगे-आत्म-त्यागं कुर्व इति निरश्चिनुतां तदा श्रीरङ्गनाथसन्निधौ-अयं विशेषः प्रवृत्तः श्रीरङ्गनाथस्तच्छ्रुत्वा वररङ्गं गोष्ठीपूर्णं महापूर्णमन्यांश्च सूरीनाहूय यामुनाचार्य्यस्य शरीरस्य किञ्चिदवद्ये यूयं मनसि किञ्चिन्न विचारयत मया शापिता इत्याज्ञाप्य वररङ्गहस्ते तान् प्रादात् ॥४१५॥

अर्थ–(एतद्वार्ताम्) वररङ्गाचार्य्यजीकी वार्ता को (श्रुत्वा) सुनकर (तौ) वे दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी और महापूर्ण स्वामीजी (यामुनाचार्य्यवियोगे) यामुनाचार्य्य स्वामीजी से वियोग होने पर (आत्मत्यागम्) अपनी आत्मा के परित्याग को (कुर्वः) हम दोनों करेंगे (इति) इस प्रकार के (निश्चिनुताम्) निश्चय किये। (तदा) तब (श्रीरङ्गनाथसन्निधौ) श्रीरङ्गनाथ भगवान् की सन्निधि में (अयम्) यह (विशेषः) विशेष (प्रवृत्तः) प्रवृत्त है। (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (तत्) उस वृत्तान्त को (श्रुत्वा) सुनकर (वररङ्गम्) वररङ्गाचार्य स्वामीजी को और (गोष्ठीपूर्णं) गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी को तथा (महापूर्णम्) महापूर्ण स्वामीजी को (च) और (अन्यान्) दूसरे (सूरीन्) सूरियों को (आहूय) बुलाकर (यामुनाचार्यस्य) यामुनाचार्य्य स्वामीजी के (शरीरस्य) देह के (किञ्चित्) कुछ भी (अवद्ये) अवद्य होने पर (यूयम्) तुम लोग (मनसि) मन में (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं (विचारयत) विचार करना (मया) मुझसे (शापिताः) तुम सब शापित हो (इति) इस प्रकार की (आज्ञाप्य) आज्ञा देकर (तान्) उन गोष्ठीपूर्ण आदिक सूरियों को (वररङ्गहस्ते) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी के हाथ में (प्रादात्) दे दिये। इस चार सौ पन्द्रहवीं वार्ता में उन्तालीस पद हैं। इति श्रीरङ्गनाथोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४१५॥

अब वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ वररङ्गाचार्य्यवार्ता ॥

मू०–वररङ्गश्च तान् गृहीत्वा यामुनाचार्य्यपादौ प्रणम्यामुं विशेषं विज्ञापयाञ्चकार ॥४१६॥

अर्थ–(च) और (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी ने (तान्) उन गोष्ठी पूर्ण आदि सूरियों को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (यामुनाचार्य्यादौ) यामुनाचार्य स्वामीजी के श्रीचरणों को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (अमुम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् से कहे हुए इस (विशेषम्) विशेष अर्थ को (विज्ञापयाञ्चकार) विज्ञापन किया। इस चार सौ सोलहवीं वार्ता में नव पद हैं॥ इति वररङ्गाचार्य्यवार्ताव्याख्यानम्॥४१६॥

अब यामुनाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यामुनार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–स[१] चैतच्छ्रुत्वा[२] मत्फलमसहमानाः[३] श्रीरङ्गना[४]थस्य[५]-उभयकावेरीमध्ये[६]-आराधनं[७] न[८] सहन्त[९] इत्युक्त्वा[१०] मम[११] वियोगे[१२]-अविवेकं[१३] कुरुथ[१४] चेत्[१५], पुण्डरीकाक्षराममिश्रप्रभृतीनां[१६] श्रीरङ्गनाथस्यात्यन्ताभिमतस्य[१७] शठकोपस्य[१८] हृदयस्य[१९] विरुद्धा[२०] भवेत्[२१] इत्युक्त्वा[२२] स्वशपथमकरोत्[२३], ते[२४] च[२५] तच्छ्रुत्वा[२६]-अति[२७]-विषण्ण[२८] बभूवुः[२९], यामुनाचार्य्यः[३०] भगवद्भागवतविषयेषु[३१] तार[३२]-तम्यमविचार्य्य[३३] भगवद्विषये[३४] प्रवणः[३५] गुरुपरम्परापूर्वकं[३६] यथा[३७] आराधनं[३८] करोति[३९] तथा[४०] भागवतविषये[४१] प्रवणः[४२]-आचार्य्य[४३]-विग्रहमनुसन्धाय[४४] तीर्थं[४५] स्वीकुर्य्यात्[४६], ते[४७] च[४८] भागवतास्तीर्थ[४९]-करणसमये[५०]-अर्थकामपारवश्यरहिताः[५१] स्वाचार्य्यमुद्दिश्य[५२] गुरु[५३]-परम्परापूर्वकद्वयमनुसन्दधानाः[५४] तीर्थं[५५] प्रदद्युः[५६], एतदुभयो[५७]-रुपादेयं[५८] ज्ञानाधिकानां[५९] समूहे[६०] गत्वा[६१]-उभावप्यर्थकामपरवशौ[६२] प्राकृतशरीरशक्तौ[६३] समूहे[६४] स्थितेभ्यो[६५] ज्ञानाधिकेभ्य[६६] ईर्ष्यंतश्चेत्[६७] आचार्य्यश्चेदपि[६८] तयोस्तीर्थं[६९] नोपादेयमित्यवोचत्[७०], ते[७१] तच्छ्रुत्वा[७२]-अतिष्ठन्[७३]॥४१७॥

॥ यामुनाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– कुत्राप्यव्याहतमिदं जगदेकबुधाग्रणीः ।

बहुकालं सुखेनैव तस्थौ रङ्गे महायशाः ॥२८६॥

(च) और (सः) वह यामुनाचार्य्य स्वामीजी (एतत्) वररङ्गाचार्य्यजी की इस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (मत्फलम्) मेरे फल को (असहमानाः) नहीं सहनेवाले (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (उभयकावेरीमध्ये) दोनों कावेरी नदी के बीच में (आराधनम्) आराधन को (न) नहीं (सहन्ते) सहते हैं (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा) कह कर (मम) मेरे (वियोगे) वियोग में यदि (अविवेकम्) बेविचार को (कुरुथ) तुम सब करते हो (चेत्) तो (पुण्डरीकाक्षराममिश्रप्रभृतीनाम्) राममिश्र स्वामीजी तथा पुण्डरीकाक्ष स्वामीजी और प्रभृति शब्द से नाथमुनिस्वामीजी आदिकों के तथा (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (अत्यन्ताभिमतस्य) अत्यन्त अभिमत (शठकोपस्य) श्रीशठकोप स्वामीजी के (हृदयस्य) हृदय के (विरुद्धा) विरुद्ध बात (भवेत्) हो जायेगी (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा) कहकर (स्वशपथम्) यामुनाचार्य्य स्वामीजी ने अपनी शपथ (अकरोत्) की। (च) और (ते) वे गोष्ठीपूर्ण स्वामी आदि महानुभाव लोग (तत्) यामुनाचार्य स्वामीजी की उस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (अतिविषण्णाः) अत्यन्त विषण्ण (बभूवुः) हो गये। और (यामुनाचार्यः) चामुनाचार्य्य स्वामीजी (भगवद्भागवतविषयेषु) भगवान् और भागवतों के विषयों में (तारतम्यम्) न्यूनाधिक्य को (अविचार्य्य) नहीं विचार कर (भगवद्विषये) भगवद्विषय में (प्रवणः) प्रवणपुरुष (गुरुपरम्परापूर्वकम्) गुरु परम्परा के अनुसन्धान पूर्वक (यथा) जैसे (आराधनम्) आराधन को (करोति) करता है (तथा) वैसे ही (भागवतविषये) भागवतों के विषय में (प्रवणः) प्रवण पुरुष (आचार्यविग्रहम्) आचार्य के मंगलमय विग्रह को (अनुसन्धाय) अनुसन्धान करके (तीर्थम्) तीर्थ को (स्वीकुर्यात्) स्वीकार करे (च) और (ते) वे (भागवताः) भागवत सब (तीर्थकरणसमये) तीर्थ करने के समय में (अर्थकामपरवश्यरहिताः) अर्थ और काम की परवशता से रहित (स्वाचार्य्यम्) अपने आचार्य को (उद्दिश्य) उद्देश्य करके (गुरुपरम्परापूर्वकद्वयम्) गुरुपरम्परापूर्वकद्वय मन्त्र को (अनुसन्दधानाः) अनुसन्धान करते हुए (तीर्थम्) तीर्थ को (प्रदद्युः) प्रकर्षरूप से देवें (एतत्) यह (उभयोः) दोनों के (उपादेयम्) ग्रहण करने योग्य है। और (ज्ञानाधिकानाम्) अधिक ज्ञानवाले प्रपन्नों के (समूहे) समूह में (गत्वा) जाकर (उभौ) पूर्वोक्त दोनों (अपि)

भी (अर्थकामपरवशौ) अर्थ और काम के परवश (प्राकृतशरीरशक्तौ) प्राकृत देह में शक्त (समूहे) समूह में (स्थितेभ्यः) स्थित (ज्ञानाधिकेभ्यः) अधिक ज्ञानवाले प्रपन्नों से यदि (ईर्ष्यतः) ईर्ष्या करते हैं (चेत्) तो (आचार्यः) आचार्य (अपि) भी (चेत्) यदि होवें तो (तयोः) उन दोनों श्रीचरणों के (तीर्थम्) श्रीपादतीर्थ (न) नहीं (उपादेयम्) ग्रहण करने योग्य है (इति) इस प्रकार के (अवोचत्) कहे हैं। और (ते) वे गोष्ठीपूर्ण स्वामी आदिक महानुभाव लोग (तत्) यामुनाचार्य स्वामीजी के पूर्वोक्त वाक्य को (श्रुत्वा) सुनकर (अतिष्ठन्) ठहर गये। इस चारसौ सत्तरहवीं वार्ता में इक्यानवे पद हैं। इति यामुनाचार्य्योक्तवार्ताख्यानम् ॥४१७॥

अब यामुनाचार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ यामुनार्य्योक्ता वार्ता ॥

मू०–यामुनाचार्य्यः सूरीन् दृष्ट्वा युष्माकं चरमार्थः श्रीरङ्गनाथस्य केशपाशे-एकस्य मालतीमुकुलस्य विकासः, आचार्य्यविश्लेषे प्रथमदशां मध्यमदशां च विहाय चरमदशायमनुसन्धानमुत्तारकप्रतिपत्तिरित्युक्त्वा श्रीवररङ्गपादयोः प्रणम्य गोष्ठीपूर्णं महापूर्णं च तद्धस्ते प्रादात्, स चोभावपि हस्ते गृहीत्वा युवां वियोगं कुरुथश्चेत् देशविशेषं नित्यसूरिसमूहे प्रवेशं च न प्राप्नवमित्यवोचत्, यामुनाचार्य्यश्च तच्छ्रुत्वा-अतीव हृष्टः युवयोर्वररङ्गविग्रह एवोपायोपेयाविति बुध्येथामित्यवोचत्, तौ च तथेवाबुध्येतां तदनन्तरमीषच्छान्तरुजो गृहे वररङ्गप्रभृतिभिः स्नात्वा श्रीरङ्गनाथस्य चन्दनताम्बूलनैवेद्यादीनि यथेष्टं समर्प्य तत्रत्यसेनां श्रीपुण्डरीकप्रभृतीन्समस्तपरिजनं सङ्गीकृत्य परिवारमन्दिराणामपि चन्दनताम्बूलनैवेद्यादीनि यथेष्टं समर्प्य श्रीरङ्गनाथस्य स्नानं कारयित्वा चन्दनादीन्समर्प्यालञ्चकार ॥

॥ यामुनाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– एवं निवसतस्तस्य यामुनस्य महात्मनः ।

पञ्चविंशतिसंयुक्तं वत्सराणां शतं गतम् ॥२८७॥

(यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी (सूरीन्) गोष्ठीपूर्ण आदि सूरियों को (दृष्ट्वा) देखकर (युष्माकम्) तुम सबों का (चरमार्थः) चरम अर्थ (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (केशपाशे) केशपाश में (एकस्य) एक (मालतीमुकुलस्य) मालती के मुकुलका (विकासः) विकास है। (आचार्यविश्लेषे) आचार्य के वियोग होनेपर (प्रथमदशाम्) पहली दशा को (च) और (मध्यमदशाम्) मध्यम दशा को (विहाय) छोड़ कर (चरमदशायाम्) अन्तिमदशा में (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना (उत्तारकप्रतिपत्तिः) उत्तारक की प्रतिपत्ति है, (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा) कहकर (श्रीवररङ्गपादयोः) श्रीवररङ्गाचार्य स्वामीजी के श्रीचरणों में (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (गोष्ठीपूर्णम्) गोष्ठीपूर्णस्वामीजी को (च) और (महापूर्णम्) महापूर्ण स्वामीजी को (तद्धस्ते) वर रङ्गाचार्य स्वामीजी के हाथ में (प्रादात्) देदिये। (च) और सः) वह वर रङ्गाचार्य स्वामीजी (उभौ) उन दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी को और महापूर्ण स्वामीजी को (अपि) भी (हस्ते) हाथ में (गृहीत्वा) ग्रहण करके (युवाम्) तुम दोनों यदि (वियोगम्) वियोग को (कुरुथः) करते हो (चेत्) तो (देशविशेषम्) देश विशेष को (च) और (नित्यसूरिसमूहे) नित्यसूरियों के समूह में (प्रवेशम्) प्रवेश को (न) नहीं (प्राप्नवम्) प्राप्त करूँगा (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। (च) और (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी (तत्) वररङ्गाचार्यजी की उस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (अति) अत्यन्त (हृष्टः) सन्तुष्ट के (इव) समान (युवयोः) तुम दोनों के (वररङ्गविग्रहः) वर रङ्गाचार्य के विग्रह (एव) निश्चय करके (उपायोपेयौ) उपाय और उपेय हैं (इति) इस प्रकार से (बुध्येथाम्) तुम दोनों जानो (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। (च) और (तौ) वे दोनों गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी और महापूर्ण स्वामीजी (तथा) जैसे यामुनाचार्य स्वामीजी ने कहा था वैसे (एव) निश्चय करके (अबुध्येताम्) जाने। (तदनन्तरम्) इसके बाद (ईषत्) थोड़ासा (शान्तरुजः) रोगशान्त होनेपर (गृहे) घर में (वररङ्गप्रभृतिभिः) वररङ्गाचार्य आदि से (स्नात्वा) स्नानकरके (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (चन्दनताम्बूलनैवेद्यादीनि) चन्दन पान नैवेद्य आचमन आदिको (यथा) जैसा (इष्टम्) इष्ट था वैसा (समर्प्य) समर्पण करके (तत्रत्यसेनाम्) वहाँ पर रहनेवाली सेना को (श्रीपुण्डरीकप्रभृतीन्) श्रीपुण्डरीक आदिक (समस्तपरिजनम्) सम्पूर्ण परिजन को (सङ्कीकृत्य) एकत्रित करके (परिवारमन्दिराणाम्) परिवारमन्दिरों के (अपि) भी (चन्दनताम्बूलनैवेद्यादीनि) चन्दन पान नैवेद्य आदि को (यथा) जैसा (इष्टम्) इष्ट

था वैसा (समर्प्य) समर्पण करके (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरंगनाथ भगवान् के (स्नानम्) स्नान को (कारयित्वा) अर्चकों से करवाकर (चन्दनादीन्) चन्दन फूल तुलसीदल आदिकों को (समर्प्य) समर्पण करके (अलञ्चकार) अलङ्कृत किये, शमिति ।



मू०–तत्रागत्य सर्वेषु सूरिषु सेवमानेषु श्रीरङ्गनाथे च तत्समर्पितं सर्वमङ्गीकृत्य महासदसि स्थित्वा वररङ्गमाह्वयति सति स चागत्य-अनुसन्धानप्रकरणं विहाय, उपान्त्यदशकमनुसन्दधौ, तत्रत्याः सर्वे किमिदमिति विसिष्मिरे, श्रीरङ्गनाथस्य मस्तकात् माला च्युता, अर्चकेषु यामुनाचार्य्याय तां समर्पयितुं विचिन्तयत्सु वररङ्गः शीघ्रमुत्थाय तां मालामादाय तस्मै ददौ यामुनाचार्यश्च-अतिहृष्टः-अतिष्ठत्, वररङ्गस्तच्चरणपार्श्वे स्थितस्त्वदभिमतिः सिद्धेत्यवोचत्, श्रीरङ्गनाथोऽपि गच्छेत्यवोचत्, श्रीयामुनाचार्य्यः स्वमठं गत्वा श्रीवररङ्गगोष्ठीपूर्णमहापूर्णप्रभृतीनां सूरीणां तीर्थं गृहीत्वा तान् भोजयित्वा प्रणम्य सर्वापराधान् क्षमस्वेत्यपराधक्षमापणं कारयन् नोदतिष्ठत्, वररङ्गः भवतः-को वापचार इति वदन् तमुत्थापितवान्, अनन्तरमुत्थाय स्वयं प्रसादं स्वीकृत्य तेषां समीचीनवार्तामवोचत् ॥४१८॥

अर्थ–(च) और (तत्र) वहाँ पर (आगत्य) आकर (सर्वेषु) समस्त (सूरिषु) सूरियों की (सेवमानेषु) सेवा करने पर तथा (श्रीरङ्गनाथे) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के विषय में (तत्समर्पितम्) उस यामुनाचार्य स्वामीजी से समर्पण की हुई (सर्वम्) सब वस्तु को (अङ्गीकृत्य) स्वीकार करके (महासदसि) बड़ी भारी सभा में (स्थित्वा) ठहर कर (वररङ्गम्) वररङ्गाचार्य स्वामीजी को (आह्वयति) आह्वान करने (सति) पर (सः) वह वररङ्गाचार्य्यजी (आगत्य) यामुनाचार्य्य स्वामीजी के पास में आकरके (अनुसन्धानप्रकरणम्) सहस्रगीतिके अनुसन्धान प्रकरण को (विहाय) छोड़कर (उपान्त्यदशकम्) अन्त के पास के "व्याप्ताकाशे" इस दशक को (अनुसन्दधौ)

अनुसन्धान किये। "दधौ" यहाँ पर **॥ आत औणलः ॥ व्या० अ० ७, पा० १, सू० ३४ ॥** इस सूत्र से औकार हुआ है। (च) और (तत्रत्याः) उस स्थान में रहनेवाले (सर्वे) सब लोग (इदम्) यह (किम्) क्या (इति) इस प्रकार से कहकर (विसिष्मिरे) थोड़ा सा विस्मय किये, इसके बाद (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (मस्तकात्) मस्तक से (माला) माला (च्युता) गिरी, (अर्चकेषु) श्रीरङ्गनाथ के अर्चकों के (यामुनाचार्य्याय) यामुनाचार्य स्वामीजी के लिये (ताम्) उस गिरी हुई माला को (समर्पयितुम्) समर्पण करने के लिये (विचिन्तयत्सु) विशेषरूप से चिन्तन करने पर (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य स्वामीजी (शीघ्रम्) जल्दी से (उत्थाय) ऊठकर (ताम्) उस गिरी हुई (मालाम्) माला को (आदाय) लेकर (तस्मै) उस यामुनाचार्य स्वामीजी के लिये (ददौ) दे दिये। (च) और (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी (अतिहृष्टः) अत्यन्त सन्तुष्ट हो करके (अतिष्ठत्) ठहर गये। और (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य स्वामीजी (तच्चरणपार्श्वे) उस यामुनाचार्य स्वामीजी के चरणारविन्द के बगल में (स्थितः) स्थित हो गये। तथा (त्वत्) तेरे से (अभिमतिः) मेरी अभिमति (सिद्धा) सिद्ध हुई है (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे हैं। और (श्रीरङ्गनाथः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् (अपि) भी (गच्छ) तुम चले जाओ (इति) इस प्रकार से (अवोचत्) कहे। इसके बाद (श्रीयामुनाचार्यः) श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी (स्वमठम्) अपने मठ को (गत्वा) जाकर (श्रीवररङ्गगोष्ठीपूर्णमहापूर्णप्रभृतीनाम्) श्रीवररङ्गाचार्य स्वामीजी के तथा गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी के और महापूर्ण स्वामीजी वगैरह के तथा (सूरीणाम्) और सूरियों के (तीर्थम्) तीर्थ को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (तान्) उन वररङ्गाचार्य आदि सूरियों को (भोजयित्वा) भोजन करवा कर (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (सर्वापराधान्) सम्पूर्ण अपराधों को (क्षमस्व) क्षमा कीजिये (इति) इस प्रकार से (अपराधक्षमापणम्) अपराध को क्षमापण (कारयन्) करवाते हुए (न) नहीं (उदतिष्ठत्) ऊठे। तब (वररङ्गः) वररङ्गाचार्य स्वामीजी (भवतः) आपका (को वा) कौन सा (अपचारः) अपचार है अर्थात् आपका कोई भी अपचार नहीं है (इति) इस प्रकार से (वदन्) कहते हुए (तम्) उस यामुनाचार्य स्वामीजी को (उत्थापितवान्) ऊठा लिये। (अनन्तरम्) इसके बाद (उत्थाय) ऊठकर (स्वयम्) अपने से यामुनाचार्य स्वामीजी (प्रसादम्) भगवत्प्रसादको (स्वीकृत्य) स्वीकार करके (तेषाम्) उन वररङ्गाचार्य स्वामीजी तथा गोष्ठीपूर्णस्वामीजी और महापूर्ण स्वामीजी वगैरह सूरियों की (समीचीनवार्ताम्) समीचीन वार्ता को (अवोचत्) कहे हैं। वह समीचीन वार्ता गुह्यतम होने से यहाँ पर मैं नहीं लिखता हूँ। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि **"व्याप्ताकाशे"** यह दशक किस प्रकार का है ? इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि **॥ व्याप्ताकाशे समुदायमेघास्तूर्य्यशब्दमकुर्वन् अगाधसमुद्राश्चञ्चलतरङ्गकरानुद्धत्य नृत्यमकुर्वन्**

सप्तदेशाश्च समीचीनं धरन्मम पितुरानन्दावहगुणनारायणस्य दासान्दृष्ट्वा प्रीताः ॥ सहस्रगी० ।१०।९।१॥ नारायणदासान्दृष्ट्वा प्रीत्या समीचीनजलेन मेघाः पूर्णस्वर्णघटाः पूरिता उन्नताकाशे जलवहसागराः स्थित्वा कोलाहलमकुर्वन् दीर्घपर्वततोरणानि निबिडानि कृत्वा सर्वत्र प्रणेमुर्लोकाः ॥१०।९।२॥ प्रमेणुर्लोका धूपं समीचीनकुसुमवर्षमवर्षन् भूमिं तदाक्रान्तवतो दासानामग्रे-आगच्छतेत्युभयोः पार्श्वयोरवदन् मुनयो मार्गोऽयं वैकुण्ठगामिनामित्यागत्याभि- मुखम् ॥१०।९।३॥ अग्रेऽग्रेऽनिमिषावासस्थानमकल्पयन् भानुमन्तस्ते ते करपंक्तिं प्रादर्शयन् कम्पजनकोध्वनिर्मुरजानां तरङ्गवत्समुद्रघोषसदृशोभून्मधुविसारितुलसीशिरसो माधवस्य दासानाम् ॥१०।९।४॥ माधवस्य दासा इति द्वारे दिविषत्स्वागच्छतास्मत्पदे प्रविशतेति वदत्सु गीतान्यगायन् किं नराःगरुडाश्च वेदसमीचीनमुखा यागफलं मनसा समर्प्य ॥१०।९।५॥ यागस्य मनसा समर्पणसमये परिमलप्रसारिसुगन्धिधूमं काहलानि शङ्खाश्च संसृज्य सर्वत्र घोषितवन्तो नियमयताकाशस्थलं चक्रिणोदासा इति कान्तिमत्सुन्दरनयना अङ्गना मङ्गलाशासनमकुर्वन् प्रीता एव सत्यः ॥१०।९।६॥ अङ्गनासु मङ्गलाशासनं कुर्वाणासु मरुतोवश्चानुसृत्य सर्वत्र स्तोत्रमवदन्नगाधसागरे शयितस्यास्मत्केशवस्य वर्द्धमानकान्तिमणिकिरीटस्य कुम्भकोणस्थास्मद्गोपालस्य कुलदासानाम् ॥ १०।९।७॥ कुलदासाएते गोविन्दस्येति किरीटवत्सु दिविषत्सु पर्य्यायेण पर्यायेणाभिमुखमागच्छत्सु ध्वजालङ्कृतदीर्घप्राकारगोपुराणां सन्निहितेषु विग्रहवन्माधववैकुण्ठप्रवेशसमये ॥ १०।९।८॥ वैकुण्ठप्रवेशसमये द्वारदेशे दिविषदो वैकुण्ठदासा अस्मदीया अस्मत्स्थानं प्रविशतेति वैकुण्ठामरा मुनयश्च विस्मिता अभवन् वैकुण्ठप्रवेशोभूमिस्थानां विधिः ॥ १०।९।९॥ विधिप्रकारेण प्राविशन्निति समीचीनवेदविदःस्थानेषु सोपचारं चरणौ प्रक्षालितवन्तो निधिं समीचीनचूर्ण-पूर्णकुम्भदीपांश्च चन्द्रमुखा मुग्धाङ्गना धृतवत्य आगत्य ॥१०।९।१०॥ आगत्य तस्मिन् प्रत्युद्गच्छति महामणिमण्डपेऽनन्तशून्यमहानन्ददासैः सह स्थितिं गुच्छविकास्युद्यानकुरुकापुरी शठकोपोक्ते च्छन्दसां सहस्त्र ऐतदभ्यस्यन्तो मुनयः ॥ १०।९।११ इस दशकका अर्थ यहाँ पर ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिखता हूँ जिसको जानना हो वह "भगवद्विषय" में देखले । इस चार सौ अठारहवीं वार्त्ता में एक सौ नवासी पद हैं । इति यामुनाचार्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥ ४१८ ॥



अब यामुनाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि-

॥ अथ यामुनाचार्य्य-वार्ता ॥

मू०-ते[१] च[२]-ईश्वरस्याभिप्रायं[३] को[४] वेत्ति[५] परस्पर[६]-[७]

मचिन्तयन् तदा देवराजस्य वैशाखोत्सवेऽवभृथदिने यामुनाचार्य्यः श्रीरङ्गनाथं प्रणेतुं गत्वा, उत्तमसन्धिनिवेदनान्तरं यवनिकायां निवारितायां साष्टाङ्गं प्रणम्य, पादादिकेशान्तं केशादिपादान्तमनुभूय, चरणयोरधस्ताद्योगिवाहनमनुभूय, अशङ्कितं प्रसादितं शठकोपं दृष्ट्वा स्थानिकैः प्रसादं दत्वा प्रेषितः सूरिभिः मठं प्रविश्य, सूरीणां पुनस्तीर्थं स्वीकृत्य, तान् भोजयित्वा, मुहूर्तं कृत्वा वृषभमासे षष्ठ-अंशे श्रवणनक्षत्रेऽभिजिन्मुहूर्ते सूरीणां शेषं स्वीकृत्य, दिव्यसूरीन् शरणं गत्वा, आचार्य्यान् सूरीन् स्थानिकांश्चाहूय, क्षमामकारयत्, ते च श्रीरङ्गनाथस्यापचारोऽस्तीति चेद्भवतोऽप्यपचार इत्यवदन्, ततो वररङ्गप्रभृतीन् तत्रत्यसूरीणां हस्ते दत्वा स्थानिकान् दृष्ट्वा श्रीरङ्गनाथस्याराधनं मन्त्रपुष्पादिकं तत्तत्कालेषु कारयत आचार्येषु सूरिषु देशान्तरादागतेषु च आदरं कुरुतेत्यवोचत्, ते च-ओमित्यूचुः ओमित्युक्त्वा-इदमाश्चर्य्यं दृश्यते किं भविष्यतीति विचारयन्तोऽनुज्ञाता आगच्छन्, ततः पद्मासने स्थित्वा श्रीराममिश्रं ध्यायन् तच्चरणौ स्वस्य नेत्रयोः हृदये मस्तके च संस्थाप्य तत्पादुके-अग्रतः स्थापयित्वा ब्रह्मवल्लीभृगुवल्लीपुरुषसूक्तार्चिरादीन् सहस्रगीत्युपान्त्यदशकादीन् सूरिषु-अनुसन्धानेषु शङ्खे ध्मायमाने सकलवाद्येषु वाद्यमानेषु ब्रह्मरन्ध्रेण यामुनाचार्य्यः परमपदमगात् ॥ ४१९ ॥

अर्थ–(च) और (ते) वे वररङ्गाचार्य्य आदि सूरि सब (ईश्वरस्य) सर्वेश्वरके

(अभिप्रायम्) अभिप्राय को (कः) कौन पुरुष (वेत्ति) जानता है (परस्परम्) इस प्रकार के आपस में (अचिन्तयन्) चिन्तन किये। (तदा) तब (देवराजस्य) देवराज भगवानके (वैशाखोत्सवे) वैशाख के उत्सव में (अवभृथदिने) अवभृथके रोज (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य स्वामी जी (श्रीरङ्गनाथम्) श्रीरङ्गनाथ भगवान् को (प्रणेतुम्) प्राप्त करने के लिये (गत्वा) जाकर (उत्तमसन्धिनिवेदनान्तरम्) उत्तम सन्धि के निवेदन करने के बाद (यवनिकायाम्) पर्दा के (निवारितायाम्) निवारण करने पर (साष्टाङ्गम्) आठो अङ्गों के साथ (प्रणम्य) प्रणाम करके (पादादिकेशान्तम्) श्रीरंगनाथ भगवान के पैर से केश पर्यन्त और (केशादिपादान्तम्) केश से पैर पर्यन्त (अनुभूय) अनुभव करके (चरणयोः) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के दोनों चरणारविन्दों के (अधस्तात्) नीचे में (योगिवाहनम्) योगिवाहन स्वामीजी को (अनुभूय) अनुभव करके (अशङ्कितम्) शङ्का रहित और (प्रसादितम्) प्रसादित (शठकोपम्) श्रीशठकोपको (दृष्ट्वा) देखकर (स्थानिकैः) स्थानिक पुरुषों से (प्रसादम्) प्रसाद को (दत्वा) देकर (प्रेषितः) यानुनाचार्य स्वामीजी भेजे गये। इसके बाद (सूरिभिः) सूरियों के साथ (मठम्) यामुनाचार्य स्वामीजी मठ में (प्रविश्य) पैठकर (पुनः) फिरसे (सूरीणाम्) सूरियों के (तीर्थम्) तीर्थको (स्वीकृत्य) स्वीकार करके (तान्) उन सूरियों को (भोजयित्वा) भोजन करवा कर (मुहूर्तम्) मुहूर्त को (कृत्वा) करके (वृषभमासे) जेठ महीना (षष्ठे) छठवां (अंशे) अंश (श्रवणानक्षत्रे) श्रवणनक्षत्र (अभिजिन्मुहूर्ते) अभिजिन्मुहूर्त में (सूरीणाम्) सूरियों की (शरणम्) शरण (गत्वा) पाकरके (आचार्य्यान्) आचार्योंको तथा (सूरीन्) सूरियों को (च) और (स्थानिकान्) स्थानिकों को (आहूय) बुलाकर (क्षमाम्) अपचार की क्षमा को (अकारयत्) करवाये हैं। (च) और (ते) वे सूरि सब (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् का (अपचारः) यदि अपचार है (इति) इस प्रकार से (अवदन्) कहे हैं। (ततः) इसके बाद (वररङ्गप्रभृतीन्) वररङ्गाचार्य्य आदिकों को (तत्रत्यसूरीणाम्) वहाँ पर रहनेवाले सूरियों के (हस्ते) हाथ में (दत्वा) देकर (स्थानिकान्) स्थानिकों को (दृष्ट्वा) देखकर (श्रीरङ्गनाथस्य) श्रीरङ्गनाथ भगवान् के (आराधनम्) आराधनको और (तत्तत्कालेषु) उन उन कालो में (मन्त्रपुष्पादिकम्) मन्त्र तथा पुष्प और तुलसी आदि को (कारयत) तुम सब करवाना (च) और (आचार्य्येषु) आचार्यों में तथा (सूरिषु) सूरियों में और (देशान्तरात्) अन्यदेशसे (आगतेषु) आये हुए भागवतों में (आदरम्) आदर को (कुरुत) तुम सब करना (इति) इस प्रकारसे (अवोचत्) कहे हैं। (च) और (ते) वहाँ पर रहनेवाले वे सब (ओम्) अच्छा (इति) इस प्रकारसे (ऊचुः) कहे हैं। "ऊचुः" यहाँ पर **॥ वचिस्वपियजादीनां किति ॥ व्या० अ० ६, पा० १, सू०** १५, ॥ इस सूत्र से संप्रसारण हुआ है। (ॐ) अच्छा (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा)

कहकर (इदम्) यह (आश्चर्य्यम्) आश्चर्य (दृश्यते) देखा जाता है (किम्) क्या (भविष्यति) होगा (इति) इस प्रकार से (विचारयन्तः) विचार करते हुए (अनुज्ञाताः) अनुज्ञात पुरुष (आगच्छन्) आ गये। (ततः) इसके बाद (पद्मासने) कमलासन में (स्थित्वा) स्थित होकर (श्रीराममिश्रम्) श्रीराममिश्र स्वामीजीको (ध्यायन्) ध्यान करते हुए (तच्चरणौ) श्रीराममिश्र स्वामीजी के दोनों चरणारविन्दों को (स्वस्य) अपने (नेत्रयोः) दोनों नेत्रों में तथा (हृदये) हृदय में (च) और (मस्तके) मस्तक में (संस्थाप्य) अच्छेप्रकार से रखकर (तत्पादुके) श्रीराममिश्र स्वामीजीके दोनों खड़ाऊँ को (अग्रतः) आगे में (स्थापयित्वा) रखवा कर (ब्रह्मवल्लीभृगुवल्लीपुरुषसूक्तार्चिरादीन्) तैत्तिरीयोपनिषद्की ब्रह्मानन्द वल्ली को और भृगुवल्लीको तथा यजुर्वेदके ईक्कतीसवें अध्याय के पुरुषसूक्तको और कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद्के अर्चिरादि मार्ग को तथा (सहस्रगीत्युपान्त्यदशकादीन्) सहस्र गीतिके अन्तिम दशक के पास "व्याप्ताकाशे" इत्यादि दशकों को (सूरिषु) सूरियों के (अनुसन्धानेषु) अनुसंधान करने पर (शंखे) शंख (ध्मायमाने) बजाये जाने पर और (सकलवाद्येषु) संपूर्ण नगारा काहली घड़ी घण्ट आदिक बाजा (वाद्यमानेषु) बाजने पर (ब्रह्मरन्ध्रेण) ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से (यामुनाचार्यः) यामुनाचार्य्य स्वामी जी (परमपदम्) परम पद को (अगात्) प्राप्त कर लिये। "**अगात्**" यहाँ पर ॥ **इणो गा लुङि** ॥ **व्या० अ० २, पा० ४, सू० ४९** ॥ इस सूत्रसे गा आदेश हुआ है। अब यहाँ पर पहला प्रश्न यह होता है कि पद्मासन किसको कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर त्रिशिखि ब्राह्मणोपनिषद्में लिखा है कि ॥ **ऊर्वोरुपरि वै धत्ते यदा पादतले-उभे। पद्मासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविषापहम्** ॥ **त्रिशि० श्रु० ३९** ॥ जब दाहिने पैर का तलवा बायीं जांघ पर और बायें पैरका तलवा दाहिनी जांघ पर धारण किया जाता है तब सब रोग और विषको नाश करनेवाला पद्मासन होता है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार के पहले प्रश्न का उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि ब्रह्मानन्द-वल्ली कौन सी है ? इस प्रश्न का उत्तर तैत्तिरीयोपनिषद्में अधोलिखित प्रकार से लिखा है।

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्ली ॥

ॐसह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै ॥ ॐ शांतिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नं। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नर-

समयः । तस्येदमेव शिरः । अयं दक्षिणः पक्षः । अयमुत्तरः पक्षः । अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येषः श्लोको भवति ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १॥

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । याःकाश्च पृथिवीं श्रिताः । अथो अन्नेनैव जीवन्ति । अथैनदपि यन्त्यन्ततः । अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वौषधमुच्यते । सर्वं वैतेऽन्नमाप्नुवन्ति । येऽन्नं ब्रह्मोपासते । अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात्सर्वौषधमुच्यते । अन्नाद्भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्धन्ते । अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत इति । तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्राण एव शिरः । व्यानो दक्षिणः पक्षः । अपान उत्तरः पक्षः । आकाश आत्मा । पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येषश्लोको भवति । इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च ये । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । सर्वमेव त आयुर्यन्ति । ये प्राणं ब्रह्मोपासते । प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् । अन्योऽन्तरआत्मा मनोमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य यजुरेव शिरः । ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येषश्लोको भवति । इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥ यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्मान्मनोयात् । अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य श्रद्धैव शिरः । ऋतं दक्षिणः पक्षः । सत्यमुत्तरः पक्षः । योग आत्मा । महः पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येषश्लोको भवति । इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥ विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्माणि तनुतेऽपि च । विज्ञानं देवाः सर्वे । ब्रह्मज्येष्ठमुपासते । विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद । तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति । शरीरे पाप्मनो हित्वा । सर्वान्कामान्समश्नुत इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् । अन्योऽन्तरआत्मानन्दमयः । तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविधएव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येषश्लोको भवति । इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥ असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । अथातोऽनुप्रश्नाः । उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य । कश्चन गच्छति ३ । आहो विद्वानमुं

लोकं प्रेत्य। कश्चित्समश्नुता ३ उ। सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च। सत्यमभवत्। यदिदं किंच। तत्सत्यमित्याचक्षते। तदप्येषश्लोको भवति। इतिषष्ठोऽनुवाकः ॥६॥ असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मानंस्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वैतत्सुकृतम्। रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति। यदाह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठांविन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति। यदाह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य। तदप्येषश्लोको भवति। इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥ भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति। सैषानन्दस्य मीमांसा भवति। युवा स्यात्साधु युवाध्यायकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वावित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः। स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः। स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः। स एक आजानजानां देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः। ये कर्मणा देवानपियन्ति। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः। स एकोदेवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतसय। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः। स य एवंवित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रामति। एतं प्राणमयमात्मा- नमुपसङ्क्रामति। एतं मनोमयमात्मनमुपसङ्क्रामति। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्- क्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रामति। तदप्येष श्लोको भवति। इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥८॥ यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेतिकुतश्चनेति। एतं ह वावन तपति किमहं साधु नाकरवम्। किमहं

पापमकरवमिति । स य एवं विद्वानेते आत्मानंस्पृणुते । अभेह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुतेय एवंवेद ।इत्युपनिषत् । इति नवमोऽनुवाकः ॥९॥ ब्रह्मविदिदमयमिदमेकविंश-तिरन्नादन्नरसमयात्प्राणोव्यानोऽपान आकाशः पृथिवी पुच्छं षड्विंशतिः प्राणं यजुर्ऋक्सामादेशोऽथर्वाङ्गिरसः पुच्छं द्वाविंशतिर्यतः श्रद्धर्तं सत्ययोगोमहोऽष्टादश विज्ञानं प्रियं मोदः प्रमोद आनन्दो ब्रह्मपुच्छं द्वाविंशतिरसन्नेवाथाष्टाविंशतिरसत्षोडश भीषाऽस्मान्मानुषोमयगन्धर्वाणां देवगन्धर्वाणां पितृणां चिरलोकलोकानामाजानजानां कर्मदेवानां ये कर्मणा देवानामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मणः । स यश्च संक्रामत्येकपञ्चाशद्यतः कुतश्च नैतमेकादश नव ब्रह्मविद्य एवं वेदेत्युपनिषत् ॥ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सहवीर्यं करवावहै । तेजस्विनवधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति द्वितीया ब्रह्मानन्दवल्ली ॥२॥ इस वल्ली का अर्थ ग्रन्थविस्तार के भय से मैं नहीं लिखता हूँ । इस प्रकार से दूसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो तीसरा प्रश्न होता है कि भृगुवल्ली कौनसी है ? इस प्रश्न का उत्तर तैत्तिरीयोपनिद् में अधोलिखित प्रकार से लिखा है ।

॥ अथ भृगुवल्ली ॥३॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यंकरवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनोवाचमिति । तं होवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति । सतपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥ अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति । अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥ प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥ मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । मनसा जातानि जीवन्ति । मनःप्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहिभगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ इति

चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥ विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तं होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥ आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । सैषा भार्गवी वारुणी विद्या । परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता । य एवं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥ अन्नं न निन्द्यात् । तद्व्रतम् । प्राणो वा अन्नम् । शरीरमन्नादम् । प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥ अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो वा अन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥८॥ अन्नं बहु कुर्वीत । तद्व्रतम् । पृथिवी वा अन्नम् । आकाशोऽन्नादः । पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः । आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥९॥ न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया वह्वन्नं प्राप्नुयात् । अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्नंराद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्नं राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽन्नं राद्धम् । अन्ततोऽस्मा अन्नं राध्यते ॥१॥ य एवं वेद क्षेम इति वाचि । योगक्षेम इति प्राणापानयोः । कर्मेति हस्तयोः । गतिरितिपादयोः । विमुक्तिरिति पायौ । इति मानुषीः समाज्ञाः । अथ दैवीः । तृप्तिरितिवृष्टौ । बलमिति विद्युति ॥२॥ यश इति पशुषु । ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजापतिरमृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे । तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत । प्रतिष्ठावान् भवति । तन्मह इत्युपासीत । महान् भवति । तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति ॥३॥ तन्नम इत्युपासीत । नम्यन्तेऽस्मैकामाः । तद्ब्रह्मेत्युपासीत । ब्रह्मवान् भवति । तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत । पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः । परियेऽप्रिया भ्रातृव्याः स याश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये । स एकः ॥४॥ स य एवं वित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य ।

इमाँल्लोकान्कामान्नीकामरूप्यनुसञ्चरन् । एतत्सामगायन्नास्ते । हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु ॥५॥ अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो २ अहमन्नादो २ अहमन्नादः । अहं श्लोककृदहंश्लोककृदहं श्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि । यो मा ददाति स इदेव मा ३ वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा३द्मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां३ ॥ सुवर्ण ज्योतीः । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥६॥ राध्यते विद्युति मानवान्भवत्येको हा३ वु य एवं वेदैकं च ॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥१०॥ भृगुस्तस्मै यतो विशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तत्रयोदशान्नं प्राणं मनोविज्ञानमिति विज्ञाय तं तपसा द्वादश द्वादशानन्द इति सैषादशान्नं न निन्द्यात् प्राणः शरीरमन्नं न परिचक्षीतापो ज्योतिरन्नं बहुकुर्वीत पृथिव्यामाकाश एकादशैकादश । न कञ्चनैकषष्ठिरेकान्नविंशतिरेकान्नविंशतिः । इत्युपनिषत् ॥ ॐ सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सहवीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति तृतीया भृगुवल्ली ॥३॥ इस वल्ली का अर्थ ग्रन्थविस्तार के भय से मैं नहीं लिखता हूँ । इस प्रकार से तीसरे प्रश्न का उत्तर होने पर तो चौथा प्रश्न होता है कि पुरुषसूक्त कौन सा है ? इस प्रश्न का उत्तर अधोलिखित प्रकार से लिखा है ।

॥ अथ माध्यन्दिनीयपुरुषसूक्तम् ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः । ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥ ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥५॥ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम् । पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यां ग्राम्यांश्च ये ॥६॥ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरूपादा उच्येते ॥१०॥ ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत ॥११॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षः शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकानकल्पयन् ॥१३॥ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

इस सूक्त का अर्थ यहाँ पर ग्रन्थविस्तार के भय से मैं नहीं लिखता हूँ। इस प्रकार से चौथे प्रश्न का उत्तर होने पर तो पाँचवाँ प्रश्न (अन्तिम) होता है कि इस वार्ता में भागवतों की गोष्ठी में शङ्ख बजाने का वर्णन आया है तो क्या भागवतों के लिये कहींपर शङ्ख बजाने को लिखा है ? इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि, **प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान् । रुक्माङ्गदार्जुन-वसिष्ठविभीषणाद्या एतानहं परमभागवतान्नमामि ॥ पाण्डव गी० श्लो० १ ॥** प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक व्यास अम्बरीष शुकदेव शौनक भीष्म दाल्भ्य रुक्माङ्गद अर्जुन वसिष्ठ और विभीषण इत्यादिक परम भागवतों को मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ ॥१॥ इस पाण्डव गीता के श्लोक से भीष्म और अर्जुन स्पष्ट परम भागवत साबित होते हैं। और इन महानुभावों ने शङ्ख को बजाया है, यह श्रीमद्भगवद्गीता के पहले अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि ॥ **तस्य सञ्जयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः । सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ भगवद्गी० अ०१ श्लो० १२ ॥** कुरुओं में वृद्ध प्रतापी भीष्म पितामह जी ने उस दुर्योधन के हर्ष को उत्पन्न करते हुए सिंह के समान जोर से गर्जकर शङ्ख को बजाया ॥१२॥ और भी वहाँ ही लिख है कि– **ततः श्वेतैर्हयै युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ । माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ भगवद्गी० अ० १, श्लो० १४ ॥ पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः । पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥ अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥ काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥ द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते । सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥१८॥** उसके बाद सफेद घोड़ों से युक्त महान् रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुन दोनों ने दिव्य शङ्ख को बजाया ॥१४॥ श्रीकृष्णभगवान् ने पाँचजन्य शङ्ख को और अर्जुन ने देवदत्त शङ्ख को तथा भयङ्कर कर्मवाले वृकोदर भीम पौंड्र नामवाले महाशङ्ख को बजाये ॥१५॥ और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अनन्त विजय शङ्ख को तथा नकुल ने सुघोष शङ्खको को और सहदेव ने मणिपुष्पक शङ्ख को बजाया ॥१६॥ और बड़ा भारी श्रेष्ठ धनुषवाला काश्य राजा तथा महारथ शिखण्डी और धृष्टद्युम्न तथा विराट् और शत्रुओं से नहीं पराजित सात्यकि ॥१७॥और ऐ पृथ्वीपते ! द्रुपद राजा तथा द्रौपदी के प्रतिविन्ध्य आदिक पुत्रसब और आजानु भुजावाला अभिमन्यु इन सबों ने अलग-अलग चारो तरफ से शङ्खों को

बजाया ।।१८।। इन प्रमाणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि भगवत् और भागवत ये दोनों शङ्ख को बजाते थे। इस चारसौ उन्नीसवीं वार्ता में एंक सौ तैंतालीस पद हैं। इति यामुनाचार्य्य वार्ता व्याख्यानम् ।।४१९।।

अब वररङ्गाचार्य्य आदिकी वार्ता को कहते हैं कि –

॥ अथ वररङ्गादिवार्ता ॥

मू०-वररङ्गप्रभृतयः-छिन्नमूलवृक्षा इव निपत्य रुरुदुः ।।४२०।।

अर्थ–(वररङ्गप्रभृतयः) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी तथा गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी और महापूर्ण स्वामीजी आदिक महानुभाव सब (छिन्नमूलवृक्षाः) जड़कटे हुए पेड़ के (इव) समान (निपत्य) गिरकर (रुरुदुः) रोदन किये। इस चार सौ बीसवीं वार्ता में पाँच पद हैं। इति वररङ्गादिवार्ताव्याख्यानम् ।।४२०।।



अब श्रीरङ्गवासियों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ तत्रत्योक्तावार्ता ॥

मू०-तत्रत्यास्तानुत्थाप्य समाधानं कृत्वा महापूर्णं दृष्ट्वा-अग्रेकर्तव्यं कर्म कुर्वित्यब्रुवन् ।।४२१।।

अर्थ–(तत्रत्याः) श्रीरङ्गक्षेत्र निवासी वृद्ध भागवत सब (तान्) गिरे हुए उन वररङ्गाचार्य्य आदि महानुभावों को (उत्थाप्य) उठाकर (समाधानम्) समझा (कृत्वा) करके (महापूर्णम्) महापूर्ण स्वामीजी को (दृष्ट्वा) देखकर (अग्रे) आगे में (कर्तव्यम्) करने योग्य (कर्म) कर्म को (कुरु) तुमकरो (इति) इस प्रकार के (अब्रुवन्) कहे हैं। इस वार्ता में तेरह पद हैं। इति तत्रत्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ।।४२१।।



अब विष्णुदासीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ विष्णुदासीवार्ता ॥

मू०-दास्यः वीथीं सम्मार्ज्य तीर्थैः प्रसिच्य स्थल-

शोधनं कृत्वा रङ्गवल्ल्यादिकं कृत्वा, अलङ्कृत्य, दर्भमालां कल्हारमालां बध्वा, अनेकचित्रपट्टवस्त्रैर्वितानं बध्वा, मण्डपस्य चतुर्षु द्वारेषु कदलीक्रमुकस्तम्भान् स्थापयित्वा, नानाविधफलानि बध्वा, चतुर्षु ध्वजान् च बध्वा चित्रपत्राणि संस्थाप्य, दक्षिणपश्चिमपूर्वोत्तरद्वारेषु पलाशाश्वत्थखादिरौदुम्बरतोरणानि संस्थाप्य, द्रोणब्रीहीन् विकीर्य्य, पूर्णकुम्भं संस्थाप्य, चतुर्षु कोणेषु चतुरः कुम्भान् संस्थाप्य, द्वादशकलशान् प्रपूर्य्य, केशवादिनाम्ना संस्थाप्य, पूर्णकुम्भे कुशदर्भविष्णुक्रान्तपुष्पादीन् प्रक्षिप्य, गुरुपरम्परापूर्वकं द्वयानुसन्धानेन कुम्भकलशाद्यावाहनं कृत्वा, द्वादशनाम्ना तत्कलशस्नपनं कारयित्वा, ईशानकोणस्थकुम्भव्यतिरिक्तकुम्भैः श्रीपुरुषसूक्तेन कारयित्वा, सूरिषु तीर्थं स्वीकृत्य, चामरव्यजनादिभिरुपचर्य्य प्रदक्षिणं कुर्वत्सु द्वारि होमकृतस्थण्डिले ब्रीहीन् विकीर्य्य, उलूखलमुशलयोर्मन्त्रस्नानं कृत्वा नववस्त्रैर्वेष्टयित्वा, तदुलूखलमुशले तत्स्थण्डिलोपरि विकीर्णब्रीहौ संस्थाप्य, तत्र हरिद्राक्षेपं कृत्वा, शुद्धमालालङ्कृता चक्रमुद्रामुद्रिता वैष्णवी विष्णुदासी त्रिविक्रमवीथीं परिक्रम्य, द्वारि स्थितान् श्रीवैष्णवान् प्रणम्य तैरनुज्ञाता मध्ये-आगत्य नववस्त्रवेष्टितेन मेरुदैवत्येन मुशलेन द्वादशनामान्युच्चरन्ती श्रीचूर्णमचूर्णयत् ॥४२२॥

अर्थ–(दास्यः) दासी सब (वीथीम्) वीथी को (संमार्ज्य) अच्छी तरह से शुद्ध करके और (तीर्थैः) तीर्थों से (प्रसिच्य) सींच करके (स्थलशोधनम्) स्थल का शोधन (कृत्वा) करके और (रङ्गवल्ल्यादिकम्) गोमय से लिप कर चौकको (कृत्वा)

पूर करके (अलङ्कृत्य) अबीर और गुलाल से अलङ्कार करके (दर्भमालाम्) दर्भ की मालाको तथा (कल्हारमालाम्) कल्हार की माला को (बध्वा) बाँध कर (अनेकचित्रपट्टवस्त्रैः) अनेक प्रकार के रङ्ग विरङ्ग के रेशमी वस्त्रों से (वितानम्) चान्दनी को (बध्वा) बाँध कर (मण्डपस्य) मण्डप के (चतुर्षु) चारो (द्वारेषु) दारवाजे पर (कदलीक्रमुकस्तम्भान्) केला और क्रमुक के खम्भों को (स्थापयित्वा) स्थापन करके (नानाविधफलानि) अनेक प्रकार के आम्रआदि फलों को (बध्वा) बाँधकर (च) और (चतुर्षु) चारो (द्वारेषु) दारवाजे पर (ध्वजान्) पताकों को (बध्वा) बाँधकर (चित्रपत्राणि) चित्रपत्रों को (संस्थाप्य) रखकर (दक्षिणपश्चिमपूर्वोत्तरद्वारेषु) दक्षिण और पश्चिम तथा पूर्व और उत्तर के दरवाजे पर क्रम से (पलाशाश्वत्थखादिरौदुम्बरतोरणानि) पलाश और पीपल तथा खैर और गूलर के तोरणों को (संस्थाप्य) अच्छे प्रकार से स्थापन करके (द्रोणव्रीहीन्) एक द्रोणधान्य को (विकीर्य्य) पूरे हुए चौक के बीच में छिंटकर (पूर्णकुम्भम्) जल से पूर्ण कुम्भ को (संस्थाप्य) छिंटे हुए धान्य के ऊपर रखकर (चतुर्षु) चौक के चारों (कोणेषु) कोने में (चतुरः) चार (कुम्भान्) कुम्भों को (संस्थाप्य) रखकर (द्वादशकलशान्) और बारह कलशों को (प्रपूर्य्य) जल पत्र पुष्प फल आदिक से भरकर (केशवादिनाम्ना) ॐ केशवाय नमः इत्यादिक बारह नामों से (संस्थाप्य) चारो तरफ स्थापन करके (पूर्णकुम्भे) द्रोणभरी व्रीहि के ऊपर रखे हुए पूर्ण कुम्भ में (कुशदर्भविष्णुक्रान्तपुष्पादीन्) कुश दर्भ विष्णुक्रान्त फूल तुलसीपत्र सुपारी द्रव्य आदिक को (प्रक्षिप्य) डालकर (गुरुपरम्परापूर्वकम्) गुरु-परम्परा के पाठपूर्वक (द्वयानुसन्धानेन) द्वय मन्त्र के अनुसन्धान से (कुम्भकलशाद्यावाहनम्) पूर्णकुम्भ और कलशों के आवाहनादिक को (कृत्वा) करके (द्वादशनाम्ना) ॐ केशवाय नमः इत्यादिक बारह नामों से (तत्कलशस्नपनम्) उन बारह कलशों का स्नपन (कारयित्वा) आचार्यों से करवा कर और (ईशानकोणस्थकुम्भव्यतिरिक्तकुम्भैः) ईशानकोण में स्थित कुम्भ से व्यतिरिक्त घड़ों से (श्रीपरुषसूक्तेन) श्रीपुरुषसूक्त करके (कारयित्वा) स्नान करवा कर (सूरिषु) सूरियों के विषय में (तीर्थम्) तीर्थ को (स्वीकृत्य) स्वीकार कर (चामरव्यजनादिभिः) चँवर पंखा आदिशब्द से छाता और छड़ी तथा मसाल आदिकों से (उपचर्य्य) पास में सेवा करके (प्रदक्षिणम्) प्रदक्षिणा (कुर्वत्सु) करने पर (द्वारि) दरवाजे पर (होमकृतस्थण्डिले) हवन की हुई भूमि पर (व्रीहीन्) धान्यों को (विकीर्य्य) छिंट कर (उलूखलमुशलयोः) ओखरि और मुखल को (मंत्रस्नानम्) मंत्र से स्नान (कृत्वा) करा करके (नववस्त्रैः) नवीन सफेद वस्त्रों से (तदुलूखलमुशले) उस ओखरि और मुशल को (वेष्टयित्वा) ढाँक करके (अर्थात्) वेष्टन करके (तत्स्थण्डिलोपरि) उस दावाजे पर हवन की हुई भूमि के ऊपर में (विकीर्णव्रीहौ) छिंटी हुई व्रीहि पर (संस्थाप्य)

उस ओखरि और मुशल को रखकर (तत्र) उस ओखरि में (हरिद्राक्षेपम्) हल्दी को फेंक (कृत्वा) करके (शुद्धमालालङ्कृता) शुद्धमाला से अलङ्कृत और (चक्रमुद्रामुद्रिता) चक्र मुद्रा से मुद्रित (विष्णुदासी) विष्णुदासी नाम की (वैष्णवी) वैष्णवी (त्रिविक्रमवीथीम्) त्रिविक्रम भगवान् की वीथी को (परिक्रम्य) परिक्रमा करके (द्वारि) दरवाजे पर (स्थितान्) ठहरे हुए (श्रीवैष्णवान्) श्रीवैष्णवों को (प्रणम्य) प्रणाम करके (तैः) उन श्रीवैष्णवों से (अनुज्ञाता) आज्ञा पाकर के (मध्ये) बीच में (आगत्य) आकर इस वैष्णवी ने (नववस्त्रवेष्टितेन) नवीन वस्त्र से वेष्टित (मेरुदैवत्येन) मेरुदैवत्यवाले (मुशलेन) मुशल से (द्वादशनामानि) ॐ केशवाय नमः इत्यादिक बारह नामों को (उच्चरन्ती) उच्चारण करती हुई (श्रीचूर्णम्) श्रीचूर्ण को (अचूर्णयत्) चूर्ण कर दिया। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि द्वादश नाम कौन कौनसे हैं? इस प्रश्न का उत्तर देखिये लिखा है कि **॥ ॐ केशवाय नमः (१) ॐ नारायणाय नमः (२) ॐ माधवाय नमः (३) ॐ गोविन्दाय नमः (४) ॐ विष्णवे नमः (५) ॐ मधुसूदनाय नमः (६) ॐ त्रिविक्रमाय नमः (७) ॐ वामनाय नमः (८) ॐ श्रीधराय नमः (९) ॐ हृषीकेशाय नमः (१०) ॐ पद्मनाभाय नमः (११) ॐ दामोदराय नमः (१२)** ये द्वादश नाम हैं। इस चार सौ बाईसिवीं वार्ता में एक सौ तीन पद हैं। इति विष्णुदासी वार्ताव्याख्यानम् ॥४२२॥

अब वररङ्गाचार्य्य आदिक सूरियों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ वररङ्गाचार्य्यादिवार्ता ॥

मू०-वररङ्गप्रभृतयः सूरयः स्थण्डिलमध्यस्थां नवखण्डं पृथिवीमुल्लिख्य तद्व्रीह्युपरिस्थापितस्य भूमिदैवत्यस्य उलूखलस्याष्टसु दिक्षु दिव्यचूर्णदिव्यतैलदिव्यानुलेपदिव्यमाल्यदिव्यलाजदिव्यदण्डदिव्यदुग्धदिव्यदधिदिव्यशुद्धजलपूरितान् शुद्धतन्तुवेष्टितान् दर्भपवित्राश्वत्थपत्रपवित्रितान् अष्टकलशान् द्वयानुसन्धानेन स्थापयित्वा, परमाकाशदैवत्यं नवसूर्यं दिव्यक्षेत्रदैवत्यैर्निस्तुषनवलाजैः पूर्वदिशि संस्थाप्य, श्रीवैष्णश्रीपादतीर्थपूरितं कुम्भं पश्चिम-

दिशि[२८] संस्थाप्य[२९], श्रीवैष्णवेभ्यः समर्पणीयं[३०] द्रव्यमुत्तरदिशि[३१] संस्थाप्य[३२], श्रीरङ्गनाथेन[३३] प्रेषितान्[३४] मालावस्त्रप्रसादान्[३५] दक्षिणदिशि[३६] संस्थाप्य[३७], यामुनाचार्य्यं[३८] प्रणम्य[३९], विमलचरमविग्रहं[४०] हृदये[४१] नेत्रे[४२] च संस्थाप्य[४३], सर्वतः[४४] स्थित्वा[४५], मधुरकविप्रबन्धादीन्[४६] वररङ्गे[४७] गायति-अनन्तरं[४८] सर्वेऽनुसन्धाय[४९], दिव्यनृत्यगीतवाद्यैः[५०], श्रीवीथ्यां[५१] शठकोपप्रथमप्रबन्धमनुसन्धाय[५२] मठद्वारि[५३] प्रबन्धशान्तिं[५४] कृत्वा[५५], दिव्यतैलदिव्यचूर्णदिव्यमाल्यादीन्[५६] रङ्गनाथेन[५७] स्नानसमये[५८] धृत्वा[५९], प्रेषितं[६०] पट्टवस्त्रं यामुनाचार्य्याय[६१] समर्प्य[६२], तमलङ्कृत्य यामुनाचार्य्यस्य[६३] दिव्यदेहे समर्पितान्[६४] तच्छेषान्[६५] तैलचूर्णप्रसादान्[६६] वररङ्गमहापूर्णप्रभृतयः[६७] स्वयं[६८] स्वीकृत्य[६९], तदानींतनावस्थितिं[७०] शुभाश्रयतया[७१] हृदयेऽनुसन्धाय[७२] श्रीपादयोर्निपत्य[७३], चरणौ[७४] नेत्रयोः[७५] शिरसि[७६] वक्षसि[७७] च धृत्वा[७८], तत्प्रपत्तिमनुसन्धाय[७९], स्वोच्चध्वनिसशरीरम्लानं[८०] सदन्तप्रदर्शं[८१] सश्वासनिरोधं[८२] साश्रुनेत्रमाचार्य्यविश्लेषासहिष्णवो[८३] रुरुदुः[८४] ॥४२३॥

अर्थ–(वररङ्गप्रभृतयः) वररङ्गाचार्य्य स्वामी आदिक (सूरयः) सूरि सब (स्थण्डिलमध्यस्थाम्) द्वार पर हवन की हुई स्थण्डिल भूमि के मध्य में स्थित (पृथिवीम्) पृथ्वी को (नवखण्डम्) नवखण्ड (उल्लिख्य) कुश के मूल से ऊपर मुख लिखकर (तद्व्रीह्युपरि) उस छिंटे हुए धान्य के ऊपर में (स्थापितस्य) रखे हुए (भूमिदैवत्यस्य) पृथ्वी दैवत्य (उलूखलस्य) ओखर के (अष्टसु) आठो (दिक्षु) दिशाओं में अर्थात् पूरब १, दक्षिण २, पश्चिम ३, उत्तर ४, अग्नि ५, निर्ऋति ६, वायु ७, ईशान ८ इन आठो दिशाओं में (दिव्यचूर्णदिव्यतैलदिव्यानुलेपदिव्यमाल्यदिव्यलाजदिव्यदण्डदिव्यदुग्धदिव्यदधिदिव्यशुद्धजलपूरितान्) दिव्य हल्दी के चूर्ण और दिव्य तिल का तैल तथा दिव्यकेशर कस्तूरी से युक्त मलयागिरि चन्दन और दिव्य सफेद फूल का बना हुआ माल्य तथा दिव्य धान की लावा और दिव्य

ऊख का छिला हुआ दण्ड तथा दिव्य गौ का दूध और दिव्य गौ का दधि तथा दिव्य निर्मल जल इन सब चीजों से भरे हुए और (शुद्धतन्तुवेष्टितान्) शुद्ध निर्मल डोरा गले में लपेटे हुए तथा (दर्भपवित्राश्वत्थपत्रपवित्रितान्) कुशकी पवित्रा और पीपल के पत्ते से पवित्र किये हुए (अष्टकलशान्) आठ कलशों को (द्वयानुसन्धानेन) द्वयमन्त्र के अनुसन्धान करके (स्थापयित्वा) आचार्यों से स्थापन करा करके और (परमाकाशदैवत्यम्) परमाकाश दैवत्य (नवसूर्य्यम्) नवसूर्य को (दिव्यक्षेत्रदैवत्यैः) दिव्यक्षेत्र के देवता सम्बन्धी (निस्तुषनवलाजैः) बिना भूसा के नवीन धान की लावा से युक्त (पूर्वदिशि) पूरब दिशा में (संस्थाप्य) स्थापन करके (श्रीवैष्णवश्रीपादतीर्थपूरितम्) श्रीवैष्णवों के श्रीपादतीर्थ से भरे हुए (कुम्भम्) कलश को (पश्चिमदिशि) पश्चिम दिशा में (संस्थाप्य) स्थापन करके (श्रीवैष्णवेभ्यः) श्रीवैष्णवों के लिये (समर्पणीयम्) समर्पण करने योग्य (द्रव्यम्) द्रव्य को (उत्तरदिशि) उत्तर दिशा में (संस्थाप्य) स्थापन करके (श्रीरङ्गनाथेन) श्रीरङ्गनाथ भगवान् से (प्रेषितान्) अर्चकों के द्वारा भिजवाये हुए (मालावस्त्रप्रसादान्) माला तथा वस्त्र और तुलसीदल आदि प्रसादों को (दक्षिणदिशि) दक्षिण दिशा में (संस्थाप्य) स्थापन करके (यामुनाचार्य्यम्) यामुनाचार्य स्वामीजी को (प्रणम्य) साष्टाङ्ग प्रणाम करके (विमलचरमविग्रहम्) यामुनाचार्य स्वामीजी के मल से रहित अन्तिम विग्रह को (हृदये) हृदय में (च) और (नेत्रे) आँख में (संस्थाप्य) अच्छी तरह से रखकर (सर्वतः) चारो तरफ से (स्थित्वा) स्थित होकर (मधुरकविप्रबन्धादीन्) मधुर कवि स्वामीजी का बनाया हुआ **"कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु"** अर्थात् **"ग्रन्थिमत्सूक्ष्महस्वरज्जुः"** इत्यादि प्रबन्धों को (वररङ्गे) वररङ्गाचार्य स्वामीजी के (गायति) गाने पर (अनन्तरम्) इसके बाद (सर्वे) सब सूरि लोग (अनुसन्धाय) प्रबन्धों को अनुसन्धान करके (दिव्यनृत्यगीतवाद्यैः) दिव्य नाच तथा गाना और बाजाओं से (श्रीवीथ्याम्) श्रीवीथी में (शठकोपप्रथमप्रबन्धम्) श्रीशठकोपस्वामीजी के बनाये हुए प्रथम **"तिरुविरुत्त"** अर्थात् **"श्रीच्छन्दस्"** नाम के प्रबन्ध को (अनुसन्धाय) अनुसन्धान करके (मठद्वारि) यामुनाचार्यस्वामीजी के मठ के दरवाजे पर (प्रबन्धशान्तिम्) प्रबन्ध पाठ की शान्ति को (कृत्वा) करके (दिव्यतैलदिव्यचूर्णदिव्यमाल्यादीन्) दिव्य तिल के तैल और दिव्य हल्दी के चूर्ण तथा दिव्य माला आदिको और (रङ्गनाथेन) श्रीरङ्गनाथ भगवान् से (स्नानसमये) स्नान करने के समय में (धृत्वा) धारण करके (प्रेषितम्) अर्चकों द्वारा भिजवाये हुए (पट्टवस्त्रम्) पट्टबन्ध के वस्त्र को (यामुनाचार्य्याय) यामुनाचार्य स्वामीजी के लिये (समर्प्य) समर्पण करके (तम्) उस यामुनाचार्य स्वामीजीको (अलङ्कृत्य) अलङ्कार करके (यामुनाचार्य्यस्य) यामुनाचार्य्य स्वामीजी के (दिव्यदेहे) दिव्यशरीर में (समर्पितान्) समर्पण किये हुए (तच्छेषान्) यामुनाचार्य स्वामीजी के देह से बचे हुए

(तैलचूर्णप्रसादान्) दिव्यतैल और दिव्य चूर्ण तथा दिव्य प्रसादों को (वररङ्गमहापूर्णप्रभृतयः) वररङ्गाचार्य्य स्वामीजी और महापूर्ण स्वामीजी वगैरह (स्वयम्) अपने से (स्वीकृत्य) स्वीकार करके (तदानीम्) उस समय में (तनावस्थितिम्) यामुनाचार्य स्वामीजी के तन की अवस्थितिको (शुभाश्रयतया) शुभ के आश्रय होने से (हृदये) हृदय में (अनुसन्धाय) अनुसन्धान करके (श्रीपादयोः) यामुनाचार्य्य स्वामीजी के श्रीचरणों में (निपत्य) गिरकर (चरणौ) यामुनाचार्य स्वामीजी के दोनों चरणारविन्दों को (नेत्रयोः) दोनों आँखों में तथा (शिरसि) सिरमें (च) और (वक्षसि) छाती में (धृत्वा) धारण करके (तत्प्रपत्तिम्) उस यामुनाचार्य स्वामीजी के श्रीचरणों की प्रपत्तिको (अनुसन्धाय) अनुसन्धान करके (स्वोच्चध्वनि) अपने बड़े ऊँचे शब्द से और (सशरीरम्लानम्) अपने देह की म्लानि के साथ तथा (सदन्तप्रदर्शम्) अपने दाँतों को बारम्बार दिखला करके और (सश्वासन्निरोधम्) अपनी साँस के निरोध के साथ (साश्रुनेत्रम्) तथा आँखों में आँसू के साथ (आचार्य्यविश्लेषासहिष्णवः) यामुनाचार्य स्वामीजी के वियोग को नहीं सहनेवाले वररङ्गाचार्य स्वामी प्रभृति सूरियों ने (रुरुदुः) रोदन किया। अब यहां पर यह प्रश्न होता है कि मधुर कवि स्वामीजी का बनाया हुआ "**कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु**" अर्थात् "**ग्रन्थिमत्सूक्ष्महस्वरज्जुः**" प्रबन्ध कौन सा है ? इस प्रश्न का उत्तर अधोलिखित प्रकार से लिखा है।

॥ अथ ग्रन्थिमत्सूक्ष्महस्वरज्जुः ॥

ग्रन्थिमत्सूक्ष्मरज्ज्वा बन्धनयोग्यं कृतवतो महामायिनो मत्पितुरुपगम्य सुन्दरकुरुकापुरीपूर्ण इत्युक्तौ मधुरीभवत्यमृतं स्रवति मद्रसनाया एव ॥१॥ रसनयोक्त्वानन्दं प्राप्तवान् आदृतवांस्तस्य स्वर्णचरणं याथार्थ्यमेव देवमन्यं न जानामि कुरुकापुरीपूर्णच्छन्दोमधुरागंगीत्वा सञ्जरामि ॥२॥ निकृत्यापि देवोपकारकस्य नीलसुन्दरश्रीरूपं पश्येयं महामहोदारकुरुकापुरीनगरपूर्णस्य दासोऽनुरूपो भूत्वा दासेन मया प्राप्तं समीचीन्यम् ॥३॥ समीचीनेनाधिकाश्चतुर्वेदविदो नीचतया गणयेयुरेवंभूतत्वात् माता भूत्वा पिताभूत्वा मन्नियमनस्वभाववान् शठकोपो मम पूर्ण एव ॥४॥ अभिलषितवानन्यसमीचीनद्रव्यमभिल- षितवान्योषितश्च पूर्वं सर्वदा रक्तस्वर्णगृहश्रीकुरुकापुरीपूर्णस्य प्रीतिमान् भूत्वा सोऽहं चतुरो जातोऽद्यैव ॥५॥ अद्यारभ्य सप्तपुरुषपर्यन्तमस्मत्स्वामी स्थित्वा स्वकीर्तिस्तोत्रकरणाय कृपां कृतवान् पर्वतगृहश्रीकुरुकापुरीपूर्णः सर्वदा मां न त्यजेत्पश्यत ॥६॥ पश्यन्सन्मां कारिमार उपकारकः प्राचीनप्रबलपापविनाश्यान्वगृह्णात् अष्टौ दिशश्च यथा जानीयुस्तथा वदामि-उज्ज्वलद्राविडशठकोपकृपामेव ॥७॥ कृपां श्लाघमाना दासा यथानन्दं प्राप्नुयुस्तथान्वगृह्णात् तद्दुर्ल्लभवेदार्थं कृपां स्वीकृत्य सहस्रं मधुरद्राविडान्यगायत्

कृपा पश्यतास्मिंल्लोकेधिका ॥८॥ श्रेष्ठवेदिनां वेदस्यान्तः पदार्थं सुस्थिरं गीत्वा मम मनसि स्थापितवान् उचितगुणस्य शठकोपस्य मम पूर्णस्य दास्ये प्रवेशकृदाशा दास्यफलं तदैव ॥९॥ फलाभावेप्यौचित्यशून्या अपि व्यापारेण सम्यञ्चो यथा भवेयुस्तथा विशोध्यदास्यं स्वीकुर्यात्कोकिला स्थित्वा यत्र कोलाहलं कुर्वन्ति तादृशोद्यानपरिवृत्तकुरुकापुरीपूर्णाध्यवस्यामि तव निविडचरणयोरभिनिवेशमेव ॥१०॥ भक्तस्य स्वमाश्रितानां सर्वेषां स्नेहवतः दक्षिणकुरुकापुरीनगरपूर्णस्य स्नेहवता मधुरकविनोक्ते वाक्ये विश्वासवतां स्थानं वैकुण्ठं पश्यत ॥११॥ इति ग्रन्थिमत्सूक्ष्महस्वरज्जुः । इस प्रबन्ध का अर्थ यहाँ पर ग्रन्थ के विस्तार के भय से मैं नहीं लिखता हूँ । इस चार सौ तेईसवीं वार्ता में सौ पद हैं । इति वररङ्गाचार्य्यादि-वार्ताव्याख्यानम् ॥४२३॥

अब अन्यसूरियों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अन्यसूरि वार्ता ॥

मू०-इतरे[१] सूरय[२] आगत्य[३] तन्नेत्राश्रु[४] प्रमृज्य[५] तान्[६] आश्वासयामासुः[७], तेऽपि[८] क्रमश[९] आश्वास्य[१०] दिव्यरथमारोप्य[११] यामुनाचार्य्यं[१२] स्वयं[१३] वहन्तः[१४] शङ्खे[१५] ध्मायमाने[१६] दिव्यवाद्येषु[१७] वाद्यमानेषु[१८] वेदपारायणं[१९] कुर्वतः[२०] प्रबन्धमनुसन्दधाना[२१] मार्गे[२२] वस्त्रमास्तीर्य्य[२३], इक्षुकुम्भादिकं[२४] दधानाः[२५] लाजपुष्पाणि[२६] विकिरन्तः[२७] कुसुमवलिमङ्गलदीपान्यादाय[२८], दासीषु-अग्रतो[२९] गच्छन्तीषु-उभयतश्चामरे[३०] वीज्यमाने[३१] श्वेतच्छत्रे[३२] धियमाणे[३३] दर्शने[३४] यामुनाचार्य्यो[३५] गच्छतीति-एककाहले[३६] ध्मायमाने[३७] सर्वाः[३८] वीथीः[३९] परिक्रम्य[४०] कावेरीतीरं[४१] प्राप्य[४२] सङ्कर्षणपूर्णकुम्भजलेन[४३] स्थलशुद्धिं[४४] कृत्वा[४५] यतिसंस्कारविध्युक्तप्रकारेण[४६] खननसंस्कारं[४७] कर्त्तुमारेभिरे[४८] ॥४२४॥

॥ वरदराजस्तुतिः ॥

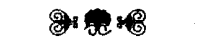
अर्थ–यस्य प्रसादकलया वधिरः शृणोति पङ्गुः प्रधावति जवेन च वक्ति

मूकः। अन्धः प्रपश्यति सुतं लभते च बन्ध्या तं देवमेव वरदं शरणं गतोऽस्मि ॥२८८॥

(इतरे) अन्य (सूरयः) सूरि सब (आगत्य) रोनेवालों के पास में आकर (तत्रेत्राश्रु) उन रोनेवालों की आँख के आँसू को (प्रमृज्य) पोंछकर (तान्) उन रोनेवालों को (आश्वासयामासुः) आश्वासन किये। और (ते) वे सूरि सब (अपि) भी (क्रमशः) क्रम से (आश्वास्य) आश्वासन करके (यामुनाचार्य्यम्) यामुनाचार्य स्वामीजी को (दिव्यरथम्) दिव्य रथ में (आरोप्य) रखकर (स्वयम्) अपने (वहन्तः) ढोते हुए (शङ्खे) शङ्ख के (ध्मायमाने) शब्द होने पर और (दिव्यवाद्येषु) दिव्य घड़ी, घण्टा, नगारा, ढोलक आदि बाजाओं के (वाद्यमानेषु) बजनेपर (वेदपरायणम्) वेद के परायण को (कुर्वतः) करते हुए और (प्रबन्धम्) दिव्यसूरियों के प्रबन्ध को (अनुसन्दधानाः) अनुसन्धान करते हुए (मार्गे) रास्ते में (वस्त्रम्) वस्त्र को (आस्तीर्य्य) फैला करके (इक्षुकुम्भादिकम्) छिले हुए ईख के दण्ड को और मिट्टी के घड़े को तथा नारियल आदि वस्तुओं को (दधानाः) धारण किये हुए और (लाजपुष्पाणि) धानके लावे तथा फूलों को (विकिरन्तः) फेंकते हुए (कुसुमबलिमङ्गलदीपानि) और फूल तथा बलिप्रदान की वस्तु और मङ्गल दीप को (आदाय) लेकर (दासीषु) दासियों के (अग्रतः) आगे आगे (गच्छन्तीषु) चलने पर तथा (उभयतः) यामुनाचार्य स्वामीजी के रथ के दोनों बगल से (चामरे) चँवर (वीज्यमाने) करने पर और (श्वेतच्छत्रे) सफेद छाते को (ध्रियमाणे) धारण करने पर तथा (दर्शने) देखने पर (यामुनाचार्य्यः) यामुनाचार्य स्वामीजी (गच्छति) जाते हैं (इति) इस प्रकार के (एककाहले) प्रधान काहली के (ध्मायमाने) शब्द होने पर (सर्वाः) सब (वीथीः) वीथियों की (परिक्रम्य) परिक्रमा करके (कावेरीतीरम्) कावेरी नदी के तट को (प्राप्य) पा करके (सङ्कर्षणपूर्णकुम्भजलेन) सङ्कर्षण भगवान् के पूर्णकुम्भ के जल से (स्थलशुद्धिम्) भूमि की शुद्धि को (कृत्वा) करके (यतिसंस्कारविधयुक्तप्रकारेण) संन्यासी के अन्तिम संस्कार की विधि करके कहे हुए प्रकार से (खननसंस्कारम्) खनन संस्कार को (कर्तुम्) करने के लिये (आरेभिरे) सूरि सबों ने प्रारम्भ किया। अब यहँ पर यह प्रश्न होता है कि संन्यासी के अन्तिम संस्कार करने की कौन सी विधि है ? इस प्रश्न का उत्तर बृहच्छौनक स्मृति में लिखा है कि ॥ **यतिं पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वावटं ततः। प्रणवेनाष्टवारं तं प्रोक्षयेदथ सर्वतः ॥ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति यजुषा प्रणवेन च। गर्त्ते प्रेतं विनिक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे ॥ इति मन्त्रेण दण्डं तु दद्याद्दक्षिणहस्तके। मूर्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शङ्खेन भेदयेत् ॥ गर्त्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत्। शृगालश्वादिरक्षार्थं सम्यग्गर्त्तं प्रपूरयेत् ॥** पुरुष सूक्त से संन्यासी को स्नान कराके इसके बाद उस गढ़े को सब ओर से प्रणव मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण करे और "**विष्णोहव्यंरक्षस्व**"

इस यजुर्वेद के मन्त्र से और प्रणव से गढ़े में यति के मृतक देह को रखकर "**इदं विष्णुर्विचक्रमे**" इस मन्त्र से दाहिने हाथ में त्रिदण्ड को दे। और "**भूर्भुवः स्वः**" ऐसा कहकर शङ्ख से सिर को भेदन करे। तथा पुरुष सूक्त पढ़कर गढ़े को नमक से पूर्ण करे। और स्यार, कुत्ता आदिसे रक्षा के लिये उस गढ़े को अच्छे प्रकार से मिट्टी से भर दे ।। और देखिये बौधायन स्मृति में लिखा है कि ॥ **अथ गृहस्थः शुद्धात्माऽशेषतः स्नात्वा द्वादशोर्ध्वपुण्ड्रं तर्जन्या विधाय गन्धपुष्पादिभिरलङ्कृत्य शिक्ये शरीरमारोप्य घोषितं जयशब्दैर्दुन्दुभीनां रवैरपि ग्रामात्प्राचीमुदीचीं गत्वा शुद्धदेशं समाश्रयेत्, नदीतीरेऽश्वत्थवृक्षस्य वटवृक्षस्य वाधस्ताद्देवयजनं त्रिदण्डायामप्रमाणं व्याहृतिभिः खनित्वा लवणं प्रक्षिप्य दर्भान् संस्तीर्य गायत्र्या शरीरं प्रक्षाल्य पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वा षोडशोपचारैर्गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य "विष्णो हव्यं रक्षस्व" इति शरीरं कुण्डे निधाय "इदं विष्णुर्विचक्रमे" इति मन्त्रेण दक्षिण हस्ते त्रिदण्डं "यस्य पारे" इति सव्ये शिक्यं "येन देवाः पवित्रेण" इति मुखे जलपवित्रं सावित्र्योदरे पात्रं "भूमिःश्वभ्रे" इति गुह्ये कमण्डलुं निधाय "हंसः शुचिषद्वसु" रिति हृदयदेशे जपेत् "ब्रह्मयज्ञानं प्रथम" मिति मूर्धदेशे जपेत्, पुरुषसूक्तं भ्रुवोर्मध्ये जपेत् "ॐभूमिर्भूमिमगान्माता" इति मन्त्रेण मूर्धानं भिन्द्यादश्मना परशुना वा "ॐभूर्भुवः स्वरो" मित्यभिमन्त्र्य दर्भैराच्छाद्य मध्ये लवणेन घनतरेण सप्तव्याहृतिभिः मूलमन्त्रेण च देवयजनं पूरयेत्, "अग्निनाग्निः समिध्यते" इत्यनुमन्त्रयेन्न तत्र शेषसंस्कारोऽस्ति, अन्यथा ग्राम्यादिभक्षणेऽनावृष्टिर्भवति तस्माद्भूमिं भृशङ्खात्वा मृदाच्छादयेत् ॥ बौधायन०** ॥ संन्यासी के मर जाने पर शुद्धात्मा गृहस्थ अच्छी तरह से स्नान करके यति के मृतक देह को स्नान करावे। और बारह ऊर्ध्व पुण्ड्र को करके और गन्ध तथा पुष्पों से अलङ्कृत करके देह को शिक्य पर रखकर जय जय शब्द करते हुए और नगारा बजवाते हुए ग्राम से पूरब या उत्तर दिशा में शुद्ध स्थान पर रखे। और नदी के तटपर या पीपल अथवा वट के वृक्ष के नीचे त्रिदण्ड के बराबर विस्तारवाला देवयजन खने। और उस गर्त में व्याहृतियों से लवण छिंटकर कुशा डसावे। और गायत्री मन्त्र से देह को प्रोक्षण करके पुरुष सूक्त से स्नान तथा षोडशोपचार पूजन करके "**विष्णो हव्यं रक्षस्व**" इस मन्त्र से शरीर को कुण्ड में रखकर "**इदं विष्णुर्विचक्रमे**" इस मन्त्र से दक्षिण हस्त में त्रिदण्ड और "**यस्य पारे**" इस मन्त्र से वामहाथ में शिक्य तथा "**येन देवाः पवित्रेण**" इस मन्त्र से मुख में जलपवित्र और सावित्रि मन्त्र से पेट में भिक्षा के पात्र को और "**भूमिः श्वभ्रे**" इस मन्त्र से गुह्येन्द्रिय में कमण्डलु को रखकर "**हंसःशुचिषद्वसुः**" इस मन्त्र को हृदय में जपे। और "**ब्रह्मयज्ञानं प्रथमम्**" इस मन्त्र को मस्तक में जपे। तथा पुरुष सूक्त को भौहों के मध्य में जपे। और "**ॐभूमिर्भूमिमगान्माता**" इस मन्त्र को पढ़कर

पत्थर से या परशु से सिर को फोड़ दे। और "ॐभूर्भुवः स्वरोम्" इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके और कुशों को डसाकर मध्य में घनतरलवण से देवयजन स्थान को सप्त महाव्याहृतियों से या मूलमन्त्र से पूर्ण करे। इसके बाद "**अग्निनानिः समिध्यते**" इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। और इसमें कुछ संस्कार नहीं है। यदि ऐसा न करे तो ग्राम के कुत्ता आदि जीव उस देह को खाते हैं। इससे अनावृष्टि होती है। इस कारण पृथ्वी को पूरा खनकर मिट्टी से अच्छी तरह आच्छादित कर दे॥ यहाँ पर ग्रन्थविस्तार के भय से विशेष मैं नहीं लिखता हूँ जिसको अधिक जानना हो वह मेरे बनाये हुआ "**यतीन्द्रधर्ममार्तण्डः**" नाम के ग्रन्थ को देखले। इस चार सौ चौबीसवीं वार्ता में साठ पद हैं। इत्यन्यसूरिवार्ताव्याख्यानम्॥४२४॥



अब रामानुजार्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजार्य्योक्ता वार्त्ता ॥

मू०-रामानुजः[१] यामुनाचार्य्यं[२] सिषेविषुः[३] महत्याशया[४] काङ्क्ष्याः[५] श्रीरङ्गं[६] प्राप्य[७] यामुनाचार्यस्य[८] विग्रहेण[९] सह[१०] सेवा-मलभमानस्तच्चरमविग्रहं[११] सेवित्वा[१२], एतावत्येव[१३] मम[१४] प्राप्ति-रिति[१५] तद्विषयं[१६] ध्यानविषयं[१७] कुर्वन्[१८] यामुनाचार्य्यस्याहमेकलव्य-इत्युक्त्वा[१९] "यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः"[२०] इति तच्चरणकमलध्यानतत्परः[२१] काञ्चीमगमदित्यवदत्[२२], चरमोप-देशचरमतदीयानुवर्तनचरमकालप्रबोधचरमकालव्यावृत्तसुख-रूपचरमदशाज्ञानानुष्ठानचातुर्य्यं[२३] परमाचार्य्योऽयमेव[२४] जानाति[२५] ॥४२५॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– त्रिदण्डहस्तं सितयज्ञसूत्रं काषायवस्त्रं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम्।
रथाङ्गशङ्खाङ्कितबाहुमूलं रामानुजार्य्यं शरणं प्रपद्ये ॥२८९॥

(रामानुजः) रामानुजाचार्य स्वामीजी (यामुनाचार्य्यम्) यामुनाचार्य स्वामीजी की (सिषेविषुः) सेवा करने की इच्छा से (महत्या) बड़ी भारी (आशया) आशा करके

(काञ्च्याः) काञ्चीपुरी से (श्रीरङ्गम्) श्रीरङ्गक्षेत्र को (प्राप्य) पाकर (यामुनाचार्यस्य) यामुनाचार्य स्वामीजी के (विग्रहेण) मङ्गलमय विग्रह के (सह) साथ (सेवाम्) सेवा को (अलभमानः) नहीं प्राप्त होते हुए (तच्चरमविग्रहम्) उस यामुनाचार्य्य स्वामीजी के चरमविग्रह की (सेवित्वा) सेवा करके (एतावती) इतनी ही (एव) निश्चय करके (मम) मेरी (प्राप्तिः) प्राप्ति है (इति) इस प्रकार के (तद्विषयम्) उस यामुनाचार्य्य स्वामीजी के विषय को (ध्यानविषयम्) अपने ध्यान के विषय (कुर्वन्) करते हुए (यामुनाचार्यस्य) यामुनाचार्य स्वामीजी का (अहम्) मैं (एकलव्यः) एकलव्य शिष्य हूँ (इति) इस प्रकार से (उक्त्वा) कहकर (यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः) जिन परमाचार्य श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी के युगल चरण कमलों के ध्यान करने से नष्ट हो गये हैं सम्पूर्ण पाप जिसके ऐसा मैं (इति) इस प्रकार के (तच्चरणकमलध्यानतत्परः) उस यामुनाचार्य्य स्वामीजी के चरणारविन्द के ध्यान में तत्पर लक्ष्मण मुनिजी (काञ्चीम्) काञ्चीपुरी को (अगमत्) चले गये। "**अगमत्**" यहाँ पर ॥ **पुषादिद्युताद्यॢलृदितः परस्मैपदेषु ॥ व्या० अ० ३, पा० १, सू० ५५ ॥** इस सूत्र से अङ् हुआ है। और (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहे हैं कि (चरमोपदेशचरमतदीयानुवर्तनचरमकालबोधचरमकालव्यावृत्तसुखरूपचरमदशाज्ञानानुष्ठन-चातुर्यम्) चरमोपदेश के और चरमतदीयानुवर्तन के तथा चरमकाल प्रबोध के और चरमकाल व्यावृत्त सुखरूप के तथा चरमदशा के ज्ञानानुष्ठान के चातुर्य्य को (अयम्) यह (परमाचार्य्यः) परमाचार्य्य स्वामीजी (एव) निश्चय करके (जानाति) जानते हैं। इस वार्ता में ॥ **यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः** ॥ यह यामुनाचार्य स्वामीजी की तनया का प्रतीक है, इससे इस सम्पूर्ण श्लोक को लिखकर इसका अर्थ यहाँ पर लिखता हूँ ॥ **यत्पदाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः । वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम्** ॥ जिन परमाचार्य्य श्रीयामुनाचार्यस्वामीजी के युगल चरण कमलों के ध्यान करने से नष्ट हो गये हैं सम्पूर्ण पाप जिसके ऐसा अधिकारी मैं अपने उपादेय पदार्थ श्रीमन्नारायण भगवान् को प्राप्त करलिया हूँ। उन श्रीयामुनाचार्य्य स्वामीजी महाराज को मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ॥ यहाँ पर ग्रन्थ के विस्तार के भय से ध्यान के विषय में मैं नहीं लिखता हूँ जिसको जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "वैदिकयोसंग्रहः" नाम के ग्रन्थ को देख ले। इस चार सौ पच्चीसवीं वार्ता में चालीस पद हैं। इति रामानुजाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४२५॥

अब नेडादूराल्वान्दासजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ नेडादूरात्वान्दासोक्ता वार्ता ॥

मू०-धनुर्दासस्य देहे रुजासमये नेडादूरात्वानागत्य ममोपायभूतामेकां वदेत्यवदत् ॥४२६॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– शेषांशादवतीर्णाय लोकरक्षणहेतवे ।

श्रीमद्रामानुजार्याय गुरुवर्याय मङ्गलम् ॥२९०॥

(धनुर्दासस्य) धनुर्दासजी के (देहे) देह में (रुजासमये) रोग होने के समय में (नेडादूरात्वान्) नेडादूरात्वान्दासजी ने (आगत्य) धनुर्दासजी के पास में आकर (मम) मेरे (उपायभूताम्) उपायभूत (एकाम्) एक वार्ता को (वद) कहिये (इति) इस प्रकार के (अवदत्) कहा है। इस चार सौ छब्बीसवीं वार्ता में ग्यारह पद हैं। इति नेडादूरात्वान्दासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४२६॥

अब धनुर्दासजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ धनुर्दासोक्ता वार्ता ॥

मू०-स च नारायणस्य निरन्तरवेषो निजपुरुषार्थार्थं नम इत्यप्यनुच्चरतां दिव्यसूरिलोकं ददातीति कश्चिदौदार्य्यविशेषः, नाराणां तु नारायण एवास्माकमेव फलं ददातीति स्वफले त्वरा-ईश्वरो रक्ष्य इत्यनुसन्धानं च स्वरूपहानिः, अनन्यार्हशेषत्वस्यावद्यमित्यवदत् ॥४२७॥

अर्थ–(च) और (सः) वह धनुर्दास जी (नारायणस्य) नारायण भगवान् का (निरन्तरवेषः) निरन्तर वेष यह है कि (निजपुरुषार्थार्थम्) अपने पुरुषार्थ के लिये (नमः) नमः (इति) इस प्रकार के शब्द को (अपि) भी (अनुच्चरताम्) नहीं उच्चारण करनेवाले पुरुषों को (दिव्यसूरिलोकम्) दिव्य सूरियों के लोक को (ददाति) देते हैं (इति) इस प्रकार का (कश्चित्) कोई (औदार्यविशेषः) औदार्य विशेष है। (तु) और (नाराणाम्) नित्य (अस्माकम्) हम सब जीवों के (एव) निश्चय करके (नारायणः) नारायण भगवान् (एव) हीं (फलम्) फलको (ददाति) देते हैं (इति)

इस प्रकार के (स्वफले) अपने फल में (त्वरा) त्वरा करना (च) और (ईश्वरः) सर्वेश्वर (रक्ष्यः) रक्षा करने योग्य हैं (इति) इस प्रकार से (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान करना (स्वरूपहानिः) स्वरूप की हानि है। और (अनन्यार्हशेषत्वस्य) अनन्यार्ह शेषत्व के (अवद्यम्) अवद्य हैं (इति) इस प्रकार से (अवदत्) कहे हैं। इस चारसौ सत्ताईसवीं वार्ता में पैंतीसपद हैं। इति धनुर्दासोक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४२७॥

अब रामानुजाचार्य्य स्वामीजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ रामानुजाचार्य्योक्तवार्ता ॥

मू०-एतद्रामानुजः श्रुत्वा-इतः पूर्वमनुक्तान् परमार्थान् इदानीमवदत्, अत एव तस्य चरमदशा-उत्पन्नेति विचार्य हेमाम्बामाहूय धनुर्दासः परमपदं गच्छति, त्वमनुमरणं मा कुरु मया शापितासीति शपथं कारयित्वा-अगच्छत् ॥४२८॥

॥ रामानुजाचार्यस्तुतिः ॥

अर्थ– एवं महार्थं निखिलागमान्तसारं विपश्चिद्गुणजीवभूतम्।
ज्ञात्वा महाभक्तिपरो यतीन्द्रे स विष्णुलोकं समुपैति सत्यम् ॥२९१॥

(रामानुजः) रामानुजाचार्य स्वामीजी (एतत्) धनुर्दासजी की पूर्वोक्त इस बात को (श्रुत्वा) सुनकर (इतः) इससे (पूर्वम्) पहले (अनुक्तान्) नहीं कहे हुए (परमार्थान्) श्रेष्ठ अर्थों को (इदानीम्) इस समय में (अवदत्) धनुर्दासजी कहे हैं (अतः) इस कारण से (एव) निश्चय करके (तस्य) उस धनुर्दासजी की (चरमदशा) मरण दशा (उत्पन्ना) उत्पन्न हुई है (इति) इस प्रकार से (विचार्य्य) विचारकर (हेमाम्बाम्) हेमाम्बा देवी को (आहूय) बुलाकर (धनुर्दासः) तेरा पति धनुर्दासजी (परमपदम्) परम पद को (गच्छति) जाते हैं। (त्वम्) तुम (अनुमरणम्) पीछे से मरण को (मा) नहीं (कुरु) करना (मया) मुझसे (शापिता) शापित (असि) तुम हो (इति) इस प्रकार की (शपथम्) प्रतिज्ञा को (कारयित्वा) करवाकर (अगच्छत्) चले गये। इस चार सौ अट्ठाईसवीं वार्ता में बत्तीस पद हैं। इति रामानुजाचार्य्योक्तवार्ताव्याख्यानम् ॥४२८॥

अब धनुर्दासजी की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ धनुर्दासवार्ता ॥

मू०-[१]ततः [२]किञ्चित्[३]कालानन्तरं धनुर्दासः [४]परमपद-[५]मगात् [६]॥४२९॥

अर्थ–(ततः) उसके बाद (किञ्चित्) कुछ (कालानन्तरम्) समय के बाद (धनुर्दासः) धनुर्दासजी (परमपदम्) परम पद को (अगात्) चले गये। इस चार सौ उन्तीसवीं वार्ता में छः पद हैं। इति धनुर्दासवार्ताव्याख्यानम् ॥४२९॥

अब सब सूरियों की वार्त्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ सूरिवार्त्ता ॥

मू०-[१]तच्छ्रुत्वा [२]भाष्यकारः [३]सर्वे सूरयो [४]भगवत्परिक-[५]राश्च-[६]आगत्य[७]अनुसन्धानं [८]कृत्वा [९]ब्रह्ममेधसंस्कार[१०]प्रकारेण तस्य [११]स्नानं [१२]कारयामासुः [१३][१४]॥४३०॥

अर्थ–(तत्) धनुर्दासजी के उस मरण को (श्रुत्वा) सुनकर (भाष्यकारः) श्रीभाष्यकार स्वामीजी तथा (सर्वे) सब (सूरयः) सूरि लोग (च) और (भगवत्परिकराः) भगवान् के परिकर सब (आगत्य) धनुर्दासजी के पास में आकर (अनुसन्धानम्) अनुसन्धान को (कृत्वा) करके (ब्रह्ममेधसंस्कारप्रकारेण) ब्रह्ममेध संस्कार के प्रकार से (तस्य) उस धनुर्दासजी के मृतक देह के (स्नानम्) स्नान को (कारयामासुः) करवाये। यहाँ पर ग्रन्थ बड़ा हो जोने से ब्रह्ममेध के विषय में मैं कुछ नहीं लिखता हूँ जिसको उस विषय में कुछ जानना हो वह मेरा बनाया हुआ "**वैदिकश्राद्धदर्पणम्**" नाम के ग्रन्थ को देख ले। इस चारसौ तीसवीं वार्ता में चौदह पद हैं। इति सूरिवार्ताव्याख्यानम् ॥४३०॥

अब हेमाम्बादेवीजी की वार्ता की कहते हैं कि–

॥ अथ हेमाम्बावार्ता ॥

मू०-[१]तदा [२]हेमाम्बा [३]चन्दनताम्बूलकुसुमादिभिराभ-

रणैश्चालङ्कृता कस्तूरीमृगवत् सात्त्विकैर्मिलित्वा दुःखापनोदनं दर्शयन्ती तस्य व्यजनाद्युपकारमकरोत् ॥४३१॥

अर्थ–(तदा) तब धनुर्दास जी के परमपद होने पर (हेमाम्बा) हेमाम्बा देवी जी ने (चन्दनताम्बूलकुसुमादिभिः) चन्दन पान फूल वस्त्र आदिकों से (च) और (आभरणैः) भूषणों से (अलङ्कृता) सुशोभित (कस्तूरीमृगवत्) कस्तूरीवाले मृग के समान (सात्त्विकैः) सात्त्विक भागवतों से (मिलित्वा) मिलकर (दुःखापनोदनम्) दुःख के अपनोदन को (दर्शयन्ती) दिखलाती हुई (तस्य) उस धनुर्दासजी के पंखा आदिकों से उपकार को (अकरोत्) किया। इस चारसौ इकतीसवीं वार्ता में चौदह पद हैं। इति हेमाम्बावार्ताव्याख्यानम् ॥४३१॥

अब श्रीवैष्णवों की वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ श्रीवैष्णववार्ता ॥

मू०–तदा पुष्पविमानं निर्माय श्रीचूर्णपरिपालनं कृत्वा-इक्षुकुम्भादिकं धृत्वा चतुर्षु वीथिषु सञ्चारं कृत्वा श्रीरङ्गनाथेन धृतं पट्टवस्त्रं मालां स्वाभिमतविषयानुरूपां सर्वपरिकरैः प्रेषितामेतैरुपचारपूर्वकं स्वीकृतां धारयित्वा श्रीविमानेन कावेरीतीरं प्रापयामासुः ॥४३२॥

अर्थ–(तदा) तब श्रीवैष्णव सब (पुष्पविमानम्) फूल के विमान को (निर्माय) बनाकर (श्रीचूर्णपरिपालनम्) श्रीचूर्णके परिपालन को (कृत्वा) करके (इक्षुकुम्भादिकम्) छिले हुए ईख से दण्ड और मिट्टी के पकाये हुए घड़े और माला आदिक को (धृत्वा) धारण करके (चतुर्षु) चारो (वीथिषु) वीथियों में (सञ्चारम्) सञ्चार (कृत्वा) करके (श्रीरङ्गनाथेन) श्रीरङ्गनाथ भगवान् से (धृतम्) धारण किये हुए (पट्टवस्त्रम्) पट्टवस्त्र और (सर्वपरिकरैः) सब परिकरों से (प्रेषिताम्) भेजी हुई (स्वाभिमतविषयानुरूपाम्) अपने अभिमत विषय के अनुरूप (मालाम्) माला को तथा (एतैः) इन सब महानुभावों से (स्वीकृताम्) स्वीकार की हुई माला को (धारयित्वा) धारण कराकर (श्रीविमानेन) श्रीपुष्प के विमान से (कावेरीतीरम्) कावेरी नदी के तीर पर (प्रापयामासुः) प्राप्त कराये। इस चार सौ बत्तीसवीं वार्ता में पच्चीस पद हैं। इति श्रीवैष्णववार्ता-व्याख्यानम् ॥४३२॥

अब हेमाम्बादेवीजीकी वार्ता को कहते हैं कि–

॥ अथ हेमाम्बावार्ता ॥

मू०-अमुमग्रतः, शान्ताः, अधः श्रीवैष्णवा ऊहुः, अनन्तरं शान्तिनः सूरय, ऊहुः, अनन्तरमाचार्य्या ऊहुः, अनन्तरमुपाश्रमिण ऊहुः, एवं वहमानेषु हेमाम्बा विमानेऽन्तर्हिते पूर्वोक्तं विस्मृत्य परमपदमगादिति ॥४३३॥

॥ इति पूर्वाचार्य्योक्ता वार्तामाला समाप्ता ॥

अर्थ–(अमुम्) इस धनुर्दासजी के मृतक देह को (अग्रतः) आगे से (शान्ताः) शान्त परमैकान्ती सब और (अधः) नीचे से अर्थात् पीछे से (श्रीवैष्णवाः) श्रीवैष्णव सब (ऊहुः) ढोये। "ऊहुः" यहाँ पर ॥ **वचिस्वपियजादीनां किति ॥ व्या० अ० ६ पा० १ सू० १५** ॥ इस सूत्र से सम्प्रसारण हुआ है। (अनन्तरम्) इसके बाद (शान्तिनः) शान्त अन्तःकरणवाले (सूरयः) सूरि सब (ऊहुः) ढोये। (अनन्तरम्) इसके बाद (आचार्याः) आचार्य्य सब (ऊहुः) ढोये। (अनन्तरम्) इसके बाद (उपाश्रमिणः) उपाश्रमी सब (ऊहुः) ढोये। (एवम्) इस प्रकार से (वहमानेषु) महानुभावों के ढोने पर (हेमाम्बा) हेमाम्बादेवीजी (विमाने) श्रीविमान के (अन्तर्हिते) अन्तर्हित होने पर (पूर्वोक्तम्) पहले आचार्य्य से कहे हुए वाक्य को (विस्मृत्य) भूलकर (परमपदम्) परम पद को (अगात्) चली गयी हैं (इति) इस प्रकार की हेमाम्बादेवीजी की वार्ता है इस चार सौ तैंतिसवीं वार्ता में छब्बीस पद हैं। इति हेमाम्बावार्ताव्याख्यानम् ॥४३३॥

॥ अस्मदाचार्य्यस्तुतिः ॥

श्रीवत्सवंशकलशोदधिपूर्णचन्द्रम्, श्रीकृष्णसूरिपदपङ्कजभृङ्गराजम् ॥ श्रीरङ्गवेङ्कटगुरूत्तमलब्धबोधम्, भक्त्या भजामि गुरुवर्य्यमनन्तसूरिम् ॥२९२॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य्यवेदान्तप्रवर्तकाचार्य्यश्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरुभगवदनन्तपादीयश्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य स्वामिना प्रणीता "चूडामणि" नामधेया वार्तामालाभाषाटीका समाप्ता ॥

॥ समाप्तोऽयंग्रन्थः ॥

✿ श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य्यश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यसत्सम्प्रदायाचार्य्यजगद्गुरुभगवद्रामानुजपादीयश्रीमत्काञ्चीप्रतिवादिभयङ्करसिंहासनाधीश्वरश्रीमदनन्ताचार्य्यस्वामिवर्य्याणां प्रपत्तिः ॥ ✿

वत्सान्वयाम्बुधिविधू चरमार्थलब्धौ श्रीभाषिताब्जतरणी जगदेकवन्द्यौ ।
श्रीलोकसूरिनिलये वरदेऽवतीर्णौ तीर्थावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥
यत्पूर्वपीठगणनास्ति चतुर्युतेषु पीठेषु सप्ततिषु चाष्टवरासनेषु ।
कान्तोपयन्तृपदपङ्कजपाविते षूद्भाव्यावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥
यद्भव्यपूर्वपुरुषो भगवाननन्तो तीर्थे गुरौ च नृपहैदरराजधान्याम् ।
चक्रे समौ सुसमदृग्वरदिव्यदेशौ सेव्यावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥
प्रोद्यत्प्रभाकरमहाप्रबलप्रतापौ प्राग्धर्मनीतिनलिनीमुखलासितारौ ।
पाषण्डचण्डजडताचयचर्वितारौ चण्डांश्वन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥
आनन्दकाननमहोद्भटवादिदन्ति-द्वन्द्वानिनादितदिशास्तमदा विदीर्णाः ।
शब्देन शास्त्रनखरैः प्रखरैः प्रकोपं सिंहावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥
तादृक्प्रचण्डदिगिभप्रभवादिवृन्दाः श्रुत्वैव यन्निनदमस्तसमस्तदर्पाः ।
यातुं न जात्वभिभयानकमास्यमीशाः सिंहावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥
द्रष्टुं न चाप्यशकतामहतामतस्तान् लोकान्तकापथकुपालसुताननघ्नान् ।
कारुण्यसिन्धुपरकालपदावलम्बौ वीरावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥
काञ्चीनिवासिप्रतिवादिभयङ्कराख्यौ सम्पादिताखिलसुवैष्णवधर्ममेलौ ।
श्रीमद्यतीन्द्रविजयध्वजलम्बवंशौ शंस्यावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ८ ॥
श्रीवाडवज्वलनपूर्वशिखामकार्ष्टां पत्रे च वैदिकसमस्तसुमञ्जुभाषे ।
तल्लेखकौशलसुदर्शनभव्ययन्त्रं भव्यावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ९ ॥
भाषाङ्गनास्यवरसारसहासहंसौ भाषाज्वरप्रशमनौ शमनाध्वरोधि ।
सन्तेनतुः सुरसपुरुषसूक्तभाष्यं भव्यावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १० ॥
देशे गताम्भसि मरावथ मोहमय्यां वैकुण्ठधामनिभधाम्न्यभिषिक्तवन्तौ ।
रामानुजाङ्घ्रिशरणौ वरवेङ्कटेशं धर्मावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ११ ॥
कृष्णाङ्घ्रिपङ्कजपलाशविलासदासान् कृत्वा यतीन्द्रभगवच्चरणाम्बुजाशान् ।
देशान्दिशश्च समयानिह सार्वभौमौ नाथावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १२ ॥
श्रीभाष्यकारविजयाप्तमहाधनेशौ श्रीमच्छठारिचरणाम्बुजराजहंसौ ।
आर्ताश्रयौ निगमिनां समुपेयदेशौ शेषावन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १३ ॥
संसारघोरदवदग्धनिवासवृक्षौ वेदान्तवेद्यवरदेशपदाप्तिशिक्षौ ।
श्रीसम्प्रदायधुरमुद्वहतां सुरक्षौ श्रीवन्ध्वनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १४ ॥

अष्टादशां सुविजयाङ्गतामवाप्य प्रेमास्पदं सुरनदीसरयूसुमेलम्।
देशं विहारमभिगम्य गतौ स्वदेशं दिव्यावनन्तचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १५ ॥

॥ इति प्रपत्तिः समाप्ता ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

❁ श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य्यश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यसत्सम्प्रदायाचार्यजगद्गुरुभगवद्रामानुजपादीयश्रीकाञ्चीप्रतिवादिभयङ्करमठाधीशश्रीमदनन्ताचार्य्यस्वामिवर्य्याणां मङ्गलाशासनम्। ❁

मङ्गलं देशिकेन्द्राय श्रीशेषाचलजन्मने।
श्रीशेषप्रतिरूपाय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ १ ॥
अधीतसाङ्गवेदाय द्राविडागममूर्त्तये।
मङ्गलं कृष्णपुत्राय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ २ ॥
संस्कारपञ्चकं लब्धं येन स्वपितुरेव च।
मङ्गलं गुरुगोत्राय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ ३ ॥
श्रीरङ्गवेङ्कटेशाब्धेर्लब्धज्ञानामृताय च।
मङ्गलं गुरुवर्य्याय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ ४ ॥
रीवोंदयपुराधीशप्रमुखैरर्चिताङ्घ्रये।
मङ्गलं चान्यभूपालैः श्रीयुतानन्तसूरये ॥ ५ ॥
रामानुजमुनेरूर्ध्वं भद्रं भ्रामयते ध्वजम्।
मङ्गलं योगिवर्य्याय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ ६ ॥
प्राचार्य्यदिव्यसूरीणां सुप्रपत्तिस्थलेऽनिशम्।
मङ्गलं ख्यातयशसे श्रीयुतानन्तसूरये ॥ ७ ॥
योगिवर्य्यैर्यतीन्द्रैश्च विष्वक्सेनादिभिर्मुदा।
समर्चिताङ्घ्रिपद्माय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ ८ ॥
मङ्गलं रचितानन्तश्रीनिवाससुसद्मने।
श्रीभाष्यार्थप्रदीपाय श्रीयुतान्तसूरये ॥ ९ ॥
महामङ्गलदेवाय महामङ्गलकर्मणे।

मङ्गलंदिव्यरूपाय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ १० ॥
स्वासाधारणनादेन दारितारिसुवक्षसे ।
मङ्गलं चित्रसिंहाय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ ११ ॥
महामङ्गलधर्माय महामङ्गलवर्ष्मणे ।
मङ्गलं भक्तिनिष्ठाय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ १२ ॥
मङ्गलं वैष्णवेन्द्राय सौलभ्यगुणसिन्धवे ।
सर्वतन्त्रस्वतन्त्राय श्रीयुतानन्तसूरये ॥ १३ ॥
मुम्बयीनगरस्थश्रीवेङ्कटेशाश्रुमोचनम् ।
यत्कृते मङ्गलं तस्मै श्रीयुतानन्तसूरये ॥ १४ ॥
स्वोदयेनार्दिताशेषपाषण्डग्रहतेजसे ।
श्रीयुतानन्तदेवाय भूयो भूयात्सुमङ्गलम् ॥ १५ ॥

॥ इति मङ्गलाशासनं समाप्ताम् ॥

॥ श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ॥

❁ श्री १००८ श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्य्यश्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य-सत्सम्प्रदायाचार्य-जगद्गुरुभगवद्रामानुजपादीय-श्रीकाञ्चीप्रतिवादिभयङ्करमठाधीशश्रीमदनन्ताचार्य्यस्वामिवर्य्याणां सुप्रभातम् ॥ ❁

श्रीवत्सवंशवररत्नमणिप्रदीप श्रीकृष्णसूरिसुमहोत्तमरत्नराशे ।
रात्रिर्गता हि जगतां विजहीहि निद्रां श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ १ ॥
श्रीचूर्णमाशु विमले वदने दधाना प्राचीदिशापि कमलेवनिजेशपूजाम् ।
भातीवकर्तुमनघात्मतमोपहत्यै श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ २ ॥
सर्वेऽर्चकास्तव गुरोः सविधेऽखिलस्य स्नानीयवस्त्वथ सुपूजनवस्तुजातम् ।
संपाद्य नाथमिव भृत्यजनाः श्रयन्ते द्रष्टुंह्यनन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ ३ ॥
आक्रीडकाननगता अपि पञ्जरस्थाः सर्वेऽपि पक्षिनिवहा रमणीयरागाः ।
कुजन्ति नो गुरुरवेदिति संप्रहृष्टाः श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ ४ ॥
पुष्पद्रुमाश्च भवतश्चरणारविन्दयुग्मार्चनाय सुमनांसि निजानि सद्यः ।
सम्पातयन्ति सुमहास्पृहणीयशीलाः श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ ५ ॥

भास्वानुदेति विधुरो विधुरस्तमेति उद्बोधमेति नलिनीवनमम्बुजाक्ष ।
उद्बोध एव भवतोऽप्यधुनोचितोऽतः श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ ६ ॥
सन्नाशयन्प्रतिविवादिमहान्धकारान् मित्रः समेति भवतो वदनारविन्दम् ।
द्रष्टुं भवानपि ततः प्रथमोद्यतः स्याच्छ्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ ७ ॥
हे श्रीजगद्गुरुवर ! प्रतिवादिदन्तिसिंहप्रचण्डकुपथार्णववाडवाग्ने ।
निद्रां विहाय निजवैरिवनं दहाशु श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ ८ ॥
शिष्याः वयं भगवतश्चरणारविन्दं द्रष्टुं समर्चितुमथो हृदयेऽपि धर्तुम् ।
वेदा इवाब्धिशरणं प्रतिबोधयामः श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ ९ ॥
श्रीसम्प्रदायधुरमुद्वहतां वरिष्ठ उत्तिष्ठ चाशु कुरु दैनिकदेवकार्य्यम् ।
श्रीमच्छठार्युदधिजां सुसुधां च देहि श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ १० ॥
छत्रं च चामरयुगं विजयध्वजं च पीठं सुवर्णबहुलं विविधं च वाद्यम् ।
आदाय वाहनमथो भवदीयशिष्याः गायन्त्युपेत्य विशदं तव सुप्रभातम् ॥ ११ ॥
संस्कारपञ्चकयुता लसदूर्ध्वपुण्ड्रा वक्षोविराजितुलसीनलिनाक्षमालाः ।
वेदान्तशास्त्रपठनोत्सुकमानसाश्च गायन्त्युपेत्य भगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ १२ ॥
काशीनिवासिवरवादिगिरीन्द्रवज्र श्रीवैष्णवोत्पलरवे त्वरितं जहीहि ।
निद्रां समुल्लसतु साधुमुखारविन्दं श्रीमन्ननन्तभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ १३ ॥
श्रीवेङ्कटेशपदपङ्कजभृङ्गराज श्रीमच्छठारिगुरुसूक्तसुधाम्बुराशे ।
कान्तोपयन्तृमुनिदत्तवरासनस्थ निद्रां जहीहि भगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ १४ ॥
प्राचार्य्यवैभवसुरक्षणसक्तचित्त तद्दिव्यभाषितसुधावरवारिवाह ।
संसारदावसुविमूर्छितजीवलोकान् सञ्जीवयाशुभगवँस्तव सुप्रभातम् ॥ १५ ॥

॥ इति सुप्रभातं समाप्तम् ॥

पुस्तक-प्राप्ति स्थान :–

१. श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर,

चरित्रवन, बक्सर

जि॰ - बक्सर (बिहार)

२. श्रीसुदर्शनाचार्य ब्रह्मचारी स्वामीजी,

अध्यक्ष

श्रीविजयराघव मन्दिर,

बीरन-बीघा, डेहरी

जि॰ - रोहतास (बिहार)

मुद्रक

दिनेश चन्द्र शुक्ल

वातायन, एडीसन आर्केड, लिलैण्ड, कम्पाउण्ड,

फ्रेज़र रोड, पटना ८००००१

दूरभाष - २२९४४४